CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
मुमुक्षु भवन, आ. सं. वाराणसी.

म

२

3/60

१५६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐतरेयोपनिषद्

भाषाटीका सहित

इसमें

आत्मा व ब्रह्म का निरूपण, प्राण व प्रणव की उपासना की व्याख्या व संन्यासादि आश्रमों के लक्षण व धर्म अच्छे-प्रकार वर्णित हैं।

अनुवादक

पं० यमुनाशङ्कर नागर ब्राह्मण

तीसरी बार

लखनऊ

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९२१ ई०

सर्वाधिकार रक्षित हैं।

श्री १०८ ईश्वर मुमुक्षु भवन, आसे, काशी
पुस्तकालय,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

अथ विज्ञापनम् ॥

विदितहो कि यह ऋग्वेदके ब्राह्मणभाग सम्बन्धी ऐतरेयनामक उपनिषद् (ब्रह्मविद्या) है, तिसका जो श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीशंकराचार्यजीकृत महाभाष्य, अरु तिसपर आनन्दगिरिकृत टीकाहै, तिसके अनुसार, मूलमन्त्रसहित, यह भाषाभाष्य मैं अतिअल्पज्ञ अविद्वानने, अपने गुरु श्री १०१ स्वामी ब्रह्मानन्द महाराजकी कृपा बलसे, अरु सर्वजनहितकारी परमधार्मिक ब्रह्मनिष्ठ मुन्शी नवलकिशोर सी. आई. ई., की आज्ञा से अनुवाद किया है, अरु मैं अतिअल्पज्ञ होनेसे सर्वसुज्ञ विवेकी पाठकजनों से सविनय प्रार्थना करताहौं कि इस भाषाभाष्य में जो कुछ अनुचित लेखहुआ होय तिसको मुझपर क्षमा करना, अरु इस भाषाभाष्य में बहुधा आनन्दगिरिके टीकाकी भाषा है सो श्रीद्विजवर पण्डित पीताम्बरजी महाराजकी टीकाके अनुसारहै ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूचीपत्रम् ॥

१ पृष्ठोपरि पुष्टाक्षरों में श्रुतिका मूलमन्त्र
२ ८) इस चिह्नान्तर भाषानुवाद में मूलश्रुतिके वाक्य
३ ८) इस चिह्नमें पूर्व अरु मूल श्रुतिवाक्य के अक्षरार्थ
४ [ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरिका अनुवाद
५ " " इस चिह्नान्तर में अन्यश्रुति स्मृतिआदिकों के प्रमाण वाक्य अरु तिसके पश्चात् निकट तिसका अक्षरार्थ।
६ " " इस चिह्नान्तर प्रमाणमें केवल श्रुतिवाक्यार्थ
७ ' ' इस चिह्नान्तरमें भाषाकार करके कल्पित विचार

" इति "

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

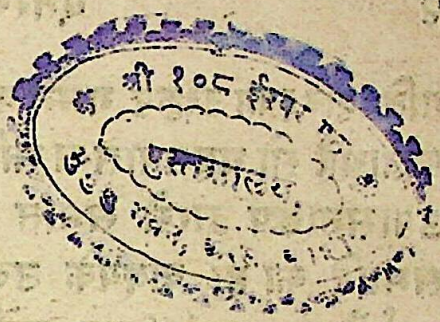

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

अथ ऋग्वेदीयैतरेयोपनिषद् ॥

अथ प्रथमाध्यायगतप्रथमखंडः प्रारभ्यते ।

हरिः ॐ ॥ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत् लोकान् नु सृजा इति १

श्रीऋग्वेदीय

अथ ऐतरेयोपनिषद् भाषाभाष्य प्रारभ्यते ।

अथ ऐतरेयोपनिषद्गत प्रथमाध्याय भाषाभाष्य प्रारंभ ।

"अथ प्रथमखंड भाषाभाष्य"

हे सौम्य ! [८ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्) ८ यह आगे एक आत्मा ही था) इत्यादि वाक्योंसे केवल एक आत्मविद्याके आरंभके अवसरके कहनेको उक्त अर्थका कथन करतेहैं] 'ऋग्वेद के ब्राह्मण में' यहां पर्यन्त अपरब्रह्म 'प्राण वा प्रणव' की उपासना सहित कर्म समाप्त हुआ [तिसपर कर्म की समाप्ति कैसे विदित होती है, यह आशंका करके कहते हैं । यहां परा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गति शब्दका उत्कृष्ट गमन करने योग्य 'अर्थात् प्राप्त होने योग्य' फलार्थहै सो यह उपासना सहित कर्मकी परगति उक्थ (प्राण) की उपासनारूप द्वारसे समाप्त किया। [उपासना सहित कर्म की समाप्ति को ही वाक्यके उदाहरण करके देखावें हैं। यहां यह अर्थ है कि, तहां "सह सर्वेण भोज्येन संयुक्तोऽध्यात्माधिदैवलक्षणः प्राणः सत्यैकशब्दवाच्यो भवति" सर्व भोज्यकरके संयुक्त अध्यात्म, अधिदैवरूप सो प्राण, एक सत्य शब्दका वाच्य होता है,। इस वाक्यसे प्राणका स्वरूप 'कथन' समाप्त किया।] "एतत् सत्यं ब्रह्म प्राणाख्यम्" "एष एको देवः" यह प्राण नामक सत्य ब्रह्म है,। यह एक देव है,। [तब वाक्य और अग्न्यादि देव कौन हैं, यह आशंका करके, "तस्य वाक् सन्ति" "अथातोऽस्य पुरुषस्य" तिसका वाक्रूप सन्तान है, अरु अब इस करके इस पुरुषका,। इत्यादिक वाक्यों से सो वाकादिक प्राणकी ही विभूतियां (विस्तार) हैं इस प्रकार कहा है। यह कहते हैं] "एतस्यैव प्राणस्य सर्वे देवा विभूतयः" "एतस्य प्राणस्यात्मभावं गच्छन्देवता अप्येति" इसही प्राणकी सर्वदेवता विभूतियां हैं, अरु इस [ऐसे सर्वात्मा प्राण के कर्म सहित आत्मतत्त्व रूप करके विज्ञान से सर्व देवता के स्वरूप प्राणकी प्राप्तिरूप फल "प्रज्ञामयो देवतामयो ब्रह्ममयोऽमृतमयोऽसंभूय देवता अप्येति य एवं वेद" जो इसप्रकार जानता है, सो प्रज्ञामय, देवतामय, ब्रह्ममय, अमृतमय, होइके देवताओंको प्राप्त होताहै,। इस वाक्यसे समाप्त कियाहै, इसप्रकार कहतेहैं। यहां यह भाव है कि, तिस प्रकार हुये उपासना सहित कर्मसे केवल आत्मस्वरूपकी स्थितिरूप मोक्षकी असिद्धिसे, तिस मोक्षकी सिद्ध्यर्थ अब केवल आत्मविद्याके आरंभका अवसर (समय) है] प्राण के आत्मभाव को पावताहुआ देवता को पावता है,। इस प्रकार श्रुति बिषे कहाहै॥ [यहां मध्य में सर्व रूप सूत्रात्माकी प्राप्ति से भिन्न, मोक्षके अभावसे तिस सूत्रात्माकी प्राप्तिरूप मोक्षार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

केवल आत्मविद्याका आरंभ करना युक्त नहीं। इसप्रकार किसी एक वादी के मतको उठावते हैं] सो यह देवता की प्राप्तिरूप परम पुरुषार्थ है, यह मोक्षहै, अरु सो यह मोक्ष उक्त प्रकारके उपासना अरु कर्मके समुच्चयरूप साधनसे प्राप्त होने योग्य है, इससे अन्य श्रेष्ठ नहीं। इसप्रकार कोई एकवादी निश्चयको प्राप्त हुयेहैं। तिनके 'निश्चयको' निषेध करनेकी इच्छावालीहुई यह उपनिषद् केवल आत्मज्ञान के विधानार्थ "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह (कार्यरूपजगत्) आगे निश्चयकरके एकही आत्मा था, इत्यादि रूप अर्थको कहेहै॥ [ननु "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह आगे एकही आत्माथा, इत्यादि वाक्य केवल आत्माकोही विषय करनेवाले कैसे बने, क्योंकि "सइमान् लोकानसृजत" सो इन लोकोंको सृजता हुआ, इसप्रकार लोकनकी सृष्टिकी प्रतीतिसे, अरु तिस सृष्टिकी सोपाधिक हिरण्यगर्भकरके रचित होने से पुराणों बिषे प्रसिद्ध है ताते, अरु "ताभ्यो गामानयत्" तिनके अर्थ गौवोंको ल्यावता हुआ,। इत्यादि व्यवहारोंकी लोकबिषे सोपाधिक विषयभावकी प्राप्ति प्रसिद्ध है ताते। अरु पूर्व "अथातोरेतसः सृष्टिः" "प्रजापतेरेतो देवाः" अब इसके पश्चात् वीर्यसे सृष्टि होवेगी। प्रजापतिके वीर्यरूप देवहैं, इस वाक्य बिषे प्रजापतिशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भको प्रसंगबिषे प्राप्त कियाहै ताते "तस्य तद्विषयत्वसौचित्यादात्मग्रहीतिः" तिसको तिस विषयभावके उचित होने से आत्मा का ग्रहणहै, इस अधिकरण सूत्रबिषे उक्त पूर्वपक्षीकी रीति से वादी शंका करेहै] पुनः कर्मके सम्बन्धी केवल आत्माके विधानार्थ उत्तर ग्रन्थहै, यह कैसे जानिये, तहां कहते हैं, कि ["आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह आगे एकही आत्माथा, इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपक्रमसे। अरु "एष ब्रह्मैष इन्द्रः" यह ब्रह्मा है, यह इन्द्र है,। इस अनुक्रम करके "सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्" सर्व सो प्रजारूप नेत्रवाला है, अरु प्रज्ञानबिषे स्थित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, । इसप्रकार प्रज्ञानशब्दके वाच्य प्रत्यगात्मारूप अधिष्ठानवाला होने करके तिससे भिन्न ब्रह्मशब्दके वाच्य हिरण्यगर्भादिक प्रपंच के अभावको कहके " प्रज्ञानं ब्रह्मेति " प्रज्ञान ब्रह्महै, इसप्रकार अद्वितीय आत्माके उपसंहारसे । अरु " स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिति " सो इसही पुरुषको परिपूर्णब्रह्म देखता हुआ, इसप्रकार मध्यबिषे स्मरण होनेसे ब्रह्मआत्मा के अद्वितीयभावको अन्य प्रमाणका अविषय होनेकरके अपूर्वताहै ताते । अरु " अमुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्व्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवदिति " इस स्वर्गलोकबिषे सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृत होताहुआ, इस प्रकार स्वर्गशब्दके वाच्य निरतिशयभावरूप सुखस्वरूप ब्रह्मबिषे एकभावकरके स्थितहुये पुरुषको तिसके अन्तर्भूत विषयसम्बंधी सर्वानन्दकी प्राप्तिरूप फलके कथनसे । अरु सृष्टिआदिक अर्थवादसे " स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतयाद्वाराप्रापद्यत " सो इसही सीमाको विदीर्ण करके तिसद्वारसे प्रवेश करताहुआ, इस प्रकार प्रवेशका कथन होनेसे । अरु " तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना इति " तिसके तीन स्थान हैं, तीन स्वप्नहैं, इसप्रकार जाग्रदादि तीन अवस्थाके स्वप्नरूपसे मिथ्यापनेकी उक्तिरूप उपपत्तिसे, ग्रन्थके निष्प्रपंच अद्वितीय आत्माके तत्परपनेके जानने से अन्य अर्थकी शंकाहोनेका अनवकाश होनेसे अरु लौकिकादिक सृष्टिके कथनसे, अध्यारोप अरु अपवादकरके उक्त आत्माके निश्चयार्थ आत्माबिषे सृष्टि के आरोप से । यहां अन्य स्थलवत् आत्मशब्द से परमात्माकोही ग्रहण करते हैं । जैसे " तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः " तिस वा इस आत्मा से आकाश होताहुआ, इत्यादि अन्य सृष्टिवाक्योंके श्रवणोंबिषे आत्मशब्दसे परमात्माका ग्रहणहै । वा जैसे अन्य लौकिक आत्मशब्द के उच्चारणबिषे आत्मशब्दसे मुख्य प्रत्यगात्माही ग्रहण करते हैं तैसे यहां भी होनेको योग्यहै, क्योंकि वाक्यार्थ करके तैसाही है ताते । अरु " आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरादिति " उत्तरग्रन्थसे अन्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थलवत् आत्माका ग्रहण है, इस अधिकरणसूत्रके सिद्धान्तकी रीतिसे केवल आत्माकी परायणताके निश्चय से उत्तरग्रन्थको सोपाधिक वस्तुकी परायणता नहीं है । इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है] अन्य अर्थके न जानने से इसही प्रयोजनार्थ उत्तरग्रन्थ है, यह जानते हैं [जो कहा यहही मोक्ष है तहां कहते हैं । यहां तिस हिरण्यगर्भ के स्थूलरूप विराट्के पींड़को ईश्वर क्षुधा तृषाकरके युक्त करताहुआ, यह इस श्रुतिका अर्थ है] तैसेहुये पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओं को क्षुधा तृषादिक दोषकरके युक्त होनेसे संसारीपनेको यहां श्रुतिआगे "तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्" तिसको क्षुधा तृषा करके प्रार्थना करते हुये, । इत्यादि वाक्यसे देखावेगी । अरु क्षुधा आदिक दोषवाला सर्व संसारहीहै [अरु जो वादीने कहाथा कि निरुपाधिक आत्मस्वरूप से स्थिति को विषयादिकों से रहित होने करके मोक्ष नहीं है । सो कथन असत् है, क्योंकि " तस्य योशनायापिपासे शोकं मोहं जरां मृत्युमत्येति " जो क्षुधा तृषा शोक मोह जरा अरु मृत्यु को लाँघता है, । इस क्षुधा आदिक के उल्लंघन की श्रुति से तिस ब्रह्मरूपसे स्थितहुये पुरुषको तिस नियमित दुःखों की अप्राप्ति होने से, अरु " आनन्दो ब्रह्मेति " आनन्दब्रह्म है, । ऐसे जानना, इस अन्य श्रुति वाक्य से ८ अमुष्मिन् स्वर्गे लोके ? इस स्वर्गलोक बिषे सर्व कामों को पाय के अमृत होताहुआ, । ऐसे आगे यहां भी स्वरूप से आनन्दरूप ताके जानने से अरु स्वर्ग शब्दसे सामान्य सुख का वाची होनेसे " अनन्ते स्वर्गे लोके" " ब्रह्मविदः स्वर्गलोकमित ऊर्ध्वं विमुक्ता" याके पीछे ब्रह्मवेत्ता स्वर्गलोक को पायके मोक्ष होतेहैं, । इत्यादिक श्रुतियों बिषे ब्रह्मानन्द बिषे स्वर्ग सुखकी योजना करने से तिसको विषय के अभाव हुयेभी पुरुषार्थ (पुरुषकी इच्छाका विषय, वा पुरुष करके साध्य अर्थ वा मोक्ष) होनेसे मोक्षरूपता है] क्योंकि परब्रह्म के क्षुधा आदिकोंके अभावकी प्रतिपादक श्रुतिहै ताते ॥ [इसप्रकार निष्प्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पंचरूप आत्माके विद्याकी मोक्षसाधन ताको अंगीकार करके, तिस विद्याकी कर्मरहित पुरुष काहिये संन्यासी बिषे स्थित होनेके नियमरूप केवलता संभवे नहीं । इसप्रकार कहता हुआ वादी संन्यासीके अर्थ आक्षेप करताहै] इसप्रकार केवल आत्माकाज्ञान मोक्षका साधक होवो, परन्तु इस बिषे अकर्मी (संन्यासी) पुरुषही अधिकारको प्राप्त होताहै ऐसा नहीं, क्योंकि विशेषके अश्रवणसे, अर्थात् कर्मरहित संन्यासीरूप अन्य आश्रमीपुरुषही यहां मोक्षका अधिकारीहै ऐसे श्रवण किया नहीं ताते, । अरु श्रुतिबिषे बृहतीसहस्रूप कर्मको प्रसंगबिषे प्राप्त करके अनन्तरही आत्मज्ञानका आरम्भ करते हैं । ताते यहां (आत्मज्ञानके बिषे) कर्मी पुरुषही अधिकारको पावताहै 'कर्मका त्यागी नहीं' [इसप्रकार कर्मके सम्बन्ध से रहित केवल आत्मविद्याको अंगीकार करके, तिस विद्याका कर्मरहित पुरुष (संन्यासी) बिषे स्थित होनेका नियम निषेध किया । अब अंगीकारका परित्याग करेहै । यहां यह अर्थहै कि, कर्मकाण्ड बिषे कर्मसम्बन्धी ज्ञानके विषयकी सर्वात्मताका कथनहै ताते, "एष ब्रह्मा" यह ब्रह्माहै, इत्यादिक वाक्यों से यहां 'इस उपनिषद् बिषे' भी सर्वात्माका कथन है ताते, अरु तिस लिंगकरके इस आत्मज्ञानके भी कर्मसम्बन्धीपने के अनुमानसे आगे कहनेके आत्मज्ञानको कर्मसम्बन्धीपना 'अर्थात् कर्मरूप सहकारी करके युक्तपना' है] अरु कर्मका असम्बन्धी आत्माका ज्ञान नहीं हैं, क्योंकि यहां पूर्ववत् अन्तबिषे कर्म की समाप्तिहै ताते । जैसे कर्मसम्बन्धी पुरुषको सूर्यरूपसे स्थावर जंगमादि सर्वप्राणियोंका आत्मापना "सूर्य्यात्मा जगतस्तस्थुषश्च" सूर्य आत्मा, इत्यादिरूप वाक्यकरके ब्राह्मणभागबिषे अरु मन्त्रभागबिषे कहाहै । तैसेही "एष ब्रह्मा एष इन्द्रः" यह ब्रह्माहै यह इन्द्रहै, । इत्यादिरूप वाक्यका आरम्भकरके सर्वप्राणियोंका आत्मपना कहाहै । अरु "यच्च स्थावरजंगमं सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्" औ जो स्थावर जंगम सर्व है प्रज्ञा 'अर्थात् स्वप्रकाश चैतन्य'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप नेत्र 'निर्वाह करने' वालाहै,। इसप्रकार अन्तविषे उपसंहार 'समाप्त' करेंगे। अरु तैसेहुये संहितारूप उपनिषद् विषे "एतं ह्येव बह्वृची महत्युक्थे मीमांसन्त" इसही बृहतीसहस्र नामक सत्र (यज्ञ) विषे ऋग्वेदके वेत्ता विचारतेहैं, इत्यादिरूप वाक्यसे कर्मके सम्बन्धीपनेको कहके "सर्वेषु भूतेषु एतमेव ब्रह्मेत्याचक्षत" सर्वभूतोंविषे इसहीको ब्रह्म ऐसा कहते हैं, इसप्रकार उपसंहार 'समाप्ति' करते हैं। तैसे "तस्यैव योऽयमशरीरःप्रज्ञात्मेति" जो यह अशरीर प्रज्ञारूप आत्मा है, इसप्रकार कथन किये तिसही आत्माकी "यश्चासावादित्य एकमेव तदिति" जो यह सूर्य्यविषे है तिसको एकही जानना, इसप्रकार एकता कहीहै। यहां भी "कोयमात्मा" कोन यह आत्माहै, इसप्रकार आरम्भकरके "प्रज्ञानंब्रह्मेति" प्रज्ञानब्रह्महै, इसप्रकार तिसकी प्रज्ञारूपताकोही देखावेंगे। ताते कर्मका असम्बन्धी आत्मज्ञान नहीं है, अरु अन्यथा 'कर्मका असम्बन्धी होनेसे' पुनरुक्तिदोषसे अनर्थता होवेगी। कैसे अनर्थता है कि "प्राणोवाअहमस्म्येष" यह प्रसिद्ध प्राण मैं हौं,। इत्यादिरूप ब्राह्मण से। अरु "सूर्य आत्मा" सूर्य आत्माहै,। इस मन्त्रभाग से निर्द्धार किये आत्मा का "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्" यह आगे निश्चचय करके एकही आत्मा था,। इत्यादि ब्राह्मण भाग से "कोयमात्मेति" इस प्रश्नपूर्वक पुनः निर्द्धार करना पुनरुक्ति दोष है, सोई अनर्थता है, इस प्रकार जो कहे [सोई शंकाका परिहार 'समाधान' करते हैं] सो बने नहीं, क्योंकि तिसही आत्मा के अन्य धर्म विशेषके निर्द्धारणार्थ "कोयमात्मा" यह प्रश्नरूप श्रुति,। होने से तिस वाक्य को पुनरुक्ति दोष नहीं। कैसे पुनरुक्ति दोषका अभाव है 'ऐसा पूछे तो' कि तिसही कर्म सम्बन्धी आत्माके जगत् की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारादिक धर्म विशेष के निर्द्धारणार्थ 'उक्त श्रुतिके' होने से, वा [अन्यप्रकारसे भी पुनरुक्ति दोषका परिहार करतेहैं] केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा के उपासनार्थ होने से, अर्थात् "आत्मा" इत्यादिरूप जो ग्रन्थका समूह है सो कर्म से अन्य ठिकाने आत्मा की उपासना की अप्राप्तिक हुये, अरु कर्म के प्रसङ्ग बिषे 'आत्मा की उपासना का विधान न किया होने से केवल आत्मा भी उपासना करने के योग्यहै। इस अर्थ बिषे भेद अरु अभेदकी उपास्यतासे, वा एकही आत्मा कर्म बिषे भेद दृष्टिवाला 'अर्थात् इदं प्रत्यय के विषयरूपसे उपास्य' सोई अकर्म काल बिषे 'अर्थात् देहादि अनात्मा बिषयक अहंभावके अभावकाल बिषे अरु श्रवणज्ञानजन्य अपरोक्षज्ञान काल बिषे' अभेदता से 'अहं प्रत्यय की विषयतारूप से' भी उपासना करने योग्य है। इसप्रकार पुनरुक्ति दोष का अभाव है। अरु "विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयंसह। अविद्यया मृत्युन्तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते" जो विद्या अरु अविद्या इन दोनों को साथही अनुष्ठान करके योग्य जानता है सो अविद्या से मृत्युको तरिके विद्या करके अमृत (मोक्ष) को पावता है,। अरु "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः" यहां कर्मों को करता हुआ शत १०० वर्ष पर्यन्त जीवने की इच्छा करे,। इस प्रकार वाजसनेयी 'यजुर्वेदियों की' संहिता बिषे कहा है। अरु जिस करके 'प्रत्यक्ष, अरु उक्त आदिक अनेक श्रुतियों के प्रमाण से' मनुष्यों को शतवर्ष से अधिक आयु नहीं, एतदर्थ कर्म के परित्याग से आत्मोपासना करनी॥ अरु जो कहे कि "तावन्ति पुरुषायुषोऽह्ना सहस्राणि भवन्ति" तिससे पुरुषकी आयु के सहस्र दिवस होवे हैं,। इसप्रकार पुरुष का आयु शतवर्ष का देखाया है। सो आयु कर्म से ही व्याप्त होताहै, तिसमें प्रमाण "कुर्व्वन्नेवेहकर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः" "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" "यावज्जीवं दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत्" यहां कर्म को करता हुआही सौवर्ष जीवने को इच्छे, जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र को होमता है, जीवन पर्यन्त दर्श पौर्णमास करके यजन करे, इत्यादिरूप कर्म मन्त्रों ने दिखाया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु "तं यज्ञपात्रैर्दहन्तीति च" तिसको यज्ञ के पात्रमें दहन करे,। अरु तीनऋण श्रुतिसे 'प्रख्यात हैं' तहां "व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्तीति" व्युत्थान करके 'गृहस्थाश्रम से उठके' पीछे भिक्षाटन को करते हैं,। इत्यादि संन्यासादिकों के प्रतिपादक जे शास्त्र हैं, सो आत्मज्ञानकी श्रुति परायण अर्थवाद है, वा अनधिकारी के अर्थ है, [इस 'वादी के' कथनको सिद्धान्ती परिहास करैहै] सो कहना बने नहीं, क्योंकि परमार्थता रूप आत्मा के विज्ञान के होते फल के अदर्शन हुये क्रिया का असंभव है 'अर्थात् "आत्मैवेदं सर्वम्" यह सर्व 'नामरूपात्मक जगत्' आत्मरूपही है, इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समस्त नामरूपात्मक जगत् को परमार्थ करके आत्मरूपताही है इस प्रकार जब एक अद्वैत आत्मा का विज्ञान होता है तब 'पूर्व अज्ञादनशा में भासता रहा जो आत्मा से इतर करके यज्ञादि क्रमोंका फल स्वर्गादि तिनका आत्मा से इतर करके दर्शन का अभाव होता है, अरु कर्म जो होता है सो स्वर्गादि फलको सत्य जानके तिनकी कामना से होता है, अरु उक्त प्रकार जब सर्व रूपसे सुशोभित एक अद्वैत आत्माके विज्ञान से स्वर्गादि दृष्टिका अभावहुआ तब तिसकी कामनासे होनहारकर्म तिनका होना तिस आत्मविज्ञानी के यहां संभवे नहीं' अरु जोतैंने कहाथा कि कर्मीको आत्माका ज्ञान होता है अरु सो आत्मज्ञान कर्म का सम्बन्धी है इत्यादिक, सो बने नहीं, क्योंकि "ह्याप्तकामं सर्वसंसारदोषवर्जितं ब्रह्माहमास्मि" पूर्णकाम सर्वसंसारके दोषोंसे रहित ब्रह्म मैं हूं, इसप्रकार 'अपनेआप' आत्मपने करके तत्त्व (ब्रह्म) के जानने से कर्मसे वा कर्त्तव्यसे अपने कुछ भी प्रयोजनको न देखनेवाले ज्ञानीको फलके अदर्शन हुये क्रिया सम्भवे नहीं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि फलके अदर्शन होने से भी विद्वान् 'वेदकी' प्रेरणाको प्राप्तहुआ होने से क्रियाको करता है, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि प्रेरणाका अविषय आत्माका ज्ञानहै ताते। अरु अपने इष्टकी प्राप्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनको देखता हुआ तिसके उपायकी इच्छावाला जो पुरुष होता है तिसको लोकबिषे शास्त्रकी प्रेरणाका विषय देखाहै । परन्तु तिसके विपरीत प्रेरणाका अविषय ब्रह्मात्माका दर्शी नहीं 'अर्थात् जिस कामनावाले पुरुषको धनादिक इष्ट वस्तुकी प्राप्तिकी, अरु रोगादिक अनिष्टकी निवृत्तिकी कामना है तिस पुरुषके अर्थ उपाय करने की शास्त्र आज्ञा करे हैं कि अमुक कर्म करने से धनादिक की प्राप्ति, अरु अमुक कर्म करने से रोगादिकों की निवृत्ति होवेगी ताते अपने प्रयोजनार्थ कर्म करो, ताते सकामी पुरुष शास्त्रोक्त कर्म प्रेरणा का विषय लोक बिषे देखा है । परन्तु तिस सकाम पुरुषसे विपरीत अकामी पुरुष कि जिसकी दृष्टिमें न तो कोई इष्टवस्तुहै न कोई अनिष्ट वस्तुहै, अरु तिसही कारणसे उसको प्रयोजनका अभाव है, क्योंकि, इष्ट अनिष्ट प्रयोजनादिक द्वैत भाव बिषे होता है सो उसको है नहीं ताते ब्रह्मआत्माके अभेद दर्शीको, इष्ट, अनिष्ट, प्रयोजन, ये सहित अपने कारण द्वैतभावरूप अविद्याके अशेष अभाव हुआ है तिस अकामी अभेददर्शी पुरुषको शास्त्रकी प्रेरणाका विषय लोकबिषे देखा नहीं " तस्य कार्यं न विद्यते " । अरु जब ब्रह्मात्मभावका दर्शी हुआभी पुरुष 'शास्त्रकी' प्रेरणा को प्राप्त होगा, तब प्रेरणाका अविषय हुआ हुआभी कोई पुरुष 'शास्त्रकी' प्रेरणाका आविषय न होवेगा । अरु ऐसा होनेसे सर्व कर्म सर्व पुरुष करके सर्वदा करने केही योग्य होवेंगे । सो अनिष्ट हैं । अरु सो 'ब्रह्मात्मदर्शी' विद्वान् किसी करकेभी प्रेरणा करनेकोशक्य नहीं । 'अर्थात् ब्रह्मात्मदर्शी ब्रह्म भूतपुरुष को किसी प्रकारकी भी प्रेरणा करने को किसीकी भी सामर्थ्य नहीं' । क्योंकि [ननु अन्यके नियोज्य (प्रेरणाके विषय) होनेके अभाव हुये भी वेदवाक्यसे विद्वान्को नियोज्य होवेगा, इसप्रकार द्वितीय पक्षकी आशंका करके, ईश्वरभावको प्राप्तहुये तिस विद्वान्को वेद की स्वरूपता के ज्ञानपूर्वक होने से अरु अपने वचनसे आपके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नियोज्यपने के हुये एक ठेकाने कर्म अरु कर्त्ताके विरोधसे विद्वान्को वेदवाक्यसे नियोज्यपना सम्भवे नहीं। इसप्रकार कहते हैं] वेदको भी 'तिस विद्वान्से' उत्पन्न होनेपनाहै ताते 'अर्थात् जिस विद्वान्के स्वरूप से वेदकी उत्पत्ति है तिसपर वेदकी आज्ञा चले नहीं'। अरु जिस करके अपने विज्ञान से उत्पन्न हुये वचनों से आप प्रेरणा को पावता नहीं, अरु [किंवा व्याकरणादिकों को तिनके कर्त्ता पाणिनि आदिक करके ज्ञेय (जानने योग्य) वस्तुके एकदेशको विषय करनेपनेके देखने से ईश्वरजन्य वेदको भी ईश्वर करके ज्ञेयवस्तुरूप एकदेशको विषय करनेकरके अल्पज्ञभावसेभी अधिक जाननेवाले विद्वान्रूप ईश्वर का नियामकपना अयुक्त है। इसप्रकार कहते हैं] बहुत अर्थका वेत्ता स्वामी भी अविवेकी भृत्यसे प्रेरणाको पावता नहीं। अरु जो ऐसा कहे कि वेदको नित्यताके हुये स्वतन्त्र होनेकरके सर्व के प्रति प्रेरणा करनेका सामर्थ्य है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि निकटही उक्त दोषहै ताते। अरु प्रेरणा से रहित विद्वान्को भी कर्म कर्त्तव्य है, तब सर्व पुरुषों करके सर्वदा विहित करनेको योग्य होवेगा यह कथन किया दोष निवारण करनेको अशक्यहीहै अरु जो [असंगी ब्रह्मरूपताके ज्ञानको अरु कर्मकी कर्त्तव्यताको शास्त्ररचित होने करके दोनों शास्त्रों के भी प्रमाणपने के अविशेषसे कदाचित् 'किसी समय' आत्मज्ञानका अरु कदाचित् 'किसी समय' कर्मका अनुष्ठान होवेगा। इसप्रकार वादी शंकाकरताहै] कहे कि सो आत्मज्ञानभी शास्त्रनेही कहाहै, अर्थात् जैसे कर्मकी कर्त्तव्यता शास्त्रने कहीहै, तैसे तिसही कर्मीको ज्ञानका भी शास्त्र करके विधान कियाहै, सो बनेनहीं, क्योंकि शास्त्रको विरुद्ध धर्मकी बोधकताका असंभवहै 'अर्थात् आप्तपुरुष वा महत्पुरुषका वाक्य शास्त्रको एकही पुरुषके अर्थ परस्परमें विरुद्ध ऐसे धर्मका उपदेश करना संभवे नहीं'। अरु एकही शास्त्रविषे अग्निकी शीतलता अरु उष्णतावत् पुण्य पापका सम्बन्धीपना अरु तिससे विपरीत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पना बोधनकरनेको शक्य नहीं । अरु [इसप्रकार प्रथम विद्वान् को प्रेरणाके अविषय अकर्त्ता आत्माका दर्शी होने से, अरु प्रयोजनके अर्थीहोनेके अभाव से कर्महै नहीं, इसप्रकार कहा । अब अविद्वान्को आप से इष्टकी प्राप्ति अरु अनिष्टकी निवृत्तिरूप प्रयोजनके अर्थी होनेके अभावहुयेभी "स्वर्गकामोयजेत" स्वर्गकी कामनावाला यज्ञकरे, इस शास्त्र करकेही प्रयोजनका अर्थीपना सिद्ध करते हैं, यह आशंका करके, स्वभावसे प्राप्त प्रयोजन के अर्थीपनेके अनुवादसे तिसका उपायमात्र शास्त्रकरके बोधनकिया है, परन्तु सो प्रयोजनका अर्थीपना सिद्धकरते नहीं । अन्यथा 'अर्थात् स्वभावसे बिना शास्त्रकरकेही प्रयोजन के अर्थीपनेको बोधन कियेहुये' शास्त्रकेज्ञानसे रहित पुरुषको तिसप्रयोजनकी अर्थिता न होवेगी, इसप्रकार कहतेहैं । यहां चिकीर्षाशब्दसे फलकी इच्छा मात्रही कहते हैं, परन्तु करने की इच्छा नहीं क्योंकि फल विषे तिस कर्त्तव्यताका अभाव है तातें] अपने इष्टके प्राप्तकरने की इच्छा अरु अनिष्टके निवृत्ति करने की इच्छा शास्त्रकरके करीहुई नहीं है, क्योंकि सर्वप्राणियोंको तिसके दर्शन से । अरु सो दोनों 'इच्छा' जब शास्त्रकृत होय, तब गोपाल (शूद्र)आदिकोंको सो न होनी चाहिये, क्योंकि उनको शास्त्रकी 'अनधिकारतासे' अज्ञातहै तातें [ननु, शास्त्र जो है सो जब कृत अरु अकृतके सम्बन्धीपने को अरु तिससे विपरीतपनेको विरुद्ध होने से बोधन करता नहीं, तब कृत अरु अकृतके असम्बन्धीपनेकोही बोधन करेगा । यह आशंकाकरके, अरु तिसको अन्य प्रमाणसे असिद्धहोनेकरके अवश्य शास्त्ररूप प्रमाणकरके बोधनकरने की योग्यता के कहने योग्यहुये, अन्य प्रमाणकरके सिद्ध तिससे विपरीत वस्तुको शास्त्र करके बोधन करनेकी योग्यता नहीं है, विरुद्धहोनेसे । इसप्रकार कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि निश्चयरूप अर्थके कियेहुये "यह किया, यह कर्त्तव्यहै" इस ज्ञानका विरोधी आत्मज्ञान, जब शास्त्र करके किया तब तिस ज्ञानकी सिद्धिके अर्थ तिससे विरुद्ध कर्त्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यताको कैसे उत्पादनकरेगा] जो आपसेही अप्राप्तवस्तु है सो शास्त्रकरके बोधनकरने के योग्यहै । अरु जब सो निश्चय के अर्थ कियेहुये, यह किया अरु यह कर्त्तव्य है, इसप्रकारके ज्ञानका जो विरोधी सो आत्मज्ञान शास्त्रने 'प्रतिपादन' किया, तब तिस 'आत्मज्ञान से' विरुद्ध कर्त्तव्यताको सो शास्त्र 'अग्निबिषे शीतलतावत् अरु सूर्यबिषे अन्धकारवत् कैसे उत्पन्न 'वा प्रतिपादन' करेगा, किन्तु किसीप्रकार भी करे नहीं । अरु जोकहै [विधिके अभावसे वेदान्तको, तैसे 'अन्य विधिशास्त्रवत्' आत्माकी बोधकतानहीं है, यह आशंकाकरके, विधिको पुरुषको कर्त्तव्यके सम्मुखकरनेरूप अर्थवाला होने से, अरु यहां आत्मज्ञानके सम्मुखकरनेअर्थ विधिरूप अर्थवादके सद्भावसे, अरु स्वरूप बोधक तत्परवाक्यके भी सद्भावसे ऐसे बने नहीं, यह उत्तर सिद्धान्ती कहेहै ।] तैसे आत्माको शास्त्रबोधन करताही नहीं, सो कहना बने नहीं, क्योंकि ८ स म आत्मेति) सो मेरा आत्मा है, । इसप्रकार जानना अरु ८ प्रज्ञानंब्रह्म) प्रज्ञान ब्रह्महै, । इसप्रकार समाप्ति से । अरु "तदात्मानमेवावेत्" "तत्त्वमसि" तिस आत्मा कोही जानना, सो तूहै, । इत्यादि वाक्योंको तिस 'आत्माके बोधन' परायणताहै ताते । अरु उत्पन्नहुये ब्रह्मात्माके विज्ञानको 'सर्वप्रकार' अबाधितता है ताते, सो आत्मज्ञान उत्पन्नहुआ नहीं वा भ्रमरूप है, इसप्रकार कहनेको शक्य नहीं । अरु जोकहै [विद्वान्को प्रयोजनकी तृष्णाके अभावसे कर्मबिषे प्रवृत्ति नहींहै, इसप्रकार कहा। तब तिसकर्म के त्यागबिषे भी प्रयोजनके अभावसे तहां 'निष्कर्मता वा आत्मविचारबिषे' भी विद्वान्की प्रवृत्ति न होवेगी । इस प्रकार वादी शंका करताहै] विद्वान्को कर्मके त्यागबिषे भी प्रयोजनके अभावकी तुल्यताहै, क्योंकि "नाकृतेनेहकश्चनेति" तिसका यहांकर्मसे अर्थनहींहै, अरु कर्मके अभावसे कोई भी अर्थनहीं है, इसगीतास्मृतिकेप्रमाणसे । अरु "यआहुर्विदित्वाब्रह्मव्युत्थानमेवमेव कुर्य्यादिति" ब्रह्मको जानके संन्यासकोही करना, । ऐसा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कहतेहैं तिनकोभी यहप्रयोजनका अभावरूपदोष तुल्यहीहै,। सो बनेनहीं [कर्मकेत्यागको व्यापाररूप होने से, अरु व्यापार को क्लेशरूपहोनेसे तिनका अनुष्ठान प्रयोजनसे अपेक्षित 'प्रयोजनकी अपेक्षावाला'होवेगा। परन्तु यह नहीं है, किन्तु क्रियाका अभावमात्र उदासीनता रूपहै, अरु तिसको स्वरूपस्थ होनेकरके स्वरूपसेही प्रयोजनता होने करके अन्य प्रयोजन का अपेक्षावान् पना नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहार करता है] क्योंकि संन्यासको केवल अक्रियमात्र रूपता है ताते। अरु अविद्यारूप निमित्तका क्रियाही प्रयोजनका भावहै वस्तुका धर्म नहीं, क्योंकि सर्व प्राणधारियों के मध्य तिस 'प्रयोजनको' देखते हैं ताते। अरु प्रयोजन की तृष्णासे प्रेरणा को प्राप्त हुये पुरुषके, वाणी, मन,शरीर प्रवृत्ति देखते हैं। 'अर्थात् पुरुषोंकी जो कर्मादिकों बिषे प्रवृत्ति है सो अविद्याजन्य प्रयोजन की प्रेरणा से है'। अरु "सोऽकामयत जाया मे स्यात्" सो मुझको जाया (स्त्री) होवे, इसप्रकार कामना करताहुआ,। अरु इनसे आदिले "उभे ह्येते एषणेति" यह दोनों 'साध्यसाधनरूप एषणाही है'। इस वाक्य से पुत्र अरु वित्तादिक है सो पांक्तरूप काम्यकर्म ही है। इसप्रकार वाजसनेयि (बृहदारण्य) ब्राह्मबिषे निश्चय कियाहै ताते। [इसप्रकार क्रिया के हेतुको देखायके तिसके अभावसेही विद्वान् को क्रियाका अभाव विनाही यत्नके स्वतः ही सिद्धहै ऐसा कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि, स्त्री, पुत्र, दैववित्त, मनुष्यवित्त, अरु कर्म, इन पांच करके साधते हैं, ऐसीजो 'यज्ञादिरूप' वैदिक प्रवृत्ति। 'अर्थात् यज्ञादि कर्म के उक्त पांच मुख्यकारक अरु यज्ञद्वारा स्वर्गादिलोक साधक'। तिनको पांक्तलक्षण कहते हैं, 'अर्थात् उक्त पाचों करके जो साध्यहोवे तिसको पांक्तलक्षण कहते हैं'। सो पांचकी संख्याके सम्बन्धसे गौणी वृत्तिकरके पंक्तिछन्द के आरोप से, अरु "पंचाक्षरापंक्तिपांक्तो यज्ञ इति श्रुतेः" पांच अक्षरवाला पंक्तिछन्द है,अरु पांक्त 'अर्थात् पंक्ति छन्द के सदृश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पांच संख्यावाला ' यज्ञहै, इस श्रुतिसे] विद्वान्को अविद्यादिक दोषके अभाव से, अविद्या काममय दोषरूप निमित्तवाली पांच रूप , वाणी , मन, अरु शरीर, इनकी प्रवृत्तिका असंभव है, अरु तिसके अभाव से तिस ' विद्वान् ' का अक्रियामात्ररूप संन्यास विनाही यत्नके सिद्धहै, परन्तु सो यागादिकोंवत् अनुष्ठेय भावरूप नहीं है, किन्तु [ऐसे उदासीनतारूप क्रिया के अभाव को पुरुषका स्वभावरूप होने करके अयत्नसे सिद्धताके हुये तिसको प्रयोजन की अपेक्षा नहीं, इसप्रकार कहते हैं] सो विद्यावत् पुरुषका धर्म कहिये स्वभाव है, ताते तिसबिषे प्रयोजन खोजने को योग्य नहीं 'अर्थात् प्रयोजन की अपेक्षा नहीं' अरु [अज्ञान के कार्य की, अज्ञानकी निवृत्ति के हुये अयत्नसेही निवृत्ति होती है, इस अर्थ बिषे दृष्टान्त को कहते हैं] जैसे अन्धकार बिषे प्रवृत्तहुये पुरुषको प्रकाशके उदय हुये जो गर्त्तकांदवकंटकादिकों बिषे पतनहै सो "किस प्रयोजनवाला होवेगा" 'अर्थात् मनुष्य को जो गर्त्तादिकों में पतनहै तिसका निमित्त अन्धकारहै, तिसके अभाव से पुनः अहेतुक पतन होवे नहीं, तैसेही अज्ञान अरु तज्जन्य प्रयोजनरूप अन्धकार के अभावहुये विद्वान्का अहेतुक कर्मरूप गर्त्तादि बिषे पतन संभवे नहीं '। इस प्रश्नके योग्य नहीं है। अरु जो ऐसा कहै, तब व्युत्थान कहिये संन्यास सो अर्थ से प्राप्त होनेकरके विधिरूप अर्थवाला नहीं है। इसप्रकार होने से जब गृहस्थाश्रम बिषे परब्रह्म का विज्ञानहुआ तब संन्यासके न करनेवाले तिस ज्ञानीकी तहांही स्थिति होवे, ताते अन्य ठैकाने गमन। 'अर्थात् संन्यासपूर्वक विचरना नहीं होवेगा' सो बने नहीं, क्योंकि गृहस्थाश्रम है सो कामना का कियाहै "एतावान् वै काम इति" इतनाही निश्चय करके कामहै, एतदर्थ यह दोनों एषणाही हैं, इस निश्चय से [इसप्रकार संन्यासरूप लिंग बिषे भी अभिमान के अभाव से तिसकी भी असिद्धिहै, यह नहीं कहा चाहिये, अरु सर्व से अभिमानरहित होने करके सर्व के सम्बन्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से रहित होनाही परमहंस नामक संन्यास का लक्षण है, लिंग (चिह्न) का धारण करना 'संन्यासका' लक्षण नहीं, क्योंकि "न लिंगं धर्म्मकारणम्" लिंग (चिह्न) धर्मका कारण नहीं, । यह स्मृतिका प्रमाण है । ताते लिंग विषयक अभिमान से भी राहेत विद्वान् को संन्यास सिद्धही है, ऐसा कहते हैं] कामनारूप निमित्तसे हुये वित्त अरु पुत्रादिक तिनके सम्बन्धके नियमका अभावमात्रही संन्यास कहते हैं । ताते अन्य ठिकाने गमन। 'अर्थात् आश्रमान्तरका वा लिंगका धारण करना'। संन्यास कहते नहीं । याते संन्यास को न करनेवाले अरु विद्याकी उत्पत्तिवाले पुरुष की गृहस्थाश्रम बिषेही स्थिति नहीं है । [तब विद्वान् को गुरुसेवादिकों बिषे भी अभिमान नहीं होवेगा, यह आशङ्का करके, यह हमको इष्टापत्ति है, ऐसा कहते हैं ।] इस कथन करके विद्वान्को गुरु शुश्रूषा अरु तपका असंभव सिद्धहुआ [ननु, तुम्हारे मतबिषे पुत्रादिकोंके सम्बन्धके नियमसे रहित अरु देह धारणके अर्थी संन्यासी को भी परिग्रह (संग्रह) की निवृतेके अर्थ भिक्षाटनादिकही है, ऐसा नियम अंगीकार होताहै । तैसे अभिमानसे शून्य गृहस्थको भी देह धारणार्थ गृहबिषेही स्थितरहो, संन्यासीपने के विशेष से नहीं । इसप्रकार वादी कहे है] यहां कईएक गृहस्थ भिक्षाटनादिकों के भयसे अरु तिरस्कारसे भय भीतहुये अपनी सूक्ष्मदृष्टिवान्ताको देखावतेहुये उत्तर कहते हैं देहधारणमात्रार्थ जो संन्यासी है तिसको भिक्षाटनादिकके नियम के देखनेसे साध्य अरु साधनसम्बन्धी दोनों एषणासे रहित अरु देहमात्रकेधारणार्थभोजन अरु आच्छादनमात्रके अर्थ उपजीविका करनेवाले गृहस्थकी भी गृहबिषे स्थिति होवो, सो बने नहीं [तहां सिद्धान्ती आय, तिस इसप्रकारके हुये गृहस्थ विद्वान्को स्त्रीका परिग्रहहै वा नहीं, इसप्रकार दो विकल्पकरके प्रथम पहिले विकल्पबिषे दूषण देखावे हैं] क्योंकि अपने गृहविशेषके परिग्रहका नियम कामनाका कियाहै ताते, इसप्रकार इसका उत्तर कहाहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु [द्वितीयपक्ष भी बने नहीं, क्योंकि स्त्रीके परिग्रहवाले को ही धनसंग्रह करने का अधिकार है, अरु स्त्री के अभाव हुये अर्थ (प्रयोजन) से द्रव्यके संग्रहकी निवृत्तिसे तिस द्रव्य संग्रह करने के अभाव हुये अन्य प्रकारसे जीवनकी असिद्धिहोने से, अर्थ से 'अर्थात् उदरपूर्णादि प्रयोजनसे'। भिक्षाटनादि करनेका नियमही सिद्ध होता है, ऐसा कहते हैं। यहां पुत्रादिकों करके संग्रह कियें द्रव्यसे जीवन होहु, 'आप द्रव्योपार्जनादि मत करो' यह शङ्का करनेको योग्य नहीं, क्योंकि उन पुत्रादिकोंकरके भी अपने अपने भावसेमानेहुये द्रव्यविषे सम्बन्धका अभावहोनेसे अपने द्रव्यको भी परके द्रव्यकी तुल्यतासे, तहां भी भिक्षुकपनेके नियमसे। यह अर्थहै] अपने गृहविशेषके परिग्रह (स्त्री) के अभावहुये शरीर धारणमात्र के किये भोजनाच्छादनार्थी गृहस्थका अपने परिग्रह विशेष (स्त्री) के अभावहुये संन्यासीपनाहीहै। अरु जो ऐसा कहे [अन्य तो संन्यासीको भी भिक्षाटनादिकों विषे "भिक्षाटनादौ सप्तागारानसङ्क्लृप्तान्" असंकल्पितसातगृहोंविषे जावे,। 'अर्थात् जो संन्यासी (सर्वसंकल्प त्यागी) है सो भिक्षार्थ जाने से पूर्व यह संकल्पन करे कि भिक्षार्थ अमुक २ के गृह जावेंगे, निःसंकल्प हुआ सात गृहमें जावे तिनमें जो भिक्षा न मिले तिसमें ही संतोषमान तिस दिवस निर्वाह करे अरु जो कदापि दैवयोगसे उन सातगृहों में से अल्पही अन्न प्राप्तहोय तो वा न होयतो सातसे अधिक गृहोंमें न जावे, अनुद्विग्नमन हुआ आत्मविचार समाधि में स्थितहोय'। इत्यादिक नियम अरुशौचादिकविषे 'गृहस्थसे' चतुर्गुण अधिकका नियम पायके निर्वाहणार्थ जैसे अंगीकार करते हैं तैसे " यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात् " यावत् जीवता रहै तावत् अग्निहोत्रकी आहुति करताहै,। इत्यादिक श्रुति वाक्यके बलसे पापके निवारणार्थ निष्काम गृहस्थ विद्वान् की भी नित्य कर्मविषे नियमसें प्रवृत्तिहोनी चाहिये। जो इसप्रकार कहतेहैं तिन के मतका अनुवाद करते हैं] जैसे संन्यासी को शरीरके धारणरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोजनवाली भिक्षाटनादिक में प्रवृत्ति बिषे अरु शौचादिकों बिषे नियम है तैसे [पूर्व मतबिषे संन्यासको न करनेवाले विद्वान् की गृह बिषेही स्थिति की शंका किया, अरु इसमत बिषे तो अग्निहोत्रादिकों का अनुष्ठानभी विद्वान्को कर्त्तव्यहै, इसप्रकार पूर्ववादी शङ्काकरेहैं] निष्कामगृहस्थ विद्वान्को भी पापके क्षयार्थ नित्य कर्मोंबिषे नियमसे प्रवृत्तिहोहु, क्योंकि "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र को करे, इत्यादि श्रुति करके कर्मोंबिषे प्रेरणा है ताते, यह [पूर्व संग्रहकी निवृत्ति के अर्थ भिक्षाटनादिकों को विषय करनेवाला, अरु शरीर के धारणरूप दृष्ट (इस लोकसम्बन्धी) प्रयोजनवाला नियम दृष्टांत करके कहा । अरु यहां तो सो भिक्षाटनादिक मत ससगृहपने आदिकको विषय करनेवाला अरुअदृष्ट (परलोकसम्बन्धी) अर्थ वाला नियम दृष्टान्तपने करके कहा । इस भेदको अब सिद्धान्ती दूषण देताहै] कथन विद्वान्को प्रेरणा का अविषय होने करके । अरु [तिस विद्वान् को सर्वका नियामक ईश्वररूप होनेसे नियम का विषयपना नहीं है, इत्यादिरूप उत्तर पूर्व कहा है, ऐसा कहते हैं] प्रेरणा की विषयताके अशक्य होनेसे पूर्व कहा है । अरु जो कहे कि इसप्रकार होनेसे "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र करे, । इत्यादिक नित्य कर्मकी विधिकी व्यर्थता होवेगी, सो कहना बने नहीं, [अविद्वान् को वो 'नित्य कर्मके' नियम की विषयता है 'अर्थात् अविद्वान् के अर्थ' नित्य कर्म करनेकी प्रेरणा विधि है, विद्वान् के अर्थ नहीं ' ताते नित्य कर्मकी नियामक श्रुति व्यर्थ नहीं' इस प्रकार कहते हैं] क्योंकि तिस विधिको अविद्वान् परत्व होने करके अर्थवान्पना है । अरु जो पूर्व [तिस पूर्वोक्त प्रतिबन्धके निवारणार्थ सिद्धान्ती तिसका अनुवाद करके दूषण देते हैं । तहां यह अर्थ है कि आचमन की विधिसे आचमन करने में प्रवृतहुये पुरुष को वांछित जो तृषा का विनाश सो होताहै, तिसको तिस प्रवृत्ति करके अन्य प्रयोजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अर्थवान्पना (प्रयोजन) नहीं, अर्थात् तिस अर्थवान्पना प्रयोजनहै, आचमन बिषे प्रवृत्तिकी कारणता नहीं है। तद्वत् जीवनार्थ भिक्षाटनादिक बिषे प्रवृत्तहुये पुरुषको जो तहां नियमहै सो भिक्षादिकों बिषे प्रवृत्ति का कारण नहीं, किन्तु तिस जीवनरूप प्रयोजनका कारणहै] शरीर धारणमात्र बिषे प्रवर्त हुये संन्यासी की प्रवृत्तिका नियमितपना कहाथा सो प्रवृत्ति का कारण नहीं, आचमनरूप कर्मबिषे प्रवर्त्त हुये पुरुषकी तृषाकी निवृत्तिवत्, तिसका अन्य प्रयोजनार्थ होना नहीं, ऐसाजानते हैं। 'अर्थात् "आचामेति" आचमनकरो,। यह श्रुति अन्तरशुद्धि आदि प्रयोजनको लखावती कर्मोंको फलवाद कहती आचमनरूप क्रिया को नियम करे है, अरु उस आचमनके करनेसे तृषाकी निवृत्तिरूप दृष्ट फल को प्रत्यक्ष देख तिस प्रयोजनसे आचमनरूप क्रियाबिषे प्रवृत्त हुये पुरुष को उस नियमित विधि वाक्यबिषे प्रवृत्त होनेसे तिसको तिसके अन्य अदृष्ट फलवान्पना न होनेसे केवल तृषाकी निवृत्तिरूप प्रयोजनरूप अर्थवान्पना है, तैसे ही "भिक्षाचर्यञ्चरन्ति" वा "भिक्षाटनादौ सत्तागारानसङ्क्लृप्तान्" इत्यादि नियमित विधि वाक्य है अरु तिनके फलवाक्य भीहै परन्तु भिक्षान्नसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्तिपूर्वक देहधारणमात्र प्रयोजनवान् अरु उसके अन्य दृश्य वा अदृश्य फलकी तृष्णा से निवृत्त अप्रयोजनवान् संन्यासी की जो उन भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्तिहै, सो प्रवृतिके प्रयोजन से नहीं, किन्तु उस विद्वान् संन्यासीकी शरीरधारणमात्र प्रयोजन सेहैं, अरु "केवलं शारीरं कर्म्म कुर्व्वन्नाप्नोति किल्बिषम्" इत्यादि स्मृति प्रमाणसे, उस शरीरधारणमात्र प्रयोजनसे, अरु सो भी "पश्यत्यन्यशरीरवत्" इत्यादि प्रमाणसे, अन्य शरीरों की यात्रादि के द्रष्टापनेसे स्वशरीर की यात्राको भी निराभिमानता से देखतसन्ते, जो भिक्षाटनादिक नियमित विधि वाक्य में प्रवृत्ति है सो किल्बिष (प्रवृत्ति) का कारण होवे नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताते उस विद्वान्की जो शरीरधारणमात्र प्रवृत्ति भासे है सो उसबिषे प्रयोजनवान् अरु अर्थवान्पने का हेतु (कारण) होवे नहीं ' ॥ अरु [प्रवृत्ति जब अन्य हेतुसे सिद्ध है तब प्रेरणासे क्या प्रयोजन है, इसहांसे दर्श अरु पौर्णमास की प्रेरणासेही अवहनन (तण्डुल) (धान्य) के कूटने बिषे नियम से प्रवृत्तिका सिद्धिके हुये, तहां भिन्न प्रेरणाका अंगीकार नहीं किया है, अरु तिस प्रेरणाके अभाव से प्रेरणाके योग्यताकी अपेक्षा नहीं । अरु ब्रह्मवेत्ता को योग्यताकी अपेक्षा के अभावहुये भी नियम विधि का असंभव नहीं है। अरु अग्निहोत्रादिकोंबिषे प्रवृत्तिको तो अन्य से सिद्ध होनेकरके तिसकी विधिसेही तहां प्रवृत्ति के कहने की योग्यतासे तिसकी सिद्धिके अर्थ प्रेरणाके कहेहुये तिस प्रेरणाको तहां अपने विषयकी अपेक्षाहै । इसप्रकार विषयताको कहते हैं] तैसे अग्निहोत्रादिकोंको अर्थ से प्राप्तहुये प्रवृत्तिके नियमितपनेका असंभव नहीं है । 'अर्थात् अग्निहोत्रादिकोंको स्वर्गादिकोंकीप्राप्ति के अर्थ होनेसे उनविषयक प्रवृत्तिके नियम होनेका असंभव नहीं'। अरु जो [नियम विधिबिषे प्रेरणाके विषयकी अपेक्षा के अभाव हुये भी तिस विधिको क्लेशरूप होनेसे प्रयोजनकी अपेक्षा कहने को योग्यहै, तिस प्रयोजनके अभाव से नियम सिद्ध होता नहीं । इसप्रकार वादी शंका करे है] अर्थसे प्राप्त प्रवृत्तिका नियम भी प्रयोजनके अभावहुये अघटितही होवेगा, सो बने नहीं, [तिसके नियमकोभी पूर्ववासना के वशसेही प्राप्तहोने से तहांभी नियम विधिका अवकाश नहीं, तिसकरके विद्वान्को प्रयोजनकी अपेक्षा होवेगी, इसप्रकार सिद्धान्ती परिहारकरेहै । यहां यह अर्थ है कि, यद्यपि नियमित वा अनियमित भिक्षाटनादिकसे जीवन सिद्ध होताहै, तथापि विद्याकी उत्पत्तिसे पूर्व विद्याकी सिद्ध्यर्थ नियमको अनुष्ठान कियाहोनेसे, तिसकी वासनाकी प्रबलता से विद्याकी उत्पत्तिके अन्तरभी विद्वान् नियमबिषेही प्रवृत्तहोवे है अनियम बिषे नहीं क्योंकि तिस अनियमकी वासना नियमकी वासना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके अत्यन्त पराभवको प्राप्तहोती है ताते, पुनः उसको जगावने को यत्नकरके साध्य होनेसे । अतएव तहां 'अनियमविषेविद्वान् प्रवृत्त होता नहीं, ताते विद्वान्का नियमभी अर्थसे सिद्धहै]क्योंकि तिसका नियम पूर्वकी प्रवृत्तिकरके सिद्धहै ताते, तिसके उल्लंघन में प्रयत्नकी गौरवता कहिये अधिकताहै ताते । अरु [इस कथन करके नियमके अनुष्ठानको पापकी निवृत्तिरूप अर्थवान्पनाभी निषेध किया, क्योंकि तिस विद्वान् को पापकी अप्राप्ति है ताते । इसप्रकार उक्तरीतिकरके संन्यासको विधिविना स्वभाव के प्राप्त हुये तिसकी कर्त्तव्यताकी विधिकोभी जानके विद्वान् "तीनोंएषणाका त्यागकरके भिक्षाटनको करतेहैं" इत्यादिक वाक्योंको अनुमोदन करतेहैं । इसप्रकार कहाहै] अर्थसे प्राप्त संन्यासके पुनः कथनसे विद्वान्को तिसकी कर्त्तव्यताका संभवहै । [अरु विधिको प्रयोजनके अभावबिषे प्रवर्त्तक होनेसे तैसे न कहाचहिये, क्योंकि प्रेषमन्त्रके उच्चारण अरु सर्वभूतों को अभयदानादिक मुख्यविधिकी प्राप्तिरूप अर्थवाला होनेकरके विधिको अर्थवान्पनाहै ताते । अरु तिस नियमकीभी व्यर्थता शंका करनेयोग्य नहीं है, क्योंकि परमहंस विद्वान्बिषे लोकसंग्रहरूप अर्थके होनेसे, अरु तिस लोकसंग्रह को तो पूर्वाभ्यासकरके मैत्रि करुणादिक वासनासे प्राप्तहोनेकरके ब्रह्मविद्याके उपदेशादिकोंकी नाईं प्रयोजन की अपेक्षासे रहितहोने से, यद्वा प्रारब्ध कर्मसे प्राप्तहुये देहेन्द्रियादिकोंके प्रतिभाससे अविचारित "यावज्जीवमाग्निहोत्रं जुहोति" यावत्जीवे तावत् अग्निहोत्रको करे, । इत्यादि श्रुतिजन्यकर्म की कर्त्तव्यताकी भ्रान्तिकेहुये सो कर्म निवृत्त होवे है वा नहीं,ताते विद्वान्को संन्यासके विधिको अर्थवान्ताका संभवहै । ऐसे विद्वान् को संन्यासके साधने करके विद्याकी अकर्मी 'संन्यासी' बिषे स्थिति सिद्ध किया । अरु तिसही हेतुसे तिसविद्याका कर्मसे असम्बन्धभी अर्थसे सिद्धकिया । अब जिज्ञासुकेभी संन्यासको साधतेहुये विद्याका कर्मीबिषे स्थितपना अरु कर्मसे सम्बन्धीपना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूरसे निषेधकिया, इसप्रकार कहतेहैं] अरु अविद्वान् मुमुक्षुकोभी संन्यास कर्त्तव्यही है । तैसे [तहां श्रुति को कहते हैं, यहां यह भावहै कि " उपरत तितिक्षुसमाहितोभूत्वा " उपराम तितिक्षु, समाहित चित्त होयके "आत्मन्येवात्मानंपश्यति" आत्मा (बुद्धि) बिषेही आत्मा को देखै , । यह श्रुतिका शेष है , तहां उपरतिशब्दकरके संन्यास कहा है] " शान्तो दान्तः " इत्यादि श्रुतिका वचन है, अरु आत्मज्ञानके साधन शम दमादिकन के अन्य आश्रम बिषे असंभव होने से । अरु " अत्याश्रमिभ्यःपरमं पवित्रं प्रोवाचसम्यगृषिसंघजुष्टमिति " अति आश्रमी के अर्थ ऋषियों के समूह करके सेवन किये परमपवित्र को कहताहुआ, इसप्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् बिषे कहाहुआ जानते हैं । अरु "न कर्म्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुरिति" न कर्मसे न प्रजासे न धनसे अमृतहोताहै, कईएक महात्मा 'उक्त तीनोंके' त्याग (संन्यास) से अमरणभाव को पावतेहुये , इसप्रकार कैवल्य उपनिषद् बिषे कहाहै । अरु " ज्ञात्वानैष्कर्म्यमाचरेत् " जानके संन्यासको करै , अरु " ब्रह्माश्रमपदे वसेत् " ब्रह्मके आश्रमरूप स्थानबिषे निवास करना, इत्यादिक स्मृति प्रमाणसे । अरु विद्या के ब्रह्मचर्य्यादिक साधनों की सम्पूर्णता करके अत्याश्रमियों (परमहंस) बिषे सम्भवसे अरु गृहस्थाश्रम बिषे तिनके असम्भवसे, ज्ञानोत्पत्ति के पीछे वा ज्ञानार्थ संन्यास की विधि है ॥ " अर्थात् गृहस्थाश्रम में ज्ञानहुये पश्चात् का जो संन्यास है सो विद्वत् संन्यास है, अरु ज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ जो संन्यास है सो विविदिशा संन्यास है, अरु गृहस्थाश्रम में ज्ञान होने पश्चात् भी संन्यासकरनेका कथनहै सो संन्यासकी स्तुति वा महिमा देखने के अर्थ, वा आग्रहवश है, क्योंकि आत्मा के परोक्षज्ञानसेही देहादिक अनात्माओं से अपनेको पृथक् उनका साक्षीमात्र हौं ऐसा मानता है। अरु देहादिकों से अपने को पृथक् जाननेसे देहादिक अनात्माश्रित अविद्यारचित वर्णाश्रम अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिनके धर्ममें प्रवृत्तहोना सम्भवे नहीं, अरु जब अपनेआप आत्मा का साक्षात् अपरोक्ष सम्यक्ज्ञान हुये पश्चात् देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्ममें अहंकारपूर्वक प्रवृत्त होना अत्यन्त असंभवहै, अरु उस यथार्थ साक्षात् आत्मानुभवि पुरुषका जो निर्यत्न किसीभी आश्रममें स्थितिहै सो लोकदृष्टिमात्र उसकी आश्रम में स्थिति भासे है नतु वो अपनी दृष्टि में तो अपने स्वरूपाश्रममेंही सुशोभित है, अरु जिन देहादि अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्म कर्म से, परोक्षज्ञानावस्थाही में पृथक् हुआ अपनेबिषे तिनका अभाव देखताहै, तब साक्षात् अपरोक्ष ज्ञानहुये पश्चात् उस विद्वान् का अनात्माश्रित वर्णाश्रम अरु तिनके धर्म में प्रवृत्त होना किसी प्रकार भी बने नहीं, अरु जबतक देहादि अनात्मामें आत्मभाव अहंबुद्धि होवेनहीं तावत् तदाश्रित वर्णाश्रमधर्म में प्रवृत्ति बने नहीं अरु साक्षात् आत्मदर्शी विद्वान् को अनात्म देहादिकोंमें आत्मभाव का सकारण अभावहै, ताते साक्षात् सम्यक् आत्मज्ञान होनेके पश्चात् उस विद्वान्की अनात्माश्रितधर्म में प्रवृत्ति कदापि बने नहीं । अरु सम्यक् ज्ञानोत्तरकालमें उस विद्वान् को यहभावनहीं, कि मैं गृहस्थहौं अब मुझको सम्यक्ज्ञान हुआहै ताते मैं ज्ञानी हौं अब मुझ ज्ञानीको संन्यास लेना योग्य है । अरु उस विद्वान्को उस गृह अरु पुत्रादिकों में ममत्व बुद्धिनहीं कि यह मेरे हैं, क्योंकि देहादि अनात्माओंमें अहमत्व अरु तत्संबन्धियों में ममत्वभावका जो होना है सो अविद्या करके होताहै सो अविद्या उस विद्वान् की अशेष अभावहुई हैं ताते उस आत्मदर्शी विद्वान्को आत्म साक्षात्कार होनेसे अविद्याके अभावहुये देहादि अनात्म अरु तत्सम्बन्धी पुत्रादि अरु आश्रमादिक अरु तदाश्रित कर्तृत्वादिकों बिषे अहंममभाव नहीं, उसको अहंमम रागद्वेषादि सर्वके अभाव होने से सर्वत्र उदासीनता लक्षणवान् समभाव हुआहै, अरु उसको केवल शरीरयात्रामात्र भिक्षान्नका ग्रहण भोजन है सो सर्वत्र, स्वपरग्राह्य अग्राह्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधिनिषेधादिकों की दृष्टि के अभावपूर्वक केवल शरीर धारण-मात्रही हैं सो जो कदापि उस विद्वान्की शरीरयात्रा लोकदृष्टि से स्वगृहमेंही है तोभी उस विद्वान् की दृष्टि में सकारण स्वपर भावके अभावसे वहांकीभी शरीरयात्रा उसको किल्बिषका कारण होती नहीं "शुद्धमपापविद्धम्" "असंगोह्ययं पुरुषः" "न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति" अरु आत्माध्यासी सर्वकाल समाधिवान् पुरुषको शरीरयात्रा भी उस रीतिसे करनीचाहिये कि जिस से निदिध्यासन समाधि में विक्षेप न होय, अरु शरीरयात्राबिषे जो समाधि से उत्थान है सोई विक्षेप है तिस विक्षेपकी जिस प्रकार अतिशीघ्र निवृत्ति होय सो कर्त्तव्य है, तहां जो विद्वान्का भिक्षाके अर्थ सात गृह जाने का नियम विधिशास्त्र ने कहाहै सो अस्तु, परन्तु सातगृहमें भ्रमणकरने में समयका व्यय अरु तदाश्रित विक्षेप अधिकहै, तिसही अपेक्षा अहंमम भावसे रहित होय विद्वान्का जो स्वगृहमेही क्षुधारूप रोगकी निवृत्तिपूर्वक शरीरधारणार्थ निर्यत्न सुखेन भिक्षान्नका ग्रहणहै सो अति अल्पकाल विक्षेपहै, अतएव अभिप्राय यहहै कि अपरोक्षआत्मदर्शी विद्वान्को शरीरयात्रामात्रकीभी प्रवृत्ति स्वपरभावसे रहित इसप्रकार करनी चाहिये कि जिसमें आत्मअभ्यास समाधिमें अतिअल्प विक्षेपहोय क्योंकि संन्यासादिकोंका करना एकान्तवनादिकोंमेंरहना, इत्यादि सर्व विक्षेपकी निवृत्तिके अर्थहै, ताते वर्ण आश्रम गृह वन इत्यादि सर्वके आग्रहको त्यागके जिस वर्ण आश्रम स्थानादिकोंमें समाधिविचार आभासमें विक्षेप न होय तहांही रहे ॥ अरु जिस वर्ण आश्रम स्थान देश आदिकों में रहने से आत्मसाक्षात्कार होय सोई सर्वोत्तम है, उससे अधिक उत्तम न कोई वर्ण है न आश्रम है न जाति है न स्थानहै न देश है, क्योंकि जिस वर्णाश्रमजाति स्थान देशबिषे यह अतिअल्पज्ञ पापी पुण्यी कर्त्ता भोक्ता स्वर्गी नरकी सुखी दुःखी, इत्यादि धर्म लक्षणवान् त्वंपदका वाच्य जीव सो "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" "आत्मविदाप्नोति परम्" इ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्यादि प्रमाणसे ब्रह्मआत्माके सम्यक् अभेदज्ञानहोनेसे ब्रह्मभाव को प्राप्तहुआ है, तिस ब्रह्मभूत विद्वान्को उससे अधिक उत्तम अरु पवित्र कौन है किन्तु कोई भी नहीं। ताते जिस वर्णाश्रम स्थान जाति में इस पुरुषको आत्मा साक्षात् होवे तिसही में सर्व वर्णाश्रमजाति स्थानादिक अनात्मा अरु तदाश्रित धर्म कर्म सर्व से अहंममभाव को त्याग तहांही शरीरयात्रा करतसंते निर्वाण होवे। अरु जो कदापि गृहस्थाश्रम जो विक्षेपालयहै तिसमें विक्षेपकी बाहुल्यतासे श्रवण मननादि साधनपूर्वक आत्म साक्षात्कार न होय तो शीघ्रही उस आश्रमसे उठ (उसको त्याग) संन्यास ले सर्वकर्मरूप विक्षेपसे रहित होय संग्रहके त्यागपूर्वक भिक्षान्नमात्रसे क्षुधारूप रोगकी निवृत्तिसे शरीर धारण करता अपने आप आत्माका श्रवण मनन निदिध्यास कर महावाक्य के अर्थज्ञानसे आत्मसाक्षात्कारसे ब्रह्म आत्माके अभेद अनुभवनिश्चयसे ब्रह्मभूत विद्वान् शरीरको प्रारब्ध भोगाय शरीरप्रारब्धके क्षयहुये आप अपने निर्विशेष निरुपाधिस्वरूपमें निर्वाणस्थितिको प्राप्त होवे॥ हे सौम्य! इससर्व कहनेका अभिप्राय यहहै कि जिस वर्णाश्रम स्थानमें विक्षेप थोड़ादेखे तहांही स्थित होय श्रवण मननादि साधनपूर्वक आत्मा साक्षात्कार रूप परमश्रेयार्थ पुरुषार्थ करे क्योंकि तहांका किया पुरुषार्थ सुखेन आत्मसाक्षात्कारका प्रापकहोताहै आगे "यथेच्छसितथाकुरु" जो इच्छाहोय तैसाकरो॥ [ननु गृहस्थकोभी। "ब्रह्मचर्यमेवयद्रात्रौरत्यासंयुज्यंते" इत्यादि प्रमाणसे,। ऋतुकाल 'आदिक नियमित' कालमात्रबिषे 'भार्या' गमनरूप ब्रह्मचर्य अरु कदाचित् ध्यानकाल बिषे एकाकीपना 'वा चित्तकी एकाग्रतापना' संभवेहै, यह आशंकाकरके तिसको अपूर्ण अरु तिससे ज्ञानकी असिद्धि होनेसे, अरु ध्यानकालबिषे पत्नी के सम्बन्धकी अप्राप्ति होनेसे तिसकी विधिकी व्यर्थता है ताते,यहकथन बनेनहीं,ऐसा कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, इस करके आत्मज्ञानको कर्म बिषे स्थितपना अरु कर्मसम्बन्धीपना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहींहै] अरु इसप्रकार सम्पूर्ण न हुआ जो साधन सो किसीभी अर्थ के साधने निमित्त परिपूर्ण (समर्थ) होता नहीं । अरु जो ["यत्तु कर्म बृहतीसहस्रलक्षणं प्रस्तुत्यात्मज्ञानं प्रारभ्यत" बृहतीसहस्ररूप कर्मको प्रसंगबिषे प्राप्तकरके आत्मज्ञानका आरंभ करिये है, इत्यादिक वाक्यों से आत्मज्ञानको कर्मकासम्बन्धीपना कहाहै, । तहां कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि, तैसे पूर्वोक्त कर्मका सम्बन्धी जो ज्ञान सो संसाररूप फलवाला अन्यही है, अरु सो पूर्वही मुमुक्षुने समाप्त किया है, ताते सो परमात्मज्ञान नहीं] विज्ञान बिषे उपयोगी गृहस्थाश्रम के कर्म हैं तिनका देवता 'वा देवभावकी' प्राप्तिरूप संसार को विषय करनेवालाही परमफल समाप्त कियाहै । [ननु, पूर्वोक्तही जो परमात्मा का ज्ञानहै, सो कर्मका सम्बन्धीही है, यह आशंका करके, तिसकर्म सम्बन्धी ज्ञानको क्रियाकारकरूप फलवाला होनेकरके तिसकी समाप्तिसे, अरु परमात्मज्ञानको मोक्षरूप फलवाला होने करके सो 'कर्मसम्बन्धीज्ञान' परमात्मज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं] अरु जो कर्मीकोही परमात्माका ज्ञान होवे, तो संसारकोही विषयकरने वालेफलकी समाप्ति न होवेगी 'अर्थात् कर्मसम्बन्धी ज्ञानका जो देवतादि भावकी प्राप्तिरूप फलहै सो नामरूपक्रियात्मक होने से अपनेको संसारान्तरही लखावे है, ताते उसको संसारको विषय करने वाला फल कहते हैं तिसकी समाप्ति कर्मसम्बन्धी ज्ञानसे होवे नहीं' अरु जो कहे कि सो संसार परमात्मज्ञानके साधनरूप पृथिवी अरु अग्निआदि देवताकी उपासनारूप ज्ञानका फलहै, अंगीरूप परमात्मज्ञान का फल नहीं, एतदर्थ तिस परमात्मज्ञान को मुक्तिरूप फलवान्पनेका विरोध नहीं है, सो बने नहीं क्योंकि परमात्मज्ञानको तिस संसाररूप फलके विरोधी आत्मवस्तु को विषय करनेवाला ज्ञान अमृतभावका साधन है । अरु जिसकरके गुणरूप फलके सम्बन्ध हुये ज्ञानको सर्व विशेष रहित आत्मवस्तुको विषय करनेपना प्राप्त होतानहीं, सो अनिष्टहै, क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाजसनेयी ब्राह्मण बिषे "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्" जहां तो इसको सर्व आत्माही होताहुआ, । इसप्रकार अधिकार करके विद्वान् को क्रिया कारक फलादिक सर्व व्यवहार के निषेध से। अरु तिसके विपरीत अविद्वान् को "यत्राहिद्वैतमिव भवति तदितर इतरम्पश्यति" जहां द्वैतवत् होताहै तहांअन्य अन्यको 'अन्यको अन्य' देखताहै,। इसप्रकार कहके क्रिया कारक फलरूप संसार कोही देखाया होने से। तैसे यहांभी हिरण्यगर्भादि देवतारूप भावकी प्राप्तिरूप संसारको विषय करनेवाला जो क्षुधादि धर्मवान् वस्तुरूप फलहै, तिस फलको समाप्त करके केवल सर्वात्मवस्तुको विषय करनेवाले ज्ञानको अमृतभावके अर्थ कहताहौं, इसप्रकार प्रवृत्त होते हैं। अरु ऋणरूप जो प्रतिबन्ध है सो अविद्वान्के अर्थही है, क्योंकि "सोऽयंमनुष्यलोकः पुत्रेणैवजेयो" सो यह मनुष्यलोक पुत्रकरकेही जेय (प्राप्त, सम्पादन) करने योग्य है,। इत्यादिरूप तीनलोककी 'प्राप्तिके' साधन के नियमकी श्रुतिसे। [ऐसे ज्ञानको कर्मका सम्बन्धीपना कहते हैं "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र को करे, इत्यादि श्रुतिके 'विधिवाक्य' प्रमाण करके कर्मका त्याग संभवे नहीं, इसप्रकार जो पूर्ववादी ने कहाथा, तहां इस उक्त श्रुतिका अविद्वान् को विषय करनेपना कहा 'अर्थात् उक्त कर्म बिषे प्रेरक जे श्रुतिवाक्य हैं सो अनात्माभिमानी अविद्वान् के अर्थ है'। अब ऋणत्रयी की श्रुतिकी गतिको कहे हैं। यहां यह अर्थहै कि, नहीं दूरकिये ऋणको मनुष्यादि लोकोंकी प्राप्तिके प्रति प्रतिबन्धक होनेसे उनलोकों के अर्थी अविद्वान्कोही ऋणका दूर करना कर्त्तव्यहै 'अर्थात् जो सकामी मनुष्यादि लोककी प्राप्तिकी कामना वालेपुरुषहैं सो जो कदापि ऋणमोचक कर्मोंको करके अपने ऋण से छूटते नहीं तिनको वो अपने ऋणही अभीष्टलोक की प्राप्ति में प्रतिबंधक (विघ्न करनेवाले) होते हैं, ताते ऋणत्रय के दूर करनेकी आज्ञाकरनेवाली श्रुतिकी सकामी लोकार्थी अविद्वानों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रति ऋण दूरकरने की आज्ञाहै, अरु जिस अकामी पुरुषकी लोकादि सर्व एषणा अशेष निर्मूल हुई हैं तिस विद्वान्, मुमुक्षुके अर्थ नहीं, क्योंकि उन ऋणों को मोक्षके प्रति अप्रतिबन्धकता है ताते] 'अर्थात् उक्त ऋण मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्ति में प्रतिबन्धक नहीं, क्योंकि जो अपने आप स्वस्वरूप का सम्यक् ज्ञान है सोई मोक्ष है अरु अपने आप नित्य प्राप्तरूप आत्माकी विस्मृतिरूप अप्राप्ति है 'कंठगत मणिकी विस्मृतिवत्' अरु तिसका यथार्थ साक्षात्कार है सोई उसकी प्राप्तिहै 'कंठगत मणि की सम्यक् स्मृतिवत्' ताते अपने आप आत्माकी जो सम्यक् ज्ञानसे यथार्थ साक्षात्कार रूपा प्राप्ति है सोई उसकी प्राप्ति है, कुछ अपने से भिन्न देशकालके परिच्छेदवाली वस्तुकी प्राप्तिवत् अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं क्योंकि अपनेआप आत्मा होने से नित्य प्राप्त है, ताते जो अन्य सर्व लोकादि कामना के अशेष अभावसे आत्मसाक्षात्कार की कामना है सो अन्य कामनावत् कामना नहीं क्योंकि लोकादि अन्य कामनाका विषय अविद्यात्मक संसार है ताते सो कामना बन्धका हेतुहै, अरु तिससे विपरीत सकारण संसारके विरोधी आत्मा विषयक कामनाहै तिसका विषय आत्मसाक्षात्काररूपहै तातेसो कामना मोक्षका हेतुहै ताते। अरु आत्मा की जो प्राप्तिहै सो देशकालसे परिच्छेदको पाइ आत्मासे अन्यअनात्मरूप अप्राप्तकर्म साध्य वस्तुकी प्राप्तिवत्, प्राप्ति नहीं क्योंकि सर्वका अपने आपआत्माहोने से नित्य प्राप्तहीहै। अतएव अविद्वान् सकामी पुरुषके अभीष्ट लोकादिकों की प्राप्ति में ऋणत्रय का न दूरकरना प्रतिबंधकहै ताते उनको अपने इष्ट लोकादिकोंकी प्राप्ति में प्रतिबंधक जे ऋणत्रय तिसके दूरकरने के अर्थ श्रुति उक्त उपाय करना योग्य है, अरु उन अविद्वानों के अर्थही ऋण दूरकरने की वेदकी विधिरूप प्रेरणाहै आत्मकामी मुमुक्षुके अर्थ नहीं, ॥ अरु "किंप्रजया करिष्याम" प्रजासे हम क्या करेंगे, । इत्यादिरूपश्रुति वाक्य करके आत्मारूप लोकके अर्थी विद्वान् के अर्थ ऋणरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिबंधका अभाव देखायाहै "तथैतद्ऋस्मवै तद्विद्वांस आहुर्ऋषयः कावषेया इत्यादि" "एतद्ब्रह्मैवैतत् पूर्व्वे विद्वांसोऽग्निहोत्रं न जुहवाञ्चकुरिति, "कौषीतकीनाम्" इसप्रसिद्ध तिस वस्तुको विद्वान् जो कावषेय नामवाला ऋषिहै सो, किंस प्रयोजनार्थ हम अध्ययनको करें, इत्यादि । अरु। यहब्रह्महीहै इसकेजाननेवाले पूर्व के विद्वान् अग्निहोत्रको नहीं होमतेहुये, यहकौषितकीउपनिषद्का वाक्य है, सो विद्वान् के ऋणरूप प्रतिबंधके अभावमें प्रमाणहै। अरु जो कहे कि, जब ऐसेहीहै तब अविद्वान्को ऋणके न अभाव किये संन्यासका असंभव होवेगा, सो बनेनहीं [गृहस्थकोही ऋण की प्रतिबन्धकताहै, क्योंकि तिस 'गृहस्थ' हीको तिस 'ऋण' के निराकरणकरनेके अधिकार होने से, ताते गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रम बिषेही मुमुक्षु हुये पुरुषको संन्यास संभवे है, इसप्रकार सिद्धान्ती 'वादी के विकल्पका' परिहार करे है। यद्यपि यज्ञोपवीत 'संस्कारसे' धारणके अनन्तरही ऋणके निवारण बिषे उसको अधिकार संभवे है, एतदर्थ "गृहस्थाश्रमसे पूर्व" इसप्रकार कहाहै, तथापि विविदिशासंन्यासबिषे अधीतवेद कोही अधिकारहै, ताते अधीतवेदको "गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति से पूर्व, यह कहा ऐसे जानना] क्योंकि गृहस्थाश्रमकी प्राप्तिसे पूर्व ब्रह्मचर्य्याश्रमबिषेही मुमुक्षुको ऋणी होने के असंभवसे संन्यास संभवे है। [ननु जन्मको पाया हुआ ब्राह्मण तीनसे ऋणवान् होताहै। ब्रह्मचर्य्यसे ऋषिनके अर्थ, यज्ञसे देवनके अर्थ, प्रजासे पितरोंके अर्थ, इस वाक्यकरके उत्पन्नहुये मात्रको ऋणवान्पना प्रतीत होताहै, यह आशंका करके ऋणवान्पने की उक्तिका साक्षात्कुछभीप्रयोजन नहीं है, किन्तु ब्रह्मचर्य्यादिकोंकी कर्त्तव्यता का प्रकट करना प्रयोजन है। अरु अधिकारके अर्थ अनारूढ़हुआ पुरुष, सो 'ऋणका निवारण' करनेको समर्थ होवेनहीं, क्योंकि अन्यको प्राप्तहुये मात्रको तिसका सामर्थ्य नहीं ताते । किंवा उक्त वाक्यबिषे ब्राह्मण के ग्रहणसे क्षत्रियादिकों को ऋणके अभावका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रसंग प्राप्त होताहै । ब्राह्मणपदको द्विजाति (त्रिवर्ण) की उप-
लक्षणताकेहुये अधिकारपने की उपलक्षणताही योग्य है । याते
'जायमान' उत्पन्नहुआ,। यह जो पदहै सो अधिकार को लखा-
वता है । इसप्रकार उत्पन्न हुआ अधिकारी सम्पादित होता है।
'अर्थात् ब्राह्मण जो है सो ऋणत्रय के देनेका मुख्य अधिकारी
है, अरु अधिकारीसे अपना ऋणपायके 'ऋषि' पितृ, देवता, यह
तीनों सन्तुष्ट होते हैं 'जैसे लोकबिषे अपने ऋणी से ऋणको पाय
सन्तुष्ट होते हैं तैसे,। परन्तु यद्यपि यज्ञोपवीत संस्कार होने से
वो ब्राह्मण ब्राह्मणभाव को पाय ऋणदेने के अधिकारी ब्रह्मचर्य
गृहस्थ इन आश्रम में स्थितहोय ऋण निवारण करताहै, तथापि
उस ऋणदाता अधिकारी की उत्पत्तिमात्रसे ही अपने ऋण के
प्राप्तहोनेकी सत्य आशापूर्वक जो ऋषि पितृ देवता इनके तुष्ट हर्ष
को"जायमान"उत्पन्नहुआ,। यह पद वा शब्द प्रकट करेहै,॥
यह तिस वाक्यका अर्थ है । एतदर्थ तिस अधिकार से पूर्व ऋण
का सम्बन्धहै नहीं] अरु जब अधिकारबिषे अनारूढ़ हुआभी पुरुष
ऋणी होवे, तब सर्वको ही ऋणीपना होना चाहिये, यह अनिष्ट
प्राप्तहोवेगा । [यहां अनिष्ट शब्दका अर्थ यह है कि ब्रह्मचारी को
भी ऋणीभावके हुये ब्रह्मचर्य बिषेही मृतक हुये नैष्ठिक ब्रह्मचारी
को परलोक की प्राप्तिका प्रतिबन्धक होवेगा, यह अनिष्ट है
क्योंकि " अष्टाशीतिसहस्र " अठासीहजार,। यहां से आरम्भ
करके " तदेवगुरुवासिनामित्यादि " सोई गुरुकुलवासी को होता
है,। इत्यादि वाक्य से पुराणोंबिषे लोकप्राप्तिका कथन है ताते]
गृहस्थाश्रमको [केवल गृहस्थाश्रमसें पूर्वही संन्यास की सिद्धि है
ऐसा नहीं,किन्तु विधिके बलसे गृहस्थको भी सो है,ऐसा कहते
हैं,यहां यह भावहै कि ऋणकी श्रुतिसे संन्यास की विधिका वि-
रोध नहीं,क्योंकि तिस श्रुतिको शुभकर्म के अर्थवाद(स्तुति)
परत्वमात्र होनेकरके स्वार्थबिषे तात्पर्यका अभावहै ताते।अन्यथा
सोशुभकर्मोंसेही शुद्धकरियेहै, ताते तिसकेवादोंकोशुभकर्मरूपता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है,ऐसे शुभकर्ममात्रके निषेध के कथन से ब्रह्मचर्यादिकों के भी अनुष्ठानके अभावका प्रसंग होताहै ताते] प्राप्तहुये पुरुष को भी "गृहाद्वनीभूत्वा प्रव्रजेत् यदि वेतरथा ब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेद्गृहाद्वा वनाद्वेति" गृहसे वानप्रस्थ होयके गमनकरे,वा जब अन्य प्रकार(तीव्र वैराग्य) होय तब ब्रह्मचर्यसेही गमनकरे,गृहसे वा वनसे गमनकरे। 'अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में से जिस किसी आश्रममें तीव्र वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता उदय होवे तिसही आश्रम से संन्यासपूर्वक आत्म अभ्यास समाधिके अर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य समीप वा विविक्त (एकान्त) देश वनको गमन करे, मुमुक्षुता उदय होने के पश्चात् क्रमसाध्य आश्रमान्तर करके पश्चात् गमन न करे क्योंकि मुमुक्षुता उदय होने के पश्चात् जो क्रमशः आश्रमान्तर है सो उस मुमुक्षुको ब्रह्मआत्मा की अभेद एकतारूप से आत्माके श्रवण मनन निदिध्यासनादिकों में विघ्न विक्षेपकारी प्रतिबन्धकहै ताते। अरु जो वैराग्यपूर्वक मुमुक्षुता न प्रकट होय तो मुख्यकरकेब्राह्मणको ब्रह्मचर्य से प्रारभ्य संन्यासपर्यन्त क्रमसाध्य आश्रमोंको प्राप्त होय चतुर्थाश्रममें श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्यसे तत्त्वमस्यादि महावाक्यार्थ से आत्मा को श्रवण कर पुनः भृगुवत् एकान्तमें जाय विचारयुक्तिशास्त्रइनकरकेसंशय समाधानपूर्वक आत्माका मनन करे पश्चात् उस श्रवणमनन किये आत्मामें निर्विकल्पादि आत्मलक्षण को धारणकर निर्विकल्प समाधिरूप निदिध्यासन करे, इसप्रकार निदिध्यासन की दृढ़ता से आत्मसाक्षात्कार स्थिति पाय आश्रमातीत होय यावत् शरीर प्रारब्ध अवशेष रहे तावत् आप अपने साक्षिरूपसे द्रष्टाहुआ शरीरको प्रारब्ध भोगाय तिन दोनों को पर्यवसान (समाप्ति) को प्राप्तहुये आप अपने स्वरूपमें जैसा दृश्य दर्शन द्रष्टाआदि त्रिपुटीरूपादि सर्वउपाधि विशेष विशेषण विशेष्य आदि भावसे रहित जैसा निर्विशेष अस्तिमात्र सत्तासामान्य अद्वैतचिन्मात्रहै सोई है,॥ इसप्रकार आत्मज्ञानप्राप्तिके उपाय श्रवणादि साधनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का साधक वा साधन होने से 'सर्व एषणाका अभावरूप ज्ञानक्षणवाला' संन्यास अंगीकार करते हैं । अरु "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" यावत् जीवे तावत् अग्निहोत्र को करे, । इत्यादि श्रुतियों की अविद्वान् अरु अमुमुक्षु 'अरु सकाम' पुरुष बिषे कृतार्थता है । अरु छांदोग्यउपनिषद् बिषे केतनीक शाखावालों को द्वादशरात्र अग्निहोत्र को हवन करके तिसके पश्चात् तिसका परित्याग करना सुनते हैं । [ननु, संन्यासकी श्रुति भी अनधिकारी बिषे संकोचको प्राप्तहुई है, इसप्रकार वादी कहता है] अरु जो कहे अनधिकारी के अर्थ संन्यास कहा है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि तिनकी विधि के "पृथगेवोत्सन्नाग्निर्निरग्निको, । इत्यादि" नष्टअग्निवाला वा अग्निके ग्रहणसे राहित (निरग्निः), इत्यादि श्रुतिबिषे, अरुसब स्मृतियोंबिषे भिन्न श्रवणसे, तिनको अविशेषकरके आश्रमका भेद अरु समुच्चय प्रसिद्ध है। अरु [इसप्रकार विविदिषा संन्यासको साधके अब पूर्वासिद्धकिये विद्वत्संन्यासबिषे जो शंकाहै तिसका अनुवाद करते हैं । यहां यह निकर्ष है । कि पूर्व विद्वान्की गृह बिषेही स्थिति हो, इस शंकाका निषेध किया, अरु यहां तो गृह बिषे वा वनबिषे स्थितिहोउ, इस प्रकारकी अनियमित शंकाका निषेध करनेको सो शंका अधिक यथेष्टाचरणके निवारणार्थ पुनः अनुवाद करते हैं] जो कहै विद्वान्को अर्थसे प्राप्त संन्यास है, एतदर्थ शास्त्रके अर्थके अभावके हुये गृहबिषे वा वनबिषे स्थित होनेवाले विद्वान् को विशेष नहीं है । [यद्यपि अर्थसे प्राप्त संन्यासकेभी पुनः कथनसे यहां विद्वान् के संन्यासको भी शास्त्रार्थ करके युक्तपना कहाही है तथापि तिस के उक्त अशास्त्रार्थ करके युक्तपने को अंगीकार करके भी कहते हैं] सो कथन असत्य है, क्योंकि संन्यासकोही अर्थसे प्राप्तहोने करके विद्वान् की अन्य ठिकाने (गृहस्थाश्रम बिषे) स्थिति न होवेगी, अरु अन्य ठिकाने जो स्थिति है तिसको कामना अरु कर्मकी करी हुई कहते हैं, अरु तिन कामादिकोंका अभावमात्रही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संन्यास है, इसप्रकार पूर्व कथन किया होने से तिस संन्यास को अनुष्ठेयपना नहीं है, एतदर्थ सो संन्यास कामादिकों का कियाभी नहीं है। अरु यथेष्टाचरण तो विद्वान्को अत्यन्त अप्राप्यहै, क्योंकि तिस 'यथेष्टाचरण' को अत्यन्त मूढ़का विषय करके जानते हैं ताते 'अर्थात् शास्त्र मर्य्यादारहित जो यथेष्टाचरण है सो केवल अत्यन्त मूढ़ पुरुषों बिषेही पाया जाता है' अरु जिस करके आत्मवेत्ता पुरुषको शास्त्रविहित कर्म्माचरण भी अत्यन्त क्लेशकारी देखते हैं 'अर्थात् उस आत्मवेत्ता आत्माभ्यासी समाधिवाले पुरुषको अन्तःकरणकी वृत्तिका' बाह्य व्यवहारके सम्मुख होना अतिही अनिष्ट है क्योंकि स्वरूपाकार वृत्तिका जो बाह्यविषय विषय है जिनका ऐसा जो क्रियात्मक व्यवहार तदाकारके परिणाम होना सोई संसारका कारण होनेसे उस विद्वान् को वो पातकरूप अरु बन्धनरूप प्रतिबन्ध का कारण है "पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्यपा शम्" अतएव जिस आत्मनिष्ठ विद्वान्को शास्त्रविहित कर्माचरण भी अतिअनिष्ट क्लेशरूप हैं, तिस विद्वान्का शास्त्रअविहित यथेष्टाचरणमें प्रवृत्त होना कदापि संभवे नहीं 'अरु तिसही करके उसको अप्राप्त है' अर्थात् (तस्य कार्य्यं न विद्यते) इत्यादि स्मृति प्रमाण से साक्षात् आत्मनिष्ठ पुरुष को क्रियामें प्रवृत्त होनेकी विधि प्रेरणा प्राप्त नहीं, तब अत्यन्त अविवेकरूप निमित्त से होनहार जे यथेष्टाचरण शास्त्रमर्य्यादा से बाह्य इच्छाके अनुसार आचरण (वर्त्तना) अतिअनिष्ट हुआ अप्राप्त होय, तिसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं। अरु उन्माद अरु तिमिर दृष्टि करके 'जैसे रज्जु सर्पाकार से' जिस प्रकार की जानी जो वस्तु, सो तिस उन्माद अरु तिमिर दृष्टि के दूर होने से तैसीही होती भासती नहीं, क्योंकि तिस वस्तुबिषे उन्माद अरु तिमिर दृष्टिरूप निमित्त का किया अन्यथापना होताहै स्वरूपसेही नहीं। ताते 'सम्यक्' आत्म-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेत्ताको संन्यास से 'एषणात्रय के सम्यक् प्रकार त्यागसे' भिन्न यथेष्टाचरण नहीं 'हे भगवन्! यहां कहा है कि आत्मवेत्ता को संन्यास से भिन्न यथेष्टाचरण नहीं, सो इस कहने के ध्वन्यर्थ से सिद्ध होता है कि उस विद्वान् का संन्यासमात्र यथेष्टाचरण है तिससे भिन्न नहीं' हे प्रियदर्शन! यह तुमको भ्रान्ति से अर्थ का अनर्थ भासता है, विद्वान् का जो संन्यास है सो अनेक श्रुति शास्त्रादिकों करके प्रतिपाद्य है "प्रव्राजिनो लोकमिच्छन्तः प्रव्रजन्ति" "तेहस्म पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्य्यञ्चरन्ति" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से आत्मवेत्ता विद्वान् का संन्यास स्वप्न में भी यथेष्टाचरण रूप विचारणीय नहीं, वो सर्वथा श्रुति स्मृतियों के प्रमाण विधि वाक्यों से प्रकाशित है, अरु जो किसी कोई अवधूत परमहंसों में यथेष्टाचरण भासता भी है तो सो भी। "इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया, विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथाकुरु" इत्यादि स्मृतियोंके प्रमाणसे शास्त्रों कही है, अरु तिसकरके वो ब्रह्मभूत आत्मानुभवी विद्वान् लेप को पावता नहीं, परन्तु सो भी कचित् है 'तातें विद्वान् स्वतन्त्र आत्मवेत्ता संन्यासी को संन्यास में भी, कि जिसमें उसके अर्थ विधिनिषेध नहीं, यथेष्टाचरण का अभावहै'॥ अरु 'अपनेआप अक्रिय आत्मस्वरूप के यथार्थ साक्षात्कारके हुये' अन्य कर्त्तव्य भी नहीं, यह सिद्ध हुआ॥ अरु जो कहा कि विद्या अरु अविद्या को जो 'पुरुष' साथही अनुष्ठान करने योग्य जानताहै, इस वचन करके विद्या अरु अविद्या के समुच्चय के श्रवण से विद्वान्को भी तिस कारण से कामादिक होवेंगे, अरु तिस निमित्तवाली इच्छा के अनुसार चेष्टा होवेगी, तहां कहते हैं, इस वचनका विद्वान्के विद्याके साथही अविद्या भी वर्त्ततीहै, यह अर्थ नहीं, किन्तु काल के भेदसे स्थितहुई भी विद्या अरु अविद्या एकही पुरुष विषे सम्बन्धको पावेहै, यह अर्थ है। जैसे शुक्तिका (सीपि) विषे एकही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषको रजत अरु सीपिका ज्ञान होवे है तैसे। अरु जिसकरके "दूर-मेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञात्वा,इति" दूर वर्त्तमान ये विपरीत भिन्न प्रयोजनवालीहैं। जो अविद्याहै सो विद्या है यह जानके,। इसप्रकार कठवल्लीविषे कहा है। ताते विद्याके होते अविद्याका संभव भी नहीं है" तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व" तपकरके ब्रह्मके जानने की जिज्ञासा (इच्छा) कर,। इत्यादि श्रुतियोंसे तपादिक विद्याकी उत्पत्तिका साधन अरु गुरुकी उपासनादिक जो कर्म हैं सो अविद्यारूप होनेकरके अविद्या कहते हैं। तिस कर्मकरके विद्याको उत्पन्नकरके कालमारूप मृत्युको तरता है, ताते निष्कामहुआ 'पुरुष' ब्रह्मविद्या करके अमृत भावको पावताहै, इस अर्थको लखावतीहुई श्रुति "अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" अविद्यासे मृत्युको तरके विद्याकरके अमृत को पावताहै,। इसप्रकार कहती हैं॥ अरु जो कहा कि "कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ꣳ समाः" यहां कर्म को करता हुआ सौ १०० वर्ष पर्यन्तजीवे वा जीवनेकी इच्छाकरे,। इत्यादिश्रुति करके पुरुषका आयु सर्वकर्मसेही व्याप्तहै, सो अविद्वान्का विषय होनेकरके समाधान किया, अन्यथा असम्भव है ताते॥ [यहां असम्भव शब्दका विरोधसे विद्याके साथही असम्भव से वा कथन करि श्रुति स्मृतिके असम्भव से। यह अर्थ है] अरु जो कहा कि; पूर्वोक्त प्रमाणको भी तुल्य होने से कर्म से अविरुद्ध आत्मज्ञान है, सो सविशेष अरु निर्विशेष होनेकरके निषेध कियाहै। [यहां यह अर्थहै कि निर्विशेष आत्माके ज्ञानको कर्त्ता आदिक कारकों का उपमर्दन (नाश) होनेसे विरुद्धहै ताते।' अर्थात् निर्विशेष आत्मा के सम्यक् ज्ञानसे अविद्या अरु तिसका कार्य अहंकारादि कारक अरु कर्म इन सर्व का नाश होता है ताते सम्यक् आत्मज्ञान अरु अहं आदि कारकों का तेज तिमिरवत् परस्पर में विरोधहै'। अरु "उपमर्दे" उपमर्दके हुये,। इस सूत्रकरके अविरोधपना निषिद्ध कियाहै] सो अग्रिम इसके व्याख्यान विषे देखावेंगे। [ताते अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्रिम कहनेकी विद्याका अकर्मीविषे स्थितहोनेपना, कर्म से असम्बन्धीपना, अरु केवल आत्माको विषय करनेपना, । सिद्धहुआ। इसप्रकार पूर्वोक्त कर्म से अरु उपासना से शुद्ध चित्तवाले, अरु तिसही करके साधन चतुष्टय सम्पन्नहुये मुमुक्षुको केवल आत्मस्वरूपसे स्थितिरूप मोक्षकी सिद्धिके अर्थ केवल आत्मविद्या का आरंभ करतेहैं। इसप्रकार अवतरणिकारूप प्रसंग समाप्त करतेहैं॥] एतदर्थ केवल निष्क्रिय ब्रह्म अरु आत्माकी एकता की एकतारूप विद्या के 'वा एकता प्रतिपादक विद्या के' देखावने के अर्थ अग्रिम प्रसंग प्रारंभ करते हैं॥ हे सौम्य! "आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीत्" [प्रसिद्ध यह एक आत्माही होताहुआ; अर्थात् प्रसिद्ध यह, जो कथन किया नामरूप क्रियाके भेदसे पृथक् जगत् है 'अर्थात् नामरूप क्रियारूप भेदवाला जो जगत् है' सो जगत् की उत्पत्तिसे पूर्व व्याप्तहोने से वा भक्षण करनेसे वा निरन्तर रहने से, सर्व से पर (उत्कृष्ट) सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् क्षुधा पिपासादि सर्व संसारके धर्मसे रहित नित्यशुद्ध नित्यबुद्ध नित्यमुक्त स्वभाववाला, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत, अभय, अद्वैतरूप, एक आत्माही होता हुआ॥ क्या अबभी जगत् की उत्पत्तिके अनन्तर सोई एक नहीं है। तहां कहते हैं कि, अब भी सोई एक नहीं है॥ तब कैसे होता हुआ, तहां कहते हैं। [यद्यपि जगत् का तीनकाल बिषे भी आत्मा से भिन्न करके अभाव है, तथापि तैसा बोधन करने से शिष्यको प्रत्यक्षादि प्रमाण के विरोध की आशंका से उक्त आत्मतत्त्व 'ज्योंका त्यों' बुद्धि बिषे आरूढ़ होवेगा नहीं, एतदर्थ उत्पत्तिसे पूर्वथा, इसप्रकार शिष्य के चित्तको अनुसरके कहते हैं। सो भी जगत्के नामरूपकी प्रकटताके अभाव की अपेक्षा करकेही कहते हैं, परन्तु अबहीं 'सृष्टिकालबिषे' आत्माके केवल भावके अभावके प्रसंग से नहीं। इसप्रकार उत्तर कहते हैं] यद्यपि अब भी सोई एक है, तथापि तहां विशेष कहिये विलक्षणताहै। उत्पत्ति से पूर्व प्रकट नामरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के भेदवाला आत्मरूप "आत्मैक आसीत्" एक आत्माही था, इस, शब्द अरु वृत्तिका, विषय जगत् था और अब भी प्रकट नाम रूपके भेदवाला होने से अनेकशब्द अरु वृत्तिका विषय, अरु एक आत्माथा, इस शब्दका अरु वृत्तिका अविषय जगत्है, यह विशेष भेद है। [उक्त अर्थको दृष्टान्तसे स्पष्ट करतेहैं, यहां आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति के बलसे सर्वज्ञादिक शब्द करके लखाया सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप अखंड एकरस आत्मा सिद्ध किया। तिसही अर्थकी दृढ़ता के अर्थ एक, इत्यादिक पदहैं। तहां एक, शब्दसे अन्य आत्माका (सजातीय भेदका) अभाव कहाहै'अर्थात् एक इस शब्द करके आत्माविषे सजातीय भेदका अभाव देखाया' अरु एव, इस शब्द करके वृक्षादिकों बिषे स्वरूप से एकता के हुयेभी शाखादिकों से नानारूपवत् एकआत्मा की नानारूपताका (स्वगत भेदका) अभाव कहते हैं। 'अर्थात् जैसे एकही वृक्ष वा शरीराबिषे शाखा आदिकों का वा हस्तपादादिकों का किया स्वगतभेदहै, तैसे एक निराकार निरावयव आत्मा बिषे स्वगतभेद भी नहीं'॥ जैसे जलसे भिन्न फेन, वा झाग, नामरूपकी प्रकटतावाले होवे हैं। तहां जब जल इस एक शब्द अरु वृत्तिका विषयही सो फेन जब जलसे भिन्न नाम रूपके भेद से प्रकट होवे है, तब जल अरु फेन ऐसे अनेक शब्द अरु वृत्तियोंका विषय होताहै, तहां एक शब्द अरु वृत्तिका विषय जल ही होताहै, फेन नहीं। 'अर्थात् जल जो एकहै तिस बिषे जब लहर झाग बुद्बुदादि होतेहैं तब वो जलसे भिन्न अनेक शब्द अरु अनेकवृत्तियोंकाविषय अनेकनामरूपवाले अल्पक्षण स्थायीपने आदिक धर्मों करके युक्त अपने कारण जलके नामरूप गुण धर्मसे पृथक्ही नामरूप गुण धर्मवाले होतेहैं, परन्तु वास्तव करके उन तरंग झाग बुद्बुद आदिकों की जलसे भिन्न पृथक् सत्ताका अभाव होनेसे उन लहर झाग बुद्बुदादि विशेष बिषेभी एक जलही है जलसत्तासे इतर लहर झाग बुद्बुद नहीं, अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकजलही लहर झाग बुद्बुदादि विशेषनाम रूपगुण धर्मसे सुशोभित होता है तद्वत् ' "नान्यत्किञ्चन मिषत्, सईक्षत" अन्य कुछ भी विशेष न था, ईक्षण को करताहुआ, अर्थात् यह सर्व एक अद्वैत आत्माही था जिससे इतर [सजातीय अरु स्वगत इनदोनों भेदके निराकरण रूप अर्थवाले होने करके , एक, अरु एव, ये दोनों पद हैं, इस अभिप्राय से अब विजातीय भेदके निराकरणरूप अर्थवाला होनेकरके " नान्यत्किञ्चन " अन्य कुछ भी न था, इस पदका व्याख्यान करते हैं] व्यापारवाला [जड़ प्रपंचकी कारणरूप जड़ माया वर्त्ततीहै, तब विजातीयभेदका निषेध कैसे संभवे, 'इस शङ्कापर ' यहां कहतेहैं, यहां यह अर्थ है कि मायाके विद्यमानहुयेभी सृष्टिके पूर्व व्यापारके अभावसे व्यापार वाली अन्यवस्तुका अभाव संभवे है।] औ व्यापाररहित [ननु,व्यापाररहित तिस मायारूप अन्य वस्तुकेभी होते आत्म शब्दकरके उक्त तिस आत्माकी अखण्ड एकरस रूपता कैसे सिद्धहोवेगी, इस शङ्कापर कहतेहैं] ' अर्थात् सृष्टिसे पूर्व एक अद्वैत अखंड एकरस आत्मासे इतर व्यापारवाला (कार्य) अरु व्यापार रहित (कारण) अन्य कुछभी ' नथा जैसे सांख्यवादियों के मतमें आत्मा का पक्षपाती स्वतन्त्र प्रधान है, अरु जैसे वैशेषिक मतवादियोंके मतमें परमाणुहैं, तैसे यहां हमारे मतविषे आत्मासे इतर रञ्चकमात्र कुछभी वस्तु नहीं है, किन्तु एक आत्माही था, यह अभिप्रायहै। सो आत्मा सर्वत्र अपने सद्भावके होनेसे एकरूप हुआ ईक्षण करता हुआ ' अर्थात् ईक्षण काहिये अवलोकन करताहुआ ननुजगत्की उत्पत्तिसे पूर्व तिसको अकार्य कारणरूप होनेसे कैसा वा क्या ईक्षण करताहुआ ' अर्थात् जगदुत्पत्तिके पूर्वजब आत्मा इतर कार्य कारण रञ्चकमात्रभी न था तब वो निराकार निरवयव आत्मा कैसे अरु क्या अवलोकन करताहुआ, किन्तु तिस कालमें उसका अवलोकन करना अघटित है ' तहां यह दोष नहीं है क्योंकि वो आत्मा सर्वज्ञ स्वभाववाला है ताते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, इत्यादि" हस्तपादसे रहित हुआ चलताहै अरु ग्रहण करताहै, । इत्यादि रूप मन्त्रका प्रमाण है॥ अर्थात् वो सर्वभेदरहित एक अद्वैत सर्वशक्तिमान् आत्मा जो अपने बिषे गमनरूप क्रियाका साधन पादरूप अवयव को न रखताहुआ विनाही पादरूप करणके गमन करता है, अरु तैसेही विना हस्तरूप करण अवयव के ग्रहण करता है, तैसेही वो विनाही चक्षुरूप बाह्य करण अरु मनरूप अन्तःकरणके ईक्षण, काहिये अवलोकन वा इच्छा करता है। अरु वो आत्मा अविनाशीहै अतएव उसकी सर्वशक्तिभी अविनाशीहै, सुषुप्तिअवस्थामें चक्षु मनआदि सर्व करण अपने कारण अविद्या में लय होते हैं तब तहां उन करणोंके अभावको अरु एक कारण अविद्याके भाव को विनाही करणोंके देखनेवाला सर्वका द्रष्टा आत्मा „ घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः„ इस न्यायप्रमाण दृश्यरूप सुषुप्तिसे भिन्नही है। ऐसा जो अलुप्त सर्वशक्तिमान् एक अद्वैत आत्मा सो नाम रूप कार्य कारणात्मक सर्व जगदुत्पत्तिके पूर्व अपनी अचिन्त्य अलुप्त सर्व शक्तिमत्ताको देखताहुआ, इसप्रकार उस आत्माबिषे ईक्षण शब्द के उभय अर्थ अवलोकन करना, अरु इच्छा करना युक्त अरु निर्दोषहीहै। 'सो किस अभिप्रायसे ईक्षण (अवलोकन) करता हुआ तहां कहते हैं' मैं प्राणियोंके कर्मफलके उपभोग स्थानापन्न जलादिक' भोग्य सामग्रीको सृजों (लोकानुसृजा इति) (लोकों को निश्चयकरके सृजों ऐसे) अर्थात् इस समस्तनाम रूप क्रियात्मक जगत्से पूर्व जो सर्वका कारण एक अद्वैत आत्माथा सो, मैं इन सर्व प्राणियोंके पापपुण्यरूप सञ्चित कर्मों के फल भोगार्थ प्रथम उपभोगके स्थानरूप जलादिकलोकों को सृजों, इसप्रकार विचारके (स इमाँल्लोकानसृजत) (सो इन लोकों को सृजता हुआ) अर्थात् सो परमात्मा उक्तप्रकार ईक्षण करके प्राणियों के कर्म भोगार्थ इन अग्रिम कहने के लोकों को सृजता हुआ॥ सौम्य! यह अन्तका श्रुतिवाक्य अग्रिम कहने के मन्त्रके आदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स इमाल्लँलोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आपः २ ॥

में है, परन्तु इस उक्त मन्त्र के अन्तका जो "सईक्षत लोकानुसृजा इति" यह वाक्यहै तिसके साथ उसका सम्बन्ध है, एतदर्थ उस वाक्यकी इस मन्त्रके साथ व्याख्या किया है १ ॥

हे सौम्य, [यहां ईक्षणपूर्वक सृष्टिके कथनका प्रयोजन सृष्टिकर्त्ता के चैतन्यभाव की सिद्धिही है, इस अभिप्राय से तिसप्रकार के तक्षा (शिल्पि आदिक) चेतनभावके उदाहरण करके कहते हैं] जैसे यहां बुद्धिमान् शिल्पि आदिक, इसप्रकार के गृहादिकनको मैं सृजों ऐसे ईक्षणको करके तिस ईक्षण के अनन्तर गृहादिकन को सृजताहै तैसे ॥ ननु पाषाणादिक उपादान सहित जो शिल्पि आदिक होते हैं सो गृहादिकन को सृजता है, परन्तु उपादानसे रहित जो आत्मा सो कैसे लोकनको सृजता है, तहां यह दोष नहीं है, क्योंकि जलस्थानी अरूप अरु आत्मा एक था, इस शब्द के वाच्य उपादानरूप अव्याकृति बिषे प्रकट हुये फेन स्थानी जगत् का संभव है, ताते आत्मभूत नामरूप का उपादानहुआ सर्वज्ञ आत्मा जगत्को रचताहुआ यह विरुद्ध नहीं है अथवा जैसे विज्ञानवाला मायावी आपते भिन्न उपादान से रहितहुआ आपकोही आपके भीतर होने करके आकाशबिषे रचते हुयेवत् रचताहै, तैसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् महामायावाला देव अपनेकोही अपनेभीतर होनेकरके जगत्रूपसे रचता है यह अत्यन्तयुक्तहै। अरु इसप्रकार होनेसे कार्य अरु कारण दोनोंके असद्वादादि पक्ष प्राप्तहोते नहीं, अरु 'वो जो कदापि प्राप्तहुये होवें तो भी निषेधकिये जाते हैं ॥ प्र० ॥ सो आत्मा किन लोकों को सृजता हुआ, तहां कहते हैं ८ अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरोया अ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तात्ता आपः ? ॥ २ ॥ ' अंभमरीचियां मर अरु आप इनको ? अर्थात् सो आत्मा अंभ मरीचियां मर अरु आप इनको सृजता हुआ अर्थात् [लोकनको भौतिक होनेसे अरु ब्रह्मांडके अन्तर्वर्ती होनेसे भूतोंकी सृष्टि अरु तिनके पंचीकरणद्वारा ब्रह्मांडकी सृष्टि के सृजनेके अनन्तर तिन 'पंचभूतों के कार्यरूप' लोकनकी सृष्टि है 'तिनके अनन्तर उन लोकों परकी प्रजारूपा सृष्टि है' इसप्रकार गुणोपसंहार न्यायको आश्रयकरके कहते हैं। अरु भिन्नशाखागत अर्थोंका जो एक ठेकाने कथन, तिसको गुणोपसंहार न्याय कहते हैं।] आकाशादिकों के क्रमसे ब्रह्मांडको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजताहुआ। तहां जलादिकों को आपही श्रुति व्याख्यान करेहै, यह जो जल शब्दका वाच्य लोक है सो ' स्वर्ग लोकसे पर अरु आश्रय स्वर्ग लोकरूपहै, अन्तरिक्ष मरीचियां, पृथिवी सो मर है, जो अधः सो आप कहिये है ; अर्थात् स्वर्ग लोकसे पर जो महर् आदि लोकहैं, अरु जो तिस जलरूप लोकका आश्रय स्वर्गलोकरूप है, क्योंकि तिन महरादि लोकोंबिषे वृष्टि जलके विद्यमान होनेसे 'अर्थात् इस पृथिवीलोकमें वृष्टि होनेवाला जल महर्लोकादिकोंमें रहताहै वहां से पृथिवीपर वृष्टि होती है ऐसा नहीं समझना क्योंकि पृथिवीपर वर्षा होनेवाला पृथिवी परका जल सूर्यकी किरणोंकरके आकर्षितहुआ ऊर्ध्वको जाताहै परन्तु वो जल पृथिवीके विशेष आकर्षणमें होनेकरके पृथिवीसे एकयोजन की अवधि पर्यन्त ऊर्ध्व को जाताहै पुनः वृष्टिरूप से पृथिवीपर आवता ताते, । अरु जो यहां कहा है कि महरादि लोकों बिषे वृष्टि जल विद्यमान होनेसे स्वर्ग लोकसे पर है तिसको इस प्रकार जानना कि जैसे पृथिवीपर वर्षा होती है अरु तिसकरके यथेष्ट बहु अन्न होने से प्रजा प्रसन्नता से जीवती है ताते पृथिवी लोकसे पर (श्रेष्ठ) जलहै। तैसे महरादि लोकोंबिषे भी जलको परत्व जानना' ॥ अरु जो स्वर्गलोक से नीचे अन्तरिक्ष है ' अर्थात् सूर्याख्य स्वर्गलोक से नीचे अरु पृथिवी के ऊपर मध्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का जो आकाशहै तिसको अन्तरिक्ष कहते हैं' सो मरीचिया हैं। यहां सूर्य के किरणों के वाची मरीची शब्द से लखाया जो अन्तरिक्ष सो एकहुआ भी अनेक स्थानों के भेदवाला होने से बहुवचनका भागी है। वा सूर्यके किरणरूप अनेक मरीचियों के सम्बन्धसे सो अन्तरिक्ष लोक बहुवचन का भागी है॥ 'अथवा सूर्य अरु पृथिवी इनके मध्य में चन्द्र गोलादिक बहुत से गोलहैं तिनपर प्रजाके होनेसे अरु सूर्य पृथिवी के अन्तरिक्ष में होने से उनको अन्तरिक्षलोक बहुवचन से कहते हैं'॥ अरु जिस बिषे भूत (प्राणी) मरते हैं ऐसी जो पृथिवी सो मर है। अरु जो पृथिवी के नीचे लोकहैं वे आप नाम से कहेजाते हैं। [ननु, उक्त लोकन को पंचभूतों से सम्बन्धकी तुल्यता के होने से अन्य भूतनसे पृथिवी आदिकों के ऊपर के लोक देखते हैं। अरु 'उक्त' अन्तरिक्ष (आकाश) को मरीचि (सूर्य के किरण) से भिन्न अन्य मेघादिरूप पदार्थों से भी सम्बन्ध से, तिससे पृथिवी को। अरु तिससे नीचे के लोकन को, मरणकी प्राप्ति से भिन्न गमनादिक अन्यक्रियाकेही सम्बन्धसे सो अधोलोक जाननेको योग्यहैं इसप्रकार वादी शंका करे है] यद्यपि इन लोकन को पंचमहाभूतोंका सम्बन्धीपना है, तथापि [तिन लोकों बिषे जलादिकोंकीही बाहुल्यताहै तातें तिन जलादिकनसेही वे लोक जानने को योग्यहैं "प्राचुर्येण व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात्" बाहुल्यता करके तिनके नामसे कथन होतेहैं,। इस न्यायसे॥ 'अर्थात् जिस लोकबिषे जिस तत्त्व वा पदार्थकी बाहुल्यता होती है सो उसहीं नामसे कहाजाता है' इसप्रकार परिहार करते हैं] तिनमें जलादिकों की बाहुल्यता से वे जलादिक नामसेही "अम्भोमरीची मरमापो" अंभ मरीचि मर अरु जल,। ऐसे कहते हैं २।

हे सौम्य, [यहां 'आत्मा वा इदमग्र आसीत्' आगे आत्माहीं था, इस वाक्य करके उक्त आत्माके ज्ञानसे संसारी 'पुरुष जोहै सो मुक्त करनेको योग्य होनेकरके 'तिनके अर्थ' कहनेको इच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालानुसृजा इति । सो-ऽद्भ्य एवपुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ३ ॥

है ताते, अरु असंसारी को मोक्षका असंभवहै ताते । अरु संसार जो है सो संसारके आश्रयलोक अरु तिस के उपाधिभूत लिंग शरीर अरु तिनके अभिमानी देव अरु तिनके अधिष्ठान स्थूल शरीर, अरु संसाररूप क्षुधादि धर्म अरु तिस संसार के अभिमानी तिनके भोक्ता विना नहीं संभवे है, एतदर्थ तिसकी सृष्टि को "अयमावसथ" यह आवसथ (स्थान) है यहां पर्यन्त जे ग्रन्थहैं, तिन करके क्रम से कहते हुये संसारके अधिष्ठानरूप लोकनकी सृष्टि को करके, लोकपाल देवताओंकी सृष्टि के ईक्षणद्वारा समष्टि स्थूलशरीरकी, अरु समष्टि लिंग शरीरकी अरु तिनके अभिमानी देवताओं की सृष्टि के कहनेका आरंभ करते हैं ।] सर्व प्राणियों के कर्म फल अरु तिसके उपादान अरु साधनरूप पूर्वोक्त चारो लोकों को सृजके ८स ईक्षते मेनुलोका लोकपालान्नु सृजा इति> ८सो यह तो लोक, लोकपालोंको निश्चय करके सृजो इसप्रकार ईक्षण करताहुआ ; अर्थात् सो ईश्वर पुनःही यह तो जलादिक मुझकरके रचेहुये लोक अपने पालन करता से राहित हुये नाश को प्राप्त होवेंगे, अतएव इनके रक्षणार्थ मैं लोकपालों को निश्चय करके सृजूं इसप्रकार ईक्षण करताहुआ । [समष्टि लिंग शरीर अरु तिन लोकपालनके अभिमानियों को, विराट् के अवयवपने से जन्य होनेते तिनकी सृष्टि के अर्थ विराट् की सृष्टि को कहते हैं । यहां यह भाव है कि, यद्यपि "अण्डमुत्पाद्याम्भः प्रभृतीन् लोकानसृजतेति" ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके जलादिक लोकनको सृजता हुआ, इस वाक्य करके भाष्यकार स्वामी ने लोकनकी उत्पत्ति से पूर्वही ब्रह्माण्डोत्पत्ति कही है, तथापि तिसही उत्पत्ति का लोकपालनकी सृष्टि के अर्थ यहां अनुवाद करते हैं याते विरोध नहीं] इसप्रकार ईक्षणको करके ८सोऽद्भ्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम्। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिकेनिरभिद्येतांनासिकाभ्याम्प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां । अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां। कर्णाभ्यां श्रोत्रं । श्रोत्रादिशस्त्वङ्निरभिद्यत । त्वचो लोमानि । लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो । हृदयं निरभिद्यत । हृदयान्मनो । मनसश्चन्द्रमा । नाभिर्निरभिद्यत । नाभ्याअपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नं निरभिद्यत । शिश्नाद्रेतो रेतसः आपः ४॥

इति प्रथमखण्डः ॥

एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत्' ८सो जल से पुरुष को ग्रहण करके मूर्च्छित करताहुआ' अर्थात् सो जल उपलक्षण करके जलप्रधान पंचभूतों से युक्त जलादिक चार लोकन को सृजताहुआ। तिनलोकोंसेही पुरुषके आकार करके युक्त शिर हस्त पाद आदिक अवयवोंवाले विराट् 'नामवाले' पुरुषको ग्रहण करके, पृथिवी से ग्रहण किये मृत्तिकाके पिण्डको कुलालवत् मूर्च्छित करताहुआ 'अर्थात् भूतों के अवयवों से अपने अवयवों की योजना कर मिश्रित करताहुआ' ३ ॥

हे सौम्य, [उक्तप्रकार विराट् की उत्पत्ति को कहके अब तिस के अवयवों से लोकपालोंकी उत्पत्ति को कहते हैं] ८तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डम्' ८तिसके अर्थ सर्व ओरसे तपताहुआ, तिस सर्वओर से तप्तका मुख भेद को प्राप्त हुआ, जैसे अण्ड' अर्थात् तिस पुरुषाकारवाले पिण्डके अर्थ उद्देश करके 'अर्थात् प्रथम जब परमात्माने पांचो तत्त्वों का पुरुषाकार एक विराट्नामक मृत्तिकाकी प्रतिमावत् एक कलूबूत बनाया तिससमय उस विराट्नाम पिण्ड का आकार पुरुषाकारवत् शिर हस्त पादादि आकारवाला था परन्तु उससमय उसके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुखादिक इन्द्रियों के गोलकरूप छिद्र न थे तिनकी रचनाके उद्देशसे' वो परमात्मा सर्वओरसे तपको तपताहुआ, अर्थात् तिससे सङ्कल्प वा 'विचार' वा ज्ञान, को करताहुआ "तस्य ज्ञानमयंतपः" तिसका ज्ञानमय तप है,। तिस रूप तपसे सर्वओरसे तप्त (ज्ञान को प्राप्त) ये पिण्डका मुख 'मुखाकारवाला छिद्र' भेदको पावता हुआ कहिये होताहुआ, जैसे पक्षीका अण्डा भेदको पावताहै तैसे इसप्रकार तिस भेदको प्राप्त हुये (मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां। नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतां। अक्षिभ्याञ्चक्षुश्चक्षुषआदित्यःकर्णौ निरभिद्येतां। कर्णाभ्यां श्रोत्रं। श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत। त्वचोलोमानि। लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो। हृदयं निरभिद्यत। हृदयान्मनो। मनसश्चन्द्रमा। नाभिर्निरभिद्यत। नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः। शिश्नंनिरभिद्यत। शिश्नाद्रेतो रेतसःआपः) 'मुखसे वाक् वाक्से अग्नि दो नासिका भेदको प्राप्त होतीहुई, तिस नासिकासे प्राण प्राणसे वायु होता हुआ। दोनों नेत्र भेदको पावतेहुये नेत्रसे चक्षु चक्षुसे सूर्य होता हुआ। दो कर्ण भेदको पावतेहुये कर्णोंसे श्रोत्र श्रोत्रसे दिशा होती हुई। त्वचा भेद को पावतीहुई त्वचा से लोम लोम से ओषधि वनस्पति होतीहुई। हृदय भेदको पावताहुआ हृदयसे मन मन से चन्द्रमा होताहुआ। नाभि भेदको पावतीहुई नाभिसे अपान आपनसे मृत्यु होताहुआ। शिश्न भेदको पावताहुआ शिश्न से रेत रेतसे जल होताहुआ, अर्थात् मुखसे वाक् इन्द्रियरूप करण होताहुआ, अरु तिस वाक्से वाक्का अधिष्ठान अग्नि लोकपाल रूप देवता होताहुआ, तैसेही दोनों नासिकाके छिद्र भेदको पावतेहुये तिस नासिकारूपसे प्राण गोलकरूप 'वा गन्धविषयका ग्राहकरूप' करण होताहुआ। 'यहां प्राण शब्दकरके प्राणवृत्ति सहित घ्राणेन्द्रिय को जानना'। तैसेही तिस प्राणसे वायुरूप देवता होताहुआ। तैसे दोनों नेत्रके छिद्ररूप गोल भेदको पावता हुआ तिस नेत्रसे चक्षुरूप करण होताहुआ तिस चक्षुसे सूर्यरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयः खण्डः ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् । ता एनमब्रुवन्नायतनंनः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति १ । ५ ॥

देवता होताहुआ । तैसेही दोनों कर्णरूप छिद्र भेदको पावतेहुये तिन कर्णोंसे श्रोत्रेन्द्रिय रूप करण शब्दविषयका ग्राहक होताहुआ तिस श्रोत्रसे दिशारूप देवता होतीहुई । तैसेही त्वचारूप गोलक भेद को पावताहुआ तिस त्वचासे रोम होतेहुये रोम से ओषधि अरु वनस्पतियां होतीहुई । 'यहां ओषधि अरु वनस्पति शब्दकरके तिनका अधिष्ठाता देवता कहते हैं' । तैसेही हृदय कमलरूप मांसपिंड विशेष गोलक भेदको पावताहुआ तिस हृदय से मनरूप अन्तःकरण होताहुआ, तिस मनसे चन्द्रमारूप देवता होताहुआ । तैसेही सर्व प्राणों के रहने का स्थान नाभि भेद को पावताहुआ तिस नाभिसे अपान (पायु, गुद इन्द्रिय) होताहुआ तिस अपान से मृत्युरूप देवता होताहुआ । तैसेही शिश्न 'उपस्थ इन्द्रियका गोलकस्थान' भेदको पावताहुआ तिस शिश्न से रेत 'उपस्थ इन्द्रिय' होताहुआ । 'यहां रेत शब्दकरके शिश्नेन्द्रिय स्थानवाला रेतका सम्बंधी उपस्थ इन्द्रिय कहते हैं । तिसको रेतके त्यागरूप अर्थवाला होने से रेतका सम्बंधीपना है' तिस रेतसे जल 'अर्थात् प्रजापतिरूप देवता' होताहुआ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायगतप्रथमखण्डभाषाभाष्यःसमाप्तः ॥

अथप्रथमाध्यायगतद्वितीयखण्डभाषाभाष्यःप्रारभ्यते॥

हे सौम्य, [इसप्रकार समष्टि इन्द्रियों की अरु तिनके अभिमानी देवताओं की उत्पत्ति कहके, अब तिन देवताओं के भोगने के योग्य अल्पव्यष्टि देहकी सृष्टि को अरु तिन बिषे देवता के भोगार्थ व्यष्टिरूपसे प्रवेशको कहने को इच्छाकरतेहुये तिनकी उपोद्घातरूप होनेकरके क्षुधा तृषाकी सृष्टि को देखावते हैं]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ता एता देवताः सृष्टाः) सो (यह अग्न्यादि देवता सृजेहुये) अर्थात् सो यह अग्निआदिक देवता लोकपालपने करके कल्पना कर ईश्वर करके सृजेहुये [क्षुधा आदिककी सृष्टिविषे उपयोगी होनेकरके इन देवतों के स्वरूप के अज्ञानपूर्वक जो ब्रह्माण्डरूप संसारविषे पतनहै अरु आसक्तपना है अरु तन्मात्रापनेके 'तिस रूपताके' अभिमान से बद्धपना है तिसको कहते हैं] अविद्या काम अरु कर्म करके उत्पन्न हुये दुःख की अधिकतावाले अरु तीव्ररोग जरा अरु मृत्युरूप ग्राहवाले अरु अनादि अनन्त अपार निराश्रय अरु विषय अरु इन्द्रियन के सम्बन्ध से जनित सुखके लेशरूप विश्रामवाले अरु पंच इन्द्रियन के विषय अरु विषयों की तृष्णारूप वायुके किये क्षोभते उठी ऊँची ऊँची सहस्रसः अनर्थरूपा लहरियोंवाले, अरु महारौरवादिक अनेक नरकगत हाहा आदिक शब्दों के पुकार से प्रकट हुये महाशब्दवाले, अरु सत्य आर्जव दान दया अहिंसा दम शम धैर्य आदिक दैवीसम्पदा आत्माके गुणरूप मार्गके भोजनसे पूर्णज्ञान रूप नौकावाले, अरु सत्संग अरु संन्यासरूप ज्ञानमय नौका की प्रवृत्तिके हेतु मार्गवाले, अरु मोक्षरूप पार तीरवाले, ऐसे (अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतं) (इस बड़े समुद्रविषे पतनहोते हुये) अर्थात् इस उक्तप्रकारके संसाररूप महासागरमें गिरते हुये। ताते अग्न्यादि देवताओं की प्राप्तिरूप वो जो ज्ञानकर्म के समुच्चय के अनुष्ठानकी फलरूप गति व्याख्यान किया सो भी संसार के दुःख के निवृत्ति के अर्थ से परिपूर्ण नहीं है। यह यहां कहने को इच्छित अर्थ है अरु जिसकरके ऐसे है तिसही से इसप्रकार जानके सर्व संसार दुःखकी निवृत्ति के अर्थ अपना अरु सर्वभूतों का आत्मा जो अग्रिम कहने के विशेषणवाला, औ „ उत्पत्तिसे पूर्व यह एकही आत्माथा,, इत्यादिक वाक्य करके जगत्की उत्पत्ति स्थिति अरु संहारका हेतु होनेकरके प्रसंगविषे प्राप्तहुआहै, सो परब्रह्म जानने को योग्यहै। (ननु „ यह ज्ञान) मार्ग है, यह कर्म है, यह ब्रह्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, यह सत्य है,, इसप्रकार आरम्भ करके „उक्थ (प्राण) ऐसे प्रसिद्ध है,, इत्यादि वाक्य से कर्मसम्बन्धी सगुण ब्रह्म आत्मा के ज्ञानकोही कथन कियाहै ताते तिसही को मोक्षकी साधनता है, उक्त केवल आत्मज्ञानमात्र को नहीं। यह आशंका करके " एष पन्था " यह (ज्ञान) मार्ग है,। ब्रह्मात्माका ज्ञानही कहा है, कर्म समुच्चित ज्ञान नहीं, क्योंकि तिस कर्मसमुच्चित ज्ञानको उक्त वाक्य करके संसारकी हेतुताके जानने से सत्यता के असंभव से ऐसे कहते हैं] जिसकरके कर्मसहित प्राणके ज्ञानको संसाररूप फलवान्पनाहै ताते "एष पन्था" यह (ज्ञान) मार्ग है,। „यह कर्म है, यह ब्रह्महै, यह सत्यहै,, इस श्रुति बिषे " एष " यह,। पदकरके जो यह परब्रह्म औ आत्माका ज्ञान है सोई कहाहै, क्योंकि [" तमेवविदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" तिसही को जानके मृत्युको लंघताहै, मोक्षके अर्थ अन्यमार्ग नहीं,। इस वाक्य से भी केवल आत्माके ज्ञानसे अन्य मार्ग के निषेध से भी उक्त ज्ञानरूपही मार्गहै, इसप्रकार कहते हैं। यहां यह भावहै कि "एष पन्था" यह मार्गहै,। इसप्रकार ब्रह्मात्मा के ज्ञानका आरम्भकरके मध्यबिषे प्राणकी उपासनाका कथन तो प्राणकी उपसनासे चित्तकी एकाग्रताके हुये अरु तिसके फल (विवेकरूप दोषदृष्टि) से वैराग्यके हुये " एष पन्था " यह मार्ग है,। ऐसे प्रारंभ किया मुख्य ज्ञान कहने को शक्य है, इस अभिप्रायसे है। यद्यपि इस वाक्यसे व्याख्यानके अवसरबिषे कर्ममार्ग भी मार्गशब्द का अर्थ होनेकरके कहा है, तथापि सो कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग का उपाय होनेकरके कहाहै, प्रधानतासे नहीं कहा, यह अभिप्रायहै] "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय " मोक्षके अर्थ अन्य मार्ग नहीं,। इस मन्त्रवर्ण से ॥ तिस स्थान करण अरु देवताकी उत्पत्तिके बीजरूप प्रथम उत्पन्न किये विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको ८ तमशनापिपाशाभ्यामन्ववार्जत् । ताएनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि । यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ९ तिसको क्षुधा तृषा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताभ्योगामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति २। ६॥

करके योजना करताहुआ, इसकेताईं कहतेहुये हमारे अर्थ स्थान को निर्माण करो जिस बिषे समर्थहुये हम अन्नको भक्षण करें; अर्थात् तिस विराट् पुरुषमय पिंडरूप आत्माको क्षुधा तृषाकरके योजना करताहुआ, तिस कारण रूप विराट् पुरुष को क्षुधादिक दोषयुक्त होनेसे तिसके कार्यरूप देवताको क्षुधादिक दोषवान्पनाहै, ताते वे देवता क्षुधा तृषाकरके पीड़ित हुये इस सृजनेवाले परमेश्वररूप पितामह के अर्थ कहतेहुये कि हमारे अर्थ स्थान (शरीर) को निर्माण करो कि जिस स्थानबिषे समर्थ हुये हम अन्न को भक्षण करें १। ५॥

हे सौम्य! उक्तप्रकार जब तिन 'देवताओं' ने कहा तब ईश्वर 'ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति' तिन के अर्थ गौ 'ल्यावता' वा देखावताहुआ, वे कहते हुये यह हमारे अर्थ पूर्ण नहीं है; अर्थात् तिन देवताओं के अर्थ गौ 'गौकी आकृति करके युक्त पिंड' को तिन जल 'आदि तत्त्वों' से ही पिंडबिषे ग्रहण करके (मूर्छित दृढ़) होनेकरके परस्पर अवयवोंकी योजना से सृजिके ल्यावता वा देखावता हुआ। तब वो देवता पुनः तिस गौकी आकृतिवाले पिंडको देखते कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्न भक्षणको निश्चय करके पूर्ण कहिये 'योग्य वा समर्थ' नहीं, क्योंकि इस गौ शरीर में ऊपर के दंतका अभाव होने से दूर्वादि तृणके मूलको उखाड़नेबिषे असमर्थताहै ताते॥ गौके निषेध कियेहुये 'अर्थात् देवताओंने गौका शरीर ग्रहण करनेबिषे निषेध किया' तब तैसे ही 'ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति' तिनके अर्थ अश्वको ल्यावता वा देखावता हुआ, वे कहतेहुये कि हमारे अर्थ निश्चय करके पूर्ण नहीं है; अर्थात् जब देवताओंने गौ का निषेध किया तब तिनके अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताभ्यः पुरुषमानयत् । ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम् । ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ३ । ७ ॥

उभय ओर दन्तवाला होनेकरके उक्त दोषके अभाव से अश्वको ल्यावता कहिये देखावता हुआ । तब वो 'देवता' कहतेहुये कि यह पिंड हमारे अर्थ स्थित होयके अन्नके भक्षण को निश्चय करके पूर्ण नहीं है । इसप्रकार [यहां गौ अरु अश्वके ग्रहण को सर्व तिर्यग्देहके उपलक्षक होने से इस अभिप्राय से सर्वपद कहाहै । यह अर्थ है] सर्वके निषेध कियेहुये २ । ६ ॥

हे सौम्य ! उक्त प्रकार जब देवताओं ने सर्वका निषेध किया तब ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति ? ' तिनके अर्थ पुरुष को ल्यावता वा देखावता हुआ, वो निश्चय करके सुकृत है ऐसे कहते हुये ? अर्थात् तिन देवता के अर्थ स्वयोनि रूप 'विराट् पुरुषके देहके सजातीय' पुरुष 'रूप पिंड को देखावता हुआ' वो देवता अपनी योनिरूप पुरुषको देखके खेद रहितहुये यह शरीर निश्चय करके सुकृत है इसप्रकार कहते हुये । पुरुषो वाव सुकृतम्, ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति ? पुरुषही सुकृत है, तिनको कहता हुआ यथायोग्य स्थान विषे प्रवेशकरो ? अर्थात् तिस करके पुरुषही सर्व पुण्यकर्म रूप सुकृत का हेतु होनेसे यह सुकृत है, वा परमेश्वर ने अपनेही स्वरूप को अपनी माया करके किया होने से तिस 'पुरुष शरीर को सुकृत कहते हैं' पश्चात् ईश्वर जिस करके [इसप्रकार व्यष्टि देहकी सृष्टिको कहके, अब तिनबिषे करणों के अरु देवतों के व्यष्टिरूप प्रवेशको कहते हैं] सर्व अपनी योनिरूप शरीरोंबिषे रुचि करते हैं, एतदर्थ यह शरीर देवताओं को प्रिय है, ऐसा मानके उन देवताओं से कहता हुआ कि यथायोग्य स्थानबिषे, अर्थात् जिसमें जो वचनादि क्रिया योग्य स्थान है तिसबिषे प्रवेश करो ३ । ७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रंभूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतोभूत्वा शिश्नं प्राविशत् ४। ८॥

हे सौम्य! जैसे राजाकी आज्ञा पायके तथाऽस्तु इस प्रकार कहके सेनापति आदिक नगरविषे प्रवेश करते हैं, तैसे ईश्वर की आज्ञा पायके ८ अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणोर्भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानोभूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतोभूत्वा शिश्नं प्राविशत्) ८अग्नि वाक्रूप होके मुख बिषे प्रवेश करताहुआ, वायुप्राण होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ, आदित्य चक्षु होयके नेत्र बिषे प्रवेश करता हुआ, दिशा श्रोत्र होयके कर्णौ बिषे प्रवेश करतीहुई, ओषधि अरु वनस्पति रोम होयके त्वचा बिषे प्रवेश करतेहुये, चन्द्रमा मनरूप होयके हृदय बिषे प्रवेश करता हुआ, मृत्यु अपान होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ, जल रेत होयके शिश्न बिषे प्रवेश करताहुआ ; अर्थात् वाक्का अभिमानी जो अग्नि सो वाक् [यद्यपि वाक्का अभिमानी अग्नि है, वाक्ही नहीं है तथापि तिस अग्निकी वाक् विना प्रत्यक्ष अप्रतीति से, अरु तिस वाचा के भी देवता विना अपने विषय के ग्रहण में सामर्थ्य के अभावसे तिनके अकेलो तादात्म्य करिके अभेदका कथन है, इसप्रकार कहते हैं।] यद्यपि देवताका ईश्वर ने वा श्रुति ने प्रवेश कहा है तथापि करणों के विना तिन देवता के साक्षात् भक्षणादि भोगके असम्भव से तिन करणोंका भी प्रवेश अर्थ से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामाभिप्रजानीहीति । सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवता स्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति। तस्माद्यस्यैकस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ५ । ६ ॥

इति द्वितीयखण्डः ॥

कहाही है । ताते तिनकाभी प्रवेश कहा जानना ॥ ' अर्थात् " अग्निर्वाग्भूत्वामुखंप्राविशत् " इत्यादि कहने से स्पष्ट विदित होताहै कि अग्नि आदिक देवताओं ने वागादिक करणोंका रूप धारके मुखादि गोलकों बिषे प्रवेश किया है स्वयं अपने स्वरूप से नहीं परन्तु ऐसा जानना चाहिये कि देवताओं ने अपना २ भोग्यरूप अन्न वा केवल अन्न के भोगने के अर्थ परमात्मा से प्रार्थना कर मनुष्य शरीररूप पिंड पाया तब तिस विभोग भोगने की सामग्री करणोंका अभाव देख भोग भोगार्थ अपने बिषे एक करणका स्वरूप धार तिससहित मुखादि स्थानों बिषे प्रवेश किया है ' ॥] रूपही होके अपनी योनि (उत्पत्ति स्थान) मुखबिषे प्रवेश करता हुआ, तैसेही वायु प्राण (घ्राण) रूप होयके नासिकाबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही सूर्य चक्षु होयके नेत्ररूप स्थानबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही दिशा श्रोत्र होयके कर्णों बिषे प्रवेश करता हुआ, तैसेही ओषधि अरु वनस्पतियां रोमरूप होके त्वचा बिषे प्रवेश करतीहुई, तैसेही चन्द्रमा मनरूप होयके हृदयबिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही मृत्यु अपान (गुदा) रूप होयके नाभि बिषे प्रवेश करताहुआ, तैसेही जल वीर्यरूप होयके शिश्न (उपस्थ) बिषे प्रवेश करताहुआ ४ । ८ ॥

हे सौम्य ! ८ तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामाभिप्रजानीहीति, सते अब्रवीदेतास्वेव वा देवतास्वाभजाम्येतासुभागिन्यौ करोमीति) ८ क्षुधा अरु तृषा तिसको कहतीहुई हमारे अर्थ चिंतन करो, सो तिनके अर्थ कहताहुआ देवताबिषेही तुम दोनोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तृतीयखंडः ॥

स ईक्षते मेनुलोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति १ । १० ॥

अनुग्रह करताहौं इन बिषे भागवालियां करता हौं ? अर्थात् इस प्रकार देवताओं को स्थानबिषे प्राप्तहुये, स्थान रहितहुई जो क्षुधा अरु तृषा सो दोनों तिस ईश्वर से प्रार्थना करतीहुई कि 'हे भगवन्' हमारे अर्थ स्थान को चिन्तन (निर्माण) करो, इसप्रकार जब 'उन क्षुधा तृषाने' कहा, तब सो ईश्वर तिन क्षुधा अरु तृषा के अर्थ कहताहुआ कि जिसकरके तुमको भाव (धर्म)रूप होनेसे अरु चेतनावाली वस्तु के आश्रयरहित होनेसे भोक्तापना नहीं संभवे है, अतएव इन अध्यात्म (व्यष्टि देहगत) अरु अधिदैव (समष्टि देहगत) रूप अग्निआदिक देवताओं के बिषेही तुम दोनों को वृत्तिके विभाग से अनुग्रह करताहौं । अरु इन देवताबिषे तुमको भागवाली करताहौं, अर्थात् जिस देवताका जो हवि आदिक भागहै तिस देवता के तिसही भागसे तुमको भागवालियां करताहौं । अरु जिस करके सृष्टिकी आदिबिषे ईश्वर इसप्रकार करताहुआ (तस्माद्यस्यैकस्यै च देवतायैहविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः) (ताते जिसी अरु किसी देवतार्थ हवि ग्रहण करते हैं इसीबिषे ये क्षुधा अरु तृषा दोनों भागवालियां ही होती हैं ; अर्थात् ताते अबभी जिसी अरु किसी देवताके अर्थ चरु अरु पुरोडाशादिरूप हवि ग्रहण करते हैं, इसही देवता बिषे यह क्षुधा अरु तृषा दोनों भागवालियां ' अर्थात् भागीदार वा हिस्सेदार' ही होती हैं ५ । ९ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगतद्वितीयखण्डभाषाभाष्यःसमाप्तः ॥

अथ प्रथमाध्यायगततृतीयखण्डभाषाभाष्यःप्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! [इसप्रकार भोग के साधनकी सृष्टि को कहके अब भोग्य की सृष्टि के कहने का आरंभ करते हैं] (सईक्षते मेनुलो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोऽपोऽभ्यतपत् । ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजायत ।
या वै सा मूर्त्तिरजातान्नं वैतत् २ । ११ ॥

काश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्य सृजा इति ? ९सो ईक्षण करता हुआ यह प्रसिद्ध लोक अरु लोकपालके अर्थ अन्न को सृजो इस प्रकार, अर्थात् सो ईश्वर इसप्रकार ईक्षण करताहुआ, कैसे कि यह प्रसिद्धलोक अरु लोकपाल मैंने सृजे हैं, अरु सो क्षुधा आ तृषाकरके योजना कियेहुये हैं, एतदर्थ इनकी स्थिति अन्न वि होगी नहीं, ताते इन लोकपालनके अर्थ अन्नको सृजो, इसप्रका ईक्षण (विचार) करताहुआ, ऐसेही लोकबिषे ईश्वरोंका 'अर्था सामर्थ्यवालोंका' अपने सेवक किङ्करादिकों में अनुग्रहबिषे अ निग्रह (दण्ड) बिषे स्वतन्त्रपना देखते हैं । तैसे महेश्वरको भी सर्व का ईश्वर होने से सर्वके प्रति निग्रह अरु अनुग्रह करने के विषय में स्वतन्त्रपनाही है १ । १० ॥

हे सौम्य ! ९सोऽपोऽभ्यतपत्, ताभ्योऽभितप्ताभ्योमूर्त्तिरजाय या वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वैतत्? ९सो जलों के अर्थही तपको कर हुआ, तिस तपको प्राप्तहुये मूर्त्ति उत्पन्नहुई, जो प्रसिद्ध सो मू उत्पन्नहुई सो निश्चय करके अन्न है, अर्थात् सो ईश्वर अन्न सृजने को इच्छा करता हुआ तिन पूर्वोक्त जल उपलक्षणसे लादि पंचभूतन के अर्थही उद्देश करके तप [यहां यह अर्थ है, भूतों के अर्थ मनुष्यादिकन के अन्नरूप तंदुल यवादि उत्पन्न होहु अरु मार्जारि (बिल्ली) आदिकनके अन्नरूप मूषकादि उत्पन्न होहु इसप्रकार अवलोकनरूप संकल्प को करता हुआ] 'संकल्प' करताहुआ । तिन तप 'ईश्वरके संकल्प' को प्राप्तहुये उपादा रूप जलों से घन (कठिन) रूप अरु शरीर धारण के समर्थ अचररूप मूर्त्ति उत्पन्न हुई, जो प्रसिद्ध सो मूर्त्ति उत्पन्न हुई निश्चयकरके अन्नहै अर्थात् जो उत्पन्न हुआ अन्नहै सो मूर्त्ति है । अरु जो सो मूर्त्ति उत्पन्नहुई, सो यह अन्न है २ । ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदेतदभिसृष्टंनदत । पराङ्त्यजिघांसत । तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुम्। सयद्वैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ३ । १२ ॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम् । सयद्वैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ४ । १३ ॥

हे सौम्य! "तदेतदभिसृष्टंनदत" सो यह छोड़ाहुआ; अर्थात् सो यह अन्न लोकपालों के सन्मुख छोड़ाहुआ जैसे मूषक (चूहा) आदिक मार्जार (बिल्ली) आदिकों के दृष्टिके सम्मुख छोड़ाहुआ यह मेरा 'भक्षणकरनेवाला' मृत्यु अन्नाद (भोक्ता) है ऐसे मानिके पीछेजाताहै, तैसे "पराङ्त्यजिघांसत्" पराङ्मुख हुआ उल्लंघनकरने को इच्छताहुआ; अर्थात् पराङ्मुखहुआ अपने भोक्ता को उल्लंघन करनेको इच्छाकरताहुआ, अर्थात् अपनी पालना (रक्षा) करनेको प्रारंभकरताहुआ, तिस अन्नके अभिप्राय को मानिके सो लोक अरु लोकपालों के संघातों से कार्य्य कारण रूप पिंड (विराट्) प्रथम उत्पन्नहुआ होनेसे अन्यों को अन्नादवत् तिस अन्नको पचनक्रियारूप "तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचाग्रहीतुम्" तिसको वाणी से ग्रहण को इच्छता हुआ, तिस को वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ; अर्थात् अन्न को पचनक्रियारूप वाणी से ग्रहण (भक्षण) करने को इच्छता हुआ, परन्तु तिसको वाणी से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ "स यद्वैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत्" सो जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ ताते भी अन्नको कथनकरके ही तृप्त होताहुआ; अर्थात् सो प्रथम उत्पन्नहुए शरीरवाला विराट्, जिसकरके इसको वाणी से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी तिसका कार्य होने से अन्नको वाचक शब्द से कथन करकेही तृप्त होताहुआ ३ । १२ ॥

हे सौम्य! "तत्प्राणेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्प्राणेनग्रहीतुम्"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम् । स य
द्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ५ । १४ ॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम् । स
यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ६ । १५ ।

तिसको प्राणसे ग्रहण करनेकी इच्छा करता हुआ, तिसको प्राण से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ; अर्थात् तिस 'अन्न' को प्राण कहिये घ्राणसों ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ, परन्तु तिस 'अन्न' को प्राण (घ्राण) से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ "सयद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्यहैवान्नमत्रप्स्यत्" तिसको इसको प्राणसे ग्रहण करता हुआ तातें भी इस अन्नको सूँघिके तृप्त होताहुआ; अर्थात् जिस करके सो इसको प्राण (घ्राण) से ग्रहण करता हुआ, तातें सर्व लोक भी इस अन्नको सूँघिकेही तृप्त होताहुआ ४ । १३ ॥

हे सौम्य ! "तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्चक्षुषाग्रहीतुम्" तिसको चक्षु से ग्रहण करने की इच्छा करता हुआ, तिसको चक्षु से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ; अर्थात् 'सो विराट् पुरुष' तिस 'अन्न' को चक्षु से ग्रहण करने को इच्छता हुआ परन्तु तिस 'अन्न' को चक्षु से ग्रहण करने के विषय में समर्थ न हुआ, "स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यत् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्" जाते सो इसको चक्षु से ग्रहण करताहुआ अन्नको देखकेही तृप्त होता हुआ; अर्थात् जिस करके सो 'विराट् पुरुष' तिस 'अन्न' को चक्षु 'दृष्टि' से ग्रहण करता हुआ, तिस करके सर्व लोक भी इस अन्नको देखकेही तृप्त होताहुआ ५ । १४ ॥

हे सौम्य ! "तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेणग्रहीतुम्" तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको श्रोत्र से ग्रहण करने को समर्थ न हुआ; अर्थात् तिस 'अन्न' को श्रोत्र से ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु श्रोत्र से तिस 'अन्न'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत्त्वचाग्रहीतुम् । सयद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ७ । १६ ॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसाग्रहीतुम् । सयद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वाहैवान्नमत्रप्स्यत् ८ । १७ ॥

को ग्रहण बिषे समर्थ न हुआ, "सयद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्" ८ सो 'विराट्' इसको श्रोत्र से ग्रहण करता हुआ, ताते भी अन्नको श्रवण करकेही तृप्त होताहुआ; अर्थात् सो इस 'अन्नको' श्रोत्र से ग्रहण करता हुआ, ताते 'उसका कार्य' सर्व लोकभी अन्नको श्रवण करके तृप्तहोता हुआ ६ । १५ ॥

हे सौम्य ! "तत्त्वचाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोत् त्वचाग्रहीतुम्" ८ तिसको त्वचा से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको त्वचा से ग्रहण करनेको समर्थ न हुआ "स यद्धैनत् त्वचाऽग्रहैष्यत् स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्" ८ सो इसको त्वचा से ग्रहण करताहुआ ताते सर्व अन्नको स्पर्श करके तृप्त होतेहुए; अर्थात् सो 'विराट् पुरुष' इस 'अन्न' को त्वचा से ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोक भी इस 'अन्न' को स्पर्श करके तृप्त होतेहुये ७ । १६ ॥

हे सौम्य ! "तन्मनसाऽजिघृक्षत् तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुम्" ८ तिसको मन से ग्रहण करने को इच्छताहुआ, तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ; अर्थात् तिस 'अन्न' को मनसे ग्रहण करने को इच्छताहुआ परन्तु तिसको मनसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ, "स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्" ८ सो इसको मनसे ग्रहण करताहुआ ताते अन्नको चिन्तन करकेही तृप्त होतेहुये; अर्थात् सो 'विराट्' इस 'अन्नको' मनसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्वलोक भी अन्नको ध्यान करके तृप्त होतेहुये ८ । १७ ॥

हे सौम्य ! "तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम्" ८ तिस 'अन्नको' शिश्न से ग्रहण करने को इच्छताहुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत् तन्नाशक्नोच्छिश्नेनग्रहीतुम्। स
यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्यहैवान्नमत्रप्स्यत् ९ । १८।

तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत् । सएषोऽन्नस्यग्रहोय
द्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः १० । १९ ॥

स ईक्षत कथं त्विदं मदते स्यादिति । स ईक्षत कत
रेण प्रपद्या इति । स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं । यदि
प्राणेनाभिप्राणितं । यदि चक्षुषा दृष्टं । यदि श्रोत्रेण
श्रुतं। यदि त्वचा स्पृष्टं । यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्य
पानितं । यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोहमिति ११ । २०।

'परन्तु' तिसको शिश्नसे ग्रहण करने में समर्थ न हुआ;
"स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत्" ९ जो
सो इसको शिश्नसे ग्रहण करताहुआ, ताते सर्व लोक भी इ
अन्नको त्यागकेही तृप्त होताहुआ ९ । १८ ॥

हे सौम्य ! "तदपानेनाजिघृक्षत् तदावयत्" ९ तिस
अपान से ग्रहण करनेको इच्छताहुआ, तब भक्षण करताहुआ
अर्थात् पश्चात् तिस 'अन्न' को अपानवायु (मुखछिद्र) से ग्रह
करनेको इच्छा करताहुआ, तब तिस अन्नको भक्षण करताहुआ
"सएषोऽन्नस्यग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः" ९ सो यह अ
का ग्राहकहै जो वायु, अन्नसे जीवनवाला प्रसिद्ध है सो य
जो वायु है १० । १९ ॥

हे सौम्य ! "सईक्षत" ९ सो ईक्षणको करताहुआ; अर्थात्
[इसप्रकार भोगके अधिकरणरूप लोकों की, अरु भोगके आ
तन समष्टि व्यष्टि शरीरों की, अरु भोगके साधन वागादि
की, अरु समष्टि शरीरबिषे लोकपालों करिके अरु व्यष्टि श
बिषे करणों के अधिष्ठाता करके स्थितहुये देवताओं की,
भोगबिषे प्रेरक क्षुधातृषाकी, अरु तिसके किये करणों बिषे स्थि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दादि विषयोंके ग्रहणरूप भोगकीभी, अरु अन्नरूपवृत्तिवालेप्राण बिषे स्थित अन्नपानके ग्रहणरूप भोगकी आत्माके संसारीपने की सिद्ध्यर्थ सृष्टिको कहके अब संसारियोंके भोक्ताको देखावने अर्थ सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके विचरांशके देखावने को " सईक्षत " सो ईक्षणको करताहुआ, । इस वाक्यका व्याख्यान करते हैं] इस प्रकारके पुर अरु पुरके निवासी जन अरु तिनके पालक राजभृत्यों की स्थिति के तुल्य अन्नरूप निमित्तवाली लोक अरु लोकपालों के संघातकी स्थितिको करके पुर के स्वामीवत् ईक्षण ' अवलोकन ' को कर्त्ताहुआ, क्योंकि कार्य कारणका संघातरूप अग्रिमकहनेकाकार्य है सो परके [इदं शब्दार्थका "परार्थेसादिति" यह विशेषण हेतु गर्भित है । इस संघातको परके अर्थ होने से, इस हेतुरूपगर्भवाला यह विशेषणहै । परके अर्थहोनेवाले पदार्थों की स्थिति वा चेष्टा मुझविना कैसे होवेगी, इसही अर्थके "कथं" कैसे, । इस अर्थकरके सूचनाकिये व्यतिरेकको कहतेहैं] अर्थहुआ स्वामी विना पुरवत् " कथं त्विदं मद्दते स्यादिति । सईक्षत कतरेणप्रपद्याइति, सईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं, यदि प्राणेनाभिप्राणितं । यदि चक्षुषा दृष्टं, यदि श्रोत्रेण श्रुतं, यदि त्वचा स्पृष्टं, यदि मनसाध्यातं, यद्यपानेनाभ्यपानितं । यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति" मुझ विना निश्चयकरके किसप्रकार से होवेगा, जब वाणीसे कथन कियाहोवे, जब प्राण (घ्राण) से सूंघा होवे जब चक्षुसे देखाहोवे, जब श्रोत्रसे श्रवण कियाहोवे, जब त्वचासे स्पर्शकियाहोवे, जब मनसे ध्यानकियाहोवे, जब अपान से भक्षणकियाहोवे, जब शिश्नसेत्यागकियाहोवे, तब मैं कौनहौं, इसप्रकार ईक्षण करताहुआ ; अर्थात् ' जैसे पुरके स्वामी राजा विना प्रजाका व्यापार सिद्ध होवे नहीं, तैसे इस शरीररूप पुरके स्वामी ' मुझविना निश्चयकरके किसप्रकार होवेगा । अरु पुनः [इसप्रकार वाणीके व्यवहारादिक कार्यकी सिद्धिकेअर्थ मुझको प्रवेशकरना योग्य है, इसप्रकार कहके अब आत्मस्वरूप के बो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धार्थ मुझको प्रवेशकरना योग्यहै, यह कहनेके अर्थ "स ईक्षत" सो ईक्षणकरताहुआ, । "यदि वाचाभिव्याहृतं" जब वाणी से कथनकिया, । इत्यादिसे ले "कोऽहमिति" अब, मैं कौनहौं, । यहां पर्यन्त जो वाक्यहै, तिसको तिस 'परमेश्वर' के प्रवेश के प्रयोजन के कथनरूप होनेवाला करके "कथं त्विदं मदृते स्यादिति" यह मुझ विना कैसे होवेगा, । इसवाक्यके तुल्य होनेसे "स ईक्षत" सो ईक्षणकरताहुआ, । "कतरेण प्रपद्या" किस मार्गसेप्रवेशकरों, । इसवाक्यसे अन्तरायवाले वाक्यकोभी यहांही ल्यायके व्याख्यानकरे है। इसवाक्यका यहअर्थहै कि, संघातरूप वागादिक कार्यका परोपकार रूप वदनादिक क्रिया के कर्त्तापने रूप जो परके अर्थहोनाहै सो उपकार के भागी परके अर्थी विना जब होवें तब] जब वाणी से कहा, घ्राण से सूंघा, चक्षु से देखा, श्रोत्र से सुना, त्वचा से स्पर्शकिया, मनसे ध्यानाकिया, अपान से भक्षणकिया॥ 'हे सौम्य ! यहां अपानवायुकरके भक्षणकिया ऐसा कहाहै अरु यह निकटही कहआये हैं कि मृत्यु अपान कहिये गुदा रूप से नाभिविषे प्रवेश करताहुआ, अन्य बहुत से स्थानों विषे अपानवायु को मल मूत्रके त्यागरूप क्रियाका करता अधोगामी कहाहै, । "पायूपस्थेऽपानं" । यह प्रश्नोपनिषद् का प्रमाण है कि पायु (गुदा) अरु उपस्थ (शिश्न) इन दोनों इन्द्रियों में स्थितहोयके अपाननामवाला वायु मल मूत्रका त्यागरूप क्रिया करेहै, । अरु यहां अपानवायुकरके भक्षण किया, ऐसा कहा है, ताते परस्पर विरुद्ध प्रतीत होवे है, अतएव यहां ऐसा विचार है कि जैसे गुदस्थ अपान अधोगामीहै तैसेही मुख नासिकाके मार्ग से बाह्यरूप ऊर्ध्वको जानेवाला प्राणहै सो जब बाह्यरूप ऊर्ध्व से लौटके अन्तर अधोको आवताहै तब उसकीभी अपानसंज्ञा होती है क्योंकि अन्तर अरु अधोगमनकी अधोगमन में एकताहै ताते, अतएव यहां मुख नासिका के मार्गसे अन्तर आवनेवाला प्राण अपानसंज्ञक जानना अरु सोई मुखमें पाये अन्न जलादिकों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कण्ठ के नीचे उतार उदर में प्राप्तकरताहै, ताते मुखके मार्ग से अन्तर आवनेवाले "यद्यपानेनाभ्यपानितं" जब अपानवायु करके भक्षण कियाहोवे है, इसप्रकार जानना'॥ शिश्न से त्याग किया, इसप्रकारहोवे, तबमैं कौनहौं। इसप्रकार ईक्षण (विचार) करताहुआ. इस [उक्त वाक्यके अर्थको स्पष्टकरते हैं] वाक्यका यह अर्थहै कि केवलही भोक्तारहित वाणीआदिकों से उच्चारणादिक जो है, सो व्यर्थ होने से किसीप्रकार भी होवे नहीं क्योंकि सर्व प्रवृत्तियों का प्रयोजनके अर्थ होनाहै ताते। अरु जैसे पुरके निवासी अरु बन्दी जनादिकों करके योजना किया जो बलिदान (कर) अरु स्तुतिआदिक सो स्वामी के अर्थ होतेहैं, स्वामीविना व्यर्थ है, तद्वत्। अतएव पुरके अधिष्ठाता राजावत्, संघातसे अन्य मुझ स्वामी अधिष्ठाता अरु कृताकृतके फलके साक्षीरूप भोक्ता करके तहां 'शरीरादि संघातविषे प्रवेशकरना योग्यहै। अरु जब यह संघातरूप कार्यका जो दूसरे के अर्थ होना है सो स्वामी के विना पुर अरु पुरवासियोंवत् पररूप अर्थी चेतन विना होवे, तब मैं किस स्वरूपवालाहौं, वा किसका ईश (स्वामी) हौं अर्थात् जब मैं कार्य कारणके संघातविषे प्रवेश करके अधिकारी पुरुषों के कृताकृत के देखने को राजावत् वागादिकों के उच्चारणादिक फलको न जानों तब कोई भी पुरुष मुझको यह आत्मा-अरु यह इस रूपवाला है इसप्रकार न विचारेगा। अरु विपर्य्यय के 'प्रवेश करके उच्चारणादिक के अनुभव के' हुये तो जो [ज्ञानरूपता को प्रतिपादन करते हैं। यहां यह जो वागादिकों के वदनादिक क्रिया को जानता है सो ज्ञानरूप है, इसप्रकार जानने को योग्य होवेगा, यह अन्वय है। अरु जाननेवाले का ज्ञानरूपपना कैसेहै, इसप्रकारकहनेको योग्यनहीं, क्योंकिज्ञाताकोअचेतन रूपताके होनेसे तिसको अन्य ज्ञानकी विषयता कहनी होवेगी 'अर्थात् जब ज्ञाता अचेतन हुआ तब 'ज्ञाता अन्य ज्ञानकरके जानाजाता है, इसप्रकार कहना होवेगा'। अरु तिस ज्ञानविषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब ज्ञाताही कर्त्ता है, तब एकही ज्ञातामें ज्ञानका कर्त्तापना अरु ज्ञानका विषयपना यह विरोध प्राप्त होवेगा, । अरु जब अन्य ज्ञाता कर्त्ता है तब तिसका भी अन्यज्ञाता होवेगा, ताते अनवस्था दोष प्राप्त होवेगा । इसप्रकार ज्ञाताकी ज्ञानरूपता सिद्ध होतीहै। इसही से अन्य श्रुतिविषे "यो वेदेदं जिघ्राणीति" जो जानता है इसको मैं सूंघताहौं सो आत्मा है, इसप्रकार घ्राता घ्रेय अरु घ्राणरूप त्रिपुटी के ज्ञानको आत्मरूपता कही है । यह भावहै] यह वागादिकों के उच्चारणादिकों को जानता है सो सत् है, अरु सो संवेदन (ज्ञान) रूपहै, इसप्रकार मैं जाननेयोग्य होऊँगा। अरु जिसके अर्थ यह संघातरूप वागादिकोंका उच्चारणादिकहै, सो वागादिकन से अन्य अरु अमिलित है, इसप्रकार जानने को योग्य है । [संघातरूप हुये पदार्थों के संघातसे भिन्न परके अर्थ होनेविषे दृष्टान्त कहते हैं। यहां यह अनुमान कथन कियाहोताहै कि वागादिकों का संभाषणादिक जो है सो अपने से अमिलित अन्यके अर्थ होनेको योग्यहै ' अर्थात् वागादिकों का जो वक्तृत्वादि व्यापार है सो वागादिकों के अर्थ न होयके वागादिकों से पृथक् किसी अन्यके अर्थ है ' क्योंकि संघातरूप हैं ताते, भित्ति (दिवार) अरु गृहादिकोंवत्] जैसे गृहविषे मिलित हुये स्तंभ भित्ति 'कपाट' आदिकोंका अपने अवयवनसे अमिलितहुये अन्य के अर्थही होनाहै तद्वत् ' अर्थात् गृहमें ईंट पाषाण स्तंभ छज्जा टोड़े गोखे तिखालादिक जो होते हैं सो अपने २ अर्थ वा अपने अवयवों में एक दूसरे के अर्थ नहीं, अर्थात् स्तंभका होना स्तंभ के अर्थ वा भित्तिके अर्थ नहीं क्योंकि वो स्तंभ भित्तिआदिक जड़ होनेसे प्रयोजन रहित है, ताते उनका होना उनसे भिन्न उनका जाननेवाला स्वामी अन्यही है, तैसेही शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात जो काष्ठभारवत् जड़ हैं तिनका जो द्रष्टृत्व श्रोतृत्व वक्तृत्वादि व्यापारहैं सो स्वस्वके अर्थ किंवा एकका दूसरे के अर्थ नहीं क्योंकि यह करणरूप होनेसे ज्ञानशून्य परतन्त्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एतमेवसीमानंविदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिनामद्वास्तदेतन्नान्दनं। तस्य त्रय आवस्थास्त्रयः स्वप्नाःअयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ १२। २१॥

ताते इनका सर्व व्यापार इनसे अमिश्रित अन्य किसी ज्ञाते चैतन्यके अर्थ है"। इसप्रकार सो ईक्षण (विचार) करताहुआ। इसरीति से ईक्षण करके "सईक्षत कतरेण प्रपद्या" सो ईक्षण करताहुआ किससे प्राप्तहोवो? अर्थात् 'उक्तप्रकार विचार के सो परमात्मा पुनः' ईक्षण (विचार) करताहुआ कि, [अब "सईक्षत" सो ईक्षण करताहुआ कि "कतरेण प्रपद्या" किस मार्ग से प्रवेशकरों, इस वाक्य का व्याख्यान करते हैं। यहां यह अर्थ है कि, जिस करके प्रवेशकी, वागादिकों के व्यवहारकी सिद्धि अरु मेरे स्वरूप का बोध, इन दोनों प्रयोजनकी सिद्धिके अर्थ कर्तव्य है याते] किस द्वारसे इस संघात बिषे प्राप्तहो अर्थात् इस संघात बिषे प्रवेशके मार्गपादका अग्रभाग 'वा नीचेकाभाग' अरु मस्तकहै, इनदोनों बिषे किसमार्गसे इस कार्य कारणात्मक संघातरूप पुरबिषे प्रवेशकरा "इति, सईक्षत" इसप्रकार सो ईक्षणकरताहुआ; अर्थात् इसप्रकारसो परमात्मा ईक्षण 'विचार' करताहुआ, इसरीतिसे ईक्षण करके [किंकरके प्रवेशके मार्ग से स्वामी का प्रवेश अनुचित है, एतदर्थ इसही मार्ग से प्रवेशकरों इसप्रकार निश्चय करताहुआ, ऐसाकहते हैं] प्रथम मेरे सर्व अर्थ बिषे अधिकारी मेरे भृत्यरूप प्राणके प्रवेश के मार्गरूप दोनों पादों के अग्रनसे नीचे नहीं प्राप्तहोऊँगा, किन्तु परिशेषसे इस पिंड (शरीर) के मस्तकको विदीर्ण करके 'इसबिषे' प्राप्तहोऊँगा। इसप्रकार निश्चयकरके ११। २०॥

हे सौम्य! "स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत" सो इसही सीमाको विदीर्णकरके तिसद्वारा प्रवेशकरताहुआ; अर्थात् लोकवत् ईक्षणकर्त्ता जो स्रष्टा ईश्वरहै, सो यह जो केश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के विभागपर्यंत मस्तककी मध्यसीमाहै । 'अर्थात् दक्षिणकर्ण के ऊपरसेलेके वामकर्णके ऊपरपर्यन्त मस्तकपर आड़ीरेखा करिये अरु नासिकासेलेके पीछे के मेरुदंडपर्यन्त खड़ी रेखाकरिये तब जहां दोनों रेखामिलेंवखड़ीरेखा आड़ीरेखाको काटे तिस मस्तक की मध्य सीमाको' विदीर्णकरके अर्थात् मस्तककेमध्य छिद्रकरके तिस द्वारसे (मार्गसे) इस कार्यकारणके संघातरूप लोक 'वा पुर' बिषे प्रवेश करताहुआ ॥ 'अर्थात् बालकों के मस्तकके मध्य में अतिमृदु त्वचासे आच्छादित छिद्रहोताहै अरु सो बालक के मस्तकपर स्पर्शकरनेसे प्रतीतहोताहै तिसछिद्रको निर्माणकर, अर्थात् मस्तकके तिस स्थानको विदीर्ण (छिद्र) कर परमात्मा ने प्रवेशकियाहै अरु वह छिद्र परमात्माके प्रवेशका द्वारहोनेसे, ब्रह्मरंध्र इसनामसेप्रख्यातहै' ॥ "सैषाविदृतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनं" 'सो यह विदृतिनामवाला प्रसिद्धद्वारहै सो यह नान्दनद्वारहै' अर्थात् सो यह [ननु, पुरुषबिषे नवप्राण(द्वार) है, तहां सप्त मस्तक के अरु दोनीचेके 'इसप्रकार नव' हैं "नवद्वारे पुरेदेही" नवद्वार वालेपुरबिषे देही, । इत्यादि प्रमाणवाक्यकरके शरीररूपपुरके नव द्वारप्रसिद्धहैं, परन्तु मस्तकबिषे अन्यद्वार नहीं, यह आशंकाकरके प्रत्यक्ष से अरु "तयोर्ध्वमापन्नमृतत्वमेतीति" तिस (सुषुम्णानाम नाड़ी) से ऊर्ध्वको जाताहुआ अमरण भावको पावता है, । इस श्रुतिवाक्यसे, तिस मस्तकगत अन्य द्वारकी प्रसिद्धि से तिसका निषेध बनेनहीं, इसप्रकार कहनेको "सो यह" इस रीतिका वाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं ।] द्वार, मस्तकका छिद्र, मस्तक बिषे तैलादिकको धारणकालमें तिसके रसआदिकों के जानने से प्रसिद्धहै । सो यह विदीर्णहुआ होनेसे विदृतिनामवाला प्रसिद्ध द्वार है । अरु अन्य श्रोत्रादिद्वार तो राजा के किंकरादिस्थानीय देवताओं के प्रवेशके साधारण मार्गरूप होनेसे समृद्धिवाले 'आनन्दकेहेतु' नहीं, यह द्वार तो केवल परमेश्वरकाही है ताते सो यह द्वार नान्दन (आनन्दका हेतु) है । अरु जिस द्वारसे जायकेपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मको पावताहै तिस द्वारको नान्दन कहतेहैं। [इसप्रकार ईश्वरके प्रवेशको कहके, अब तिसके पूर्वोक्त कार्य कारणरूप संघातमय उपाधिकेकिये संसारको कहते हैं] "तस्य त्रयआवसथात्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति" तिस के तीन स्थानहैं, स्वप्नहै, यह स्थानहै, यह स्थान है, यह स्थान है; अर्थात् तिसही स्रजके अपने पुरकेअर्थ राजावत् जीवरूपपरमेश्वरके तीनस्थानहैं। तहां जाग्रत्कालबिषे दक्षिणचक्षु (चक्षुरूप गोलक) रूप स्थान है। स्वप्नकालबिषे अन्तःका मन 'मनकाआश्रय कंठ' स्थानहै। अरु सुषुप्तिकालबिषे यह हृदयाकाश' हृदय करके अविच्छिन्न भूताकाश' स्थानहै। अथवा यह अग्रिमकहने के तीनस्थान, पिताके शरीर, माताके गर्भके आशय 'अर्थात् गर्भाशय, गर्भस्थान' अरु अपना शरीर, यह तीनरूप स्थानहै। इनमें तीन जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति नामवाली अवस्था स्वप्न 'भ्रमरूप' हैं ननु जाग्रत् अवस्था प्रबोधरूप होने से स्वप्न नहीं है, सो ऐसे नहीं, किन्तु सो स्वप्नही है। कैसे, [अविवेकियोंको तैसे प्रसिद्धके अभावहुयभी विवेकियोंको तिन (स्वप्नादि) के लक्षणके ज्ञातवाले होनेसे, तैसे (स्वप्नवत्) प्रसिद्ध है, यह कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि वस्तुके स्वरूपके तिरोधान से असत् वस्तुकी जो प्रतीति, सो स्वप्न कहते हैं, यह स्वप्न का लक्षण है। अरु जाग्रत् भी तिस प्रकार का ही है, क्योंकि ब्रह्म स्वरूपके तिरोधानहुये अरु अविद्यमान जगत् की प्रतीतिके हुये 'जाग्रत्भी स्वप्न है'] तहां परमार्थ स्वरूपके प्रबोधके अभाव से अरु विवेकी पुरुषों करके स्वप्नवत् इसकी असद्रूपताके देखेहुये। यहही दक्षिण चक्षुरूप स्थान प्रथमहै। यह स्थान भीतरका मनरूप द्वितीय है, अरु यह हृदयाकाशरूप स्थान तीसरा है,। यह "अयमावसथः" यह स्थान ऐसा जो उच्चारण है सो उक्त अर्थकाही अनुवाद है १२। २१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स जातो भूतान्यभिवैक्षत । किमिहान्यं वावदिष-दिति । स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्श-मिति १३ । २२ ॥

हे सौम्य, [ननु, गृहविशेषके वाची 'आवसथ' शब्दका नेत्रादिकों बिषे व्यवहार कैसे बनेगा, यह आशङ्का करके गृहवत् इन नेत्रादिकों बिषे स्थित पुरुषको दीर्घनिद्रा के देखने से अरु तिन नेत्रादिकों बिषे गृहमें सुखसे सोयेहुयेवत्, सोये पुरुष को तत्काल जागरण के देखने से गौणी वृत्ति करके नेत्रादिकन के आवसथ (गृह) पने को कहे हैं] जिसकरके यह आत्मा उन स्थानों बिषे क्रमकरके आत्मभाव से वर्त्तमान होयके स्वाभाविक अविद्यासे दीर्घकाल पर्यन्त गाढ़ निद्रा को पायाहुआ प्रबोध को प्राप्त होता नहीं, अरु वारंवार मरणके अनुभवसे अनेक शत सहस्र अनर्थोंकी प्राप्तिसे जन्यदुःखोंको अनुभव करे है, एतदर्थ यह चक्षुरादिकों को स्थान (गृह) करके कहतेहैं ॥ [ननु, जागरणादिक जो है सो कार्य कारणके सङ्घातरूप भूतों के कार्यका धर्म है, आत्माका नहीं, ताते भिन्न आत्माको भी तिसबिषे तादात्म्य अभिमानसे तिस धर्मकरके युक्तपना है, इसप्रकार कहने को "स जातः" सो होताहुआ, यह वाक्यहै, तिसका व्याख्यान करतेहैं] "स जातो भूतान्यभिवैक्षत" 'सो प्रकट हुआ भूतोंकोही जानताहुआ' ; अर्थात् सा परमात्मा प्रकट हुआही भूतों को "अहं मनुष्यः, अहं काणः, अहं सुखी" मैं मनुष्य हौं मैं कानाहौं, मैं सुखी हौं, । इत्यादे 'अनेक' प्रकारसे 'अनात्मसङ्घातबिषे' तादात्म्य करके स्पष्ट जानताहुआ, अरु 'मानताहुआ, अरु कहताहुआ'। "किमिहान्यं वावदिष्यदिति" 'इसबिषे अन्यको क्या कहताहुआ' ; अर्थात् इस शरीरबिषे भिन्न आत्माको क्या कहताहुआ, नहीं कहताहुआ, अरु नहीं जानताहुआ । अरु जिसकरके ऐसे हौं 'अर्थात् अपने आप आत्माको नहीं जानता कहता' तिसही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके भूतों को 'आत्मा करके' स्पष्ट जानताहुआ। अथवा सो प्रकटहुआ भूतोंको चिन्तन करनेलगा, अर्थात् 'भूतों को विचारताहुआ' कि क्या इनकी स्वरूप से सत्ता है वा नहीं। अरु विचार करके किस अन्य (आत्मासे भिन्न) सत्तावालेको कहौ॥ किसीको भी आत्मासे भिन्न 'सत्तावाला' कहनेको समर्थ नहीं हौं, इसप्रकार निश्चय करताहुआ॥ इसप्रकारके पदार्थ के शोधनवाले पुरुषको वाक्यार्थ का ज्ञान कहते हैं "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्शमिति" सो इसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताहुआ, इसको देखताहौं ऐसे; अर्थात् सो कदाचित् परमदयालु आचार्य करके आत्मज्ञान के प्रबोधके कारक 'महावाक्यार्थरूप' शब्दों को करनेवाली जे वेदान्त शास्त्ररूप 'अलौकिक' महाभेरि तिसको 'शिष्यके' कर्णमूलबिषे 'श्रोत्रके छिद्रपर' ताड़नकिये (बजायेहुये) सो इसही सृष्टि आदिकोंके कर्त्तापने करके प्रसङ्गबिषे प्राप्तहुये शरीररूप पुरबिषे रहनेवाले आत्मारूप पुरुषको आकाशवत् परिपूर्ण ब्रह्मरूपसे देखताहुआ। कैसे कि अहो इस परब्रह्मरूप मुझ स्वस्वरूप को देखताहौं। 'अर्थात् "अहं ब्रह्मास्मि" भाव से साक्षात् यथार्थ अनुभवकर्त्ता हौं यह महान् आश्चर्य है'। ऐसे। अरु जिसकरके "इदं" यह, इस शब्दका वाच्य जो साक्षात् अपरोक्ष आवान्तर ब्रह्म है 'अर्थात् यह, शब्द अंगुली निर्देशहुआ साक्षात् प्रत्यक्षका विषय होताहै, तहां अभिप्राय यह है कि ब्रह्मवेत्ता आचार्य से तत्त्वमस्यादि, महावाक्यार्थ के श्रवण ज्ञानसे जो प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय अरु सर्वका प्रकाशक द्रष्टा चैतन्य आत्मा सो इदं शब्दके विषय घटवत् प्रत्यक्ष न होयके इदं प्रत्यय को सविषयके प्रकाशक द्रष्टा आत्माको "प्रतिबोधविदितं" अपनेआप आत्मत्वपने से असंदिग्ध अनुभव करे हैं' तिसको अपरोक्ष से देखताहुआ १३। २२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवै नाम । तमिदन्द्रंसन्त-मिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इवहिदेवाः परोक्षप्रियाइवहि देवाः १४ । २३ ॥

इति तृतीयखण्डः ॥

हे सौम्य, जिस करके सर्वान्तर ब्रह्मको यह 'अपरोक्ष 'चक्षुरादि सर्वका द्रष्टा, प्रत्यगात्मा' इसप्रकार 'अंगुली निर्देश के विषय घटवत्' देखाहुआ, [तिसके इन्द्रनामकी प्रसिद्धिसे भी तिसके ज्ञानको अपरोक्षपना है, इसप्रकार कहने को "तस्मादिदन्द्रोनाम" तातेइदन्द्रनामहै, । यह वाक्यहै तिसका व्याख्यान करते हैं] तातें "तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो हवैनाम" 'इदन्द्र नामवाला होताहुआ, इदन्द्र नामवाला प्रसिद्ध है' अर्थात् परमात्मा इदन्द्र नामवाला होताहुआ, अरु लोकबिषे सो ईश्वर इदन्द्र नामवाला प्रसिद्धही है "तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण" 'तिस इदन्द्रहुये संतेको परोक्ष करके इन्द्र ऐसाकहते हैं' अर्थात् तिस इस प्रकार इदन्द्रहुये परमात्माको यहब्रह्मवेत्ता 'प्रत्यक्ष ब्रह्मको आत्मभाव से जाननेवाले' तिस को अत्यन्त पूज्य होने से अरु तिसके प्रत्यक्ष नाम ग्रहण के भयसे सम्यक् व्यवहारार्थ परोक्षनामसे इन्द्र ऐसा कहते हैं ॥ [पूज्य पुरुषों का नाम परोक्षपने करके ही कहने को योग्य है इस अर्थ बिषे प्रमाण कहते हैं । यहां यह भावहै कि, इसही से लोकबिषे आचार्य जो हैं सो, उपाध्याय, इस नामके कहनेसे ही प्रीति को करते हैं, परन्तु विष्णुमित्रादि नामके ग्रहण बिषे नहीं । 'अर्थात् कोई एक, विष्णुमित्र, इस प्रख्यात नामसे प्रसिद्धहै अरु विद्यार्थियोंको अध्ययन करावता है उस आचार्य पुरुष को उपाध्याय, इस गुणविशिष्ट नामसे बुलाइये तब वह विशेष प्रीति करता है, अरु जो कदापि उसको, विष्णुमित्र, इस सामान्य नामसे बुलावो तो उत्तर तो देताहै परन्तु प्रीतिसे नहीं' ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयाध्याय ॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति । यदेतद्रेतस्तदेतत्सर्व्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भृतमात्मन्येवात्मानंबिभर्ति । तद्यदास्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति । तदास्य प्रथमं जन्म १ । १४ ॥

यथार्थ नामका अन्यरूपके करने से स्वरूप का आच्छादन होता है सोई नामका परोक्षपना है, इस प्रकार कहते हैं] तैसेही देखावते हैं " परोक्षप्रिया इवहि देवाः परोक्षप्रिया इवहि देवाः " ' जाते देव परोक्षप्रियवत् है २ ', अर्थात् जब देवता परोक्षप्रिय 'अर्थात् परोक्षनामसे प्रीतिवाले' वत् हैं, देव परोक्षप्रियवत् हैं, तब सर्व देवताओं का भी परमदेव ' ताते महादेव ' सो परोक्षप्रिय ' अर्थात् परोक्ष नामके ग्रहण से प्रीतिवाला ' है तिस में क्या कहना है, किन्तु कुछभी नहीं। यहां जो द्विवार कथन है सो इस अध्यायकी परिसमाप्त्यर्थ है १४ । २३ ॥

इति श्रीप्रथमाध्यायगत तृतीयखण्डभाषाभाष्य

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गतप्रथमाध्यायभाषाभाष्यंसमाप्तम् ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य, [इस प्रथमाध्यायबिषे आत्मा की एकता, अरु लोकपालों की सृष्टि, अरु क्षुधा तृषाकी योजना, इत्यादिक बहुत अर्थोंको कथन किये हैं ताते, अरु सर्वके भी कहने को इच्छित की शङ्काके निवारणार्थ कहनेको इच्छित 'अर्थात् जिस अर्थके कहने की इच्छा है' कहते हैं। यहां सर्व शरीरों बिषे भी एकही आत्मा है, सोई परमेश्वर है, इस प्रकार का जो अग्रिम कहनेका अर्थ सो "एतत्" यह, । इस शब्दका अर्थ है] ॥ इस अध्याय बिषे अग्रिम कहनेका अर्थ कहनेको इच्छित है [प्र० । यहही अर्थ कहनेको कैसे इच्छित है ' क्या अन्य अर्थ नहीं । यह शङ्का करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्व ग्रन्थकी रचनाको विचारकरके देखने से यह हीं ' जो आगे कहेंगे ' कहनेको इच्छितहै, इसप्रकार कहतेहैं । यहां यह अर्थ है कि यद्यपि लोकादिक की सृष्टिसे अरु अन्यकी सृष्टि से उत्पत्ति अरु स्थिति ही कही, तथापि उत्पत्ति अरु स्थितिके कथनकरके अर्थ से प्रलय भी कथनकिया । अरु प्रलयका कर्त्ता, इसप्रकार कहे हुये लोकपालादिकों के हां भोक्तापने के कथन से सो असंसारी है, इसप्रकार कहा ॥ सामान्य से सर्व्वको जानता है ताते सर्व्वज्ञ है । अरु विशेषकरके सर्व्वप्रकार से भी सर्व्वका वेत्ता (जाननेवाला) होने से सर्व्ववित् है] । जिसकरके जगत्की, उत्पत्ति, स्थिति, अरु लय, का कर्त्ता असंसारी सर्व्वज्ञ, सर्व्ववित्, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वर, इस जगत्को स्वरूप से भिन्न अन्य वस्तुको न ग्रहण करकेही आकाशादिकों के क्रमसे सृजके ' तिनके कार्यकी सिद्धिके अर्थ ' अरु स्वस्वरूपके प्रबोधार्थ प्राणादिक सर्वकलावाले शरीरों बिषे आप प्रवेश करताहुआ । अरु प्रवेश करके अपने आत्माको " यथाभूतमिदं ब्रह्मास्मीति " यथाभूत यह ब्रह्म मैं हौं, । इसप्रकार साक्षात् जानताहुआ । [जिसकरके सर्व्व शरीरों बिषे एकहीका प्रवेश कहाहै, अरु जिसकरके प्रवेशसे प्राप्तहुयेका ब्रह्मभावसे ज्ञान कहाहै, ताते सर्व शरीरों बिषे एकही आत्माहै, अरु सो सर्व्वज्ञ ईश्वर है अन्य नहीं । यह वाक्यार्थ कहनेको इच्छित है, इसप्रकार पूर्व से सम्बन्ध है] ताते सोई आत्मा सर्व्व शरीरों बिषे एकही है, अन्य नहीं । अरु अन्य वाक्यभी " सम आत्मा ब्रह्मास्मीति " सो मेरा आत्माहै, । ऐसे जानना, " मैं ब्रह्महौं " इसप्रकार जानना, । अरु " आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीत् " " ब्रह्मततामिति " यह आगे निश्चय करके एक आत्माहीथा, परिपूर्ण ब्रह्मको देखताहुआ, । इसप्रकार कहा । अरु [„सो मेरा आत्मा है ऐसे जानना,, यह संहितारूप उपनिषद्गत वाक्यका शेषभी इसही अर्थको कहताहै, इसप्रकार कहते हैं] अन्य वाक्योंबिषे भी यहही अर्थ कहाहै ॥ ननु [प्रवेश

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के वाक्य से जो आत्मा की एकता कही सो अयुक्त है, क्योंकि, उस वाक्य कोही असंगत अर्थवान्पना है, इसप्रकार वादी शंका करे हैं। यहां यह अर्थ है कि आत्माको अशरीर होने से मस्तक के विदीर्ण करनेरूप, करतापना, अरु सर्वगत होने से, प्रवेश, संभवे नहीं] सर्वगत सर्व्वात्माके प्रवेश से रहित केशाग्रमात्रभी वस्तु नहीं है, एतदर्थ सो छिद्रके ताईं पिपीलिकावत् सीमाको विदीर्ण करके कैसे प्रवेश करताहुआ, तहां। [यहां क्या प्रतीयमान अर्थबिषे असंगतपना है, अथवा कहने के अर्थबिषे असंगतपनाहै, यह दो विकल्प हैं। तिनमें प्रथम पक्ष वा विकल्पबिषे सर्व वेदको भी असंगतअर्थवाला होनेकरके सर्वको भी अप्रमाणपना होवेगा, अरु वेदको सो अप्रमाणपना युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है। यहां यह अर्थ है कि चक्षुरादिक करणों से ईक्षण प्रसिद्ध है। अरु मृत्तिका आदिक उपादानवाले कोही स्रष्टापनाहै। अरु दोनों हाथोंसेही ग्रहण करना अरु अपने अवयवों से जोड़ना। 'अर्थात् वस्त्र भूषणादिकों का धारण करना आदिक' होताहै, सो अशरीरीको असंगत है। अरु शस्त्रादिक मूर्त से विदारण होता है अमूर्त्त से नहीं। अरु मुखादिकनसे अग्न्यादिकों की उत्पत्ति के हुये तिन मुखादिकोंका दाहादिक होवेगा 'जैसे काष्ठ से अग्निकी उत्पत्तिहुये काष्ठका तैसे' अरु मूर्त्तरूप वस्तु काही अन्य से संयोग करनेको शक्यहै, क्षुधादिक अमूर्त्तका नहीं अरु शरीरकी सृष्टिकी उत्पत्ति के पूर्व अग्नि आदिकों करके प्रार्थना करनी असंभव है। अरु तिसकालबिषे गौआदिक शरीरोंके अभावसे, अरु अपनेको अशरीरी होनेसे तिसके गौ आदिकोंके लानेकाभी असंभवहै। अरु उन देवताओं को अशरीर होनेकरके अमूर्त्तरूप होनेसे तिनकेप्रवेशकाभीअसंभवहै। अरुअचेतनरूप अन्न को पलायन होनेका असंभवहै। अरुवागादिकोंको हस्तादिकोंवत् वस्तुकेग्रहणविषयक असामर्थ्यसे तिनकरके ग्रहणकरनेकी इच्छा होनेका असंभवहै॥इसप्रकार समस्त प्रकरण असंगत अर्थवाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होवेगा] तहां सिद्धान्ती कहे है, हे वादी ! यह तैंने अत्यन्त अल्प प्रश्न किया, अरु यहां बहुत से प्रश्न करने को योग्य है । करण रहितहुआ ईक्षण को करताहुआ। कुछभी 'अन्य' वस्तुके ग्रहण किये विनाही लोकनको सृजताहुआ । अरु जलादिकों से पुरुषको ग्रहण करके तिसको अपने अवयवों से 'जो स्वरूपसे निरवयव है' योजना करता हुआ । तिस के चिन्तनमात्र सेही मुखादिक भेदको पावतेहुये । अरु मुखादिकन से अग्नि आदिक लोकपाल हुये । अरु तिनके मध्य क्षुधादिकोंकी योजनाहुई । अरु तिन 'अशरीरी' देवताओंने स्थानार्थ प्रार्थना किया । अरु तिनके अर्थ गौ आदिक शरीरों का देखावना। अरु तिन 'देवताओं' का यथायोग्य स्थानों बिषे प्रवेश । अरु उत्पन्न किये अन्नका पलायन होना । अरु वाणी आदिकों को तिस अन्नके भक्षण करने की इच्छा होनी ॥ यह सर्व्व सीमाके विदारण अरु प्रवेश इनके तुल्यही है ॥ ननु, [तब सर्व्व अप्रमाण होवे, इस प्रकार कोई एक वादी शंका करे है] तब यह सर्व्व अघटित (होनेसे) अप्रमाण होवे, [अरु कहनेको इच्छित अर्थ बिषे असंगति नहीं इसप्रकार द्वितीय पक्षको दूषण देतेहैं। यहां यह अर्थ है कि, लोकों बिषे आपही द्वारको करके अनेक ग्रहबिषे स्थितहुये देवदत्त की एकताके देखने से, तैसेही यहां आत्मा की एकताहै, इसप्रकार बोधन करनेको विदारण अरु प्रवेश कहते हैं, परन्तु सो अर्थ कहने को इच्छित नहीं, क्योंकि तिस 'सिद्धान्ती' को कहने को इच्छित जो आत्मा की एकता तिसके बोधका द्वार होने करके कथनकिये होनेसे 'अर्थात् सीमाका विदारण अरु प्रवेश का कथन आत्माकी अभेदताका बोधकद्वारहै ताते' ताते उत्तमता रूप अर्थ का द्वार होनेकरके ; यज्ञ प्रकरण, बिषे उक्तवपा (पशु के अंगका भाग विशेष) के भक्षण आदिकवत् अर्थवादरूप है। सो कथन बने नहीं, क्योंकि यहां आत्माके बोधरूप अर्थमात्र कोही कहना इच्छित है, ताते यह सर्व अर्थवाद है, याते दोष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं। अथवा [असत् ही प्रवेशादिकों का यहां कथन है, इस प्रकार अंगीकार करके वपा के भक्षणादिकों के वाक्यवत् तिन प्रवेशादिकों के गुणार्थवादपने को कहके अब अग्नि हिम का औषधहै,, इस वाक्यवत् तिसके भूतार्थवादपनेको अंगीकार करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि मायासे अघटित भी सर्व घटता है, क्योंकि तिसको अघटित अर्थकी घटावनेवाली पनाहै ताते इस कथन करके सृष्टि आदिकों को अघटित अर्थरूप होनेसे गंधर्व नगरादिवत् मिथ्याहीहै, इसप्रकार स्पष्ट करनेको अघटित सृष्टि आदिक अर्थभी श्रुतिने देखायाहै। इस प्रकार कहते हैं] मायावीवत् महामायावी सर्व्वज्ञ सर्व्वशक्तिमान् देव आख्यायिकादिक प्रपंच बिषे लौकिकवत् सुखसे वक्ताको प्रतिपादन करनेके अर्थ अरु श्रोताके निश्चयार्थ सर्व इस चराचरको रचताहुआ यह पक्ष अत्यन्त युक्तहै। [ननु, लोकनकी सृष्टि आदिकन को अन्य प्रमाण के अगोचर होनेकरके अपूर्व होनेसे यहां कथनकरी जो आख्यायिका है तिसको तिस सृष्टि आदिकरूप अर्थकी परायणता होवे, यह आशंका करके, तिसको अपूर्वताके हुये भी तिसके निश्चय करके फलके अभाव से, अरु फलवान् औ अज्ञात 'अपूर्व' अर्थ बिषे श्रुति के तात्पर्य के नियम से। अन्यथा रुद्रके रोदनादिकों को भी अपूर्व होनेकरके, तहांभी तात्पर्य की प्राप्ति से सृष्टि आदिकबिषे श्रुतिका तात्पर्य नहीं, इस प्रकार कहतेहैं] अरु सृष्टिकी आख्यायिकादिकों के ज्ञानसे कुछ भी फल अंगीकार करते नहीं, अरु [आत्माके निश्चय बिषे तो फलको देखते हैं, अरु तिस बिषे ही श्रुतिकी परायणता युक्त है इस प्रकार कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि। "एतावदरेखल्वमृतत्वम्" "तमेवं विद्वानमृत इह भवति"। "विद्वानमृतस्समभवत्" इत्यादि अन्य श्रुतियों के प्रमाण से, अरे इतनाही निश्चय करके अमृतभावहै, तिसको इसप्रकार जाननेवाला यहां अमृत (मोक्ष) होता है, विद्वान् अमृत होताहुआ। इत्यादि अनेक श्रुतियों बिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानसे अमृत भाव 'मोक्षरूप फल' प्रसिद्ध है] एक आत्म स्वरूप के ज्ञानसे तो अमरणभावरूप फल सर्वउपनिषदों विषे प्रसिद्ध है । अरु " समंसर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरमिति " सर्व भूतोंबिषे समानता से स्थित परमेश्वरहै,तिसको, इत्यादिक गीता स्मृतिके वाक्यबिषेभी प्रसिद्ध है ननु [आत्माकी एकता ही इस अध्याय का अर्थ है, इस प्रकार कहके अब इसही को स्थिर करनेको वादी शङ्का करता है] जीव ईश्वर अरु निरुपाधिकब्रह्म, इस भेदसे आत्मा तीनहैं । तिनमें कर्त्ता भोक्ता 'सुखी दुःखी' संसारी जीव एक आत्मा है, सो सर्वलोक अरु शास्त्र बिषे प्रसिद्ध है । अरु अनेक प्राणियों के कर्मफल के उपभोगके योग्य अनेकन स्थानवाले जो लोक अरु देह तिनके रचने रूप शास्त्रानुसार पूर्व 'इसके प्रथम वाक्यबिषे' कथन किये लिङ्ग (चिह्न) करके, पुर अरु अट्टालिका आदिकोंकी रचनारूप लिङ्गसे तिसकी कुशलताके ज्ञानवाले तिनके कर्त्ता तक्ष (शिल्पी) आदि वत् जानने में आवताहै, ऐसा सर्व जगत्का कर्त्ता अद्वितीय चेतनरूप जो ईश्वरहै सो दूसरा आत्मा जानते हैं । अरु " यतोवाचो निवर्त्तन्ते "जिससे वाणियां निवृत्तहोतीहैं,अरु"नेतिनेति" इत्यादि वाक्यकरके शास्त्रोंबिषे विख्यात, अरु उपनिषदोंकरके प्रतिपाद्य 'जो सर्व निषेधोंकी अवधि अर्थात् जहां सर्वनिषेधों का पर्यवसान है, अरु प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंका अविषय' जो शुद्ध ब्रह्मरूप परमपुरुष है, सो तृतीय आत्मा है । इसप्रकार यह तीनों आत्मा परस्परमें विलक्षण हैं । तहां एकही अद्वितीय असंसारी आत्मा है, यह किसप्रकार जाननेको शक्य है, तहां [जीवकी जो कर्त्ता भोक्तापना आदिरूप विलक्षणता कही सो असिद्धहै, क्योंकि तिस जीवको अन्यप्रमाणका अविषय होने करके तिस धर्मवान पने करके प्रमाज्ञानका विषय करनेको अशक्य है ताते । इस हेतु करके जीव अरु परमात्मा का भेद है नहीं, इस अभिप्राय से सिद्धान्ती समाधान करता है । यहां यह अर्थ है कि तिस जीव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को ज्ञेयताके अभावहुये, अर्थात् जीव चैतन्य होनेसे किसीकाभी ज्ञेय, किसीकरके जाननेयोग्य, नहीं तिसहेतु से" कर्त्तापने आदिक धर्म 'जो उस बिषे वास्तव करके स्वरूपसेही नहीं' तिन करके युक्तहुआभी सो 'बुद्ध्यादिकों करके' जानने को शक्य नहीं] सिद्धान्ती कहे है, तिन तीनों आत्मा बिषे प्रथम जीवही प्रमाणोंका अविषय होनेकरके कर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्त कैसे जानने में आवेगा 'अर्थात् जब जीव प्रमाणका अविषय है तब कर्त्ता भोक्तापने रूपधर्मकरके युक्तभी, वा जीव कर्त्ता भोक्तापने रूप धर्मकरके युक्त है इसप्रकार, कैसे जाननेमें आवेगा' किन्तु किसीप्रकारभी जानने में आवै नहीं॥ ननु, श्रोताहै, मन्ताहै, द्रष्टा है, आदेष्टा 'वर्णरूप शब्दका वक्ता' है, अघोष्टा 'ध्वनिरूपशब्द का कर्त्ता' है, विज्ञाता है, प्रज्ञाता है, इसप्रकार जानते हैं, तहां [पूर्ववाक्यबिषे "स एषोऽश्रुतोऽमतोविज्ञातः" सो यह अश्रुतहै, अमत है, अविज्ञात है,। इसप्रकार तिसकी ज्ञेयताका निषेध होनेसे तिसबिषे ज्ञेयपना विरूप है, इसप्रकार कहते हैं] सिद्धान्ती कहे है, जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता होनेकरके जानते हैं। 'अर्थात् जिसको श्रवणादिकों का कर्त्ता ऐसा जानते हैं परन्तु इदं प्रत्ययके विषय अंगुली निर्देश घटवत्, यह श्रोता है, इस प्रकार अपने जाननेवाले ज्ञातारूप से पृथक् करके ज्ञेयवत् जानते नहीं, किन्तु अहंप्रत्ययका लक्ष्य अहं श्रोता है, अहंमन्ता है, इत्यादि प्रकार अपने ज्ञातास्वरूप से अभिन्नकरके उस श्रवणादि कर्त्ता धर्मवान् जीवको जानते हैं, ताते' सोई "अमतो मन्ता विज्ञातो विज्ञाता, इत्यादि "अमतहुआ मन्ता है, अविज्ञात हुआ विज्ञाताहै, 'अर्थात् मनका अविषयहुआ माननेवाला अरु बुद्धि आदिकों करके अविज्ञात हुआ सर्वका जाननेवाला है' क्योंकि "यद्वाचानाभ्युदितंयेनवागभ्युद्यते, यन्मनसानमनुतेयेनाहुरमनो मतम्" वाग् अरु मन आदिक बाह्यकरण अरु अन्तःकरण जो सर्व के जानने करने आदिकों बिषे सामग्री है सो उसको नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानती अरु वो उन सामग्रियों का ज्ञाता प्रकाशकहै, तातेही उस बिषे ज्ञेयपनेका अभावहै' इसप्रकार अन्यश्रुतियोंने भी 'उसबिषे ज्ञेयत्वका' निषेध कियाहै । अरु "न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न विज्ञाते विज्ञातारं विजानीयात्, इत्यादि" मतिके मन्ताको मनन करना नहीं' अर्थात् मतिके मन्ताको मनन न करोगे क्योंकि वो मनका विषय नहीं' विज्ञातिके विज्ञाताको जानना नहीं 'अर्थात् विज्ञातिके (बुद्धिके जाननेपनेके) विज्ञाता(जाननेवाला) को न जानोगे, क्योंकि वो बुद्धिके ज्ञानका विषय नहीं' इत्यादि रूप यह अन्यश्रुति है ॥ ननु [दोनों श्रुतियों की प्रमाणता की तुल्यता से निषेधके असंभव से प्रत्यक्ष प्रमाण करके अज्ञेयपना अरु अनुमान से भी अज्ञेयपना कहो] जब आत्मा सुखादिवत् प्रत्यक्ष प्रमाण से जाननेबिषे आवे तब तिसका श्रुतिबिषे निषेध करना, सत्यहै, 'यहां, सत्यहै, यहकथन आक्षेपकहै तातें इसका पर्याय असत्य है ऐसा जानना, क्योंकि वादीका कथन है' । अरु "न मतेर्मन्तारं मन्वीथा" मतिके मन्ताको मनन करना नहीं, इत्यादि वाक्य से प्रत्यक्ष ज्ञानका निवारण करते हैं, परन्तु श्रवणादिरूप लिंग से आत्माको जानते हैं, तहां किसकरके निषेध होवेगा, तहां [आत्माबिषे एककालमें दोनों ज्ञानके असंभव से, श्रवणादिकालमें मनन अरु विज्ञानके असंभव से, श्रवणादि करके मनन अरु विज्ञानरूप आत्मा को विषय करनेवाला, वा अन्य को विषय करनेवाला अनुमति ज्ञान सम्भवे नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै, यहां यह अर्थ है कि, श्रवणादि क्रिया के साथही वर्त्तमान होने से श्रवणादि क्रियारूप आधारवाले होनेसे आत्माबिषे वा अन्यबिषे तिसकी मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया संभवे नहीं । इस प्रकरण बिषे मनन अरु विज्ञान शब्द करके अनुमति ज्ञान कहते हैं, क्योंकि यहां आत्मा को तिस अनुमतिके विषयता की शंकावादीने कियाहै तातें] सिद्धान्ती कहे है, श्रवणादिरूप लिंगसे भी आत्मा को किसप्रकार जानते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु किसी प्रकार भी नहीं यावत् जब आत्मा श्रवण करने को योग्यहै, ऐसा शब्द सुनते हैं, तब तिसको श्रवणादि क्रियाकरकेही सहित वर्त्तमान होनेसे 'अर्थात् श्रवणादि क्रियाका आश्रयहोनेसे' तिसको आप बिषे वा पर बिषे मनन अरु विज्ञानरूप क्रिया (अनुमति प्रमाण) संभवे नहीं, [तब श्रवणों के एक काल बिषे असंभवहुये अन्यको विषय करनेवाली मननक्रियासे आत्मा सानने को योग्य है, यह आशंका करके, विजातीय दोनों क्रियावत् सजातीय भी दोनों क्रिया संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं] तैसे अन्य ठिकाने भी मननादिक क्रिया बिषे अन्य मननादिक क्रिया भी संभवे नहीं। अरु श्रवणादि क्रिया जो हैं सो अपने विषयोंबिषे ही हैं, अर्थात् अपने विषय कोही विषय करनेवालियां हैं, परन्तु अपने आश्रय को विषय करनेवालियां हैं नहीं। [किंवा "न मतेर्मन्तारं मन्वीथा" मति के मन्ता को मनन करनानहीं 'इस प्रकार आत्माको मनन की विषयताका निषेध है ताते, मननकर्त्ता आत्माबिषे मननक्रिया संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिसकरके मनन करनेयोग्य वस्तुसे अन्य ठिकाने (मननका आधार आत्माबिषे) मनन कर्त्ताकी मनन क्रिया संभवे नहीं, क्योंकि 'जैसे कुठारादिकों के 'काष्ठछेदनादि रूप' क्रियाका काष्ठसे इतर स्थानाबिषे अदर्शन है'। ताते मनन के अविषय अरु मननकर्त्ता आत्माबिषे मननक्रिया संभवे नहीं ननु, ["मनसाः सर्वमेव मन्तव्यम्" मनके आधीन यह सर्व होताहुआ 'इस श्रुति करके सर्वको मनकी विषयता होने से आत्मा बिषेभी मननकी विषयताहै इसप्रकार वादी शंका करता है] मनको सर्वही मनन करने योग्य है, एतदर्थ आत्माबिषे भी मननकी विषयता होवेगी, तहां [ऐसेहुयेभी मनको करणत्वहोनेसे, अरु क्रियाका कर्त्ताविनाअसंभवहै ताते, मनसे भिन्नमननकाकर्त्ता अवश्य अंगीकार करनेको योग्यहै, इस प्रकार सिद्धान्ती कहता है] कहते हैं कि 'सत्य ऐसेही है। तथापि सर्व भी मननका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय मननकर्त्ता विना मन करनेको शक्य नहीं । जब, [मनन कर्त्ताकी आवश्यकता होहु, तिस करके सिद्ध क्या होता है, इस प्रकार वादी शङ्का करेहै] ऐसेहै तब तिसकरके सिद्ध क्याहोताहै' तहां सिद्धान्ती कहेहै, यहां यह सिद्धहोवेहै कि जो यह सर्वका मनन कर्त्ताहै सो मननकर्त्ता 'अर्थात् मननक्रियाका आश्रय'ही है, मननका विषयनहीं होवेगा अरु मननकर्त्ताका दूसरा मननकर्त्ता कोई नहीं, अरु जब सो मननकर्त्ता आत्मा 'अन्यचेतन करकेही' मननकरनेको योग्यहै, तबजिसचेतन आत्माकरके मननकरने को योग्य है, अरु जोमनन करनेयोग्यहै, सोदोनों परस्परभिन्न हैं, । ' अर्थात् मनन करताआत्मा जबअन्यआत्मा करके मननकरने योग्यहै तब एक आत्मा मननकर्त्ता अरु एक मनन करनेयोग्य इसप्रकार परस्पर में दो भिन्न आत्माहुये ' इस करके एकही शरीरबिषे दोनों आत्मा प्राप्त होवेंगे । अरु एकही आत्मा मननकर्त्ता अरु मनन करने योग्य होने करके वंश आदिकोंवत् उभय प्रकार से खण्डित होवेगा, ताते दोनों प्रकार असंभवही है । जैसे दोनों दीपकके परस्पर प्रकाश अरु प्रकाशक भावका असंभव है, क्योंकि दोनों तुल्य हैं ' अर्थात् एकस्थानमें दो दीपक हैं परन्तु तिनमें परस्पर प्रकाश प्रकाशक भाव नहीं क्योंकि दोनों प्रकाशरूप हैं, अरु जो प्रकाशरूप है सो प्रकाशक है अरु जो अप्रकाशी है वो प्रकाश्य है ताते जहां एक प्रकाशवान् अरु एक अप्रकाशी होता है, तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव होताहै, अरु जहां दोनों समान प्रकाशधर्मा होते हैं तहां प्रकाश्य प्रकाशक भाव संभवे नहीं तैसेही एक शरीर में दो आत्माके होने से भी एक मननकरने योग्य अरु एक मननकर्त्ता मानिये तो सो बने नहीं, क्योंकि दोनों आत्मा समान चैतन्य हैं, अरु मनन करने योग्य वस्तु जड़ होती है अरु मननकर्त्ता चैतन्यहोता है, अरु आत्मादोनों चैतन्य हैं ताते एक शरीरबिषे दो आत्मा मानने से भी परस्परमें मनन करता अरु मननकरने योग यह भाव बने नहीं ' अरु मननकर्त्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के मनन करने योग्य वस्तुबिषे आत्माके मननार्थ मननरूप व्यापारसे रहितकाल नहीं। अरुजब मननकर्त्ताभी लिंगसे आत्मा को मनन करताहै तबभी पूर्ववत् लिंगसे मननकरने योग्य आत्मा, अरु जो तिसका मननकर्त्ता, वे दोनों एकही शरीरबिषे प्राप्त होवेंगे, ताते यहां भी "एक एव वा द्विधेति" सो एकही है वा दो प्रकारका है,। यह पूर्वोक्त दोष होवेगा। ननु, [ऐसे "अमतो अविज्ञातः" अमतहै अविज्ञातहै,। इस युक्तिसहित श्रुति करके सर्वप्रकार से आत्माकी ज्ञेयताके अभाव से, ऐसे सिद्धहुआ, तहां पूर्ववादी शंका करताहै] जब आत्मा प्रत्यक्षप्रमाण से नहीं जाना जाताहै, अरुअनुमानसेभी नहीं जाना जाताहै तब "समआत्मेति" सो मेरा आत्माहै, ऐसे जानना,। यह कैसे कहतेहौ, वा "श्रोता मन्तेत्यादि" श्रोता है, मन्ता है, इत्यादि वाक्य कैसे कहते हौ,। तहां [तहां "विद्यादिति" इस श्रुतिबिषे अन्य के निषेध हुये स्वप्रकाशपने करके आत्माका स्वरूपसे स्फुरणही कहते हैं, परन्तु विषय होनेकरके वेद्यता नहीं, इसप्रकार हम समाधानको कहते हैं। इस अभिप्राय से आत्माके श्रोतापने आदिककी श्रुतिबिषे सिद्धान्ती समाधान कहे है] कहे है, आत्मा श्रोतापने आदिक धर्मवाला नहीं, क्योंकि आत्माका अश्रोतापनादिक श्रुति बिषे प्रसिद्धहै, तहां [ऐसे हुयेआत्मा श्रोता है मन्ताहै, अरु श्रोतानहीं मन्तानहीं, इसरीतिसे दोनोंप्रकारकरके श्रवणहुये श्रोतापने धर्म वालाही है इसप्रकार पश्चात् विपरीत ग्रहण तुझको युक्त नहीं, इसप्रकार सिद्धान्ती कहता है] क्यों विषम देखता है, हे वादी [ननु, लोक प्रसिद्धिके बलसे अनात्मधर्मताके निश्चयसे विषमता नहीं यहआशङ्का करकेसिद्धान्ती निषेधकरेहै]यद्यपि तुझको विषमनहीं है परन्तु मुझको विषम भासता है। कैसे कि जब यह आत्मा श्रोता है तब मन्ता न होवेगा, अरुजब मन्ता है तब श्रोता न होवेगा। तहां ऐसेहुये एकपक्षबिषे श्रोता वा मन्ता है अरु द्वितीय पक्ष बिषे आत्माश्रोताभी नहीं अरु मन्ता नहीं। तैसे अन्यठिकाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(द्रष्टापने अरु विज्ञातापने आदिकोंबिषे) भी कदाचित् होने पनाहै । जब ऐसे है तब श्रोतापने आदिक धर्मवाला अरु अश्रोता आदिक धर्मवाला आत्मा है, इस संशयके ठिकाने कैसे तुझको विषमता नहीं भासती , किन्तु भासनी चाहिये 'जैसे जब देवदत्त चलता है तब स्थित नहीं किन्तु गंताही है, अरु जब बैठा है तब सो गंता नहीं किन्तु स्थितही है । जब ऐसे व्यवस्था है, तब तिसको पक्षविषे 'क्रमसे' गंतापना अरु स्थितपना है, परन्तु गंतापना वा स्थितपना नित्य नहीं । तद्वत् आत्मा का श्रोतापनादिकभी नित्य नहीं । [इसके मध्य अभिप्रायके न जानने वाले जो वैशेषिकादि हैं सो आत्माका श्रोतापना अरु अश्रोतापनादिक दोनों भी कदाचित् क (अनित्य) ही होवो, इसप्रकार कहते हैं, सोई कहते हैं, यहां वैशेषिकादिवादी भी तैसेही देखतेहैं। पक्षके प्राप्तहुये श्रोतापने आदिक करके, आत्मा श्रोता अरु मन्ता इत्यादिक कहते नहीं । जिस करके ज्ञानको संयोग से जन्यपना अरु एक कालबिषे न होनेपना कहते हैं । अरु मैं अन्य ठिकाने [ज्ञानके कदाचित्पने बिषे अरु एक कालमें न होने बिषे क्रमके अनुसार वे वैशेषिकादि प्रमाण कहते हैं, । तहां यह अर्थ है कि जब मन न होवे चक्षुरादि इन्द्रियन के एक कालबिषेही रूपादिकन से सम्बन्धके हुये एक कालबिषेही सर्व इन्द्रियों से सर्व विषयों का ज्ञान होवेगा, क्योंकि इन्द्रिय अरु विषयों के सम्बन्धरूप सामग्री का सद्भाव है ताते, अरु तैसे एक कालबिषे सर्व विषयों का ज्ञान नहीं होवे है, एतदर्थ क्रमकरके तिस तिस इन्द्रियसे संयोगीमन अंगीकार करनेयोग्य है । तैसेहुये एक काल बिषे सर्वइन्द्रियोंसे मनके संयोगके अभावसे, एक काल बिषे सर्व विषयों का ज्ञान नहीं होताहै । एतदर्थ एककाल बिषे रूपादि सर्व विषयों के ज्ञानके असंभवरूप लिंगसे, मन है ऐसा कहते हुये वैशेषिकादि एककालबिषे सर्वके ज्ञानोंका असंभव है । इसप्रकार कहतेहैं ।] मनवाला होताहुआ ' अर्थात् मेरामन अपने ठिकाने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न रहा' ताते नहीं देखताहुआ 'अर्थात् मेरा मन और ठिकाने था ताते मैंने देखा नहीं' इत्यादिक एककालविषे ज्ञानका जो असंभव है सो मनका लिंगहै, इस अर्थको योग्य देखते हैं। [वैशेषिकादिककेमतकेसिद्धान्तीकरके देखायेहुयेतब वैशेषिकादिकों की रीतिसे दोनों श्रुतियों के संभवसे अरु आत्माके श्रोतापने आदिक धर्मकी सिद्धि से तैसेही होय, इस प्रकार पूर्वपक्षी वा तटस्थी, सिद्धान्ती के प्रति शंका करते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब इस प्रकार युक्त होय तब ऐसेही होय, क्या तुमको इष्ट नहीं] जब ऐसे योग्य होय तब ऐसे ही होय, क्या तुमको इष्ट नहीं, यहां सिद्धान्ती कहे हैं कि ऐसे जब [आत्मा के कदाचित्कज्ञानसे श्रोतापने आदिक धर्मवान्पने को श्रुति करके असम्मत होनेसे, सो योग्य नहीं है, इस प्रकार सिद्धान्ती तिस पक्षको खंडन करते हैं] तुमको इष्ट है तो होवो, परन्तु श्रुति का अर्थ तो 'तुमारे कथन प्रमाण' संभवे नहीं॥ क्या श्रोता है, मन्ताहै, इत्यादिरूप श्रुतिका अर्थ नहीं है? तहां ["न श्रोता न मन्तेत्यादि" श्रोता नहीं, मंन्ता नहीं, इसश्रुति करके विशेष से तीनों कालोंबिषे भी श्रोतापने आदिक धर्मकी रहितता के 'अर्थात् आत्मा कालत्रयमें भी श्रोतामंतापने आदि धर्मवान् स्वरूप करके नहीं, इस प्रकार श्रोतापने आदिक धर्म की रहितताके' प्रतिपादन से, तिन श्रोतादि धर्म करके युक्तपना असम्मतही है, इस प्रकार सिद्धान्ती उत्तर कहे हैं] कहते हैं, "न श्रोता मन्तेति" न श्रोता है न मन्ता है, इत्यादि श्रुति वचन से आत्मा को श्रोतापने आदिक धर्म करके रहितपना है॥ ननु ["जब यह श्रोता है" इत्यादि वाक्य करके श्रोतापने आदिक के पक्षविषे प्राप्तहोने को तुमोंकरके कथन किया है ताते, अरु वैशेषिकके मतको देखावने की बेलाबिषे कदाचित्क ज्ञानसे तिसके प्रतिपादनसे पक्षबिषे प्राप्त श्रोतापने आदिक अरु तिसके अभाव की विषय होनेकरके दोनोंश्रुतियों के सम्बन्धको वादी शंकाकरता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है] पक्ष कहिये विकल्पविषे प्राप्तहोने करके तुमने निषेध किया सो [पक्ष ' उभयरूपता ' के असम्बन्धी श्रोतापने अरु तिसके अभावकी श्रुतियोंकरकेअपनीप्रीतिसे प्रतीतिसे पक्षके सम्बन्धी होनेकरके तिसका संकोचयुक्त नहीं, इस प्रकार सिद्धान्ती अपने अभिप्रायको वर्णन करतेहुये कहतेहैं] बने नहीं, क्योंकि आत्मा का जो अश्रोतापनादिक है सो नित्य है, क्योंकि। " नहि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यते "। श्रोताके श्रवणका विनाश नहीं है, इत्यादि श्रुति करके कहे तिसके अंगीकार से ॥ अरु जब ऐसे है तब श्रोतापनादिक नित्यही है, इसप्रकार अंगीकारहुये प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध एक कालविषे ज्ञानका असंभव अरु आत्माके अज्ञान का अभाव कल्पित होवेगा, अरु सो ' होना ' अनिष्टहै, तहां [यहांसे सिद्धान्ती, उक्त पूर्वपक्ष का समाधान करता है। यहां यह अर्थ है कि एक कालविषे ज्ञानका संभव अरु अज्ञान का सद्भाव इन दोनों दोषोंका संभव नहीं] सिद्धान्ती कहे है कि दोनों दोषोंका संभव नहीं, क्योंकि आत्माको श्रवणादिक अरु श्रोतापने आदिक धर्मवान्पनेकी श्रुतिसे। अरु अनित्य, मूर्त्तरूप अरु संयोग वियोगरूप अर्थवाले चक्षुरादिकनकी दृष्टि आदिकों को अनित्यपनाही है। जैसे अग्नि आदिकों का जो जलावना है सो तृणादिकों के संयोगसे जन्यहोनेकरके अनित्य है, तद्वत्। अरु नित्य अमूर्त्तरूप अरु संयोग, विभागरूप धर्म से रहित आत्माको संयोग से जन्य दृष्टि आदिकरूप अनित्यधर्मवान् पना नहीं संभवताहै। जैसे " नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यते " द्रष्टाकी दृष्टिका लोप नहीं ' इत्यादिरूप श्रुति है। अरु जब [नित्य अरु अनित्य भेदसे ' दोनों दृष्टिके अंगीकारविषे वादी गौरवदोष की शंकाकरेहै] ऐसे है तब दृष्टि दोहैं, तिनमें चक्षुकी दृष्टि अनित्य है अरु आत्माकी दृष्टि नित्य है। अरु तैसे श्रुति (श्रवण) भी दोहैं तिसमें श्रोत्रकी श्रुति अनित्य है, अरु आत्मस्वरूप की श्रुति नित्य है। तैसे मति (विज्ञाति) भी बाह्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु अबाह्य है। [श्रुतिकी प्रमाणता से उभय प्रकारकी दृष्टि के अंगीकार बिषे गौरव प्रमाण करके सिद्ध (अकिंचित्कर) है इस प्रकार सिद्धान्ती कहताहै [ऐसेहुयेही "दृष्टेर्द्रष्टाश्रुतेःश्रोता" दृष्टिका द्रष्टा है, श्रुतिका श्रोताहै, इत्यादिरूप यह श्रुति घटित होवेहै। अरु लोकबिषे भी चक्षुके तिमिरके आवने अरु जाने बिषे दृष्टिनाशहुई, अरुदृष्टि उत्पन्नहुई इसप्रकारचक्षुकी दृष्टिका अनित्यपना प्रसिद्धहै। तैसे श्रुति अरुमति आदिकोंका भीहै। अरु आत्मा की दृष्टिका नित्यपनाही प्रसिद्धहै ' अर्थात् जिस अन्तर दृष्टिकरके बाह्य दृष्टिकी मन्दता तीव्रता भावाभाव जानाजाताहै, सो नित्य अविनाशी आत्मदृष्टि है ' अरु लोकबिषे निमीलित नेत्रवाला पुरुष कहताहै कि आज मैंने स्वप्न बिषे अपना भ्राता देखा, तैसे ही बधिर भावको प्राप्तहुआ पुरुष कहता है कि आज मैंने स्वप्न बिषे मन्त्र ' वा सुन्दर गायन श्रवण किया ' इत्यादि प्रसिद्धहै। अरु जब चक्षुके संयोगसे जन्यही आत्मा की नित्य दृष्टि होवे, अरु तिस चक्षु संयोगके नाशहुये नाश होवे, तब निमीलित नेत्र वालापुरुष स्वप्नबिषे नीलपीतादि पदार्थोंको न देखेगा। अरु "नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यते" द्रष्टाकी दृष्टिकालोप होता नहीं,। इत्यादिरूप यह श्रुति अघटित होवेगी। अरु "तच्चक्षुः पुरुषे येन स्वप्नंपश्यतीति" जिसकरकेस्वप्नको देखताहै सो चक्षुपुरुषबिषेहै, इत्यादिरूप यह श्रुति नित्य आत्मदृष्टि की अरु अनित्य बाह्य दृष्टिकी ग्राहकहै। अरु बाह्यदृष्टि को उत्पत्ति विनाशादिक अनित्य धर्मवाली होनेसे तिसकी ग्राहक आत्मदृष्टिको तद्वत् प्रकाशकपना अरु अनित्यपनादिक जो लोकको प्रतीत होते हैं सो भ्रान्तिरूप निमित्त करके हैं, यह युक्त है। अरु जैसे भ्रमणादि धर्मवाले अलातादिकोंको विषयकरनेवाली दृष्टिभी भ्रमतेहुयेवत् होती है, तद्वत्ही लोककी दृष्टिहै। अरु तैसे "ध्यायतीव लेलायतीव" ध्यानकरतेवत् लीला करतेवत् होवे है, यह श्रुति स्पष्ट कहती है। तिसकरके आत्मदृष्टिको नित्य होने से एककालबिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होना अरु एक काल बिषे न होना ऐसा नहीं । बाह्य अनित्य दृष्टि रूप उपाधि के वशसे लोकों को अरु तार्किकनको, वेदके सम्प्रदाय करके रहित होने से "अनित्यात्मनो दृष्टिरिति" आत्माकी दृष्टि अनित्यहै, यह भ्रान्ति घटितही है । अरु जीव ईश्वर अरु परमात्माके भेदकी कल्पना भी इसहीकी भ्रान्तिरूप निमित्तवालीही है । अरु जितने [किंवा "आत्मनैवायं ज्योतिषाऽऽस्ते" "अयमात्मा ब्रह्म" "सर्वानुभूः प्रज्ञानघन एव" आत्मरूप ज्योतिसेही यह सर्व है, यह आत्मा ब्रह्महै, सर्व का अनुभवरूप प्रज्ञानघनही है, इत्यादि श्रुतियों से आत्माको नित्य दृष्टिरूप होने से, अरु "सर्वाः प्रजा यत्रैकं भवन्तीति" जहां सर्व प्रजा एक होतीहै, इत्यादि श्रुति करके सर्व कल्पना के तन्मात्रपने करके, अरु तातें भिन्नकरके अभावका कथन होने से, अरु आत्माको निर्विशेषरूप होने से, तिस आत्मरूप नित्य दृष्टिबिषे ,है वा नहीं है, इत्यादि सर्व कल्पना भ्रान्तिरूप निमित्तसेही है । इसप्रकार कहते हैं,] वाणी के नाममय अरु मनके रूप 'वा संकल्प' मयभेद जहां (जिस आत्माबिषे एक होते हैं, तिसको विषय करनेवाली (तिसकी स्वरूपभूत) इसही से नित्य निर्विशेष 'अर्थात् सर्वभेद रहित' दृष्टिकी „है„ ऐसी कल्पना आस्तिकन को है, अरु „नहीं है„ ऐसी कल्पना, नास्तिकन को है, अरु "है' नहीं है" ऐसी कल्पना दिगंबरमतवाले को है, अरु अन्योंको भी सावयव भावादिकों की कल्पना है सो सर्वही भ्रान्तिरूप निमित्तवाली है । [ननु, वेतार्तिक आत्माके अस्तिपने आदिकों को युक्तिरूप तर्क से साधतेहैं, एतदर्थ उनको भ्रान्तिरूप निमित्त करके युक्तपना नहीं, यह आशंकाकरके श्रुति विरुद्ध होनेसे, अरु आत्माबिषे असंभवसे अरु तिन कल्पना के सद्भाव हुये मोक्षका असंभव होनेसे, तिन तार्किकों की कल्पना प्रमाणके मार्गपर आरूढ होती नहीं, ऐसा कहते हैं,] कई एक वादियों के मतबिषे आत्मा है ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतबिषे नहीं है, ऐसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्पना है, अरु किसी के मतबिषे है औ नहीं है, ऐसी कल्पना है, अरु किसी के मतबिषे अनेक गुणवाला है, अरु किसी के मतबिषे गुण रहित है, अरु किसी के मतबिषे जानता है, अरु नहीं जानता है, अरु किन्हीं के मतबिषे क्रियावाला है, किसी के मतबिषे क्रिया रहितहै, अरु कोई के मतबिषे फलवालाहै, किसी के मतबिषे फल रहित है, अरु किसी के मतबिषे कर्म अरु वासनारूप बीजवाला है, अरु किन्हीं के मतबिषे बीज रहित है अरु किसी के मतबिषे सुखरूप है, किसी के मतबिषे दुःखरूपहै, किसी के मतबिषे मध्यम है (देहतुल्य आकारवाला है) अरु किसी के मतबिषे असध्यम (अणु वा विभु) है, अरु किसी के मतबिषे शून्य है, अरु किसी के मतबिषे अशून्य है, अरु किसी के मतबिषे यह अन्य है, मैं अन्य हौं, ऐसी कल्पना है ॥ सो ऐसी कल्पना को मन वाणी से अगोचर आत्माबिषे कल्पना करनेको इच्छताहै सो निश्चय करके आकाशको भी चर्मवत् वेष्टन करनेको। ' अर्थात् आकाशको चर्म से वेष्टित (मढ़नेको) करने को वा वेष्टन मृगचर्मादि वा चटाईवत् वेष्टन (लपेटनेको) करने को '। इच्छताहै, अरु जलविषे जलचरन के (खोज) पादचिह्नों को अरु आकाशबिषे अकाशचारियों के खोज (पादचिह्नों) को देखने को इच्छते हैं ॥ "नेति नेति" अरु "यतोवाचो निवर्त्तन्ते" जहां से वाणी निवृत्त होती है, । इत्यादि श्रुतियों से अरु "कोऽद्धावेदेत्यादि" कौन साक्षात् जाने, इस मन्त्रके वाक्य से, आत्मा को मन वाणी की अविषयता सिद्धहै ॥ ननु, [आत्मा कोवाणी अरु मनकी अविषयताकेहुये श्रवणअरुमननकेअसम्भव से आत्माका ज्ञान ' होना ' सम्भवे नहीं इस प्रकार वादी शंका करे है] तब तिस आत्मा का "तमहं सम आत्मेति विद्याम्" सो मेरा आत्मा है, इस प्रकार का ज्ञान कैसे होवेगा, जो "सम आत्मेति" सो मेरा आत्मा है तिसको मैं किस प्रकार जानों ॥ ताते सो प्रकार कहो ' कि जिस करके मनवाणी आदिकों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अविषय आत्मा अपना आप जाना जाय' ॥ यहां ["नेतिनेति" ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, । इत्यादि श्रुतिके उदाहरण करकेही अन्यके निषेधसेही तिस स्वप्रकाशका बोध होताहै, इसप्रकार आत्मज्ञान के । होनेके ' प्रकारको कथन कियाहै ताते अरु यहां अन्यप्रकार के अभावसे इसही प्रकारसे अविषय होनेकरके भी आत्मा जाननेको योग्य है ' अर्थात् बुद्ध्यादिकों का अविषय अरु सर्वका प्रकाशक साक्षी आत्मा श्रुतिके निषेधमुख वाक्य करके जानने योग्य है ' इसप्रकार मानिके सिद्धान्ती उपहास सहित उत्तर कहताहै,] सिद्धान्ती आख्यायिका कहताहै, कोई एक प्रसिद्ध मूढ़ मनुष्यथा, तिसको किसीभी अपराधके होनेसे कईएक पुरुषों ने " तुझको धिक्कार है, तू मनुष्य नहीं,, इसप्रकार कहा । तब सो पुरुष मूढ़ होनेकरके, अपने मनुष्यपनेकी प्रतीति करनेको किसी अन्यपुरुष के पास जायके प्रश्न करताहुआ कि हे साधो ' मैं कौनहौं सो तुम कहो, तब वो उसकी मूढ़ताको जानके ' कि यह मूढ़है ' कहताहुआ कि तुझको क्रमसे बोध करौंगा ॥ पीछे स्थावरादि स्वरूपभाव को निषेध करके तू अमनुष्य नहीं है, इसप्रकार कहके उपराम होताहुआ । पश्चात् वो मूढ़पुरुष उस बोधकर्त्ता के प्रति कहताहुआ कि, आप मुझको बोध करनेको प्रवर्त्त हुये, अरु चुप्प होतेहुये, सो बोध क्यों नहीं करते, तब पुनः उसने कहा कि तू अमनुष्यही है, इसप्रकार तिसके भावसे तैसेही वाक्य कहतेहुये, जो अपने मनुष्यपनेको जानता नहीं सो मनुष्यहै, इसप्रकार कहनेसे भी अपने मनुष्यपने को कैसे जानेगा ताते शास्त्रके अनुसार उपदेशही आत्माके बोधका प्रकारहै अन्य नहीं । एतदर्थ अग्निसे जलावनेयोग्य जो तृणादि सो अन्यकिसी से भी जलावने को शक्य नहीं । इसही करके शास्त्र जो है सो आत्मस्वरूप को बोधन करनेको प्रवृत्तहुआ अमनुष्यपने के निषेधवत्, " नेति नेति " ऐसा कहके उपराम होता है । तैसे पुनः " अबाह्य " यह सर्वका अनुभवरूप आत्मा ब्रह्महै, "एतावदनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शासनम्" एतनाही अनुशासन (उपदेश) है, "तत्त्वमसि" सो तूहै, "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केनकं पश्येत्" जहां तो इसको सर्व आत्माही होताभया तहां किसकरके किसको देखेगा, इत्यादि श्रुति शास्त्र भी आत्मा के वेद्यपने को निषेधही करताहै। अरु यावत् यह पुरुष ऐसे उक्तप्रकारके इस 'अपनेआप' आत्मा को जानता नहीं तावत् यह बाह्य अनित्य दृष्टिरूप उपाधि को आत्मापने करके जानके अविद्या से उपाधि के धर्म को अपने धर्मकरके मानता हुआ, ब्रह्मासे आदि लेके देवतिर्यक् अरु नरक योनिरूप स्थानों बिषे बारम्बार आवृत्ति (संसृति, भ्रमणको) प्राप्त होताहुआ, अविद्या काम अरु कर्म के वशसे संसारको प्राप्त होता है। सो इसप्रकार संसार को पावताहुआ। ग्रहण किये देह अरु इन्द्रिय के संघात को त्यागता है पुनः अन्य संघात को ग्रहण करता है। बारम्बार ऐसेही नदीके प्रवाहवत् जन्म मरण रूप बन्ध के अनाशकरके युक्त वर्त्तमानहुआ किन अवस्था करके युक्त वर्त्तता है, इसही अर्थ को। [यहां यह भाव है कि जीवकी अवस्थारूप तीन जन्मको अत्यन्त ग्लानिरूप होनेसे तिसके विचारने से वैराग्य होता है,] वैराग्यके अर्थ देखावतीहुई श्रुति कहे है, कि ["पुरुषेह वा अयमादितो गर्भो भवति" पुरुषबिषे यह आदिसे गर्भहोताहै, इसवाक्यबिषे इदं, शब्दके अर्थको कहतेहैं। यहां यह अर्थहै कि जो मस्तकको विदीर्ण करके तहां प्रवेश करके स्थित है सो „ यह „ इसप्रकार कहते हैं [यहही 'कि जिसने मस्तकके द्वार से प्रवेश किया है'। अविद्या काम अरु कर्मवान् जीव, यज्ञादि कर्मोंको करके इस मृत्युलोक में धूमादिकके क्रम से चन्द्रमासि (स्वर्ग वा पितृलोक) को पायके 'कर्म्मोंका फल भोगके' कर्म्मों के क्षयवाला हुआ वृष्टि आदि क्रमसे इस भूलोकबिषे आयके अन्नरूप हुआ पुरुष कहिये पितारूप अग्निबिषे आहुति हुआ है। '"तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति" इस श्रुति के प्रमाण से' ८ पुरुषेह वा अयमादितो गर्भो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवति ?' पुरुष बिषे प्रसिद्ध यह प्रथम गर्भ होता है, अर्थात् तिस पुरुष बिषे प्रसिद्ध यह संसारी रसादिक धातुके क्रमसे प्रथम वीर्यरूपसे गर्भ होता है' अर्थात् यह जीव स्वर्ग बिषे अपने पुण्य कर्म का फल भोग पुण्य के क्षयहुये वृष्टिके मार्ग से पृथिवी बिषे आय अन्नरूप से प्रकट होता है पुनः किंचित् पुण्य कर्म के शेष से कर्मानुसार इसको जिस वर्णजाति में जन्म पावना होता है तिस वर्णजातिके पुरुषके उदरबिषे आय वीर्यरूप से वह प्रकट होता है, इस प्रकार का सुकृती जीव का जो अपने कर्मानुसार पुरुषके उदरबिषे आवना है सो उसका प्रथम गर्भवास है, ॥ तिसको कहते हैं ' य देतद्रेतस्तदेतत् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भृतात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यथा स्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ' जो यह रेत है सो यह सर्व अङ्गों से तेज उपजा है, आत्मा को आत्माबिषे धारता है तिसको जब स्त्री बिषे सिंचन करता है तब इसको जन्म देता है सो इसका प्रथम जन्म है; अर्थात् जो यह पुरुष बिषे रेत कहिये वीर्य है तिसरूपसे ' सो प्रकट ' होता है, अरु सो यह रेत अन्नमय पिंडके रसादि धातुरूप सर्व अंगों से शरीर का साररूप तेज उपजता है सो पुरुष का आत्मारूप होने से आत्माहै ' अर्थात् अन्नमय पुरुष का सारभूत होने से रेत उसका आत्मा है तिस रेतरूप से गर्भरूप हुये आत्माको ' अर्थात् जो जीव अपने कर्मानुसार अन्नरूप से पुरुषके उदरविषे आय वीर्यरूप से प्रकट हुआ है वा वीर्यविशिष्ट हुआहै तिस आत्माको ' आत्मा (शरीर) बिषे धारताहै । तिस रेतको जब, जिस कालमें अपनी भार्य्या (स्त्री) ऋतुमती होय तब तिस कालमें ' अर्थात् स्त्री के रजस्वला होनेके चतुर्थदिवस उपरान्त पञ्चमदिवससे सोलहवेंदिवस पर्यन्त स्त्री ऋतुमती रहती है सो ऋतुकालमें स्त्री से भोग करना तिसमेंभी समदिवस अर्थात् चौथा छठा आठवां दशवां बारहवां चौदहवां सोलहवां यह त्याज्यहैं' तिस स्त्रीरूपा अग्निबिषे स्त्रीगमन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत् स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । साऽस्यैतमात्मानमत्र गतं भवति २ । २५ ॥

करतसन्ते सिंचनकरे ' अर्थात् स्त्री में अग्निकी भावना अरु वीर्य में हविकी भावनाकर स्त्री के विषे वीर्य को स्थापन करे इस प्रकार करने से सर्वोत्तम गुण विशिष्ट पुत्र प्रकट होता है ' तब पिता तिस इस अपने गर्भरूप रेतको जन्मदेता है, इस संसारी जीवका ' जो पुरुषके वीर्यरूप गर्भ में आयाहै ' वीर्य के सेचन कालविषे जो तिस पुरुषके स्थानसे निकलनाहै सो प्रथम जन्म ' प्रथमावस्थाका प्रकटपना ' है १ । २४ ॥

हे सौम्य ! ८ तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति) ८सो स्त्री के स्वरूपसे अभिन्नता को पावता है ? अर्थात् भार्याविषे रेतको सिञ्चन करताहै इस अर्थविषे " असावात्माऽमुमात्मानमिति " यह आत्मा (पुरुष) इस आत्माको (अपने रेतरूप आत्मा को) इस (भार्यारूप) आत्माके अर्थ देता है, । यंह वाक्य प्रमाणहै । सो [ननु स्त्री के शरीरविषे प्रवेशको पाया पुरुष का वीर्य स्त्रीको शरीरविषे लगे बाणवत् उपद्रव करनेवाला होवेगा, यह आशंका चित्तविषे धरायके " तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति " सो वीर्य स्त्री के आत्मभावको पावता है, । इत्यादिरूप यह वाक्य कहाहै, तिस का व्याख्यान करते हैं] रेत जिस स्त्री विषे सिंचन किया है तिस स्त्री के स्वरूप से अभिन्नताको प्राप्त होता है, जैसे पूर्व पिताके स्वरूप से अभिन्नता को पाया तैसे, । अरु ८ यथास्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति) ८जैसे अपना अंग, तिस इसको नाश करता नहीं ? अर्थात् जैसे अपना (स्त्री का) स्तनादिरूप अंग अपने स्वरूपसे अभिन्नताको पायाहै तैसेही अभिन्नताको पावता है । तिस हेतुसे सो गर्भ इस माताको ,पिटकादि शरीराविषे उत्पन्नहुये व्रण (फोड़ा रूप ग्रन्थीविशेष) वत् नाश (पीड़ा)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्री गर्भं बिभर्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । आत्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्ततावीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ३ । २६ ॥

करता नहीं, ताते स्तनादि अपने अंगोंवत् आत्मभावको पाय है, ताते सो रेत माताको बाधा करता नहीं । अरु ८ साऽस्यैत मात्मानमत्रगतं भवति ? ६ सो इसके इस आत्माको यहां प्रवे को जानके पालन करेहै ? अर्थात् सो गर्भिणी ऐसे इस अ रूप भर्त्ता के इस (वीर्यरूप) आत्माको यहां उदर बिषे प्रवेश पाया जानके पालन करे है । अर्थात् गर्भ से विरुद्ध भोजन दिकों के परित्याग को अरु गर्भ के अनुकूल भोजनादिकों उपयोगको करे है ॥ "गर्भइव सुभृतो गर्भिणीभिः" २ । ३५

हे सौम्य ! ८ सा भावयित्री भावयितव्या भवति ? ६ सो प लन करनेवाली रक्षाकरनेको योग्य होती है ? अर्थात् सो [स गर्भिणी तिस गर्भरूप भर्त्ताका भी रक्षण करती है ताते सो भ करके रक्षाकरने योग्यहै, इसप्रकार कहते हैं] गर्भरूप भर्त्ता स्वरूपकी पालन करनेवाली गर्भिणी भर्त्ताकरके रक्षाकरनेयो होती है । अरु जिसकरके लोकबिषे उपकारके प्रति उपकार कि विना किसीका किसी से भी सम्बन्ध संभवे नहीं तिसकरके गर्भिणी भर्त्ताकरके रक्षण करने योग्य है ८ तंस्त्री गर्भं बिभर्ति ६ तिस गर्भको स्त्री धारण करेहै ? अर्थात् । अरु तिस गर्भको जन्मसे पूर्व उक्त गर्भधारण के विधानसे धारण करे है । "सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति" ६ सो जन्मसे पूर्व कुमारको अरु जन्म से पीछे कुमारको पालनकरेहै ? अर्थात् पिता जन्मसेपूर्वही उत्पन्न होनहार बालकको पालन करेहै । ८ स यत् कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति, आत्मानमेव तद्भा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्म्मेभ्यःप्रतिधीयते। अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते। तदस्य तृतीयं जन्म। तदुक्तमृषिणा ४। २७॥

यति) ८सो जिस कुमारकी जन्मसे पूर्व रक्षा करे है अरु जन्मसे पीछे उत्पन्नहुये कुमारको जातकर्मादिकों से पालन करे है सो अपनेआपकोही पालन करे है ?; अर्थात् पिताका आत्मा (शरीर) ही पुत्ररूपसे जन्मताहै। अरु तैसे "पतिर्जाया प्रविशति इत्यादि" पिता जो है सो गर्भरूप होयके जायारूप माताबिषै प्रवेशकरता है तिस जायाबिषे पुनः नवीन होयके दशम मासबिषे जन्मताहै,। यह वाक्यकहाहै। प्र०। किस अर्थ अपनेको पुत्ररूपसे उपजायके पालनकरे है,। तहां कहते हैं, ८एषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्ततीहीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ?८इन लोकोंकी सन्तति के अर्थ (पालन करे है) जाते यह लोक प्रबन्धरूप करके वर्त्तते हैं, सो इसका द्वितीय जन्महै ?; अर्थात् इन पुत्र पौत्रादिरूप लोकोंकी सन्तति (अविच्छेद) के अर्थ पालन करेहै। अरु जो पुत्रके उत्पादनादिकों को न करे तो यह लोक विच्छेदको पावेंगे। अरु जिस करके वे ये लोक पुत्रके उत्पत्त्यादि कर्म करके अविच्छेदसेही प्रबन्ध 'अर्थात् पुत्रादिकों की उत्पत्त्यादि कर्मविषे विच्छेद न होय तिस संकेत' रूप करके वर्त्तते हैं, ताके तिनके अविच्छेदार्थ पुत्र की उत्पत्त्यादि कर्म कर्त्तव्य है, मोक्षार्थ नहीं। अरु कुमाररूप से माता के उदरसे जो निकसना है सो रेतरूप की अपेक्षा से इस संसारी पुरुषका द्वितीय जन्म (द्वितीय अवस्था की प्रकटता) प्रसिद्ध है ३। २६॥

हेसौम्य !८सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यःकर्म्मेभ्यःप्रतिधीयते) ८इसका सो यह आत्मा पुण्यकर्म के अर्थ स्थापन कियाहै ?; अर्थात् इस पिताका सो यह पुत्ररूप आत्मा शास्त्रोक्त पुण्यकर्म के अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कर्म्मोंके सम्पादनार्थ) स्थापन कियाहै, अर्थात् पिताको जो कर्म कर्त्तव्यहैं तिनके करने के अर्थ पिताके स्थानापन्न 'पुत्रको' स्थापन करनाहै। तैसेही बृहदारण्यक उपनिषद्बिषे सम्पत्तिनाम कर्मविद्या के प्रकरणबिषे "पित्रानुशिष्टोऽहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं इत्यादि" पिताकरके शिक्षितहुआ, मैं ब्रह्माहूं, मैं यज्ञहूं, इत्यादि रूपको पावता है। इसप्रकार कहा है ॥ ८ अथाऽस्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्योवयोगतःप्रैति? पश्चात्इसका यह अन्य आत्मा कृतकृत्यहुआ मरताहै? अर्थात्, पश्चात् पुत्रबिषे भारको स्थापन करके इस पुत्रका यह जो पितारूप अन्यआत्माहै सो कृतकृत्यहुआ (तीनों ऋणरूप कर्त्तव्य से मुक्तहुआ) अरु आयुके पूर्णहुये मरताहै ८ सइतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म, तदुक्तमृषिणा? सो इससे शरीरको परित्याग करताहुआही पुनः जन्मता है सो इसका तृतीय जन्म है, सो ब्राह्मणभाग कहे हैं? अर्थात् सो इसलोकसे शरीरको परित्याग करताहुआही तृण जलौका (जोंक) वत् कर्म्मों करके रचित अन्य देहको ग्रहण करताहुआ पुनः जन्मताहै। मरणको पायके जो 'कर्मानुसार' प्राप्त होने योग्यहै सो इसपुरुषका तृतीय जन्म 'तृतीयावस्थाकी प्रकटता' है ॥ ननु, संसार को करनेवाले पिता से रेतरूप करके प्रथम जन्म कहा। तिसहीका माताके उदरसे कुमाररूप करके प्रकट होना, द्वितीय जन्मकहा। अरु तिसही के तृतीय जन्मके कहने को योग्य हुये मरणको प्राप्त हुये पिताका जो जन्म सो तृतीय जन्म है, ऐसा कैसे कहते हो 'तहां सिद्धान्ती कहताहै' कि यह दोष नहीं क्योंकि पिता अरु पुत्रकी एकताको कहनी इच्छित है ताते, सो पुत्रभी अपने पुत्रबिषे अपना भार स्थापित करके यहांसे देहको त्यागताहुआही पितावत् पुनः जन्मको पावताहै ताते पुत्रकाही तृतीय जन्म कहा है ऐसे जानना, अन्य (पिता के) ठिकाने कथन किया सो जन्म अन्य (पुत्रके) विषयमें कथन किया होताहै, इस प्रकार से श्रुति माननी है, क्योंकि पिता अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवानाजनिमानिविश्वाः ।
शतं मापुरआयसीररक्षन्नधः श्येनोजवसानिरदीयमिति
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ५ । २८ ॥

पुत्रकी एकता है ताते । इस प्रकार तीनअवस्था की प्रकटता करके संसारको पावताहुआ (जन्ममरणरूप बन्धन बिषे आरूढ़ गाढ़ बंधपाया) सर्वलोक संसार समुद्रविषे पतनको पाया है । सो किसी प्रकार से भी येनकेन अवस्थाबिषे श्रुतिकरके प्रतिपादित आत्मा को जानता है तबही संसारके सर्वबन्धनों से मुक्त हुआ कृतकृत्य होवेहै । सो यह वस्तुका तत्त्व मन्त्रबिषे भी कहा है । इस प्रकार अग्रिम वाक्य बिषे यह ब्राह्मभाग कहताहै ४ । २७ ॥

हे सौम्य ! [यहां यह अर्थ है कि वाक् अरु अग्न्यादिकन के शरीरग्रहणरूप जन्म कहे, तिस करके उपलक्षित सर्व संसार भी वाकादिक करण अरु तिनके अधिष्ठाता देवतादिकोंके संघात रूप जिंग शरीरकोही है, परन्तु असंग अरु निष्पाप मुझको नहीं । इस करके पदार्थ के विवेकपूर्वक आत्मा का ज्ञान कहा । यद्वा सर्वज्ञ आत्मासेही इनके जन्म हैं, इसप्रकार इनके जन्मके हेतुरूप मूलकारण आत्माको मैं जानताहौं । यहां यह भावहै कि यद्यपि गर्भबिषे श्रवणादिरूप ज्ञानकी सामग्री नहीं, तथापि पूर्व जन्मबिषे किये श्रवणादिरूप सामग्रीके वशसे ही प्रतिबन्ध की निवृत्तिकेहुये भी गर्भबिषे ज्ञानकी उत्पत्ति सम्भवेहै] ८गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहं देवाना जनिमानि विश्वाः ? ६ गर्भस्थानबिषेही हुआ मैं इन देवताओंके सर्व जन्मोंको अहो जानताहौं, अर्थात् माताके गर्भस्थानबिषेही स्थित हुआ, अनेक जन्मान्तरकी ' परमशुद्ध शुभ भावनाके पर्यायके वशते ' अर्थात् अनेक जन्मों में किये किंचित् किंचित् आत्मविचारके संस्कार एकत्र होय दृढ़ता अरु वृद्धिको पावते हैं अरु तिनके प्रभाव से कर्मादिकोंके संस्कार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतिहत पुरुषार्थ होते हैं, तब उस निर्विक्षेप हुये अन्तःकरणमें जन्म जन्मान्तरोंके किये आत्माके श्रवणादि किये ज्ञानके संस्कारोंकी तीव्रसंवेदनके होने से गर्भादि अवस्थाविषे स्वतः ही ज्ञान स्फुरण हो आवताहै "अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम्" इत्यादि प्रमाण से 'जैसे सोयेहुये पुरुषके स्वप्न में चलने के संस्कारों के तीव्र संवेग होनेसे वा निद्रामेंही उठके चलदेता है तैसेही अनेक जन्मों में किये आत्माके श्रवणादि ज्ञानके संस्कार एकत्र होय । तीव्रसंवेग (उत्थान) को पावते हैं तबगर्भादिस्थानावस्थामें स्वतःज्ञानका स्फुरण हो आवताहै । अरु स्वप्नवाले पुरुषका जो निद्रामें गमनहै सो अज्ञानजन्यहै ताते उसको अपनी गमन क्रियाका ज्ञान नहीं, अरु यहां गर्भस्थ विद्वान्को जो आत्मस्वरूप ज्ञानका स्फुरणहै सो श्रवणादि ज्ञानके संस्कारजन्य है ताते सर्व अवस्थाविषे यथार्थही है' ॥ मैं इनवाक् अरु अग्न्यादि देवताओंके जन्मों को जानताहौं यह आश्चर्य्यहै, जो 'देवताओं के जन्मकीभी मुझको ज्ञातहै' ८शतंमा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवासा निरदीयमिति' ८मुझको अनेक लोहमयी पुरिया रक्षाकरतीहुई, अधः श्येनपक्षिवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्य से निकला है ?, अर्थात् मुझको अनेक लोहमयीवत् भेदनकरनेको अयोग्य शरीररूपी पुरिया रक्षा करती हुई 'अर्थात् जैसे पक्षीको लोहमयी पींजरा बन्धन करताहै' तैसे विनाआयुके पूर्णहुये किसीप्रकारसे भी नाश को प्राप्त होवै नहीं ताते लोहमयी यह शरीररूपी पुरिया मुझको बन्धन करती हुई, । मैं संसारपाश (जाल) से निकसनेकरके अधोमुख (अन्तरमुख) देखताहुआ श्येन (शिकरा वा बाज पक्षिविशेष) पक्षीवत् आत्मज्ञानके किये सामर्थ्य से 'अविद्यात्मक संसार वा अनात्म अभिमानरूपा' जालको भेदन करके निकलाहुआहौं ॥ 'यह गर्भस्थ विद्वान् का विचार कथनहै कि मैं जालको भेदनकरके निकलाहौं ताते यह निश्चय है कि शरीर के त्यागसे संसारकी निवृत्ति न होके सम्यक् आत्मज्ञान होनेके सम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् ६। २९॥ इति चतुर्थखंडः॥

इति ऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयोध्यायः ॐतत्सत्॥

कालही संसारपाशकी सकारण अशेष निवृत्तिहै' ८गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच? ८गर्भविषेही स्थितहुआ वामदेवऋषि यह इसप्रकार कहताहुआ'; अर्थात् इसरीतिसे अहो (आश्चर्यहै) जो गर्भविषेही सोया (स्थितहुआ) वामदेवऋषि यह उक्तप्रकार का अनुभवप्रकटकरताहुआ॥-॥ यह आत्मज्ञानकी अचिंत्य अपार माहिमाहै जो गर्भस्थादि किसीअवस्थामेंभी सम्यक् ज्ञानहोतेही ८वाम, कहिये तत्पदके वाच्य ईश्वर से विपरीत त्वंपदकावाच्य, अरु ८देव, कहिये बुद्धिआदिक सर्वकाप्रकाशक, ऐसा जो शरीर प्राण मन बुद्धि इन्द्रियादिक संघात विशिष्ट चैतन्यरूप वामदेव ऋषि सो अपने लक्ष्य साक्षीआत्मा के सम्यक् अनुभवसे गर्भ में ही संसाररूप जालका भेदन करता है॥-॥ ५। २८॥

हे सौम्य! ८सएवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत्? ८सो ऐसे जानताहुआ इस शरीरके भेदसे निकलके इस स्वर्ग लोकविषे सर्वकामों को पायकै अमृत होताहुआ, ८अमृत, होता हुआ'; अर्थात् सो, [ज्ञानको अव्यभिचारी होनेकरके फलवान्ता के जनावनेकेअर्थ वामदेवने फलपाया, इसप्रकार कहनेको "स एवं विद्वान्" सो इसप्रकार जाननेवाला, । यहवाक्यहै, तिसका व्याख्यान करते हैं] वामदेवऋषि उक्त आत्माको उक्तप्रकार जानताहुआ इस शरीरके भेदसे, अर्थात् अविद्याकरके कल्पित 'ताते आन्तिमात्र' अरु लोहके पिंजरेवत् 'दृढ' अरु भेदन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेको अयोग्य, अरु जन्म मरणादि सहस्रावधि अनर्थोंकरके व्याप्त शरीररूप बन्धन के, परमात्मा के ज्ञानरूप अमृत के योग से जनित सामर्थ्य के किये भेदसे । ' अर्थात् शरीरोत्पत्तिके बीज अविद्याके विनाशते शरीरके विनाशहुये, अर्थात् अविद्याके अशेष नाशहुये शरीर के रहतेही विद्वान्की दृष्टिमें शरीर का अभाव है क्योंकि स्वप्नशरीरवत् भ्रान्तिमात्र है ताते ' । ऊर्द्ध परमार्थरूप हुआ, अधोभावरूप संसारसे निकसाहुआ, ज्ञानकरके प्रकाशित निर्मल शुद्ध सर्वात्मभावको प्राप्तहुआ इस उक्तप्रकार के अजा अमर अमृत [इस स्वर्गविषे मनुष्य देहादिक के भावको छोड़ि के स्वरूपभावसेही स्थित होताहुआ, इसप्रकार कहते हैं] अभय सर्वज्ञ अपूर्व (अकारण) अनपर (अकार्य) ' अर्थात् परावर कारणकार्य भावरहित ' अनन्त अबाह्य प्रज्ञान अमृत एकरस स्वस्वरूपभूत स्वर्गलोक बिषे, निर्वाणको प्राप्तहुये दीपकवत् प्राप्तहोताहुआ । ' अर्थात् सामान्य उष्मालक्षणवाला जो सर्वत्र व्याप्त अग्निहै सो तेल बत्ती आदिक उपाधिके सम्बन्धसे विशेष दीपकभावसे प्रकटहोताहै अरु जब तेलबत्तीरूप उपाधिको भस्म करके निर्वाणहोताहै तब विशेषभावको त्यागके अपने सामान्य रूपको प्राप्तहोताहै, तैसेही सामान्यज्ञानस्वरूप सर्वव्यापि चैतन्य परमात्मा प्राण अन्तःकरण इन्द्रियों के संघातरूप लिंगशरीररूप उपाधि साथ मिल विशेष जीवभावको प्राप्तहुआहै सो जब अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्यस्वरूपकोजानताहै तब लिङ्गरूपबत्ती आ कर्म्म संस्काररूप तेलको " ज्ञानाग्निसर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा " इत्यादि प्रमाणसे, भस्मकर अनहुई उपाधिसे मुक्तहुआ 'अर्थात् आकाशादि भूत भौतिककार्यरूप उपाधिहै तिनसर्व का कारण एक अद्वैत आत्माही है, अरु कारणसे कार्यकी पृथक् सत्ता के अभावसे कार्य कारणरूपही है ताते अविद्याकरके कल्पित ज आत्माबिषे उपाधि सो वास्तव विचारसे न होनेकरके अनहुईही है तिस उपाधिसे मुक्तहुआ अपने सामान्य सर्वात्म चैतन्य भाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ऐतरेयोपनिषद्गततृतीयोध्यायः ॥

हरिः ॐ ॥ कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे । कतरःस आत्मा । येन वा रूपं पश्यति । येन वा शब्दं शृणोति । येन वा गन्धानाजिघ्रति । येन वाचं व्याकरोति । येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति १ । ३० ॥

प्राप्त होताहै' ॥ आत्मज्ञानकरके पूर्व प्राप्तकामवालाहोनेसे जीवताहुआही सर्वकामोंको प्राप्तहोके अमृतहोताहुआ 'अर्थात् सर्वका कारण सर्वरूपआत्मा तिसकी सम्यक्प्राप्तिसे सर्वकीप्राप्तिहोतीहै ताते आत्मज्ञानी विद्वान्को प्राप्तकाम कहतेहैं, अर्थात् "इहैवसर्वे प्रविलीयन्तिकामा" इत्यादिप्रमाणसे पुरुषकोसर्वात्मभावकीप्राप्ति सेही सर्वकामना अभावहोतीहै, अरुकामनाके अभावहुए जीवतेही अमृतहोताहै "यदा सर्व्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः, अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते" इत्यादि प्रमाणसे' अमृत होता हुआ, यहां दो वार जो कथनहै सो फल साहित अरु वामदेव के उदाहरण सहित आत्मज्ञानकी परिसमाप्ति के दर्शनार्थ है ॥-॥ 'अर्थात् वामदेवके उदाहरण से सिद्धहुआ कि आत्मविषयक क्रिया श्रवणादिकके संस्कार निष्फल न होयके जन्मान्तर में भी मोक्षकरनेवाले होते हैं, ताते विवेकी मुमुक्षु पुरुष करके आत्मविषयक श्रवणादि अवश्यकरने योग्यहैं ६। २९ ॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्गतद्वितीयाध्यायभाषाभाष्य समाप्तम् ॥

अथ ऐतरेयोपनिषद्गततृतीयाध्याय-भाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! [पूर्व के द्वितीयाध्यायविषे ज्ञानोत्पत्तिके अर्थ तीन जन्मके निरूपणसे वैराग्यको निरूपणकिया। अरुपदार्थके शोधन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विना केवल वैराग्यमात्रसेही ज्ञानोत्पत्तिहोवे नहीं, याते पदार्थ के शोधनपूर्वक वाक्यार्थ के कहनेको तृतीय अध्यायहै। इसअभिप्रायसे पदार्थकेशोधनबिषे अधिकारीको देखावतेहुये वाक्यको प्रकट करते हैं,] वामदेवादिक आचार्योंकी परम्परासे श्रुतिकरके प्रकाशितहुई, अरु ब्रह्मवेत्ताओंकी सभाबिषे अतिप्रसिद्ध ब्रह्मविद्यारूप साधनके किये सर्वात्मभावरूप फलकी प्राप्तिको जानतेहुए आधुनिक ब्राह्मणरूप मुमुक्षु ब्रह्मकी जिज्ञासावाले, अरु जीवभावपर्यन्त अनित्य साधनरूप संसार से निकसनेकी इच्छावाले होयके विचार करत संते परस्पर प्रश्न करतेहुए। प्र०। किसप्रकार पूछते हुए, [विचारके प्रकारकोही वाक्यके अन्वयसे स्पष्ट करते को पूछताहै] तहां कहते हैं, ८कोयमात्मेति वयमुपास्महे कतर स आत्मा? ८यह आत्माहै, हम उपासनाकरें कौन सो आत्मा? कौन प्रसिद्ध सो आत्माहै? अर्थात् जिस आत्माको „यह आत्मा है„ इसप्रकार साक्षात् हम उपासनाकरें कौन सो आत्माहै ऐसे अरु जिस आत्माको यह आत्माहै, इसप्रकार साक्षात् उपासना करताहुआ वामदेवऋषि अमृत होताहुआ। तिसही आत्माको हम भी उपासना करें। कौन प्रसिद्ध सो आत्मा है। इसप्रकार परस्पर प्रश्न करतेहुये। इस रीतिसे [ननु, भूतोंके मध्य प्रकटता के अर्थ जो प्रवेशको पायाहै सो आत्माहै, इस निर्द्धारके सम्भवसे विचारका असंभवहै, यह आशंकाकरके, ऐसे हुये भी प्राण अरु आत्मा दोनोंको प्रविष्ट होनेकरके स्मरण किये होनेसे। 'अर्थात् प्राण अरु आत्मा दोनों के प्रवेशका स्मरण होने से'। तिनका निर्द्धारण नहीं हैं, इसप्रकार कहनेको दोनोंका प्रविष्टपना स्मरण किया, ऐसे कहते हैं] जिज्ञासापूर्वक परस्पर प्रश्न करनेवाले उन ब्राह्मणों को पूर्व कथन किये जो देहबिषे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राण अरु आत्मा तिनको विषय करनेवाली श्रवणसे जनित अनुभव से जन्य संस्कारसे उदयहुई स्मृति उपजतीहुई "तं प्रपादाभ्यां आपद्यत ब्रह्मेमं पुरुषं स एतमेवसीमानं विदार्य्य तया द्वारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पश्यत एतमेव पुरुषं," तिस इसपुरुष शरीरके अर्थ दोनों पादोंके अग्रों से ब्रह्मा (ब्रह्मरूप प्राण) प्रवेशको पायाहै, सो इसही मस्तककी सीमाको विदीर्ण करके तिस द्वारसे प्राप्त होताहुआ,। इस श्रुति करके इसही पुरुष के अर्थ दोनों ब्रह्म परस्पर की प्रतिकूलता करके प्रवेश करतेहुये, इसप्रकार की स्मृति होती हुई। अरु वो प्राण अरु परब्रह्म इस पिंडके आत्मरूपहैं। [तिन इसप्रकार विचारबिषे अपेक्षित दोनों आत्माकी स्मृतिको कहके अब विचारको कहते हैं] दोनोंबिषे एकआत्मा उपासना करनेके योग्य उचित है। जो यहां उपासना करनेको योग्य है सो निश्चय करके कौन आत्माहै, इसप्रकार विशेष निर्द्धारणार्थ पुनः विचारकरते परस्परमें प्रश्न करतेहुये। पुनः [ऐसे विचार के कियेहुये अतिशय शुद्ध अन्तःकरणवाले होनेसे, तिनको पादके अग्रसे प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणबिषे करणपने करके अनात्माका निश्चय होताहुआ, अरु मस्तक से प्रवेशको प्राप्तहुये आत्माबिषे उपलब्धापनेकरके आत्मताका निश्चय होताहुआ, ऐसा कहाहै, इसका अर्थ यहहै कि तिनको विचारके स्थान प्राण अरु आत्मा इनदोनों को विषय करनेवाली एकबिषे करणपनेरूप अरु दूसरे बिषे उपलब्धापनेरूप प्रकारसे विशेष (विलक्षण) रूप बुद्धि होतीहुई,] उन विचार करनेवालों को विशेष विचारके आश्रय को विषय करनेवाली बुद्धि होतीहुई। कैसे होतीहुई कि, इस पिंडबिषे अनेक भेद करके भिन्न करण से दोनों वस्तु प्रतीतहोवे हैं। अरु जिस करके प्रतीत होवेहैं, अरु जो एक अन्य करणों करके जानेहुये विषयों की स्मृतिके संघात से प्रतीत होवे है तहां प्रथम जिस करके प्रतीत होवेहै सो आत्मा होनेको योग्य नहीं। किस करके [इसप्रकार वर्णन करके तिस अर्थको श्रुतियों के अक्षरों से आरूढ़ 'दृढ़' करनेको वादी प्रश्न करता है] प्रतीत होताहै)। [तहां अब सिद्धान्ती प्रश्नकिये अर्थको श्रुति करके दृढ़ करताहै] कहते हैं (येन वा रूपं पश्यति, येन वा शब्दं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं । विज्ञानं । प्रज्ञानं । मेधा । दृष्टिर्धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा । ज्यूतिः । स्मृतिः । संकल्पः । क्रतुरसुः । कामोवशइति । सर्व्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति २ । ३ ।।

श्रृणोति, येन वा गन्धानाजिघ्रति, येन वाचं व्याकरोति, येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति) ८ जिस चक्षु करके प्रसिद्धरूपको देखता है, जिस श्रोत्र करके शब्दको श्रवण करता है, जिस घ्राण करके गन्धोंको सूंघताहै, जिस वाणीरूप करण करके नामरूपादिकों को कहता है, जिस 'रसनेंद्रिय' करके स्वादु अरु अस्वादु को जानता है ? १ । ३० ।।

हे सौम्य ! सो [ननु चक्षुरादि करणोंको करणपने के होने से भी पादके अग्रद्वारा प्रवेशको प्राप्तहुये प्राणकी करणरूपता के विषे क्या आया, इसप्रकार वादी शंकाकरता है] एक करण अनेक प्रकारके भेदको क्यों पायाहै [तहां प्राणकीही करणता को कहने को प्रथम हृदय अरु मन शब्द के वाच्यकी चक्षुरादिकों के भेदसे भिन्नताको कहते हैं] तहां कहते हैं, कि "प्रजानां रेतो हृदयं हृदयस्थं रेतोमनो मनसा सृष्टा आपश्च वरुणश्च। हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा तदेवैतद्धृदयं मनश्च एकमेतदनकधा" प्रजाका रेतकहिये सारभूत वीर्य्य, हृदयहै, अरु हृदयविषे स्थित रेत 'सारभूतकार्य' मनहै, अरु मनकरके जल अरु वरुण सृजेहैं, हृदय से मन अरु मनसे चन्द्रमा होते हैं, इत्यादि प्रकार श्रुतिविषे ८यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्) ८जो यह हृदय अरु यह मन, अर्थात् जो यह पूर्व कथन किया हृदय अरु मनरूप करण सोई यह तुमकरके प्रश्न कियाहुआ करण एकहुआ चक्षुरादिकोंके भेद करके अनेक प्रकारसे भेदको पायाहै । इस एकही चक्षुरूप हुये अन्तःकरण करके रूपकोदेखताहै, श्रोत्ररूपहुये अन्तःकरणकरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्दको श्रवण करताहै, घ्राणरूपहुये अन्तःकरणकरके गन्धलेता है अरु वाक्रूपहुये अन्तःकरण करके बोलताहै। अरु जिह्वा वा रसनारूपहुये अन्तःकरणकरके स्वादोंको लेताहै। आपही विकल्परूप मनकरके विकल्प करताहै। बुद्धिरूपकरके निश्चयको करता है॥ ताते सर्वकरण अरु विषयरूप व्यापारवाला एक यह करण उपलब्धाको सर्व्व उपलब्धिके अर्थ होताहै। तैसेही कौशीतकि उपनिषद्विषे "प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्व्वाणि नामान्याप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्व्वाणि रूपाण्याप्नोति, इत्यादि" प्रज्ञा (बुद्धि) से वाचाके विषे आरूढ़ होयके वाचासे सर्वनामों को पावताहै, प्रज्ञासे चक्षु के विषे आरूढ़ होयके चक्षुकरके सर्व्वरूपों को पावता है,। इत्यादि वाक्यों करके कहा है। अरु बृहदारण्यउपनिषद् विषे "मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति हृदयेन हि रूपाणि जानाति, इत्यादि,, मनसेही देखताहै, मनसे श्रवणकरताहै, हृदयसेही रूपको जानता है,। इत्यादि वाक्योंसे कहाहै। ताते हृदय अरु मनशब्दके वाच्यको सर्व्व उपलब्धि (ज्ञान) का कारणपना प्रसिद्धहै। अरु तिसहृदयरूप प्राणहै। तहां "यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वै प्रज्ञा स प्राण इति ब्राह्मणम्,, जो प्रसिद्धप्राणहै सो प्रज्ञाहै, जो प्रसिद्धप्रज्ञाहै सो प्राण है,। यह ब्राह्मण प्रमाणहै। अरु "करणसंहतिरूपश्च प्राण इति वोचाम" करणों का समूहरूप प्राणहै, ऐसा हम कहते हैं,। यह प्राण संवादादिकविषे स्थित वाक्यके बलसे प्राणकी करण समूह रूपता जानिये है। अतएव जो पादके अग्रभाग से शरीरविषे प्रवेशको पाया प्राणादिक करणहै, यह उपलब्धिका कारण होने करके ब्रह्महै। इसप्रकार कहते हैं। परन्तु यह करणका समूह रूप वस्तु गुणरूप होनेसे ब्रह्मभावसे उपासना करने योग्य (जानने योग्य) आत्मा होनेको योग्य नहीं। [तब तैसे (ब्रह्मकरके) जाननेयोग्य कौनहै,। तहां कहते हैं।] परिशेषसे जिस उपलब्धा की उपलब्ध्यर्थ इसहृदय अरु मनरूप करणकी अग्रिमकहने की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृत्तियां हैं; सो उपलब्धा उपासना करने योग्य 'अर्थात् जानने योग्य' हमारा आत्मा होनेको योग्यहै, इसप्रकार वो मुमुक्षुनिश्चय करतेहुये । प्रज्ञानरूप ["येन वै पश्यति" जिसकरके देखताहै इत्यादि लेके "मनश्चैतत्" यह मन, यहां पर्यन्त प्राणके करणपने करके अनात्मतारूप अर्थको कहके "संज्ञानं" संज्ञान, इत्यादि लेके "वश" यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं सो अन्तःकरण की वृत्तिद्वारा तिससे भिन्न उपलब्धाके लखावने के अर्थ इस प्रकार कहते हैं] तिस अन्तःकरणरूप उपाधिबिषे स्थित उपलब्धास्वरूप ब्रह्मकी उपलब्धि (ज्ञान) के अर्थ जो बाहर भीत वर्त्तमान विषयनको विषयकरनेवाली अन्तःकरणकी वृत्तियां हैं सो यह वृत्तियां कहिये हैं ८ संज्ञानमाज्ञानं, विज्ञानं, प्रज्ञानं, मेधा, दृष्टि धृतिर्म्मतिर्म्मनीषा, ज्यूतिः, स्मृतिः, सङ्कल्पः, क्रतुरसुः, कामो, वश इति । सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति > 'संज्ञान, आज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, ज्यूति, स्मृति, सङ्कल्प, क्रतु, असु, काम, वश यह सर्वही प्रज्ञान के नाम होते हैं' अर्थात् 'संज्ञान, सम्यक् ज्ञप्तिरूप चैतन्यभाव। 'आज्ञान, सर्वओरसे ज्ञप्तिरूप ईश्वरभाव। 'विज्ञान, चौंसठ ६४ कलादिकों से जन्य लौकिक ज्ञान । 'प्रज्ञान, तत्कालीन भावरूप प्रज्ञा। 'मेधा, ग्रन्थधारणाबिषे शक्ति। 'दृष्टि, इन्द्रियोंद्वारा सर्वविषयों का ज्ञान। 'धृति, शिथिलहुये देहेन्द्रियोंका पुनः सावधान होना जिसकरके होय, अर्थात् जिसकरके धृतिसे शरीर वहन (चलना फिरनादि) करे हैं, ऐसा कहते हैं, तिसही करके ऐसा जो धारण सो धृति। 'मति, मनन। 'मनीषा, मननजन्य स्वतन्त्रता, वा मनका नियामकपना। 'ज्यूति, चित्तका रोगादि निमित्तसे दुःखित होनेपना। 'स्मृति, स्मरण। 'सङ्कल्प, रूपादिकोंका शुक्ल, कृष्णादि भावसे कल्पना करना। 'क्रतु, निश्चय। 'असु, प्राणनादि जीवन कियाके निमित्तवाली वृत्ति। 'काम, असमीपस्थ विषयों की इच्छारूपा तृष्णा। 'वश, स्त्रीसंगादिकों की इच्छा' वा मनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वयश न रहना'॥ इत्यादिक [इत्यादि वृत्तियां सर्व प्रज्ञान के नाम होते हैं, इसप्रकार अग्रिमवाक्यसे अन्वय है] यह अन्तःकरण की वृत्तियां हैं, सो चैतन्यमात्र रूप उपलब्धा की उपलब्धिके अर्थ होनेसे शुद्ध प्रज्ञानरूप अरु नामरूपसे रहित ब्रह्म की जिसकरके उपाधिरूप है, एतदर्थ तिस उपाधि से जनित गौणनाममय संज्ञादिक यह सर्व प्रज्ञप्तिमात्र प्रज्ञानके नाम होते हैं। साक्षात्स्वरूपसेही नहीं। तैसे "प्राणन्नेव प्राणोनाम भवति" प्राणको करताहुआही प्राणनाम होताहै। [यहां यह कथन किया होताहै कि संज्ञानादिक जो शब्द हैं सो प्रकाशरूप वस्तुके वाची हैं, अरु जड़रूप अन्तःकरणकी वृत्तियों को साक्षात् प्रकाशरूपता संभवे नहीं, एतदर्थ प्रकाशरूप वस्तुबिषे अध्यायसेही इन वृत्तियों की प्रकाशरूपताहै, इसप्रकारकहतेहुयेअधिष्ठानरूप भिन्नप्रकाश को जनावते सन्ते तात्पर्य से प्रकाशरूप प्रज्ञानकेही नाम होते हैं यहां संज्ञानादिक जड़ वृत्तियों को अनित्य होनेकरके प्रकाशरूप वस्तुके वाचक संज्ञानादिक नामवान्पने के असंभव से तिनसे भिन्न कोई एक प्रकाशरूप है, इसप्रकार कहा। तैसे संज्ञानादिक शब्दोंकीवाच्यताके कथनसे सो प्रज्ञानविज्ञानरूपचैतन्यहै यहांही प्राज्ञतारूप वृत्ति होती नहीं, इसप्रकार कहा, क्योंकि तिसकी अनेक रूपता करके तिस तिस वृत्तिगत तिस तिस नामवान्ता करके सर्वनामवान्ता के असंभव होने से। अरु "प्रज्ञान के" इस एक वचनका असंभव होनेसे। याते "येन वा पश्यति" जिस करके प्रसिद्ध देखता है, इत्यादि लेके "प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति" प्रज्ञानके नाम होते हैं, यहां पर्यन्त जो वाक्य हैं तिनकरके सर्व करण अरु तिनकी वृत्तियों से भिन्न स्वप्रकाशरूप सर्वका साक्षी 'सर्व से पृथक्' सर्व वृत्तियों बिषे 'जलकी सर्व तरंगों में सूर्य्यके प्रकाशवत्' अनुगत, 'सर्व के धर्म कर्मादिकों से असंग' एक आत्मा शोधन किया] इत्यादि रूप वाक्य प्रमाण हैं २। ३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि । पृथिवी वायुराकाशआपोज्यो तींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि। चेतराणि चाण्डजानि च । जरायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि । चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत् कि ञ्चेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम् । सं तत् प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम् । प्रज्ञानेत्रो लोक प्रज्ञा प्रतिष्ठिता प्रज्ञानं ब्रह्म ३ । ३२ ॥

हे सौम्य, ८ एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इ मानिच पञ्चमहाभूतानि ? ८ यह ब्रह्म है, यह इन्द्र है, य प्रजापति है, यह सर्वदेव, अरु पञ्च महाभूत हैं,, अर्था ,सो [इसप्रकार शोधन किये आत्मा के शरीर शरीर के प्रा नानाभाव के निवारणार्थ " एष ब्रह्म " यह ब्रह्महै, । इत्यादिरु वाक्य है तिनका व्याख्यान करते हैं] यह प्रज्ञानरूप आत्म ब्रह्म है ' मुख्य ब्रह्मभावको आगे कथन किया है ताते यहां ब्र शब्द करके सर्व शरीराबिषे स्थित प्राण अरु प्रज्ञारूप आत्म जल भेदगत सूर्यके प्रतिबिम्बवत् अन्तःकरणरूपउपाधिविषे प्रवे को पाया समष्टि लिङ्ग शरीरोंका अभिमानी हिरण्यगर्भरूप प्रा प्रज्ञानात्मारूप अपरब्रह्मको कहते हैं अरु यहही इन्द्रहै, क्यों "इसको देखताहुआ ,, इस श्रुतिउक्त गुणका योगहै ताते, वा वताओं का राजा है ताते । अरु यह प्रजापतिहै 'जो प्रथम उत्प हुआ शरीरवालाहै अरु जिसके मुखादि भेदोंद्वारा अग्न्यादिलो पाल उपजे हैं, सो प्रजापति, वा प्रजासहित सर्व्वका नाथ प्रजापति । अरु यह अग्न्यादि सर्व्व देवता यही है । अरु पं महाभूतभी यही है ॥ तहां ८ पृथिवी वायुराकाश आपोज्योती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि' 'पृथिवी वायु आकाश जल तेज, यह अल्पजन्तुओं करके मिश्रित, अरु बीज अरु इतर' अर्थात् यह सर्व्व शरीरों के उपादानरूप, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, रूप यह अन्न अरु अन्नादि भावरूप पञ्चमहाभूत यहही है। अरु अल्प जन्तुओं करके मिश्रित सर्पादिक भी यही है। अरु बीज (कारण) अरु इतर (कार्य) रूपभी यही है। अरु 'चेतराणि चाण्डजानि च, जरायुजानि च, स्वेदजानि चोद्भिज्जानि, चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम्' 'अरु इतर, अण्डज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज, अश्व, गऊ, मनुष्य, हस्ति अरु जो कुछ भी इन प्राणियोंका समूह जङ्गम, पक्षी, स्थावर है' अर्थात् अन्य स्थावर जङ्गम भेदसे कथन किये अण्डज (पक्षी आदिक) अरु जरायुज (मनुष्यादिक) अरु स्वेदज (जूंआं आदिक) अरु उद्भिज्ज (वृक्षादि) अश्व गौ मनुष्य हस्ति अरु अन्य जो यह कुछ भी प्राणियोंका समूह जो दोनों पादों से चलताहै ऐसा जङ्गम अरु जो आकाशमें उड़नेवाले पक्षी पतत्रि, अरु जो स्थावर (वृक्षादिअचल) हैं 'सर्वं तत् प्रज्ञानेत्रम्, प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्, प्रज्ञानेत्रोलोकः, प्रज्ञा प्रतिष्ठिता, प्रज्ञानं ब्रह्म' 'सो सर्व प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, [प्रज्ञा नाम प्रज्ञप्तिकाहै, सो ब्रह्मही है तिसकरके जो सत्ताको प्राप्तहोता है सो नेत्रकाहियेहै, अर्थात् प्रज्ञारूपहै नेत्र जिनका ऐसा जो जगत् सो प्रज्ञानेत्र कहतेहैं] प्रज्ञानबिषेस्थितहै, प्रज्ञानरूपनेत्रवालालोक है, प्रज्ञा प्रतिष्ठाहै, प्रज्ञानब्रह्महै' अर्थात् सो सर्वओरसे प्रज्ञारूप नेत्रवालाहै, अरु प्रज्ञानरूप ब्रह्मबिषे, उत्पत्ति, स्थिति, अरु लय, तीनोंकालबिषे स्थितहै (प्रज्ञाके आश्रितहै) ताते प्रज्ञारूपनेत्रवाला लोकहै, वा प्रज्ञानरूप चक्षुवाला सर्वलोकहै। एतदर्थ प्रज्ञा (ब्रह्म) सर्वलोककी (जगत्की) प्रतिष्ठा (आश्रय) है। ताते [इस प्रकार होनेसे प्रज्ञानरूप प्रत्यगात्मा का निर्विशेषपना आदिक प्रसिद्ध है, इसप्रकार कहते हैं। प्रज्ञानकोही अवशेषरूप होनेसे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्वान्कामानाऽप्त्वाऽमृतः समभवत् । समभवत् इत्योम् ४ । ३३ ॥

इति ऐतरेयारण्यके षष्ठोध्यायः ॥

उपनिषत्सुतृतीयोध्यायः समाप्तः ॐतत्सत् ॥

अरु परमार्थ से सत्य होनेसे, यहां यह अर्थ बनता है] प्रज्ञान (प्रत्यगात्मा) ब्रह्महै । सो [अब ब्रह्मशब्द के अर्थको कहते हैं] ब्रह्म सर्व्व उपाधिके भेदसे रहित, सत्, निरंजन, निर्मल, निष्क्रिय, शान्त, एक, अद्वैत, अरु "नेतिनेति" इस श्रुति प्रमाण सर्व्व विशेषके अभावपूर्वक जाननेयोग्य, सर्व्वशब्द अरु वृत्तियों का अविषयहै । सो अत्यन्त शुद्ध प्रज्ञा (माया) रूप उपाधि के सम्बन्धसे सर्व्वज्ञ ईश्वर नामसे कहाजाताहै, अरु सर्व्व को साधारण अव्याकृतरूप जगत् के बीजका प्रवर्त्तक नियन्ता होने से अन्तर्यामी नामसे कहा जाताहै । अरु सोई जगत् की बीजरूप समष्टि बुद्धिबिषे आत्मापने के अभिमानरूप उपाधिवाला हुआ हिरण्यगर्भ नामसे कहाजाता है । अरु सोई ब्रह्मांडरूप उपाधिवालाहुआ विराट् नामवाला होताहै । अरु तिस विराट् के भीतर प्रकटहुये प्रथम शरीररूप उपाधिवालाहुआ प्रजापतिनामसे कहाजाता है । अरु तिस ब्रह्मांडसे उत्पन्नहुये अग्नि आदिक उपाधिवालाहुआ अग्न्यादि देवताओं के नामसे कहा जाता है । अरु तैसेही विशेष (व्यष्टि) शरीररूप उपाधिबिषे तिसतिस नामसे ही कहाजाता है कि जिसजिस उपाधिवाला होता है । इसप्रकार ब्रह्मासे आदि लेके स्तंभपर्यन्त सर्व भूतों बिषे तिस तिस नामरूपका लाभ होताहै । सोई एक ब्रह्म सर्व उपाधिके भेदसे भिन्नहुआ, सर्व प्राणियों करके अरु तार्किकों करके सर्व प्रकारसे जानते हैं, अरु अनेक प्रकारसे विकल्पों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय करते हैं। इस अर्थविषे "एतमेकेवदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतमित्याद्या स्मृतिः" इस आत्माको कईएक अग्नि कहते हैं, कईएक मनुष्य कहते हैं, कईएक प्रजापति कहते हैं, कईएक मनु कहते हैं, कईएक इन्द्र, कईएक प्राण, कईएक ब्रह्म, कईएक नित्य शाश्वत कहते हैं, इत्यादि यह स्मृति प्रमाणहै ३। ३२॥

हे सौम्य! [अब इस प्रकारके ब्रह्मआत्माके 'अभेद' ज्ञाता के अर्थ फलको कहनेको "स एतेनेत्यादि" सो इस करके, । इत्यादि रूप श्रुतिवाक्यहै, तहां एकवचनांत "स" इसशब्दसे प्रसंग बिषे प्राप्तहुये "कोऽयमात्मेति" कौन यह आत्माहै, । इसप्रकार विचारनेवाले बहुत मुमुक्षुओं के स्मरण की अयोग्यतासे। अरु आधुनिक विद्वान् के "स" इस भूतकालके वाची शब्द करके स्मरणकी अयोग्यता से पूर्वाध्यायबिषे उक्तवामदेव स्मरण करतेहैं, इसप्रकार कहते हैं] जिसही प्रज्ञानरूप से ब्रह्मके जानने वाले पूर्व अमृत होतेहुये, अरु तिसही प्रज्ञानरूपसे उक्त प्रकार के ब्रह्मको जाननेवाला वामदेव वा अन्य विद्वान् सो अमृत होताहुआ (स एतेन प्रज्ञेनाऽत्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गेलोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्। समभवत् इत्योम्) (सो इस ही प्रज्ञानरूपसे इस लोकसे उत्क्रमणकरके उस स्वर्गलोकबिषे सर्वकामोंकोप्राप्तहोके अमृतहोताहुआ, होताहुआ ऐसे ॐ हैं, अर्थात् वामदेवादि उक्त प्रकार ब्रह्मको जाननेवाला विद्वान् सो अमृत होताहुआ। तैसे यह आधुनिक विद्वान् भी इसही प्रज्ञानरूप से ब्रह्मको जानके इसलोकसे उत्क्रमण करके (देहात्मभावको त्यागकरके) उस ब्रह्मरूप स्वर्ग लोकबिषे सर्व कामोंको पायके अमृत होताहुआ, इसप्रकार [उक्त आत्मतत्त्व को अंगीकाररूप अर्थके वाची ॐकार से अपने अनुभव के प्रकट करनेकरके। अरु "ॐङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौब्रह्मणःपुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभाविति" ओंकार अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यह दोनों शब्द पूर्व ब्रह्माके कंठको भेदनकरके प्रकटहुये हैं एतदर्थ यह दोनों मांगलिक हैं,। इस स्मृतिके प्रमाण से, ओंकार से ब्रह्मआत्माके स्मरणरूप मंगलके करनेके अर्थ अन्तबिषे "ॐ" इसप्रकार कथन कियाहै ४ । ३३ ॥

इति श्रीऐतरेयोपनिषद्ततृतीयाध्यायभाषाभाष्यंसमाप्तम् ॥

इति श्री स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी का अतिअल्पज्ञ शिष्य यमुनाशङ्करनामक नागरब्राह्मणविरचित यह ऐतरेयउपनिषद्का भाषाभाष्य समाप्त हुआ ॥

हरिः ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु शुभम् भवतु ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

3/20

ॐ

मुण्डकउपनिषद्

भाषाटीकासहित ।

जिसमें

वादी प्रतिवादी के प्रश्नोत्तर द्वारा ब्रह्मका निर्णय,
जगदुत्पत्ति, अन्नादि का सम्भव और
अग्निहोत्रादि क्रियाओं का विधान
मन्त्रोंद्वारा वर्णित है

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न श्रीमुंशीनवलकिशोर सी. आई. ई.,
ने बहुतसा धन व्यय करके कोलाख्यनगरनिवासी
पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मणसे सरल
देशभाषा में उल्था कराया

चौथीबार

लखनऊ

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेससे मुद्रित और प्रकाशित ।

सन् १९२० ई०

सर्वाधिकार रक्षित ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ॥

सर्व उपनिषद्रूप प्रमाणोंके मध्य राजा के समान यह उपनिषद् उत्तम होने से मस्तक स्वरूपहै। एतदर्थही इसको मुंडक उपनिषद् कहतेहैं। और इस उपनिषद् में तीन मुंडकहैं और प्रत्येक मुंडक के दोदो खंडहैं इसलिए इसके तीनमुंडक और छः खंड हैं।

चिह्न भावार्थ ॥

" " इस चिह्नान्तर मूलमन्त्रके वाक्य ॥
' ' इस चिह्नान्तर वाक्योंके अक्षरार्थ ॥
{ } इस चिह्नान्तर अन्य श्रुतियोंके प्रमाण ॥
( ) इस चिह्नान्तर पर्य्याय वा शेष विशेष ॥
[ ] इस चिह्नान्तर विशेषार्थ ॥

आनन्दगिरि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ तत्सत् ब्रह्मणे नमः ।

अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद्प्रारम्भः ।

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुव
नस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वा
ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

भाषा टीका का आरम्भ ।

हे सौम्य! "ब्रह्मादेवानांप्रथमःसम्बभूव" ब्रह्मादेवताओंके मध्य
प्रथम होताभया। [ब्रह्मोपनिषद् औरगर्भोपनिषद् आदि अथर्वणवे
के बहुतसे उपनिषद्हैं। तिनको शारीरक सूत्रके भाष्यबिषे अनुप
योगीहोने करके तिनका व्याख्यानकरनेको अनिच्छितहै ताते। औ
〈अदृश्यमग्राह्य〉 इत्यादि वाक्य से, अदृश्यताआदिक गुणरूप ध
के कथन से, इत्यादिक अधिकरणसूत्र बिषे उपयोगी होनेसे व्य
ख्यानकरनेकोइच्छित इसमुंडक उपनिषद्के आरंभकेपदरूप प्रती
ककी यहां भाष्यकार ग्रहणकरतेहैं] इत्यादिरूपयहअथर्वणवेदव
मुंडक उपनिषद् है, सो व्याख्यान करनेको इच्छित है। [शंक
ननु, यह उपनिषद् मंत्ररूपहै, और मंत्रोंको कर्मसम्बन्धी होनेका
के प्रयोजनवान् पनाहै । और इन मंत्रों की योजनाके करनेवा
प्रमाणकी अप्रतीति और तिनके सम्बन्धके असंभवसे निष्प्रयोज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होतेहैं एतदर्थ व्याख्यान करनेको इच्छितपना संभवता नहीं ॥ उ० ॥ हे वादिन्! इस आशंका का यह उत्तरहै कि इनमंत्रोंका कर्मसे सम्बन्धहीहै, यह तेराकथन सत्यहीहै, तथापि ब्रह्मविद्याके प्रकाश करनेकी सामर्थ्य से विद्यासे सम्बन्ध होगा ॥ शङ्का ॥ ननु, विद्या को पुरुषकृत होनेसे तिसकी प्रकाशक इस उपनिषद्को भी पुरुष रचितपनेका प्रसंग प्राप्तही होताहै तातें पक्षपाती पुरुषके दोषसे जन्यता शङ्काकरके इस उपनिषद्की अप्रमाणता होनेसे व्याख्यान करनेको जो इच्छितपना सो बने नहीं ॥ स० ॥ हे वादिन्! यहां यह अर्थहै कि, विद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकही पुरुषहैं, परन्तु नवीन कल्पना से रचनेवाले पुरुष नहीं। और तिनको विद्याके सम्प्रदाय का कर्त्तापना जोहै सोभी आधुनिक नहीं कि जिसकरके अविश्वास होय, किन्तु अनादि परम्परासे यह विद्याप्राप्तहै । एतदर्थ अनादिकालसे प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याके प्रकाशनें बिषे समर्थ जो उपनिषद् तिनका जो पुरुषोंसे सम्बन्धहै सो सम्प्रदाय के कर्त्तापनेकी परम्परारूपहीहै। तातें उन पुरुषोंको विद्याके सम्प्रदायके कर्त्तापने रूपही सम्बन्धको आदि बिषेही यह उपनिषद् कहता है] तहां आदिबिषे इस उपनिषद् के विद्या के सम्प्रदाय के कर्त्तापनेकी परम्परारूप सम्बन्धको 'ऐसेमहत् (बड़ेश्रेष्ठ) पुरुषोंने परम पुरुषार्थका साधन होनेकरके इसविद्याको बड़ेश्रमसे प्राप्तकियाहै, इस रीतिकीविद्या की स्तुत्यर्थ । अर्थात् [जैसे विद्याका पुरुषों से सम्बन्ध है उसी प्रकार जब उपनिषद्काभी पुरुषकरके रचितपनेके निवारणार्थ पुरुषोंसे सम्बन्ध कहनेको इच्छितहोय, तब तिसप्रकारके सम्बन्धका कहनेवाला कोई अन्य चाहिये। और यहां आपही उपनिषद् करके अपनेही सम्बन्धके कहने से आत्माश्रय दोष प्राप्तहोता है ॥ यह शङ्का चित्तबिषे लाकर आचार्य कहतेहैं॥यहां यह अर्थ है कि विद्या की स्तुतिबिषे तात्पर्य से अपने सम्बन्धके कथनबिषे अपनी प्रवृत्तिरूप दोष नहीं] आपही यह उपनिषद् कहता है। और जिसकरके स्तुतिकर रुचिकी विषयभई विद्या तिसबिषे मुमुक्षुजन आदरपूर्वक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवृत्त होतेहैं, एतदर्थ श्रोताकी बुद्धिबिषे रुचिके उपजावनेके अर्थ विद्याको महान् कहतेहैं । और [विद्याका जो प्रयोजन है सोई इस उपनिषद्काभी प्रयोजन होगा इस अभिप्रायसे विद्याका प्रयोजन से सम्बन्ध कहतेहैं] प्रयोजनके साथ विद्याके साधन साध्यरूप सम्बन्धको तौ ‘भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः’ हृदयकी ग्रन्थिभेद (नाश) को पावतीहै और सर्वसंशय अपने छेदनको पावतेहैं। इत्यादि इसही उपनिषद्के दूसरे मुंडकके दूसरेखंडकी आठवीं श्रुतिवाक्यसे आगे कहैंगे । और यहां अर्थात् जब संसारके कारणकी निवृत्ति ब्रह्म विद्याका फलहै तब अपर विद्यासेही तिसकी निवृत्तिका संभवहै ताते तिस संसारके कारणकी निवृत्तिरूप फल के अर्थ ब्रह्मविद्याकी प्रकाशक उपनिषद् व्याख्यान करनेको योग्य नहीं । यह शङ्का विचारके कहतेहैं यहां यह भावहै कि संसारका कारण अविद्या आदि दोषहै, तिसका निवर्त्तकपना कर्मरूप अपरा विद्याको संभवता नहीं, क्योंकि कर्म और अविद्या आदिकोंका परस्पर अविरोध है जिस करके अनेकबार प्राणायाम करनेवाले पुरुषकोभी शुक्ति (सीपी) के साक्षात् दर्शन विना रजत (रूपा) विषयक जो भ्रांतिरूप अविद्या तिसकी निवृत्ति देखते नहीं [एतदर्थ अपर विद्याको संसारका कारण जे अविद्या तिसका निवर्त्तकपना है नहीं] विधि निषेधमात्र बिषे तत्पर जो अपरशब्दकी वाच्य ऋग्वेदादिरूप विद्याहै, तिस बिषे संसारका कारण अविद्या आदि दोषका निवर्त्तकपना नहींहै । एतद्र्थ ‘पराचैवापराच’ । परा, अपरा । [किंवा परमपुरुषार्थ के साधन होने से ब्रह्मविद्याको परविद्यापना है, और निकृष्ट संसार रूप फलवाली होनेसे कर्मविद्याको अपरविद्यापना है, ताते नाम के बलसे अपरविद्याको मोक्षकी साधनताका अभावहै, ऐसे जानहैं। इस अभिप्राय से यहां कहतेहैं] इस प्रकार इस मुंडक उपनिषद्के चतुर्थ मन्त्रकरके विद्याके भेदके कारणपूर्वक ‘अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः’ । अविद्याके भीतर वर्त्तमान इत्यादिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रथम मुंडकके सोलहवें मन्त्ररूप वाक्यसे आपही कही। और [कर्म जड़ जो कहते हैं कि केवल ब्रह्मविद्याको कर्मकी अंगभूत होनेसे स्वतंत्रतासे पुरुषार्थ (मोक्ष) का साधनपना नहीं है इस प्रकारका जो कथन सो पिछली श्रुतिनेही निषेधकिया है। इसप्रकार यहां कहतेहैं। यहां यहअर्थहै कि, ब्रह्मविद्याकोकर्मकी अंगरूप होनेसे इस श्रुतिबिषे कही जो कर्मकी निंदा सो चाहिये नहीं। और जिसकरके अंगके विधानार्थ अंगीकी निंदा नहीं करते हैं। और यहां तो सर्वसाध्य और साधनकी निंदासे तिन विषयों बिषे वैराग्यके कथनपूर्वक परब्रह्मके प्राप्तिकी साधन ब्रह्मविद्याको श्रुतिकहे है। एतदर्थ ब्रह्मविद्याको आपही मुख्य होनेसे तिसकी प्रकाशक उपनिषद्को कर्मकर्त्ताकी स्तुतिकी कारकता नहींहै] तैसे {परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान्} । लोकोंको कर्मरचित जानके। यह इसही उपनिषद्के प्रथम मुंडकके द्वितीयखंडके ११ वें मन्त्रकरके सर्वसाधन और साध्यरूप विषयबिषे वैराग्यपूर्वक परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन, और गुरुके [जब उपनिषद्को स्वतन्त्र ब्रह्मविद्याकी प्रकाशकता होय, तब तिनके अध्ययनकर्त्ता सर्वको ही ब्रह्मविद्या होनी चाहिये सो क्यों नहीं होतीहै, यह शंकाविचारके कहतेहैं। यहां यहभावहै कि, यद्यपि सर्वको गुरुके अनुग्रह आदिक संसारके अभावसे ब्रह्मविद्या नहीं होतीहै परन्तु उत्तमाधिकारीको होतीहै] अनुग्रहसेप्राप्तहोनेयोग्य जो ब्रह्मविद्या है, तिसको कहतेहैं। और [शंका, ब्रह्मविद्याजबस्वतन्त्रहै तबप्रयोजनकीसाधन न होगी, क्योंकि सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्ति इनदोनोंको प्रवृत्तकरके साध्यहोनेका निश्चयहै ताते॥ स०॥ तहांकहतेहैं।यहां यह अर्थहै कि स्मरणमात्र से विस्मरणभये सुवर्णके लाभके होते सुखकेप्राप्तिकी सिद्धिहै, और रज्जुस्वरूप के ज्ञानमात्रसे सर्पजन्यभय कम्पादिकदुःखकीनिवृत्तिकी सिद्धिहै ताते, सुखकी प्राप्ति और दुःखकीनिवृत्तिरूप प्रयोजनको नियमकरके प्रवृत्ति और निवृत्तिकरके साध्यपना नहीं है। एतदर्थ श्रुति, प्रतीतकिये विद्याका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोजन तिस प्रयोजनसे सम्बन्धको बारंबार कहती है। एतदर्थ तिस विद्याकी प्रकाशक उपनिषद्का व्याख्यान करनेकी योग्यता का संभवहै] 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति;' । ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होता है। और 'परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे;' । सर्वपर अमृतहुए मुक्तहोते हैं। इत्यादि तृतीय मुंडकके वाक्यन से इस ब्रह्मविद्याके प्रयोजन को बारंबार कहतेहैं। [एकदेशीके मतबिषे जो कहतेहैं कि स्वाध्याय (अपनी २ शाखाके सम्बन्धी वेदभाग) के अध्ययनके विधिका जो अर्थज्ञानरूप फल तिसका तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वर्णको अधिकारहै । एतदर्थ सर्व आश्रमोंके कर्म से समुच्चयको प्राप्तभई ब्रह्मविद्याही मोक्षकी साधकहै । तहां कहतेहैं । यहां यह अर्थहै कि सर्व सामग्रीके त्यागरूप संन्यास बिषे स्थित परब्रह्मकी विद्याही मोक्षका साधनहै, इसप्रकार स्वयं वेदही देखावताहै । तिसप्रकार संन्यासियोंको कर्म साधनके अभावसे कर्मका संभव नहीं । और तिनके आश्रमका धर्मभी शम दमादिकोंसे बृद्धिको प्राप्तभई सु विद्याबिषे सम्यक् निष्ठावान्पनाही है । और तिन (संन्यासी) का शौच आचमनादिक कर्मभी वस्तुतः आश्रमका धर्म नहीं । क्योंकि सोकर्म लोकसंग्रहार्थ है ताते । और 'न ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते;' यहांज्ञानके तुल्यपवित्र (अन्य)नहींहै' इस गीतास्मृति के वाक्यसे, निरन्तर ज्ञानाभ्यास (आत्मानुसन्धान) मात्रसेही अपावनता (अज्ञान) की निवृत्तिहै ताते और त्रिकाल स्नानादिक विधिको अज्ञानी संन्यासीका विषयत्व है ताते । एतदर्थ कर्मकी निवृत्तिसेही ज्ञान और कर्मका समुच्चय बनेनहीं] यद्यपि ज्ञानमात्र बिषे सर्व आश्रमके पुरुषोंको अधिकारहै । तथापि संन्यासआश्रम बिषे स्थित विद्याहीमोक्षका साधन है, कर्मसहित विद्या मोक्षका साधन नहीं । और यह 'भैक्ष्यचर्य्यांचरन्तः;' । भिक्षाके भक्षणको आचरतेहुये' प्रथममुंडकके दूसरेखंडके ११ वें मन्त्रमें और 'संन्यासयोगात्;' संन्यासयोगसे' तीसरेमुंडकके ६ठे मन्त्रमें। इत्यादिवाक्य को स्वयं श्रुति कहतीहुई देखावेहै । और [इसकहनेके हेतुसेभीका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहित विद्यामोक्षका साधननहीं इसप्रकार कहतेहैं।यहां यह अर्थ है कि मैं अकर्त्ताब्रह्मही हौं, और कर्मकर्त्ताहौं यह स्पष्टव्याघातदोषहै] विद्या और कर्मके परस्पर विरोध कारणसे ब्रह्म आत्माकी एकताके ज्ञानके साथस्वप्नविषे भी कर्म सम्पादन करनेको शक्य नहीं। और [उत्पन्नहुई विद्यावाला पुरुषभी जब ब्रह्म और आत्माकी एकताको भूलताहै, तब सिवाय कर्मके और क्या करेगा, तातेज्ञान कर्मकासमुच्चयसंभवताहै, इसप्रकार कहनेको योग्य नहीं, सोई आचार्य कहते हैं]विद्याके कोईएककालविषे अभावके निमित्तको अनियमितहोने से काल और कर्मसे संकोचका असंभव है। ननु, अङ्गिरा आदिक गृहस्थोंको विद्याके सम्प्रदायकी प्रवर्त्तकताके देखनेसे गृहस्थाश्रम के कर्मोंसे ज्ञानका समुच्चय, इस उक्त लिंगसे जानाजाताहै। यह शंका विचारके कहतेहैं। यहां यह भावहै कि युक्ति सहित लिंगको ही सूचकता के अंगीकार करनेसे और समुच्चयविषे युक्तिके अभाव से और उलटा विरोधके दर्शन सेलिंगसे समुच्चयकी सिद्धिनहींहै। और सम्प्रदायके प्रवर्त्तक पुरुषोंको गृहस्थाश्रमके आभासमात्रपने के अनुसंधानकर बारंबारबाधसे, और इस अर्थ विषे 'यस्यमेचास्ति सर्वत्र यस्यमेनास्तिकिञ्चन। मिथिलायांप्रदीप्तायां नमेकिञ्चन दह्यत इति;' । जिस मेरा सर्वत्र है और जिस मेरा कुछभी नहीं है मिथिलापुरीके दग्धभये मेरा कुछभी दग्धहोता नहीं। इस राजा जनकके उद्गार वा उद्धारको देखनेसे कर्माभास से समुच्चय नहीं होताहै। और तहां प्रेरक प्रमाणरूप श्रुतिभी नहीं देखतेहैं] जो पूर्व के गृहस्थोंविषे ब्रह्मविद्याके सम्प्रदायका कर्त्तापना आदिक लिंगहै सोतो पूर्वस्थित विद्याको बाधकरनेको इच्छा करता है। और जब तम और प्रकाशका संभव अनेकन प्रकारसेभी एक ठेकाने करने को शक्य नहीं, तब केवल लिंगों (चिह्नों) से एक ठेकाने करने को शक्य न होय इसमें क्या कहनाहै, कुछभी नहीं। [अब सिद्ध करी जो इस उपनिषद् के व्याख्यान करनेकी योग्यता तिसको आचार्य समाप्त करतेहैं] इस रीति से उक्त सम्बन्ध और प्रयोजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले इस मुंडकउपनिषद्का अल्पग्रंथरूप विवरण (संक्षेपसे व्या
ख्यान) करनेका आरंभ करतेहैं। [इसग्रन्थविषे उपनिषद् शब्दकी
योजना कैसेहै इसशंकाके होनेसे ग्रंथको उपनिषद् शब्दकी वाच्य
विद्यारूप अर्थवाला होनेसे ग्रंथविषे उपनिषद् शब्दकी योजना
लक्षणासेहै इसप्रकार देखावनेके अर्थ विद्याको उपनिषद् शब्दका
अर्थपना कहते हैं] जो मुमुक्षुपुरुष इस उपनिषद्रूप ब्रह्मविद्या
को श्रद्धा भक्तिपूर्वक प्रवृत्तहुये परम प्रेमास्पद (परम प्रेम) के
विषय होनेकरके ग्रहणकरते हैं, तिनके गर्भवास जन्म जरा और
रोग मरणादि क्लेशोंकेसमूहों को शिथिलकरेहैं। अर्थात् [यहां यह
अर्थ है कि अपरिपक्व ज्ञानसे दो वा तीन जन्मों करके मोक्ष होने
का संभवहै ताते ब्रह्मविद्या क्लेशके समूहोंको शिथिल करे है ऐसे
कहाहै] वा परब्रह्मको प्राप्तकरेहै। और अन्य अविद्याआदिक
संसारके कारणको नाशकरे है, एतदर्थ इसको उपनिषद् कहतेहैं
और अब इसके मन्त्रोंका व्याख्यान करते हैं, ब्रह्मा जो है सो धर्म
ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य, इन चारगुणों करके अन्य सर्वको उल्लंघ
के बर्त्ततेहै, एतदर्थ परिवृढ (सर्वसे बड़ा) है और इसही से
महान्है ताते सो "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव"। ब्रह्मादेव
ताओंके मध्य प्रथम होताभया। ब्रह्मा द्योतनवान् (प्रकाशयुक्त)
इन्द्रादि देवताओंके मध्य गुणोंकरके प्रथम अर्थात् मुख्य वा उन
देवताओंके पूर्व हुआ स्वतन्त्र होनेकरके आपही प्रकट होताभया
जिसप्रकार धर्म अधर्म (पुण्य पाप) के वशते अन्य संसारी जीव
उपजते हैं तैसे नहीं। "योसावतीन्द्रियग्राह्य इत्यादिस्मृतेः"। जो
यह इन्द्रियनसे ग्राह्यवस्तुको उल्लंघकेबर्त्ततेहै सूक्ष्महै, अप्रकटहै
सनातनहै, सर्वभूतमयहै, और अचिन्त्य है सो यह आपही प्रकट
होताभया। अर्थात् शुक्रशोणितके संयोग विना आविर्भावकोप्राप्त
इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मदेवका स्वतन्त्रपना जानाजाता है
और पुनः सो ब्रह्मा कैसाहै "विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता"। विश्व
का उत्पन्न करनेवाला और भुवनका पालन करनेवाला है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्व जगत् का उत्पन्नकरनेवाला है और उत्पन्न किये भुवनों का (जगत्का) पालन (रक्षा) करनेवाला है। यह जो विद्याके प्रवर्त्तक ब्रह्माका विशेषण है सो विद्याकी स्तुत्यर्थ है और "। सब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठां"। । सोई सर्व विद्या की प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्या को। सोई प्रख्यात महान् भाववाला ब्रह्मा, ब्रह्म जो परमात्माअक्षर है तिसकी जो विद्या कि {येनाक्षरंपुरुषवेदसत्यं} । जिसकर के सत्य (अक्षर) पुरुष जानाजाता है। जिस विद्याकरके अक्षरब्रह्म जानाजाता है, इस श्रुतिउक्त विशेषणसे परमात्माको विषयकरनेवालीहै, एतदर्थब्रह्मविद्या कहतेहैं। अथवा सर्वकेअग्रज (प्रथमउत्पन्नहोनेवाले) ब्रह्माने अपने अनुभवसे कथन किया है, एतदर्थ इसको ब्रह्मविद्या कहते हैं। और सो सर्व विद्याके आविर्भाव (प्रकट) होने की हेतु है तिसकरके सर्व विद्याओंकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है। [महावाक्यसे उत्पन्नभई बुद्धिवृत्तिसे आविर्भाव (साक्षात्कार) को प्राप्तभया ब्रह्मही ब्रह्मविद्या है। और सोई ब्रह्म जिसकरके सर्वका प्रकाशक है तिसही करके सर्वविद्याकी प्रकाशक होनेकरके आश्रय करते हैं, ऐसी जो ब्रह्मविद्या सो सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (आश्रय) है] अथवा सर्व विद्या करके जानने योग्य वस्तु जिस (विद्या) करके जानते हैं, अर्थात् जिस (विद्या) के उत्पन्नहुये सर्व विद्याकी समाप्ति होती है,। तथाच {येनाश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमितिश्रुतेः}; । जिसकरके नहीं श्रवण किया वस्तु श्रवणकिया होता है। और, नहीं मनन किया वस्तु मनन किया होता है और नहीं विज्ञात (निश्चय) किया वस्तु विज्ञात (निश्चय) किया होता है, इस श्रुति के प्रमाणसे। एतदर्थ सो (ब्रह्मविद्याको) सर्व विद्याकी प्रतिष्ठा (अवधि) कहते हैं। तिस सर्व विद्याकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मविद्याको, ब्रह्माके अनेक सृष्टिके प्रकारों विषे एक सृष्टिके प्रकारके पूर्वमें अथर्व्वानाम ऋषि उत्पन्न किया है, एतदर्थ सो ब्रह्माका ज्येष्ठपुत्रहै, तिस "। अथर्व्वायज्येष्ठपुत्रायप्राह"। । अथर्व्वानाम ज्येष्ठ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथर्व्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्व्वा तां पुरो वाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् २ ॥

पुत्रके अर्थ कहता भया । अथर्वानामवाले अपने ज्येष्ठपुत्रके ताईं (ब्रह्मा) कहता भया १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ हे सौम्य ! "अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा" । जिसको ब्रह्मा अथर्वाऋषिके अर्थ कहताभया । जिस इस ब्रह्मविद्या को ब्रह्मा अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वानामवाले ऋषिके अर्थ कहताभया । और "तांपुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम्" । तिस ब्रह्मविद्याको पूर्व अङ्गिरको कहताभया । तिस ब्रह्मासे पाईभई ब्रह्मविद्याकोही अथर्व्वा नामवाला ऋषि सर्व से पूर्व (पहिले) अङ्गिरानामवाले ऋषीश्वरके अर्थ कहताभया । और "सभारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह" । सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहके अर्थ कहताभया । सो अङ्गिरानामवाला ऋषीश्वर, भारद्वाजगोत्रवाले सत्यवाहनामवाले ऋषिके अर्थ कहताभया । और "भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्" । भारद्वाजपरसे अवर करके प्राप्तभई विद्याको अङ्गिरसके अर्थ कहताभया । सो भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाहनामक ऋषि जो परब्रह्मसे अवर (अश्रेष्ठ) ब्रह्माकरके प्राप्तभई है परावरा है । वा पर और अपररूप सर्वविद्याके विषयविषे व्याप्तहोनेकरके जिसको परावरा कहते हैं । ऐसी तिस परावररूप विद्याको अङ्गिरसनामवाले अपने शिष्य वा पुत्रके अर्थ कहता भया २ ॥

३ हे सौम्य ! "शौनकोहवैमहाशालोऽङ्गिरसंविधिवदुपसन्नपप्रच्छ" । बड़े घरवाला शौनकऋषि विधिवत् समीपआय निश्चय स्पष्ट पूछता भया । महान् गृहस्थ (धन कुल विद्या सम्पन्न) ऐसा जो शुनक नाम ऋषि का पुत्र शौनक नामवाला ऋषि, सो भरद्वाज गोत्रवाले सत्यवाह नामवाले ऋषिके शिष्य अङ्गिरस नामवाले मुनीश्वर रूप आचार्य के ताईं विधिवत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरसं विधिवदुपसन्नःपप्रच्छ ।
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ३ ॥

अर्थात् शास्त्रानुसार समिधादि द्रव्य लेके, समीप प्राप्तहोय प्रश्न करता भया। यहां शौनक और अंगिरसके सम्बन्ध के पीछे विधिवत्, इस विशेषण को कहा है, तिस करके पूर्वके ऋषियों के, आचार्य समीप जाय प्रश्न करने की विधिका अनियम है, ऐसा जानाजाता है। अथवा, विधिवत्, यह जो विशेषण है सो मध्यदीपकन्याय के प्रमाण है, अर्थात् [जैसे देहली के ऊपर धरा दीपक दोनोंओर प्रकाश करता है, तैसेही मूल श्रुतिबिषे अंगिरा शब्द और शिष्य का विशेषण रूप, उपसन्न, शब्द इन दोनों के मध्य जो, विधिवत्, शब्द है तिसका दोनों ओर सम्बन्ध है] और अस्मदादिकों बिषे भी आचार्य के समीप जायके प्रश्नकरने की विधिकी इष्टता है ॥ प्र० ॥ सो आचार्य के समीप जायके प्रश्नका करना क्या है ॥ उ० ॥ शौनकउ० ॥ "कस्मिन्नुभगवो विज्ञातेसर्वमिदंविज्ञातंभवतीति" । हे भगवन् ! किसके विशेष करके जाने हुये सर्व यह विशेष करके जानाजाता है । हे भगवन् ! हे पूजा करने योग्य ! किसके विशेष करके जाने हुये यह सर्व जानने योग्य वस्तु विशेष करके जानाजाता है यहां 'एकस्मिन्ज्ञाते सर्वविज्ञवतीति' । एकके जानने से सर्व का जानने वाला होता है । इसप्रकार शिष्ट पुरुषों के संवादको शौनक ऋषि पूर्व श्रवण करता भया है । ताते तिस एक वस्तु के विशेष रूपके जानने की इच्छा करता भया 'कस्मिन्नुविज्ञाते' । किसके जाने हुये । ऐसे तर्कको करताहुआ पूछताभया [उपादान कारण (जैसे घटका उपादान मृत्तिका) से कार्यकी पृथक् सत्ताका अभावहै, तिस करके उपादानके जानेहुये, तिसका कार्य तिस उपादान से भिन्न नहीं, इस प्रकार जानाजाता है, ऐसी लोकों बिषे सामान्य व्याप्ति है तिसके बलसे वो पूछता भया, ऐसे कहते हैं] अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाच । द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ४ ॥

लोकनकी सामान्यदृष्टि से जानके ही पूछता भया । जैसे लोक बिषे समान जातिआदिक समस्त भेद जोहै सो समानजाति आदिककी एकताके ज्ञानसे लौकिक पुरुषोंकरके जाननेबिषे आवते हैं। तैसे ही सर्व जगत्के भेदका एक कारण कौन है, कि जिस एक के जानेहुये सर्व जानाजाता है, यह भी लौकिक जनोंकरके जानने में आवता है। एतदर्थ सामान्य लोकोंकी दृष्टि से यह प्रश्न बनता है। [अब प्रश्नके अक्षरोंकी असमीचीनताका आक्षेप करके समाधान करते हैं। यहां यह अर्थ है कि, सो क्याहै इसप्रकार उच्चारण के किये अक्षरोंकी बाहुल्यतासे श्रम होता है, तिससे भयकरके 'कस्मिन्नु विज्ञाते' । किसके जानने से' इसप्रकार अक्षरोंकी सुगमताके लाघवसे यह प्रश्नहै] ननु जब अज्ञातवस्तुबिषे 'कस्मिन्नु विज्ञाते' । किसके जानने से । यह प्रश्न अघटित है, ताते प्रथम, सो क्या है, ऐसा प्रश्न युक्तहै, पश्चात् वस्तुके सद्भाव के सिद्धभये 'कस्मिन्नु विज्ञाते' । किसके जानने से । ऐसा प्रश्नहोता है, जैसे लोकबिषे पेटी (सन्दूक) आदिक आधारके सद्भावका प्रथम ज्ञान होने से तब पश्चात् यह अमुकवस्तु किसबिषे रखने के योग्य है, यह प्रश्न होता है तैसे ॥ सो कथन बने नहीं । क्योंकि शिष्य अक्षरों की बाहुल्यता करके श्रम से भयको प्राप्तभया होता है ताते । सो क्या है कि जिसके जानने से सर्वका जाननेवालाहोताहै, ऐसा प्रश्न संभवे नहीं, किन्तु 'कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' । किसके जानने से यह सर्व जानाजाताहै । इस प्रकार का प्रश्न संभवता है ३ ॥

४ हे सौम्य ! "तस्मै सहोवाच" । तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहता भया । तिस प्रश्नकर्त्ता शौनकऋषिके अर्थ सो अंगिरस वा अंगिरा नामक मुनीश्वर आचार्य स्पष्ट कहताभया ॥ प्र० ॥ क्या कहता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ५ ॥

भया ॥ उ० ॥ अङ्गिराउवाच "द्वेविद्ये वेदितव्य इतिहस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति" । दोनोंविद्याजाननेयोग्य हैं ऐसेप्रसिद्ध ब्रह्मवेत्ता कहतेहैं। अर्थात् दोनोंविद्या जाननेयोग्य हैं, इसप्रकार प्रसिद्ध जो वेदार्थके जाननेवाले परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता सो कहते हैं ॥ प्र० ॥ कौन वे दोनों विद्याहैं ॥ उ० ॥ "पराचैवापराच" । परा और अपरा है । एक परा, अर्थात् परमार्थ विद्या है। और दूसरी अपरा अर्थात् धर्म और अधर्म के साधन और तिनके फलको विषय करनेवाली विद्या है ॥ शङ्का ॥ 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' । किसके जाननेसे सर्वका जाननेवाला होताहै। इसप्रकार शौनक मुनिने प्रश्नकिया है। तिसके उत्तर कहनेको योग्यहोते सन्ते भी अङ्गिरा मुनि 'द्वेविद्ये वेदितव्ये' । दोनों विद्या जानने योग्यहैं। इत्यादिरूप वाक्यों से न पूछेहुये अर्थको कहतेहैं सो योग्य नहीं ॥ स० ॥ यहदोष बने नहीं, क्योंकि प्रतिउत्तरको क्रमकी अपेक्षावाला होनेसे। और जिसकरके अपरा विद्या जो है सो निषेध करनेयोग्य अविद्या है। ताते तिसके विषयको न जानने से कुछ तत्त्व (वस्तु तिसका विषय) न जानाहुआ होताहै। इसकरके प्रथम पूर्वपक्षको निषेध करकेही पश्चात् सिद्धान्त कहनेको योग्य होता है। इस न्यायसे अङ्गिरामुनि प्रथम न पूछेहुये अर्थको कहते हैं ४ ॥

५ हे सौम्य ! पूर्व कही जो दो विद्या तिन दोनों में अपराविद्या कौनसी है तिसको श्रवणकरो "तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति" । तहां ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद, शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द ज्योतिष, यह अपरा विद्या है । अर्थात् ऋग्यजु साम अथर्व यह चारवेद, और शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वेदकेनामोंका कोश) छन्द (पिङ्गल), और ज्योतिष, यह ६ वेदके अङ्गहैं। यह सर्व अपरा विद्याहै॥ और "अथ परा यया तदक्षरमधि गम्यते" । अब जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोताहै सो पराविद्या है। अब यह पराविद्या कहते हैं, जिस विद्या करके सो अग्रिम छठे मन्त्रसे कहनेको हैं विशेषण जिसके ऐसा अक्षर (ब्रह्म) प्राप्तहोता है, [जिसकरके अविद्याकी निवृत्तिही परब्रह्मकी प्राप्ति कहते हैं, भिन्न अर्थ नहीं, ताते परब्रह्मकी प्राप्ति और अधिगम शब्दके अर्थ का भेद नहीं] सो पराविद्या है॥ ननु [षट् अङ्गसहित वेदोंको अपरविद्याकरके कहने से तिनसे भिन्नवेदसे बाहर होनेकरके ब्रह्मविद्याको परविद्यापना नहीं सम्भवेहै, इसप्रकार वादी आक्षेप करता है। यहां यह अर्थ है कि विद्याको वेदसे बाहरपने के हुये, तिसवाले उपनिषदों कोभी ऋग्वेदादिकों से बाहरपना अर्थात् वेदसे बाह्यपना प्राप्त होवेगा] ब्रह्मविद्या जब ऋग्वेदादिकोंसे बाहर है तब सो पराविद्या कैसे होवेगी। और मोक्षकी साधन कैसे होवेगी और जिसकरके 'जो वेदसे बाह्य स्मृतियां हैं, और जो कोई कुदृष्टियां हैं सो जिसकरके मरणको पायके नरक में स्थित करने वाली कहीगई हैं, एतदर्थ वे सर्व निष्फल हैं, इसप्रकार स्मृति विषे कहाहै एतदर्थ कुदृष्टिरूप होने से, और निष्फल होनेसे सो ब्रह्मविद्या अनादर करनेको योग्य होवेगी। और उपनिषदों को ऋग्वेदादिकों से बाह्यपना सिद्धहोवेगा। और जब सो ब्रह्मविद्या ऋग्वेदादिरूप है, तब 'अथपरा' 'अबपरा' इत्यादिरूप वाक्य से तिसका ऋग्वेदादिकों से पृथक्करना व्यर्थ है। यह कथन बनेनहीं [उपनिषदोंको वेदसे बाह्य होनेकरके विद्याका तिनसे भिन्नकरना नहीं सम्भवता है, किन्तु यहां वस्तुको विषयकरनेवाले वैदिक ज्ञानभी शब्दकेसमूहरूप वेदसे अधिकताके अभिप्रायसे विद्याको भिन्न करना है इस अभिप्राय से कहते हैं] क्योंकि यहां जानने योग्य विषयके विज्ञानको पराविद्या शब्द से कहने को इच्छित है ताते। और जिसकरके यहां उपनिषदों से जानने योग्य अक्षर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणि-
पादम् । नित्यं विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूत-
योनिं परिपश्यन्ति धीराः ६ ॥

ब्रह्म को विषयकरनेवाला विज्ञान पराविद्याहै, इसप्रकार मुख्यताकरके कहने को इच्छितहै । और उपनिषद् शब्दका समूह नहीं और वेद शब्दसे तौ सर्व ठिकाने शब्द समूह कहने को इच्छित है । अक्षर (ब्रह्म) को शब्दके समूह से जानने योग्य होनेसे भी गुरुके समीप जाने आदिक अन्य उपाय विना ' और वैराग्यरूप अन्य प्रयत्न विना अक्षरका विज्ञान संभवता नहीं । एतदर्थ ब्रह्मविद्याका पृथक् करना और यह परा विद्याहै, यह कथन बने है ५॥

६ हे सौम्य ! जैसे विधिका विषय जो वाक्यार्थ ज्ञान तिसके कालसे अन्यकाल बिषे कर्त्ता आदिक अनेक कारकोंकी समाप्ति के द्वार से अग्निहोत्रादिरूप अनुष्ठान करने योग्य अर्थ है । तैसे यहां पराविद्या के विषयबिषे नहीं । किन्तु यहां तो जानने रूप अर्थ वाक्यार्थ ज्ञानके समकाल बिषेही तिस अवधिको प्राप्तहोता है, क्योंकि केवलशब्दसे प्रकाशकिये अर्थ के ज्ञानमात्रकी ही निष्ठा से भिन्न अनुष्ठानका अभावहै ताते । एतदर्थ यहां अपराविद्याको षष्ठवाक्यसे लेके नवमवाक्यके पर्यन्त विशेषणों सहित अक्षर से युक्तकरे हैं "यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादम् ।" [जो अदृश्यहै अग्राह्यहै अगोत्रहै अवर्णहै अचक्षुश्रोत्रहै सो अपाणिपादहै] जो सो अदृश्यहै [यहां 'जो' 'सो' इन शब्दों से अग्रिम कहनेका वस्तु, बुद्धिबिषे रखके सिद्धवत् स्मरण करते हैं] अर्थात् सर्वज्ञानेन्द्रियोंका अविषयहै । और अग्राह्य है, अर्थात् कर्मेन्द्रियों का अविषय होनेसे ग्रहणकरने में आवता नहीं । और अगोत्रहै, अर्थात् गोत्र जो वंश तिससे रहितहै । अर्थ यह जो जिस करके सो अक्षर (ब्रह्म) वंशवालाहोय ऐसा तिसका कोई नहीं है । और जो वर्णन करते हैं ऐसे जो स्थूलपने आदिक वा शुक्लपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिक गुणवान् वस्तुरूप शरीरादिक द्रव्य के धर्म हैं, सो व
कहते हैं। सो वर्ण जिसको अविद्यमानहै, ऐसा जिसकरके अक्ष
है तिसकरके सो 'अवर्ण है' और चक्षु और श्रोत्र जो हैं सो स
जीवों वा वस्तुओं के नाम और रूप विषयके ग्रहण बिषे साध
(करण) हैं 'सो चक्षु और श्रोत्र जिसको विद्यमान नहीं' ऐस
जिसकरके अक्षर (ब्रह्म) है तिसकरके सो 'अचक्षुःश्रोत्रं' (च
और श्रोत्र से रहितहै) है। [अप्राप्तके निषेध के प्रसंग से, यह
अक्षर शब्दको प्रधान (प्रकृति) रूप अर्थकी परता है, इसप्रका
शंकाकरने को योग्य नहीं है यह मानके कहते हैं] 'यःसर्वज्ञस्स
वित्' । जो सर्वज्ञ है और सर्ववित् है । इत्यादि रूप इसही खण
केनवम मन्त्रबिषे चेतनवान्पनेरूप विशेषणकरके ब्रह्मको संसा
जीवोंवत् चक्षु और श्रोत्रादिक साधनों से विषयों की साधकत
प्राप्तभई, सो यहां 'अचक्षुःश्रोत्रं' 'अचक्षुः श्रोत्र' इन विशेषण
से निवारण करते हैं। क्योंकि 'पश्यत्यचक्षुः सशृणोत्यकर्णः
' सो (परमात्मा) चक्षुरहित हुआ देखताहै और कर्णरहित हुआ
सुनताहै । इत्यादि विशेषणों को देखते हैं ताते। और 'सो' अक्ष
(ब्रह्म) 'अपाणि पादहै' अर्थात् कर्मेन्द्रियों करके रहितहै । जि
करके इस प्रकार अग्राह्य और अग्राहकरूपहै तिसहीकरके "नित
विभुं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मम्" । नित्य है विभुहै सर्वगतहै और अ
शय सूक्ष्म है 'सो' नित्य है, अर्थात् अविनाशी है। और ब्रह्मा
आदिलेके स्थावर पर्यन्त प्राणियों के भेदरूप विविध प्रकार
होतेहैं ताते 'विभुहै'। और 'सर्वगतहै' अर्थात् आकाशवत् सर्व
व्यापकहै । और (आकाशसेभी) अतिशय सूक्ष्महै, क्योंकि शब्द
दिक स्थूलभावके कारणोंसे रहित है ताते। और शब्दादिक जो
सो आकाश और वायु आदिकों के उत्तरोत्तर स्थूलभावके कार
हैं, तिनके अभावसे सो अतिशय सूक्ष्महै और "तदव्ययंयद्भू
योनिम्परिपश्यन्ति धीराः" । [सो अव्ययहै भूतयोनि है, जिस
धीर, सर्वओरसे देखते हैं । 'सो' अव्यय है, अर्थात् उक्त धा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथोर्णनाभिःसृजते गृह्णाते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति । यथासतःपुरुषात् केशलोमानितथाऽक्षरात् सम्भवतीहविश्वम् ७ ॥

वाला होनेसेही सो घटने बढ़ने रूप व्ययको पावता नहीं, ताते अव्यय है, और जिसकरके अङ्गरहित ब्रह्मको शरीरवत् अङ्गों के घटने रूप व्ययका होना सम्भवता नहीं । अथवा राजाओं के भण्डारवत् धनके भण्डारके घटने रूप व्ययभी सम्भवता नहीं । और गुण (बुद्धिरूप) द्वारवाला व्ययभी सम्भवता नहीं, क्योंकि गुणसे राहित है ताते । और सर्वका आत्माहै ताते, एतदर्थ अव्यय है और सो पृथिवीवत् स्थावर जङ्गमरूप भूतोंका कारणहै, एतदर्थ भूतयोनि है । जिस ऐसे लक्षणवाले अक्षर (ब्रह्म) को धीर जो विवेकी पुरुष हैं सो सर्व ओरसे सर्वका आत्मारूप देखते हैं ॥ इसप्रकार अक्षर (ब्रह्म) जिस विद्यासे प्राप्तहोता है तिस विद्या को पराविद्या कहते हैं । यह पदों में समुदाय रूप वाक्यार्थ है ॥ इति सिद्धम् ६ ॥

७ हे सौम्य ! अबहीं छठे मन्त्रकरके ‘ यद्भूतयोनिं ’ । जो भूतयोनिरूप । अर्थात् सर्वका कारणरूप अक्षर (ब्रह्म) है । इस प्रकार कहाहै, तहां अक्षर (ब्रह्म) का भूतयोनि (सर्वका कारण) पना कैसे है, इस अर्थको लौकिक प्रसिद्ध दृष्टांतों पूर्वक कहते हैं । “ यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णातेच ” । जैसे ऊर्णनाभि (मकड़ी) सृजता है पुनः ग्रहण करताहै । जैसे लोकबिषे प्रसिद्ध ऊर्णनाभि (मकड़ी आदिक) नामवाला कोई एक कीट (कीड़ा) है, सो अन्य किसी भी कारण निमित्त की अपेक्षा न करके आपही अपने शरीरसे अभिन्न तन्तुओंको सृजता है, अर्थात् बाहरको प्रसारित करता है पुनः तिन प्रसारित किये तन्तुओंको ग्रहणकरता है, अर्थात् तिन तन्तुओंको अपने आत्मभावके ताईं प्राप्तकरताहै और [ब्रह्म जगत्का उपादान नहीं है तिससे अभिन्न है ताते,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ८ ॥

स्वरूपवत् । इस अन्यरीतिके अनुमानका व्यभिचारीपना पृथिवी के दृष्टान्तसे कहते हैं] " यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति " । जैसे पृथिवी बिषे ओषधियां उपजती हैं । जैसे लोकमें पृथिवी बिषे तंडुल (धान्य) आदिलेके वृक्षादिरूप स्थावर पर्यन्त जो जो ओषधियां हैं, सो स्वरूप से अभिन्नही उत्पन्न होती हैं । और [जगत् जो है सो ब्रह्मरूप उपादानवाला नहीं, क्योंकि तिस से विलक्षण है ताते, और जो जिससे विलक्षण होता है सो तिस उपादानवाला होता नहीं । जैसे घट जो है सो तन्तुरूप उपादानवाला होता नहीं तैसे इस अनुमानकाभी पुरुष (शरीर)के सम्बन्धी केश लोमादिकों के दृष्टान्त से व्यभिचार कहते हैं] " यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि " । जैसे जीवते पुरुषसे केश रोमउत्पन्न होतेहैं। जिसप्रकार विद्यमान अर्थात् जीवते हुये पुरुष (शरीर) से केशरोम और नख यह विलक्षण उत्पन्न होतेहैं ॥ हे सौम्य ! जिस प्रकार ये सर्व दृष्टान्तहैं । " तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् " । तैसे अक्षरसे इसबिषे विश्व उत्पन्न होताहै । तिसहीप्रकार अन्य निमित्तकी अपेक्षासे रहित छठे मन्त्रकरके कहे प्रमाण लक्षणवाले अक्षर (ब्रह्म) से इस संसारमण्डलबिषे विपरीत लक्षणवाला और समान लक्षण सम्पूर्ण विश्व (जगत्) उत्पन्न होता है । [ननु एकही दृष्टान्तबिषे उक्तीनों अनुमानोंका व्यभिचारीपना मिलावनेको शक्य है इसप्रकारकी शङ्का करनेवालेप्रति कहते हैं] यहां अनेक दृष्टान्तोंका जो ग्रहणहै सो सुखपूर्वक भलीप्रकार जिज्ञासुप्रति अर्थके समुझावने के अर्थ है । और ब्रह्मसे उत्पन्न भया जो विश्व (जगत्) है सो इसही क्रमसे उत्पन्न होता है। बदरीफलकी मुष्टी के फेंकनेवत् नहीं, यह भाव है ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! अब सृष्टिके क्रमकेनियमकेकहनेकी इच्छारूप अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाला इस अष्टम मन्त्रका आरंभ करते हैं "। तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते "। ब्रह्म तपसे स्थूलताको पावता है, तिस ब्रह्मसे अन्न होताहै। उत्पत्तिकी विधिका ज्ञाताहोनेकरके भूतयोनि अक्षररूपजो ब्रह्म सो ज्ञानरूप तपसे सृष्टिकी अनुकूलतारूपस्थूलताको पावता है, अर्थात् जलकणके पूर्णहुये क्षेत्राविषे अंकुरकेताईं उत्पन्न कराने को तैयारभये बीजवत्, और पुत्रकेताईं उत्पन्न करने को इच्छा करते हुये पितावत्, इस जगत्के ताईं उत्पन्न करनेको इच्छा करताहुआ अक्षररूप ब्रह्म हर्षसे पुष्टता (स्थूलता) कोपावताहै। इसप्रकार सर्वज्ञपनेसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति संहारकी शक्तिके ज्ञानवाला होनेकरके पुष्टताको प्राप्तभये तिस ब्रह्मसे यह भोगते हैं (आवरणादि रूपसे अनुभव करते हैं) इसप्रकारका, अथवा अन्नवत् सर्वके अर्थ साधारण होनेवाला, ऐसा जो संसारीजीवों का साधारण अव्याकृतिरूप अन्न, सो उपजावने की इच्छायुक्त प्रधान अवस्थारूप से उत्पन्न होताहै। और "। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाःकर्मसुचामृतम् "। तिस अन्न से प्राण मन सत्य सर्वलोक कर्मोंविषे अमृत (होताहै)। तिस जगत् के सृजने की, अर्थात् [शुद्ध ब्रह्मको ईश्वरपनेका उपाधिरूप जो मायातत्त्व सो महाभूतादि रूपसे सर्वजीवोंकरके देखते हैं, एतदर्थ साधारण है। तथापि सो अनादि सिद्ध होने करके कैसे उत्पन्न होता है, यह शंका चित्तविषे ल्याय के कहते हैं। यहांयह रहस्य है कि कोई एक कहतेहैं कि, कर्म के संस्काररूप अपूर्वके समवाय (मिलाप) रूप सम्बन्धवाला सूक्ष्मभूत अव्याकृत है। सो कहना बने नहीं। क्योंकि तिसको जीव जीवके प्रति भिन्न २ होने से ईश्वरपने की उपाधि होनेका असंभव है ताते। और सामान्यरूपसे संभवहुयेभी पृथिवी आदिक सामान्यरूपोंकी बाहुल्यताकरके प्रकृतिविषे एकताकी श्रुतिके विरोधकी प्राप्तिहै ताते। और जड़ महामायारूपसेही संभवहुयेभी तिसको कर्म के अपूर्व के समवाय करके युक्तपना न होवेगा। क्योंकि तिस महामायाको अकारकरूपहोनेसे और बुद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिकों काही कारक (कर्त्ता) पनेका कथनहै ताते । और कारकके अवयवों विषेही क्रियाके समवायसम्बन्धकाअंगीकारहै ताते किंवा कार्यको अपने कारणका उपादानपना नहीं देखा है । एतदर्थ पट को तंतुके उपादानतावत्, अपञ्चीकृत भूतोंकी समष्टिरूप सूक्ष्म भूतोंको अपने कारण अपञ्चीकृत पंच महाभूतोंका उपादानपना न होवेगा । एतदर्थ महाभूतोंकी उत्पत्तिआदि संस्कारका आश्रय जो तीनगुणकी साम्य (ऐक्य) अवस्थारूप जो मायातत्त्व है सो यहां अव्याकृतादि शब्दोंका वाच्य अङ्गीकार करनेको योग्य है] इच्छायुक्त अवस्थावाले अव्याकृत (माया) रूप अन्न से, ब्रह्म के अर्थात् [पूर्व कल्पविषे हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्ति के निमित्त श्रेष्ठ उपासना और कर्म जिसने अनुष्ठान किया है, तिसके अनुग्रहार्थ माया उपाधिवाला ब्रह्म हिरण्यगर्भ अवस्थाके आकारसे होताहै। और तिस अवस्थाका अभिमानी सोकर्म और उपासनाका कर्त्ता जीव हिरण्यगर्भ करके कहते हैं, इस अभिप्रायसे यहां प्रतिपादन करते हैं] ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति करके युक्त व्यष्टिरूप जगत् का साधारण समष्टिरूप सूत्रात्मा नामवाला] अविद्या काम कर्म और भूतों के समुदायरूप बीजका अंकुर जगत्का आत्मा, हिरण्यगर्भरूप प्राण उत्पन्न होताभया । और तिस हिरण्यगर्भरूप प्राण से संकल्प विकल्प संशय और निश्चयरूप मन नामवाला अन्तःकरणादिकका उपादान अपञ्चीकृत भूतों का पञ्चक उत्पन्न होता है । और तिस संकल्पादि रूपवाले मनसे भी सत्य नामवाला आकाशादिक अपंचीकृत भूतोंका पंचक विराट् उत्पन्न होता है । और तिस सत्यनामवाले भूतों के पंचक से क्रम करके ब्रह्मांडरूप पृथिवीआदि सातलोक उत्पन्न होते हैं । औरतिन उत्पन्न भये लोकों विषे मनुष्यादि प्राणियों के वर्ण और आश्रमके क्रमसे कर्म उत्पन्न होता है । और तिन निमित्तरूप कर्मोंविषे कर्म्मजन्य फलरूप अमृत उत्पन्न होता है । और यावत्पर्यन्त शतकोटि कल्पनामेंभी कर्म्म नाशको पावते नहीं तावत् पर्यन्त तिनका फलभी नाशको पाव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यःसर्व्वज्ञ सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मादेतद्ब्रह्म नामरूपमन्नञ्चजायते ९ ॥

इति प्रथममुण्डकगतः प्रथमखण्डः ॥

ता नहीं । एतदर्थ इन कर्म्मों के फलको अमृत कहते हैं ॥ ८ ॥

हे सौम्य ! कथनकियेहुये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेकी इच्छावाला नवम मन्त्र सो आगे प्रतिपादन करने के अर्थको कहता है "यः सर्व्वज्ञः सर्व्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः" । जो सर्वज्ञ है सर्ववित् है जिसका ज्ञानमय तपहै । जो उक्त लक्षणवाला अक्षर नाम करके परमात्मा सो सामान्य करके सर्वको जानता है, अर्थात् [यहांसमष्टिरूप मायानामक उपाधि सामान्य कहते हैं । तिससे सर्वको जानताहै यातेसो सर्वज्ञहै] तातें सर्वज्ञहै । और विशेष [यहांव्यष्टिरूप अविद्यानामक उपाधि विशेष कहते हैं] और तिसकरके उपाधिवाला हुआ उन जीवोंकरके सृजेहुये सर्व जगत्को जानता है तातें सर्ववित् है] करके सर्वको जानताहै एतदर्थ सर्ववित् है । और जिसका, ज्ञानरूप तप है, परिश्रमरूप नहीं अर्थात् [ननु, प्रजापतियों को तपकरके सृष्टिका स्रष्टापना प्रसिद्धहै, एतदर्थ स्रष्टापना बिषे तपका अनुष्ठान कहनेको योग्यही है, परन्तु ईश्वरको स्रष्टापना बिषे तपका अनुष्ठान कहने से संसारीपना प्राप्त होवेगा, यह आशङ्का विचारके कहते हैं । यहांयह अर्थ है कि सत्त्वगुण प्रधान माया और अज्ञाननामकजो विकारहै तिन उपाधिवाला उत्पन्नभया जो सर्व पदार्थों के जानने रूप ज्ञानस्वरूप विकार सो विकारही ईश्वरका तपहै, परन्तु प्रजापतियों के तपवत् क्लेशरूप तपनहीं] "तस्मादेतद्ब्रह्मनामरूपमन्नञ्चजायते" । तिससे यह ब्रह्मनाम रूप और अन्न उत्पन्न होता है । तिस उक्तलक्षणवाले सर्वज्ञ से यह कथनकिया हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्म उत्पन्न होता है । और यह यज्ञदत्त है, यह देवदत्त है, यह विष्णुदत्तहै, इत्यादि नाम, और यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयखण्ड आरभ्यते ॥

तदेतत्सत्यंमन्त्रेषुकर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानि
तायांबहुधासन्ततानि । तान्याचरथनियतंसत्यका
एषवःपन्थाःस्वकृतस्यलोके १ । १० ॥

शुक्ल (श्वेत) है, यहपीत है, यहरक्त (लाल) है, यह नीलहै, इत्य
स्वरूपवाला रूप, और तंडुल यवादिरूप अन्न, प्रथम मन्त्रा
उक्त क्रमसे उत्पन्नहोते हैं । इसप्रकार पूर्व मन्त्र से इस मन्त्र
अविरोधजानना ॥ ९ ॥

प्रथममुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका समाप्त ॥

प्रथममुण्डकगतद्वितीयखण्डकीभाषाटीकाका प्रारम्भ

हे सौम्य ! ‘तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववे
‘तहां ऋग् यजु साम अथर्व’ इत्यादि रूप प्रथम खण्डके पं
मन्त्र से षट् अंगोंसहित चार वेदरूप अपरविद्या कही । और
त्तदक्षर्य’ ‘जो सावयव है’ इत्यादि षष्ठ मन्त्रसे लेके ‘नाम
मन्नञ्चजायते’ ‘नाम रूप और अन्न उत्पन्न होता है’ इस
मन्त्र पर्यन्त जो ग्रन्थ है तिस करके कहे लक्षणवाला जो
(ब्रह्म) है सो जिस विद्याकरके प्राप्तहोता है सो पराविद्या
इसप्रकार विशेषणों सहित यह पराविद्या कही । याते पर
इन दोनों विद्या के विषय (आधीन) जो संसार और मोक्ष
सो विवेचनकरने को योग्य है, इस प्रयोजन के अर्थ अब उ
ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं, तिनमें कर्त्ता आदिक साधन क्रिया
फल के भेदरूप और उपादानरूप से अनादि, और ब्रह्मज्ञान
से पूर्व अत्यन्त निवृत्ति के असम्भवसे अन्तरहित जो संसार है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपर विद्याका विषयहै। और सोई दुःखरूपहोनेसे सर्व शरीरधारी जीवोंकरके [एक जीववादी जो कहते हैं कि एक चैतन्य एकही अविद्यासे बद्धभया संसारको पावता है, और सोई कदाचित् मुक्त होताहै। और हम तुम आदिक जो जीवाभासहैं तिनको बन्ध और मोक्ष नहीं॥ सो पक्ष यहां जीवोंके बहुवचनकी सूचना से भाष्यकार स्वामीने निषेध किया, क्योंकि वो एक जीववादी का मत श्रुतिसे बाह्य है ताते] त्यागने योग्य है। और नदीके प्रवाहवत् उच्छेद (नाश) रहित जो संसार है, तिसकी अत्यन्त निवृत्तिरूप और ब्रह्मसे अपृथक् होनेकरके, अनादि अनन्त अजर अमर (अपक्षयरहित, अविनाशी) अभय शुद्ध प्रसन्न, और अपने आपबिषे स्थित परमानन्दरूप अद्वैत जो मोक्षहै अर्थात् (सुषुप्ति अवस्था बिषेभी क्रियाकारक और फलकी निवृत्ति होती है, तिस निवृत्तिसे ज्ञानपूर्वक जो निवृत्तिहै तिसकी विलक्षणता कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, अपनी उपाधिरूप जो अविद्या तिसके कार्य सम्बन्धी अविद्याकी निवृत्ति करके जो आत्यन्तिकी निवृत्ति सो विद्या का फल है) सो परविद्याका विषयहै। तिनमें आदिबिषे प्रथम [अपर और पर दोनों विद्याके विषयको देखायके अब प्रथम अपर विद्याके विषयको देखावने बिषे श्रुतिका अभिप्राय कहते हैं] अपर विद्याका जो विषयहै तिसके देखावने के अर्थ इस द्वितीयखंड का आरम्भहै। क्योंकि तिस अपर विद्याके विषयको देखावने से तिस बिषे वैराग्य होनेका सम्भव होताहै ताते। और तिसही प्रकार आगे इसही उपनिषद् बिषे ‘परीक्ष्य लोकान् कर्मरचितान्’। लोकों को कर्मरचित जानके। इत्यादि इसही खण्डकी बारहवीं श्रुति से कहेंगे। और जिसकरके न देखेहुये पदार्थकी परीक्षा (ज्ञान) सम्भवता नहीं, तिसकरके उस अपर विद्याके विषयको देखावते हुये कहते हैं “तदेतत्सत्यं”। सो यह सत्य है॥ प्र०॥ सो क्या है॥ उ०॥ “मन्त्रेषु कर्म्माणिकवयोयान्यपश्यंस्तानित्रेतायां बहुधासन्ततानि”। मन्त्रों बिषे कर्म है जिनको कवि देखतेभये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो त्रेता बिषे बहुत प्रकार से प्रवृत्तभये हैं। ऋग्वेदादि नाम
मन्त्रोंबिषे जो अग्निहोत्रादि कर्महैं, और मन्त्रों करकेही प्रका
भये जिन कर्मोंको वशिष्ठादि कवि (बुद्धिमान्) देखतेभ
ऐसा जो कर्मोंका समुदाय है सो सत्य है अर्थात् [इष्ट फल
साधन होनेसे अथवा अनिष्टफलका साधन होनेसे, वेदकरके
कर्म बोधित किये हैं, तिन कर्मोंको प्रतिबन्धके अविद्यमान
तिन तिन फलोंके साधनहोने का अव्यभिचारहै सोई तिस
का सत्यपनाहै, स्वरूपसे अबाधहोने रूप सत्यपना नहीं। क्यों
'प्लवाह्येते अदृढाः', । जिसकरके यह प्लव । अर्थात् फलसं
विनाशी कर्मवाले हैं—इत्यादि यह इसही खण्डके सातवें म
करके निन्दा कियेहुये ताते। और कर्मोंके स्वरूपसेही अबाध
रूप सत्यताके होनेसे, स्वप्नकी कामनावत् सफल क्रियाकी
वाहकता रूप अबाध्यता घटेहै, इस अभिप्राय से कहते हैं] क
कि पुरुषार्थका अर्थात् [धर्म अर्थ काम और मोक्ष, इन चारों
नाम पुरुषार्थ है, परन्तु यहां मोक्षको छोड़के अन्य तीनों
ग्रहण है ऐसा जानना] अव्यभिचारी साधनहै ताते। और वो
विदित और ऋषियों करके देखेहुये कर्म तिनके संयोगमय
अध्वर्यव और उद्गात्र, अर्थात् [ऋग्वेदबिषे विधानकिया प
तिसको होत्र कहते हैं, और यजुर्वेदबिषे विधानकिया पदार्थ
सको अध्वर्यव कहते हैं, और सामवेदबिषे विधानकिये पदार्थ
नको औद्गात्र कहते हैं, इन तीन प्रकार के कर्मरूप त्रेताबि
इन तीन प्रकार स्वरूप आधाररूप त्रेताबिषे, अथवा त्रेतायुगी
कर्मिष्ठ लोगों करके कियेहुये, बहुत प्रकारसे प्रवृत्तभये। एत
हे लोको! "तान्याचरथनियतं सत्यकामा एषवः पन्थाः स्वकृत
लोके"। । सत्यकामहुये तिनको नित्य आचरणकरो यह आप
आप करके आचरण कियेहुये कर्मके लोकबिषे मार्गहै। आप स
काम हुये अर्थात् जैसा विद्यमान है तैसे कर्म फलकी इच्छाव
हुये तिन कर्मोंको नित्यनिर्वाह करो। जैसे नगरकी प्राप्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदा लेलायतेऽर्चिः समिद्धे हव्यवाहने । तदाऽऽज्य भागावन्तरेणाहुतीःप्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् २ । ११ ॥

निमित्तरूप मार्गका चलना है । तैसेही यह आपको आपकरके आचरण किये कर्म सो अपने फलरूप लोकबिषे, अर्थात् कर्मके फलकी प्राप्तिबिषे निमित्तरूप मार्ग है, अर्थात् जो जो अग्निहोत्रादिरूप ऋग्वेदादि तीनों वेदों बिषे प्रतिपादन किये कर्म हैं, सो यह मार्ग (अवश्य फलकी प्राप्ति का साधन) है १ । १० ॥

हे सौम्य ! तिन (कर्मों) में से आदिबिषे तहां पर्यन्त, अर्थात् अन्तःकरणकी शुद्धिपर्यन्त अग्निहोत्रादि देखावने के अर्थ कहेहैं, क्योंकि अग्निहोत्र सर्वकर्मों के मध्य प्रथम है ताते ॥ प्र० ॥ सो अग्निहोत्र कैसे होता है ॥ उ० ॥ " यदालेलायतेऽर्चिःसमिद्धे हव्यवाहने " । जब समिधाओं करके प्रज्वलितभये अग्निबिषे ज्वाला उठती है । जिससमय अर्थात् प्रातःकाल और सायङ्काल में सर्वओर से समिधा करके प्रज्वलित भये अग्निबिषे ज्वाला उठती है । " तदाऽऽज्यभागावन्तरेणाहुतीःप्रतिपादयेच्छ्रद्धयाहुतम् " । तब घृतके भाग मध्यरूप (कुण्ड) बिषे आहुतियों को डालना श्रद्धासे होम किया है । जिस समय उठतीहुई ज्वालामें दर्श और पूर्णमासरूप दोनों घृतके भागोंको मध्य कुण्डबिषे देवताओंका उद्देश करके आहुतियों को डालना ॥ शं० ॥ ['सूर्यायस्वाहा, प्रजापतयेस्वाहा' इसप्रकार प्रातःकाल बिषे । और 'अग्नयेस्वाहा और प्रजापतयेस्वाहा' इसप्रकार सायङ्काल बिषे, यह दोनों आहुतियां प्रसिद्ध हैं । तब यहां श्रुतिबिषे आहुति शब्दको बहुवचन कैसे है ॥ स० ॥ अनेक दिवस पर्यन्त जो आहुतिको डालनेका अनुष्ठानहै तिसकी अपेक्षासे यहां श्रुतिबिषे आहुति शब्दको बहुवचन है] यह सम्यक् प्रकार आहुति डालनेरूप कर्म परलोक की प्राप्तिके और मार्ग है । और श्रद्धा से जो हवन कियाहै तिसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रय
णमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमा
सप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ३ । १२ ॥

सम्यक् प्रकार आचरण दुष्कर है, अर्थात् तिसविषे विपत्तियां अनेक हैं सो देखावते हैं २ । ११ ॥

हे गुरो! अग्निहोत्रकर्मकैसेदुष्करहै ॥ उ० ॥ "यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च" । जिसका अग्निहोत्र दर्शरहित, पौर्णमास रहित, चातुर्मास्यरहित, अग्रयण रहित, अतिथि रहितहै, । अर्थात् जिसअग्निहोत्रीका अग्निहोत्रदर्श नामक कर्म से रहितहै, और पौर्णमास नामक कर्म से रहितहै, और चातुर्मास्य नामक कर्म से रहितहै, और शरदादि कालविषे [नवीन उत्पन्नभये जे अन्नादिक तिनसे करनेयोग्य जो] आग्रयण नामक कर्म तिनसे रहितहै । और तैसेही जिसका अग्निहोत्र अतिथि से रहित है, अर्थात् जिस अग्निहोत्री के अग्निहोत्र में नित्यनित्य अतिथिका पूजन कियाजावे नहीं । और "अहुतमवैश्वदेवमविधिनाहुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति" होम कियाहोयनहीं, वैश्वदेवसे रहित, अविधि से होम कियाहै, सप्तलोक सहित नाश करैहै। जिसके अग्निहोत्र कालमें सम्यक् प्रकार होम किया होता नहीं और जिसका अग्निहोत्र वैश्वदेव नामवाले कर्मसे रहित है, और जिसने हवन किया है तथापि सो अविधि से कियाहै सो अग्निहोत्री तिस अग्निहोत्रीरूप कर्त्ता के सप्तमलोक सहित जो लोक हैं तिन लोकोंको नाशकरनेवत् नाश करे है क्योंकि उक्त कर्मका श्रममात्र ही फलहै ताते । और जिसकरके कर्मोंको सम्यक् करनेसे उनकर्मोंके परिणामरूप से पृथिवी आदि सत्यपर्यन्त सप्तलोकरूप फल (जो सप्तव्याहृतियों के नामसे प्रख्यात हैं) सो प्राप्त होते हैं । सो लोक उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्म से प्राप्त होने के अयोग्य होने से नाशहुयेवत् होतेहैं, अर्थात् उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्मोंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काली करालीं च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्र वर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा ४। १३॥

एतेषुयश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याद-दायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पति-रेकोधिवासः ५। १४॥

उक्त सातलोकों में से किसीकीभी प्राप्ति होती नहीं। और परि-श्रममात्र तो अव्यभिचारितासे भयाही है, एतदर्थ उनलोकों को नाशकरे हैं ऐसा कहा है॥ अथवा पिण्डदानादिरूप अनुग्रहसे स-म्बन्धको प्राप्तभये [यजमान जोहै सो पिता आदि तीनों का पिंड उदकके दानसे उपकारकहै, और पुत्रादितीनोंका अन्नवस्त्रादिकों के दानसे उपकार करता है। एतदर्थ यहां मध्यवर्त्ती यजमान से सम्बन्धको प्राप्तभये पूर्वले और पिछले तीन तीन ग्रहण करते हैं ऐसा कहतेहैं] पिता, पितामह, प्रपितामह और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र जो आपसहित सातलोकहैं, सो उक्तप्रकारके अग्निहोत्रादि कर्म से अपने उपकारके करनेवाले होते नहीं॥ एतदर्थ नाश होते हैं ऐसा कहते हैं। इस उक्तरीतिसे अग्निहोत्रादि कर्मसे उपलक्षित जो कर्म सो दुष्करहैं ३। १२॥

हे सौम्य! "काली करालीं च मनोजवा च सुलोहिता या च सु-धूम्रवर्णा"। [काली और कराली पुनः मनोजवा, और पुनः सुलो-हिता और जो सुधूम्रवर्णा। और "स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वा"। [स्फुलिंगिनी और विश्वरूपी, पुनः देवी, यह सात जलती (प्रज्वलित) हुई ज्वालारूप अ-ग्निकी जिह्वा हैं। सो अग्निको हवन किये द्रव्यके ग्रसन करने के अर्थ उक्त सप्तजिह्वा हैं। इति सिद्धम् ४। १३॥

हे सौम्य! "एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्"। [इन प्रकाशमान विषे जो यथाकाल आहुतियों को।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्च्चसः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्यज
मानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्च्चयन्त्य एष व
पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ६ । १५ ॥

देताहुआ आचरता है । इन प्रकाशमान अग्निकी जिह्वा के भेद
बिषे जो अग्निहोत्रका कर्त्ता कालके विभागानुसार अग्निहोत्रादि
रूप कर्मको करता है " तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत्र देवा
पतिरेकोधिवासः " । तिसको यह ग्रहण करती हुई किरणरू
होके प्राप्त करेहै जहां एक देवताओंका पति निवास करता है
तिस यजमानको यह यजमान करके करीगई आहुतियां ग्रह
करती हुई सूर्य्यकी किरणरूप होके तिन किरणरूप द्वारसे ति
यजमानको तिस स्वर्गबिषे प्राप्त करे हैं ॥ प्र० ॥ किस स्वर्ग वि
प्राप्त करे हैं ॥ उ० ॥ जहां एक देवताओं का पति इन्द्र निवा
करता है ५ । १४ ॥

हे सौम्य ! सो आहुतियां सूर्य्यकी किरणों से यजमानको स्व
बिषे जिस प्रकार प्राप्त करती हैं तिसको श्रवण करो " एह्येहीं
तमाहुतयः सुवर्च्चसःसूर्य्यस्यरश्मिभिर्यजमानं वहन्ति " । वे इ
हुतियां प्रकाशमान हुई तिस यजमानको सूर्य्यकी किरणों द्वा
लेजाती हैं । और कहती हैं ॥ प्र० ॥ क्या कहती हैं ॥ उ०
" प्रियांवाचमभिवदन्त्योऽर्च्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्म
कः " । पूजन करतीहुई प्रियवाणी को कहती हैं कि यह आपका पु
रूप सुकृतका फल ब्रह्मलोकहै ॥ अथवा सो आहुतियां आवो
ऐसे बोलावती हुई और प्रकाशमान और जैसे ब्रह्मलोक पुण्य
फलरूप है, तैसा यह आपका पुण्यरूप सुकृत का फल
ब्रह्मलोक (स्वर्ग) है इसप्रकार प्रियवाणी को कहती
और पूजन करती हुई तिस यजमान को सूर्य्यकी किरणों
द्वार मार्ग से लेजाती हैं ६ । १५ ॥

हे सौम्य ! अब यह उपासनारहित केवलकर्म्म जो है सो हि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरां मृत्युं पुनरेवापि यान्ति ७। १६॥

करके उक्त फलवाला है, और अविद्या काम और क्रियाका कार्य है, एतदर्थ असाररूप और दुःखका कारण है, इसप्रकार तिनकेवल कर्म्मोंकी निंदा वेदभगवान् करते हैं "। प्लवाह्येते अदृढायज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषुकर्म्म "। यह यज्ञके निर्वाहक अष्टादश अदृढ़ कर्मके आश्रयहैं और तिसबिषे अश्रेष्ठ कर्म्म हैं। अर्थात् जिस करके यह यज्ञके निर्वाहक सोलह ऋत्विक् यजमानकी स्त्री और यजमान इस भेद से अष्टादश १८ संख्यावाले हैं सो अदृढ़ (अस्थिर) इस कर्म्म के आश्रय हैं, इसप्रकार वेदने कहाहै और जिन अष्टादश आश्रयों बिषे उपासनारहित होनेसे अश्रेष्ठ केवल कर्म है। एतदर्थ उन अश्रेष्ठ (निकृष्ट) कर्मके आश्रयरूप अष्टादश संख्यावालेको अस्थिर और विनाशवान् होनेसे तिन्होंकरके साध्य जो कर्म सो फलसहित विनाश को प्राप्त होतेहैं जैसे दूध और दधि आदिकों के आश्रयरूप मृत्तिका के पात्रके विनाश से तदाश्रितों का विनाश होता है, तैसेही तिन केवल कर्म के आश्रय फल स्वर्गरूपस्थान विनाश होता है। अर्थात् केवल कर्म और तिनके फल यह दोनों विनाशवान् हैं। जिस करके यह ऐसे हैं तिसही करके "। एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दन्ति मूढाजरांमृत्युंपुनरेवापियान्ति "। जो मूढ़ यह कर्म श्रेय है ऐसे हर्षको प्राप्तहोते हैं सो फेरभी जरा और मृत्युको पावते हैं। जो अविवेकी मूढ़पुरुष, यह कर्म श्रेय (मोक्षका साधन) है ऐसे जानके हर्षको प्राप्त होते हैं सो थोड़े कालपर्यन्त स्वर्गबिषे स्थितहोयके फिर भी जरा मृत्युरूप संसार कोही पावतेहैं। अर्थात् उनका आवागमन छूटता नहीं ७। १६॥

हे सौम्य! वे मूढ़ "अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः "। अविद्याके अन्तर वर्त्तमान हुये हमहीं बुद्धि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयंधीराः परिडता न्यमानाः। जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमा ना यथाऽन्धाः ८ । १७ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्ति बालाः। यत्कर्म्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ९ । १८ ॥

मान् पण्डित हैं ऐसे मानतेहैं । वे केवल कर्मकेही आश्रय श्रेय माननेवाले मूढ़ अविद्याके भीतर वर्त्तमान हुये, अर्थात् अत्यन्त अविवेकयुक्तहुये, और तत्त्वदर्शी आचार्यों के उपदेशकी अपेक्षा विना अपनेही मनकरके, हमहीं बुद्धिमान् और हमहीं ज्ञान योग्य वस्तुके जाननेवाले पण्डितहैं, इसप्रकार आपको मानतेहैं "। जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः "। मूढ़ अत्यन्त पीड़ाको पावतेहुये सर्व ओरसे भ्रमतेहैं, जैसे अन्धेके प्रास किया अन्धा (गिरता है) । सो मूढ़पुरुष जरा रोगादि अनेक अनर्थ के समूहों करके ये अत्यन्त खेदको प्राप्तहोते हुये सर्वओरसे भ्रमते हैं, जैसे लोकविषे अन्धे (चक्षुरहित) पुरुषकरके प्राप्त किये जे मार्गके न देखनेवाले अन्ध (चक्षुविहीन) पुरुष गर्त कंटकादि विषमस्थान विषे गिरते और कष्ट पावते हैं, तैसे वो मूढ़ अविवेकी कर्मी पुरुषभी संसाररूप अन्धकूप में गिरके कष्टपावते हैं । इति सिद्धम् ८ । १७ ॥

हे सौम्य! "अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः" । बालक अविद्या विषे बहुतप्रकारसे वर्त्तमानहुये हमहीं कृतार्थ हैं ऐसे अभिमानको करतेहैं । अज्ञानीरूप जो बालक (मूर्ख) हैं सो अविद्या विषे बहुतप्रकार से वर्त्तमानहुये, हमहीं कृतार्थ, अर्थात् प्रयोजनको प्राप्तहुये हैं, इसप्रकार अभिमानको करतेहैं। और "यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते" । जाते कर्मिष्ठ पुरुष रागसे तिस करके आतुर हुये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविश न्ति १० । १९ ॥

क्षीणलोक होतेहैं । जिसकरके ऐसे कर्म करने वाले पुरुष कर्मफलके रागसे होता जो अपना तिरस्कार तिसके निमित्तको जानते नहीं तिसकारणसे दुःखसे आतुरहुये क्षीणभयाहै कर्मका फलरूप लोक जिसका, ऐसे हुये स्वर्गलोक से गिरतेहैं ९ । १८ ॥

हे सौम्य ! " इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः " । प्रमूढ़ इष्ट औरपूर्त्तको मुख्य जानतेहुये अन्यश्रेयको जानते नहीं । पुत्र पशु और स्त्री आदिकों बिषे प्रमादको प्राप्तहोने करके जो मूढ़, इष्ट कहिये जो यज्ञादिरूप श्रुतिकरके प्रतिपाद्यकर्म्महैं औरपूर्त्त कहिये वापी कूप तड़ाग आराम धर्मशाला आदि निर्माण करने यह स्मृतिप्रतिपाद्य कर्म्महैं, तिन्होंको यही अतिशय करके मुख्यपुरुषार्थ (मोक्ष) कासाधनहै, इसप्रकार चिन्तन करतेहुयेअन्य जो आत्मज्ञानसंज्ञक परम श्रेयका साधन है तिसको तो जानते ही नहीं ॥ हे सौम्य ! ऐसा जे परम पुरुषार्थसाधक साक्षात् आत्मज्ञान तिसको न जाननेवाले जे मूढ़ हैं " नाकस्यपृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरञ्चाविशन्ति " । सो स्वर्गके ऊपर (अयन) सुकृतके (फलको) अनुभव करके (पुनः) इस लोकको वा अतिशय हीन लोकको पावते हैं । सो स्वर्गलोक ऊपर विद्यमान दिव्य भोगों के स्थान बिषे अपने सुकृत कर्म के फलको साक्षात् अनुभव करके पुनः इस मनुष्यशरीररूपी लोकको अथवा इस मनुष्य शरीररूपी लोक से अतिशय हीन तिर्यक् (पक्षी) श्वान शूकरादि नारकी शरीररूप लोकको शेष रहे अपने कर्म्मानुसार पावते हैं ।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरात्यायदेहिनः । स्थाणुमन्येन संयान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ? ॥ १० । १९ ॥

हे सौम्य ! [उक्त प्रकार केवल कर्मिष्ठों के फलको कहके, अब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तपःश्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ताविद्वांसो भैक्ष्यच
चरन्तः । सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स
षोह्यव्ययात्मा ११ । २० ॥

सगुणब्रह्मकी उपासना सहित आश्रमके कर्मकरके युक्त पुरुषों
संसारगोचरही फलको देखावतेहैं] "तपःश्रद्धेयेह्युपवसन्त्यरा
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्य्यां चरन्तः" । जो शान्त विद्वान् भिक्षा
अन्नको भोजनकरतेहुये अरण्यबिषे तप और श्रद्धाको सेवन क
तेहैं । जो केवल कर्म करनेवाले से अन्य उपासनायुक्त संन्या
और वानप्रस्थ और जो शान्त (जितेंद्रिय ब्रह्मचारी) विद्वान् (उ
सनाप्रधान गृहस्थ) भिक्षान्नको भोजन करतेहुये संग्रहके अभा
से स्त्री आदिक विक्षेपकारी जनसमूहोंसेरहित अरण्यबिषे वर्त्तमा
हुये अपने आश्रमयोग्य शास्त्रविहित कर्मरूप तप और हिरण्य
र्भादिकोंको विषयकरनेवाली । उपासनारूप श्रद्धा इन दोनोंको
यथाविधि सेवनकरते हैं । "सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रा
तः सपुरुषोह्यव्ययात्मा" । सो सूर्यद्वारसे विरजहुये जाते हैं जि
बिषे अमृतरूप सो अविनाशी स्वभाववाला स्थित पुरुष है । सू
सूर्य्य करके उपलक्षित जे उत्तरायणरूप द्वार तिस द्वारसे वि
हुये, अर्थात् मानो पुण्यपाप कर्मरूप मलसे रहितहुयेहोवें तैसेहु
तिसबिषे जातेहैं, कि जिस सत्यलोकादिकोंबिषे अमृतस्वरूप
प्रथमउत्पन्नभया और अविनाशी स्वभाववाला, अर्थात् यावत्पर्य
संसारहै तावत्पर्यन्त रहनेवाला हिरण्यगर्भरूप पुरुषहै ॥ हेसौम्
यहांपर्यन्ततो अपरविद्याके आश्रय प्राप्तहोने योग्य संसारकी गति
हैं । कई एक पुरुष निश्चय करके, ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप मोक्ष
इच्छा करते नहीं, किन्तु "इहैव सर्वे प्रविलीयन्ते कामास्ते सर्वगं
र्वतःप्राप्य धीरा मुक्तात्मानःसर्वमेवाविशन्तीति" यहांही अर्थात् मु
पुरुषोंके यहांही सर्वकामके अभावको और सर्वात्मभावको श्रुति
देखावे हैं । और ब्रह्मलोककी प्राप्तितो देशसे परिच्छिन्न फल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परीक्ष्य लोकान् कर्म्मचितान् ब्राह्मणोनिर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन॥ तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥ १२। २१॥

अर्थात् किसीएक देशविषे हैं, ताते मोक्ष नहीं है, इसप्रकार यहां कहतेहैं] तिनकेसर्वकाम अभाव होतेहैं। और वो धीरपुरुष एकाग्र चित्तवाले हुये सर्वगत व्यापक वस्तुको सर्वओरसे पायके सर्व्वात्मभावको पावते हैं, इत्यादि श्रुतियों से और प्रसंगसे यह जो ऊपर कहीगई सो अपराविद्याके आश्रित मतिहै, इस प्रकार जानाजाता है। और जिसकरके यह प्रसंग, अपर विद्याके प्रसंगके प्रवृत्त हुये अकस्मात् प्रवृत्तभयाहै, एतदर्थ यह मोक्षका प्रसंग नहीं है। और पुण्यपापरूप कर्मकी क्षीणतारूप विरजपना जो कहाहै सो तो आपेक्षिकहै, एतदर्थ समस्त साध्य और साधनरूप क्रिया कारक और फलके भेदसे भिन्न हिरण्यगर्भकी प्राप्तिपर्यन्त जो द्वैतहै इतनाही अपर विद्याका कार्य है। तैसेहुये स्थावरादिरूप संसारकी गतिको उल्लंघन करनेवाले पुरुषोंको "ब्रह्मा विश्वस्रष्टजो धर्मो महानव्यक्तमेवच। उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिण इति" [ब्रह्मा, मरीच्यादि प्रजापति, यम, महत्तत्त्व (सूत्रात्मा) और अव्यक्त (त्रिगुणात्मक प्रकृति) रूप इस गतिको पंडितजन सात्त्विक उत्तमगति कहतेहैं], इस स्मृतिके प्रमाणसे ब्रह्मलोकादिकी प्राप्तिरूप उत्तमगति होतीहै यह सिद्धभया॥ ११। २०॥

हे सौम्य! अब इस साध्य और साधनरूप सर्व संसारसे विरक्त पुरुषको ब्रह्मविद्याविषे अधिकारके देखावनेके अर्थ यह कहते हैं "परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन" [ब्राह्मण कर्मसे रचित लोकोंको निश्चयकरके वैराग्यको करे अकृत नहीं है कृतसे क्याहै] "यथैकतासमता इति स्मृतेः" [ब्राह्मणका जैसा एकता समता और सत्यता (आदिरूप) धन है ऐसा और नहीं] इस स्मृतिसे। और ब्राह्मणको निवृत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रधान व्यवहारवाला होने से ब्रह्मविद्याका मुख्य अधिक ब्राह्मणकोही है [इस अभिप्राय से यहां श्रुतिविषे अधिकारी विशेषणरूप ब्राह्मणपद है] ब्राह्मण जो है सो अविद्याआदि दोषवाले पुरुषके प्रतिही विधान किया होनेसे स्वाभाविक अवि काम और कर्मरूप दोषवाले पुरुषकरके अनुष्ठान करने योग्य यह ऋग्वेदादिरूप अपर विद्याका विषयहै, तिसको। और जो ति अनुष्ठानके कार्य हुये फलरूप लोक हैं, और जो विहित कर्म अकरण, और प्रतिषेध कर्मका करना, और मर्य्यादाके उल्लंघन दोषकरके साध्य जे नरक तिर्यक् प्रेतादि योनिरूप नरक हैं, ति संसारकी गतिरूप अव्याकृतादि लेके स्थावर पर्यन्त व्याकृत औ अव्याकृतस्वरूप, बीज और अंकुरवत् परस्परकी उत्पत्तिके निमि अनेक शत और सहस्र अनर्थों करके पूर्ण कदलीके स्तम्भ असारभूत, माया (छल) मरीचि जल गन्धर्वनगरके आकार, स्व जलगत बुद्बुद और फेनके तुल्य प्रतिक्षण नाश होनेवाले, पीछे देखेहुये अविद्या और कामरूप दोषकरके प्रवृत्तभये धर्म अधर्मरू कर्म से रचित लोकनको, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और श (शास्त्र) रूप इनचार प्रमाणोंसे [इस लोकसम्बन्धी कर्मके फ रूप पुत्रादिकोंके नाशको विषयकरनेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण है। औ विवादका विषय स्वर्गादिक अनित्य है, कियाकरके साध्य हो से, घटवत्, यह अनुमान परलोकसम्बन्धी फलके नाशको विष करनेवाला। 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत' । सो जैसे यह कर्मकरके सम्पादित लोक क्षयको पावताहै । तैसे वहां 'पुण्य चितो लोकः क्षीयत' । पुण्यसे सम्पादित किया लोक क्षय पावताहै । इत्यादिरूप शब्द (आगम) प्रमाण है। तीन प्रमाण करके अनित्य होनेसे सर्व प्रकारसे निश्चय करके यह अर्थहै] स ओरसे यथार्थपने से निश्चयकरके, तिनसे वैराग्यको करे। स वैराग्यका प्रकार देखावतेहैं, इस संसारविषे कोई भी अकृत (अ नन्य) पदार्थ नहीं है, किन्तु सर्वही लोक कर्मरचित हैं, और स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्मरचित होने से अनित्य हैं ताते कुछभी वस्तु नित्य नहीं यह अभिप्राय है। और सम्पूर्ण कर्म अनित्यकाही साधन है। और जिसकरके उत्पत्ति होनेयोग्य, वा प्राप्ति होने योग्य, वा संस्कार करने योग्य, वा विकार करनेयाग्य इनभेदसे चारप्रकारकाही समस्त कर्मका कार्य है। एतदर्थ इससे पर (अन्य) कर्मका विषय नहीं हैं। और मैं, नित्य, अमृत, अभय, कूटस्थ (परिणामरहित) अचल (स्फुरणरहित) ध्रुव (प्रयत्नरहित), वस्तुसे अर्थ (प्रयोजन) वालाहौं, तिससे विपरीत वस्तुसे प्रयोजनवाला, नहीं। एतदर्थ बहुत श्रमकरके शुक्र और अनर्थके साधनरूपकृत (कर्म) तिनसे क्या प्रयोजनहै इसप्रकार वैराग्यको प्राप्तहोवे। पश्चात् "तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" । सो समित्पाणिहुआ तिसके विशेषज्ञानार्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के ताईही शरणको प्राप्तहोय। सो वैराग्यको प्राप्तभया ब्राह्मण, समिधोंका भार ग्रहण किया है जिसने अर्थात् अगर्वता विनयता आदि दैवीसम्पत्तिमान् ऐसाहुआ, अभय शिव अकृत और नित्यरूप जो पदहै तिसकी विशेषकरके प्राप्तिके अर्थ शम दम और दया करके सम्पन्न श्रोत्रिय, अर्थात् वेद शास्त्र अध्ययनकिये और तिनके श्रवणकिये अर्थ करके सम्पन्न, और ब्रह्मनिष्ठ, सर्व कर्मोंको त्याग के केवल अद्वैतरूप ब्रह्मबिषे जिसकी निष्ठा होय [यहां ब्रह्मनिष्ठ शब्दहै सो तपोनिष्ठ शब्दवत्है। और जिसकरके कर्म और आत्मज्ञान इन दोनोंका परस्पर विरोध है, तिसही करके कर्मिष्ठ पुरुष को ब्रह्मनिष्ठता सम्भवे नहीं। एतदर्थ ही यहां सर्व कर्मको त्याग के ब्रह्मबिषे निष्ठा कही। और अमुक कर्मके करनेसे अमुक फलकी प्राप्ति होगी, और तिनके न करने से प्रत्यवायआदि अनर्थ की प्राप्तिहोगी, इस बुद्धिपूर्वक जो कर्मका अथवा किसी अन्य साधन का करना, तिसको कर्त्तव्य कहते हैं, तिस कर्त्तव्यकी बुद्धिका जो त्याग सोई यहां सर्वकर्मका त्याग है क्रियामात्रका त्याग नहीं] ऐसे सद्गुरुकी शरणको प्राप्तहोय। सो ब्राह्मण तिस गुरुके अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ । २२ ॥

इति प्रथममुण्डकगतद्वितीयखण्डः समाप्तः ॥

इति प्रथममुण्डकम् ॥

शास्त्रके अनुसार समीपगयाहुआ गुरुको सेवाआदिकों से प्रसन्न करके सत्य और अक्षर (अविनाशी) रूप पुरुषको पूंछे॥ १२।२१॥

हे सौम्य ! " तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय " । तिस समीप आये शान्तचित्तवाले शम करके युक्तके अर्थ सो विद्वान्, तिस शास्त्रानुसार समीप आये शान्तचित्त वाले अर्थात् गर्वादिदोषरहित, और बाह्य ज्ञानेन्द्रियोंकी उपरति रूप शमकरके युक्त (सर्व से विरक्त) शिष्यके अर्थ सो विद्वान् अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ गुरु । " येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् " । तिससे सत्य और अक्षर रूप पुरुषको जानताहै तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थ कहै । जिस परविद्यारूप विज्ञानसे अदृश्यत्वादि विशेषणवाले सत्य और अक्षररूप, [अवयवोंके अन्यथा भावरूप परिणामस्वरूप क्षरणसे राहित होने से, और शरीर रहितरूप अक्षतपने से, और विकाररूप क्षयसे रहित होने से यह पुरुष (आत्मा) को अक्षर कहते हैं] पुरुषको जानताहै तिस ब्रह्मविद्याको यथार्थ कहै ॥ आचार्यकाभी यह नियमहै जो न्यायसे प्राप्तभये शिष्यको अविद्यारूप अपार महोदधिसे उद्धार करना ॥ १३ । २२ ॥

इति मुण्डकउपनिषद्गत प्रथममुण्डकके द्वितीय खण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः प्रारभ्यते ॥

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशःप्रभवन्ते स्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति ॥ १ । २३ ॥

द्वितीयमुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका का प्रारम्भ ॥

हे सौम्य ! यहां पर्यन्त अपरविद्याका सर्वकार्य कहा, अर्थात् ['द्वेविद्येवेदितव्ये' । दोविद्याजाननेको योग्य हैं । यह इस उपनिषद्के प्रथम मुण्डकके प्रथम खण्डके चतुर्थ मन्त्र से दोनों विद्याके कहनेका आरम्भकरके, प्रथम मुण्डक से अपर विद्याका वर्णनकरके पराविद्याका वर्णन करनेको द्वितीय मुण्डकका प्रारम्भ है, इस प्रकार यहां कहते हैं] अब सो अपरविद्याकाकार्य (विषय) रूप संसार जिस सारवाला है, और जिस अक्षरनामवाले मूल से उपजता है, और जिसबिषे लीन होता है, सो पुरुषनामवाला अक्षर सत्य है । और जिसके जानने से यह सर्व जानाजाता है, सो पारूप ब्रह्मविद्याका विषयहै सो कहने योग्यहै। ताते यह उत्तरग्रंथ का आरम्भ करते हैं । [जैसा पूर्वकर्मका भी सत्यपना कहा है, तैसाही यह पर विद्याके विषयका सत्यपना माननेको योग्य नहीं ऐसा कहते हैं] जो अपराविद्याका विषय कर्मका फल सत्य है सो आपेक्षिकहै। और यह पराविद्याका विषय तो परमार्थ से सत्यरूपहोनेकरके "तदेतत्सत्यम्" । सो यहसत्य है । सो यह विद्याका विषय सत्य यथार्थहै। और अन्यअविद्याका विषय होने से मिथ्या है । [यहां यह हार्दव है ब्रह्मको, पुण्यपापरूप अपूर्ववत् अत्यन्त परोक्षताहै, तिसकरके अर्थात् एक शब्द (शास्त्र) रूप प्रमाणकर के जानने को योग्य है ताते उसका प्रत्यक्षज्ञान सम्भवता नहीं, और मोक्ष जोहै सो साक्षात्कारके आधीन है, विना ब्रह्मके साक्षात् ज्ञानहुये मोक्ष होता नहीं, ताते उस सत्यरूप अक्षरको मुमुक्षुजन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कैसे प्रत्यक्ष प्रमाणवत् प्राप्तहोवेंगे । इस अभिप्रायसे जीवब्रह्मकी एकता विषे दृष्टान्त कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि ब्रह्म आत्माकी एकता होनेसे, जब प्रत्यक्रूप आत्मा अपना आप अपरोक्षहै तो ब्रह्मका भी जैसे एकदेशी घटके प्रत्यक्ष ज्ञानहोने से सर्वदेशके सब घटोंका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है तद्वत्, प्रत्यक्षपना होगा यहां उक्त दृष्टान्त और सिद्धान्तका यह वर्णन है कि जैसे अग्नि के सूक्ष्म अवयवरूप विस्फुलिङ्गों (चिनगारियों) बिषे भिन्न भिन्न देशों अवच्छेदसे, अर्थात् पृथक् २ देशोंकरके युक्त होने से आकार अवयवादि पनेका व्यवहार है, अर्थात् अग्निकी चिनगारियों विषे पृथक् २ आकारादि विकार व्यवहार है परन्तु स्वरूप करके एक भी सर्व चिनगारियों बिषे एक समान अग्निरूपताही है, क्योंकि उष्णता और प्रकाशताका अविशेषपनाहै ताते, अर्थात् सर्व चिनगारियोंबिषे उष्णता और प्रकाशतालक्षणवाला निर्विशेष अग्नि एकही है तैसेही चैतन्यरूपताके अविशेषसे जीवोंको स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है अर्थात् जैसे सोपाधि अग्निके नानाप्रकार विस्फुलिङ्गहोते हैं परन्तु तिनसर्वबिषे निरुपाधि समान उष्णता और प्रकाशतारूप लक्षणवाला अग्नि एकही है, तैसेही मायोपाधियुक्त चैतन्यरूप अग्निसे नानालिङ्ग (जीव) रूप विस्फुलिङ्ग पृथक् २ निकलते हैं परन्तु तिन सर्वबिषे चैतन्यतादि लक्षणवाला निरुपाधि ब्रह्मएक ही होने से सर्व जीवों को स्वरूपसे ब्रह्मरूपताही है] अक्षरवस्तु को अत्यन्त अपरोक्ष होनेसे प्रत्यक्ष (घट) वत् कैसे प्राप्तहोवेंगे इस शङ्काको मनबिषे ल्यायके दृष्टान्त कहते हैं " यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः " । जैसे भली प्रकारकरके प्रज्वलित भये अग्निसे अनेक अग्नि के समान रूप वाले विस्फुलिङ्ग निकलते हैं । जैसे भलीप्रकारसे प्रज्वलितभये अग्नि से सहस्रावधि अग्निके समानरूपवाले अग्निके अवयव रूप विस्फुलिङ्ग (चिनगारे) निकलते हैं । " तथाऽक्षराद्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियान्ति " । हे सौम्य ! तैसेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ॥ २ । २४ ॥

अक्षर से विविध भाव उपजते हैं, पुनः तहांही लीन होते हैं । हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! तिसही प्रकार उक्त लक्षणवाले अक्षर से आकाशादिकोंवत् नाना देहरूप उपाधि के भेदके अनुसारही होने से विविध (नाना) प्रकारके भाव (जीव) उपजते हैं जैसे घटादि उपाधिकरके परिच्छिन्न नानाप्रकारके आकाशरूप छिद्रके भेद, घटादिकों के भेदके अनुसारही होते हैं, इसही प्रकार जीव भी नाना नामरूप रचित देहरूप उपाधिके भेदके अनुसारही होते हैं । और पुनः भी घटादिकों के विलय भये पश्चात् आकाशरूप छिद्रनके विलयहोनेवत् तिसही अक्षरबिषे देह (लिंग) रूप उपाधिके विलयभये पश्चात् लीन होते हैं । और जैसे आकाश को छिद्रों के भेद के उत्पत्ति और प्रलय का निमित्तपना जो है सो घटादि उपाधियोंका कियाहै, तैसेही अक्षरको भी जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलयका निमित्तपना जो है सो नामरूप कृत देहउपाधि रूप निमित्तका कियाही है ॥ १ । २३ ॥

हे सौम्य ! अब [अक्षर पुरुषको जो उपाधिका किया जीवों की उत्पत्ति और प्रलयका निमित्तपना कहा, सो कार्य कारण भावकरके तिनकी अभेदताकी सिद्ध्यर्थ है । और परमार्थ से स्तुतिरूप निमित्तवाला जीवोंकी उत्पत्ति और प्रलय का निमित्त भावभी नहीं है, ऐसा कहते हैं [नामरूपके बीजभूत अव्याकृत नामवाले और अपने कार्यकी अपेक्षा करके पर (श्रेष्ठ) अक्षर से पर जो सर्व उपाधियों के भेदसे रहित, और आकाशवत् सर्व मूर्त्ति (आकार) से रहित, और 'नेतिनेति' । कार्यरूपभी नहीं और कारणरूपभी नहीं । इत्यादि विशेषणवाला जो अक्षरकाही स्वरूप है तिसको कहनेकी इच्छाकरतेहुये कहते हैं । "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" । दिव्य और अमूर्त्त पुरुषहै सो बाहर भीतर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजही वर्त्तताहै। जो स्वयंज्योतिरूप होने से दिव्य (प्रकाशमान
है, अथवा अपने आत्मरूप स्वर्ग बिषे स्थित है, एतदर्थ दिव्य
अथवा अलौकिकहै ताते दिव्यहै। और जिसकरके सर्व मूर्त्ति
रहितहै इसही से अमूर्त्त है। और पूर्ण है, अथवा शरीररूपी पुरि
बिषे रहताहै ताते पुरुष है। ऐसादिव्य और अमूर्त्त (आकाररहित
जो पुरुष है सो बाहर [देहकी अपेक्षासे जो बाहर और भीतर
देशप्रसिद्धहै तिसकेसाथही तादात्म्यसे, अथवा तिसके आधिष्ठा
पने से वर्त्तता है, एतदर्थ 'सबाह्याभ्यन्तरः'] बाहर भीतर सहित
एतदर्थ सर्वरूप होनेसे तिससे पृथक् जन्मके निमित्तका अभा
ताते अज (जन्मरहित) है] और भीतरके देशकरके साहित वर्त्त
है। और अजन्मा है, अर्थात् किसी से भी जन्मको पावता नहीं
क्योंकि स्वरूप से जो अजन्माहै तिसके जन्मके निमित्तका अभा
है ताते। और जैसे स्वरूपसे जन्मवाले जलगत बुद्बुद आदि
के जन्मके निमित्त वायुआदिकहैं। और जैसे स्वरूपसे जन्मवा
आकाशके छिद्रोंके भेदक जन्मके निमित्त घटादिकहैं, तिसप्रका
स्वरूपसे जन्मरहित परमात्माके जन्मका निमित्त नहीं है। औ
एतदर्थ सर्व [जायते (जन्म), अस्ति (प्रकटता), विपरिणमते (वि
परिणाम), अपक्षीयते (अपक्षय), विनश्यति (विनाश), इनष
स्कनामवाले मुनिने निरुक्तनामक ग्रन्थ बिषे कथन किये ष
अनिर्वचनीय भावरूप विकारोंके निषेध बिषे अजशब्दके तात्पर्य
कहतेहैं] भावरूप विकारोंको जन्मरूप मूलवाले होने से तिसज
के निषेधसे सर्वविकार निषेधको प्राप्तहोतेहैं। और जिसकरके या
पुरुष बाहर भीतर रहितहै और अजन्माहै, इसहीसे अजरहै, अम
तहै, अक्षयहै, ध्रुव है, और अभयहै, यह अर्थ है। [जीवोंको प्रा
आदिककरके युक्तहोने से तिनकी स्वरूपताकेहुये ब्रह्मकोभी प्रा
आदिककरके युक्तपना प्राप्तभया तिसको निवारण करतेहैं] यद्यपि
देहादिक उपाधियोंके भेदकी दृष्टिवाले पुरुषोंकी तलमल आदि
धर्मवाले आकाशवत् अविद्याके वशसे देहके भेदोंके बिषे, सो पुरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणसहित मन सहित इन्द्रिय सहित और विषय सहित प्रतीत होता है, तथापि स्वरूप से परमार्थ करके देखाहुआ क्रियाशक्ति के भेदवाला चलनरूप प्रसिद्ध विद्यमान प्राणवायु जिसबिषे विद्यमान नहीं है याते "अप्राणोह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः" (अप्राणहै अमनाहै शुभ्रहै अक्षर से पर सो पुरुषहै) पुरुष अप्राणहै। और तैसेही अनेकज्ञान शक्तिके भेदवाला सङ्कल्पादिकरूप मनभी जिस बिषे अविद्यमानहै, एतदर्थ यह पुरुष अमनाहै यहां अप्राण और अमना, इसकथनसे प्राणादिकवायु केभेद कर्मेन्द्रियां और तिनके विषय, तैसे मनबुद्धि ज्ञानेन्द्रियां और तिनके विषय, निषेध कियेजानने। और जैसे 'ध्यायतीव लेलायतीव' (ध्यान करतेहुयेवत् और लीला (क्रीड़ा) करतेहुयेवत्है) इसअन्य श्रुतिबिषेदोनों उपाधियों के निषेधसे सर्व उपाधियोंका निषेध जनायाहै, तैसेही यहांभी जानलेना और जिसकरके उक्तप्रकार उपाधियों से रहित अद्वैतरूपहै, तिसही करके शुभ्र (शुद्ध)रूपहै। और जिसकरके शुभ्र है, इसहीसे नामरूपके बीज (ब्रह्म) का उपाधि होनेकरके लक्षित है स्वरूप जिसका, ऐसे माया उपाधिरूप और तिस उपाधिकरके विशिष्ट ब्रह्मरूप सर्वकार्योंसे पर। [ननु, मायातत्त्वरूप अक्षर को परपनाकैसेहै इस संशय केहोनेसे कहते हैं, जिसकरकेमायातत्त्व समस्त कार्य कारणका बीज होनेकरके लखिये है, तिसकर के पर है। और कार्य जो है सो अपर (अश्रेष्ठ) रूप प्रसिद्ध है। और जो तिसकार्यका कारण होनेकरके जानने बिषे आवता है एतदर्थ मायातत्त्व पर (श्रेष्ठ) है। और यौक्तिकबाधसे अनिर्वचनीय हुये भी तिसके स्वरूपके उच्छेद (नाश) के अभाव मायातत्त्व अक्षर है। सो गीताशास्त्र के पन्द्रहवें अध्यायबिषेकहा है 'क्षरःसर्वाणि भूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते। उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः' (सर्व (कार्यकारणरूप) भूतक्षर हैं। और कूटस्थ (कपटवत्) मिथ्या स्थित होनेवाला मायातत्त्व अक्षर है। और उत्तमपुरुष तो इनसे अन्यही है जो परमात्मा नामसे कहा जाता है।] (श्रेष्ठ)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणि च । खंवायु-
ज्योतिरापःपृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ । २५ ॥

अक्षर से पर (निरुपाधि) सो पुरुष है । यह अर्थ है ॥ प्र० ॥ ननुजिस बिषे सो आकाशनामक अक्षर सम्यक् व्यवहार का विषय हुआ ओत और प्रोतहै, तिसअक्षर पुरुषको पुनः प्राणादिकों से रहितपना कैसे है ॥ उ० ॥ जब प्राणादिक अपनी उत्पत्ति से पूर्व पुरुषवत् अपने स्वरूपकरके विद्यमानहोय तब पुरुषको विद्यमान प्राणादिकों से प्राणादिवान्पना होय । परन्तु वे प्राणादिक अपनी उत्पत्तिसे पूर्व विद्यमानहैं नहीं, एतदर्थ पुरुष (अक्षर) प्राणादिकों से रहित है ॥ २ । २४ ॥

हे सौम्य ! जैसे पुत्रके अनुत्पन्नभये देवदत्त पुत्र से रहित है ऐसा कहते हैं । तैसे परमात्मा नामवाले पुरुषको वे प्राणादिक कैसे विद्यमान नहीं हैं । यह शंका विचार के कहते हैं । [जोई चैतन्य निरुपाधि शुद्ध अविकल्परूप ब्रह्म, तत्त्वज्ञान से जीवों का कैवल्य मोक्षरूपहै, सोई ब्रह्म मायाबिषे प्रतिबिम्बरूपसे स्थित हुआ कारण होता है ऐसा कहते हैं] "। एतस्माज्जायते प्राणो मनःसर्व्वेन्द्रियाणि च "। । इससेही प्राण उपजे हैं, और मन और सर्व इंद्रियां (उपजे हैं) । जिसकरके नाम रूपके बीज (ब्रह्म) के उपाधि करके लक्षित इस पुरुष सेही अविद्या के आधीन [जब प्राणकी उत्पत्ति से पूर्व आत्माको प्राणसहितपना नहीं है, तब प्राणकी उत्पत्तिसे पश्चात् आत्माको प्राणसहितपना होगा। इस शंकाकी निवृत्ति के अर्थ प्रसिद्ध प्राणके विशेषणको कहते हैं] कार्यरूप नाममात्र मिथ्यास्वरूप प्राण उपजता है 'वाचारम्भणं विकारोनामधेयमिति' । वाणीसे उच्चारण किया विकार (कार्य) नाममात्रहै । इस छान्दोग्यकी श्रुतिसे । तिस हेतुसे, जैसे पुत्ररहित देवदत्त को स्वप्नबिषे देखेहुये पुत्रकरके पुत्रसहितपना नहीं है, तैसेही अविद्याके विषय (आधीन) और गुणयुक्त प्राणसे परपुरुष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्च वेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ । २६ ॥

का प्राण सहितपना नहीं है। तैसेही मन और सर्व इन्द्रियां और तिन के विषय इसही पुरुषसे उपजते हैं। एतदर्थ इस पुरुषको आरोपसे रहित (यथार्थ) प्राणादिकसे रहितपना सिद्धभया। और जैसे वे प्राणादिक अपनी उत्पत्ति से पूर्व परमार्थ से अविद्यमानहैं, तैसेही उत्पत्तिसे पीछे तिसहीबिषे लीनहोते हैं, इसप्रकार जानना। और जैसे इस पुरुष से मन और इन्द्रियरूप करण उपजते हैं, तैसेही शरीर और विषयों के कारण "खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्यधारिणी" । आकाश वायु अग्नि जल और विश्वके धारण करनेवालीपृथिवी (उपजेहैं)। आकाश और आवह आदिक सातभेद वाला बाह्यका वायु और अग्नि और जल और विश्वको धारण करने वाली पृथिवी, यह शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धरूप पिछले २ गुण वाले और पूर्व पूर्वके गुणरहित पंचभूत इसही पुरुषसे उपजते हैं॥ "दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः" । दिव्य अमूर्त्त पुरुष है । इत्यादि मन्त्र से निर्विशेष सत्य अक्षर पुरुषरूप पराविद्याके विषयको संक्षेप से कहके पुनः सोई पूर्वोक्त सविशेष वस्तु अब सविस्तर कहने को योग्यहै। और जिसकरके सूत्रभाष्य की युक्तिवत् एकही प्रसङ्ग बिषे संक्षेप और विस्तारसे कहाहुआ पदार्थ सुख से जानने में आवता है, एतदर्थ पूर्व संक्षेप से कथन किये निरुपाधिक वस्तुको अब सोपाधिकपने करके सविस्तर कहते हैं॥ ३ । २५ ॥

हे सौम्य ! जो प्रथम उत्पन्नभये हिरण्यगर्भ रूप प्राणसे उपजा है। और अन्यतत्त्व सहित आकाशके स्वरूपसे लक्षबिषे आवता है ऐसा जो इस हिरण्यगर्भ के भीतर वर्त्तमान विराड् है सो भी इसी पुरुष से उपजा है और इसी का स्वरूप है. इसी अर्थको कहते हैं। और उस विराड्पुरुषको विशेषण देते हैं "। अग्निर्मूर्द्धा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृत्ताश्चवेदाः ”। अग्नि मस्तक चन्द्रसूर्य दोनों चक्षु दिशा श्रोत्र प्रसिद्ध वेद हैं वाणी (जिसकी) हे गौतम ! ‘असौवाव लोको गौतमाग्निरिति श्रुतेः’ यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक अग्नि है, इस श्रुतिकरके, अग्नि जो स्वर्गलोक सो है मस्तक जिसका। और चन्द्र सूर्य हैं दोनों चक्षु जिसके और दशो दिशा हैं श्रोत्र जिसके और प्रसिद्ध चारोंवेद हैं वाणी जिसकी। और “वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ”। वायु है प्राण (और) समस्त विश्वहै हृदय जिसका (और) पादोंसे पृथिवी है यह सर्व भूतोंका अन्तरात्माहै। वायु है प्राण जिसका। और समस्त जगत् है हृदय (अन्तःकरण) जिसका। एतदर्थ अन्तःकरणका विकाररूपही सर्वजगत् मनविषे ही स्थितहै, क्योंकि सुषुप्ति बिषे जगत्का प्रलय देखते हैं। और जाग्रत्बिषे भी किसी मनसेही, अग्निसे चिनगारेवत्, उत्पन्न होता है, एतदर्थ यहां सर्व विश्वविराड्का अन्तःकरण कहा है। और जिससे दोनों चरणोंसे पृथिवी भई है। यह प्रथम शरीरधारी त्रैलोक्यमय देहरूप उपाधिवाला अनन्तरूप विष्णुदेव आकाशादि सर्व भूतोंका अन्तरात्मा अर्थात् स्थूल पंचभूतरूप शरीरवाला विराड् है। सोई सर्वभूतों बिषे द्रष्टा श्रोता मन्ता विज्ञाता और सर्व करणोंका स्वरूप है। और पांच, अर्थात् [स्वर्गलोक, मेघ, पृथिवी, पुरुष और स्त्री, इन पांचोंबिषे अग्निकी दृष्टिको, अन्य छान्दोग्य उपनिषद्के पंचमाध्याय सम्बन्धी पंचाग्निविद्याबिषे उक्त होनेसे उन स्वर्गादिक] पांच अग्निरूप द्वारसे जो प्रजा व्यवहार करे हैं सो प्रजाभी उसी पुरुषसे उपजे हैं, इसप्रकार अब अगिले मन्त्र करके कहते हैं ॥ ४ । २६ ॥

हे सौम्य ! “ तस्मादग्निः समिधोयस्यसूर्य्यः ”। जिससे अग्नि होता है कि जिसका समिध सूर्य्य है। तिस पुरुष से प्रजाकी स्थिति विशेषरूप जो स्वर्गलोकरूप अग्नि है सो उत्पन्न होताहै कि जिस अग्निका सूर्य समिधावत् समिध है। और जिस करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्य्यः सोमात्पर्ज्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान्रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥ ५ । २७ ॥

सूर्य्य से स्वर्गलोक प्रकाशित होता है तिसकरके सूर्य्य उसका समिधहै, स्वयंप्रकाशी गोलही स्वर्गलोक है। और "। सोमात् पर्जन्यओषधयः पृथिव्याम् "। चन्द्रमा से मेघ और पृथिवी बिषे ओषधियां (होतीहैं)। तिस स्वर्गलोकरूप अग्नि से ; सोमोराजा सम्भवति ; उत्पन्न भया जो चन्द्रमा तिस चन्द्रमा से मेघरूप द्वितीय अग्नि उत्पन्न होताहै। और तिस मेघ से भई वर्षा तिस करकेपृथिवी बिषे ओषधियां (व्रीहि यवादि अन्न) उत्पन्न होताहै। और "। पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां "। पुरुष है सो स्त्री बिषे रेतको सिंचन करताहै। पुरुष रूप अग्नि बिषे हवन की हुई अन्नादि ओषधियों से उत्पन्न भया जो रेत (वीर्य) तिसको पुरुष स्त्रीरूपा अग्निबिषे सिंचन करता है। इस प्रकार क्रम करके "। बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः "। पुरुष से बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती हैं। परब्रह्मरूप पुरुष से ब्राह्मणादि बहुतसी प्रजा उत्पन्न होती हैं॥ और कर्म के साधन और फल उसी पुरुष से उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार अब अगिले मंत्रकरके कहैंगे ॥५।२७॥

हे सौम्य ! ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तिस पुरुष से कर्म के साधन और फल कैसे होते हैं ॥ उ० ॥ "। तस्माद्दचःसामयजूंषि "। तिससे ऋचा (ऋग्वेद) सामवेद यजुर्वेद (होते हैं)। तिस पुरुष से नियमित अक्षरवाले पदहैं अन्तबिषे जिसके, ऐसे गायत्री आदिक छन्द करके युक्त मंत्ररूप ऋचा, और पांच अवयववाला और सप्त अवयववाला [हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, और निधन, इन नामक पांच अवयववाला और हिङ्कार, प्रस्ताव, आद्य, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन, इननामक सात अवयवोंवाला, जो सामहै सो पांच विभक्तिक और सात विभक्तिकहै] और अर्थरहित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्माद्दचःसामयजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्व्वे क्रतवः दक्षिणाश्च । संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः ॥ ६ । २८ ॥

अक्षररूप स्तोमआदिकके गान करके युक्त भेदसे तीनप्रकार साम और नियमरहित अक्षरवाले पदहैं अन्तबिषे जिसके, वाक्यरूप यजुर्वेदके मन्त्र ऐसे तीन प्रकार के मन्त्ररूप वेद भये । और "दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च" । दीक्षा यज्ञके स्तम्भसहित सर्व क्रतुरूप यज्ञ और दक्षिणा (होतेभये) ज्ञोपवीतादि लक्षणवाले कर्त्ता के सत्यभाषणादि नियम विक्ष रूपदीक्षा और यज्ञके यूप (स्तंभ) आदिक सहित अग्निहोत्रादि क्रतुरूप यज्ञ, और एक गौसे आदिलेके [विश्वजित् और सर्वमे इनदोनों यज्ञोंबिषे सर्वस्व (सर्वधन) की दक्षिणा होती है, एतद एक गौसे लेके सर्वस्वधन पर्यन्त दक्षिणा दीजातीहै] अपरिमितर धनके दानपर्यन्त दक्षिणा और "संवत्सरश्च यजमानश्च लोक सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः" । संवत्सर और यजमान और लो (उपजते हैं) और जिनबिषे चन्द्रमा पोषण करताहै और जिनबि सूर्य्य पवताहै । कालरूप संवत्सर, और कर्त्तारूप यजमान, कर्मों के साधन (सामग्री) और तिनकर्त्ता के कर्म के फलरूप लो उपजते हैं । और जिन लोकोंबिषे चन्द्रमा लोकोंको (प्रजाको) षणकरताहै, और जिन लोकोंबिषे सूर्य्य तपताहै, सो लोक दक्षिण यन और उत्तरायणरूप उभय मार्गोंसे गमन करनेयोग्य विद्व और अविद्वान्रूप कर्त्ता के कर्मफलहैं ॥ ६ । २८ ॥

हे सौम्य ! "तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः" । तिससे बहुत कारके देवता सम्यक् उत्पन्न होतेभये । तिस परमात्माख्य पु से कर्मके अंगभूत वसुआदिक गणोंके भेदसे बहुत प्रकारके देव सम्यक् प्रकारसे उत्पन्न होतेभये । और "साध्या मनुष्याः पशु वयांसि" । साध्य और मनुष्य और पशु और पक्षी उत्पन्न (होतेभये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥ ७ । २९ ॥

साध्य नामवाले देवविशेष, और कर्मके अधिकारी मनुष्य, और ग्राम तथा वनके निवासी 'अरण्या ग्राम्याश्च ये,' 'पशु और पक्षी' उत्पन्न होतेभये । और "प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च" 'प्राण और अपान, धान्य और यव और तप और श्रद्धा और सत्य और ब्रह्मचर्य और विधि (उत्पन्न होतेभये)' मनुष्यादिकोंका जीवन प्राण और अपान, और हवनरूप अर्थवाले धान्य और यव, और कर्मका अङ्ग ['पयोब्राह्मणस्य व्रतं यवागूराजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्येत्यादि श्रुतिः' 'ब्राह्मणका पयोव्रत, और क्षत्रियका यवागू (कांजी) व्रत है, और वैश्यका आमिक्षा (मिश्रित दूध और दधिका विकार) व्रतहै, इत्यादि श्रुतिबिषे विधानकिया' जो कृच्छ्र और चांद्रायण आदिक व्रत, सो कर्मका अङ्गभूत आदिक तप है] पुरुषके संस्काररूप और स्वतन्त्र कर्मका साधनरूप तप, और जिसके पूर्व होने से सर्व पुरुषार्थोंके साधनको कारणरूपचित्त की प्रसन्नता होती है, ऐसी आस्तिकपने की बुद्धिरूप श्रद्धा, और खेदका न करनेवाला झूठसे रहित यथार्थ अर्थका कथनरूप सत्य, और मैथुन (स्त्रीसंग) के अकरण(त्याग) रूप ब्रह्मचर्य, और कर्त्तव्यतारूपा विधि यह सर्व उक्त अक्षरसे उत्पन्न होतेभये ॥ ७।२९ ॥

हे सौम्य ! "सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त समिधः सप्तहोमाः" 'तिससे सात प्राण और सातज्वाला और सात समिध और सातहोम होतेभये' किंवा तिसही पुरुषसे मस्तकबिषे स्थित जो, दोश्रोत्र, दोनेत्र, दोघ्राण और एक मुखान्तर रसना, यह सात प्राणसंज्ञक इन्द्रियां होती हैं, अर्थात् 'चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रतिष्ठते' इस प्रश्न उपनिषद्के तृतीय प्रश्नकी पांचवीं श्रुतिके प्रमाणसे उक्त सातों स्थानों बिषे स्वयं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त समि
सप्तहोमाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाश
निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ । ३० ॥

प्राण प्रतिष्ठित (वर्त्तता) है ताते उक्त इन्द्रियोंकी प्राण संज्ञाहै। उ
उन प्राणोंकी अपने २ विषयको प्रकाशनेवाली ज्ञानयुक्त वृत्ति
अर्च्चियां (ज्वाला) होती हैं, और तैसेही उन अर्च्चियोंके अर्थ स
विषयरूप समिध होती हैं, अर्थात् जिसकरके विषयों से मि
यह इन्द्रियां रूप प्राण, जैसे समिध से मिलके अग्निकी ज्वा
तैसे, बाह्य प्रवृत्त होती है। ताते विषय इन्होंके समिधहैं। और
दस्य विज्ञानं तज्जुहोतीति श्रुत्यन्तरात्, 'जो इसका विज्ञान
तिसको होमकरता है' इस अन्य श्रुतिके प्रमाण से, उन विषयों
विज्ञानरूप सातहोम होते हैं 'इन्द्रियाग्निषु जुह्वती', और, "स
इमेलोका येषुचरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताःसप्तसप्त" 'जिनमें
प्राण विचरते हैं यहसातलोक (होते हैं) और गुहाबिषे रहतेहैं, औ
सात सात (स्थानकहतेहैं)' जिन्होंबिषे प्राण विचरते हैं ऐसे इन्
योंके स्थानरूप यह सातलोक होते हैं। और सो प्राण कैसे हैं
जो निद्राकाल में शरीररूप अथवा हृदयरूप गुहाबिषे रहतेहैं, औ
जो परमेश्वरने प्राणियोंके भेदके प्रति सात सात स्थान किये
हे सौम्य ! इस सम्पूर्ण प्रकरणका यह अर्थ है कि, आत्मयाजी
अर्थात् ['सकलमिदमहंच वासुदेवः' 'यह सर्व जगत् और
परमात्माही है' इस प्रकारकी दृढ़ भावना पूर्वक परमेश्वर
आराधनकी बुद्धिसे जो यजन करते हैं तिनको आत्मयाजी कह
हैं] विद्वान् पुरुषों के जो कर्म और तिन कर्मोंके साधन और का
के फल हैं, और अविद्वान् पुरुषोंके कर्म और तिन कर्मोंके साध
और कर्मों के फल हैं, यह सर्व जगत् सर्वज्ञ पर पुरुष (अक्ष
ब्रह्म) से ही उत्पन्न भया है ॥ ८ । ३० ॥

हे सौम्य ! "अतः समुद्रा गिरयश्च सर्व्वेऽस्मात् स्यन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्व्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्व्वरूपाः । अतश्च सर्व्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ । ३१ ॥

सिन्धवः सर्वरूपाः" । [इसते सातों समुद्र और सर्व पर्वत और सर्वरूपवाली नदियां होती हैं। इस अक्षर नामवाले पुरुष से क्षारादिक सप्त समुद्र होते हैं और हिमालय विन्ध्याचल आदि सर्व पर्वत, इस उक्त पुरुषसेही होते हैं, और बहुत रूपवाली जे गङ्गा यमुना सिन्धु आदिक नदियां सो भी इसही पुरुषसे स्रवती हैं, और "[अतश्च सर्व्वाओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा" [इसही से सर्व (अन्नादि) ओषधियां और रस होते हैं कि जिस करके भूतों करके अन्तरात्मा स्थित होता है। इसही पुरुष से तण्डुल यवादि सर्व ओषधियां उपजती हैं। और इसही पुरुष से मधुरादि अर्थात् मधु मीठा और कटु (कडुवा) और अम्ल (खट्टा) और तीक्ष्ण (तीखा) और क्षार (खारा) और कसायल (कसायला) यह छः प्रकारका रस होता है। और जिस रस करके स्थूल पंचभूतों करके आवृतभया अन्तरात्मा (लिंगशरीर) स्थित होता है। अर्थात् लिंगरूप जो सूक्ष्म शरीर है सो जिसकरके स्थूल शरीर और आत्माके मध्यविषे बढ़ता (पुष्ट होता) है तिस करके इस लिङ्गको अन्तरात्मा कहते हैं ॥ ९ । ३१ ॥

हे सौम्य ! इसप्रकार पुरुष (अक्षर) से यह सर्व उत्पन्न भया है। एतदर्थ "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं" वाणीसे उच्चार किया विकार नाममात्र (मिथ्या) होता है। और पुरुष (अक्षरब्रह्म) ही सत्य है। एतदर्थ "पुरुषएवेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्मपरामृतम्" [पुरुषही यह सर्व है (सर्वक्याहै) कर्म और तप ब्रह्म पर अमृतरूप] पुरुष (अक्षर) ही यह सर्वहै। पुरुष से अन्य विश्वनामक कुछ भी वस्तु नहीं है। एतदर्थ "कस्मिन्नु विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति" [हे भगवन् ! किसके जानेहुये सर्व यह जाना जाता है]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपोब्रह्मपरामृतम् । एतद्यो वेद निहितंगुहायांसोऽविद्याग्रन्थिंविकिरतीहसौम्य॥ १०।३२

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

यह इसही उपनिषद् के प्रथम मुण्डकके प्रथमखण्डके तासरे मं बिषे जो कहाथा, सो यह कथन किया। अर्थात् [जो प्रथम मुण्ड के तृतीय मंत्र करके जो शिष्यने प्रश्नकिया था कि हे भगवन् किसके जानने से यह सर्व जानाजाता है तिसका उत्तर निरूप किया । यह नामरूपात्मक सर्व परमात्मा सेही उपजता है । एव दर्थ परमात्मस्वरूप यह सर्व, तिस परमात्मा के ही जानने जाना जाताहै । इस प्रकार (आचार्यने शिष्यकी) अविद्याके ध्व यरूप फलके कथनसे समाप्त किया] । ननु, सर्वके कारणभू परमात्मा के जानने से 'पुरुष एवेदं विश्वं' । पुरुषही यह स विश्वहै । इसप्रकार जानाजाता है ॥ प्र०॥ पुनः यह विश्व क्या है उ० ॥ अग्निहोत्रादिरूप कर्म, और तिस कर्मका किया ज्ञानम तप और अन्यभी जो यह सर्व है, सो जिस करके ब्रह्मका कार्य तिसही करके "एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकि रतीहसौम्य" हेसौम्य ! गुहाबिषे स्थित परम अमृतरूप, इस ब्रह्म को जो जानताहै सो अविद्याग्रन्थिको नाश करे है । हे सौम्य (हेप्रियदर्शन !) सर्व प्राणियोंकी हृदयरूपी गुहाबिषे स्थित पर अमृतमय इसब्रह्मको 'अहमेवेति' । यह मैंही हूं । इसप्रकार जो जानत है, सो ऐसे अभेद विज्ञान से यहां (संसारबिषे) जीवता हुआही अर्थात् विनाही मरे, अविद्याकी ग्रन्थिको, अर्थात् ग्रन्थिवत् दृढ़भ जे अविद्याकी वासना तिसको नाश करेहै ॥ १० । ३२ ॥

इति मुण्डक उपनिषद्गत द्वितीयमुण्डकके प्रथमखण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः प्रारभ्यते।

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाममहत्पदमेवैतत् समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं पर विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्॥ १। ३३॥

द्वितीयमुण्डकगतद्वितीयखण्डकी भाषाटीका प्रारंभ।

हे सौम्य! [अब जिसको एकबार आदेश (उपदेश) मात्रसे 'ब्रह्मास्मीति' अद्वितीय ब्रह्म मैंहूं, ऐसा वाक्यार्थ का ज्ञान अनुभव पर्यन्त होवे नहीं, तिस पुरुषको वाक्यके अर्थ कीही बारम्बार भावना और युक्तिके अनुसन्धानरूप उपायका अनुष्ठान कर्तव्य उचितहै, इस अभिप्रायसेकहते हैं] शिष्यका प्रश्नहै कि, अरूप और सद्रूप जो अक्षर (ब्रह्म) है सो किसप्रकारसे जाननेको योग्य है॥उ०॥ "आविः सन्निहितं" [प्रकाशरूपहै और सम्यक् स्थितहै] सो ब्रह्म स्वयं ज्योति (प्रकाशरूप) है अर्थात्[विश्वके ज्ञानरूपकरके प्रकाशमान ब्रह्महै, तिसकी मुमुक्षुजन सदा भावना करें। यह अर्थ है सो अन्य ग्रन्थकारों ने भी कहा है जो है, जो भासताहै, सो आत्मरूप है। तिससे अन्य भासता नहीं, और अन्यहै भी नहीं। किन्तु केवल अपनी आप सत्तारूप संवित् (चैतन्य) भासता है। और ग्राह्य (विषय) और ग्रहीता (विषयी) यह सर्व कल्पना मिथ्याही है इति] और सम्यक् स्थित है अर्थात् [सर्व प्राणियों के हृदय बिषे स्थित वागादि उपाधियों से शब्दादि विषयों को प्राप्तहुयेवत् ब्रह्मही जीवभावको प्राप्तहुयेवत् भासताहै, एतदर्थ सो अपरोक्षहै, इसप्रकार सदाही स्मरणकरे] कहिये 'वागाद्युपाधिभिर्व्वलति भ्राजतीति, श्रुत्यन्तरे' [वाणीआदिक उपाधियोंसे प्रकाशता है और विराजमान है] इस अन्य श्रुतिके प्रमाणकरके शब्दादिकोंको प्रकाशताहुआ भासता है और दर्शन श्रवण मनन और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञान आदिक उपाधियों के धर्मोंसे प्रकटहुआ सर्व प्राणियों के हृदय बिषे लखाजाताहै । और जो यह प्रकटहुआ ब्रह्म हृदयबिषे सम्यक् स्थित है सो दर्शन श्रवणादिप्रकारों से "। गुहाचरंनामा हृदयरूप गुहा बिषेविचरनेवाला(गुहाचर ऐसे)नामवालाप्रख्यात है । और [अब यह सर्व जगत् कार्यरूप और परिच्छिन्नरूप है, क्योंकि आश्रय सहितका कार्यरूपहोने से और परिच्छिन्नरूप होने से घटादिकोंवत् । एतदर्थ जो सर्वका आश्रयरूप है, सोई मायाका आश्रय आत्मरूप है । इस युक्तिके अनुसन्धानको कहते हैं] "महत्पदं "। महत्पद है । जो ब्रह्म सर्वसे बड़ा होनेसे महत् है । और सर्व पदार्थोंका आश्रयहोनेसे सर्वसे प्राप्तहोताहै, याते पदहै एतदर्थ ही, महत्पदरूप है ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म महत्पदरूप कैसे है ॥ उ० ॥ "एजत्प्राणन्निमिषच्च "। चलनेवाला प्राणवाला निमिषवाला है । जो चलनेवाले पक्षी आदिक हैं, और प्राण अपान आदिक प्राणोंवाले मनुष्य पशुआदिक हैं, और निमिष आदिक क्रियावालाहै, और जो अनिमिषवालाहै । और "। अत्रैतत्समर्पितं "। यह इसबिषे प्रवेशको पायाहै । यह सर्व इस ब्रह्मबिषे प्रवेशको पाया है । और "। यदेतज्जानथ"। जो है इसको जानो । ऐसा जो (सर्व का) आश्रयहै, इसको, हे शिष्य ! तुम सर्वजानो और "सदसद्वरेण्यं "। सत् असत् स्वरूप है और वरेण्य है । सो ब्रह्म तुम्हारा आत्मरूपहै और सत् असत् रूपहै, क्योंकि सत्कहिये अमूर्त्त और असत् कहिये मूर्त्तरूप जो स्थूल और सूक्ष्म प्रपंचहै तिसको तिस ब्रह्म से भिन्न भावका अभाव है ताते, और सोई ब्रह्म वरेण्य है, अर्थात् नित्य होनेसे सर्वको माननेयोग्यहै। और "। पराविज्ञानाद्वरिष्ठं प्रजानां"।प्रजाके विज्ञानसे परहै और वरिष्ठहै । प्रजाके विज्ञान से पर(पृथक्) है, अर्थात् लौकिक ज्ञानसे अगोचरहै और वरिष्ठहै, अर्थात् सर्वश्रेष्ठपदार्थोंबिषे सोई एकब्रह्म अतिशयकरके श्रेष्ठ है। क्योंकि सर्व दोषोंकरके राहितहै ताते ॥ १ । ३३ ॥

हे सौम्य! [घटादिकोंवत् सूर्य्यादिकोंको जड़ताके होनेसेभी जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदुवाङ्मनः तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि॥ २। ३४॥

प्रकाशवान्पने बिषे विचित्रता है, तिसका ब्रह्मरूप प्रकाश विना असंभव है। तिस असंभवरूप अर्थापत्ति प्रमाणसेभी तिसका कारण निश्चय करनेको योग्यहै इसप्रकार यहां कहते हैं] "यदर्चिमत्" [जो प्रकाशवान्है। जो ब्रह्म अपने प्रकाशसे सूर्य्यादिकोंको प्रकाशताहै एतदर्थ प्रकाशवान्है [ब्रह्मकोप्रकाशवान् होनेसे सूर्यादिकोंवत् इन्द्रियोंका विषयत्व प्राप्तभया, इस शंकाका यहां निषेध करते हैं] और "यदणुभ्योऽणु" [जो सूक्ष्मसेभी सूक्ष्महै। किंवा जो सामा (अन्नविशेष) आदिक सूक्ष्म वस्तुओं से भी सूक्ष्म है॥ शंका॥ [तब ब्रह्मको परमाणु के परिमाणकरके युक्तपना होगा॥ उ०॥ यह शंका करनेको योग्य नहीं ऐसा कहते हैं] और वो पृथिव्यादि स्थूल वस्तुओंसेभी अतिशयकरके स्थूल है 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्' [शंका, तब ब्रह्मस्थूल होनेसे अन्य आधारवाला होवेगा॥ उ०॥ यह शंका करनेको योग्यनहीं, ऐसा कहते हैं] "यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च"। [जिसबिषे लोक और लोकनिवासी स्थितहैं। जिसबिषे पृथिवीआदिक लोक और जो मनुष्यादिक चैतन्यके आश्रय प्रसिद्ध सर्वलोक के निवासी प्रजा हैं सो स्थित हैं। और "तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदुवाङ्मनः"। [सो यह अक्षर ब्रह्महै सो प्राणहै और सो वाक् और मनहै। [अब प्राणादिकों की जो प्रवृत्ति है सो चैतन्य अधिष्ठानरूप निमित्तवाली है जड़ोंकी प्रवृत्ति होनेसे रथ आदिकोंकी प्रवृत्तिवत् और चैतन्य के भेद होने बिषे प्रमाणका अभाव है ताते एक चैतन्यमात्र है ऐसे विचार करना। यह कहतेहैं] सो यह सर्वका आश्रय अक्षर (अविनाशी) ब्रह्म है सो प्राणहै और सोई वाक् (वाणी) और मन है। और च शब्द करके उपलक्षित सर्व कारणरूपहै। अर्थात् प्राणादिकों के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशी
सन्धीयत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्ष
सौम्य विद्धि ॥ २ । २ ५ ॥

भीतर विद्यमान जो चैतन्यहै, सो उनका आश्रय होनेसे प्राण श्र
इन्द्रियादिक सर्व संघातरूप है। क्योंकि 'प्राणस्यप्राणः' 'प्राणका
प्राणहै' इत्यादि अन्यश्रुतियोंका प्रमाणहै तातें। और जो प्रा
दिकोंके भीतर चैतन्यरूप अक्षरहै "तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्ध
सौम्यविद्धि" । 'सो यह सत्यहै, सो अमृतहै, सो वेधनेको योग्
हे सौम्य ! बेधनकर' सो यह सत्य है, एतदर्थ सो अमृत (अवि
शी) है सो मन करके बेधने को (ताड़नाकरनेको) योग्यहै। अ
तिस बिषे मनका समाधान करना योग्य है। हे सौम्य ! जिसका
यह ऐसे है, तिसही करके बेधन करो अर्थात् (अक्षर बिषे चि
को एकाग्र करो) ॥ २ । ३४ ॥

हेसौम्य ! [अब विचारबिषे असमर्थको ओंकारका आश्रयका
ब्रह्म और आत्माबिषे क्रममुक्तिरूप फलवाली चित्तकी एकाग्र
के देखावनेका आरम्भ करतेहैं। यहां यह अभिप्रायहै कि 'प्रण
ब्रह्मेति' 'ओंकार ब्रह्महै' इसप्रकार ध्यानकरनेवाले जितेन्द्रि
पुरुषको जो ओंकार सम्बन्धी प्रतिबिम्ब स्फुरता है, 'तदात्मे
'सो आत्मा है' ऐसा जो चिंतन सो प्रणवरूप धनुषबिषे बाण
सन्धान है। और तिस ब्रह्मका चैतन्यके प्रतिबिम्बरूप जीवसे
तारूप जो अनुसन्धान, सो लक्ष्यका वेधहै]॥ शंका ॥ कैसे वे
को योग्यहै ॥ उ० ॥ "धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा
शीतं सन्धीयत" 'उपनिषद्बिषे प्रसिद्ध धनुषरूप महान् अस्त्र
लेके निरन्तरध्यानसे तीक्ष्णकिये बाणको सन्धान करना' उपा
षदोंबिषे प्रसिद्ध प्रतिपाद्य जे धनुषरूप महान् अस्त्र तिसको ले
तिस धनुषबिषे, निरन्तर ध्यानकरके तीक्ष्णकिये बाणको सन्ध
करना। जिसकरके यहां हाथसेही धनुषका आकर्षण (खींचना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रणवो धनुःशरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥ ४। ३६ ॥

सम्भवता नहीं, एतदर्थ "आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि" (तिसबिषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे आकर्षण करके हे सौम्य! तिसही अक्षररूप लक्ष्यको बेधनकरो) तिसअक्षर (ब्रह्म) रूप लक्ष्यबिषे भावनाको प्राप्तभये चित्तसे इन्द्रिय सहित अन्तःकरणको अपने विषयसे निवृत्तकरके लक्ष्यविषेही प्राप्तकरने रूप धनुषका आकर्षण करके, हे सौम्य! तिसही उक्त लक्षणवाले अक्षररूप लक्ष्यको बेधनकर, अर्थात् लक्ष्य बिषे चित्तको एकाग्र करो (यह वेदकी आज्ञाहै) ॥ ३। ३५ ॥

हे सौम्य! अब कथन किये जे धनुषादिक तिनको स्पष्ट कहते हैं "प्रणवोधनुः" (प्रणव ॐकार धनुषहै) जैसे धनुष जो है सो लक्ष्य (निशाना) बिषे बाणके प्रवेशका कारण है, तैसे आत्मारूपी बाणका अक्षररूप लक्ष्यबिषे प्रवेशका कारण ॐकार है। और जैसे अभ्यासकिये धनुषसे संस्कार युक्त, और तिस धनुषरूप आश्रयवाला हुआ बाण लक्ष्यबिषे स्थित होताहै, तैसेही जिस करके अभ्यास किये ॐकारसे संस्कार (ध्यान) युक्त, और तिस ॐकाररूप आश्रयवालाहुआ आत्मा (बुद्धिविशिष्टचैतन्य) अक्षर (ब्रह्मबिषे स्थित होता है, एतदर्थ ॐकार जो है सो धनुषवत् धनुषहै, और "शरोह्यात्मा" (आत्मारूपी) बाणहै। अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्माही, जलादिगत सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बादिकोंवत् इस देहरूप घटबिषे सर्व बुद्धि (रूपजल) की वृत्ति (रूपतरंगन) का साक्षी होनेकरके प्रवेशको पायाहै सो (आत्मा) बाणवत्है और "अप्रमत्तेनवेद्धव्यं" (प्रमादसे राहितपने करके बेधनकरने को योग्यहै) आत्माके अर्थ विषयोंकी प्राप्तिकी तृष्णा रूप प्रमादसे रहित, और सर्वसे विरक्त और जितेन्द्रिय, और एकाग्र चित्तसे बेधने को योग्यहै। और "ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते" (ब्रह्मसो लक्ष्य कहते हैं) ऐसा जो अक्षर (ब्रह्म) तिसको लक्ष्य कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमेते मनः सहप्राणैश्च सर्व्वैः । तमेवैकं जानथ आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ । ३७ ॥

एतदर्थ तिस बेधन करने के पश्चात् "। शरवत्तन्मयोभवेत् । बाणवत् तन्मय होताहै । बाणवत् तन्मय (लक्ष्यकारूप) होता है जिस प्रकार बाणको लक्ष्यके साथ एकतारूप फल होताहै, तैं देहादिक अनात्माकार वृत्तियों के तिरस्कार होनेसे अक्षर (ब्रह्म के साथ एकरूपतामय फलको सम्पादन करना, यह अर्थ है इति सिद्धम् ॥ ४ । ३६ ॥

हे सौम्य ! अक्षर (ब्रह्म) दुःख से जानने के योग्य होने का तिसका बारम्बार जो कथन है सो उसका सुखपूर्वक लक्ष्य कराने के अर्थ है, एतदर्थ तिसहीको बारम्बार कहते हैं "। अस्मिन्द्यौ पृथिवी चान्तरिक्षमेते मनः सह प्राणैश्च सर्व्वैः ।" । जिस वि स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष आकाश प्रवेशको पाया है । सर्व का (इन्द्रियां) सहित मन (प्रवेशको पायाहै) जिस अक्षर पुरुषवि स्वर्ग पृथिवी और आकाशरूप सर्व जगत् प्रवेशको पायाहै, औ अन्य सर्वप्राण (करण, इन्द्रियां) करके सहित मन प्रवेश पायाहै। और "। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्यावाचो विमुञ्चथ । तिसही एक आत्माको जानके अन्यवाणी को छोड़ो । हे सौम्य तिसही सर्वके आश्रय एक अद्वितीयरूप तुम्हारे और अन्य स प्राणधारियों के प्रत्यक्रूप आत्माको जानो और तिस आत्मा जानके अन्य अपर विद्यारूप वाणीको और तिस करके प्रतिपा साधन सहित सर्व कर्मको परित्याग करो, [अब साधन सहि सर्व कर्म को त्यागके एक आत्माही जानने को योग्यहै, इस वि में कारण कहते हैं "। अमृतस्यैषसेतुः ।" । यह अमृतका सेतु है क्योंकि यह सम्यक् आत्मज्ञान अमृत का, अर्थात् मोक्ष पारकी प्राप्तिके अर्थ सेतु (पुल) है क्योंकि संसाररूप महोदधी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अराइव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यस्सएषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः। ॐमित्येवंध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पारायतमसः परस्तात् ॥ ६। ३८ ॥

(बड़ासमुद्र) के पार जाने को (मुमुक्षु के अर्थ) कारण है ताते, और जैसे यह आत्मज्ञान मोक्षकी प्राप्तिके अर्थ सेतु पुलवत् सेतुहै। तैसे "तमेवविदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनायेति;" तिसही को जानके मृत्युको लंघिके जाता है, मोक्ष की प्राप्तिके अर्थ अन्यमार्ग नहीं"। यह अन्य श्वेताश्वतरकी श्रुति भी कहती है 'इति वेदानुशासनम्' ॥ ५।३७ ॥

हे सौम्य! "अराइव रथनाभौसंहता यत्रनाड्यस्सएषोऽन्तश्चरतेबहुधाजायमानः" "जैसेरथकी नाभिबिषे प्रवेशको प्राप्तभये अरे हैं तैसे जिसबिषे नाड़ियां सम्यक् प्रवेश को प्राप्तभई हैं, सो यह तिस हृदयबिषे बर्तता है, अनेक प्रकार होता है" जिसप्रकार रथकी नाभि (मध्यकाकाष्ठ) बिषे प्रवेशको प्राप्तभये अरा (सींधेकाष्ठ) हैं, इसप्रकार जिस हृदयबिषे, सर्व ओरसे देहबिषे व्यापनेवाली प्रसिद्ध नाड़ियां सम्यक्प्रकार प्रवेश को पाई हैं, तिस हृदयबिषे बुद्धिकी वृत्तियों का साक्षीरूप सो यह प्रसंग बिषे प्राप्त भया आत्मा तिस हृदयके मध्यबिषे देखता हुआ, सुनताहुआ, मनन करता हुआ, जानता हुआ, बर्तता है, और क्रोध हर्ष आदिक वृत्तियों करके अनेक प्रकार को हुयेवत् होताहै। अर्थात् अन्तःकरणरूप उपाधि के अविवेक करके युक्त होनेसे इसको लौकिक जन हर्षवान् और क्रोधवान् कहते हैं। तिस "ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानंस्वस्तिवः पारायतमसः परस्तात्" "आत्माको ॐ इस प्रकारसे ध्यानकरो तमसेपर पारके अर्थ निर्विघ्न होवो" आत्माको ॐ इसप्रकार से ॐकाररूप आश्रयवाले हुये शास्त्रोक्त कल्पना से ध्यान करो। इस प्रकार ज्ञानवान् आचार्य ने शिष्य के अर्थ कहने योग्य जो वस्तुहै सो कहा। अब ब्रह्म विद्याके जानने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यः सर्वज्ञः सर्व्वविद्यस्यैषमहिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपु
ह्येष व्योम्न्यात्माप्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेत
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति
धीरा आनन्दरूपमृतं यद्विभाति ॥ ७ । ३९ ॥

की इच्छावाले कर्मरहित और मोक्ष के मार्ग में प्रवृत्तभये जे जि
ज्ञासु शिष्य हैं, तिनको विद्यारहित होने करके, आचार्य ब्रह्मक
प्राप्तिको चाहते हैं । हे शिष्य ! तुमको मैंने कथन किया जो [सो
श्वरपना और मनोमयपना आदिक गुणकरके युक्त ब्रह्मका, हृद
कमलबिषे जो ध्यान है, सो क्रम मुक्तिरूप फलवालाहै । एतदर्थ
मन्दबुद्धिवाले ब्रह्मवेत्ता (अधिकारी) ! तुम तिस ध्यानको करो
इसप्रकार देखावने के अर्थ जो इस संसाररूप महोदधिको
धिके प्राप्तहोने योग्य परविद्याका विषय है इस प्रकार कहा है
यह संसाररूप महान् अपार समुद्र तिसको लंघिके प्राप्तहो
योग्य पर (ब्रह्म) विद्याका विषय है सो तुझको मेरे उपदेश
पश्चात् अविद्यारूप तमसे पर [कर्मके सङ्गीजनों की सङ्गति
कर्मबिषे श्रद्धा और विषयों बिषे श्रद्धा होती है । सो वाक्यार्थ
ज्ञानकी अनुभवपर्यन्तताकी प्रतिबन्धकरूप विघ्न है । सो वि
तुमको मत प्राप्त होय । इसप्रकारका कथनहै परन्तु वाक्यार्थ
अनुभव के उत्पन्न भये फलकी प्राप्ति बिषे विघ्नकी शङ्का नहीं
है, इस अभिप्राय से कहते हैं] जो अविद्यारूप तम (अन्धकार
का पर पारहै, तिसके अर्थ, अर्थात् अविद्या रहित ब्रह्मात्मस्वरू
की प्राप्तिके अर्थ निर्विघ्न जैसे होय तैसे होवो इत्यादेश ॥ ६ । ३८

हे सौम्य ! (॥ प्र० ॥ सो आत्मा किस बिषे वर्तताहै ॥ उ० ॥
" यः सर्व्वज्ञःसर्वविद्यस्यैषमहिमाभुविदिव्येब्रह्मपुरेह्येषव्योम्न्या
त्माप्रतिष्ठितः " [जो सर्वज्ञ है, सर्ववित्है, और जिसकी यह पृथि
बिषे महिमाहै, सो यह आत्मा प्रकाशक ब्रह्मपुर बिषे विद्यमा
आकाश बिषे स्थितहै । जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, और जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह प्रसिद्ध पृथिवी बिषे महिमा (विभूति है) ॥प्र०॥ कौन यह महिमा है ॥उ०॥ यह स्वर्ग और पृथिवी दोनों जिसकी आज्ञाबिषे धारण कियेहुये स्थित होते हैं। और सूर्य्य और चन्द्रमा यह दोनों जिसकी आज्ञाबिषे, अर्द्धदग्ध काष्ठके भ्रमावनेरूप अलात (बनेठी) चक्रवत् निरन्तर (आकाशमार्गमें) भ्रमते हैं। और जिसकी आज्ञा बिषे वर्त्तमान नदियां और समुद्र अपने देशको लंघिके वर्त्ततेनहीं। तैसे स्थावर और जंगमरूप यावत्हैं, सो जिसकी आज्ञासे अपने२ नियममें स्थितहैं। और तिसही प्रकार षट्ऋतु औरदो अयन, और साठअब्द (संवत्सर, वर्ष, साल) जो हैं सो जिसकी आज्ञाको लंघिकेबर्त्तते नहीं। तैसेही कर्त्ता कर्म्म और फल जो हैं सो जिसकी आज्ञासे अपने २ कालको लंघिके बर्त्तते नहीं ॥ सो यह महिमा है॥ इसप्रकार जिसकी पृथिवीलोकबिषे महिमाहै, सो यह सर्वज्ञ है। सो यह आत्मा सर्वबुद्धि वृत्तिके प्रकाशक हृदयरूप ब्रह्मपुर बिषे विद्यमान आकाश बिषे स्थितहुयेवत् भासता और जिस करके आकाशवत् सर्व व्यापक आत्माको गमनागमन वा स्थिति अन्यप्रकारसे संभवे नहीं। एतदर्थ सो आत्मा मनकी वृत्तिसेही तिसहृदयाकाश नामवाले ब्रह्मलोक बिषे स्थितहुआ भासता है। और "। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयंसन्निधाय"। । मनोमयहुआ प्राण और शरीरका लेजानेवालाहै, और अन्नबिषे बुद्धिको स्थापित करके स्थितभया है। मनरूप उपाधिवाला होनेसे मनोमयहुआ यह आत्मा प्राण और शरीर का लेजानेवाला है। अर्थात् स्थूल शरीरसे अन्य सूक्ष्म शरीर को लेजाता है। और नित्य नित्य बढ़नेवाले और घटनेवाले भोजन किये अन्न के परिणाममय पिण्डरूप अन्नबिषे हृदयकमलगत छिद्र में अपनी उपाधिरूप बुद्धिको भलीप्रकार स्थापित करके स्थितभया है। और जिसकरके बुद्धिकी स्थितिही आत्माकी अन्न बिषे स्थिति है, एतदर्थ यहां, बुद्धिको स्थापित करके अन्नबिषे स्थित होताभया ऐसा कहाहै। "तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ । ४० ॥

यद्विभाति।" ।तिसको धीर श्रेष्ठज्ञानसे सर्वओरसे पूर्ण जानते (तिनको) आनन्दरूप और अमृतरूपहुआ विशेषकरके भासत है। तिस आत्मतत्त्वको जो धीर (बुद्धिमान् विवेकी) पुरुष हैं, से शास्त्र और आचार्य के उपदेशसे जन्य और शम दम ध्यान औ वैराग्यकरके उद्भवको प्राप्तभये उत्तम ज्ञानसे सर्वओर से पू जानते हैं तिन पुरुषोंको जो सर्वअनर्थ और दुःख और श्रमसे रहि आनन्दरूप और अमृत अविनाशी रूप हुआ अपने आप वि सदैव विशेषकरके भासता है॥ सोई आत्मा अक्षर ब्रह्म है॥७।३९

हे सौम्य! अब इस (जिज्ञासु) पुरुषको (आचार्यकरके) कथ किये, अर्थात् (उपदेशकिये) सम्यक् परमात्मज्ञानका (जो फ होताहै सो) यह कहते हैं॥ "। तस्मिन्दृष्टे परावरे "। ।तिसपर औ अवरके देखने से। अर्थात् तिस उपदेशकिये परमात्माविषे, कारण रूपसे पर (श्रेष्ठ जे प्रकृति) और कार्यरूपसे अवर (अश्रेष्ठ जगत् सो रज्जुमें सर्पवत् वाचारम्भणमात्रही है सो सर्वज्ञ असंसारी पर मात्माको, "यह साक्षात् मैंहूं" इसप्रकार (अभेदतासे) देखेहुये "। भिद्यते हृदयग्रन्थिः ।" ।हृदयकी ग्रन्थि भेदनको पावताहै। इस पुरुषकी अविद्याकी वासनामय हृदयकी ग्रन्थि, अर्थात् हृदयशब्द करके उपलक्षित बुद्धिके आश्रितग्रन्थि अपने नाशको प्राप्तहो ती है॥ [यहां यहशङ्का समाधानरूप एक विचारहै, कि यहां (श्री शङ्कराचार्य्यने) भाष्यबिषे, अविद्याकी वासनाके समुदायरूपहृदय की ग्रन्थिभेद (नाश) को प्राप्त होती है, ऐसाकहाहै, तिस कहनेका क्याअर्थ (प्रयोजन)है, तिसको जाननेके अर्थ वादी शङ्काकरताहै॥ शङ्का॥ हे सिद्धान्तिन्! बुद्धिके विद्यमानहोते अविद्या आदिक का भेद (नाश) ज्ञानकाफलहै, अथवा तिसबुद्धिकी निवृत्तिकेहुये अ विद्या आदिककाभेद (नाश) ज्ञानका फलहै, यहदो विकल्पहैं, तिन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में प्रथमपक्ष बने नहीं क्योंकि उपादानके विद्यमानहुये कार्य के अत्यन्ताभावका असम्भवहै ताते। और द्वितीयपक्षभी बनता नहीं, क्योंकि ज्ञानको अज्ञानसेही साक्षात् विरोधकी प्रसिद्धिहै ताते॥ अथवा बुद्धिभी अनादि है वा सादिहै, इसका जो विचारकरिये तो भी प्रथमपक्ष बने नहीं। क्योंकि 'एतस्माज्जायतेप्राणोमनःसर्वेन्द्रियाणिच' । इससे प्राणहोते हैं, मन होताहै, सर्वइन्द्रियां होतीहैं' इस श्रुति से विरोध होताहै ताते। और (सादिरूप) द्वितीयपक्ष भी बनता नहीं, क्योंकि प्रलयाबिषे ब्रह्मज्ञान विनाही बुद्धि के नाशका सम्भवहै ताते। और बुद्धिके सादिपनेके होनेसे बुद्धि का उपादान जब साक्षात् ब्रह्मही है, तब तिस उपादानरूप ब्रह्म के नाश हुये विना बुद्धिका अत्यन्त नाश होनेका नहीं। और जो कदापि बुद्धिकी उपादान मायाहै, तब सो द्रष्टागत ज्ञान से नाश होनेको योग्यनहीं। क्योंकि लोकविख्यात जो मायावी पुरुष तिस बिषे स्थित जो माया तिसका द्रष्टागत ज्ञानसे नाशका अदर्शनहै ताते। किंवा बुद्धिका जो नाशहै, सो तिस बुद्धिका फलनहीं क्योंकि अपने नाशको अफल रूपताहै ताते। और सो बुद्धिका नाश आत्मा का भी फल नहीं, क्योंकि तिस आत्माको बुद्धिके संगका अभाव है ताते, तिस बुद्धिके नाशको अफलरूपता होनेसे। किंवा आत्मा के अविद्या आदिकों के अनाश्रयपनेका कथन है ताते सो श्रुतिसे विरुद्धहै। क्योंकि आरम्भबिषे 'अविद्यायामन्तरेवर्त्तमानाः' 'अविद्या के भीतर वर्त्तमान' ऐसा श्रवण होनेसे अरु समाप्ति बिषे 'अनीशयाशोचतिमुह्यमानः' 'अनीशासे मोहको पाया हुआ शोच (शोक) को करता है' ऐसा श्रवण होने से॥ और जो कहो कि, बुद्धिगतही अविद्यादिकोंका आत्माबिषे अध्यास होता है, तो अध्यास होताहै, इसशब्दका कौन अर्थ है। आत्माबिषे स्थापित करते हैं (सो अध्यासहै) वा भ्रान्ति से देखते हैं (सो अध्यास है)। तिनमें प्रथमपक्ष (जो आत्माबिष स्थापनो सो) बनेनहीं क्योंकि अन्यके धर्मकी अन्यके बिषे स्थीते(होने)का असम्भवहै ताते। और जो द्वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीयपक्ष (भ्रान्तिसे) कहोगे तो भ्रांतिसे (जो देखते हैं सो) किसके देखते हैं, आत्माकरके वा बुद्धिकरके तहां प्रथमपक्षजो आत्माकरके (भ्रान्ति) सो बनेनहीं, क्योंकि आत्माको अविद्याकी आश्रयताका अनङ्गीकार है। तातें और द्वितीय पक्ष जो बुद्धिकरके सो देखना बनेनहीं, क्योंकि बुद्धिको आत्माकेताईं विषयकरनेका असम्भवहै, तिसकरके आत्मागत अविद्या आदिकोंके दर्शनका अभाव है तातें और भ्रान्तिको अपने आश्रयबिषे स्थित यथार्थ अनुभवकरके निवृत्त होनेकी प्रसिद्धिहै तातें। और बुद्धिको अनुभवकीआश्रयताका प्रसंगहै तातें। एतदर्थ इसभाष्यका सम्यक् अर्थ हम देखते नहीं।

उ० ॥ हे वादिन्! अब तेरी शङ्काका समाधान कहतेहैं तिसको श्रवणकरो। चैतन्यके आधीन अनादि अनिर्वचनीय जो अविद्या है सो चैतन्यको अविच्छिन्नकरके आपकरके अविच्छिन्न (विशिष्ट) चैतन्यको बुद्धि आदिकों से तादात्म्यरूपकरके वर्त्तती है, तिस अविद्या के ब्रह्मात्माके साक्षात्कार से निवृत्त होने रूपके अङ्गीकार से तिस अविद्याकी निवृत्तिकेहुये तिस अविद्या से उत्पन्न जो हृदय की ग्रन्थियां तिनकाभेद (नाश) श्रुतिने कहाहै। और भाष्यकारने जो बुद्धिके आश्रयकरके हृदयकी ग्रन्थिका कथनहै, सो बुद्धिकी उक्त तादात्म्यरूप अहङ्कारको विशेषण होने करके अविद्या आदिकों के व्यावहारिकपने के अभिप्राय से है। और आत्माको ग्रन्थिकी अनाश्रयताका जो कथन है, सो आत्माकी निर्विकारताके अभिप्रायसे है] तैसे 'कामायेऽस्य हृदिश्रिताः—इतिश्रुत्यन्तरात्,' 'जे काम इसके हृदयबिषे आश्रित हैं' यह अन्य कठवल्लीकी श्रुतिके प्रमाणसे बुद्धिके आश्रित कथन किये जे काम हैं, सो नाश को प्राप्त होते हैं। और यह ग्रन्थि हृदय के आश्रितहै, आत्माके आश्रित नहीं, ऐसा जानाजाता है। और "छिद्यन्ते सर्व्वसंशयाः" 'सर्व संशय छेदन (नाश) को पावते हैं' इसके लौकिक जनों को मरणपर्यन्त गङ्गाके प्रवाहवत् प्रवृत्तभये जो अज्ञानको विषय करनेवाले सर्वसंशयहैं सो अपने नाशको प्राप्त होते हैं। और "क्षीयन्ते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिरण्मये परेकोशे विरजं ब्रह्मनिष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ ९। ४१॥

यन्ते चास्य कर्माणि" । इसके कर्म क्षयको पावते हैं। इस निःसंशयभये अविद्यारहित पुरुषके, जो ज्ञानोत्पत्तिसे पूर्व इस जन्म बिषेकिये। और फलके आरम्भसे रहित जन्मान्तर बिषे किये। और इसजन्म बिषे ज्ञानोत्पत्तिके साथ होनेवाले, जे कर्म सो सर्व क्षय को पावते हैं। परन्तु इस वर्त्तमान जन्मके आरम्भक जे प्रारब्ध कर्महैं सो क्षयको (नाशको) पावते नहीं, क्योंकि सो अपना फल देनेको प्रवृत्तहोचुके हैं ताते। इसप्रकार यह सम्यक् ज्ञानवान् पुरुष जन्म मरणादिरूप संसारके नाशहोनेसे मुक्तहोताहै। यह अभिप्राय है॥ ८। ४०॥

हे सौम्य! कथनकिये अर्थकोही संक्षेपसे कहनेवाले अग्रिम तीन मन्त्रहैं, तिनकाभी व्याख्यान अब करतेहैं। "हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्मनिष्कलम्।" पर प्रकाशमय कोशबिषे रजरहित निष्कल ब्रह्महै। तलवारके कोश (म्यान) वत्, आत्मस्वरूपकी प्राप्तिका स्थान होनेसे, और सर्व के भीतर होनेसे पर जो बुद्धि के विज्ञानरूप प्रकाशमय कोशहै तिसबिषे अविद्या आदिक दोषरूप रज (मल) से रहित और सर्व से बड़ा होनेसे और सर्वका एक आत्मा होनेसे ब्रह्मरूप, और सोलह कलारूप अवयवसे रहित होनेसे निष्कलरूप है। और जिसकरके, विरज और निष्कलरूप है, तिसहीकरके "तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदोविदुः।" सो शुभ्रहै (और) सर्वज्योतियों का ज्योति है, ऐसा जो है तिसको आत्माके जाननेवाले जानते हैं। सो शुभ्र (शुद्ध) है। और अग्निआदि सर्वज्योति (प्रकाशवान्) का भी सो ज्योति (प्रकाशक है)। अर्थात् अग्निआदिकोंका भी जो ज्योतिपना है, सो अपने अन्तर्गत ब्रह्मात्म चैतन्यरूप ज्योति का किया है। और जो अन्य प्रकाशोंसे अभासमान आत्मरूप ज्योति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेवभान्तमनुभाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति ॥ १० । ४२ ॥

(प्रकाश) है, सोई परमज्योति है । ऐसा जो परमज्योति तिसको, शब्दादि विषय और बुद्धिकी वृत्तिके साक्षीरूप आत्म को जाननेवाले आत्माकार वृत्तिके अनुसारी आत्मवेत्ता विवेकी पुरुष जानते हैं । और जिसकरके सो परम ज्योति है, तिसही को आत्माकारवृत्ति के अनुसारी पुरुषही तिसको जानते हैं और तिससे अन्य जे बाह्य अर्थाकारवृत्ति के अनुसारी पुरुष सो जानते नहीं ॥ ९ । ४१ ॥

हे सौम्य ! ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म ज्योतियों का ज्योति कैसे है । उ० ॥ " न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः " । तिसबिषे सूर्य भासता नहीं (और) चन्द्रमा (और) तारागण भासते नहीं (और) यह बिजलियां भासती नहीं, यह अग्नि कहांसे भासेगा । तहां, अर्थात् तिस अपने आत्मारूप ब्रह्मविषे, सर्वका प्रकाशक सूर्य भी भासता नहीं, अर्थात् ब्रह्मको प्रकाशता नहीं । और सो सूर्य तिसहीके प्रकाशसे अन्य सर्व अनात्माके समूहको प्रकाशता है, परन्तु तिसका अपने आपसेही प्रकाशके करने बिषे सामर्थ्य नहीं । यह अर्थ है । और तैसेही तिसबिषे चन्द्रमा सहित तारागणके भासता नहीं और यह बिजलियां जो मेघाश्रित प्रकाशती हैं सो भी भासती (प्रकाशती) नहीं तब यह क[illegible] लोकों करके प्रकटाकिया जो अग्नि सो कहांसे भासेगा किन्तु बहुत कहनेसे क्याहै " तमेव भान्तमनुभाति सर्व्वं तस्य भासा सर्व्वमिदं विभाति " । सर्व तिसके भासमानहुये पीछे भासता है, और तिसहीके प्रकाशसे यह सर्व भासता है । परन्तु यह [यहां प्रकट अर्थ बिषे बाधित भये जगत्की अनुवृत्ति (बाधभये पीछे प्रतीति) देखाई इस करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्मदक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्द्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥ ११। ४३॥

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयखण्डः॥

शरीर साहित को बन्ध भ्रान्तिकी निवृत्तिरूप जीवन्मुक्ति विरोधको प्राप्त होती नहीं] जो जगत् भासता है सो सर्व तिसही परमेश्वर के स्वरूप से प्रकाशरूप होने से भासमान होने पीछे भासता है, जैसे अग्निके संयोगसे जल और अर्द्धदग्ध काष्ठआदिक जो है, सो जलावनेवाले अग्निके पीछे जलावते हैं, आपसे नहीं,। तैसेही सर्व जगत् तिसही के प्रकाशमान हुये पीछे प्रकाशता है, आपसे नहीं। तिसही के प्रकाश से यह सर्वसूर्य्यादि प्रकाशमानों कर के युक्त जगत् भासताहै।['तस्यभासा सर्वमिदं विभाति;' । तिस के प्रकाश से सर्व यह भासता है।' इसप्रकार इस ब्रह्मकी स्वयं प्रकाशरूपता बिषे तात्पर्य कहते हैं] जिस करके इसप्रकार सोई ब्रह्म भासताहै, और कार्यगत विविधप्रकारके प्रकाश से विशेषकर के भासता (प्रकाशता) है, एतदर्थ तिस ब्रह्मका स्वरूपसे प्रकाशरूपतापना जानाजाताहै।और जो वस्तु स्वरूपसे अविद्यमान है, सो अन्यको प्रकाशने बिषे समर्थ होती नहीं, क्योंकि स्वरूपसे अविद्यमान प्रकाशवाले घटादिकों को अन्यकी प्रकाशकता देखने में आवती नहीं ताते, और प्रकाशरूप सूर्य्यादिकों को अन्यकी प्रकाशकता को देखते हैं ताते॥ १०। ४२॥

हे सौम्य! अब [समाप्तिके मन्त्रका तात्पर्य कहते हैं, इस मन्त्र बिषे ब्रह्मसे विविध प्रकारका करते नहीं, ऐसा तिसका विकार (कार्य) रूप जगत् जो यह स्थाणुहै, सो पुरुष है, इस वाक्यवत् 'सर्व्वंखल्विदंब्रह्म;' । सर्व ब्रह्मही है।' ऐसे बाधबिषे समानाधिकरणके हुये अन्वय और व्यतिरेक करके बाधरूप अभावके निषेधसे ब्रह्ममात्र बोधन करते हैं] जो, सो ज्योतियों का ज्योति ब्रह्महै, सोई सत्यहै, और अन्य जो 'वाचारम्भणंविकारोनामधेयं;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः प्रारभ्यते ॥

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम्परिषस्वजा-
ते । तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशी-
ति ॥ १ । ४४ ॥

। वाणी से आरम्भ किया विकार नाममात्र है । तिसका कार्य
सो सर्व मिथ्या है । इस विस्तारसे हेतुकरके प्रतिपादन किये अ
को वेदस्थानी इस मन्त्रसे फेर समाप्त करते हैं । यह जो अवि
युक्त दृष्टिवाले पुरुषको "ब्रह्मैवेदममृतंपुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म
क्षिणतश्चोत्तरेण" । अग्रभाग बिषे भासमान अमृतरूप ब्रह्म
है, पीछे ब्रह्महै, दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, उत्तर ओर से ब्रह्महै । अ
भागबिषे भासमान वस्तुहै, सोउक्त दक्षिणवाला अमृतरूप ब्र
ही है, तैसे पीछे ब्रह्म है, तैसे दक्षिण ओरसे ब्रह्महै, तैसे उत्त
(वाम) ओरसे ब्रह्महै । तैसेही "अधश्चोर्ध्वञ्चप्रसृतंब्रह्मैवेदं विश्व
मिदंवरिष्ठम्" । नीचे पुनः ऊपर ब्रह्महै, यह फैलाहुआ ब्रह्मही है
यह जगत् अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रह्मही है । नीचे ब्रह्महै और ऊंचे ब्रह्महै
और अन्यभी कार्यके आकारसे सर्वओरसे फैलाहुआ नामरूपक
ला यह भासमान जो वस्तु सो ब्रह्महै ॥ हे सौम्य ! अब बहुत क
हने करके क्याहै, परन्तु यह सर्व विश्व (जगत्) अत्यन्त श्रेष्ठ ब्र
ही है । और ब्रह्मसे भिन्नप्रतीतिहै सो सर्व्व रज्जुबिषे सर्पकी प्रतीति
वत् अविद्यामात्र है । और "ब्रह्मैवैकंपरमार्थसत्यमिति" । ए
ब्रह्मही परमार्थ से सत्य है । यह वेदकी आज्ञा है ॥ ११ । ४३

इति श्रीमुण्डकउपनिषद्गतद्वितीयमुण्डकके द्वितीयखण्डकी
भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयमुण्डकगतप्रथमखण्डकीभाषाटीका प्रारंभ ॥

हे सौम्य ! जिस पराविद्याकरके सो अक्षर पुरुष नामक स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्तहोताहै। और जिसकी प्राप्तिके होने से हृदयकी ग्रन्थि और संशय आदिक संसार के कारण का अत्यन्त नाशहोता है, ऐसी जो पराविद्या सो कही और अक्षरके दर्शनका उपाय जो योग्यहै, सो धनुषादिकों के ग्रहणकी कल्पनासे कहा। अब तिस ज्ञान के सहकारी सत्यादि साधन, कहने को योग्यहैं, तिनके अर्थ उत्तर ग्रन्थका अब आरम्भ है। तहां यथार्थ आत्मतत्त्व को अति दुःख से जानने योग्य होने करके, जो पूर्व किया भी तत्त्वका उपदेश (निर्धार) सो पुनः अन्यप्रकारसे कहतेहैं। तहां सूत्ररूप जो प्रथम मन्त्रहै, सो परमार्थरूप वस्तुके निश्चयार्थ प्रारम्भ कहतेहैं। "द्वा-सुपर्णासयुजासखायासमानंवृक्षंपरिषस्वजाते"। दो पक्षी हैं साथ ही युक्तहैं (और) सखाहैं (और) समानहैं वृक्षको आश्रय करते भये। जीव और ईश्वर यह दोनों शोभायुक्त गमनवाले [जीवको अज्ञानी होने करके। और नियम में रखने के योग्य होने करके उचित होने से, और ईश्वर को सर्वज्ञ होनेकरके, और नियामकपने की शक्तिके योगसे, जीव और ईश्वर इन दोनोंका नियम्य और नियामक भावकी प्राप्तिरूप गमन (उड़ना) क्वचित् है] होने से अथवा पक्षीके समान होनेसे पक्षी हैं सो सर्वदा साथही युक्त (रहते) हैं। और जिसकरके तुल्य प्रख्याति कहावने की योग्यता) वाले हैं, और तुल्यही प्रकाशके कारण हैं। एतदर्थ परस्पर सखा हैं। और समान हैं,। इसप्रकार होनेसे दोनोंके ज्ञानका स्थानक होनेसे, एक जो वृक्षवत् छेदन (नाश) रूप धर्मकी तुल्यतासे शरीररूपी वृक्षहै, तिसके अर्थ एक वृक्षके प्रति फल के उपभोगार्थ दोनों पक्षीवत् मिलापको करतेभये। अर्थात् यह शरीररूपी वृक्ष 'ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखएषोऽश्वत्थः सनातनः' ऊंचे (ब्रह्मरूप) मूलवाला है, और (प्राणादिक) नीची शाखावाला है। और अपनी स्थितिके नियमसे रहित होनेसे अश्वत्थ (अस्थिर) हैं और अज्ञान पर्यन्त होने (रहने) वालाहै, और 'क्षेत्रमित्यभिधीयते' क्षेत्र नामवालाहै, और सर्व प्राणधारियों के कर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाने वृक्षे पुरुषोनिमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ । ४५ ॥

फलका आश्रय है, तिस (शरीररूपवृक्ष) को पक्षियोंवत् अविद्या काम और कर्मकी वासना के आश्रय लिंगशरीररूपी उपाधियुक्त जीवात्मा (जीव) और ईश्वर यह दोनों मिलतेभये । और "तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति" । तिन दोनोंके मध्य एक वृक्षके फलके स्वादको भोक्ताहै और दूसरा भोक्ता नहीं किन्तु देखता है। मिलेहुये तिन दोनों के मध्य एक जो लिङ्गशरीररूपी उपाधियुक्त क्षेत्रज्ञ नामवाला जीवहै सो शरीररूपी वृक्षको आश्रय करताहुआ अपने पाप पुण्यमय कर्मजन्य सुखदुःखमय अनेक प्रकारकी वेदना (दुःख) के अनुभवरूप स्वाद फलको अविवेकता करके भोक्ताहै, और अन्य (दूसरा जो नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाला सर्वज्ञ शुद्ध सत्यगुणप्रधान मायोपाधिवाला ईश्वरहै सो भोक्ता नहीं और जिसकरके यह ईश्वर नित्य साक्षीपनेकी सत्तामात्रसे भोग्य और भोक्ता दोनोंका प्रेरक है, एतदर्थ सो तो अभोक्ताहुआ वृक्षसे पृथक् होके केवल उदासीन हुआ देखताही है । और तिसका दर्शनमात्रसेही राजावत् प्रेरकपना सिद्धहै (विक्रियावान् नहीं) ॥ १ । ४४ ॥

हे सौम्य ! "समानेवृक्षेपुरुषोनिमग्नोऽनीशयाशोचतिमुह्यमानः" । एक वृक्षाबिषे पुरुषनिमग्नहुआ अनीशासे मोहकोपावता हुआ शोकको पावता है । तहां ऐसे होनेसे उक्तप्रकारके शरीररूप एकवृक्षबिषे पुरुष जो भोक्ता जीवहै, सो अविद्या काम कर्म फल रागद्वेषादिरूप बड़ेभारकरके आक्रान्त (रोका) हुआ संसारसागर बिषे तूंबेवत् निमग्न भयाहै अर्थात् दृढ़करके देह (संघात) बिषे आत्मभावको प्राप्तभयाहै । और यहही हस्त पादादि अवयवयुक्त शरीररूप पिंड मैं अमुक (देवदत्त) का पुत्रहौं, और इस (ब्रह्मदत्त)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का पौत्रहौं, दुर्बलहौं, मोटाहौं, गुणवान् हौं, निर्गुणहौं, सुखीहौं, दुःखीहौं, इसप्रकारका (अज्ञानलक्षणात्मक) ज्ञान इसको होता है, इससे अन्य (सम्यक्) ज्ञान इसको नहीं होताहै। इसप्रकार जन्मता मरता रहता है। और सम्बन्धी बान्धवादिकों से संयोग वियोगको पावताहै। इस हेतुसे मोहको [आवरण और विक्षेप यह दोनों अविद्या के कार्य हैं। तिनमें ईश्वरभावकी अप्राप्ति रूप जो अनीशा, सो आवरण है और जो शोकको करता है सो विक्षेप है। और इन दोनोंका हेतु जो अनिर्वचनीय अज्ञान सो मोह है तिसमोह करके विशिष्ट भया। इत्यर्थः] पावताहुआ। अर्थात् अनेक प्रकारके अनर्थों से अविवेकी होताहै तिसकरके चिन्ताको प्राप्त हुआ मैं किसीभी कार्यके करनेबिषे समर्थ नहीं हौं, मेरा पुत्र नष्ट भयाहै, मेरी भार्या (स्त्री) मृत्युवश भई है, अब मुझको जीवने साथ कहो क्या प्रयोजन है कुछभी नहीं ॥ इस प्रकार अत्यन्त दीनभावतारूप जो अनीशा (अशक्तता) है, तिसकरके सन्तापरूप शोकोंको पावता है ॥ सो इसप्रकार प्रेत तिर्यक् (पक्षी) और मनुष्यादिक योनियोंबिषे वेगवान्ताको प्राप्तभया जीव कदाचित् अनेक जन्मोंबिषे सञ्चय किये शुद्ध धर्मरूप कर्म तिस निमित्त से कोई एक परमदयालुआचार्य पुरुषने देखाया जो योगमार्ग तिस बिषे, अहिंसा, सत्य (यथार्थभाषण) ब्रह्मचर्य, वैराग्य और शम दमादि साधन तिनकरके युक्त, एकाग्रचित्तवालाहुआ, जिससमय अनेक योगीजनों करके और अनेक कर्मिष्ठ जनोंकरके " जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः " । सेवन किये अन्य ईश्वरको और इसकी महिमाको जिसकाल बिषे देखता है तब वीतशोक होताहै । सेवनकिये, देहरूप (वृक्षकी) उपाधि के लक्षणसे अन्य (विलक्षण) क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, जरा, और मृत्यु, यह जो देह, प्राण, मनकी षट्ऊर्मी हैं तिनसे रहित असंसारी, ईश्वरको और यह मैं सर्व जगत्का आत्माहौं और सर्व को समानहौं (सूर्य्यवत्) और सम्पूर्ण भूतोंबिषे स्थितहौं और अन्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्र
योनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः प
साम्यमुपैति ॥ ३ । ४६ ॥

अविद्याजन्य उपाधि सो जो परिच्छिन्न मिथ्या आत्मा सो
नहीं हौं । और जगत् जो है सो इसही मुझ परमेश्वरका रूप
इस प्रकारकी विभूतिरूप इसकी महिमाको ध्यावताहुआ देह
है तब वीतशोक होता है । अर्थात् सर्व शोकमय सागर से
(उत्तीर्ण) होताहै ॥ २ । ४५ ॥

हे सौम्य ! अन्य मन्त्र भी उक्त अर्थकोही साविस्तर कहते
सोभी श्रवण करो "। यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पु
ब्रह्मयोनिम् "। जिसकालबिषे विद्वान् (जिज्ञासु पुरुष) स्वयंज
तिस्वरूपवाले (सर्वजगत्के) कर्त्ता ब्रह्मयोनि ईश्वररूप पुरुष
(अपनाआप) देखताहै । "तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्ज
परमं साम्यमुपैति "। तिससमय (सो देखनेवाला) विद्वान् (क
नरूप) पुण्यपाप (मय कर्म) को (समूल) दग्ध करके, वा (पु
पापमय कर्मरूप मलसे अत्यन्तशुद्ध होयके) निरंजन (अवि
से रहित) हुआ परम (सर्वसे श्रेष्ठ) अद्वितीयरूप साम्य (एकत
भावको प्राप्त होताहै । ॥ ३ । ४६ ॥

हे सौम्य ! "प्राणो ह्येष यः सर्व्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वा
भवते नातिवादी "। जो यह प्राण सर्वभूतों करके विविध प्रक
का भासता है विद्वान् जानता है अतिवादी नहीं होता है ।
यह प्राण का प्राण परमेश्वर ब्रह्मा से लेके तृणादि पर्यन्त स
भूतोंबिषे स्थित सर्वात्मा हुआ विविध प्रकार का भासताहै । इ
प्रकार सर्वभूतोंबिषे स्थित सर्वात्मा परमेश्वर को जो वाक्यार्थ
ज्ञानबिषे विद्वान् हुआ यह मैंहूं इस प्रकार साक्षात् आत्मभाव
जानताहै, सो पुरुष अन्यसर्वको उल्लंघनकरके अतिवादी (कह
के स्वभाववाला) नहीं होताहै । अर्थात् जो पुरुष उक्तप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणो ह्येष यः सर्व्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान् भवते नातिवादी। आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ ४। ४७॥

णस्य प्राणः'; प्राणकेभी प्राणरूप आत्माको साक्षात् सोहमस्मि भावसे जानताहै सो अतिवादी नहीं होताहै। क्योंकि जब 'आत्मैवेदं सर्वं'; सर्वनाम रूपात्मक आत्माही है, तिससे पृथक् रंचकमात्र भी नहींहै, तब यह आत्मनिष्ठ विद्वान् किसको उल्लंघन (निषेध) करके कहै। और जिस पुरुषको उत्तम मध्यम अन्यवस्तु देखनेबिषे आवतीहै सो तिसको उल्लंघनकरके कहताहै। और यह आत्मानुभवी विद्वान् तो अपने आपसे 'नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति' अन्य को देखता नहीं, अन्य को सुनता नहीं, अन्य को जानता नहीं, एतदर्थ अतिवादी होता नहीं। और "आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदांवरिष्ठः"। यह आत्मक्रीड़, आत्मरति, क्रियावान् ब्रह्मवेत्ताओंबिषे, श्रेष्ठहै। यह विद्वान् कि आत्माबिषेहै क्रीड़ा (विचारात्मकरमण) जिसकी, अन्य पुत्रदारा वित्तादिकोंबिषे नहीं, सो कहिये, आत्मक्रीड़, और आत्माबिषेहीहै प्रीति जिसकी, अन्य देहादिकोंबिषे नहीं सो कहिये आत्मरति। और तैसेही ज्ञान ध्यान और वैराग्यादिकहैं क्रिया जिसकी अन्य श्रौतस्मार्त्तादिक नहीं सो कहिये क्रियावान्, इसप्रकारहै। [यहां ज्ञान कर्मके समुच्चयके प्रतिपादक वेदान्तके एकदेशीके व्याख्यानको प्रकटकरके निषेध करतेहैं] कोईएक (एकदेशीमतवाले) वादी तो 'क्रियावान्' इसपदके अर्थको अग्निहोत्रादिरूप (बाह्य) कर्म और ब्रह्मविद्याके समुच्चयबिषे इच्छा करतेहैं। परन्तु सो उनका इच्छा करना 'एषब्रह्मविदां वरिष्ठः' इस मुख्य अर्थवाले वचनसे विरोध को प्राप्त होताहै। व जिसकरके बाह्यक्रिया और आत्माबिषे प्रीति (निर्विकल्पता) यह दोनों समकाल (साथही) होनेको अशक्य हैं। किन्तु कोई एक अग्निहोत्रादि बाह्य क्रियासे सम्यक् प्रकारसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्येनलभ्यस्तपसा ह्येषआत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्म
र्य्येण नित्यम्। अन्तःशरीरेज्योतिर्मयोहिशुभ्रोयंपश्यी
यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ । ४८ ॥

निवृत्तहुआ पुरुषही आत्मक्रीड़ होताहै, क्योंकि (अनात्माश्र
बाह्यक्रिया, और (आत्माश्रय) आत्मक्रीड़ाका परस्पर वि
है ताते। जैसे तम और प्रकाशकी एकत्र स्थिति सम्भवे न
तैसे 'क्रियावान्' इस वाक्य से जो बाह्य क्रिया और ज्ञ
(आत्मानुसंधान) का समुच्चय परस्परके विरोध कारण से
भवे नहीं, ताते ज्ञान और कर्मका जो समुच्चय प्रतिपादन क
सो व्यर्थ वाचालता (बकवाद) है। और 'अन्यावाचोविमुञ्च
थ' । अन्य वाणी को छोड़ो । और 'संन्यासयोगात्' । संन्या
योगसे । इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे। एतदर्थ जो ज्ञान ध्यान
दिक क्रियावाला और भेदरहित अर्थ की मर्यादावाला संन्यासी
सोई यहां क्रियावान् है। जो ऐसे लक्षणवाला अतिवाद रहि
आत्मक्रीड़, आत्मरति और योगादि क्रियावान् ब्रह्मनिष्ठहै सो
सर्व ब्रह्मवेत्ताओंके मध्य वरिष्ठ सर्वमें मुख्यहै ॥४।४७॥

हे सौम्य! अब संन्यासीको सम्यक् ज्ञानके [यहां सम्यक् ज्ञा
शब्दकरके वस्तुको विषयकरनेवाले अनुभवरूप फल पर्यन्त
क्यार्थके ज्ञानको कहतेहैं। और जिसकरके अपरोक्ष अनुभवरू
जो ज्ञान तिसज्ञानको अविद्याकी निवृत्तिरूप जो अपना कर्तृत्वरू
कार्य तिसके करनेबिषे सहकारीकी अपेक्षाका असंभवहै, एतद
परिपक्व विद्याके लाभार्थ परिपक्व ज्ञानका और सत्यादि साधनों
का समुच्चय मानतेही हैं। और इसकरके भास्कर के मतकी सिद्धि
होती नहीं। क्योंकि परिपक्व विद्या में सहकारीकी अपेक्षा विधे
प्रमाणका अभावहै, अर्थात् परिपक्व विद्याका सहायक और वि
रोधी कोई नहीं, ताते और तिस विद्यासे कर्मके अलेपका श्रवण
है, अर्थात् 'नलिप्यतेकर्मणापापकेनेति' । इत्यादि प्रमाण से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिपक्व विद्यावाला विद्वान् कर्म्मोंसे लिप्यमान होता नहीं, ताते। और कर्मरहित देवतादिकोंका मुक्त होना सुना जाता है ताते] सहकारी जो निवृत्तिप्रधान सत्यादिक साधन हैं, सो विधान करते हैं। "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्"। "यह आत्मा नित्य सत्यसे प्राप्त होने योग्य है (नित्य) तप से (प्राप्त होने योग्य है) और यथार्थ आत्मज्ञान के दर्शन से (नित्य प्राप्तहोने को योग्य है) और (नित्य) ब्रह्मचर्य से (प्राप्त होने योग्य है)। यह आत्मा नित्यही असत्य भाषण के त्यागरूप सत्य से प्राप्त होने योग्य है। और नित्यही इन्द्रिय और मनकी एकाग्रतारूप तपसे प्राप्त होने के योग्य है। तथाच "मनसश्चेन्द्रियाणामेकाग्र्यं परमं तपः"। मन और इन्द्रियोंकी एकाग्रता परम तप है। इस प्रकार स्मृतिविषे कहाहै ताते उक्त तपका लक्षण युक्त है। और जिस करके सो तप आत्माके दर्शन के अभिमुख (सम्मुख) होनेसे आत्मदर्शन बिषे, अनुकूल है, एतदर्थ यह तपका परम साधन है। और अन्य जे चान्द्रायणादि रूप तपहैं सो तिस (आत्मदर्शन) का परम साधन नहीं। किंवा, यथार्थ आत्मज्ञानके दर्शन (विचार) से नित्य प्राप्तहोने योग्यहै और नित्य मैथुन के अनाचरणरूप ब्रह्मचर्यसे प्राप्तहोनेको योग्य है। और जिसप्रकार यह साधन कहे, तैसेही "नयेषुजिह्ममनृतं न मायाचेति" जिन बिषे कपट झूठ और माया नहींहै। यह प्रश्न उपनिषद्के वाक्य करके कहा है॥ प्र०॥ जो इन साधनों से प्राप्त होताहै यह आत्मा कौन और कहांहै॥ उ०॥ "अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः"। शरीर के भीतर प्रकाशमय शुद्धहै, जिसको दोषोंसे रहित संन्यासी पावते हैं। शरीरके भीतर हृदयकमल नामक एक मांसपिंडी है तद्गत आकाशरूप अन्तःकरणबिषे प्रकाशमय शुद्ध आत्मा है, जिस आत्माको काम क्रोधादिक चित्तके मलरूप दोषोंसे रहित संन्यासी देखते (पावते) हैं। अर्थात् सो आत्मा नित्य सत्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयान
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं नि
नम् ॥ ६ । ४९ ॥

दिरूप साधनोंसे संन्यासियों करके प्राप्तहोता है । कदाचित् हो
वाले सत्यादिकोंसे प्राप्त होता नहीं । यहां यह सत्यरूप सा
की स्तुत्यर्थ अर्थवाद है ॥ ५ । ४८ ॥

हे सौम्य ! "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो दे
यानः" । सत्यही जयको पावता है अनृत नहीं, सत्यसे देवया
नामक मार्ग प्रवृत्तभया है सत्यवान्ही जयको पावता है, अन
(झूठ) बोलनेवाला नहीं । जिस करके पुरुष के अनाप्तिते
केवल सत्य और झूठके सम्भवहुये, जय वा पराजय सम्भवे न
किन्तु असत्यवान् जो अनृत (झूठ) बोलनेवाला पराभव
पावता है । सत्यवादी नहीं, यह लोकविषे प्रसिद्ध है । इसका
सत्यका बलवान् साधनपना सिद्ध भया । किंवा सत्यका अति
शय साधनपना शास्त्रसे भी जाना जाता है ॥ प्र० ॥ किसप्रका
जानता है ॥ उ० ॥ यथार्थ बोलने की व्यवस्थारूप सत्यसे देवया
नामवाला मार्ग निरन्तरपनेसे प्रवृत्तभया है । और "येनाक्रामन्त
योह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्" । जहां सत्यका प
मनिधान है तहां जिसप्रकारसे आप्तकाम ऋषिजन गमन करते
जहां सत्यरूप उत्तमसाधनका साध्य सो परमार्थ तत्त्वरूप पुरुषा
स्वरूपसे वर्त्तमान परमनिधानहै । ऐसा जो ब्रह्मलोक, तहां जि
प्रकारके प्रणवादि उपासनावाले और कपट माया झूठ अहंका
दम्भ शठता (आदि आसुरीसम्पदा) से राहित और सर्व ओर
तृष्णा राहित ऋषिलोक गमन करते हैं । सो सत्यसे निरन्तरप
करके प्रवृत्त भया है । यह पूर्वके पदसे सम्बन्ध है ॥ ६ । ४९

हे सौम्य ! सत्यका निधान जो पूर्व कहा तिसको पुनः वि
षणयुक्त कहते हैं ॥ प्र० ॥ सो सत्यका निधान क्या है, और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायाम् ॥ ७। ५०॥

किस धर्मवाला है ॥ उ० ॥ "बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति"। सो बड़ा है और स्वयंप्रकाशहै और अचिंत्यरूप है, और सूक्ष्मसे भी अतिशय सूक्ष्म है और विविधप्रकार भासता है। सो प्रसंग बिषे प्राप्तभया ब्रह्म, सत्यादि साधन करके सर्व ओर से व्याप्त है ताते बड़ा है, और स्वयंप्रकाश (इन्द्रियोंका अविषय) है और एतदर्थ ही, अचिन्त्यरूप है, और सो आकाशादि सूक्ष्मोंसे भी अतिशय करके सूक्ष्महै। और जिस करके यह सर्वका कारण है, तिसकरकेही इसको सर्वसे अधिक सूक्ष्मता है। और ऐसाहुआ भी सूर्य्य और चन्द्रादिक आकारसे नाना प्रकार का भासता (प्रकाशता) है। किंवा "दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्वहैव निहितं गुहायां"। सो दूरसे दूर है इसमें समीप बर्तता है, यहांही चेतनावाले गुहाबिषे स्थित है। सो ब्रह्म अज्ञानी पुरुषों को अत्यन्त अगम होनेसे दूर से भी दूरदेश बिषे बर्तता है, और विद्वानों का आत्माहोने से और सर्व्वान्तर होनेसे, और "आकाशमन्तरोयं" वा "आकाशशरीरंब्रह्म" आकाशकेभी भीतर है इस श्रुतिसे, इस देहमें समीप बिषे बर्तता है। और यहां ही चेतनावाले पुरुषों के मध्य बुद्धिरूपी गुहाबिषे स्थित यह ब्रह्मदर्शनादि क्रियावाला होने करके योगी पुरुषोंसे लक्ष्य में आवताहै, तथापि अविद्यासे आवृत हुआ तहांही स्थित ब्रह्म अविद्वानों करके कदापि लक्ष्यमें आवता नहीं। इति सिद्धम् ॥७।५०॥

हे सौम्य! फेर भी, असाधारण बिषे भी असाधारणरूप जो तिसके ज्ञानार्थ साधनकहते हैं "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणावा"। चक्षुकरके नहीं ग्रहणकरते, और वाणीकरके भी नहीं (ग्रहणकरते) और अन्यदेवताओंसे भी नहीं (ग्रहणकरते)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा
वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्क
ध्यायमानः ॥ ८ । १ । ८ ॥

और तपसेभी (नहीं ग्रहणकरते) और कर्मसेभी (नहींग्रहणकरते
जिसकरके यह ब्रह्मसे अभिन्न आत्मा सो अरूप होने से कि
भी पुरुषकरके चक्षुसे ग्रहण (विषय) किया जाता नहीं, व
अवाच्य होनेसे वाणीसे भी ग्रहण किया (कहा) जाता नहीं, व
अन्य जे देवता (इन्द्रियां) तिनकरके भी ग्रहण (विषय) कि
जाता नहीं, और तप जो सर्व फलकी प्राप्तिका साधन तिस
करकेभी ग्रहण कियाजाता नहीं, क्योंकि तपआदिकोंके फलां
कोंसे पृथक् है । अथवा तैसे प्रसिद्ध महद्भाववाले अग्निहोत्र
रूप वैदिक कर्मसे भी ग्रहण किया जाता नहीं ॥ प्र० ॥ जब
प्रकार से नहीं ग्रहण होता, तब तिसके ग्रहणका साधन
है ॥ उ० ॥ " ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्
ध्यायमानः " । ज्ञानके प्रसाद से शुद्ध अन्तःकरणवाला जा
को योग्यहै ताते सो तिस निष्कलको देखता है । ज्ञान जो
सो सर्व प्राणधारियोंको स्वभावसेही आत्माके बोधन करने
समर्थ है, तथापि बाह्य विषयों बिषे रागादि दोषोंकरके मा
हुआ नित्य समीपस्थ आत्माको भी, मैलसे आवृत दर्पण
अरु चंचलजलवत्, बोधनकरता नहीं । सो ज्ञान, जब इन्द्रिय
विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न भये जे रागादिक मैल तिन मैल
दूर करनेसे दर्पण अरु जलादिकोंवत् प्रसन्न (स्वच्छ और शा
स्थित होताहै, तब ज्ञानका [जिसकरके अर्थको जानिये ऐसी
बुद्धि तिसको ज्ञान कहते हैं । तिसकी जो प्रसन्नता तिसको
प्रसाद' कहते हैं । पुरुष ध्यान करता हुआ ज्ञानप्रसाद को
ताहै । और ज्ञानके प्रसाद से आत्माको देखता है । इस प्र
अर्थका क्रम यहां जानना । क्योंकि संशय आदि मलसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा संविवेश। प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९। ५२ ॥

प्रमाके ज्ञानकोही साक्षात्कारका हेतु होने से ध्यानक्रिया को प्रमाज्ञानकी साधनता की असिद्धि है ताते] प्रसाद होता है। तिस ज्ञानके प्रसादसे शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुष, जिस करके ब्रह्मके देखने को योग्यहै, एतदर्थ यह पुरुष सर्व अवयवों के भेद से रहित निष्कलरूप तिस ब्रह्मको सत्यादि साधनवान् और जितेन्द्रिय होयके एकाग्रमन से ध्यान करताहुआ आत्मा कोही देखता (प्राप्तहोता) है ॥ ८। ५१ ॥

हे सौम्य! "एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणःपञ्चधा संविवेश"। यह आत्मासूक्ष्म है, सो जिस बिषे प्राण पांचप्रकार से सम्यक् प्रवेश को पायाहै तिस बिषे चित्त करके जानने को योग्यहै। यह आत्मा सूक्ष्महै, सो जिस शरीर बिषे प्राणवायु प्राण अपानादि पांचप्रकार के भेद करके सम्यक् प्रकार प्रवेशको पायाहै, तिसही शरीर बिषे हृदय कमलरूप देशमें केवल विशुद्ध ज्ञानरूप चित्तकरके जानने को योग्यहै ॥ प्र०॥ किसप्रकार चित्तसे आत्मा जानने को योग्य है ॥ उ० ॥ घृतसे दूधवत्, और अग्निसे काष्ठवत् [बौद्ध आदिकों को चित्तादिकों बिषे चेतना के भ्रमके दर्शन से, चित्त जो है सो तिस अपने सम्बन्धी वस्तु बिषे चैतन्यका आविर्भाव करने में स्वभाव सेही योग्यहै। एतदर्थ चित्तबिषे परमात्माकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) के सम्भवसे चित्तसे ब्रह्मको जानने की योग्यता कहते हैं, इसप्रकार की सम्भावना के अर्थ यहां कहते हैं "प्राणैश्चित्तं सर्व्वमोतं प्रजानांयस्मिन् विशुद्धे विभवत्येषआत्मा"। प्राण और इन्द्रियां सहित सर्व प्रजाका अन्तःकरण व्याप्तहै, तिस विशुद्ध (चित्त) बिषे यह आत्मा विशेष करके प्रकाशताहै। जिस चैतन्य करके प्राण और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १० । ५३ ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमखण्डः ॥

इन्द्रियों करके सहित, प्रजाका सर्व अन्तःकरण व्याप्त है । और जिस करके लोक विषे प्रजाका सर्व अन्तःकरण चेतनावाला प्रसिद्ध है तिसही करके तिस चेतनावान् (अनुसन्धानात्मक) वृत्तिरूप चित्त से आत्मा जानने को योग्यहै । पुनः यह चित्त कैसा है कि, जिसक्लेशादि मलरहित शुद्धहुये चित्तविषे यह कथनकिया आत्मा विशेष करके स्वस्वरूप सेही प्रकाशताहै ॥ ९ । ५२ ॥

हे सौम्य ! जो पुरुष ऐसे उक्त लक्षणवाले सर्व के आत्मा को अपना आप आत्मभाव से प्राप्तभया है तिस पुरुषको सर्वात्मा होने से सर्वकी प्राप्तिरूप फलहोता है, इसप्रकार कहते हैं । "यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्" । निर्मल अन्तःकरण । जिस जिस लोकको मन करके चितवता है और जिन भोगों की इच्छा करता है । जो क्लेशादि मल रहित है, और आत्माविषे शुद्ध अन्तःकरणवाला पुरुषहै सो, जिस जिस पुत्रादिरूप लोकको "मह्यमन्यस्मै वा भवेदिति" । मेरेअर्थ वा अन्य के अर्थहोवे । इसप्रकार मनसे चितवता है और जिन जिन भोगों की इच्छा करता है "तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः" । । तिस तिस लोक को और तिन भोगों को पावता है, ताते विभूति की इच्छावाला आत्मज्ञानी का पूजन करे । (एतदर्थ विद्वान्को सत्यसङ्कल्पवाला होने से विभूति (धनादिक)की इच्छावाला जो पुरुषहै सो आत्मज्ञानसे शुद्धभये अन्तःकरणवाले आत्मज्ञानी को पादप्रक्षालनादि सेवा और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तृतीयमुण्डकेद्वितीयखण्डःप्रारभ्यते ॥

सवेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ॥ १ । ५४ ॥

नमस्कारादि पूजन करे ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार आत्मज्ञानी देवताओंवत् पूजने योग्यही है ॥ १० । ५३ ॥

इति मुण्डकउपानषद्गततृतीयमुण्डक के प्रथमखण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयमुण्डकगत द्वितीयखण्डकी भाषाटीकाप्रारंभ ॥

हे सौम्य ! "सवेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भातिशुभ्रम् ।" । सो परमधामको जानताहै जिसविषे जगत् स्थितहै, और जो ब्रह्मरूप धाम शुद्धहुआ भासता है । जिस करके 'सो यह' इस उपलक्षणवाले ब्रह्मरूप सर्व कामना के आश्रय परमधाम को जानता है । और जिस ब्रह्मरूप धामविषे सर्व जगत् स्थितहै । और जो ब्रह्मरूप धाम आप शुद्धहुआ अपने प्रकाशसे आपही भासता है । और "उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ।" । पुरुषको भी बुद्धिमान् कामनासे रहितहुये उपासते हैं सो यह प्रख्यात वीर्य को उल्लंघ जाते हैं । एतदर्थ ऐसे उस आत्मज्ञानी पुरुषको भी जो धीर (बुद्धिमान्) पुरुष वैभव विभूतिकी कामना से रहित केवल मोक्षकी कामनावाले हुये, जैसे परमात्मरूप देवको, तैसे उपासते हैं सो पुरुष इस प्रसिद्ध शरीर के उपादान कारण बीजरूप वीर्यको उल्लंघके जाते हैं, बारंबार योनिको धारते नहीं "। नपुनः करातिंकरोतीति ।" । पुनः किसी बिषे प्रीतिको करता नहीं । इस श्रुतिके प्रमाण से । एतदर्थ तिस सम्यक् आत्मज्ञानी को सर्वप्रकारसे उपासना योग्यहै ॥ १।५४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामान्यः कामयते मन्यमानः सकामभिर्जायते त
तत्र । पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्व्वे प्रविली
न्ति कामाः ॥ २ । ५५ ॥

हे सौम्य ! अब मोक्षकी इच्छावाले को सर्वथा कामका त्या
गही मुख्य साधन है, इसबातको वेद भगवान् देखावते हैं ।'का
मान्यः कामयते मन्यमानः सकामभिर्जायते तत्रतत्रा' । जो भोग
को चितवताहुआ इच्छाकरता है सो कामनाके साथ तहांतहां जन्मत
है । जो पुरुष दृष्ट और अदृष्ट विषयरूप भोगोंको गुण बुद्धिसे चि
तवता हुआ इच्छा करताहै, सो तिन धर्म अधर्म बिषे प्रवृत्ति
कारण जे विषयोंकी इच्छारूप कामना तिसके साथ तहां तह
जन्मता है । अर्थात् जिन जिन विषयों बिषे, विषयों की प्राप्ति
निमित्त जो कामना सो कर्मोंबिषे पुरुषको प्रेरणाकरे है, उन उ
विषयों बिषे उन कामनाओंसे वेष्टित हुयेवत् जन्मता है । औ
'पर्य्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्व्वे प्रविलीयन्ति कामाः
पूर्णकाम कृतात्माके तो इसही बिषे सर्व काम विनाश को पावतेहैं
जो पुरुष परमार्थ तत्त्वके ज्ञानसे आप्तकाम होने करके सर्व ओ
से प्राप्त भये हैं काम (भोग) जिसको सो पूर्णकामहै और निकृ
रूप अविद्याके स्वरूपसे निकालके, विद्याकरके अपने श्रेष्ठरूप से
कियाहै आत्मा जिसका, ऐसे कृतात्मा हैं । तिस पूर्णकाम कृ
तात्मा पुरुष के तो इसही विद्यमान शरीर बिषे सर्व धर्म अधर्
में प्रवृत्ति के हेतुरूप काम [विषयों बिषे यथार्थ दोषोंको देखने
से पुरुष पूर्णकाम होताहै (अर्थात् उसकी सर्व कामना समाप्त
होतीहैं) और सो विरुद्धलक्षणसे आप्तकाम भयाहै, और तिस आ
त्माकीजिज्ञासासेही चित्तको वशकरनेवाले पुरुषके, विषयोंसे इच्छा
के भेदरूप काम निवृत्तहोतेहैं] विनाशको पावतेहैं । तिस कामके
जन्मके कारणके विनाशसे वे काम उपजते नहीं । अर्थात् [उत्पन्न
भये कामोंका ज्ञान विनाभी क्षयहोना सम्भवहै, ताते यहां स्वहो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् ॥ ३। ५६ ॥

के विनाशसे काम पुनः उपजते नहीं] इत्यभिप्रायः ॥ २। ५५ ॥

हे सौम्य ! जब इसप्रकार परमात्मा के लाभसे सर्व का लाभ होताहै, तब तिसके लाभार्थ शास्त्र अध्ययनादि उपाय विशेष करके करने को योग्य है। इसप्रकार प्राप्तहुए यह कहतेहैं। "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन"। [यह आत्मा बहुत पढ़ने से प्राप्तहोने योग्य नहीं, और बुद्धि से पावने योग्य नहीं, और बहुत से सुनने से भी पावने योग्य नहीं। परम पुरुषार्थरूप जिसका लाभ है, इसप्रकार व्याख्यान किया जो यह आत्मा, सो वेद और शास्त्र के बहुतसे अध्ययनरूप प्रवचनसे प्राप्तहोने योग्य नहीं और तैसेही वेदादिकोंके अर्थकी धारणा शक्तिरूप मेधा (बुद्धि) सेभी पावने योग्य नहीं, और तैसेही उपनिषदों के विचार से इतर बहुत से शास्त्रों के श्रवण करनेसे भी पावने योग्य नहीं ॥ प्र०॥ तब वो आत्मा किन साधनों से पावने योग्य है ॥ उ० ॥ "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्"। [यह जिसकोही पावने की इच्छा करताहै, तिससे यह पावनेको योग्य है तिसको यह आत्मा अपनी तनूको प्रकाशता है। यह विद्वान् जिसआत्माकोही पावनेकी इच्छाकरताहै, तिसवर्णन (भजन) से [मैं परमात्माहूं, । इसप्रकार अभेद के अनुसन्धानको वर्णन कहते हैं तिस वर्णन से यह आत्मा पावने को योग्य होता है, और बहिर्मुख पुरुषों करके तो सैकड़ोंबार श्रवणादिकके कियेहुएभी यह आत्मा प्राप्तहोता नहीं। एतदर्थ मैं परमात्माहौं इस चिन्तनरूप परमात्माके भजनको पूर्वकरकेही श्रवणादिक सम्पादन करनेको योग्यहै, यहभावहै॥ अथवा जिस परमात्माको पावनेकी इच्छा करताहै सो तिस मुमुक्षुरूप से स्थित भये परमात्माकरके अभेदके अनुसन्धानरूप प्रार्थनाकरके मुमुक्षु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तप
वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्
विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥ ५७ ॥

रूपसे स्थित भया परमात्माही प्राप्तहोने को योग्य है । इसप्रक
अभेद के अनुसन्धानसेही आत्मा प्राप्तहोने योग्य है, कर्मसे कदा
नहीं । इत्यर्थः] यह परमात्मा प्राप्तहोने योग्य है अन्य साधनों
नहीं, क्योंकि आत्मा नित्य प्राप्त स्वभाववाला है ताते ॥ प्र०
विद्वान्को यह आत्माका लाभ किसप्रकार का है ॥ उ० ॥ वि
विद्वान् का यह आत्मा अविद्या से आवृत अपनी उत्कृष्ट स्वा
तत्त्वस्वरूप तनुको प्रकाशता है, अर्थात् विद्याके होनेसे घटादि
के प्रकाशवत् आविर्भावको पावता है, एतदर्थ अन्यके त्याग
आत्मा के लाभकी प्रार्थनाही आत्मप्राप्ति का साधन है ॥ इ
सिद्धम् ॥ ३ । ५६ ॥

हे सौम्य ! जिसकरके यह लिङ्गयुक्त संन्यास सहित बल अ
माद और तपरूपसाधन आत्माकी प्रार्थना के सहकारी है । "ना
मात्माबलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्" । य
आत्मा बलहीन करके पावने को योग्य नहीं, और प्रमाद से पाव
को योग्य नहीं, और लिङ्ग से रहित तपसे पावने के योग्य नहीं
एतदर्थ यह आत्मा आत्मनिष्ठा से उत्पन्नभये बलसे रहित पुरु
करके प्राप्त होनेको योग्य नहीं और पुत्र पशुआदिक विषयोंकी व
साक्षिरूप निमित्त से हुए कर्त्तव्य के विस्मरणरूप प्रमाद से प्रा
होनेको योग्य नहीं । और तैसेही संन्यासरूप लिङ्ग से [॥ प्र०
इन्द्र जनक गार्गी आदिकों को भी आत्मलाभ हुआ ऐसा श्रवण
तब संन्यासरूप लिङ्गसे रहित ज्ञानरूप तपसे भी आत्मा प्राप्तहोने
योग्य नहीं, ऐसा कैसे कहतेहौ ॥ उ० ॥ यद्यपि इन्द्र जनकादि
को बाह्य संन्यासका अभाव होनेसे भी आत्मलाभ भया है यह तो
कथन सत्य है, तथापि संन्यासनाम सर्व के सम्यक् त्यागका है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः। ते सर्व्वज्ञं सर्व्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्व्वमेवाविशन्ति ॥ ५। ५८ ॥

और तिनजनकादिकोंको ममतास्पद और अहंतास्पदविषे सम्यक् वैराग्य होनेसे अन्तरका संन्यास विद्यमानहीथा। और बाह्य का लिंग (चिह्न संन्यास) सो श्रुति करके कहनेको इच्छित नहीं। अर्थात् बाह्य चिह्न (संन्यास) का श्रुतिको आग्रह नहीं, क्योंकि "नलिङ्गंधर्म्मकारणम्" ।लिंग (बाह्य चिह्न) जो है सो धर्म्मका कारण नहीं। यह स्मृतिका प्रमाणहै ताते] रहित ज्ञानरूप तपसे भी प्राप्तहोने को योग्य नहीं। और "एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम"। जो विद्वान् उक्त उपायोंसे प्रयत्न करताहै तिसका यह आत्मा ब्रह्मधाम के अर्थ सम्यक् प्रवेश करता है। जो विद्वान् तत्परहुआ इन बल, अप्रमाद, त्याग और ज्ञानरूप उपायों से भलीप्रकार यत्न करता है तिस विद्वान्का यह (बुद्धिविशिष्ट) आत्मा ब्रह्मरूप धाम विषे (कि जहांका गया पुनः नहीं आवता) सम्यक् प्रवेश करताहै (समुद्रमें नदीवत्) इत्यभिप्रायः ॥ ४। ५७ ॥

हे सौम्य! प्र० ॥ विद्वान् ब्रह्मके विषे किसप्रकार प्रवेशको करतेहैं ॥ उ० ॥ "संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः"। ऋषिलोग इसको जानके ज्ञानसे तृप्तहुये सिद्धभये आत्मावाले हुये रागादि दोषोंसे रहित जितेन्द्रियभये हैं जो परमात्माके दर्शनवाले ऋषिलोग इस (अपने आप) आत्माको जानके तिसही ज्ञानसे तृप्तहुये, कुछ शरीरकी वृद्धि क्षयके कारण जे बाह्यकी तृप्तिके साधन तिनसे नहीं, और परमात्माके स्वरूप से ही सिद्धभये आत्मावालेहुये रागद्वेषादि दोषोंसे रहित जितेन्द्रिय हुयेहैं। और "तेसर्व्वज्ञं सर्व्वतः प्राप्यधीरा युक्तात्मानः सर्व्वमेवा विशन्ति"। सो अत्यन्त विवेकी नित्य चित्तकी एकाग्रताके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतय
शुद्धसत्त्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परि
मुच्यन्ति सर्व्वे ॥ ६ । ५६ ॥

स्वभाववाले पुरुष सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको सर्व्वत्र पायके सर्व
के अर्थ प्रवेशको करते हैं । सो अत्यन्त विवेकशील योग करने
नित्य विक्षेपसे रहित चित्तकी एकाग्रता के स्वभाववाले आत्म
वेत्ता पुरुष आकाशवत् सर्वव्यापक अद्वैत ब्रह्मको कुछ उपाधिसे
परिच्छिन्न एक देशसे नहीं पावते, किन्तु, सर्वत्र पाय के शरीर
के पतनहुये भी सर्व्वके बिषे प्रवेश करते हैं । अर्थात् फूटे घटके आ
काशवत् उपाधिकृत परिच्छेदको छोड़ते हैं । इसप्रकार ब्रह्मवेत्ता
ब्रह्मरूप धामके ताईं प्रवेश करतेहैं ॥ इति भावार्थः ॥५। ५८।

हे सौम्य ! "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यत
यः शुद्धसत्त्वाः" । वेदान्तसे जानेत विज्ञानके अर्थके निश्चयवान्
हुये संन्यास योगसे यतिहैं और शुद्ध चित्तवाले हैं । जो पुरुष वेदा
न्तशास्त्र से उत्पन्नभये विज्ञानके, परमात्माके जानने योग्य, अर्थ
को निश्चय करनेवालेहैं, और सर्वकर्मके परित्यागपूर्वक केवल
ब्रह्मनिष्ठतारूप संन्यास योगकरके प्रयत्न करने के स्वभाववाले
यतिहैं, संन्यास योग करके शुद्धचित्तवाले हैं । "ते ब्रह्मलोकेषु
परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्व्वे" । सो सर्व परान्तकाल
बिषे परामृतहुये सर्व ओरसे मुक्त होतेहैं । सो सर्व परान्तकाल बिषे
अर्थात् [संसारी पुरुषोंका जो मरणकालहै (सो परान्त काल है
और तिनकी अपेक्षासे मुमुक्षुओंका संसारके अन्त बिषे जो चरम
देहके परित्यागका कालहै (अर्थात् मुमुक्षुका इस दृश्य शरीर
के त्याग के समकालही संसार का अन्त है, क्योंकि पुनः उस
को संसार नहीं, ताते उक्तप्रकार मुमुक्षु का जो चरम देह का
त्याग का काल है) सो परान्तकाल है, तिस परान्तकाल बिषे
ब्रह्मरूप लोकबिषे अर्थात् [(यह जो ब्रह्मलोक को बहुवचन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गताः कालाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्रतिदेवतासु । कर्म्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ ७ । ६० ॥

है सो) यहां साधनों को बहुत होने से, जो ब्रह्मरूप लोक एक है तोभी अनेकवत् देखते हैं और पावते हैं एतदर्थ बहुवचन है । परन्तु 'ब्रह्मलोकेषु' इस शब्दका अर्थ ब्रह्मबिषे है] जीवतेहुयेही परम और मरणधर्मरहित ब्रह्महै आत्मा जिनका ऐसे, परामृत हुये सर्वओर से दीपकके निर्वाणवत् अर्थात् [दीपकको बत्ती के किये अवच्छेदके ध्वंस होने से जिसप्रकार तेज के सामान्यभाव की प्राप्तिहोती है, तैसेही इन आत्मज्ञानी पुरुषोंको उपाधिके किये अवच्छेदके ध्वंस होने से चैतन्यके सामान्यभावकी प्राप्तिहोती है] और (घटके ध्वंसहुये) घटाकाशवत् मुक्तहोता है । और गमनकरने योग्य अन्यदेश (लोक वा देह) को अपेक्षा करते नहीं, क्योंकि 'पदंयथानदृश्येत तथाज्ञानविदांगतिः;' 'अनध्यगाअध्वसुपारयिष्णव इति;' जैसे आकाशबिषे पक्षियोंका, और जलबिषे जलचरोंका पाद (खोज) नहीं पायाजाता है । तैसेही ज्ञानी पुरुषों की गति है । और संसार के मार्गोंके पार (समाप्ति) होने की इच्छा वाले पुरुष नहीं गमनकरनेवाले होते हैं । ऐसा श्रुति और स्मृति का प्रमाण है ताते [यहां तर्क से भी मोक्ष कहने को योग्यहै, ऐसा कहते हैं] जिससे देशकरके परिच्छिन्न जो गति है सो संसार को विषयकरनेवालीही है, क्योंकि परिच्छिन्न साधनकरके साध्य है ताते । और ब्रह्म तो सर्वरूप होनेसे देशके परिच्छेद से गमन करने योग्य नहीं है । जब देशसे परिच्छिन्न ब्रह्म होय तब मूर्त्त द्रव्यवत् आदि अन्तवाला अन्य के आश्रित सावयव अनित्य और क्रिया साध्य होवेगा । परन्तु ब्रह्म इसप्रकारका होनेयोग्य नहीं, एतदर्थ तिसकी प्राप्तिभी देशकरके परिच्छिन्न होने योग्य नहीं ॥६।५९॥

हे सौम्य ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष जो हैं सो अविद्या आदिक संसार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बन्धनकी निवृत्तिरूप मोक्षकी इच्छा करते हैं, कार्यरूप मोक्ष
नहीं करते । किंवा "गताः कलाः पञ्चदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्व्वे प्र
देवतासु" । पंचदश कला लयको प्राप्तहोती हैं और सर्व देवता प्र
देवताको प्राप्तहोते हैं। मोक्षकाल बिषे जो देह की आरम्भ क
वाली प्रणादि पन्द्रह संख्यावाली कला प्रश्नउपनिषद्रूप इ
उपनिषद् के ब्राह्मणभाग के छठें प्रश्न बिषे कही हैं सो अपने
कारणबिषे लयको प्राप्तहोती हैं । और देहके आश्रित चक्षुआदि
क करणोंबिषे स्थित जे इन्द्रयाधिष्ठाता देवता सो सूर्य्यादि
प्रति देवताबिषे प्राप्त होते हैं । और "कर्म्माणि विज्ञानमय
आत्मा परेऽव्यये सर्वएकीभवन्ति" । कर्म और विज्ञानमय (बुद्धि
विशिष्ट) आत्मा पर अव्ययबिषे सर्व एकताको पावते हैं। जो मुमु
के किये कर्म हैं, तिन में से फलके आरम्भ करनेवाले (प्रारब्ध
कर्मोंको उपभोगसेही क्षीण होना है, ताते तिनको छोड़के या
अवशेष रहे जे फलके आरम्भसे रहित (संचित कर्म हैं तिन
ग्रहण है । और आत्मा जो है सो अविद्या से रचित बुद्धि आदि
उपाधिको अपना स्वरूप मान के जलादिकों बिषे सूर्य्यादिकों
प्रतिबिम्बवत् तिसही विज्ञानमय स्वरूपके साथ इस देहके भो
बिषे प्रवेशको पाया है । क्योंकि कर्मका उस विज्ञानमय बुद्धि
ताईं फलदेने के अर्थ होना है ताते, एतदर्थ आत्मा विज्ञानम
कहा जाता है) कर्म और विज्ञानमय आत्मा, सो यह सर्व उप
धिकी निवृत्तिसे, सत्य, पर, अव्यय, अक्षर आकाशतुल्य अजन्मा
अजर, अमर, अकार्य, अकारण, अन्तररहित, बाहररहित, अद्वै
शिव और शान्त ब्रह्मबिषे जलादिक आधारके दूरहोने से जलादि
बिषे सूर्य्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् और घटादिकों के अभाव भ
घटादिकों के सम्बन्धी आकाशवत् एकताको पावता है ॥ ७ । ६०

हे सौम्य ! "यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तङ्गच्छन्ति नाम
पे विहाय" । जैसे (गङ्गाआदिक) नदियां बहतीहुई (समुद्र
पायके) नामरूपको त्यागके समुद्र बिषे अस्तता (अभेदता)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८। ६१ ॥

स यो हवै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ ९। ६२ ॥

प्राप्त होती हैं "तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परम्पुरुषमुपैति दिव्यम्"। तैसे विद्वान् (आत्मज्ञानी अविद्याकृत) नाम और रूप से (भलीप्रकार) मुक्त हुआ (पूर्व कहे प्रकार अक्षररूप) पर से पर दिव्य (उक्त लक्षणवाले) पुरुष को पावता है ॥ इतिवेदानुशासनम् ॥ ८। ६१ ॥

हे सौम्य! ॥ शंका ॥ ननु, मोक्षबिषे अनेक विघ्न प्रसिद्ध हैं, एतदर्थ ब्रह्मवेत्ताभी पंचक्लेशों के मध्य किसी एक क्लेशकरके, और वाद बिषे अन्यवादी करके किये विघ्नसे मरणको पायाहुआ अन्य गति को पावेगा ब्रह्मको नहीं ॥ स० ॥ यह कहना तेरा बने नहीं, क्योंकि विद्यासेही सर्व प्रतिबन्धोंका अभाव करते हैं ताते और मोक्ष जो है सो केवल अविद्यारूप प्रतिबन्धवाला है अन्य प्रतिबन्धवाला है नहीं, क्योंकि मोक्ष नित्यहै ताते और आत्मरूपहै ताते। एतदर्थ "स यो हवै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति"। (सो जो कोई एकलोक बिषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको जानता है सो ब्रह्मही होता है। सो जो कोई एक लोक बिषे प्रसिद्ध तिस परमब्रह्मको साक्षात् मैंही हौं, इसप्रकार अभेदतासे जानता है, सो अन्य गति को पावता नहीं, क्योंकि देवताओं की भी इसकी ब्रह्मप्राप्तिके बिषे विघ्नकरनेकी सामर्थ्य नहीं, क्योंकि यह ज्ञानी देवता आदि सर्व का आत्मा होता है 'ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्', एतदर्थ ब्रह्मका जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मही होताहै। और "नास्याब्रह्मवित्कुले भवति"। (इसके कुलबिषे अब्रह्मवित् होता नहीं। (इसविद्वान्के कुल (शिष्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदेतदृचाऽभ्युक्तं क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तुचीर्णम् ॥ १० । ६३ ॥

परम्परा) बिषे अब्रह्मवित् (ब्रह्मका नजाननेवाला) होता नहीं और "तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतो भवति" । शोकको तरताहै, पापको तरता है, गुहारूप ग्रन्थिसे मुक्त हुआ अमृत होता है । किंवा यह आत्मवेत्ता जीवताहुआही अनेक इष्टवस्तुके वियोगरूप निमित्तसे भये जे मनके संतापरूप शोक तिनसे तरता (छूटता) है, और धर्म अधर्म नामक पापसेभी तरता है, और गुहा (बुद्धि) रूप ग्रन्थिसोंभी मुक्तहुआ अमृतरूप होता है ॥ यह "भिद्यते हृदयग्रन्थिः" इत्यादि इसही बिषे पूर्व प्रतिपादन कियाहै ॥ इति सिद्धम् ॥ ९ । ६२ ॥

हे सौम्य ! अब ब्रह्मविद्याके दानकी विधिके देखावने से, इस उपनिषद्की समाप्ति करते हैं, । तदेतदृचाऽभ्युक्तंक्रियावन्तः श्रोत्रियाब्रह्मनिष्ठाः" । सो यह मन्त्रने कहा है, क्रियावाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठहैं । सो यह विद्याके दानका विधान इस मन्त्रने कहा है जो शास्त्रउक्त कर्मके अनुष्ठानरूप क्रियावाले और श्रोत्रिय, अर्थात् अपर ब्रह्मकी विद्याबिषे कुशलहैं, और ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् परब्रह्मकी जिज्ञासावाले हैं । और "स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत" । श्रद्धावान् हुये आप एकर्षिनामवाले अग्निके अर्थ हवनकरते हैं, तिनसंस्कारयुक्त चित्तवाले अधिकारीरूप ऋषके अर्थही इस ब्रह्मविद्याको कहना । और "शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तुचीर्णम्" । शिरोव्रत जिन्होंने विधिके अनुसार कियाहै । मस्तक बिषे अग्निके धारणकरनेरूप अथर्वणवेदबिषे प्रसिद्ध जो शिरोव्रत है सो जिन्होंने शास्त्रउक्त विधिके अनुसार कियाहै तिनके अर्थ इस ब्रह्मविद्याको कहना ॥ १० । ६३ ॥

हे सौम्य ! "तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्ण व्रतो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णं व्रतोऽधीते। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ११।६४॥

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयखण्डः ॥

ऽधीते" ।तिस इस सत्यको पूर्व अङ्गिरा मुनीश्वर कहताभया, इस व्रतके आचरण से अध्ययन करताभी नहीं।तिस इस अक्षर नामवाले पुरुषरूप सत्यको पूर्व अङ्गिरा नामक मुनीश्वर, विधिवत् समीप प्राप्तभये और प्रश्नकर्त्ता शौनक नामवाले ऋषिके अर्थ कहताभया। इसप्रकार अन्य आचार्यभी तिसही प्रकार से मोक्षके अर्थ विधिवत् समीप प्राप्तभये मोक्षार्थी मुमुक्षुके अर्थ कहै। और इस ग्रन्थको व्रतके आचरण से रहित पुरुष अध्ययन करता भी नहीं। और जिसकरके व्रतके आचरणवालेकी विद्या संस्कारयुक्त हुई फलके अर्थ होती है, एतदर्थ व्रतरहित पुरुष इसग्रन्थके अध्ययनयोग्य नहीं है। इसप्रकार समाप्तभई जे ब्रह्मविद्या, सो जिन ब्रह्मादिकों से परम्पराक्रमसे सम्यक् प्राप्तभई हैं। "नमःपरमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः" ।तिन परम ऋषियों के अर्थ नमस्कार है और जे ब्रह्मादिकपरमब्रह्मको साक्षात् जानतेभये सो परमऋषि हैं। तिन परमऋषियों के अर्थ पुनः भी नमस्कार है। यहां दोबार जो नमस्कारका कथन है सो अत्यन्त आदर के अर्थ है। और यह तृतीयमुण्डक और उपनिषद्की समाप्ति के अर्थ है॥११। ६४॥

इति मुण्डकउपनिषद्गत तृतीयमुण्डकके द्वितीयखण्डकी भाषाटीका समाप्त ॥

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥ एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञापन।

नीचे लिखे हुए उपनिषदों का भाषाटीका राय बहादुर बाबू जालिमसिंह साहब, पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर, ने बड़ी योग्यता से किया है। इन उपनिषदों में पहिले मूल, फिर पदच्छेद, बाईं ओर संस्कृत अन्वय और दाहिनी ओर पदार्थ-भावार्थ-छापा गया है। जिन्हें संस्कृत की योग्यता कम हो, जो मन्त्रों का पूरा २ अर्थ समझ न सकते हों, उनके लिये यह निम्नलिखित उपनिषद् अतीव उपयोगी हैं।

ईशावास्य उपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या ३६; मूल्य =)

ऐतरेयोपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या ५४; मूल्य =)॥

कठवल्ली उपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या १६०; मूल्य ॥)

केनउपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या ४४; मूल्य =)॥

छान्दोग्योपनिषद्—सटीक। जैसे सामवेद गान करके पढ़ा जाता है, वैसे ही यह छान्दोग्योपनिषद् भी गाकर पढ़ा जाता है। वह बाह्य-फल—स्वर्गादिक—को देता है और यह ब्रह्मज्ञान उत्पन्न करके जीवात्मा को अजर-अमर बना देता है एवं जीव और ईश्वर के भेद को हटाकर दोनों को ऐक्य कर देता है। इसमें पहिले मूल, फिर पदच्छेद, बाईं ओर अन्वय, दाहिनी ओर शब्दों का अर्थ और सब से नीचे भावार्थ दिया गया है। पृष्ठसंख्या ६६८; मूल्य २॥)

तैत्तिरियोपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या १३४; मूल्य ॥=)

प्रश्नोपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या ६४; मूल्य ।=)

माण्डूक्यउपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या २०; मूल्य =)

मुण्डकोपनिषद्—सटीक। पृष्ठसंख्या १०; मूल्य ।=)

मिलने का पता:—

मैनेजर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लखनऊ के सुप्रसिद्ध 'नवलकिशोर प्रेस'

के

नीचे लिखे हुए उपनिषद् भी अवश्य देखिये।

नीचे लिखे हुए उपनिषदों का भाषा टीका राय बहादुर बाबू जालिमसिंह साहब, पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर ने बड़ी योग्यता से किया है। इन उपनिषदों में पहिले मूल, फिर पदच्छेद, बाईं ओर संस्कृत अन्वय और दाहिनी ओर पदार्थ-भावार्थ-छापा गया है। जिन्हें संस्कृत की योग्यता कम हो, जो मन्त्रों का पूरा २ अर्थ समझ न सकते हों उनके लिए यह निम्न लिखित उपनिषद् अतीव उपयोगी हैं।

ईशावास्य उपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या ३६; मूल्य ≈)
ऐतरेयोपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या १६०; मूल्य ≈)॥
कठवल्लीउपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या १६०; मूल्य ।)
केनोपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या ४४; मूल्य ≈॥
छान्दोग्योपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या ६६८; मूल्य २)॥
तैत्तिरीयोपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या १३४; मूल्य ॥≈)
प्रश्नोपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या ६४; मूल्य ।≈)
माण्डूक्यउपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या २०; मूल्य ≈)
मुण्डकोपनिषद् सटीक—पृष्ठ संख्या ६०; मूल्य ।≈)

पता—मैनेजर नवलकिशोर प्रेस,
लखनऊ.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

3/22

ॐ

अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषद्

भाषाटीकासहित

इसमें श्रीपिप्पलाद प्रति कबन्धी आदिक छः ऋषियों का प्रश्न तथा श्रीपिप्पलादजी का उत्तर वर्णित है ।

अनुवादक

पं० यमुनाशंकर नागर

चतुर्थ बार

लखनऊ

में

केसरीदास सेठ द्वारा

नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित और प्रकाशित

सन् १९२१ ई०

सर्वाधिकार रक्षित हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

अथ अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषद् ॥

इस उपनिषद् में कबंधी आदि छः ऋषियोंने शिष्यभाव से पृथक् २ प्रश्न किये हैं और उनके उत्तर पिप्पलादनामक आचार्य ने दिये हैं। एतदर्थ इस उपनिषद् का नाम प्रश्नोपनिषद् है। उसकी भाषाटीका श्रीशंकराचार्यजी के भाष्य और आनन्दगिरि टीका और पंडित पीताम्बरजी के अनुवादके आशय पर गुरु शिष्य के संवाद द्वारा हुई है ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

भूमिका।

अथर्वणवेदके मन्त्रों से अर्थात् परिमित अक्षरवाले जो वेदके वाक्यहैं उनको मन्त्र कहते हैं तिनकरके बोधित जो अर्थ है तिनका विस्तार करके ऽ[अर्थात् अथर्वण वेद में 'ब्रह्मा देवानामित्यादि <ब्रह्मादेवताओंकोइत्यादि>मन्त्रोंसेही आत्मतत्त्वका निर्णय किया होने से। और तिसही अथर्वण वेद बिषे इस उपनिषद्रूप ब्राह्मण भाग से पुनः तिसही आत्मतत्त्वका कथन है सो पुनरुक्ति दोषहै यह आशंका चित्त बिषे होती है सो नहीं क्योंकि मन्त्रों करके संक्षेपमात्र कथन कियाजो आत्मतत्त्व तिसही का यहां इस ब्राह्मण भाग करके सविस्तर प्राणकी उपासना आदिक साधनोंसहित होनेसे कथन है एतदर्थ पुनरुक्ति दोषहै नहीं। इसप्रकार कहते हुये आचार्य इस ब्राह्मणभागको प्रकटकरते हैं॥ यहां यह विशेषहै कि मंत्ररूप जो विद्या है सो 'पराचैवापराच' इस प्रमाणसे पर अपर भेदसे दोप्रकारकी है। तिन में शिक्षाआदि छः अंगोसहित जो ऋग्वेदादि नामों करके विख्यात विद्या सो कर्म्मरूप और उपासनारूप होने से अविद्याहै तिन बिषे जो दूसरी उपासनारूपहै तिसके द्वितीय और तृतीय इन दोनों प्रश्नों करके प्रतिपादन कीजायगी और प्रथमा जो कर्मरूपा है सो कर्मकांड बिषे वर्णन कियाहै एतदर्थ यहां उसका वर्णन नहीं करते। और कर्मरूप और उपासनारूप जो विद्या है तिनके फल अनित्यादि दोष करके युक्तहैं ताते मुमुक्षु को तिनसे वैराग्यार्थ प्रथम प्रश्न बिषे स्पष्ट करते हैं। और प्रथम कहे जे पर अपर दोविद्या तिन बिषे दूसरी जो परविद्या है सो उसको कहते हैं 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' < अब जिससे सो अक्ष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानिये सो पराविद्या है > इसप्रकार आरंभ करके समस्त मुंडक-उपनिषद् से प्रतिपादन किया है। तिस बिषेभी 'यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः' < जैसे प्रज्वलित अग्नि से सहस्रावधि चिनगारियां प्रकटहोती हैं > इत्यादि दोनों मन्त्रों करके उक्त जो अर्थ है तिसके विस्तारार्थ चतुर्थ प्रश्न है। और 'प्रणवो धनुः' < ॐकार धनुष है > इसमंत्र बिषे जो उक्त अर्थ है तिसको स्पष्ट करने के अर्थ पंचम और षष्ठ प्रश्न हैं इस रीतिसे यह प्रश्न उपनिषद्रूप ब्राह्मण आत्मप्रतिपादक मन्त्रोंका विस्तारसे अनुवाद करनेवाला है एतदर्थही इसके विषय और प्रयोजनादिक अनुबन्ध तहांही कहे हैं एतदर्थ यहां पुनः नहीं कहते। ऐसे जानना] अनुवादसे यह प्रश्नोपनिषद्रूप ब्राह्मण [अपरिमित अक्षरवाला जो वेदका वाक्य तिसको ब्राह्मण कहते हैं] प्रारंभ करते हैं। और इस उपनिषद् बिषे ऋषियों के प्रश्न और उत्तररूप जो आख्यायिका है सो विद्या की स्तुत्यर्थ है। और सो ब्रह्मविद्या, कि जिस करके अक्षरब्रह्म की प्राप्तिहोती है, सो आगे कहेहुये प्रकारसे संवत्सर (एकवर्ष) पर्यन्त ब्रह्मचर्य से गुरुकुल बिषे वास और तप आदिक साधनों करके युक्त जो अधिकारी तिन करके ग्रहण करने और पिप्पलाद आदिक सर्वज्ञ मुनीश्वरों के तुल्य जो आचार्य्य तिन करके कहने योग्य है जिस किस करके नहीं। ऐसी विद्या की स्तुति करते हैं। और ब्रह्मचर्य्यादि। अर्थात् [इस ऋषियों की आख्यायिका का पूर्व कल्पबिषे विद्यमान साधनों के स्वरूपसे ब्रह्मचर्य्य और तप आदिक साधनों का विधानरूप अन्य प्रयोजन है ऐसे कहते हैं] अर्थात् वेदमें कल्पान्तर भेद नहीं सर्व कल्पों में वेद एकही है ताते इस सनातन आख्यायिका से ब्रह्मचर्य्यादि साधनों की सूचनासे तिनके करने की योग्यता सिद्ध होती है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुक्रमणिका ।

---

(१)–भूमिका
(२)–विज्ञापन
(३)–विनय
(४)–मूल मन्त्र पुष्टाक्षरों में
(५)–भाषा में भावार्थ सहित मूल अरु अक्षरार्थ के

' ' इस चिह्नान्तर में मूल के पद
< > इस चिह्नान्तर में मूलपदके अक्षरार्थ
[ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरि टीका का अनुवाद
( ) इस चिह्नान्तर में पर्याय शब्द
ऽ ऽ इस चिह्नान्तर में अर्थयोजना
' ' इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों का प्रमाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रश्नोपनिषदि प्रथमप्रश्नः १ ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः, शैब्यश्च सत्यकामः, सौर्य्यायणी च गार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवो वैदर्भिः, कबन्धी कात्यायनस्ते, हैते, ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परंब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वैतत्सर्व्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

प्रश्नोपनिषद् के प्रथमप्रश्नकी भाषाटीका का प्रारम्भ।

श्रीगुरुरुवाच । हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! अब सावधान होके प्रश्न उपनिषद्कोभी श्रवण करो 'सुकेशा च भारद्वाजः' <भरद्वाज का पुत्र सुकेशा> नामवाला मुनि। और 'शैब्यश्च सत्यकामः' <शिबि ऋषिका पुत्र सत्यकाम> नामवाला मुनि। और 'सौर्य्यायणी च गार्ग्यः' <सूर्य्यके पुत्र सौर्यमुनि तिसका पुत्र सौर्य्यायणी सो गर्गगोत्र बिषे उत्पन्नभया ताते गार्ग्य> नामवाला मुनि। और 'कौशल्यश्चाश्वलायनः' <अश्वलऋषि का पुत्र कौशल्य> नामवाला मुनि। और 'भार्गवो वैदर्भिः' <विदर्भदेशका रहनेवाला भृगुके गोत्र बिषे उत्पन्न भया इससे भार्गव> नामवाला मुनि। और 'कबन्धी कात्यायनः' <कत्यके पुत्र कात्यायन ऋषिरूप प्रपितामह (परदादे) वाला कबन्धी नाम> मुनि 'ते हैते' <यह विख्यात> छः मुनीश्वर सो 'ब्रह्मपराः' <ब्रह्मपर> अर्थात् अपरब्रह्म (प्राणोपासना) के लिये तत्पर होने करके प्राप्तभये हैं इससे ब्रह्मपर हैं। अथवा अपरब्रह्म जे छहों अंगों सहित ऋगादि वेदरूप अपराविद्या तिसबिषे निष्णात भये ताते ब्रह्मपर हैं। और 'ब्रह्मनिष्ठाः' <ब्रह्मनिष्ठ हैं>

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् ऽ ऋगादिवेद करके प्रतिपाद्य जे यज्ञरूप ब्रह्म तिसको
ष्ठानबिषे निष्ठावाले होने करके ब्रह्मनिष्ठ हैं सो ऽ ' परब्रह्म
षमाणाः ' < परब्रह्म को खोजतेहुये > ऽ जो नित्यवस्तु
योग्यहै सो क्याहै तिसकी प्राप्त्यर्थ हम अपनी इच्छाके अ
यत्न करेंगे ऽइस अभिप्रायसे परब्रह्म को अन्वेषण करते हुये
तिसके जानने के अर्थ ' एष ह वैतत्सर्वं वक्ष्यतीति '
आचार्य निश्चयकरके सो सर्व कहेगा ऐसे> विचारके ' ते
मित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ' < वे सर्व समि
हुये पूजावान् पिप्पलाद मुनि के समीप जाते हुये>
सुकेशा आदि छहों मुनि समिधादि लेके [यह समि
जो ग्रहण है सो यथायोग्य दातुन काष्ठआदिक आचा
उपयोगी सामग्री के ग्रहणार्थ है ; क्योंकि ' आच
प्रियं धनमाहृत्य ' इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण हैं ; और
काष्ठरूप जो समिध है सो भी अग्निहोत्रादि कर्मों बिषे
को उपयोगी होते हैं ताते उनके ग्रहणार्थ भी विधि है
मुमुक्षु को आचार्य के उपयोगी पदार्थरूप भेट हाथ में
शरण होना योग्य है यह अभिप्राय है] सर्व करके
भगवान् पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीप जातेभये ।
[आचार्यको उपयोगी प्रियवस्तु सो भेटके अर्थ हाथ में ले
जाय भेट उनके आगे रख उनके चरण ग्रहण करके हे भ
< ' मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ' > मैं मुमुक्षु आपकी शरण
मुझको ब्रह्मविद्या का उपदेश करो । इत्यादि प्रकार
स्वाभीष्ट वचन के उच्चारणपूर्वक साष्टांग प्रणामरूप
(शुश्रूषा, सेवा) को करते भये] ॥ १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ हे सौम्य ! पूर्वोक्त प्रकार जब वे छहों मुनि पिप्पल
आचार्यकी शरणभये तब ' तान् ह स ऋषिरुवाच ' <
सो ऋषि स्पष्ट कहता भया > अर्थात् तिनके समीप
मुनि तिनको सो आचार्य पिप्पलादमुनि स्पष्ट कहता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ । भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

ऽ पिप्पलादउवाच ' भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ ' < फेर भी तपसे ब्रह्मचर्य से श्रद्धासे संवत्सर पर्यन्त सम्यक् वास करो > ऽ यद्यपि तुम सर्व तपस्वी ही हौ तथापि यहां फेर भी विशेषकरके नियताहारादिरूप तपसे और इन्द्रियों के संयमरूप ब्रह्मचर्य से और आस्तिक भावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान् हुये एकवर्ष के कालपर्यन्त सम्यक्प्रकार गुरुकी सेवा बिषे तत्परहुये निवास करो । तिसके अनन्तर; ' यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ ' <जैसी इच्छा होय (तिसके अनुसार) प्रश्नों को पूछो > ऽ जिसको जैसी इच्छा होय सो अपनी इच्छाके अनुसार जिस विषयकी जिज्ञासा होय तिस विषयके सम्बन्धी प्रश्नों को पूछो ऽ ' यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं ह वो वक्ष्याम इति ' < जब जानते होंगे तुम्हारे सर्व स्पष्ट कहेंगे >। यदि हम तिस तुम करके पूछी हुई वस्तुको जानते होंगे तब तुम्हारे पूछेहुये वस्तुओं को स्पष्ट कहेंगे [यहां ,यदि, शब्दका पर्यायरूप जो ' जब ' शब्द है सो आचार्य की निरभिमानता के लखावने के अर्थ है कुछ अज्ञान और संशयके अर्थ नहीं । यह सर्व प्रश्नोंके निर्णयते बोधित है] ॥ २ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार पिप्पलाद मुनि की आज्ञानुसार कौशल्य आदि छहों मुनियों ने ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक निवास किया ऽ ' अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ' < एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्ष पीछे कात्यायनका प्रपौत्र कबन्धी समीपजायके पूछता
अर्थात् ऽ जब एकवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य कररहे तब तिसके प
कात्यायन ऋषिका प्रपौत्र (परपोता) कबन्धी नामवाला
अपने आचार्य पिप्पलाद मुनि तिनके समीप जाय प्रणा
प्रश्न करताभया जो ऽ 'भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजा
इति' ८ हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध प्रजा किसकारण से उपजे
ऽ हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध ब्राह्मणादि प्रजा किसकारणसे उ
हैं ऽ ॥ प्रश्न ॥ [वे छहों मुनीश्वर परब्रह्म के जानने की
सावान् हुये पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीपगये इसप्र
आरम्भ कियेहुये इस परब्रह्मकी जिज्ञासाके प्रकरण बिषे प्र
तिकृत प्रजा की सृष्टिको विषयकरनेवाले प्रश्न और उत्त
कथन असंगत है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ! यह शंका चित्तमें
के ही प्रश्न उत्तर रूप श्रुतिका तात्पर्य कहते हैं यहां यह भा
कि 'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इति' ८ तिसको यह निर्मल
लोक होता है) इस प्रकार उपासना के समुच्चय करके युक्त
के कार्य ब्रह्मलोक को और 'अथोत्तरेण इति' ८ अब उत्त
से) इस प्रकार जिस ब्रह्मलोक की गतिरूप देवयान मार्ग
आगे इसही प्रथम प्रश्न बिषे कथन किया होनेसे यह अर्थ क
है। और यह उपासना करके युक्त जो कर्मका कथन है सो केवल
का उपलक्षण है, इसप्रकार भी जानना क्योंकि केवल कर्म के
इन्द्रलोकको और तिस इन्द्रलोक की गतिरूप पितृयानमार्ग
भी 'तेषामेवैषब्रह्मलोकः' तिनकोही यह ब्रह्मलोक (चन्द्रमंडल
इन्द्रलोक) होता है । और 'प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिप
इति' ८ प्रजाकी कामनावाले दक्षिणायन मार्गको पावते हैं
प्रकार आगे इसप्रथम प्रश्नबिषेही कथन किया होनेसे ॥
यद्यपि परब्रह्म की जिज्ञासाके अवसर बिषे यह कथन भी अस
ही है तथापि केवल कर्मके कार्यसे और उपासनारूप कर्मके
से जो विरक्त है तिसकोही तहां अधिकार है एतदर्थ तिसकर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिञ्च प्राणश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥ ४ ॥

सनाके फलसे वैराग्यार्थ यह कहतेहैं। यद्यपि प्रश्नसे सृष्टि प्रतीत होती है तथापि तिस सृष्टिके कथन बिषे प्रयोजनके अभावसे सृष्टिके कथनके मिस (बहाना) करके परब्रह्मकी विद्याका फल ही यहां कहते हैं] एतदर्थ मिश्रित और अमिश्रितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या और कर्म यह दो हैं तिनका जो कार्य है और जो गतिहै सो आपकरके कहने योग्यहै ॥ तिस अर्थवाला यह प्रश्नहै ऐसा जानना योग्यहै ॥ ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब कबन्धीमुनिने सृष्टिके विषयमें अपने आचार्य पिप्पलादमुनिसे प्रश्न किया तब ' तस्मै सहोवाच ' < तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहते भये > उस प्रश्न करनेवाले कबन्धीनाम मुनिको सो सर्व्वज्ञ आचार्य पिप्पलादमुनि शिष्य की शंकाके निवारणार्थ कहते भये ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कबन्धिन् ' प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत ' < प्रजापति (ब्रह्मा) सो प्रजाकरनेकी कामनावाला हुआ तपको तपता भया > अपनी प्रजाको सृजनेकी कामनावाला प्रजापति ब्रह्मदेव सो मैं सर्वात्मा और जगत् को मैं सृजों ऐसे ज्ञानवाला और ज्ञान कर्म के समुच्चयको करनेवाला और पूर्वकल्पसम्बन्धी हिरण्यगर्भकी भावनाकरके युक्त और इस कल्पकी आदिबिषे हिरण्यगर्भरूपसे सुखको प्राप्तभया और अपनी सृजीहुई स्थावर जंगमरूप प्रजाकापति हुआ पश्चात् प्रजाकी कामनावाला हुआ और जन्मान्तरबिषे भावनाकिये और श्रुतिबिषे प्रकाशितकिये अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानरूप तपको ' तस्य ज्ञानमयं तपः ' तपता भया, अर्थात् चित्तादिकोंसे तिसके संस्कारको जगायके उत्पन्न करता भया अर्थात् [तहां प्रथम सूर्य और चन्द्रमाकी उत्पत्तिसे तिनके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावको पायके तिसके पश्चात् चन्द्रमा और सूर्य इन दोनों के
साधने योग्य जो संवत्सर तिससंवत्सरके भावको पायके पश्च
ऐसेही तिससंवत्सरके अवयवरूप दक्षिण और उत्तर दोअयन
मास पक्ष दिन रात्रि इनके भावको पायके तिसके पश्चात् अ
आदिकों के क्रमसे साधने योग्य व्रीही यवादि अन्न भावको
रेतभावको पायके पश्चात् तिस रेत से प्रजाको उत्पन्नकरों
विचारके] ' स तपस्तप्त्वा ' < सो तपको तपिके > < सो प्र
पति उक्तप्रकार श्रुति उक्त अर्थके ज्ञानरूप तपको तपिके आ
विचारके > ' समिथुनमुत्पादयन्ते रयिञ्च प्राणञ्चेति ' < सो
और प्राण इन दोनों को उत्पन्न करताभया > < प्रजा
सृष्टिके साधन रूप ' रयि ' < अर्थात् [यहां धनके वाची
शब्द करके भोज्य पदार्थों के समूह को लक्ष कराके और
भोज्य पदार्थों को चन्द्रमा के किरणों के अमृतकरके युक्त हों
तिसद्वारा चन्द्रमा को लक्ष्य करते हैं इस अभिप्रायसे कहते
अन्नरूप चन्द्रमा और अन्नके भोक्ता प्राण [अर्थात् 'अहं वैश्वा
भूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तोपचाम्यन्नं
विधम् ' < मैं वैश्वानर (जठराग्नि) रूप होके प्राणियों के
प्रति आश्रयको पाया हौं और प्राण अपान वायु करके युक्त हु
चार प्रकारके अन्नको पचावता हौं > इस गीता स्मृति के वा
प्रमाणसे अग्निको प्राणके सम्बन्ध से प्राण शब्द करके
अग्निरूप भोक्ताही लक्ष्य कराया है इस अभिप्रायसे यहां कहते
अर्थात् प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इन दोनों को उत्पन्न क
भया ॥ प्र० ॥ क्या विचार के करता भया ॥ उ० ॥ हे सौम्य
विचारके कि ' एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ' < यह दो
मेरी बहुत प्रकार की प्रजा करेंगे ऐसे > अर्थात् यह दोनों
(चन्द्रमा) और तिसका भोक्ता अग्नि (सूर्य) सो मेरी इ
के अनुसार अनेकप्रकार की, प्रजाको करेंगे ऐसे चिन्तनक
ब्रह्मांड की < अर्थात् [अग्नि (सूर्य) और अन्न (चन्द्रम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा। रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्तञ्च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

को ब्रह्मांडके अन्तर्गत होने करके ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर उनकी उत्पत्ति होती है इस अभिप्रायसे यहां कहते हैं] > उत्पत्ति के क्रमसे सूर्य और चन्द्रमा को प्रजापति सृजता भया ४ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! तिन दोनों में 'आदित्यो हवै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा' < सूर्य्य निश्चय करके प्रसिद्ध प्राण (और) अन्नही चन्द्रमा है > अर्थात् प्रजापति से ब्रह्माण्डान्तर्गत प्रकट किये जे सूर्य और चन्द्र तिन दोनों में सूर्य्य जोहै सो निश्चय करके लोकमें प्रसिद्ध प्राणरूपहुआ अन्नका भोक्ता अग्निहै और निश्चय करके अन्नरूप चन्द्रमा है। परन्तु यह एक भोक्ता रूप और एक अन्नभोग्यरूप सो दोनों एकही प्रजापति हैं॥ प्र० ॥ चन्द्र और सूर्य्य इन दोनों की जब प्रजापतिभाव से एकता है तब एकको भोक्तापना और दूसरे को भोग्यपना यह विषमभेद कैसे बनेगा॥ उ० ॥ यह जो एकही प्रजापति के बिषे भोग्य भोक्तारूप विषम भेद है सो गौण मुख्यभावका किया है। अर्थात् [तिस एकही प्रजापतिको ६ क्रियाशक्तिके आश्रय गौणभाव कहनेकी इच्छा से अन्न (भोग्य) पना है और 'ज्ञानशक्तिकेआश्रय' प्रधानभाव के कहनेकी इच्छासे भोक्तापना है यह भेद है] प्र० ॥ यह भेद कैसे है ॥ उ० ॥ 'रयिर्वाएतत्सर्व्वंयन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चतस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५' < जो मूर्त्त और अमूर्त्त है सो सर्व्व यह अन्नही है > अर्थात् जो स्थूल और सूक्ष्मरूप मूर्त्त और अमूर्त्त जगत् है सो सर्व यह अन्न (भोग्य) रूपही है॥ प्र० ॥ मूर्त्तरूप अन्न और अमूर्त्तरूप भोक्ता इन दोनोंको भी जब अन्नमयता (चन्द्ररूपता) ही है तब 'रयिरेव चन्द्रमा' < अन्नही चन्द्रमा है > ऐसा जो पूर्व वेद ने कहा सो कैसे बनेगा॥ उ० ॥ हे सौम्य! जब मूर्त्त (अन्न) और अमूर्त्त (भोक्ता) यह दोनों विभागकरके गौण और प्रधान भावसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यद्दक्षिणं यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो यत्सर्व्वं प्रकाशयति तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

कहने को इच्छितहोय तब अमूर्त्तरूप (भोक्ता) प्राणसे मूर्त्त (भोग्य) द्रव्यको भुक्त होनेसे मूर्त्तकोही अन्नपना है ताते पू किये अमूर्त्तसे जो अन्न मूर्त्त (स्थूल) मूर्त्तिहै सोई अन्नरू क्योंकि अमूर्त्त सूक्ष्मप्राणरूप भोक्ताकरके भोगाहुआहै ताते

६ ॥ हे सौम्य ! ताते अमूर्त्तभी प्राण भोक्ता जो अन्न है सर्वरूपही है ॥ प्र० ॥ कैसे सो सर्वरूपही है ॥ उ० ॥ 'अथा त्य उदयन्यत्प्राचींदिशंप्रविशति' < अब सूर्य्य उदयहुआ पूर्वदिशा के अर्थ प्रवेश करताहै > तिसकरके उस पूर्वदिशाको पने प्रकाशकरके व्याप्तकरता है 'तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मि सन्निधत्ते' < तिससे पूर्वदिशाके अन्तर्गत प्राणिनकेताईं किर बिषे प्रवेशकरता है > तिस अपनी व्याप्तिसे पूर्वदिशाके अन्त सर्व प्राणधारियों को अपने प्रकाशरूप व्यापक किरणोंबिषे प्र होनेसे प्रवेशकरता है । अर्थात् अपनारूप करता है । तैसेही 'य क्षिणंयत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो' < दक्षिणदिशाके अर्थ, जो पश्चिम दिशाके अर्थ, जो उत्तरदिश अर्थ, जो अधो, जो ऊर्ध्व, जो बीचकी दिशाके अर्थ, > जो दिशाके अर्थ प्रवेश करता है सो तैसेही दक्षिण पश्चिम उ नीचे ऊपर मध्यकी अर्थात् अग्नि ईशानादि कोणकी दिशा के अर्थ प्रवेश करता है । और 'यत्सर्व्वं प्रकाशयति' < जो को प्रकाशता है > जो अन्य सर्व जगत्को प्रकाशता है । 'तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते' < तिससे सर्व प्राणि को किरणों बिषे प्रवेश करता है > < तिस अपने प्रकाशकी व्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥ ८ ॥

से सर्वदिशाबिषे स्थित सर्व प्राणियोंको किरणोंबिषे प्रवेशकरता वा धारता है ६ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! 'स एष वैश्वानरो विश्वरूपः' < सो यह वैश्वानर विश्वरूपहै > अर्थात् सो यह भोक्ता प्राणवैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है । और 'प्राणोऽग्निरुदयते' < प्राण और अग्निरूप उदय होताहै > ऽ जो वैश्वानर विश्वरूप है सो विश्व का आत्माहोने से प्राण और अग्निरूपहै और सोई भोक्ता दिन दिनबिषे सर्वदिशाको अपनारूप अर्थात् प्रकाशरूप करताहुआ उदय होताहै । और 'तदेतदृचाभ्युक्तम् ७' < सो यह ऋचाने भी कहा है > सो यह कथनीय वस्तु आगे के अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचाने भी कहाहै ७ ॥

८ ॥ हे सौम्य ! 'विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्' < सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् आश्रयज्योति अद्वितीय एक तापके करनेवाले > अर्थात् सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् सर्वप्राणका आश्रय और सो सर्वप्राणियों का चक्षुरूप ज्योति अद्वैत और तापक्रियाके करनेवाले अपने आत्मरूप सूर्य को ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये ॥ प्र० ॥ कौन यह है जिसको ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये ॥ उ० ॥ 'सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः' < अनेक किरणोंवाला और अनेक प्रकारकरके वर्त्तमान > अर्थात् अनेक प्रकार प्राणियों के भेदकरके वर्त्ताहुआ । औरऽ 'प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः' < प्रजाओंके मध्यउदितहोता है यह सूर्य्य है > ऽ प्रजा (प्राणधारि) यों के मध्य चैतन्यरूपत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च तद्येवै तदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते । तएव पुनरावर्त्तन्ते तस्मादेतेऋषयःप्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते एषहवै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

करके उदित (प्रकट) होता है तिसको ब्रह्मवेत्ता पंडित यह सूर्य्य है ऐसा तिसको जानते भये ८ ॥

९ ॥ हे सौम्य ! जो यह अन्नरूप मूर्त्तिमय चन्द्रमा है और अन्न का भोक्ता अमूर्त्तमय प्राणरूप सूर्य्य है सो यह एकही जोड़ा सर्व रूप है । और यह दोनों मेरी बहुत से प्रकारकी प्रजाको करेंगे ॥ प्र० ॥ कैसे करेंगे ॥ उ० ॥ चन्द्रमारूप अन्न और सूर्य्यरूप प्राण को संवत्सर आदिक द्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्तृत्वपनाहै सोई यहां वेद भगवान् कहते हैं ' संवत्सरो वै प्रजापतिः ' ८ संवत्सर ही प्रजापति है > अर्थात् संवत्सररूप जो काल है सोई प्रजापति है । क्योंकि संवत्सर को तिस प्रजापतिकरके निर्वाह किया है ताते और जिसकरके चन्द्रमा और सूर्य्य इन दोनों से निर्वाह करनेयोग्य जो तिथि दिवस रात्रियोंका समुदायरूप जे संवत्सर हैं सो उन चन्द्र और सूर्य्य से अपृथक् होनेसे सोई रूप है । तिसकरके सो संवत्सर भी वो युगलरूपही है । ऐसे यहां कहते हैं ' तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च ' ८ तिसके दक्षिण और उत्तर रूप दो अयन (मार्ग) हैं > अर्थात् तिससंवत्सररूप प्रजापतिके दक्षिण और उत्तर यह दोनों प्रसिद्ध छः छः मासरूप अयन (मार्ग) हैं और जिस दक्षिण और उत्तर मार्ग करके सूर्य जो है सो क्रम से केवल कर्मिष्ठ और उपासना करके युक्त कर्मकरनेवाले जनों के पावने योग्य लोक को पावन करता हुआ जाता है ॥ प्र० ॥ सो कैसे है ॥ उ० ॥ ' तद्ये वै तदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते ' ८ जो ऐसे निश्चयकर तिस इष्ट और पूर्त्तरूप कृत (कर्म) को उपासतेहैं > । अर्थात् केवलकर्मी और कर्म उपासनाके समुच्चय सेवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करनेवाले जनहैं तिनमें ब्राह्मणादिकों बिषे जो जन इसप्रकार निश्चय करके तिन इष्ट और पूर्त्त अर्थात् [अग्निहोत्र तप, (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) सत्यभाषण देवतोंका आराधन अतिथि-पूजन और वैश्वदेवरूप जो कर्म हैं तिनको अथवा पंचयज्ञरूप नित्यकर्मको इष्टा कहते हैं और वापी, कूप, तड़ाग, और देवालय, अन्नदान, और देवताओं के निमित्त आरामादिक बनवावने, इत्यादि जो कर्म हैं सो पूर्त्त हैं] इत्यादि जे कर्म हैं तिसको ही उपासंते (यथाविधि करते) हैं अकृत (नहीं करने योग्य) तिसको नहीं ' ते चान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते ' ८ सो चन्द्रमा बिषे भये लोककोही पावते हैं ९ अर्थात् जो पुरुष निषिद्ध कर्मों को त्याग के इष्टापूर्तारूप कर्म को उपासते हैं सो चन्द्रमण्डल बिषे उभय रूप प्रजापतिके अंशमय भोज्य (अन्न) रूप लोकों कोही पावते हैं क्योंकि चन्द्रमाबिषे भये लोकोंको कर्मरूपत्व होनेसे। और ' तएव पुनरावर्त्तन्ते ' ८ सो पुनः आवृत्ति होते हैं ९ अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादिकर्मकरके चन्द्रलोकको पावते हैं सोई पुरुष अपने पुण्यकर्मोंका भोगोंद्वारा क्षयहोनेसे पुनः जन्म मरणरूप आवृत्तिकोही पावते हैं उनका आवागमन नहीं छूटता ' तस्मादेतेऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते ' ८ ताते यह ऋषि और प्रजाकामा दक्षिणायन से पावते हैं ९ अर्थात् चन्द्र-लोकको प्राप्त भये पुनः इस लोकबिषे आवते हैं ताते यह स्वर्ग के द्रष्टा अर्थात् चन्द्रलोकके द्रष्टा क्योंकि चन्द्रलोक कोभी स्वर्गत्व है। ऋषि और प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ सो कहे प्रकार अन्नमय प्रजापतिरूप चन्द्रमाको कर्मोंका फलरूप होने करके इष्ट और पूर्त्तरूप कर्मसे निर्वाह करते हैं। एतदर्थ अपने पुण्यकर्म रूपही दक्षिणायन मार्ग से उपलक्षित (लखायेहुये) चन्द्रलोक को पावते हैं और ' एष हवै रयिर्यःपितृयाणः ९ ' ८ यह पितृयान निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्न है ९ अर्थात् यह जो पितृयान करके लक्षित चन्द्रमाहै सो निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्नही है ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययात्मान्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्त इत्येनिरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

१० ॥ हे सौम्य ! ' अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्यया ' ८ अब उत्तरमार्गकरके तपकरके ब्रह्मचर्यकरके श्रद्धाकरके विद्याकरके ? अर्थात् दक्षिणायनसे इतर जो उत्तरायणमार्ग तिसविषे जो चलनेवाले पुरुष हैं सो तप (प्राणायामादि) करके और शमदमादि लक्षणरूप ब्रह्मचर्यकरके, और विश्वास लक्षणरूप श्रद्धाकरके और विद्याकरके, अर्थात् प्रजापतिके तादात्म्य विषयकरनेवाली अहमग्रे उपासना तिसकरके ' आत्मानमान्विष्यादित्यमभिजयन्ते ' ८ आत्माको जानके आदित्य को पावते हैं अर्थात् समस्त स्थावर जंगम के आत्मा और प्राणरूप सूर्य्यको 'अहमस्मि' भावसे जानके प्राणमय सर्व्वअन्नके भोक्ता सूर्य्यलोकको पावता है ' एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणं ' ८ यहही प्राणोंका आश्रयहै (और) यहही अविनाशी (और) यहही अभयहै (और) यहही परमगतिहै ? अर्थात् यहही जगदात्मा सूर्य सर्व प्राणों का समष्टिरूप आश्रय है और यहही अविनाशी है ताहीते भयरहित अभयहै यह चन्द्रवत् वृद्धिक्षयके भयवाला नहीं । और यह केवल उपासनावाले अथवा पञ्चाग्निविद्या और वैश्वानर आदि विद्याकी रीतिसे अथवा प्राण सूर्य्य आदिकोंकी अहमग्रे उपासना करनेवाले और कर्म उपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले पुरुषोंकी परमगतिहै क्योंकि ' एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते ' ८ इससे पुनरावृत्तिको पावते नहीं अर्थात् जैसे उपासनासे रहित केवल कर्मकरनेवाले पुरुष चन्द्रलोक को पायके फेर इस लोक बिषे आवते हैं, तैसे उपासना करनेवाले किंवा समुच्चय के करनेवाले सूर्य्यलोक को पाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् ॥ अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥

पुनरावृत्ति को पावते नहीं । और 'इत्येष निरोधः' < ऐसे यह निरोध है > अर्थात् तिस उपासना से रहित होने करके सूर्य्य (उत्तरायण) से रोके हुये केवल कर्म करनेवाले अविद्वान् पुरुष आत्मा और प्राणमय संवत्सररूप सूर्य्यको पावते नहीं ताते इस प्रकार सोई यह संवत्सर अविद्वानों का अनावृत्ति में निरोध है। और 'तदेषः श्लोकः' < तिस बिषे यह श्लोक है > अर्थात् इस कहेहुये अर्थ बिषे यह अग्रिम एकादशवां वाक्यमय श्लोकरूप वेदका मन्त्र प्रमाण है ॥ १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! 'पञ्चपादं' < पञ्चपाद हैं >। अर्थात् इस संवत्सररूप सूर्य्यके पांचऋतु पादों (चरणों) वत् पांचपादहैं [दो दो मासके ऋतु यद्यपि छः हैं तथापि यहां जो श्रुतिने पांचऋतु कही है सो हेमन्त और शिशिरकी एकरूपता होनेसे कहीहै] तिन ऋतु-रूप पांचपादों करके यह सूर्य्य 'जैसे चरणोंसे पुरुष' तैसे वर्त्ततहै ताते इसको पांचपादवाला कहते हैं। और 'पितरं' < पिता है > जिसको पांचपादवाला कहते हैं तिस संवत्सररूप सूर्य्य को अन्नादि सर्व्वका जनकपना होनेसे इसको पितर कहते हैं। और 'द्वादशाकृतिं' < बारह अवयववाला है > जो पंचपादवाला सर्वका पिता संवत्सररूप सूर्य्य है तिसके द्वादशमासात्मक षट् ऋतुरूप अवयव हैं ताते इसको द्वादशाकृति कहतेहैं अथवा द्वाद-शमासों करके इस संवत्सररूप सूर्य्य अवयवी भावका करता होता है एतदर्थ द्वादशमासमय षट्ऋतुरूप इसके अवयवभाव में करनाहै ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं। और ८'परेअर्द्धे पुरी-षिणम्' < पर ऊंचे स्थानबिषे जलवालाहै >> आकाशरूप अन्त-रिक्षलोक से पर और ऊंचेस्थान तीसरे स्वर्ग बिषे स्थितहै ताते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसको परे अर्द्धे करके कहाहै और जलवाला है । अर्थात् 'आदि त्याज्जायते वृष्टिः' इस स्मृतिके प्रमाण से । और सूर्य जब क तपता है तब जलको वर्षता है यह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण है त सूर्य्य जलवाला है ऐसे कालके वेत्ता कहतेहैं । और 'अथेमे अ उपरे विचक्षणं' < और यह अन्यतो तिस निपुण (सर्वज्ञ) को 'सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति' < सातचक्र बिषे अर्पित ऐसा कहते हैं > अर्थात् सात अश्वरूप अथवा < सप्तग्रह अश्व (क्योंकि सूर्यकेसाथ भ्रमणकरनेवाले होने से) > और ऋतुवाले द्वादशमास इस निरन्तर गतिवाले कालरूप चक्रमें 'जैसे रथकी नाभिबिषे अरा अर्पित होते हैं तैसे' यह सर्व जग अर्पितहै ऐसा कहते हैं ॥ हे सौम्य ! जब संवत्सररूप सूर्य प्रथ पक्षबिषे पांचपाद और द्वादश आकृतिवाला है और जब दू पक्षबिषे सप्त अश्वरूप और षट्ऋतुवाला ऐसा कहा है [तहां भावहै कि प्रथम पक्षबिषे ऋतुओं के पादपनेकी कल्पना और द्वादशमासोंके अवयवपनेकी कल्पना से सूर्य्यरूपकरके सं त्सररूप कालात्माही कहा । और दूसरे पक्षबिषे हेमन्त और शिशिर इन दोनों ऋतुको (कि जिनको पंचपादनके वर्ण में एकरूप कहा है) भिन्न करके षट् ऋतुओं को रथच गत अनेक वक्रकाष्ठरूप अरेपने की कल्पना से संवत्सर चक्रवत् भ्रमणरूप गुणके योगसे चक्रपनेकी कल्पना करके औ कालके मुख्यभावसे सर्वका आश्रय होनेकरके भी सोई संवत्स रूप कालही कहा है । ताते इन कहेहुये दोनों पक्षमें जो भेद सो भी गुणोंके और कल्पनाके भेदसे भेदहै कुछ कालरूप धर्मीमें भेदनहीं] एतदर्थ सर्वप्रकारसे संवत्सरमय कालरूप और चक्र सूर्य्यरूप हुआ भी प्रजापतिही जगत्का कारण है ॥ ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! जिस संवत्सरबिषे यह विश्व स्थितहै । अ र्थात् < [संवत्सरको भी मास और दिनरात्रिरूप अवयवोंवाल हुये विना ओषधी आदिकोंकी जनकताका अभावहै और पूर्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्व्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥

को पिता करके कहा है ताते अब उस संवत्सरकी मास आदिक रूपताको कहते हैं] > सोई अर्थात् जो मासादि अवयवोंवाला ओषधीका पिता संवत्सर नामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासोंविषे समस्त पूर्ण होताहै। ताते < 'मासो वै प्रजापतिः' < मासही प्रजापतिहै > > मासजो है सो अन्न और अन्नका भोक्ता इन उभयरूपवाला 'संवत्सररूपवाला' प्रजापतिही है < 'तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः' < तिसका कृष्णपक्षही अन्नहै > > अर्थात् भोग्य भोक्ता उभयरूपवाला जो मासहै तिस मासरूप प्रजापतिका एकभाग जो कृष्णपक्षहै सोई अन्नरूप चन्द्रमाहै। और < 'शुक्लः प्राणः' < शुक्लपक्ष प्राणहै > > अर्थात् कृष्णपक्षसे इतर दूसरा भाग जो शुक्लपक्षहै सो प्राण और अग्निमय भोक्ता सूर्य है 'तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्व्वन्ति' < ताते यह ऋषिलोग यज्ञको शुक्लपक्षविषे करते हैं एतदर्थ > जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणको सूर्य्यरूपही देखतेहैं और जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणसे भिन्न जो कृष्णपक्षरूप अन्न है तिसको वे नहीं देखते। ताते ऐसे देखनेवाले जे ऋषिलोग हैं सो अपने इष्टयज्ञको कृष्णपक्षविषे करतेहुये भी शुक्लपक्षविषेही करतेहैं। और < 'इतर इतरस्मिन्' < इतर इतरविषे करते हैं > < प्राणके द्रष्टासे जे अन्य ऋषिलोग हैं सो तो शुक्लपक्षको सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं किंतु प्राणरूपसे न देखनेरूप कृष्णपक्षके भावको प्राप्तभये कृष्णपक्षकोही देखते हैं वे ऋषि अपने इष्टयज्ञको शुक्लपक्षविषे करतेहुये भी तिससे अन्य कृष्णपक्षविषेही करते हैं ॥ १२ ॥

१३ ॥ हे सौम्य ! बारहवें मन्त्रसे कहाजो मासरूप प्रजापति सो भी अपने अवयवरूप दिन और रात्रि विषेही पूर्ण होताहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रि रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्य ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

एतदर्थ सो 'अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रि रयिः' < दिनरात्रि निश्चय प्रजापति है तिसका दिवसही प्रा (और) रात्रिही अन्न है > अर्थात् दिनरात्रिरूप जो एक प्र पति है तिसका भी दिवसहै । सोई प्राण और अग्निरूप अन्न भोक्ता सूर्य्यहै और रात्रि जो है सोई अन्नरूप भोग्य चन्द्रमा और < 'प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते < जो दिवसमें मैथुनको करते हैं सो दिवसरूप प्राणको खोव हैं > > जो पुरुष अपनी अविवेकताके वशभये दिवसमें प्रीति कारण स्त्री तिसके साथ मैथुनकर्म को करते हैं सो पुरुष दिव रूप प्राणको खोवते हैं । हे सौम्य ! जब यह ऐसेहै तब दिन मैथुनकर्म करने योग्य नहीं । इसप्रकार जो दिवसमें मैथुन निषेध कहाहै सो प्रासंगिकै कहाहै । और < 'ब्रह्मचर्य्यमेव त द्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते' < जो रात्रिबिषे मैथुनको करते हैं ब्रह्मचर्य्यही हैं > > जो विवेकी पुरुषहैं सो ऋतुकालमें भी रा के समयही अपनी स्त्रीके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो उन ब्रह्मचर्य्यही है । सो श्रेष्ठहै ताते ऋतुकालमें रात्रिबिषेही स्त्री संयोग करने योग्यहै । हे सौम्य ! यह ऋतुगमनकी विधि जो क है सो भी प्रासंगिकही कही है । अब जो प्रसंग पूर्वसे चला तिसको श्रवण करो यह जो दिवस रात्रिरूप प्रजापति कहा सो व्रीहि (धान्य) यवादि अन्नरूपसे स्थित भया है ॥ १३

१४ ॥ हे सौम्य ! इस कहे प्रकार क्रमकरके दिनरात्रि प्रजापति अन्नबिषे परिसमाप्त होता है एतदर्थ 'अन्नं वै प्र पतिः' < अन्नभी प्रजापति है > ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तिस अन्न प्रजोत्पादनपना कैसे है ॥ उ० ॥ 'ततो ह वै तद्रेतः' < त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥

प्रसिद्धही रेत होता है > अर्थात् भोजन किया जो अन्नहै तिस अन्नसे सर्वलोक विख्यात मनुष्यका बीजरूप रेत (वीर्य) होता है < [यहां पुरुषके वीर्यका वाची रेत शब्द है सो स्त्री के रजरूप शोणित के भी ग्रहणार्थ में है । क्योंकि वीर्यरूपता करके दोनों को तुल्यत्व है ताते] > सो प्रजाका कारण है < ' तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ' < तिससे यह प्रजा उत्पन्न होती है > > अर्थात् तिस अन्नके परिणाम रेतसे यह मनुष्यादि प्रजा भलीप्रकारसे उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥ हे सौम्य ! हे कबन्धिन् ! तैंने जो प्रश्न कियाथा कि ' कुतोह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते ' < किससे यह प्रजा उत्पन्न होती है > सो उक्तप्रकार दिनरात्रिपर्यन्त चन्द्रसूर्य्य रूप दोनों आदिकके क्रमसे अन्नरूप रेतद्वारा सर्वप्रजा उपजे हैं ऐसा श्रुतिने निर्णय किया ॥ १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य ! जब श्रुतिके सिद्धान्त से उक्तप्रकार है तब ' तद्येह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ' < जो प्रसिद्ध तिस प्रजापतिके व्रतको करता है > । अर्थात् श्रुति सिद्धान्तप्रमाण जो प्रसिद्ध गृहस्थ है सो तिस ऋतुकालबिषे कि , श्रुतिशास्त्राचार्योंने नियम किया है, स्त्रीसहगमनरूप प्रजापति नामक व्रत तिसको करते हैं < ' ते मिथुनमुत्पादयन्ते ' < सो दोको उपजावते हैं > > अर्थात् जो पुरुष उक्तलक्षणवाले प्रजापति के व्रतको करते हैं सो पुत्रको पुत्रीरूप जोड़ेको उपजावते हैं । यह उनको अदृष्टफल है और चन्द्रमण्डलरूप ब्रह्मलोक उनको अदृष्टफलहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! जब केवल ऋतुकालमें भार्यागमनरूप प्रजापति व्रत के आचरणमात्रसेही चन्द्रमण्डलरूप अदृष्ट फलकी प्राप्ति होती है तब इस व्रतवाले जो मूर्ख पुरुष हैं कि जो तपादिक नहीं जानते तिनकोभी उक्तफलकी प्राप्ति होगी ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! तपादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्येह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादय-न्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

साधन रहित केवल यथाविधि ऋतुकाल में भार्यागमन मात्र प्रजापतिव्रत के करने से चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं किन्तु ' तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ' < जिनको तप ब्रह्मचर्य्य है और जिनबिषे सत्य वर्त्तता है तिनकोही यह ब्रह्मलोक है > अर्थात् जिन पुरुषों को कृच्छ्रादि तप, बारहवर्षतक पढ़ेहुये वेदकी समाप्तिरूप स्नातक व्रतादि और ऋतुकाल बिषे और अन्यकालबिषे मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य्य है । और जिनबिषे मिथ्याभाषणका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारतासे वर्त्तता है । अर्थात् जो गृहस्थ पुरुष यथासमय कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तपको करते हैं और परस्त्रीगमन के त्यागपूर्वक केवल ऋतुकालमेंही स्वभार्या गमनरूप ब्रह्मचर्यको करते हैं और जिनबिषे असत्य भाषण का त्यागरूप सत्य निरन्तर वर्त्तता है । ऐसे जे इष्टापूर्त्तादि धर्माचरण पूर्वक प्रजापतिव्रतरूप दक्षिणायन मार्गके चलनेवाले पुरुषहैं तिनहीं को यह चन्द्रमण्डलबिषे पितृयाणरूप ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अदृष्टफल हैं ॥ १५ ॥

१६ ॥ हे सौम्य ! अब और श्रवण करो जो शुद्धहै अर्थात् चन्द्रमा के ब्रह्मलोकवत् मलरहित और वृद्धिक्षयादिक दोषकरके युक्त नहीं और सूर्यकरके उपलक्षित उत्तराणयरूप प्राणका आत्मभाव, अर्थात् सो सर्वका भोक्ता प्रजापति प्राण मैं हौं ऐसा भाव है यह तिनका है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! यह किनका है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! ' न येषु जिह्ममनृतं न माया च ' < जिन बिषे कुटिल भाव और असत्य नहीं पुनः माया नहीं > अर्थात् जैसे गृहस्थ पुरुषोंको अनेक विरुद्ध व्यवहारिक प्रयोजनवाला होनेसे कुटिल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतः प्रथमप्रश्नः ॥ १ ॥

भाव अवश्य होता है तैसे जिनपुरुषों बिषे कुटिलभाव नहीं। और जैसे गृहस्थ पुरुषको क्रीड़ा (रमण) हास्यादि व्यवहारके समय असत्यभाषण निषेध करनेयोग्य नहीं। तैसे जिनपुरुषों बिषे क्रीड़ाआदिक व्यवहार के अभावसे सो तन्निमित्तक असत्य भी नहीं और जिनपुषों बिषे गृहस्थोंवत् माया अर्थात् कपट अथवा असत्यादि दोषोंवत् अन्य दोष नहीं। हे सौम्य! इसप्रकार जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासीरूप ८[यहां संन्यासीपद करके परमहंसों से इतर जे कुटीचक बहूदकादि हैं तिन्हों का ग्रहण है क्योंकि उन परमहंसोंको ब्रह्मलोकसे भी अशेष वैराग्य है ताते]> अधिकारियों बिषे क्रीड़ादि निमित्तों के अभाव से असत्यादि दोष नहीं ८ 'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको' ८ तिन का यह निर्मल ब्रह्मलोक है >> अर्थात् जिनपुरुषोंमें क्रीड़ादि निमित्तके अभावसे असत्यादि दोषोंका भी अभाव है तिनपुरुषों का निर्मल साधनोंके अनुसार यह रजतमादि दोषरहित निर्मल ब्रह्मलोकहै 'इति' ८ ऐसी > यह प्राणादिकोंकी उपासनासहित इष्टापूर्त्तादि कर्म करनेवालेकी उत्तरायणरूप गतिहै और पूर्वकहा जो चन्द्रलोकरूपी ब्रह्मलोककी प्राप्ति सो केवल कर्मके करने वाले जनोंकी दक्षिणायन गति है ॥ १६ ॥

प्रश्नोपनिषद्के प्रथमप्रश्न की भाषाटीका समाप्त हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रश्नोपनिषद्गतोद्वितीयप्रश्नः ।

ॐ अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भगवन्
कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते
कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ । १७ ॥

प्रश्नोपनिषद्के द्वितीय प्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ ।

हे सौम्य ! [अब यहांसे अन्य द्वितीय और तृतीय इन दो प्रश्नोंके कहेहुये प्रथम प्रश्नसे जो सम्बन्धहै सोकहते हैं । प्रथमप्रश्न बिषे प्राणको भोक्ता और प्रजापति कहाहै तहां प्राणको जे श्रेष्ठपना भोक्तापना प्रजापतित्वपना कहाहै तिन आदिगुणोंके निर्धारणार्थ यह द्वितीय प्रश्नहै क्योंकि ' अत्ता विश्वस्य सत्पतिः ' < भोक्ता जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पति है > ऐसा इस द्वितीय प्रश्नके ११ वें वाक्यसे कहा है और ' एषोऽग्निस्तपति ' < यह अग्निरूप हुआ तपताहै > यह इस द्वितीय प्रश्नके पांचवें वाक्यसे आरंभ करके ' अराइव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितं ' < रथकी नाभि बिषे अराओंवत् प्राणबिषे सर्व यह स्थित है > इस षष्ठवाक्यसे और ' प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ' < प्रजापतिरूप तूही गर्भबिषे विचरताहै और माता पिताके तुल्यहुआ जन्मता है > इस सप्तमवाक्यसे प्राणको प्रजापति आदि प्रतिपादन किया है ताते प्राणका प्रजापतित्वपना और अन्नका भोक्तापना निश्चय करने योग्यही है । और यह प्रजापतिपनेका और भोक्तापनेका जो कथन है सो प्राणके अन्य गुणोंका उपलक्षणहै । यहां यह भाव है कि प्रथम प्रश्नविषे कहीगई जे कर्म उपासनाकी गति तिसके श्रवणसे वैराग्यशीलभये पुरुषकोभी चित्तकी एकाग्रता (वृत्तियों का निरोध) भये बिना आगे आत्मतत्त्वके श्रवणकी असिद्धताहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताते उन पुरुषों के अर्थ प्राणकी उपासना के लिये अब द्वितीय और तृतीय इन दोनों प्रश्नोंका आरंभहै। तिनमें भी प्राणकेज्येष्ठ-श्रेष्ठत्वपने और भोक्तापनेके और प्रजापति आदि गुणों के निर्णयार्थ द्वितीयप्रश्नहै। और तिस प्राणकी उत्पत्त्यादिकों के निर्णय पूर्वकतिसकीउपासनाके विधानार्थ तृतीयप्रश्नहै यहभी जानना]॥

१॥ हे सौम्य! प्रथम प्रश्नबिषे 'प्राणोऽत्ता प्रजापतिः' ऐसा कहाहै। ताते अब उस प्राणका भोक्तापना और प्रजापतिपना यह दोनों इसही शरीरबिषे निश्चयकरनेको योग्यहैं इस अर्थ के जतावने के अर्थ इस द्वितीय प्रश्नका आरंभ करते हैं 'अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ' <अनन्तर इसको निश्चय करके विदर्भ देशका निवासी भार्गव प्रसिद्ध पूछताभया > अर्थात् कबन्धीमुनि के प्रश्न समाप्त होने के पश्चात् इस सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनिको उनके वाक्यमें निश्चयपूर्वक विदर्भदेशका निवासी भार्गवनाम वाला मुनि सर्वमें प्रसिद्ध जे प्राण तिस विषयक प्रश्न करता भया कि 'भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते' <हे भगवन्! कितनेही देवता प्रजाको विशेष करके धारणकरे हैं > अर्थात् हे भगवन्! आकाशादि पांच भूत और चक्षुरादि पांच ज्ञानेंद्रियां और वागादि पांच कर्मेंद्रियां और मन और प्राण यह सप्तदश तत्त्वात्मक लिंगाभिमानि प्रत्येक तत्त्वके मिलके सप्तदश देवता हैं तिन बिषे कितने देवता इन शरीररूप प्रजाको <[यहां प्रजा शब्दका अर्थ शरीर ही ग्रहणकरने योग्यहै जीव नहीं क्योंकि जीवको प्राणधारित्वपना है एतदर्थ प्राण इन्द्रियों करके जीव धारण करने योग्यनहीं ताते यहां प्राणकरके धारण करने योग्य शरीररूप प्रजाही है] > धारते हैं। और <'कतरएतत् प्रकाशयन्ते' <कितने इसको प्रकाश करते हैं >> अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय करके पृथक् २ भावको प्राप्तभये जे देवता तिनके मध्य कौन से देवता इस अपने माहात्म्य के प्रकटकरने रूप प्रकाशको करते हैं अर्थात् ['पाकं पचतीति' <पाकको पचता है > तद्वत् अव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाचाकाशो हवा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम ॥ २ । १८ ॥

काशके देने आदिक और अवलोकन आदिक जो आकाशादि भूतों का और इन्द्रियरूप देवाताओं का जो अपना अपना माहात्म्य है तिसको लोकों बिषे प्रकटकरने रूप प्रकाशको कौन से देवता करते हैं] और ८ ' कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ' < पुनः इनके मध्य श्रेष्ठ कौनहै > ? फेर इन कार्य कारणरूप पूर्वोक्त सप्तदश देवताओंके मध्य अतिशय कीर्त्तिवाला और श्रेष्ठ देव कौन है ॥ १ । १७ ॥

२ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब पिप्पलाद मुनि से प्रश्न किया तब ' तस्मै स होवाच ' < तिसको सो स्पष्ट कहतेभये > अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता भार्गवमुनिके अर्थ सो पिप्पलादनामा मुनीश्वर आचार्य प्रसिद्ध कहतेभये कि हे भार्गव ! 'आकाशो हवा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च' < आकाश प्रसिद्ध यह देवहै वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, (यह देवहैं) > अर्थात् आकाश प्रसिद्ध यह देवहै [यहां यह देव ऐसा जो कहाहै सो आगे कहने के कथन आदि व्यवहार की सिद्धयर्थ और चेतनपने की ' यह चेतनहै ' इस सम्भावनाके अर्थ यहां 'देव' विशेषणहै । और ' देव ' इस पदसे जो अभिमानी का कथन है सो तो आकाशादिकों के अभिमानी देवताओं के ग्रहणार्थ है अन्य देवताओं के ग्रहणार्थ नहीं । ताते यहां ' देव ' इस विशेषणका वायु आदिकोंसे भी सम्बन्ध है] वायुदेव है, अग्नि देवहै, जल देवहै, पृथिवी देवहै, वाणी उपलक्षणकरके पांच कर्मेंद्रियां देवहैं, मन उपलक्षण करके वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण देवहै, चक्षु और श्रोत्र इन उपलक्षणकरके पांच ज्ञानेंद्रियां यह देवहैं । अर्थात् शरीर को आरम्भ करनेवाले आकाशादि पांच भूत और वाणी और मन और चक्षु और श्रोत्र इत्यादि सर्व ज्ञानेन्द्रियां और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मामोहमापद्यथाऽहमे-वैतत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधार-यामीति ॥ ३ । १९ ॥

कर्मेंद्रियां और अन्तःकरणरूप 'देव' शरीरको धारण करते हैं, तिन देवताओं के मध्य पांच कर्मेंद्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियांरूप जो देवहैं सो अपने माहात्म्य को प्रकटकरनेरूप (दर्शनश्रवणादि रूप) कार्यको करतेहैं। और कार्यरूपदेव और करणरूपदेव अर्थात् [देहाकारसे परिणाम को प्राप्तभये जे आकाशादि पञ्चमहाभूत सो कार्यरूप देवताहैं और ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां यह करणरूप देवहैं] 'ते प्राश्याभिवदन्ति' < सो देव प्रकाशकरके कहते भये > अर्थात् सो देव अपने माहात्म्यको प्रकाशकरके अपने विषे श्रेष्ठत्वका अभिमानकरके परस्पर ईर्षाको करतेहुये कहते भये ॥ प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ 'वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि' < हम इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्ट धार-तेहैं > (ऐसे कहतेभये) अर्थात् जैसे प्रासाद (बड़े ऊँचे गृह) को स्तम्भ धारते हैं तैसे हम इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिलकिये विनाही स्पष्ट धारते हैं, इसप्रकार अपने २ विषे महत्त्वपनेका अभिमानकरके इन्द्रियरूप देवता परस्पर कहतेभये २ । १८ ॥ हे सौम्य ! इन्द्रियों का परस्पर और प्राणका जो संवाद और प्राणको सर्व में एक ज्येष्ठ श्रेष्ठपना यह छान्दोग्य उपनिषद्के चतुर्थ प्रपाठक में एक आख्यायिकारूपसे सविस्तर कहाहै ॥ ३ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार साभिमानहुये अपने २ श्रेष्ठत्वके अर्थ ईर्षापूर्वक परस्पर में विवाद करते जे देवता 'तान् वरिष्ठः प्राण उवाच' < तिनको मुख्य प्राण कहताभया > अर्थात् तिन असत्य अभिमान करनेवाले इन्द्रियांरूप देवोंको सर्वमें मुख्यदेव जो प्राण सो कहताभया कि < 'मा मोहमापद्यथा' < मोहको मत प्राप्तहो > > अविवेकता के वश भये इस असत्य अभिमानको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इ
तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्र
तिष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकर
राजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रति
ष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च
ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ ४ । २० ॥

मतकरो । देखो ' अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्य ' > मैंहीं इस अपने आपको पांच प्रकारसे विभागकरके >, मैंहीं इसअपने आपको, अपानादि भेदसे पांच प्रकार होयके ८ ' एतद्बाणमवष्ट-भ्य विधारयामीति ' < इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्टधारता हौं > > इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिल न करके स्पष्ट धारताहौं ताते तुम व्यर्थ अभिमान मतकरो॥३।१९

४ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब प्राणने सर्व इन्द्रियों से कह तब ' ते अश्रद्दधाना बभूवुः ' < वे अश्रद्धावान् होते भये अर्थात् सो इन्द्रियरूप देवता विचारकरतेभये कि जो यह प्राण कहता है कि मैं पांचप्रकार होयके इस शरीरको धारता हौं सो असंभवहै । इसप्रकार प्राणके वाक्यमें अविश्वासवान् होते भये तब ' सोभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव ' < सो अभिमान से ऊंचे गमनकरतेहुयेवत् > अर्थात् सो प्राण तिन इन्द्रियरूप देवतों के अपनेवाक्य में अविश्वासको देख आप अभिमानसे ऊंचे को जातेहुयेवत् होताभया अर्थात् रोष (क्रोध) सहित इन्द्रियों की अपेक्षाके रहित हुआ इस संघातरूप शरीरको त्यागताभया हे सौम्य ! उक्तप्रकार इस शरीरसे प्राणके निकसजाने से जो वृत्तान्त हुआ तिसको अब वेद दृष्टान्तसे स्पष्ट करे हैं ' तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्व एव प्रतिष्ठन्ते ' > तिसके निकसने से पीछे अन्य सर्वही जाते भये पुनः तिसके स्थितहुये सर्वही स्थित होतेभये > अर्थात् तिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायु-
रेष पृथिवी। रयिर्देवः सदसच्चाऽमृतञ्च यत् ॥ ५। २१ ॥

प्राण के शरीर से निकसने पीछे और सर्व चक्षुरादि इन्द्रियां भी जाते भये और पुनः तिस प्राणके तूष्णीं (चुप) होके बैठने से सर्वही तूष्णीं होके बैठतेभये ॥ दृष्टान्त 'यथा मक्षिका मधुकर-राजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते' < जैसे मक्षिका मधुकर राजाके निकसिजाने से सर्वही निकलजाते हैं > अर्थात् जैसे मधु (शहद) की मक्खी अपने राजा मक्खीके निकलजाने से सर्वही उस स्थान को त्याग के निकलजाती हैं। और ' तस्मिंश्चप्र-तिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त ' < तिसके स्थित हुये सर्वही स्थित होते हैं > अर्थात् तिस मधुकरराजा मक्खी के स्थित हुये अन्य सर्व मक्खी स्थित होतीहैं। हे सौम्य! जैसे यह उक्त दृष्टा-न्त है ' एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ' < ऐसे वाणी (कर्मेंद्रियां) मन, चक्षु और श्रोत्र, (ज्ञाने-न्द्रियां) सो प्रीतिसे प्राणकी स्तुति करतेभये > अर्थात् उक्त दृष्टा-न्तप्रमाण वाणी मन चक्षु आदि सर्व इन्द्रियांरूप देव प्राण के माहात्म्य को जान तिस बिषे प्रतीतवान् होय अपने असत्य महत्त्व के अभिमान को त्याग प्रसन्नतापूर्वक प्राण की स्तुति करते भये ॥ ४। २० ॥

५ ॥ हे सौम्य ! इन्द्रियां कहतीहैं कि 'एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो ' < यह अग्नि हुआ तपताहै यह सूर्य्यहै यह मेघहै > अर्थात् यह प्राण अग्निरूप हुआ तपताहै, तैसे यह सूर्य्यरूपहुआ प्रकाशताहै, तैसे यह मेघरूप हुआ वर्षा करताहै। और ' मघवा-नेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्च यत् ' < यह इन्द्रहै, यह वायु है, यह पृथिवी है, यह चन्द्रदेव है, सत्, असत् और अमृत जो है, (सो सर्व प्राणही है) > यह इन्द्र होयके प्रजाका पालन करता है, और असुर राक्षसों का नाश करता है, और यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजुंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ । २२ ॥

आवह (उड़ायके लेजानेवाला) और प्रवाह (वेगसे चलनेवाला) आदिक सात गुणोंके भेदसे भेदवालाहुआ वायु मेघ और नक्षत्रादिकों को भ्रमावताहै, और यह पृथिवीरूप होके सर्वको धारताहै। और यह देव चन्द्रमा होयके ओषधि आदिकोंका पोषण करताहै। हे सौम्य! विशेष क्या कहिये सत् कहिये सूक्ष्म अमूर्त्त और असत् कहिये स्थूल मूर्त्त और देवताओं की स्थितिका कारणभूत जो अमृत है सो भी प्राणही है ॥ ५ । २१ ॥

६ ॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियांरूप देवता विचार करते भये कि 'अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम्' < रथकी नाभि विषे अरान्वत् प्राणबिषे सर्व स्थितहै > अर्थात् जैसे रथके चक्र (पहिया) के मध्य काष्ठको रथनाभि कहते हैं तिसबिषे अरा (खड़ीलकड़िया) स्थित होती हैं। तैसे इस उपनिषद् के षष्ठ प्रश्नके 'प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिः' इत्यादि। < प्राणसे श्रद्धा आकाश वायु तेज > इत्यादिकों को सृजताभया इस चतुर्थवाक्य प्रमाण श्रद्धा आदि ले नामपर्यंत सर्वका संघातरूप शरीर अपनी स्थितिकालमें प्राण बिषे स्थितहैं। और तैसेही 'ऋचो यजुंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्मच' < ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और यज्ञ क्षत्रिय और ब्राह्मण > अर्थात् जैसे श्रद्धा आदिक कला प्राणबिषे स्थितहैं, तैसे ऋग् यजु साम यह तीन वेदके तीन प्रकार के मन्त्र, और तिन मन्त्रों करके साधने योग्य अश्वमेधादि यज्ञ, और सर्वके पालन कर्त्ता और दंड के दाता क्षत्रिय जाति राजा, और यज्ञादिक वैदिक कर्मोंके कर्ताओं में मुख्य अधिकारी सर्वोत्तम ब्राह्मणजाति, यह सर्व प्राणके आश्रय होनेसे प्राणही हैं ॥ ६ । २२ ॥

७ ॥ हे सौम्य! दो मन्त्रसे कहेप्रकार विचारके सर्व इन्द्रियां प्राणकी स्तुति करतीभई 'प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७। २३ ॥

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा। ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्व्वाङ्गिरसामसि ॥ ८। २४ ॥

जायसे' < जो प्रजापतिहै सो तूही है गर्भबिषे बिचरता है और सदृशहुआ जन्मता है > अर्थात् कहतीभई कि हे प्राण! जो सर्व का प्रजापतिहै सोभी तूही है और पिताके गर्भ में वीर्यरूपसे और माताके गर्भबिषे पुत्ररूपसे जो बिचरता है और जो माता पिता केही सदृशहुआ जन्मताहै सो तूही जन्मताहै, अर्थात् हे प्राण! तुझको सर्वरूप प्रजापति होने से तेरा माता पितापना प्रथमही सिद्धहै, एतदर्थ तू सर्व देह और सर्व देहवालों के आकारों से ढकाहुआ एक प्राणरूप सर्वात्मा है। और ८ 'तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि' < हे प्राण! यह प्रजा तो तेरेअर्थ बलि देते हैं जो प्राणोंके साथ सर्व शरीरोंप्रति स्थितहै > > हे प्राण! यह मनुष्यादि सर्व प्रजा सो चक्षुरादिद्वारा रूपादि विषयरूप बलिदान (कर) तेरेही अर्थ देते हैं, क्योंकि जो तू चक्षुरादि इन्द्रियोंके साथ मिलके और उन सर्व को अपने आश्रय धारके सर्वका भोक्ताहुआ सर्व शरीरों बिषे स्थितहै, एतदर्थसर्व तेरेही अर्थ बलिदान (कर) देतेहैं। इतिसिद्धम्॥ ७। २३॥

८॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि हे प्राण! 'देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा' < देवताओं के मध्य वह्नितम है पितरों की प्रथम स्वधा है > अर्थात् इन्द्रादि देवताओं के मध्य तू वह्नितम, कहिये अतिशय करके हवन किये द्रव्यों को प्राप्त करनेवाला है। और पितरों के नांदीमुखश्राद्ध बिषे (जो कि शुभ कार्यमें होता है) जो स्वधारूप अन्न है सो देवताओं के निमित्त हवनद्रव्य देनेसे प्रथम होता है एतदर्थ पितरों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वम
न्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषांपतिः ॥ ९ । २५ ॥

के अर्थ प्रथम जो स्वधा सो तू है । अर्थात् पितरों के अर्थ स
धान्नका प्राप्त करनेवाला तू है । और ' ऋषिणाञ्चरितं सत्यम
र्वांगिरसामसि ' < इन्द्रियों का अंगिरसरूप अथर्वणनाम वा
(भये) ऋषियों (इन्द्रियों) का चरितसत्य (तूही है) > अर्थ
चक्षुरादि इन्द्रियरूप अंगिरस < [अथर्वण नामवाले हुयेभी उ
ऋषियों का] > अर्थात् „ ऋष„ जो धातुहै सो गति (ज्ञान) रू
अर्थ बिषे वर्त्तता है । एतदर्थ ऋषिपदका ज्ञान के जनक चक्षु
दिक इन्द्रियरूप अर्थ है और इन्द्रियरूप प्राणके अभाव हुये अं
के रसका शोषण होता देखने से उन इन्द्रियरूप प्राणोंको अं
रसपना है । और ' प्राणो वा अथर्वा इति श्रुतिः ' < प्राण वा
थर्वा है > इस श्रुतिके प्रमाण से तिन इन्द्रियोंको अथर्वापना है
यद्यपि मुख्यप्राण का अथर्वापना श्रुतिने कहाहै, तथापि च
रादि इन्द्रियों को भी उस मुख्यप्राण के अंशरूप होनेसे अ
शब्दका अथर्वान् यह बहुतपनाहै, [इतिभावः] चरित और
धारणादिक बिषे उपकार करनेरूप सत्य तूही है ॥ ८ । २४ ॥

९ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहतीभईं कि ' इन्द्रस्त्वं प्राणतेज
रुद्रोऽसि परिरक्षिता ' < हे प्राण ! इन्द्र तू है, रुद्र तू है, रक्षाक
वाला तू है > अर्थात् हे प्राण ! वीर्य (सामर्थ्य) करके इन्द्र (प
मेश्वर) तू है, अथवा ' हे प्राण ! अपने सामर्थ्य करके सर्व देवता
का अधिपति इन्द्र तूहै ; और संहारकरने के सामर्थ्यसे जग
का हरण करनेवाला रूप तूही है, और स्थितिकाल बिषे सौम्
रूप हुआ जगत्का पालक विष्णु भी तूही है । और ' त्वमन्तरि
चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषांपतिः ' < तू अन्तरिक्षबिषे विच
है (और) ज्योतियों का पति सूर्य्य तूही है > अन्तरिक्ष
आकाश बिषे निरन्तर विचरनेवाला तूही है । और उदय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाःप्राणते प्रजाः। आनन्दरूपा-स्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० । २६ ॥

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः। व-यमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ । २७ ॥

अस्त होनेवाले सर्व ज्योतिगणों का अधिपति सूर्य तूही है ॥ इति सिद्धम् ॥ ६ । २५ ॥

१० ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती भईं कि । हे प्राण ! 'यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः' < जब तू वर्षता है तब यह प्रजा प्राणकी (चेष्टाकरे है) > अर्थात् जब तू मेघ होयके वर्षा करता है तब अन्न को पाय के यह प्रजा प्राण की चेष्टाको करे है। अथवा 'यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्रजाः' < हे प्राण ! तेरी यह प्रजा तेरे अन्नसे वृद्धिको पाईहुई और तेरी वर्षा के देखनेमात्रसेही > 'आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्य-तीति' < आनन्दरूप स्थित है यथेष्ट अन्न होगा > आनन्दको प्राप्त भये स्थितहै, क्योंकि यथेष्ट (इच्छाके अनुसार)अन्नहोगा॥ ऐसा तिस वर्षा के देखनेवाली प्रजा का अभिप्राय है ॥ इति सिद्धम् ॥ १० । २६ ॥

११ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहतीभईं कि 'व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः' < हे प्राण ! व्रात्य तू है एक-र्षिहुआ भोक्ता तू है > अर्थात् हे प्राण ! 'एतस्माज्जायते प्राणः' तुझको प्रथम उत्पन्न होनेसे तुझसे पूर्व तेरा संस्कार करनेवाला अन्य कोई नहीं ताते तू संस्कार रहित व्रात्य (असंस्कारी) है और < जो ऐसा कहे कि जिससे प्राण उत्पन्नभयाहै सोई उसका संस्कार करनेवालाहै 'सो बने नहीं' क्योंकि जिस आत्मासे प्राण उत्पन्नभया है सो अक्रियहै >। और 'एकऋषिरत्ता' < एकर्षि हुआ भोक्ता तू है > अर्थात् एकर्षिनामवाला अग्निरूपहुआ सर्व हविषादिकों का भोक्ता तू है। और 'विश्वस्य सत्पतिः' < विश्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

याते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि
याचमनसि सन्तताशिवांतांकुरुमोत्क्रमीः ॥ १२ । २८ ।

का सत्यपति तू है > अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का प्रत्यक्ष विद्यमा
पति तू है । अथवा विश्वका श्रेष्ठपति तू है । और ' वयमाद्य
दातारः ' < हम भक्षणके दाता हैं > अर्थात् हम कर्मी उपास
लोग मेरे भक्षणके योग्य हविषा (हवनकरनेयोग्य वस्तु) के दा
हैं । और ' पिता त्वं मातरिश्वनः ' < हे वायो ! तू पिता है
अर्थात् हे अन्तरिक्ष में चलनेवाले वायु (प्राण) ! तू हमारा पिता
है । अथवा तू वायुका पिताहै, एतदर्थ तुझको सर्व जगत्का पि
तृत्व सिद्धहै क्योंकि तू आकाशरूप हुआ वायुआदि अस्मद
दिकों का जनक है ताते ॥ ११ । २७ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि विशेष कह
करके क्याहै । हे प्राण ! ' या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता ' < जो तेरी
तनूवाणी बिषे स्थित है > अर्थात् जो तेरी [अपानरूप] मूर्ति
वक्ता (कहनेवाली) होनेसे वक्तृत्वरूप चेष्टा करतीहुई वाणी
रूप स्थानबिषे स्थितहै । और ' या श्रोत्रे या चक्षुषि ' < जो श्रोत्र
बिषे जो चक्षुबिषे > जो तेरी [व्यानरूप] मूर्त्ति श्रोता होने
श्रवणरूप चेष्टा को करती हुई श्रोत्रबिषे स्थित है । और जो तेरी
[प्राणरूप] मूर्त्ति द्रष्टा होनेसे दर्शनरूप चेष्टाको करती हुई चक्षु
बिषे स्थित है और ' याच मनसि सन्तता ' < पुनः जो मन बि
(स्थितहै) तिसको शान्तकर > फिर जो तेरी [समानरूप
मूर्त्तिमती होने से संकल्पादि व्यापारको करती हुई मनबि
स्थित है तिसको तू शान्तकर । और ' शिवांतां कुरुमोत्क्रमीः
< निकलने से अमंगल मतिकरे > तू अपने निकलजाने
इन स्थानों को अमंगल (निकम्मे) मतकर ॥ ' सप्राण
स्तच्चक्षुः सव्यानस्तच्छ्रोत्रंसोऽपानः सा वाक् ससमानस्तन्म
इतिश्रुतेः ' ॥ १२ । २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणस्येदं वशे सर्व्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्। मातेव पुत्रानूक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न इति ॥१३।२९॥

इति प्रश्नोपनिषदि द्वितीयप्रश्नः ॥ २ ॥

---

१३ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां परस्परमें कहती भईं कि अब बहुत कहनेसे क्या है 'प्राणस्येदं वशे सर्व्वं' < यह सर्व प्राणके वश है >, अर्थात् इस लोकबिषे यह जो कुछ प्रत्यक्ष उपभोग प्रकटहै सो सर्व प्राणकेही वशमें बर्तता है। और 'त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्' < स्वर्गबिषे जो स्थित है >, अर्थात् इस लोककी अपेक्षा अदृष्ट जो स्वर्गबिषे देवतादिकोंका अमृतादि उपभोगरूप जगत् है तिसका भी पालक प्राणही है। हे सौम्य ! इस प्रकार विचार के इन्द्रियां पुनः कहती भईं कि हे सर्व में श्रेष्ठ, सर्वके पालक, प्राण ! 'मातेव पुत्रानूक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न इति' < मातावत् पुत्रोंका पालनकर और लक्ष्मीको और बुद्धिको हमारे अर्थ दे >, अर्थात् तू जैसे माता अपने आश्रित बालकों का पालन रक्षा करे है तैसेही तेरेही आश्रित जो हम तिन अपने पुत्रोंकी रक्षाकर। और ऋगादि वेदविद्यारूपी ब्राह्मणोंकी ब्राह्मी लक्ष्मी है सो और प्रसिद्ध द्रव्य रत्नक्षेत्रादि ऐश्वर्यरूपा क्षत्रियों की लक्ष्मी, यह दोनों लक्ष्मियों करके, और तेरी स्थितिरूप निमित्त वाली अर्थात् जिस बुद्धिके होने से इस संघातरूप शरीर बिषे तेरी स्थिति रहै ऐसी बुद्धि को हमारे अर्थ दे हे सौम्य ! इस द्वितीय प्रश्न करके निर्धार किये प्राण के गुण संक्षेपमात्र से प्रतिपादन किये हैं इस रीति से सर्वरूप जो प्राण है सो वाक् आदि इन्द्रियों करके स्तुति करनेद्वारा प्रकट भई जो उसकी महिमा तिस महिमावाला है और सोई प्रजापति है। इति निश्चितम् ॥ १३ । २९ ॥

प्रश्नोपनिषद्के द्वितीयप्रश्नकी भाषाटीका समाप्त हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रश्नोपनिषद्गतस्तृतीयप्रश्नः ॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीरे आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ । ३० ॥

प्रश्नोपनिषद्के तृतीयप्रश्नकी भाषा टीका का प्रारम्भ ।

हे सौम्य ! पूर्वोक्त प्रकार इन्द्रियों करके की हुई स्तुतिद्वारा प्राण का प्रजापतिपना और भोक्तापना आदिक गुणों के समुदाय का निर्धार करके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकों का निर्णय करते हुये तिसकी उपासना के विधानार्थ इस तृतीय प्रश्न का आरंभ करते हैं ॥

१ ॥ हे सौम्य ! ' अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ ' <तिसके अनन्तर इसको अश्वलका पुत्र कौसल्य नामवाला मुनि पूछताभया> अर्थात् कबन्धी मुनि और भार्गवमुनि के दोप्रश्नोंद्वारा प्राणके प्रजापतित्व आदि गुणों के निर्धार होने के अनन्तर इस पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्य को अश्वलमुनिका पुत्र कौसल्य नामवाला मुनि प्रश्न करता भया कि ' भगवन् कुत एष प्राणो जायते ' < हे भगवन्! यह प्राण किससे उपजताहै > अर्थात् हे भगवन्! हे सर्वज्ञ! यह प्राण ८कि जिसकी महिमा आपने दो प्रश्नोंके उत्तर करके निर्धारित किया, सो किसकारण से उपजता है। और ८ 'कथमायात्यस्मिञ्छरीरे ' <कैसे इस शरीरबिषे आवताहै> अर्थात् ऽउपजाभया किसप्रकार इसशरीरबिषे आवताहै ऽ अर्थात् प्राणको शरीर धारणका निमित्त कौन है । और ऽ ' आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते ' < अपने आपका विभाग करके कैसे स्थित होताहै > ऽ एक अपने आपको कई एक विभाग करके किस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्रवीमीति ॥ २ । ३१ ॥

प्रकार से स्थित होता है । और ('केनोत्क्रमते' < किस करके निकसताहै >) किस वृत्ति विशेषकरके इस शरीरसे निकसताहै । और ('कथं बाह्यमभिधत्ते' < बाह्यको कैसे धारताहै >) बाह्य जो अधिभूत और अधिदैव तिसको कैसे धारता है, अर्थात् [प्राणादि पांचवृत्ति भेदवाले प्राणका सूर्य और पृथिवी आदि पांचभूत अधिदैव और चक्षुरादि पांच इन्द्रियां अधिभूतरूप बाह्य हैं] तिसको यह प्राण कैसे धारताहै । और ('कथमध्यात्ममिति' < अध्यात्म को कैसे धारता है >) अध्यात्म को किसप्रकार धारण करता है [प्राणादिरूप अन्तर्वर्त्ति जो प्राणकी पांच वृत्तियां हैं सो प्राण का अध्यात्मरूप है यह आगे कहेंगे] ॥ १ । ३० ॥

२ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब कौसल्य नामवाले मुनिने अपने आचार्यसे प्रश्न किया तब 'तस्मै स होवाच' < तिसको सो स्पष्ट कहता भया > अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता शिष्यको सो सर्वज्ञ पिप्पलादनाम मुनीश्वर स्पष्ट कहताभया कि ('अति प्रश्नान् पृच्छसि' (अति प्रश्नोंको पूछताहै >) हे प्रश्नकर्त्ताओं में कुशल ! तू अतिश्रेष्ठ प्रश्नोंको करता है, क्योंकि प्रथम तो प्राणही दुर्विज्ञेय (दुःख से जानने योग्य) है एतदर्थ उस विषयक जैसे कठिन प्रश्न होय तैसेही करने योग्य हैं, एतदर्थ तू अतिप्रश्नों को पूछताहै । और ('ब्रह्मिष्ठोसीति' < ब्रह्मनिष्ठ है >) एतदर्थही तू ब्रह्मवेत्ताहै ('तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि' < ताते मैं कहताहौं >) एतदर्थ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयाहौं तिस कारण से जो तैंने प्रश्न किये हैं तिनका उत्तर मैं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवण कर ॥ २ । ३१ ॥

३ ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ 'आत्मनः एष प्राणो जायते' < आत्मासे यह प्राण उपजताहै > हे सौम्य ! अब प्रश्न करनेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मनः एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ । ३ ॥

कौसल्यनाम मुनिको पिप्पलाद मुनि कहतेभये कि हे कौसल्य ! ‘ अप्राणोह्यमनःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः । एतस्माज्जायते प्राणः ’ <जो प्राणमन आदि उपाधि रहित सदा शुद्ध कार्यकारण से परे अक्षर सत्य परमात्मा है तिससे यह सर्व में श्रेष्ठप्राण उपजता है> ॥ प्र० ॥ कैसे उपजता है ॥ उ० ॥ ‘यथैषा पुरुषेछायैतस्मिन्नेतदाततं ’ < जैसे पुरुष बिषे छाया तैसे तिसबिषे यह समर्पण किया है > हे सौम्य ! जैसे मस्तक हस्त पादादि अवयव समुदायरूप पुरुष निमित्त से नैमित्तिकी यह छाया उपजती है । तैसे ही तिस ब्रह्मरूप सत्य अक्षर पुरुषबिषे यह प्राणनामकरके छाया स्थानीय मिथ्यारूपवाला तत्त्व समर्पित है । और < ‘ मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ’ < मनकरके किये कर्म निमित्त से इस शरीर बिषे आवता है > > देह बिषे जो आवता है सो छायावत् मनके सङ्कल्प इच्छादि वृत्तियों करके किये जे कर्म तिन कर्मरूप निमित्त से इस शरीराबिषे आवता है ‘ पुण्येनपुण्यं लोकंनयति ’ < पुण्यसे पुण्यलोकको लेजाता है > । यह इसही प्रश्न के सातवें वाक्यसे कहेंगे । और < ‘ तदेव सक्तः सहकर्मणेति ’ < आसक्त हुआ तिसहीको सहित कर्मके पावता है > > अर्थात् यह कर्म करने वाले कर्मीपुरुषका मन जिसफल बिषे आसक्त होताहै तब तिस आसक्तताकरके वे पुरुष तिसही को < कि जिस बिषे आसक्त हैं कर्मकरके पावते हैं । इस बृहदारण्य के छठे अध्याय की श्रुति बिषे शरीरों का ग्रहण कर्मोंकरकेही साध्यहै ऐसाकहाहै ॥ ३ । ३ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! पिप्पलादमुनि कहताभया कि हे कौसल्य ! अब दृष्टान्तपूर्वक श्रवणकरो ‘यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते’ < जैसे चक्रवर्तीराजा निश्चय करके अधिकारियों को योजना करताहै अर्थात् जैसे कोई एक चक्रवर्त्ती राजा अपने राज्यके निबन्धमें कार्यो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ । ३३ ॥

ध्यक्षताके योग्य पुरुषोंको निश्चय करके तब उन अधिकारी पुरुषोंको देश विभागसे योजना करताहै और कहताहै कि ८ 'एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्व' ८ तुम इतने ग्रामके और तुम इतने ग्रामके अधिपति होयके स्थित होउ ९ ९ हे कार्य्याध्यक्षताके योग्य पुरुषो ! मेरी आज्ञासे तुम इतने ग्रामोंके मंडल देशके और तुम इतने ग्रामके मंडल देश के अधिपति होयके देशोंका रक्षण पालन सावधानीसे करते रहो ॥ हे सौम्य!ऽ' इत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेवसन्निधत्ते' ८ ऐसेही यह प्राण इतर प्राणोंको पृथक्२ ही योजना करताहै ९ ऽ इस कहे हुये दृष्टांतके प्रमाण ही,यह जो मुख्य प्राणहै सो चक्षुरादि इन्द्रियरूप अन्य प्राणोंको नेत्रादि यथायोग्य स्थानबिषे दर्शनादि क्रिया करनेके अर्थ भिन्न २ अर्थात् एकका काम दूसरा न करे इस प्रकारसे योजना करता भया। और अपने अपानादि भेदरूप इतर प्राणों को गुदादि स्थानोंबिषे मलत्यागादि क्रियाके अर्थ योजना करता है ॥ ४ । ३३ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! अब मुख्य प्राण अपने अपानादि भेदरूप पांच वायुको जिस २ कार्य्यके अर्थ जिन २ स्थानोंबिषे नियुक्त करता है तिसको श्रवणकरो 'पायूपस्थेऽपानं' ८ गुदा (और) लिंगबिषे अपानको ९ अर्थात् जो गुदाद्वारा मलको और लिंग द्वारा मूत्रको त्यागकरनेरूप क्रिया का कर्त्ता अपनाही भेदरूप अपान नामवाला वायु तिसको गुदा और लिंग बिषे उक्तकार्य करनेके नियुक्त करता भया । और ८ ' चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणःस्वयं प्रातिष्ठते' ८ चक्षुः (और) श्रोत्र मुख (और) नासिकाबिषे प्राणआप स्थितहोताहै ९) तिसही प्रकार दर्शनादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राण
स्वयं प्रातिष्ठते मध्येतु समानः । एषह्येतद्धुक्तमन्नं समन
यति तस्मादेताः सप्तार्च्चिषो भवन्ति ॥ ५ । ३४ ॥

ज्ञानरूप क्रियाका करता हुआ चक्षुः श्रोत्र के कहनेसे ज्ञानेन्द्रि
मुख और नासिकासे आवागमन करताहुआ चक्रवर्ती राजास्व
नीय स्वयं (आप) प्राणस्थितहोताहै । और ८ 'मध्येतु समानः
८ मध्यबिषे तो समान (वायुहै) > > अपना भेद समान वायु नि
सको प्राण अपानके मध्य नाभिरूप स्थानबिषे नियुक्त करताहै
और ८ ' एषह्येतद्धुक्तमन्नं समन्नयति' ८ यहही इसभुक्त अन्नको
लेजाता है > > यहही वायु भोजन किये अन्नादिकों का रस जो
उदरबिषे होता है तिसको सर्व नाड़ियों प्रति पृथक् २ सम (नि
सका तिसको) लेजाता है एतदर्थ इसको समान नाम से कहे
हैं । और ऽ 'तस्मादेताः सप्तार्च्चिषो भवन्ति' ८ ताते इतनी सा
ज्वालावाला होता है > ऽ तिस कारणसे यह समान नामवाल
वायुही इस मुखद्वारसे उदर कुंडबिषे हवन किये अन्नादिकों
रसादिकों को प्रत्येक नाड़ियोंप्रति सम पहुँचावता है, एतत
भोजन किये अन्नादिकों के रसरूप समिधावाले जठराग्निक
हेतुसे हृदयरूप देशसे यह सातसंख्यावाले मस्तकगत दो नेत्रके
दो कर्णके, दो नासिकाके, एकमुखका, इन सातोंद्वार सम्बन्ध
ज्ञानरूप ज्वालावाला है ताते इसको 'सप्तार्च्चिषः' ८ सात ज्व
चींवाला, कहते हैं ॥ अभिप्राय यह है कि प्राण करकेही दर्शन श्रवण
और रूपादि विषयों का प्रकाश होता है ॥ ५ । ३४ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! पिप्पलाद मुनि कहते भये कि हे कौसल्य
' हृदिह्येष आत्मा' ८ हृदय बिषेही यह आत्मा है > अर्थात् कम
लाकार हृदय नाम करके विख्यात जो मांसपिंड तदन्तर्ग
जे हृदयाकाश तिस बिषे, यह आत्माकरके सहित लिंग (जीव
आत्मा वर्तता है और ऽ ' अत्रैतदेकशतं नाडीनां' ८ यहां य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ । ३५ ॥

नाड़ियोंकी (संख्या) एक अधिक एकसौ है (१०१) यहांइसहृदय बिषे मुख्य नाड़ियां संख्या (गिनती) करके एकऊपर एकसौ होती हैं । और ८ 'तासां शतं शतमेकैकस्यां' ८ तिनके मध्य एक एक बिषे सौ सौ भेद हैं ९) तिन प्रत्येक मुख्य नाड़ी बिषे सौ सौ भेदहैं । और ८ 'द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति' ८ प्रतिशाखारूप नाड़ीके (भेद) बहत्तर बहत्तर हजार होते हैं ९) पुनः भी-पृथक् पृथक् प्रतिशाखारूप नाड़ी के भेदरूप बहत्तर बहत्तरहजार नाड़ियां होती हैं । अर्थात् सुषुम्णा नामवाली एक मुख्य नाड़ीरूप मूल (पींड़) की स्कन्धशाखा (सर्वसे पुष्ट शाखा) रूप सौ १०० संख्यावाली मुख्यनाड़ी हैं तिन प्रत्येककी शाखारूप जो सौ सौ नाड़ियां हैं, तिन एक एक की उपशाखारूप नाड़ियोंकी संख्या बहत्तर बहत्तरहजार होती है। ताते सर्व मिलके बहत्तर करोड़ नाड़ीहैं ॥ [हे सौम्य! अब इनको पुनः श्रवण करो] उक्त नाड़ियोंकी संख्याका जो वर्णनहै सो वृक्षरूपसे है, तहां हृदयकमलदेशसे जो निकलीहुई नाड़ियां हैं तिन के मध्य जो सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी है सो मूल (पींड़) के स्थानापन्न है, और तिसकी दश नाड़ियां स्कन्ध (पुष्ट शाखा) रूपहैं, और उन स्कन्धरूप दश नाड़ियों में से प्रत्येककी नव नव स्थूल शाखाहैं । एतदर्थ इसप्रकार होनेसे एकमूलकी सुषुम्णा नामवाली नाड़ीको छोड़के स्थूलशाखारूप नब्बे ९० नाड़ियां और दश स्कन्धरूप शाखा यह सर्व मिलके एकसौ १०० संख्या की होतीहैं। तिन सौ नाड़ियोंके मध्य एक एक नाड़ी की शाखा रूप सौ सौ नाड़ियां और हैं । इसप्रकार होनेसे एक सुषुम्णा मुख्य नाड़ी है और सौ स्कन्धरूप नाड़ियांहैं । और तिनकी शाखा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ । ३६ ॥

रूप दशहजार नाड़ियां हैं तिन दशहजार नाड़ियोंमें से प्रत्येक नाड़ियोंकी उपशाखारूप बहत्तर बहत्तरहजार ७२००० नाड़ियां हैं ॥ हे सौम्य! इसप्रकार होनेसे बहत्तरहजार ७२००० संख्याको दशहजार संख्यासे गुणा करनेसे एकमूलकी सुषुम्णानाड़ी को छोड़के बहत्तर करोड़ ७२००००००० नाड़ियां होती हैं इति ॥ 'आसु व्यानश्चरति' <तिसबिषे व्यानवायु विचरताहै> तिन सर्व नाड़ियों बिषे एक व्याननामवाला वायु विचरताहै। एतदर्थ इस प्राण के भेद वायुको सर्व शरीर बिषे व्याप्तहोनेसे व्याननामकरके कहते हैं ॥ हेसौम्य! जैसे सूर्य्यबिम्बसे किरण सर्व ओरको निकलती हैं ॥ तैसे शरीरबिषे हृदयकमल से सर्व ओरको गमनकरनेवाली जो नाड़ियां तिनके सम्बन्धसे सर्वदेहमें व्याप्तहोके व्यानवायु बर्त्तता है। और स्कन्ध आदिक जो जो शरीरकी संधिके स्थान और मर्म स्थानहैं तिन तिनविषे विशेषकरके बर्त्ताहै । और व्यान जो है सो प्राण और अपानरूप वृत्तिके मध्य उनके अभावकालमें उह्य भूतवृत्तिरूपहै। और यह पराक्रमवाले पुरुषके कर्मोंका कर्त्ता होता है॥ ६ । ३५ ॥ हे सौम्य! प्रथम जो कौसल्य मुनिने प्रश्न किया रहा कि 'आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते' मुख्यप्राण अपनेआप विभागकरके किसप्रकारसे स्थित होताहै तिसका उत्तर चौथे, पांचवें, छठे, इन तीनवाक्यों से पिप्पलादमुनिने कहा सो तेरे अर्थ कहा ॥

७॥ हे सौम्य! अब उदानवायुके स्थानको कहतेहुये, कौसल्य मुनिके 'केनोत्क्रमते' <किसकरके (शरीर से) निकलता है> इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कहते हैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ कौसल्य! 'अथैकयोर्ध्वउदानः' <एक ऊंचे उदान है> अर्थात् उन एक अधिक सौ १०१ नाड़ियों के मध्य ऊंचे मूर्द्धनी ब्रह्मरंध्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान बिषे जानेवाली सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी तिस एक नाड़ी से विशेष हुआ ऊपरको ब्रह्मरंध्रपर्यंत जाताहुआ और समान हुआ पैरसे लेके माथे पर्यंत वर्त्तमान हुआ उदान वायु विचरता है। और ८ 'पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापं' ८ पुण्यसे पुण्यलोकको प्राप्तकरता है पापसे पापको ९ ९ सो उदानवायु वेदशास्त्रबिषे विधान किये जे पुण्यरूप कर्म तिनके करनेसे कर्त्ता पुरुषको देवतादिकों के स्थानरूप पुण्य (स्वर्ग) लोकको प्राप्तकरता है। और तिन पुण्यकर्म से विपरीत वेदशास्त्र करके अविहित जे पापकर्म तिनके कर्त्ता पुरुष को पशु, पक्षी, श्वान, शूकरादि योनिरूप पापमय नरकको प्राप्त करता है। और 'उभाभ्यामेव मनुष्यलोकं' ८ दोनों से ही मनुष्यलोकको (प्राप्तकरता है) ९ पुण्य और पाप दोनों के समुच्चय से मनुष्य लोक (शरीर) को प्राप्तकरता है ॥ ७ । ३६ ॥ हे सौम्य ! सुषुम्णा नाड़ी बिषे और सर्वदेहबिषे ब्रह्मरंध्रपर्यंत उदानवायु व्याप्त होके वर्त्तता है सो स्थूलशरीर से लिंग (सूक्ष्म) शरीरके निकलने में अग्रसरहै, सो उपासना के अनुसार उत्तम मध्यम अधम लोकोंबिषे प्राप्तकरता है, अर्थात् प्रणव देवयान पञ्चाग्नि आदिकोंकी उपासनावाले उपासकको ब्रह्मरंध्रके द्वारा सर्वोत्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तकरता है। और सूर्य अग्नि आदिकों के उपासकको चक्षु वागादि द्वारसे सूर्य अग्नि आदिकों के स्वर्गादि मध्यमलोक को प्राप्तकरता है। और वेदशास्त्र से विरुद्ध निषिद्ध भूत प्रेतादिकों के उपासकों को गुदा लिंग नख केशादि अपवित्र मार्गों से पशु पक्षी श्वान शूकर चांडालादि पापमय नरकरूप योनियों को प्राप्तकरता है। और पाप पुण्य दोनों के सम और प्रधानतासे करनेवाले को मनुष्यलोक के ताईं प्राप्तकरता है। अर्थात् पुण्य प्रधान होय और पाप सामान्य होय तब सो श्रेष्ठ कुल में धन विद्या संतति आरोग्यता आदिकों करके सम्पन्न होता है और जो पाप प्रधान होय और पुण्य सामान्य होय तो सो पुरुष कुल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदित्यो ह वै बाह्यःप्राणउदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राण-
मनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमव-
ष्टभ्यान्तरायदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ । ३७ ॥

विद्या धन संतति आरोग्यतादि सुखकरके रहित होता है। अर्थात् जिसके पुण्य अधिक और पाप थोड़े होतेहैं तिन पुरुषों को इस मनुष्यलोकबिषे ही सुख अधिक और दुःख थोड़ाहोताहै। और जिनका पाप अधिक और पुण्य थोड़ा होताहै तिनको दुःख बहुत और सुख थोड़ा होताहै ताते पुरुष को इसलोक परलोक में सुख की प्राप्ति के अर्थ शास्त्रविहित पुण्यकर्महीं करना उचित है और पुण्य पापके समान होने से दुःख सुखों की भी समान प्राप्ति होती है। अभिप्राय यह है कि मनुष्यदेहकी प्राप्ति पाप पुण्य दोनोंसेही होती है। और जिन्होंने ज्ञानाग्नि करके पाप पुण्य दोनों को निर्मूल किया है सो मोक्ष होता है ॥ इति सिद्धम् ॥

८ ॥ हे सौम्य ! उक्त प्रकार कौसल्यमुनि के चतुर्थप्रश्न का उत्तर कहके, अब अधिभूत और अधिदैवरूप बाह्य को यह प्राण कैसे धारण करे है, यह पंचम प्रश्न का और अध्यात्म को कैसे धारण करे है इस षष्ठ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा है तिसको श्रवण करो ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ हे कौसल्य ! अर्थात् हे प्रश्नकर्ताओं में कुशल ! मैं कहौं सो सुन ' आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ' < आदित्य ही प्रसिद्धबाह्यका प्राण है यह ऊर्ध्व को जाता है यह इस चक्षु बिषे स्थित प्राणको अनुग्रह करताहुआ बर्त्तता है अर्थात् यह जो प्रकट सूर्य है सोई बाहर समष्टिका प्राणहै और यह सूर्यरूप प्राण उदयहुआ ऊंचे को जाता है < जैसे नाभिसे उदय हुआ प्राण ऊंचे को जाता है तैसे > और यह सूर्यरूप प्राण इस चक्षु इन्द्रिय बिषे स्थित व्यष्टि प्राणको अपने प्रकाश से अनुग्रह करत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ अर्थात् रूपविषयके ज्ञान बिषे चक्षुके प्रकाश को करता हुआ बर्त्तता है। और 'पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य' < पृथिवी बिषे जो देवताहै सो इस पुरुषकी अपान वृत्ति को आकर्षण करके बर्त्तता है > तैसेही पृथिवी बिषे अभिमानी जो प्रसिद्ध [अग्नि] देवता हैं सो यह पुरुष की अपाननाम वाली प्राणवृत्ति को आकर्षण द्वारा स्ववशकरके नीचेहीको खींचने रूप अनुग्रह को कर्त्ताहुआ बर्त्तता है। यदि ऐसा न होय तो शरीर भारी होने से गिरपड़ेगा। अथवा अवकाश सहित (थल) मैदानमें ऊपरको जायगा। सोतो होता नहीं, यह अग्नि रूप पृथिवी काही अनुग्रह है। अर्थात् बाह्यका जो समष्टि अपानवायु अग्नि देवतारूप पृथिवी सो पुरुषकी जो अधोगामी प्राणकी अपाननाम्नी वृत्ति है तिसको आकर्षण करतीहुई शरीर को अपने आकर्षणमें रक्खे है इसही हेतुसे यह शरीर भारीहुआ भी गिरता नहीं और ऊपरको भी जाता नहीं यहही बाह्य अपान का अनुग्रहहै। और 'अन्तरा यदाकाशः स समानो वायुव्यानः' <जो मध्यमें आकाशहै सो वायु समान रूपहै व्यानके अर्थ अनुग्रहकरता है > यह जो स्वर्ग (सूर्य्य) और पृथिवीके मध्य में आकाश है तिसबिषे स्थित जो वायु है तिसको। मञ्चस्थपुरुषवत्, आकाशनामसे कहते हैं। ['मञ्चाःक्रोशन्तीति' < मञ्च पुकारते हैं > इस वाक्य बिषे जैसे मञ्चशब्द करके मञ्चकोही ग्रहण न करके मञ्चस्थ पुरुष पुकारते हैं, ऐसा लक्षणसे ग्रहण होता है। तैसेही यहां आकाश शब्दसे केवल आकाशहीका ग्रहण न करके तिस आकाशबिषे स्थित वायुको लक्षणा से ग्रहण करते हैं] और सो वायु समानरूपहै, सो अन्तर समान वायुके अर्थ अनुग्रह करताहुआ बर्त्तता है सो काहे से कि अन्तर समान वायु प्राण और अपानके मध्यमें स्थित है, और बाह्य समानवायु सूर्य्यरूप प्राण और पृथिवीरूप अपान इनके मध्य में स्थित है, लाते अन्तर समानवायु और बाह्य समानवायु इन दोनोंको अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः । पुनर्भवमि
न्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥ ९ । ३८ ॥

न्तर बाह्य प्राण अपानके मध्य स्थित होनेसे समताहै, ताते स
मष्टि समान वायु व्यष्टि समान वायुपर अनुग्रह करता है
और सामान्यरूप से जो बाह्य का वायु है सो बाह्य क
व्यान वायु है सो अन्तरके व्यानवायुके अर्थ अनुग्रह करता
है क्योंकि व्याप्तिकी समताहै अर्थात् अन्तरका व्यानवायु शरीर
के अन्तर नखशिख पर्य्यन्त व्याप्त है और बाह्य का व्यानवायु
विण्डात्माके अन्तर द्यौ (ब्रह्मलोक) से पाताल पर्य्यन्त व्याप्त
है । ताते व्याप्तिकी समतासे बाह्यका समष्टि व्यानवायु अन्त
के व्यष्टि व्यानवायुपर अनुग्रह करताहुआ बर्त्तता है ॥८ । ३७

९ ॥ हे सौम्य! पुनः पिप्पलादमुनि कहतेभये कि हे कौसल्य
' तेजो हवै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः ' < प्रसिद्ध तेजही उदान
रूप है ताते तेजसे रहित होता है > अर्थात् जो बाह्यका स्व
सामान्य तेजहै सो बाह्यका समष्टि उदानरूप है । अभिप्राय य
है कि बाह्यका सामान्य तेज है सो अपने प्रकाशकरके शरीरस्थ
उदानवायुके अर्थ अनुग्रह करता है । हे सौम्य! [इस प्रकार सू
र्य्यादिरूपसे मुख्य प्राणको प्राण अपान समान उदान व्या
इनके अर्थ अनुग्रह करने के कथनसे अध्यात्मरूप प्राणादि
त्तियोंके अनुग्रह का कर्त्तापना कहा । और सूर्य अग्नि आकाश
सामान्य वायु और सामान्य तेज यह क्रमसे बाह्य के प्राणादि
रूपहुआ मुख्य प्राण सूर्यादि अधिदैवरूप बाह्य को धारता है
इस प्रकार कहा । और तिस सूर्यादिरूपसे जो स्थिति सोई ति
का धारण है । और प्राण अपानादिकोंके अनुग्रह से चक्षुरादि
के अनुग्रह से तिसद्वारा ' मुख्य प्राणको ' उन चक्षुरादि अधि
भूत स्वरूप बाह्यरूपका धारण कर्त्तापना कहा । और ' सप्रा
स्तच्चक्षुः सोऽपानः सा वाक् स व्यानस्तच्छ्रोत्रं ससमानस्तन्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः ।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥ १० । ३९ ॥

स उदानः स वायुरिति श्रुत्यन्तरे '–< सो प्राण सो चक्षु सो अपान सो वाणी सो व्यान सो श्रोत्र सो समान सो मन सो उदान सो वायु >। इस श्रुति करके चक्षुरादिकों को प्राणादि स्वरूपता के कथनसे और चक्षुरादिकों के अनुग्रह कर्त्तापने के कहने से चक्षुरादि रूप अध्यात्मका धारण कर्त्तापना मुख्य प्राण को कहा ॥ इस रीति से यहां पर्यन्त बाह्यको कैसे धारण करता है और अध्यात्म को किस रीतिसे धारण करता है, इन पंचम और षष्ठ दोनों प्रश्नों का उत्तर कहा, यह जानना] जिस करके तेज स्वभाववाला और शरीर से , लिंगको , बाहर निकलनेरूप क्रिया का करनेवाला उदानवायु भी बाह्य के तेज के अनुग्रह को पाया हुआ ही शरीर बिषे बर्त्तता है तिसही कारण से जब जीव के जीवने के हेतु कर्म (प्रारब्ध) के उपराम भये बाह्य के तेज-रूप उदान के ,अन्तर उदानवायुके निमित्तके, अनुग्रहके अभाव से लौकिक पुरुष स्वाभाविक तेज से रहित होता है, तब उस समय उस पुरुष को क्षीण आयुवाला मरने के योग्य जानना । और ' पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ' < मनबिषे प्रवेश को प्राप्त भई इन्द्रियों के साथ अन्य शरीर को पावता है> सो ' मरनेवाला ' तेजादिकों के शान्त भये पीछे मनबिषे प्राप्त भई जे वागादि इन्द्रियां ' वाङ्मनसि सम्पद्यते ' तिनके साथ ,अध्यास के वश भया, अन्य शरीर को पावता है॥ ९ । ३८ ॥

१० ॥ हे सौम्य ! हे कौसल्य ! 'यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति' < यह जिसमें चित्तवाला होता है तिस करके प्राणको पावता है अर्थात्, यह जीव जिस पशुपक्षि आदिक शरीर में चित्त करके युक्त होताहै, अर्थात् जिन शरीरों में चित्त संकल्पादि चेतना धर्मवाला होता है, तिन शरीरों में मरणकाल बिषे उस चित्तके संकल्पसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

य एवं विद्वान् प्राणं वेद । नहास्य प्रजा हीयतेऽमृ
भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ । ४० ॥

इन्द्रियोंके साथ मिलके मुख्य प्राणवृत्तिको पावता है, अर्थ
मरण कालविषे इन्द्रियों की वृत्ति के क्षीण भये यह जीव मु
प्राणवृत्तिरूप से ही स्थित होता है । तब इसके ज्ञातिसम्बं
के लोग परस्पर में कहते हैं कि अभी तो यह जीवता है । औ
'प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति
< प्राण तेज करके युक्त हुआ साहित आत्मा के जैसा निश्च
कियाहै तैसे लोकको पावताहै > सो प्राण जब बाह्य के तेजरू
उदानवायु के अनुग्रह को प्राप्तभई जे 'अन्तर' उदानवृत्ति
उत्क्रमण में प्रधान है, तिसकरके युक्त हुआ शरीरके अधिष्ठ
जीवात्मा (साभासलिंग) के साथ तादात्म्यभावको पावता
तब तिस तादात्म्यताकरके भोक्तारूपभया प्राण उक्तप्रकार उदा
वृत्ति सेही युक्तहुआ तिसही भोक्ताको , कि जिसके तादात्म्य
आप भोक्ताभया है, पुण्यपाप रूप स्वकर्म के वश से जैसा
जीवात्माका अभिप्राय है तैसेही लोकको प्राप्तकरता है॥ १०।३५

११ ॥ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार करके व्यष्टि समष्टि प्राण
स्वरूप स्थानादिकों का निर्णय करके अब तिसकी उपासना
विधान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि आत्मा से प्राण उपज
हैं सो मनके किये धर्म अधर्म से शरीर के अर्थ अनुग्रह कर
है । और आपके पांचप्रकार विभाग करके वायु (गुदा) औ
उपस्थ (लिंग) इन स्थानों विषे अपनेही भेद अपान वायु
स्थापन करे है । और चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थान वि
स्वस्वरूप प्राणकोही स्थापित करे है । और नाभिरूप स्थान वि
अपने समानरूप भेद को स्थापन करे है और नाड़ियों के समू
रूप स्थानविषे अपने भेद व्यानरूप को स्थापित करे है । औ
सुषुम्णानाड़ीरूप स्थानबिषे अपने भेद उदानवायु को स्थापि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करे है। और प्राण अपान समान व्यान और उदान, इनके अनुग्रह कर्त्ता बाह्यरूप सूर्य पृथिवी देवता आकाश वायु और तेजरूप से अधिदैवको धारणकरे है। और सूर्यादिकों के अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मको और चक्षुवाक्श्रोत्रमनऔरत्वचारूपऔर चक्षुरादि इन्द्रियोंकरके ग्रहणकरनेयोग्य रूपादि विषयरूप अधिभूतको धारणकरेहै। और सोई प्राण उदानवृत्तिसे भोक्ताकरकेयुक्त हुआ भोक्ता (जीवात्मा) को देहत्यागान्तर लोकान्तर किंवा देहान्तर प्रति लेजाताहै॥हे सौम्य!सोई प्राण सर्वमें ज्येष्ठ श्रेष्ठहै, सोई प्रजापति है, सोई अन्नका भोक्ताहै। इसप्रकार उत्पत्त्यादि उक्त विशेषणोंकरके युक्त प्राणको जानता है सो अग्रिम कहे फलको पावताहै]॥हे सौम्य!हे कौसल्य! ' य एवं विद्वान् प्राणं वेद ' < जो विद्वान् ऐसे प्राणको जानताहै > अर्थात् जो कोई ब्राह्मणादि विद्वान् कहे प्रकार उत्पत्त्यादि विशेषणोंकरके युक्त मुख्यप्राणको जानताहै अर्थात् उपासता है। तिसको इसलोक परलोक सम्बन्धि जो फल प्राप्तहोता है सो वेद भगवान् कहतेहैं ऽ ' न हास्यप्रजाहीयतेऽमृतो भवति तदेषश्लोको (भवति) ' < इसकी प्रजा उच्छेदको पावती नहीं > और < मरण धर्मसे रहित होता है तिस बिषे यह श्लोक (मंत्र) है > इस विद्वान् की ' कि जो प्राणका सम्यक् उपासक है, पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा , उसकी विद्यमानता में, विनाश को पावती नहीं। और शरीर के पतन भये यह प्राणोपासक पुरुष मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) के साथ सायुज्यता (अभेदता) को पाय मरण धर्मरहित अमर होता है ऽ [यह जो प्राणके साथ एकतारूप अमृतभाव है सो प्राणके सकाम उपासकको अन्तमें होताहै। और निष्काम उपासक को चित्त की एकाग्रता और शुद्धि द्वारा आत्मज्ञान होय मुख्य अमृतत्वकी प्राप्ति होतीहै] ऽ और इसही अर्थबिषे यह अग्रिमवाक्यरूपमंत्र प्रमाण है॥इतिसिद्धम्१ १।४०॥

१२॥हे सौम्य!हे कौसल्य! ' उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा अध्यात्मं चैव प्राणस्य ' < प्राणकी उत्पत्ति को आगमन को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा अध्यात्मञ्च
प्राणस्यविज्ञायामृतमश्नुतेविज्ञायामृतमश्नुते॥ १२।४१

इति प्रश्नोपनिषद्गतस्तृतीयप्रश्नः ॥ ३ ॥

स्थानको और पांच प्रकार से स्वामित्व भावको, और, अध्यात्मक
अर्थात् प्राणकी परमात्मा से उत्पत्तिको और मनके किये क
से इस शरीर बिषे आगमन को और गुदा उपस्थादि स्थानों वि
स्थितिको और चक्रवर्त्ति राजावत् प्राण वृत्ति के पांचभेद के प
प्रकार से स्थापन रूप स्वामित्वको। और सूर्य्यादिरूप से स्थि
रूप बाह्यको। और प्राणादिवृत्ति रूपकी चक्षुरादिकों के आका
स्थितिरूप अन्तर अध्यात्माको 'विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञाया
मश्नुते' <जानके अमरणभाव को पावताहै> हे सौम्य! इसप्र
प्राणको सम्यक्प्रकार जानके उपासना करनेवाला विद्वान् प्रा
साथ अभेदता से ऐक्यभावरूप अमृतको पावता है 'जानको
मृत को पावता है' यहां जो द्विबारकथन है सो तृतीयप्रश्न
समाप्त्यर्थ अथवा अपरविद्यासम्बन्धि प्रश्नों की समाप्
किंवा अपरब्रह्मकी उपासना विद्या की समाप्ति के अर्थ
इति सिद्धम् ॥ १२। ४१ ॐ ॥

इति प्रश्नोपनिषद् के तृतीयप्रश्नकी भाषाटीका
समाप्त हुई ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ चतुर्थप्रश्नःप्रारभ्यते॥

अथ हैनं सौर्य्यायणो गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन्नु सर्व्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति॥ १। ४२॥

अथ प्रश्नोपनिषद् के चतुर्थप्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ।

हे सौम्य! प्रथम प्रश्न करके कहे प्रकार कर्म्म उपासनाकी परिणाम, गतिको श्रवणकरके तिनसे वैराग्यवान् हुआ। और द्वितीय तृतीय प्रश्नकरके कहीगई जे प्राणकी उपासना तिसकरके चित्तकी एकाग्रता और शुद्धिवाला हुआ और इसही करके विवेकादि साधनचतुष्टय करके सम्पन्न जो उत्तमाधिकारी को पराविद्या (ब्रह्मविद्या) कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै तिसके श्रवणार्थ चतुर्थ पंचम और षष्ठ इन तीनों प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं॥

१॥ हे सौम्य! 'अथ हैनं सौर्य्यायणोगार्ग्यःपप्रच्छ' < तिसके पश्चात् इसको सौर्य्यमुनिकापुत्र गार्ग्यनामामुनि प्रश्न करताभया > अर्थात् कौसल्यनाममुनिके समाधान होने के पश्चात् सौर्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामवाला मुनि इस उत्तरदाता सर्वज्ञ अपने आचार्य्य पिप्पलादमुनिको पूंछताभया॥ यहां अभिप्राय यह है कि पूर्वके प्रथम, द्वितीय, और तृतीय इन तीनों प्रश्नों से संसार रूप व्याकृत 'अर्थात् कार्यमय जगत् के अन्तर्गत साध्य साधनमय, अर्थात् कर्म उपासना और तिनके फलमय, अनित्य सर्व प्राणरूप अपरब्रह्मकी विद्याके विषयको समाप्तकरके अब असाधनरूप प्रमाणोंकी प्रवृत्तिसे रहित अर्थात् अप्रमेय मनका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अगोचर इन्द्रियोंका अविषय अर्थात् कार्यभाव रहित शिव शान्त अविकारी अक्षर सत्य पर विद्याकरके गम्य बाहरभीतर अजन्म पुरुषनामवाला परब्रह्मकी विद्याका विषयरूप जो वस्तु सो कहने के योग्यहै । एतदर्थ अग्रिम ४-५-६-इन तीन प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं । हे सौम्य! [इसप्रकार सामान्यरीत्या आगेकहने के तीन प्रश्नोंका सम्बन्ध कहके अब केवल चतुर्थप्रश्नके ही सम्बन्ध को कहतेहैं] तहां ऽ ' यथा सुदीसात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधा सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ' ८ जैसे प्रज्वलित अग्निसे अग्निके अवयव वि नगारी अनेक प्रकारकी सहस्त्रावधि निकलती हैं । हे सौम्य! तैसे ही अक्षर (परब्रह्म) से अनेक प्रकार के पदार्थ, उपजते हैं और तहांही लीन होते हैं > इसप्रकार मुण्डक उपनिषद्के द्वितीयमुं ककी प्रथम श्रुतिमें कहाहै । ऽ कौनसे वो सर्वभाव हैं जो अक्ष ब्रह्मसे उपजते हैं । वा किसप्रकार वे भाव विभागको पायके त ही लीनहोते हैं । और किस लक्षणवाला वो अक्षरब्रह्म है । इ अर्थके श्रवणकरनेकी इच्छासे अब गार्ग्यनामामुनि प्रश्नोंको प्र कट करता भया ॥ गार्ग्यउवाच ' भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति ८ हे भगवन्! पुरुषबिषे कौन सोवताहै (और) कौन इस बिषे ज गताहै (और) जो यह देव स्वप्नोंको देखता है सो कौनहै > हे भगवन् इस मस्तक हाथ पांव आदि अंगोंवाले शरीररूप पुर बिषे कौनसे करण अर्थात् मनआदि अन्तःकरण और चक्षुरा बाह्यकरण इनमेंसे कौनसे करण अपने व्यापार से उपरामत निद्राको करते हैं । और कौनसे करण इस पुरुष बिषे अपने व्य पारके करने रूप जागरण को करते हैं । और कार्य क करणरूप देवताओं के मध्य जो यह देव स्वप्नों को देखता सो कौन है । अभिप्राय यहहै कि जाग्रत् के देखने से निवृत्त पुरुषको स्वशरीर के भीतर जो जाग्रत्वत् ही दर्शनादि हैं वि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को स्वप्न कहते हैं, सो तिसका क्या कार्य्य देह और प्राण रूप देवसे निर्वाह करते हैं, अथवा करण (मनआदि) रूप किसी भी देवसे निर्वाह करते हैं। और ८ 'कस्यैतत् सुखं भवति' ८ यह सुख किसको होता है ? ? जाग्रत् और स्वप्नके व्यापारके निवृत्तहुये प्रसन्न और विषयके अभावमात्र से ही देखनेयोग्य और विनाश रहित आत्माका स्वरूप भूत जो यह सुख है सो किसको होता है। और ८ 'कस्मिन्नुसर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्ति' ८ किसबिषे वह सर्व लीनहोते हैं ? ? जिसकालबिषे जाग्रत् स्वप्नके व्यापार से निवृत्त भये सर्व जीव, जैसे मधु बिषे रस, अर्थात् जैसे मधुकर माक्षिका के उदर बिषे सर्व रस तद्वत्, और समुद्र में प्रवेश को प्राप्त भई नदियोंवत्, किसबिषे एकताको प्राप्तहो के विवेचन के अयोग्य हुये लीन होते हैं। अर्थात् [इस चतुर्थ प्रश्न बिषे अक्षर (परमात्मा) के स्वरूपको ही श्रवण करने की इच्छा होने से तिसके निर्णयहोने के अर्थ 'कानि स्वपन्ति' ८ कौन सोवताहै ? इत्यादि पांचप्रकार के आवान्तर प्रश्नवाला जो प्रश्नहै सो जाग्रदादि अवस्था के मिस अवस्थाओं के धर्मीविशेषके निर्णयार्थ है। ८ अन्यथा विचारने से उन जाग्रदादि अवस्थाओं को आत्मा के धर्म होनेको शंकाके होने से तिस आत्मा के निर्विशेष भावके निर्णयकी असिद्धिहैं। ? तहां प्रथम प्रश्नकरके जाग्रत्काधर्मीपूंछा क्योंकि स्वप्नअवस्थामेंजिसके व्यापारकी निवृत्तिकेहोनेसेजाग्रत् नहींहै सो तिसजाग्रत्का धर्मी है इसप्रकार निश्चयकरने को शक्य है ताते ॥ और द्वितीय प्रश्नकरके तीनोंही अवस्था बिषे शरीरका रक्षण ? होना किसके धर्म से है, यह प्रश्न किया ८ क्योंकि जागते हुये और व्यापारों से निवृत्त भये प्राणकोही शरीरका रक्षक होने का संभव है ताते ॥ ? और तृतीयप्रश्न करके स्वप्न के धर्मी के अर्थ प्रश्न किया ॥ और चतुर्थ प्रश्नकरके सुषुप्तिका धर्मी पूंछा। क्योंकि 'सुखमहमस्वाप्सामिति' ८ मैं सुख जैसे होय, तैसे, सोयाथा ? इसप्रकारके सुषुप्तिसे जाग्रत्भये पुरुषको स्मरण के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने से सुखके सुषुप्तके साथ सम्बन्ध है ऐसा जानाजाता
ताते । और सुषुप्ति अवस्था बिषे प्रकाशमान जो यह ऽ
गुली निर्देशवत् प्रकट सुख है सो , मैं सुख से सोया था, इ
स्मरण का मूलभूत है । अर्थात् जाग्रत्भये जो सुषुप्ति के सुख
स्मरण है सो सुषुप्ति के आनन्द के आश्रय है ताते सुषुप्ति
सुख जाग्रत् भये सुखकी स्मृति का मूलभूतहै । एतदर्थ चतुर्थप्रश्न
से सुषुप्तिका धर्मी पूंछा ॥ और पंचम प्रश्नकरके तीनों अवस्था
करके रहित और तीनोंही अवस्थाके स्थितिकी " भूमा "भूमी
रूप तुरीय नामवाला अथवा तुरीयरूप अक्षर पूंछा ॥ यहां 'त
स्मिन् काले ' < तिस कालबिषे > इसप्रकार आरंभ किये हुये
पंचम प्रश्नकरके यद्यपि तुरीय पदके अर्थही प्रश्नहै सुषुप्तिके अर्थ
नहीं तथापि संसार दशाबिषेसर्व उपाधिसे राहितजो तुरीयअवस्था
है तिसके अभावभये से किसी न किसी उपायसेही उस तुरीय
पदका देखावना होताहै ताते ,उस सुषुप्तिवाले पुरुषवत् ज्ञानके
हुये भी, अर्थात् जैसे सुषुप्तिअवस्थावाले को सुखरूपका प्रकट
ज्ञानहोताहै, तिसकेहोतेहुये भी तहां (सुषुप्तिमें) अन्यउपाधियों
से रहित होनेकरके तहांही सर्व उपाधियोंके विवेकके करने से तु
रीयपदका देखना सुगमहोताहै ताते तिस सुषुप्तिकालबिषे तुरीय
पदके अर्थ सर्व्वके लयका कथन है । और यहां सुषुप्ति अवस्था
बिषे सर्वप्रकारके लयके देखावनेका अभावहै, ताते भेदज्ञानरूप
विवेकके अभावमात्रसे ' मधुबिषे रस और समुद्रबिषे नदियांका
यह दोनों दृष्टान्तहैं अर्थात् मधुबिषे रसको और समुद्र बिषे नदि
योंको यह विवेक नहीं रहता जो हम अमुकवृक्ष के रस और अ
मुकनदीकाजल है । इस अभिप्रायसे ८ विवेचनके अयोग्य ऐसा
भाष्यमें कहाहै ? । एतदर्थ पूर्व विवेकके अयोग्य हुये पीछे लीन
होतेहैं । जैसे जलमें डूबता प्रथम दर्शनके अयोग्यहुये पीछे दू
वताहै तैसे ॥ इत्यर्थः ॥ शंका ॥ इस पंचमप्रश्नकरके भी अवि
द्याकी वासनासे विवेचनकरनेको अयोग्यहुआ सुषुप्ति के धर्मीके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ ही प्रश्न किया होगा ॥ समाधान ॥ यह शंका करने योग्य नहीं, क्योंकि 'सपरेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते' < सो परमात्मारूप अक्षरबिषे लयको पावते हैं इसप्रकार आगे इसही प्रश्न के नवम वाक्यके अन्तबिषे कहेंगे ताते। और सुषुप्ति में अज्ञान बिषेही लय होता है ताते। और 'एषहिद्रष्टा' < यहही द्रष्टा है > इत्यादि इस प्रश्न के नवम वाक्य की आदि में कहे अज्ञान बिषे प्रतिबिम्बित भोक्ता जीव के भी अक्षरबिषे लयका कथन है ताते। और 'अच्छाय' < छाया रहित > अर्थात् अज्ञान रहित, यह इसही प्रश्न के दशम वाक्यबिषे अज्ञान के अभाव का कथन है ताते। एतदर्थ इस < ['कस्मिन्नु सव्वें प्रतिष्ठिता भवन्ति' <किस बिषे सर्व लय होते हैं > > पंचम प्रश्न करके तुरीयरूप अक्षरही पूंछा है। इतिभावः] शंका ॥ कार्य कारण से व्यतिरिक्त (जुदा) किसी एक लय के आधार से सामान्यरीति करके जानेहुये किस बिषे लय होता है, ऐसा विशेषार्थ प्रश्न उक्तहै। और यहां जिस करके उस लय के आधारका सामान्यपने करके ज्ञान नहीं भया है तब तिसके विशेष स्वरूप के अर्थ प्रश्न कैसे घटेगा किन्तु न घटेगा। और जो ऐसा कहो कि लयको आधार सहित होने करके सामान्यपने से तिस लयके आधारका ज्ञान भया है। सो कहना बने नहीं, क्योंकि तिस तिस कार्य घटादिकों का उपादान मृत्तिकादि अचेतनों कोही तिन घटादिकों के आधार होने करके तिन मृत्तिकादिकों से पृथक् चेतनरूप आधार की असिद्धि है। 'एतदर्थ यहां वादी शंका करता है] कि < जैसे त्याग किये दात्रि (दरांति धान्य आदिक काटनेका शस्त्र) आदि करणोंवत्, अपने २ व्यापार से निवृत्त भये इन्द्रियादि करण पृथक् २ ही अपने २ आत्म (कारण) स्वरूपबिषे स्थित होते हैं, ऐसा मानना युक्त है, एतदर्थ यहां सुषुप्ति को प्राप्त होके पुरुषों के करणों (इन्द्रियों) का किसी भी बिषे एकता भावके प्राप्ति की आशंका की प्राप्ति कहां से होगी किन्तु न होगी ॥ समाधान ॥ हे वादी ! प्रश्न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाच। यथा गार्ग्यमरीचयोऽर्कस्यास्तंगच्छन्तः सर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वैतत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ । ४३ ॥

करनेवाले की यह शंका ८ कि किस बिषे सब लय होते हैं ? युक्तही है, क्योंकि जिस करके जाग्रत्बिषे संघात रूप भये करण (इन्द्रियादि) सो अपने स्वामी (संघाताभिमानी) के अर्थ होते हैं ताते परतन्त्र हैं । और एतदर्थ ही सुषुप्तिबिषे भी एकत्र हुये करणों (इन्द्रियों) का परतन्त्र भाव से ही किसी न किसी वस्तु बिषे मिलना युक्त है एतदर्थ आशंका के अनुसार ही यह प्रश्न है । अर्थात् अन्तःकरण बिषे विद्यमान जे शंका तिसके अनुसार वाणी करके कहा यह प्रश्न है और ८ यहां लयरूप विशेषण करके युक्त जो सोपाधि आत्मा तद्विषयक प्रश्नहीं ८ किन्तु, जैसे काक (कौआ) करके उपलक्षित देवदत्त का गृह, तैसे सर्व के लयरूप उपलक्षण करके लक्षित जे शुद्धआत्मा तद्विषयक प्रश्न है । इस तात्पर्य से कहते हैं]) यहां तो कार्य और कारण का संघात है सो सुषुप्ति और प्रलयकाल में जिस बिषे लीन होता है 'स कोनुस्यादिति' ८ सो कौन है) इस प्रकार जानने की इच्छा वाले का ८ 'कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति' ८ किसबिषे सर्व भली प्रकार लीन होता है)) जो यह प्रश्न है सो शंकानुसार युक्त ही है ॥ १ । ४२ ॥

२॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब प्रश्न किया तब 'तस्मै सहोवाच' ८ तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहता भया) अर्थात् तिस गार्ग्यमुनि नामवाले अपने शिष्य के अर्थ सो पिप्पलादमुनिनामवाले सर्वज्ञ आचार्य कहते भये कि 'यथा गार्ग्यमरीचयोऽर्कस्यास्तंगच्छन्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति' < हे गार्ग्य! जैसे सूर्य्य के सर्व किरण अस्तहुये इस तेजोमण्डल बिषे एकत्र होते हैं > हे गार्ग्य! जो तैंने प्रश्न किया है तिसका उत्तर सावधानतासे श्रवणकर। जैसे सूर्यके सर्वकिरण अस्तताको प्राप्तहुये इस तेजोमंडल बिषे एकताको पावते हैं। और <'ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति' < सो पुनः पुनः उदयको पाये हुये फैलते हैं >> सो तिसही सूर्य्यके किरण बारंबार उदयताको पायेहुये सर्वओरको फैलतेहैं < 'एवं ह वै तत् सर्व्वं परे देवे मनस्येकीभवन्ति' < ऐसे प्रसिद्ध यह सर्व परम देव मन बिषे एकत्र होतेहैं >> जिस प्रकार यह दृष्टांतहै, इसप्रकार यह प्रसिद्ध जो विषय और इन्द्रियादिकों का समूह और चक्षुरादि देवताओंको, मनके आधीन होनेसे परमोत्कृष्ट देव (प्रकाशवान्) जो मनहै तिसबिषे, <'जैसे तेजोमय मंडल (सूर्य्य) बिषे किरणोंकी एकता होती है तैसे'> स्वप्नकालमें एकताको प्राप्त होते हैं। और जाग्रत्की इच्छावाले पुरुषके विषय और इन्द्रियादि, <'जैसे सूर्य्यमण्डलसे निकले हुये किरण अपने प्रकाश कर्त्तव्यरूप व्यापारको करते हैं तैसे'> मनसे निकसेहुये अपने २ व्यापारको करते हैं। और जिसकरके स्वप्नकालमें शब्दादि विषयों के ज्ञानके साधक जे श्रोत्रादि इन्द्रियां सो मनबिषे एकताको प्राप्तहुयेवत् अपने करणत्वरूप व्यापारसे निवृत्त होतेहैं <'तेन तर्ह्येष पुरुषो, न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति, न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नादत्ते, नानन्दयते, न विसृजते, नेयायते, स्वपितीत्याचक्षते' <तिससे स्वप्नकाल बिषे यह पुरुष, श्रवण करतानहीं, देखतानहीं, गंध लेता नहीं, रसकास्वाद लेतानहीं, स्पर्शकरता नहीं, बोलतानहीं, ग्रहणकरता नहीं, आनन्दको पावता नहीं, मलमूत्रको त्यागता नहीं, चलता नहीं, (किन्तु) सोवता है ऐसा कहते हैं> तिसकरके तिस स्वप्नकालबिषे यह ब्रह्मदत्तादि नामवाला शरीररूप पुरुष, सुनता नहीं, देखता नहीं, गंध लेता नहीं, रसादिकोंका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ । ४४ ॥

करता नहीं, कुछभी बोलता नहीं, कुछभी लेता नहीं, विषयजन्य आनन्द को प्राप्त होता नहीं, मलमूत्रादिकों को त्यागता नहीं, कहीं को भी चलता नहीं, किंतु उसको सोवता है ऐसा कहते हैं॥२।४३॥हे सौम्य ! यहां पर्यन्त 'एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति <इस शरीर बिषे कौन सोवताहै> इस प्रथम प्रश्न का उत्तर कहा॥

३ ॥ हे सौम्य ! अब 'कान्यस्मिन् जाग्रति' < इस शरीर नामक पुरबिषे कौन जागताहै > यह जो गार्ग्यमुनि का द्वितीय प्रश्नहै तिसका उत्तर जो पिप्पलादाचार्यने कहा है तिसको भी श्रवणकरो॥ पिप्पलादउवाच॥ हे गार्ग्य ! 'प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति' < इस पुरबिषे प्राणरूप अग्निही जागते हैं > अर्थात् चक्षुरादि सर्व करणों को सो ये (मनबिषे एकत्र) हुये इस नव किंवा दश किंवा एकादश द्वारवाले देहरूप पुरबिषे प्राणादि नाम वाले पांच वायुही, अग्निवत्, अग्नि है सोई जागते हैं॥ हे सौम्य! अब प्राणों को अग्नि की समता कहते हैं तिसको श्रवण करो॥ 'गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो' < यह प्रसिद्ध अपान है सो गार्हपत्याग्नि है > अर्थात् यह जो प्रसिद्ध अपान वायुहै सोई गार्हपत्य नामवाला अग्नि है ॥ प्र० ॥ किस प्रकार है ॥ उ० ॥ 'गार्हपत्यात्प्रणीयते' < गार्हपत्य नामवाले अग्नि, से निकलते हैं > हे सौम्य ! जैसे अन्य अग्नि के रचनेवाले गार्हपत्य नामवाले अग्नि से, नित्य के अग्निहोत्रके काल से अन्य अग्निहोत्र के कालबिषे तिस गार्हपत्य अग्नि से अन्य आहवनीय नामवाला अग्नि निकालते हैं तैसे जिस करके सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त भये पुरुषके, गार्हपत्याग्नि भावसे कहा जो अपान नामवायु तिसके भीतरजानेसे प्राणवायु निरावरणहोता है तिसकारण से, मेघोंसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदुच्छ्वास निःश्वासावेतावाहुती समंनयतीति स समानः। मनो हवाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४। ४५ ॥

से निकसे चन्द्रमावत्, अपानवायु से निकसे हुयेवत् मुख और नासिकारूप द्वारसे बाहर (ऊपर) को चलताहै एतदर्थ अपान वायु गार्हपत्य अग्नि के स्थानापन्नहै। और ८ 'आहवनीयः प्राणः' <प्राण आहवनीय है>> जैसे गार्हपत्याग्निसे निकसनेवाला आहवनीय अग्नि है, तैसेही अपान वायु से निकसनेवाला प्राण वायु है, एतदर्थ प्राणवायु आहवनीय नामवाले अग्नि स्थानापन्न है और ८ 'व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो' <व्यानदक्षिणाग्निहै>> व्यान वायुहै सो हृदयरूप देशसे दक्षिणवायु के छिद्रद्वारा निकलता है इसही करके सो दक्षिण दिशाका सम्बन्धी है एतदर्थ वो दक्षिणाग्नि के स्थानापन्न है ॥ ३। ४४ ॥

४॥ हे सौम्य! अब यहां इस चतुर्थवाक्य करके अग्निहोत्रके हवनका कर्त्ता ऋत्विक्रूप होता कहते हैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हेगार्ग्य! 'यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समंनयतीतिससमानः' <इन उच्छ्वास और निःश्वासरूप आहुतिको समप्रवृत्तकरताहै सो समान है> अर्थात् जिस करके उच्छ्वास और निःश्वास यहदोनों आहुति हैं। क्योंकि अग्निहोत्र की दो आहुतिवत् सर्वदा दोनों की संख्या की समताहै। और तिसकरके यह दोनों आहुतिरूप हैं। और जो इन उच्छ्वास और निःश्वासरूप आहुतिको, अग्निहोत्रके हवनकर्त्ता होतावत्, शरीर की स्थिति के निमित्त समभावसे जो वायु प्रवृत्तकरता है, तिसकरके सो वायु दोनों आहुति का प्रवर्त्तक होने से पूर्वोक्ति के अनुसार अग्निस्थानापन्न हुआ २ भी होतारूप है, ८ [शंका 'प्राणाग्नय' इसवाक्य से सर्व प्राणोंको अग्नित्व कहाहै, तब यहां समानवायु को होताकर के कैसे कहतेहैं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य! यद्यपि 'प्राणाग्नयएवै-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन् पुरे जाग्रति ' < पांचप्राणरूप अग्निही इसपुर बिषे जागते हैं > इस तीसरे वाक्य बिषे समानवायु को भी अग्निस्थानापन्न कहाहै सो सत्य है, तथापि < जैसे अग्निहोत्रबिषे हवन कर्त्ता ब्राह्मण दोनों आहुतियोंको आहवनीय नामवाले अग्नि के प्रतिसमभावसे हवनकरताहै, तैसे> यह समानवायु उच्छ्वास और निःश्वासरूप दोनों आहुतियों को शरीर की स्थिति रहने के अर्थ समता करके प्रवृत्त करे है, एतदर्थ आहुति का प्रवर्त्तक होने से तिस समान वायु को होता नामसे कहते हैं । और समान वायु को होतापने के सिद्धभये जो अग्निपने का कथन है तिसका < छत्रीवाले जातेहैं, इस वाक्य से जिसके पास छत्री है तिसका और तिससे भिन्न दूसरे का दोनों का ग्रहण होता है । तैसेही अग्निरूप और तिससे भिन्न होतारूप दोनों के ग्रहण बिषे यह लाक्षणिक अर्थ है] ॥प्र०॥ यह होता रूपवायु कौनसा है ॥उ०॥ सो होतारूप समान नामवाला वायु है । [तीनों अवस्थाओं से रहित और तीनों अवस्थामें वर्त्तमान उच्छ्वास और निःश्वासरूप प्राणोंकी अग्निहोत्र के अवयव रूपताके सम्पादन का उपासनारूप प्रयोजन नहीं, क्योंकि यहां निर्विशेष आत्माका प्रसंगहै ताते। और यहां तिस प्राणोंकी विधिका अभाव है ताते। किन्तु इन्द्रियां सोवे हैं और प्राण जागे हैं ऐसा कहा है । ताते यहां त्वं पद के शोधनरूप ज्ञानकी स्तुतिहीहै] एतदर्थ विद्वान् (कर्मउपासना के समुच्चय करनेवाले) का स्वप्न भी अग्निहोत्र का हवनही है। ताते विद्वान् कर्म से रहित नहीं ऐसा मानना योग्य है । और ' मनोहवाव यजमानः ' < मन प्रसिद्ध यजमानहै > स्वप्न बिषे पंचप्राणरूप अग्निके जागते हुये बाहर के करणोंको और विषयों को लय करके < अग्निहोत्र का फल जो स्वर्ग तद्वत्, सुषुप्तिकाल बिषे ब्रह्मके अर्थ जाने को इच्छाकरता हुआ मन यजमानवत् प्रसिद्धजागता है । अर्थात् सो मन < जैसे यजमान यज्ञकी सब सामग्री में प्रधान होता है तैसे, कार्य और करणों बिषे प्रधान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रैष देवःस्वप्ने महिमानमनुभवति यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशादिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्चसर्व्वःपश्यतिसर्व्वःपश्यति॥५।४६॥

होने करके व्यवहार करनेसे, और जैसे यजमान स्वर्गार्थप्रस्थान पावता है तैसे, ब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं प्रस्थान को पाया होने से यजमान है। ऐसा जानना और ८ 'इष्टफलमेवोदानः' ८ उदान यज्ञका फलही है ९ उदानवायु जो उत्क्रमण में प्रधान है सो यज्ञका फलही है काहेते कि यज्ञके फलकी प्राप्ति उदान वायुरूप निमित्त वाली है ताते [अर्थ यह है कि यजमानको मरणके अनन्तर उदानवायुरूप निमित्तवाले यज्ञादिकोंके फलकी प्राप्ति है] ताते उस उदानवायु को यज्ञों के फलका निमित्त कारण होने से और कारण बिषे कार्य के आरोप होने से उदानवायुको इष्टफल करके कहा है॥ प्र०॥ उदानवायु को यज्ञका फलपना कैसे है॥ उ०॥ 'सएनं यजमानमहरहर्ब्रह्मगमयति' ८सो इस यजमान को दिनदिन बिषे ब्रह्म के अर्थ प्राप्त करता है ९ सो उदान वायु इसमन नामवाले यजमान को स्वप्नवृत्तिरूपसे भी चलायमान करके नित्य नित्य सुषुप्ति कालबिषे अक्षरब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं ही प्राप्त करे है। अर्थात् [यद्यपि दिनदिनबिषे जो ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै सो यज्ञका फल नहीं काहेते कि यज्ञ से रहित पुरुषको भी तिससुषुप्ति बिषे उस ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै ताते। तथापि ब्रह्मकोही सर्वयज्ञों का फलपनाहै, ताते सुषुप्तिरूप द्वारकरके तिस ब्रह्म के प्रापक उदानवायुको इष्टफलकी प्रापकताहै, यहभावहै] एतदर्थ उदानवायु यज्ञके फल के स्थानापन्न है॥ इतिसिद्धम्॥४।४५॥

५॥ शङ्का 'गार्हपत्यो हवा एषोऽपानो' ८ यह अपानवायु गार्हपत्य नामवाला अग्निहै९ यहां से आरम्भकरके 'मनो हवाव यजमान' ८ मनरूपही प्रसिद्ध यजमान है ९ इस श्रुतिपर्यन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो कहा है तिसकरके विद्वान् कर्मी नहीं होता इसप्रकार विद्व
की स्तुति किया है ऐसा तुमने कहा सो अस्तु । परन्तु इसप्रक
तहां अग्निहोत्रादि कर्मों की प्रतीति से उदानवायुको यज्ञके फ
स्थानापन्न कहाहै तिसकरके तो इस यज्ञ का फलपना नहीं
क्योंकि तहां कर्म की अप्रतीति है ताते ॥ समाधान ॥ यहां क
भाव है कि, श्रोत्रादि इन्द्रियां स्वप्न बिषे सोवें (उपरामहोवें)
और प्राणही जागते हैं, इस स्वरूपवाली विद्यारूप विद्वत्ताहै ति
विद्वत्ताकी यहां स्तुति करते हैं। और इस उक्तविद्याको ,जागर
जो है सो श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों का धर्महै और शरीर का रक्ष
करना प्राणका धर्म है ताते इनमें आत्मा का धर्म कोईनहींहै
प्रकारके त्वंपदके, विवेकरूप होनेसे उक्तविद्याकरके युक्तविद्व
की स्तुति करने की योग्यताका सम्भवहै। और एतदर्थही प्राण
जो जागरण है सो विद्वान् और अविद्वान् दोनोंको समानही
तब अविद्वान्को त्यागके विद्वान्कीही स्तुति कैसेहै, ऐसी जो
शङ्का तिसका भी अभावभया, क्योंकि अविद्वान्का उक्त विद्या
अविवेकका अभावहै ताते, विद्वान्कीही स्तुति है । हे सौम्य! इ
प्रकार विद्वान् को श्रोत्रादि इन्द्रियरूप करणों के उपरामक
से आरम्भकरके यावत् पर्य्यन्त सुषुप्तिसे उत्थानको प्राप्त होतां
तावत्पर्यन्त सर्व यज्ञ के फल के अनुभव होने से अविद्वानोंक
अनर्थ के हेतु नहीं । इस प्रकार यहां विद्वत्ताकी स्तुति करते हैं
और जिसकरके केवल विद्वान्केही श्रोत्रादि इन्द्रियां सोवें हैं
अथवा प्राणरूप पांच अग्नि जागते हैं, अथवा जाग्रत् और स्व
बिषे मन अपनी स्वतन्त्रता को अनुभवकरता हुआ नित्य नित्य
सुषुप्तिको प्राप्त होता है ऐसा नहीं ताते विद्वान्केही इन्द्रियादि
उपरामादि होते हैं इसप्रकार विधान करना योग्य नहीं, किन्तु
सर्व प्राणधारियोंको क्रम से जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों
अवस्थाबिषे जो गमन है सो समानही है । एतदर्थ यह विद्वान्
की स्तुतिही सम्भवे है ॥ हे सौम्य! पूर्व जो गार्ग्यमुनिने तीसरा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न किया था कि ' कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति ' < कौनसा यह देव स्वप्नोंको देखता है> तिसका उत्तर पिप्पलाद मुनि कहते हैं कि हे गार्ग्य! 'अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति' <यहां यह देव स्वप्नबिषे महिमाको अनुभव करे है > अर्थात् प्रथम श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपराम भये और देहकी रक्षार्थ प्राणादि पांचवायु के जागतेहुये सुषुप्ति की प्राप्तिसे पूर्व इस सन्धि में यह देव 'जैसे सूर्य्य अपनी किरणों को अपने बिषे लयकरता है तैसे, अपने स्वरूप बिषे लयकियेहैं चक्षुरादि करण जिसने, इसप्रकार हुआ स्वप्नविषे विषय और विषयीरूप अनेक वस्तुओं को आत्म (अपने) भाव की प्राप्तिरूप महिमा को अनुभव करता है ॥ शंका ॥ महिमाके अनुभव करने बिषे अनुभव कर्त्ता को करण जो है सो मन है एतदर्थ सो मन स्वतन्त्र होनेसे कैसे अनुभव करताहै ॥समाधान॥ हे सौम्य ! क्षेत्रज्ञ आत्मरूप जो देव है सो स्वतन्त्र हुआ भी महिमा का अनुभव करता है यह दोष नहीं है। क्योंकि क्षेत्रज्ञ का जो स्वतन्त्रपना है सो मनरूप उपाधि का किया है। और परमार्थ से तो स्वयं क्षेत्रज्ञ न सोवता है न जागता है ताते तिस क्षेत्रज्ञ का जो जागना और सोवना है सो मनरूप उपाधिकृत ही है ॥ तथा च ' सधीः स्वप्नोभूत्वा ध्यायतीवेत्यादि ' < बुद्धि सहित हुआ, आत्मा, स्वप्नरूप हो के ध्यावते हुयेवत् होता है इत्यादि> बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे कहा है। एतदर्थ देवशब्द करके उक्त मनको विभूत के अनुभव करने बिषे स्वतन्त्रपने का वचन युक्त ही है ॥ हे सौम्य ! ' कई एक वादी कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ को स्वप्नकाल बिषे मनरूप उपाधि करके सहित हुये तिस क्षेत्रज्ञ को स्वयंज्योतिपने की प्रतिपादक श्रुति बाध को पावती है, सो बने नहीं। क्योंकि उनवादी पुरुषों को श्रुत्यर्थ के अज्ञान से भई भ्रान्ति है। और जिससे मनआदिक उपाधि करके जन्य जो स्वयंज्योतिपने आदिका व्यवहार है सोभी मोक्ष पर्यन्त सर्व अविद्या (अविद्वान्) का विषयही है। क्योंकि 'यत्र वा अन्यदिवस्यात्तत्रा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न्योऽन्यत्पश्येन्मात्रं संसर्गस्त्वस्य भवति' < जहां वा अन्य
होय तहां अन्य अन्य को देखे और इस आत्मा को विषयों
असम्बन्ध होता है > और 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्
केंपश्येदित्यादिश्रुतिभ्यः' <जहां तो इस (पुरुष) को सर्व आत्म
होताभया तहां किसकरके किसको देखे > इत्यादिक बृहदार
उपनिषद्के छठे अध्यायकी श्रुतिसे सिद्धहै ताते उक्त जो शंका
सो मंद ब्रह्मवेत्ताओंकी ही करीहुई है , यथार्थ एकात्मवेत्ता
नहीं, ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! जैसा आप कहते हौ तैसा होते
'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः' < यहां यह पुरुष स्वयंज्योति है
इस श्रुति बिषे 'अत्र' < यहां > ऐसा जो विशेषण है सो व्यर्थ
होवेगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य ! हे वादी ! यह तुझकरके अल्प
कहते हैं जिसकरके 'यएषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेतेति
< जो यहअन्तर हृदय बिषे आकाश है तिसबिषे (आत्मा) रह
है > इस श्रुति करके अन्तर हृदय के परिच्छेद के भये अवश्
करके आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधको पावेगा ॥ और जो क
कि यद्यपि यह उक्त दोष होगा, यह आपका कहना सत्यही है
तथापि स्वप्नबिषे आत्मा को केवल (मनके अभाव युक्त) पर
स्वयंज्योति होने करके तिस आत्माका आधा ओज (प्रतिबन्धक
दूरभया और [अवशेष रहा जो आत्मा तिसका बोध सुषुप्ति वि
होगा यह तेरा अभिप्राय है] सो कहना बने नहीं । क्योंकि वह
(सुषुप्तिबिषे) भी 'पुरीततिशेतेति' < पुरीतति नामवाली नाड़ि
बिषे रहता है > इस श्रुति करके पुरीतति नामवाली नाड़ि
का सन्बन्ध रहता है ताते ॥ और जो ऐसा कहे कि वहां स्व
में भी पुरुष को स्वयंज्योति होने से जब आधे ओजके दूर हो
का अभिप्राय मिथ्याही है ॥ तब 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति
< यहां यह पुरुष स्वयंज्योति होता है > यह कहना कैसे बनेगा
और जो कहो कि अन्य शाखान्तर रहने से यह श्रुति अन्य श्रु
की अपेक्षा से रहती है सोभी बने नहीं क्योंकि सर्व श्रुति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के अर्थकी जो एकता है सोई इच्छित है ताते। और सर्व वेदान्त शास्त्रों का अर्थरूप एकही आत्मा आचार्य करके जनावने को और जिज्ञासुओं करके जानने को इच्छित है। एतदर्थ श्रुति को यथार्थ तत्त्व की प्रकाशक होने करके स्वप्नबिषे आत्मा के स्वयं ज्योतिपने का संभव कहने को युक्त है। ऐसे वादी ने कहा। तब सिद्धान्ती कहे हैं कि हे वादी! जब तू इसप्रकार जानता है तब अपने सर्व अभिमान को त्याग के इस बृहदारण्य की श्रुतिका अर्थ श्रवण कर, क्योंकि अभिमान के होते तो सौवर्ष पर्यन्त भी अपने को पण्डित माननेवाले पुरुषों करके श्रुतिका अर्थ जानने को शक्य नहीं। ताते यहां श्रुतिका यह अर्थ है कि जैसे हृदयाकाश बिषे और पुरीतति नामवाली नाड़ियों बिषे स्वप्नको प्राप्त हुये आत्माका उन स्थान और तिनके धर्म से सम्बन्धका अभाव है, ताते आत्मा उन्हों करके (चन्द्रशाखा न्याय प्रमाण) विवेचन करके देखावने को शक्य होता है। एतदर्थ आत्मा का स्वयं ज्योतिपना बाध को पावता नहीं। इसप्रकार अविद्या और काम और कर्मरूप निमित्तों से उद्भवता को प्राप्त भई जो वासना तिस वासनावाले मनबिषे कर्मरूप निमित्तवाली वासनामय अविद्या से अन्य को अन्यवस्तुवत् देखनेवाले, और समस्त कार्य और करण से विवेचन किये हुये द्रष्टा को दृश्यरूप वासना से पृथक् होने करके तिसका स्वयं ज्योतिपना, नित्य गर्वित नैयायिकों से भी निवारण करनेको शक्य नहीं। ताते करणों के मनबिषे लीन हुये और मन के अलीन हुये मनोमय देव स्वप्नों को देखता है। यह आचार्य (पिप्पलाद) ने श्रेष्ठ कहा है॥ प्र०॥ हे प्रभो! कैसे महिमा को अनुभव करता है॥ उ०॥ हे सौम्य! 'यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति' < जिसको देखाहै (तिसको) देखेहुयेवत् मानता है (और) सुने अर्थ को पीछे सुने हुयेवत् मानता है> अर्थात् जिस मित्र वा पुत्रादिकों को पूर्व देखता भया है तिनकी वासना करके युक्त भया, पुत्र या मित्रादिकों की वासना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति ॥ ६ । ४ ।

से उत्पन्न हुये दृष्टवस्तुको पुत्र और मित्रवत् अविद्या करके देखे हुयेवत् मानता है । तिसही प्रकार जो अर्थ सुना है तिसही सुने अर्थ को तिसकी वासनावश पीछे सुनेहुयेवत् मानता है । और ऽ 'देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति' ८ देश से और दिशान्तर से बारम्बार अनुभव किये को अनुभव करता है ८ नदी के तट आदि अन्य देशों से और पूर्वादि अन्य दिशाओं से बारम्बार अनुभव किया जो वस्तु तिनको अविद्या करके अनेक दिनों बिषे वर्त्तमान अनेक स्वप्न बिषे अनुभव करता है । और ऽ 'दृष्टश्चादृष्टश्च श्रुतश्चाश्रुतश्चानुभूतश्चाननुभूतश्च सर्वः पश्यति सर्वः पश्यति' ८ देखे और न देखे, सुने और न सुने अनुभव किये और न अनुभव किये सर्व को देखताहै सब हुआ देखता है ८ ऽ तैसेही अन्य जन्म बिषे देखे और इस जन्म बिषे न देखे वस्तु को और तैसेही अन्य जन्मबिषे सुने और इस जन्म बिषे न सुने वस्तु को और तैसेही अन्य जन्मबिषे मन करकेही अनुभव किये और इस जन्मबिषे केवल मनसे न अनुभव किये अर्थात् जलादि सत्यरूप और मरीचिजल आदिक असत्यरूप किन्तु बहुत कहने से क्या है, इन सर्व वस्तुको जो देखता है सो सर्व मनकी वासनारूप उपाधिवाला हुआ देखताहै इसप्रकार सर्व करणरूप मनोमय देवस्वप्नों को देखता है इतिसिद्धम् ॥ ५ । ४ ।

६ ॥ हे सौम्य ! अब गार्ग्यमुनिका जो चतुर्थप्रश्न है कि, यह सुख किसको होता है, तिसका उत्तर जो पिप्पलादमुनि ने कहा है तिसको भी श्रवण करो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य ! 'स यदा तेजसाऽभिभूतोभवति' ८ सो जिसकाल बिषे तेज करके पराभव होता है ८ अर्थात् सो मनरूप देव जिस कालबिषे चिन्ता नामवाले सूर्य के तेजकरके नाड़ीरूप शय्याबिषे सर्वओरसे पराभ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स यथा सौम्य वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते।
एवं हवै तत्सर्व्वं परआत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७। ४८ ॥

भवको प्राप्त होता है अर्थात् , वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्न-भोग के दाता जे कर्म तिनके तिरस्कार करके युक्त होता है तब इन्द्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदय विषे लीन होते हैं। तब मन वनके अग्निवत् सामान्यज्ञान अर्थात् चैतन्यरूपता करके सम्पूर्ण शरीरविषे व्याप्त होके स्थित होता है, तब सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तब ऽ 'अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यति' < यहां यह देव स्वप्नों को नहीं देखता > ऽ तिसकाल विषे मन नामवाला देव स्वप्नों को देखता नहीं क्योंकि देखने के जे द्वारहैं सो तेजकरके निरोधको पावते हैं। और ऽ 'अथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति' < पीछे तब इस शरीर बिषे यह सुख होता है > ऽ अर्थात् जो बाधरहित सामान्यरूपसे शरीरविषे व्यापक प्रसन्नज्ञानरूप स्वरूप सुख है सो यह अर्थ है ॥ ६। ४७ ॥

७॥ हे सौम्य ! [कहे प्रकार इस षष्ठवाक्य करके आनन्दमय कोश शब्दका वाच्य अस्पष्ट और मन आदिकों को वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मी है, इस प्रकार गार्ग्यमुनिके 'कस्यैतत्सुखं भवति' < किसको यह सुख होताहै > इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर पिप्पलाद मुनिने कहा ॥ अब इस सातवें वाक्यकरके गार्ग्यमुनिके 'कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति' इस पंचम प्रश्नका उत्तर, विवेकी सुगमतासे तुरीयस्वरूपों को विवेचन करके कहतेहैं] इसकालविषे अविद्या और काम और कर्मरूप कारणसे भये जे कार्य और करण सो निवृत्त होते हैं। और तिनके निवृत्तहुये उपाधियों से विपरीत भासमान जो आत्मास्वरूप सो अद्वैत एक शिव (सुखरूप) शान्त होता है एतदर्थ इसही सुषुप्ति अवस्था को पृथिवी आदिक भूत और अविद्यारचित तिनकी मात्रा के विवेक करके अक्षर ब्रह्मबिषे प्रवेशसे देखावनेको दृष्टान्त कहते हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ॥ ८ । ४९ ॥

'स यथा सौम्य वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते' < हे सौम्य! जैसे पक्षी वासार्थ वृक्षके ताईं जाते हैं > अर्थात् पक्षी जो हैं सो निवासकरने के अर्थ वृक्षप्रति जाते हैं ॥ तैसे यह दृष्टान्तहै ऽ 'एवं हवै तत्सर्व्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते' < ऐसे प्रसिद्ध सो सर्व परमात्माबिषे जाताहै > ऽ इसही प्रकार प्रसिद्ध सो जो आगे कहैंगे सर्व जगत् अविनाशीरूप परमात्माबिषे लय होताहै ॥ ७ । ४८ ॥

८ ॥ हे भगवन् ! जो सर्व जगत् परमात्माबिषे जाता है सो कौन है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! इसको भी श्रवण करो 'पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा' < पृथिवी और पृथिवी की मात्रा (गन्ध) । पुनः जल और जलकी मात्रा (रस) । पुनः तेज और तेजकी मात्रा (रूप) । पुनः वायु और वायुकी मात्रा (स्पर्श) । पुनः आकाश और आकाशकी मात्रा (शब्द) । अर्थात् गंधादि तन्मात्रारूप अपंचीकृत पंच महाभूत सूक्ष्म और पृथिव्यादि पंचीकृत महाभूत स्थूल । और ऽ 'चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चादातव्यश्चोपस्थश्चानन्दयितव्यश्च पायुश्च विसर्जयितव्यश्च पादौ च गंतव्यञ्च' ८ चक्षु और देखने योग्य वस्तु, श्रोत्र और सुननेयोग्य वस्तु, पुनः घ्राण और गन्ध लेने योग्य वस्तु, पुनः रसना और रस लेने योग्य वस्तु, पुनः त्वचा और स्पर्श करनेयोग्य वस्तु, वाचा और बोलनेयोग्य वस्तु, पुनः दो हाथ और लेने देने योग्य वस्तु, पुनः उपस्थ (लिंग) और आनन्द देने योग्य वस्तु, पुनः पायु (गुदा) और त्यागनेयोग्य वस्तु, पुनः दो पाद और चलने योग्य वस्तु > ऽ अर्थात् यहां ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण और तिनके विषयक हैं। और 'मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यश्चाहंकारश्चाहंकर्त्तव्यश्च चित्तञ्च चेतयितव्यश्च तेजश्च विद्योतयितव्यश्च प्राणश्च विधारयितव्यश्च' ८ मन और मननकरने के योग्य वस्तु, पुनः बुद्धि और जाननेयोग्य वस्तु, पुनः अहंकार और अहं करने योग्य वस्तु, पुनः चित्त और चिन्तन करने योग्य वस्तु, पुनः प्रकाश और प्रकाशने योग्य वस्तु, पुनः प्राण और धारण करने योग्य वस्तु > अर्थात् उक्त मन और मनन करने योग्य वस्तु रूप तिसका विषय, और निश्चय आत्मकरूपा बुद्धि और जानने योग्य वस्तुरूप तिसका विषय और अभिमान आत्मक अन्तःकरणरूप अहंकार और अभिमान करने योग्य वस्तु रूप तिसका विषय, और चेतनावृत्त्यात्मक अन्तःकरणरूप चित्त और चिन्तन करने योग्य वस्तुरूप तिसका विषय, और त्वचा इन्द्रिय से भिन्नप्रकाशयुक्त चर्मरूप तेज और तिससे प्रकाश करनेयोग्य सोई तेजका रूप वस्तु तिसका विषय। और जिसको सूत्रात्मा कहते हैं ऐसा जो प्राण सो और तिस प्राणसूत्रात्मा करके धारण करने योग्य सर्वकार्य करण का संघातरूप यह पर अर्थात् अपने से इतरके अर्थ होने करके मिश्रित हुआ नाम रूपात्मक जगत् तिसका उपाधिभूत इतना ही सर्व है ॥ ८। ४६ ॥

६ ॥ हे सौम्य! यह जो तुझको कहा इस सर्वसे पर जो जगत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बो
द्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्र
तिष्ठते ॥ ६ । ५० ॥

का कर्त्ता आत्मस्वरूप है सो सूर्य के अर्थात् जलादिगत सूर्य
प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् भोक्तापने और कर्त्तापने करके इस दि
प्रवेश को पाया है एतदर्थ ' एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्रा
रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः ' < यह ही
खनेवाला स्पर्श करनेवाला सुननेवाला स्वादका लेनेवा
मनन करनेवाला जाननेवाला करनेवाला और विज्ञानात्मा पु
षहै > अर्थात् जिसकरके जानते हैं ऐसा जो करणरूप बुद्धिआदि
क विज्ञानहै सो यह नहीं, किन्तु यह तो जो जानताहै ऐसा क
और कारकरूप विज्ञानहै तिस विज्ञानरूप स्वभाववालाहै अर्थ
विज्ञाता स्वभाववाला है एतदर्थ विज्ञानात्मा कहते हैं । और
सहीको कार्य और करणके संघातरूप उक्त उपाधियों बिषे पु
होनेसे पुरुष कहते हैं ' स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ' <
अक्षररूप परमात्माबिषे लीन होता है सो पुरुष जैसे जला
आधारके शोषण हुये सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्ब सूर्यादिकोंबिषे प्रवे
को पावते हैं तैसेही अक्षररूप परमात्माबिषे लीन होताहै ॥ ६ । ५
१० ॥ हे सौम्य ! अब तिस जीवात्मा और परमात्माकी अ
दताके जाननेवाले को जो ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होता है सो कह
हैं 'यस्तु सौम्य' < हे सौम्य ! जो > ऽ 'स यो ह वै' < कोई क
सर्व ईषणा से रहित हुआ > ऽ ' तदच्छायमशरीरमलोहि
शुभ्रमक्षरं वेदयते ' < तिस अछाय अशरीर अलोहित शुद्ध अक्ष
को जानता है > अर्थात् ऽ तिस अज्ञानरहित और शरीररहित औ
लोहितादि गुणरहित ऽ [अर्थात् अज्ञानादि तीन विशेषण
रहित कहने से कारण और सूक्ष्म और स्थूल इनतीनों शरीरों
निषेधहै तिसकरके अवस्था तीनोंका भी निषेध होता है, ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः ॥ १०।५१॥

निषेध से आत्मा का जो तीनों अवस्था से रहितपना है तिसका अनुवाद करते हैं] और नामरूपादि सर्व उपाधि के शरीर से रहित, और रक्तादि द्रव्यवत् रक्तादि सर्वगुण रहितहै। हे सौम्य! जिस करके ऐसा है इसहीसे शुद्ध है और सर्व विशेषणों से रहित है ताते अक्षर ऽ सत्य पुरुष नामवाला प्राणरहित मनका अविषय शिव रूप शान्त बाहर भीतर की कल्पना से रहित अजन्मा, ऽ को जानता है ऽ ' परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स ' < सो परम अक्षर कोही प्राप्त होताहै > ऽ सो पुरुष परब्रह्मरूप अक्षरकोही पावता है 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ' और जो सर्वका त्यागी हुआ जानता है ऽ 'स सर्व्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः ' < सो सर्व्वज्ञ है सर्व होता है तिस बिषे यह श्लोक (प्रमाण) है > ऽ सो ज्ञानवान् सर्वज्ञ होता है। अर्थात् तिस अक्षर के जाननेवाले से अज्ञात कुछ भी संभवता नहीं ॥ शंका ॥ सर्व्वात्मभाव को ज्ञान करके जन्यता के होने से तिस सर्व्वात्मभाव का अनित्यपना होता है ॥ समाधान ॥ पूर्व अविद्या करके असर्वज्ञ था पश्चात् आचार्य के उपदेश से विद्या करके अविद्या के अभाव भये सर्व रूप होता है उपजता नहीं, और तिसही अर्थ बिषे यह अग्रिम (आगे) कहने का वाक्यरूप श्लोक (वेद का मंत्र) प्रमाण है ॥१०।५१॥

११॥ हे सौम्य ! पिप्पलादमुनि कहते हैं कि 'सौम्य' < हे प्रियदर्शन! हे गार्ग्य! > 'सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र' < सर्व देवताओं करके (साहित) इन्द्रिय (और) भूत जिस बिषे प्रवेश को पावते हैं > अर्थात् समस्त अपने अधिष्ठाता देवताओं करके साहित चक्षुरादि इन्द्रिय और पृथिव्यादि भूत जिस अक्षर बिषे प्रवेश को पावते हैं ८ ' तदक्षरं यस्तु ' < तिस अक्षरको जो >

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणा भूतानि सम्प्र
तिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञ
सर्व्वमेवाविवेशेति ॥ ११ । ५२ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषदि चतुर्थप्रश्नः समाप्तः ।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतः पंचमप्रश्नः ॥

अथहैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । सयोह वै तद्व
वन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमं व
वसतेन लोकं जयतीति ॥ १ । ५३ ॥

'विज्ञानात्मा' < जीव > अर्थात् < तिस सर्व के आश्रयरूप अक्ष
को जो उक्त अर्थ का जिज्ञासु (ग्राहक) जीवात्मा 'वेदयते
< जानता है > 'स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति' < सो सर्वज्ञ हु
सर्व के ताईं ही प्रवेश को पावता है > अर्थात् सर्वज्ञ सर्वात्मा
होता है ॥ ११ । ५२ ॥

प्रश्नोपनिषद्के चतुर्थप्रश्नकी भाषाटीका समाप्त हुई ।

प्रश्नोपनिषद्गत पंचमप्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ ।

१ ॥ हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! [इसप्रकार चतुर्थ प्रश्नवि
कहे प्रमाण उत्तमाधिकारी को पदार्थ के शोधन पूर्वक वाक्या
के ज्ञानसे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिकहके अब इसबिषे मध्यमाधिका
मन्द वैराग्यवाले और "ॐ" ऐसे आत्मा को ध्यान करनेवा
ऽ 'प्रणवो धनुः' < ॐकार धनुष है > ऽ इत्यादि मुंडक उपनि
के मंत्र से सूचित किया जो ब्रह्मलोक की प्राप्ति तिस द्वारा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ ॐकारकी उपासना कहनेको पंचम प्रश्नको प्रकट करते हैं] अब गार्ग्यमुनिके प्रश्नके निर्णय भये पश्चात् परब्रह्म और अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होने करके ॐकारकी उपासनाके करने की इच्छा से पंचम प्रश्न का प्रारम्भ करते हैं ' अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ' < तिसके पश्चात् इसको शिबिका पुत्र सत्यकाम पूछताभया > अर्थात् गार्ग्यमुनिके पश्चात् इस निर्णयकर्त्ता पिप्पलादमुनि को शिबि ऋषिका पुत्र सत्यकामनामा मुनि पूछताभया ॥ सत्यकाम उवाच॥ 'सयोह वै तद्भगवन्मनुष्येषु ' < हे भगवन् ! मनुष्योंके मध्य सो अद्भुतवत् है सो जो (कोई एकमनुष्य) > 'प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत ' < मरणपर्यन्त ॐकार को सन्मुख ध्यान करे > अर्थात् जो कोई एक मनुष्य शरीर के पात होने पर्यन्त इस ॐकार को सन्मुख होने करके चिन्तन करे। अर्थात् जो बाह्यके विषयों से निवृत्त किये इन्द्रियोंवाला और भक्तिकरके आरोपित किया है ब्रह्मभाव जिस बिषे ऐसे ॐकार बिषे एकाग्रचित्तवाला और उच्छेद (विनाश) रहित आत्माकार वृत्तिवाला और अनात्माकार वृत्तिरूप अन्तराय (व्यविधान) से रहित हुआ , जैसे वायुकरके रहित स्थानबिषे स्थित जो दीपक तिस दीपक की शिखा के समान निश्चल चित्तवाला होय, और सत्य भाषण ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह (दान न लेना) त्याग (दान देना) संन्यास (संग्रहका त्याग) शौच (पवित्रता) संतोष निष्कपट भाव इत्यादि अनेक यम नियम से अनुग्रह को पाया होय, सो पुरुष आश्चर्यवत् है < ' कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ' < सो तिससे कौनसे लोकको पावता है > > हे भगवन् ! सो इस प्रकार यावत्पर्यन्त जीवत रहै तावत्पर्यन्त नियम की धारणावाला पुरुष उपासना और कर्म्मों करके जो पावनेयोग्य अनेक लोकहैं तिनमें से तिस ॐकारके अभिध्यान करने से कौनसे लोकको पावताहै ॥ १ । ५३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाच एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्मयद्
ङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २।५।

२ ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब सत्यकाम मुनिने प्रश्न कि
तब ८ ' तस्मै सहोवाच ' ८ तिसको सो कहताभया > > तिस
श्नकरनेवाले सत्यकाम-नामक अपने शिष्यप्रति सो पिप्पला
मुनिनामा आचार्य स्पष्ट कहताभया [इस उपासनाको ॐका
के अभिध्यानरूप होनेसे दहराकाशादिकोंकी उपासनावत् अप
ब्रह्मकी प्राप्तिका साधनही है, अथवा परब्रह्मकी प्राप्तिका भ
साधनहै । इसप्रकारसे प्रश्नकरनेवाले शिष्यके अभिप्रायके जान
नेवाले सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनि कहतेभये कि यह ॐकार अप
ब्रह्मके आलम्बन होनेसे जब तैसा ध्यान करिये तब अपरब्रह्म
प्राप्तिका साधन होताहै और परब्रह्मके आलम्बन होनेसे जब ॐ
कारका तैसा ध्यान करिये तब सो क्रमसे परब्रह्मकी प्राप्ति
साधन होताहै । ' एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एत
दालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ' ऐसा उत्तर कहते हैं ।
पिप्पलादउवाच ॥ ' एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यद्
कारः ' ८ हे सत्यकाम ! यह जो परब्रह्म और अपरब्रह्महै सो ॐ
कारहीहै > अर्थात् हे सत्यकाम ! यह जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि
नामोंकरके परब्रह्महै और सर्व से प्रथम उत्पन्नभया प्राण (सूत्रा
त्मा) नामकरके अपरब्रह्महै सो उभयप्रकार का ॐकारही है
क्योंकि ॐकाररूप प्रतीकवालाहै ताते ॥ शंका ॥ ब्रह्म और ॐ
कारके भेदसे तिनकी एकता कैसे बने ॥ समाधान ॥ तिनकी
एकता आरोपसे बनती है । यहां यह भावहै कि इस ब्रह्म और
ॐकारके एकअर्थ बिषे तात्पर्यरूप सामानाधिकरण्यसे ॐकारका
प्रतीकपना उपदेशकरते हैं । जैसे शालग्रामादि पाषाणबिषे विष्णु
आदिक बुद्धि करनी तैसे, । जिस और बिषे औरकी बुद्धि करि
सो तिसका प्रतीक कहते हैं । यहां ब्रह्मसे इतर जो वर्णात्मक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्ण-मेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनय-न्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान-मनुभवति॥ ३। ५५॥

ॐकार तिसबिषे ब्रह्म की बुद्धि करते हैं एतदर्थ ॐकार ब्रह्मका प्रतीक है। जैसे विष्णु आदिकों के शालग्रामादि,] और जिस करके सर्व धर्म के भेद से रहित परमात्मा शब्द आदि प्रमाणों करके साक्षात् बोधकरने के अयोग्यहै, एतदर्थ इन्द्रियोंके अगो-चर होने से केवल करण रहित मन से भी जाननेको शक्य नहीं, किन्तु, जैसे शालग्रामादिबिषे आरोपित करतेहैं विष्णुभाव तैसे, भक्ति करके आरोप किये ब्रह्म भाववाले ॐकार के सम्यक् ध्यान करनेवाले पुरुष को सो जानने में आवता है, इसबिषे शास्त्र का प्रमाण है ताते। और इसही प्रकार अपरब्रह्म भी जानने में आ-वता है। एतदर्थ जो पर और अपररूप ब्रह्म है सो ॐकार है। इसप्रकार का आरोप करते हैं ८ 'तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैक-तरमन्वेति' ८ ताते ऐसे जाननेवाला इस ध्यानसेही दोनों में से एक को पावता है> > एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ॐकार के ध्यानरूप, आत्मा की प्राप्ति के साधनरूप साधन के आश्रय से ही परब्रह्म और अपरब्रह्म इन दोनों में से एक को पावता है कि जिसकी प्राप्ति की इच्छा से करता है॥ २। ५४॥

३॥ हे सौम्य! जो पुरुष, ब्रह्म का समीपवर्ती श्रेष्ठ आलम्बन अर्थात् उपकार साधक और अकार आदिक तीनमात्रावाला जो ॐकार सो उपासना करने के योग्य है इसप्रकार यद्यपि ॐकार की अकारादि सर्वमात्रा के विभाग का यथार्थ जाननेवाला न होय, किन्तु ॐकार की एक अकारमात्रा उपासना करने योग्य है इसप्रकार जानता है। तथापि सो दुर्गति को प्राप्त होता नहीं, किन्तु एक मात्ररूप ही ॐकार के ध्यान के प्रभाव से इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोक विषे श्रेष्ठगति को ही पावता है । यह इस तृतीयवाक्य
तात्पर्य्य है, अब इसके अक्षरार्थ को श्रवणकरो हे सौम्य ! '
यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभि
सम्पद्यते ' < सो जब एकमात्रारूपको ध्यान करता है सो ति
से ही भली प्रकार जानता हुआ शीघ्रही जगत् विषे पावता
अर्थात् इस प्रकार सो जब एक मात्रा के ही विभाग का जानने
वाला सर्वदा एक मात्रारूप ओंकार को ध्यान करता है सो पु
एक मात्रापने करके युक्त ओंकार के ध्यान से ही तिस मात्रा
सम्यक् प्रकार बोधवान् हुआ शीघ्रही जगत् (पृथिवी) विषे जन्म
पावता है । और < ' तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते ' < तिसको
मनुष्य शरीर को ऋग्वेद प्राप्त करेहै > > तहां पृथिवी विषे अनेक
जन्म हैं तिन विषे तिस ॐकारके साधकको मनुष्यलोक (शरीर)
के अर्थही ऋग्वेदरूप ' स ऋग्वेद इतिश्रुतेः ' < अकार ऋग्वेद
है > । इस श्रुति से अकाररूप ॐकारकी प्रथम मात्राको ऋग्वेद
रूपता है ओंकारकी प्रथम एकमात्रा जो है सो प्राप्त करेहै । ओं
< ' स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति '
< सो तिसविषे तप से ब्रह्मचर्य से श्रद्धा से सम्पन्न हुआ महिमा
को अनुभव करता है > > सो साधक तिस प्रथम मात्रारूप ॐकार
के ध्यानसे तिस मनुष्य जन्मविषे द्विजोत्तम हुआ और तपकरके
ब्रह्मचर्य करके और श्रद्धा करके सम्पन्न हुआ महिमा (विभूति) को
अर्थात् धन पुत्र क्षेत्र दासादि वैभव को अनुभव करता है । परन्तु
श्रद्धा रहित हुआ यथेष्ट आचरण को करता नहीं 'एक देशके ज्ञान
से रहित जो योगभ्रष्ट है सो कदाचित् भी दुर्गतिको पावता नहीं
ऐसा गीताका प्रमाण है । तातें ॐकार की एक मात्राके ध्यान करने
वाले को कहे हुये फल का असम्भव नहीं । इति सिद्धम् ॥ ३ । ५ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! 'अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते ' < पुनः
जब दो मात्रा करके युक्त मन विषे पावता है > अर्थात् पुनः एक
मात्रारूप ॐकार के उपासक से इतर जब दोमात्रा के विभागका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुभिरुन्नीयते। स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४। ५६ ॥

ज्ञाता जो पुरुष दोमात्रारूपसे युक्त ॐकारको ध्यान करता है, सो स्वप्नरूप मननकरने योग्य यजुर्वेदमय चन्द्ररूप दैवतवाले मन बिषे भलीप्रकार एकाग्रतासे आत्मभावको प्राप्तहोता है ८ 'सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं' <सो यजुर्वेद से अन्तरिक्षलोकवाले चन्द्रलोकको प्राप्त होताहै >> सो इसप्रकार आत्मभावको प्राप्त मरणरहित हुआ द्वितीयमात्रारूप यजुर्वेद से अन्तरिक्षरूप आधारवाले द्वितीयलोकरूप चन्द्रलोकके अर्थ प्राप्त होता है। अर्थात् तिस द्वितीयमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्मको देता है ८ 'स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते' <सो चन्द्रलोक बिषे विभूतिको अनुभव करके फेर आवता है >> सो उपासक तिस चन्द्रलोकबिषे उत्तम पदार्थोंको भोगके पुनः इस मनुष्यलोक विषे (ब्राह्मणादि उत्तमकुल में) जन्म पावता है ॥ ४। ५६ ॥

५॥ हे सौम्य! 'यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत' <जो पुनः तीनमात्रावाले ॐ इसही अक्षर से इस परम पुरुषको ध्यान करता है > अर्थात् जो पुरुष पुनः तीनमात्रा के विषय करनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारके इसही अक्षररूप प्रतीक से इस ॐकाररूप सूर्य्य के अन्तरगत परं पुरुष को ध्यान करता है ८ 'स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः' <सो तेजरूप सूर्य्य बिषे प्राप्त होता है >> सो तीसरी मात्रारूप ध्यान करता हुआ, मराहुआ भी तिस ध्यानमात्रसे तेजरूप सूर्य्य बिषे प्राप्त होताहै। और सो सूर्य्यसे चन्द्रलोकादिकों बिषे गये हुये जैसे फेर आवते हैं तैसे, पुनरावृत्तिको पावता नहीं किन्तु सूर्य्यबिषे प्राप्तहुआही होताहै। और ८ 'यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवै स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणौवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुष
मभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदर
स्त्वचा विनिर्मुच्यत। एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स
सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं सएतस्माज्जीवघनात्परात्प
पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५।५७।

पाप्मना विनिर्मुक्तः' ८ जैसे सर्प त्वचा से छूटजाता है ऐसे प्रसिद्ध
ही सो पापसे मुक्त होता है > > जिसप्रकार सर्प अपनी त्वचासे
मुक्त होता है, पश्चात् जीर्णत्वचासे छूटाहुआ सो सर्प पुनः नवीन
होताहै। हे सौम्य! जैसे यह दृष्टान्त है। तैसेही प्रसिद्ध सो तीन
मात्राका ध्यान करनेवाला साधक सर्पकी त्वचास्थानापन्न अपने
अशुद्ध्यादिरूप पापसे मुक्त होता है। और ८ 'ससामभिरुन्नी
यते ब्रह्मलोकं' ८ सो सामसे ऊंचे ब्रह्मलोकको पावताहै >
जब अशुद्धतारूप पापसे मुक्त होता है तब पीछे सो साधक ती
तीयमात्रारूप सामवेदकरके ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके स
नामवाले लोक (सत्यलोक) को प्राप्त होता है ८ सो हिरण्य
गर्भ सर्व संसारी जीवोंका आत्मरूप है और जिसकरके सो हि
ण्यगर्भ समष्टिलिंगदेहरूपकरके सर्वभूतों का अन्तरात्मा है ति
करके समष्टिलिंगशरीररूप हिरण्यगर्भबिषे व्यष्टिलिंग देहों
अभिमानी सर्वजीव मिलेहुये हैं। एतदर्थ सो हिरण्यगर्भ जीवघ
रूपहै > वाक्य योजना 'स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशय
पुरुषमीक्षते' ८ सो इसपर जीवघनसे पर पुरियोंबिषे स्थि
पुरुषको देखता है > सो विद्वान् तीसरी मात्रा को ध्यान कर
हुआ इस सर्वसे उत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से पर परमात्म
नामवाले सर्वशरीररूप पुरियों बिषे स्थितपुरुषको देखता है। [वि
इस रीतिसे अन्वय है। सो विद्वान् साधक अभी इस अपनी जी
नदशा बिषे ध्यान करता हुआ शरीरावसान के पश्चात्
लोक को प्राप्त होता है। तहां ब्रह्मलोकबिषे स्थावर जंगम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः। क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः॥ ६। ५८॥

प्राणियों से पर जो जीवघननामक हिरण्यगर्भ तिससे पर जो परमात्मापुरुष तिसको अपना आप देखता है] 'तदेतौ श्लोकौ भवतः' ‹ तहां यह दो मंत्र हैं › तहां यह उक्त अर्थ के प्रकाश करनेवाले दो मंत्र प्रमाण होते हैं॥ ५। ५७॥

६॥ हे सौम्य! 'यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्ये' इत्यादि इस ब्राह्मवाक्यके साथ प्रथम (पहिले) मन्त्र की योजना करते हैं 'तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः' ‹ तीन मात्रा मृत्युगोचर परस्पर सम्बन्धवाली हैं › अर्थात् तीन हैं संख्या जिनकी ऐसी जो अकार उकार मकार नामवाली ॐकारकी तीनमात्रा हैं सो मृत्युकरके आक्रान्त (व्याप्त) अर्थात् मृत्युका विषयही हैं। और परस्पर सम्बन्धवाली हैं। सो तीन मात्रा विशेष करके एकएक विषय बिषेही योजना न किया हो ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकरके एकही ध्यानकालबिषे त्यागकरी भई, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी जे वैश्वानरादिकनसों अभिन्न विश्वादिक पुरुषों के अर्थात् [वैश्वानरसे अभिन्न विश्व जाग्रत्का अभिमानी तिसका स्थूलशरीररूप स्थान। और हिरण्यगर्भ से अभिन्न तैजस स्वप्नका अभिमानी लिंग शरीररूप स्थान। और अव्यक्तसे अभिन्न प्राज्ञ सुषुप्तिका अभिमानी कारण शरीररूप स्थान] अकार उकार मकाररूप मात्रा से, तादात्म्य (एकरूपता) करके ध्यानरूप जो ‹ 'क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः' ‹ बाहर भीतर और मध्यकी क्रियाके भली प्रकार योजना किये हुये ज्ञाता कम्पमान होते नहीं › › बाहर भीतर और मध्यकी क्रिया है तिनके सम्यक् प्रकार ध्यानके कालबिषे योजना कियेहुये जब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ । ५९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि पंचमप्रश्नः ॥ ५ ॥

तिसके साथ अकारादि तीनों मात्रा योजना किया होय तब ओंकारके कहे हुये विभागका जाननेवाला जो योगी है सो चलायमान अर्थात् विक्षेपको प्राप्त होता नहीं, किन्तु स्वरूप में स्थिरही रहता है । अर्थात् ८ जो चलायमान होताहै सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति विषे होता है सो सर्व ॐकारही है ऐसा जानलिया तब चित्त चंचलता छोड़ स्वरूपमें निश्चल होताहै ; जिस करके उस साधक पुरुषने स्थूलादि स्थान सहित जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति और विश्वादि जो तिनके अभिमानी पुरुषहैं, सो अकारादि तीन मात्रामय ॐकाररूपकरके देखे हैं, एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाला योगीका चलायमान होना सम्भवे नहीं ॥ ६ । ५८ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! जिस करके सो ऐसा पूर्वोक्त विद्वान् सर्वेश आत्मा ॐकारमयहै तिसहेतुसे किसकारणकरके उसका चलायमान होना होय, किन्तु अपनेसे पृथक्वस्तु के अभावसे किसीप्रकारके भी चलना (विक्षेप) बने नहीं । अथवा अपने से अपृथक् निश्चयभये जगत् बिषे किस विषयके अर्थ विक्षेपवान्होगा, किंवा किसीबिषे भी नहीं । इस अर्थके बोधक प्रथम मंत्र कहके अब उस अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीय मन्त्र कहते हैं ॥ हे सौम्य ! 'ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते' ८ सो ऋग्वेदसे इसको यजुर्वेदसे अन्तरिक्षको (और) जिसको विद्वान् जानते हैं (ऐसे ब्रह्मलोकको) सामवेदसे (पावता है) अर्थात् सो विद्वान् ८ जो एकमात्रारूप ; ॐकारका उपासक ऋग्वेदसे इस मनुष्यलोक को पावताहै । और ८ जो दो मात्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वा दूसरी मात्रा रूप ॐकार का उपासक है सो) यजुर्वेद करके अन्तरिक्षगत चन्द्रलोक को पावता है। और जिसको विद्वान् पुरुष जानते हैं और अविद्वान् नहीं जानते ऐसा जो सत्यनाम वाला ब्रह्मलोक है तिसको (तीन मात्रा का वा तीसरी मात्रा का उपासक) सामवेद करके प्राप्त होता है। इसप्रकार विद्वान् उपासक अपरब्रह्मरूप तीन प्रकार के लोक को (समात्रिक) ॐकाररूप आलम्बन (साधन) से पावता है। और ऽ 'तमोंकारेणैवातनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति' (जो शान्त अजर अमर अभय है तिसपर (ब्रह्म) को ॐकार रूप ध्यान से ही पावता है) ऽ अर्थात् जो अक्षर सत्य पुरुष संज्ञक शान्त विमुक्त और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि भेद रूप सर्व प्रपंच से रहित है। और (जब अवस्था त्रयरूप सर्व प्रपंच से रहित है) इसही करके जरा और मृत्यु करके रहित है। और जिस करके जरा आदि विकारों से रहित है, इसही से अभय है। और जब अभय है तबही सर्व से अधिक है, ऐसा जो (त्रिमात्रिक ॐकार का लक्ष्यरूप) परब्रह्म है तिसको भी (प्रतिमावत्प्रतीक रूप त्रिमात्रिक) ॐकार की (उपासना रूप) आलम्बन (साधन) से ही प्राप्त होता है। 'इति' यहां जो ,इति, शब्द है सो वाणी की परिसमाप्त्यर्थ है इति सिद्धम् ॥ ७।५६ ॥

प्रश्नोपनिषद्गत पञ्चम प्रश्न की
भाषाटीका समाप्त हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रश्नोपनिषद्गतःषष्ठप्रश्नः ॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन् हिरण्य
नाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत
षोडशकलं भारद्वाजपुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं ना
मिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथंते नावक्ष्यमिति समू
वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृ
वक्तुं सतूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज तं त्वा पृच्छामि क्वा
पुरुष इति ॥ १ । ६० ॥

प्रश्नोपनिषद्केषष्ठप्रश्नकीभाषा टीका का प्रारम्भ ।

१ ॥ हे सौम्य ! सुषुप्ति कालबिषे विज्ञानरूप जीवात्मा सहि
सर्व कार्य कारणात्मक जगत् अक्षररूप परब्रह्मबिषे लय होताहै
इसप्रकार पूर्व चतुर्थ प्रश्नबिषे कहिआये हैं । तिस कथनरूप प्र
माण की सामर्थ्य से प्रलय बिषे भी तिसही अक्षर बिषे यह स
जगत् लय होता है । और जिसकरके कार्य्यका अकारणबिषे ल
संभवता नहीं अर्थात् जो जिसका कार्य्यहै सो परिणाम में उसही
अपने कारण में लय होता है अन्य में नहीं और ' आत्मनः ए
प्राणो जायते' यह इसही उपनिषद्के तृतीय प्रश्नके तीसरी श्रु
से कहाहै । एतदर्थ जिस ब्रह्मबिषे यह जगत् लय होता है तिस
ब्रह्म से जगत् का उपजना सिद्ध होता है ॥ और जगत् का
मूल (कारण) हैं तिसके सम्यक् ज्ञानसे परममुक्ति होतीहै । अर्थ
[यद्यपि अद्वैत आत्मा के सम्यक् ज्ञानहुये ही मुक्ति होती है,
रण के ज्ञानसे नहीं, तथापि तिस आत्मा को कारणत्व होने
तिससे भिन्नकार्य्य का अभाव है, क्योंकि कारण से भिन्न का
की सत्ता होती नहीं, ताते आत्मा के अद्वैतपने का ज्ञान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होताहै, एदतर्थ तिस जगत्के मूल कारण आत्माके सम्यक् ज्ञानसे <चतुर्धा मुक्तिसे भिन्न> परममुक्ति होतीहै "आत्मा वा इदमेव एवाग्रआसीत्" "सएतमेव पुरुषंब्रह्म ततमपश्यत्" "प्रज्ञानंब्रह्म" "स एतेन प्रज्ञानेनात्मना अमृतःसमभवत्" "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "आचार्यवान् पुरुषोवेद" "अथसमत्स्ये" तमेवैकंजानथ""अमृतस्यैषसेतुः""अहंब्रह्मास्मीति""तस्मात्तत्सर्वमभवत्" <यह जगत् प्रथम निश्चयकरके एकहीआत्माथा> <सोइसही पुरुष को परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताभया>। <प्रज्ञान ब्रह्महै>। <सो इस प्रज्ञानरूपसे अमरहोताभया>। <हे सौम्य! यह आगे एकअद्वैत सत् हीथा> इसप्रकार आरम्भकरके। <आचार्य्यवान्पुरुषजानता है> <तिसही एककोजानो>। <यह अमृतकासेतुहै>। <मैंब्रह्महौं>।<ताते सो सर्वरूप होताभया> ॥ इत्यादि अनेक श्रुतियों के वाक्योंसे निश्चय कियाहै] यह सर्व उपनिषदों का निश्चितार्थ है । और इसही उपनिषद् के चतुर्थप्रश्नबिषे "स सर्वज्ञः सर्व्वोभवतीति" <सो सर्वज्ञ सर्वरूप होता है>। इसप्रकार कहा है । ताते सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्पुरुष नामवाला जो <मुमुक्षुओं करके> जानने योग्य वस्तु है सो कहाहै। इसप्रकार पूछनेयोग्यहै। और तिससत्पुरुषको शरीरके भीतर स्थितकहाहै तिसकरके, प्रत्यगात्मा के सम्यक् ज्ञानार्थ इस षष्ठप्रश्नका आरम्भकरते हैं। और यहां सुकेशा नामवाले शिष्यने पूर्व व्यतीतभये अर्थका पुनः प्रश्नरूप कथन किया है, सो ज्ञानकी दुर्लभताकी प्रसिद्धिहोनेसे तिसकीप्राप्त्यर्थ पुरुषार्थ विशेषके उत्पादनार्थ है॥ अब <[" गताः कलाःपंचदशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वएकीभवन्ति " <पंचदश कला अपने कारण भावको प्राप्तभई कर्म और विज्ञानमय (जीवात्मा) सोपरअव्यय (अविनाशी) अक्षर ब्रह्म बिषे एक (अभेद) होतेहैं> इसप्रकार मुंडक उपनिषद्केतृतीय मुंडकके दूसरे खंडके सातवें मन्त्रसे कहिके ऽ" यथानद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रेस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् " अव ऽ
<जैसे नदियां सर्वओर से बहतीहुई अपने कारण समुद्रबिषे जाय
अपने नामरूपको छोड़ (समुद्रही होती हैं) । तैसे प्रत्यगात्मा
को सम्यक् अनुभव करनेवाला विद्वान् (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य)प-
रात्पर परम दिव्य अक्षर पुरुषको प्राप्तहोता है > इस मुंडककेही
उक्त खंडके आठवें मन्त्र करके दृष्टान्तके कथनप्रमाणसे परब्रह्म
की प्राप्ति कही है । ताते इन उक्त दोनों मन्त्रोंका अर्थ सविस्तर
कहनेके अर्थ इसषष्ठ प्रश्नका आरम्भ करते हैं] >॥ हे सौम्य! सत्य-
कामामुनिके प्रश्नके निर्धारहोनेके ऽ ' अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः
पप्रच्छ ' < पश्चात् इसको भारद्वाजका पुत्र सुकेशा प्रश्नकरता
भया > ऽ अर्थात् सत्यकामाके प्रश्नके अनन्तर इस पिप्पलाद
मुनिरूप आचार्यसे भारद्वाजमुनिका पुत्र सुकेशानामवाला मुनि
प्रश्नकरताभया ॥ सुकेशा उवाच ॥ ऽ ' भगवन् हिरण्यनाभः कौ-
सल्योराजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत ' < हे पूजाके योग्य!
कौसलदेशका हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे समीपआय इसप्रश्नको
पूछताभया > ऽ हे सर्व संशयके नाशकर्ता! हे भगवन् ! एकसमय,
कौसलदेशमें उत्पन्नभया ऐसा जो हिरण्यनाभ नामवाला क्षत्रि-
यजातीय प्रख्यात राजपुत्र मेरे समीपआय इसकथनकरनेके प्रश्न
को पूछताभया कि ऽ ' षोडशकलं भारद्वाजपुरुषं वेत्थ ' < हे भा-
रद्वाज! षोड़शकलावाले पुरुषको जानताहै > ऽ हे भारद्वाज! सोलह
संज्ञाहैं जिनकी ऐसी जो कलाहैं सो, शरीरबिषे अवयवोंवत्,
जिस आत्मरूप चैतन्य पुरुषबिषे अविद्या करके अध्यारोपमात्रहै,
एतदर्थ इस चैतन्य पुरुषको सोलहकलावाला कहते हैं तिससो-
लह कलावाले पुरुषको तू जानता है । हे भगवन् ! इस प्रकार जब
उसने प्रश्नकिया तब 'तमहं कुमारमब्रुवम् नाहमिमंवेद ' < तिस
कुमारको इसको मैं जानता नहीं ऐसे कहताभया > अर्थात् ऽ
तिसप्रश्नकर्त्ता राजकुमार को जिसके विज्ञानार्थ तेरा प्रश्न है
तिस पुरुषको मैं जानता नहीं इसप्रकार मैं कहताभया । परन्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्तप्रकारका कहनेवाला जो मैं तिस मेरे वाक्य में भी यह भारद्वाजमुनि कहता है कि मैं उस सोलहकलावाले पुरुष को नहीं जानता सो यह आप जानता होयके नहीं जानता कहता है वा न जानके, इसप्रकार, अज्ञानके संशयका सम्भव उस कुमारबिषे विचार तिस राजपुत्रको मैं प्रश्नकिये पुरुषके विषयमें, अपने अज्ञानका कारण कहता भया कि हे राजकुमार! ऽ 'यद्यहमिममवेदिषं कथं तेनावक्ष्यमिति' < जब मैं इसको जानता होउँ तब तेरे अर्थ कैसे न कहूं > ऽ जब मैं तुझकरके प्रश्नकिये पुरुषको जानताहोउँ तो तुझसरीखे उत्तमगुणसम्पन्न शिष्यके अर्थ कैसे न कहूं, किन्तु कहताही। हे भगवन्! इसप्रकार कहके भी मैं अपने वाक्य में उसका अविश्वास जान विश्वास करावने के अर्थ पुनः मैंने कहा कि हे राजकुमार! ऽ 'समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति' < जो अनृत कहता है यह समूल सूखजाता है > ऽ जो पुरुष ज्ञानीहुआ भी अपने आपके विषयमें 'मैं अज्ञानी हौं' इसप्रकारका आरोप करता हुआ अन्यथा भये अर्थरूप अनर्थ (झूठ) को कहता है सो अपने धर्म कर्मरूप मूल सहित सूख जाता है अर्थात् इसलोक परलोक से भ्रष्टहोता है ऽ 'तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुं' < ताते अनृत कहने को योग्य नहीं > ऽ एतदर्थ इसप्रकार जब मैं जानताहौं तब मैं मूढ़ पुरुषोंवत् झूठ कहनेको योग्य नहीं हौं। हे भगवन्! इसप्रकार जब मैं कहा तब ऽ 'स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज' < सो चुपहुआ रथमें बैठ जाताभया > ऽ मेरे कहे वाक्यमें विश्वासको प्राप्तहोय सो राजकुमार प्रश्न से उपरामहोय रथमें बैठ जहांसों आयाथा तहांको जाताभया ताते हे भगवन्! ऽ 'तंत्वा पृच्छामि कासौ पुरुष इति १' < तिसको तुम्हारेताईं पूछताहौं यहपुरुष कहां है > ऽ न्याय में शरणको प्राप्त भये अधिकारी शिष्यके अर्थ ज्ञाता गुरुकरके विद्याकहने को योग्य ही है। और सर्व अवस्थाबिषे झूठ कदापि कहने के योग्य नहीं। और जानने के योग्य होने से बाणवत् मेरे हृदयबिषे स्थित, ऽ अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मै सहोवाच । इहैवान्तःशरीरे सौम्य स पुरुष
यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ । ६१ ॥

र्थात् [यावत् जाननेको इच्छितवस्तुको जानते नहीं तावत्पर्य
सो वस्तु हृदयबिषे बाणवत् भासे है] ऽ तिस पुरुषको मैं तुम्ह
प्रति पूछताहौं कि यह जो जानने योग्य पुरुष है, कि जिसके ज
ननेके अर्थ राजपुत्रका मुझसे प्रश्नथा, सो कहां वर्त्ततीहै॥१।६

२॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार जब सुकेशा मुनिने अपने वृत्तान्
कहने पूर्वक प्रश्नकिया तब ऽ 'तस्मै सहोवाच' < तिसके अ
सो कहतेभये > ऽ तिस प्रश्नकर्ता सुकेशामुनिके अर्थ सो सर्व
पिप्पलाद मुनीश्वर कहतेभये ऽ 'सौम्य! यस्मिन्नेताः षोडशकल
प्रभवन्तीति' < हे सौम्य! जिसबिषे यह सोलह कला उपज
हैं > ऽ कि हे प्रियदर्शन! जिसपुरुषबिषे यह अग्रिम कहनेकी
णादि सोलह कला उत्पन्न होती हैं, एतदर्त्थ सोलह कला
उपाधियों से जो पुरुष निष्कल (कला रहित) है सो
ष्कल हुआ भी अविद्या दोष करके कलावालेवत् देखते हैं, ऐ
जो, शुद्धचैतन्य, पुरुष है ऽ 'स पुरुषो इहैवान्तःशरीरे'
पुरुष इसही शरीर के अन्तर है > ऽ सो पुरुष कि जिसके अर्थ
प्रश्न है इसही शरीर बिषे < कि जिसबिषे स्थित हुआ तू प्र
करता है > एकहृदय कमल है तद्गत जो < दहर नामवाला
अन्तराकाश है तिस आकाश के मध्य < मुमुक्षुओं करके > जा
योग्य है। अन्य देशबिषे कहीं भी नहीं ॥ २ । ६१ ॥

३॥ हे सौम्य! < ब्रह्मविद्या आदि जिसविद्या को कहते
तिस > विद्या से तिस, निष्कल, पुरुष की, अविद्या दोषसे
रोपित जेकला तिनके अध्यारोप के अपवाद के होने से सो पु
केवल अनुभव करनेके योग्य है, एतदर्थ कलाओं की उत्पत्ति
सों कही है। और अत्यन्त भेदरहित अद्वैतशुद्धतत्त्व बिषे अ
रोप किये विना प्राणादि कलाका प्रतिपाद्य और प्रतिपादनादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सईक्षाञ्चक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३। ६२ ॥

व्यवहार करने को समर्थ नहीं, एतदर्थ इन कलाओं के उत्पत्ति स्थिति और लय का अविद्या के आधीन आरोप करते हैं और जिस करके यह कला चैतन्य से अभेद करके ही उत्पन्न हुई स्थित हुई लय हुई सर्वदा देखते हैं। याही से कोई एक ,क्षणिक विज्ञान वादी, मूर्ख भ्रमी पुरुष' अग्नि के संयोग से घृतवत् चैतन्य (विज्ञान) ही घटादि आकार से क्षण क्षण बिषे उपजे हैं, और नाश होता है, इस प्रकार मानते हैं और शून्यवादी जो पुरुष हैं तिनको सुषुप्ति आदि अवस्थाबिषे तिनरूपादि विषय के और ज्ञानरूप से चैतन्य के अभाव हुये सर्व शून्यही होता है, ऐसा भ्रम होता है। और दूसरे न्यायशास्त्र के ज्ञाता नैयायिक पुरुष जो हैं सो चेतना के करनेवाला नित्य आत्माका घटादिकों को विषय करनेवाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजता है और नाश होता है, इसप्रकार कहते हैं, और अन्यजे चारवाक मतके पुरुष हैं सो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य जिसको कहते हैं सो देहाकार से मिले हुये जे पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चारभूत हैं तिनका धर्म (संयोगी फल) है। हे सौम्य! इन कहे हुये सर्व पुरुषों को प्राणादिकला और चैतन्य के अभेद की भ्रान्ति है परन्तु श्रुति का सिद्धान्त यह है जो जन्म मरण रूप धर्म से रहित चैतन्यरूप आत्माही नामरूपादि उपाधियों के धर्मों से नानाभाव करके और कार्यभाव करके प्रतीत होता है॥ "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" <सत्यज्ञान अनन्तरूप ब्रह्म है> और "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" <प्रज्ञान आनन्दरूप ब्रह्म है> और "विज्ञानघन एव" <विज्ञानघन ही है> इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से और तैसे हुये अर्थात् क्षणिक विज्ञानवादी आदिकों के कहे प्रमाण हुये, श्रुति के सिद्धान्त से विरोध आवता है एतदर्थ वोक्षणिक विज्ञानवादी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिकों के मत सर्वथा त्यागने ही योग्य हैं ॥ [अब ज्ञानक
बिषे विषयों का सद्भावही होय इस नियम का अभाव है ताते
और विषय कालबिषे ज्ञान के सद्भाव का नियम है ताते, ति
ज्ञान और विषय का भेद है । इसप्रकार क्षणिक विज्ञानवादी
पक्ष को खंडन करते हुये, और अव्यभिचारता से ही ज्ञान
नित्यता को साधते हुये नैयायिक आदिकों के मतको खंडन क
हैं । यहां यह अर्थ है कि घटज्ञान के कालबिषे पटके अभाव
संभव है तिस करके विषयों को ज्ञान से व्यभिचारित्वपना है
और ज्ञान को तो विषयकाल बिषे अवश्य होने के नियम
अव्यभिचारित्वपना सिद्धही है ॥ और पट ज्ञान के काल वि
घट का ज्ञान भी नहीं है, ताते घट के ज्ञान को भी पटरूप विष
से व्यभिचारित्वपना है ॥ इस शङ्का को चित्त बिषे ल्याय
विषयों का स्वरूप से ही व्यभिचारित्वपना कहा है । और ज्ञा
का विषय विशिष्टतारूप मात्रसेही व्यभिचार है स्वरूप से न
यह भेद है] ऽ स्वरूप से अव्यभिचारी पदार्थों बिषे चैतन्य
अव्यभिचार होने से जैसे जैसे जो जो पदार्थ जानते हैं, तैं
तैसे जानने योग्य होने सेही तिस २ पदार्थ के चैतन्य का अव्य
भिचारपनाही है ॥ शङ्का ॥ कोई एक वस्तु जानते नहीं पर
होती है । अर्थात् [उत्पन्न होय के शीघ्रही नाश होनहार आदि
वस्तु, और गिरिगुहान्तर्गतवस्तु को अज्ञात होने करके ज्ञान
भी ज्ञेयरूप विषय से व्यभिचार प्रसिद्ध है] ॥ समाधान ॥
सौम्य ! यह वादी का शङ्कारूप कथन कैसा है कि, जैसे कोई
कहे कि रूपसंज्ञक विषयको देखते तो नहीं तथापि चक्षुहै, तद्व
अघटित है ऽ अर्थात् [वादी ने कहा कि कोइक वस्तु जान
नहीं परन्तु होती है, सो बने नहीं क्योंकि तिस वस्तु के अज्ञा
के होने से तिसके अस्तित्वभाव की असिद्धि है, अर्थात् जि
वस्तुका ज्ञान नहीं और सो वस्तु है, ऐसा वस्तुका अस्तित्वभा
ज्ञान विना कदापि सिद्ध होता नहीं, ताते तैसा अज्ञातहुआ पदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असिद्धही है] ऽ एतदर्थ घट के ज्ञानकाल बिषे कदाचित् पट के अभाव से ज्ञेय (विषय) रूप पट ज्ञानसे व्यभिचारको पावताहै परन्तु ज्ञान जो है सो कदाचित् भी व्यभिचार को पावता नहीं क्योंकि एक ज्ञेय (विषय) के अभावहुये भी अन्यज्ञेय (विषय) बिषे ज्ञानका स्वरूप करके सद्भावहै । और सुषुप्तिबिषे ज्ञानके न होनेसे ज्ञेय विषय कुछ होताहै, ऐसी प्रतीति किसी को भी होती नहीं, एतदर्थ भी ' ज्ञान , व्यभिचारको पावता नहीं ॥ और जो कहै कि सुषुप्ति बिषे अदर्शनहोनेसे ज्ञानका भी अभावहै ताते ज्ञेय के व्यभिचारवत् ज्ञानके स्वरूपका भी व्यभिचारहै । सो ऽ [क्या तब सुषुप्तिबिषे तू ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव साधता है वा ज्ञानके अदर्शन होनेसे ज्ञानका अभाव साधता है ? तिन दोनों पक्षों में, जब सुषुप्तिरूप ज्ञेयको अङ्गीकार किया तब ज्ञानके अदर्शनकी असिद्धिहै ,क्योंकि ज्ञानके अभावसे सुषुप्तिरूप ज्ञेय सिद्ध होता नहीं, ताते दूसरा पक्ष बनता नहीं यह आगे कहेंगे ; ऽ और जो तू प्रथम पक्षको कहेगा कि ज्ञेयके अभाव से ज्ञानका अभाव है, तो भी ज्ञेयको प्रकाश्यरूप होनेसे उसके अभावभये तिसके प्रकाशकरूप ज्ञानका अभावहै, इसप्रकार मानताहै, किंवा ज्ञान और ज्ञेय इन दोनों की एकता का अभावरूप ज्ञानका अभाव है, ऐसा मानताहै, तहां इनदोनों पक्षों में भी ज्ञान और ज्ञेयका परस्पर में व्यभिचारके होनेसे प्रथमपक्ष बने नहीं । और जो कहे कि प्रकाश्य के ज्ञानरूप एकही सामर्थ्यवाले प्रकाशका प्रकाश्य के अभावहुये अभाव कहते हैं, तहां प्रकाश को प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्धकार बिषे प्रकाश्यरूप की अप्रतीति के हुये तिसके ज्ञानबिषे समर्थ चक्षुरूप प्रकाश के अभाव की कल्पना करनीभी अशक्यहै ताते, प्रथमपक्ष बने नहीं । और सुषुप्तिबिषे जे ज्ञेयका अभाव सो अभावरूपही ज्ञेयहै तिस ज्ञेयके विद्यमान होते, ज्ञान और ज्ञेय इन दोनों के तादात्म्यमय एकता के अभावरूप ज्ञानका अभावहै यह दूसरापक्षभी बनता नहीं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती कहताहै] ऽ बने नहीं । क्योंकि ज्ञेयो
प्रकाशक ज्ञानको, सूर्यादिकों के प्रकाशवत् ज्ञेयका प्रकाशक
है । और जैसे अपने करके प्रकाशने योग्य जे घटादि प्रकाश्य
के अभाव भये सूर्यादिकों के प्रकाश के अभावका असंभव है
त्, सुषुप्तिबिषे ज्ञानके अभावका असंभवहै । और जैसे अन्धक
बिषे चक्षुसे रूपविषयकी अप्रतीति के होनेसे, क्षणिक विज्ञान
दियों के, चक्षुके अभावकी कल्पनाकरने को भी शक्य नहीं है,
ही सुषुप्तिबिषे ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानके अभावकी कल्पना
को अशक्यही है ॥ और जो ऽ[विज्ञानवादी के मतबिषे विज्ञान
भिन्न प्रकाशादिकों का अभाव है ताते प्रकाशरूप विज्ञानके
णाम के अभाव होनेसे प्रकाश्यरूप विज्ञान के परिणामके
करके व्यभिचारके स्थलका अभावहै ताते तहां सुषुप्तिबिषे
और ज्ञेय के अभावका व्यभिचार नहीं है, इस अभिप्राय से
शङ्का करताहै] ऽ कहे कि क्षणिक विज्ञानवादी जो है, सो
के अभावभये ज्ञानका अभाव कल्पताही है, हे वादी ! जब ऐसे
है, तब ज्ञानके अभावका जो कल्पक (वृत्ति) सोई ज्ञेय
ज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करते हैं वा नहीं, यह
वादी सों पूछते हैं, सो तिसका उत्तर कहना योग्य है ८ हे
म्य ! ? तिन कहेहुये दोनों पक्षोंमें प्रथम पक्षबिषे ज्ञानके अभाव
सिद्धिनहीं है, क्योंकि तिसही अभावके ज्ञानका सद्भाव है
इसप्रकार कहते हैं, जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञानसे तिस ज्ञान
अभावको कल्पता है, तिस ज्ञानका अभाव किस करके कल्प
है । किसी करके भी कल्पना करनेको शक्य नहीं ॥ और द्वि
पक्ष भी बनेनहीं । क्योंकि तिस ज्ञेयके अभावरूपअज्ञान को
ज्ञानके अभावके कल्पक होनेका असंभव है ताते । और अ
ज्ञेयरूपहोनेसे तिसके अभावहुये तिस ज्ञेयके अभावकी कल्पना
असंभवहै ताते, ज्ञेयके अभाव के ज्ञानके अङ्गीकार का पक्ष
नहीं ॥ और जो ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयसे अभिन्न होनेक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभाव होवेगा, सो बनेनहीं। काहेते कि अभावको भी ज्ञेयपने के अङ्गीकारते। (हे सौम्य!) जब विज्ञानवादियों करके अभाव भी ज्ञेय और नित्य अंगीकार करते हैं, तब तिसज्ञेय से अभिन्न ज्ञानभी नित्यरूप कल्पना कियाही होगा, और तिस ज्ञान के अभाव को ज्ञानरूप होने से अभावपना कहनेमात्र ही है। और परमार्थ से ज्ञानका अभावपना और अनित्यपना नहीं है। और नित्यरूप ज्ञानके नाममात्र अभाव के आरोप बिषे हमारी क्या हानि है कुछ भी नहीं॥ और जो ऐसाकहे कि अभाव ज्ञेयरूपहुआ भी ज्ञानसे भिन्न है, तब इस तेरे कहने से ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभाव जो तेरे मतमें माना है सो सिद्धनहीं होगा। और जो ऐसा कहे कि ज्ञेयवस्तु ज्ञान से भिन्न है, और ज्ञान जो है सो ज्ञेयसे भिन्न नहीं, सो बने नहीं, क्योंकि शब्दमात्र के भेदकरके वास्तविक भेदका असंभव है ताते। और जब ज्ञेय और ज्ञानकी एकता अंगीकार करताहै, तब ज्ञेयज्ञानसे भिन्न है और ज्ञेय से भिन्नज्ञाननहीं, यह जो कथन है सो वह्नि (अग्नि अग्निसे भिन्न है और अग्निसे भिन्न वह्निनहीं) इसकथनवत् शब्दमात्रहीहै। एतदर्थहे वादी! ज्ञान जोहै सो ज्ञेयसेभिन्नही सिद्ध होताहै। और ज्ञानको ज्ञेयसेभिन्न सिद्धहुये सुषुप्तिबिषे ज्ञेयके अभावकेहोते ज्ञानके अभाव का असंभव सिद्ध भया॥ और जो ऐसाकहे कि सुषुप्तिबिषे ज्ञेय के अभावहुये ज्ञानका अदर्शन है ताते ज्ञानका अभाव है, सो भी बने नहीं, क्योंकि सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानका अंगीकार है ताते वहां ज्ञानका अदर्शन असिद्ध है। और जिसकरकेविज्ञानवादीकेमतबिषे सुषुप्ति में भी विज्ञानका सद्भाव अंगीकार करते हैं एतदर्थ ज्ञानका अदर्शन सम्भवता नहीं॥ और जो कदापि ऐसाकहे कि सुषुप्ति बिषे भी ज्ञानको अपने आपकरकेही अपना ज्ञेयपना है, सो भी बने नहीं, क्योंकि अभावस्थलबिषे ज्ञान और ज्ञेयका भेद सिद्ध होता है ताते। और जिसकरके अभावरूप ज्ञेयको विषयकरने वाला जो ज्ञान तिसको अभावरूप ज्ञेय से भिन्नहोने करके ज्ञेय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और ज्ञानका भेद सिद्ध है ताते सो सिद्धभया भेद 'मृतकके सि
लावनेवत्, पुनः विपरीत करनेको सैकड़ों विज्ञानवादियों से भी
अशक्यहै ॥ और जो विज्ञानवादी ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयपना
ही है। तो सो भी अन्यज्ञानकरकेही ज्ञेय होवेगा। और सो ज्ञान
भी अन्य ज्ञानकरके ज्ञेयहोवेगा, ऐसे तुम्हारे पक्ष बिषे अनवस्था
दोष होगा, सो भी बने नहीं। क्योंकि सर्ववस्तु के समूह के वि
भागका सम्भवहै ताते। और जिस पक्षबिषे सर्ववस्तुका समूह
अपनेसे भिन्न किसी भी ज्ञानका ज्ञेयहै, तिस पक्षबिषे उक्त दोष
है। और ऐसे जब हम मानतेहोयँ तब हमारे पक्षबिषे अनवस्था
दोष होय। और जिसकरके ऐसे ज्ञानको विषयकरनेवाला ज्ञान
रूप तीसराभाग हमों करके नहीं मानते हैं, किन्तु तिस ज्ञेयसे
भिन्न जो ज्ञान सो ज्ञानही है और ज्ञानसों भिन्न जो ज्ञेय सो ज्ञेय
ही है। इसप्रकार दूसरा विभागही हमोंकरके मानते हैं। ताते
हमारे पक्षबिषे अनवस्थादोष सम्भवता नहीं ॥ और जो विज्ञान
वादी ऐसा कहै कि तुम्हारे मतबिषे जब ज्ञानरूप ब्रह्म आपही अ
पनेका विषय नहीं, तब ब्रह्म के सर्वज्ञपने की हानि होती है, सो
दोष ऽ [अर्थात् जानने योग्य सर्ववस्तुके अज्ञानके होनेसेही सर्व
ज्ञताकी हानि होती है और प्रकारसे नहीं, और अन्यथा शशशृंग
(खरगोशके सींग) आदि अत्यन्त असत्य पदार्थोंके अज्ञान से
किसी के भी मतबिषे सर्वज्ञता नहीं होगी ? अथवा सर्वज्ञता की
हानि नहीं होगी ? एतदर्थ हमारेमतबिषे तिस सर्वज्ञताकी हानि
रूप दोषकी प्राप्तिनहीं, ?क्योंकि ज्ञानस्वरूपको अपनाआप ज्ञेयत्व
शशविषाणवत् है ? किन्तु तिस विज्ञानवादी कोही उक्त दोषकी
प्राप्तिहोती है। क्योंकि तिसविज्ञानवादीकरके ज्ञानकी अवश्य ज्ञेय
रूपताका अंगीकार है ताते आप ज्ञान करकेही अपना ज्ञेयपना
मान्याहै। और तिस अपने करके अपने ज्ञेयपनेको "अभावरू
ज्ञेयको विषयकरनेवाले ज्ञानको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्नहोनेकर
ज्ञेय और ज्ञानका अन्यपनासिद्धहै" सो पूर्व्वके ग्रन्थभाग वि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूषितहोने से अन्य ज्ञेयपने के अंगीकार से सर्व्वज्ञताका असम्भव है ताते इस अभिप्राय से सिद्धान्ती कहे है [ऽ भी तिस विज्ञान वादीकोही होहु । हमको तिस मायिक सर्व्वज्ञपने के खण्डन बिषे क्या दोष है, कुछ भी नहीं । और विज्ञानवादी के मत बिषे 'ज्ञान' ज्ञेयरूप है, एतदर्थ ज्ञान के ज्ञेयपने के अंगीकार से दूसरा अनवस्थारूप दोष भी अवश्यही होगा] ॥ क्योंकि विज्ञान-वादी के मतबिषे ज्ञान को आपसे अज्ञेय होने करके अनवस्था रूप दोष अनिवार्य्य है [यहां यह अर्थ है कि विज्ञानवादी के मतबिषे ज्ञान को आप करके ही आपका ज्ञेयपना मान्या है, तिसके असम्भव को "ज्ञेय और ज्ञान का पृथक्पना सिद्ध है" इस उक्त पूर्व्व ग्रन्थ के भाग बिषे कथन किया होने से, परिशेष ते ज्ञान को अन्य ज्ञान के ज्ञेयपने के होने से तिस ज्ञान का भी अन्य ज्ञाता है, तिसका भी अन्य ज्ञाता है । इसप्रकार प्राप्तभया जो अनवस्था दोष सो निवारण करने को अशक्यही है] और जो ऐसा कहै कि तुम्हारे मतबिषे भी यह अनवस्था दोष तुल्य ही है ऽ [अर्थात् हे सिद्धान्तिन् ! तुम्हारे मतबिषे भी ज्ञान को अज्ञेयपने के हुये तिसके व्यवहार की असिद्धि होवेगी । और अन्य ज्ञान के ज्ञेयपने के हुये अनवस्था होवेगी । इस अभिप्राय से वादी शंका करता है] ऽ सो बने नहीं ऽ [हमारे मतबिषे ज्ञान को स्वप्रकाश होने करके आपही करके अपने व्यवहारकी सिद्धि है ताते और ज्ञान के भेद के अंगीकार से अनवस्था दोष की प्राप्ति नहीं है, इस अभिप्राय से सिद्धान्ती समाधान करता है] ऽ क्योंकि ज्ञान की एकता का सम्भव है ताते । और सर्व्व देश-काल और पुरुष आदि अवस्थावाला एक ही ज्ञान, नामरूपादि अनेक उपाधियों के भेद से 'सूर्य्यादिकों के जलादि उपाधिगत प्रतिबिम्बवत्, अनेक प्रकार का भासता है, एतदर्थ हमारे मत बिषे यह अनवस्था दोष नहीं है ॥ और तैसेही चैतन्य के नित्य पने करके अधिष्ठानपना सिद्ध है तिसके हुये इस श्रुति बिषे यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षोड़शकला का आरोप करते हैं ॥ ननु ॥ इस श्रुति से मृत्तिक
के पात्रबिषे बदरी (बैर) के फलवत् इसही शरीर के भीत
परिच्छिन्न पुरुष है सो नित्य कैसे सम्भवे, अर्थात् सम्भवै
नहीं । सो कथन बने नहीं । क्योंकि सो प्राणादिकला का कार
है ताते । और जिस करके शरीरमात्र करके परिच्छिन्न प्राण
श्रद्धाआदिक कलाका कारणपना निश्चय करनेको शक्य नहीं है
एतदर्थ सो पुरुषही सर्व कला का कारणहै । और जिसकरके
सर्व कलाका कारण है, ताते शरीर को कलाका कार्य होने से
शरीर पुरुष की कार्यकला तिसका कार्यरूप अपनी उत्पत्ति से पू
अविद्यमान आप शरीर सो अपने बिषे अपने कारण के कारण
पुरुष को मृत्तिका के पात्रबिषे बदरी फलवत् परिच्छिन्न करने को
समर्थ होवे नहीं ॥ और जो कहे कि जैसे बीजका कार्य वृक्ष और
तिसका कार्य आम्रादि फल, सो अपने कारण के कारण बीज को
अपने भीतर करने करके परिच्छिन्न करता है । तैसे शरीर जो है
सो अपने कारण के कारण पुरुष को भी अपने भीतर करनेकरके
परिच्छिन्न करता है । सो कथनबने नहीं । क्योंकि फलका कारण
वृक्ष तिसकी उत्पत्तिका कारण जो बीज तिस बीजकी और फल
के अन्तर्गत बीजकी व्यक्ति का भेद है तिस भेद करके, और बीज
सावयव होताहै ताते, और पुरुषकी व्यक्तिकी एकताहै ताते और
पुरुषको निरवयवता है ताते, [फल और बीजकी व्यक्तिके भेद को
इस दृष्टान्तगत प्रथम हेतु को यहां वर्णन करते हैं] दृष्टान्त विषे
कारणरूप बीज से अन्यही बीज वृक्षके फल से आवृत्त है । और
दार्ष्टान्त बिषे तो अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीर के
भीतरकिया सुनते हैं । [अब बीजको सावयव होनेसे इस दृष्टान्त
गत द्वितीय हेतुको वर्णन करते हैं । यहां यह रहस्य है कि दृष्टान्त
बिषे यद्यपि कारणरूप बीजकेही वृक्ष और तिसके फल और तिस
फल के अन्तर्गत बीजरूप से परिणामते तिन कारण और कार्य
रूप बीजकी व्यक्तिभेदके होतेभी एकताहै तथापि तिसका कारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप बीजको सावयव होने से वृक्षवत् फल के आकार से परिणाम को प्राप्त भये अवयवन से भिन्न जो अवयव है, तिनके ही तिस फलके अन्तर्गत बीजरूप से परिणामते उन बीजों का भेद करके फल का और तिसके अन्तर्गत बीजका आधार आधेयभाव होता है। और यहां दार्ष्टान्तविषे तो पुरुषको निरवयव होनेसे शरीर का और पुरुषका आधाराधेयभाव बने नहीं] किंवा बीज और वृक्ष आदिकों को सावयवहोने से उनका परस्पर आधार और आधेयभाव बने है और पुरुष निरवयव है और कला और शरीर सावयव हैं, एतदर्थ तिनका परस्पर आधाराधेय भाव बने नहीं। और जब इस हेतु करके आकाशका भी आधारपना शरीर को अघटित है, तब आकाश के कारण पुरुष का आधारपना शरीर को अघटित होय इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं। ताते हे वादी ! तैंने जो बीजका दृष्टान्त दिया सो दार्ष्टान्तके समान नहीं, किन्तु विषम है। और जो ऐसा कहे कि दृष्टान्तसे क्या प्रयोजन है प्रमाणरूप श्रुति के वाक्य करके ही पुरुष को परिच्छिन्नपना होवेगा। सो भी बने नहीं। क्योंकि वाक्यको कारकताका अभाव है। और जिस करके श्रुतिका वचन वस्तु के अन्यथा करनेविषे समर्थ होतानहीं, किन्तु जैसा अर्थ होय तैसे अर्थके प्रकाशने बिषे समर्थ होताहै, ताते " इहैवान्तःशरीरेसौम्य सपुरुषो " < शरीर के भीतर सो पुरुष है > यह जो श्रुतिका वचन है सो अंडके भीतर आकाश है, इस वाक्य के अर्थवत् जानना। और ज्ञानका निमित्त होनेसे दर्शन श्रवण मनन और विज्ञान आदिक लिंगोंसे शरीरके भीतर परिच्छिन्नवत् प्रतीतहोता है। एतदर्थ। हे सौम्य ! शरीरकेभीतर सो पुरुष है। इसप्रकार कहते हैं। और पुनः आकाशका कारणहुआ मृत्तिका के पात्रसे बदरीफलवत् शरीर करके परिच्छिन्न पुरुष है, इसप्रकार तो मूढ़ पुरुष भी मनसे भी कहने को इच्छा करता नहीं, तब प्रमाणभूत श्रुति कहनेको न इच्छा करती होय, इसमें क्या कहना है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ननु "यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्ति" < जिस बिषे यह षोड़श कला उपजती हैं > इसप्रकार द्वितीय वाक्य बिषे पुरुषके विशेषणार्थ अध्यारोप कहा है, पुनः " सईक्षाञ्चक्रे " < सो ईक्षण को करताभया > इत्यादिरूप तृतीयवाक्यसे जो कलाकी उत्पत्तिका कथन सुना है, सो यद्यपि अधिक अर्थ भी है, तथापि कलाकी उत्पत्ति किसक्रम से होती है, इस अर्थके जानने के प्रयोजनसे " सईक्षाञ्चक्रे "< सो ईक्षणको करता भया > इत्यादिरूप यह अधिक अर्थ भी कहते हैं । और चेतन पूर्वकही प्राणादि कलाकी सृष्टिहोती है, इसअर्थ के जतावने को चेतन के आश्रित ईक्षण (अवलोकन) का कथन है। इसप्रकार शंकासमाधानरूप उपोद्घात [अर्थात्, अन्यके गृहसे गोरस के मांगनेवाली स्त्रीको प्रतिपादन करने के योग्य अर्थको मनमें रखके तिसकेअर्थ अन्य अर्थका जो प्रतिपादन तिसको , उपोद्घात, कहते हैं] को करके अब तृतीय वाक्यके अर्थको कहते हैं । हे सौम्य ! जो षोड़श कलावाला पुरुष भारद्वाज के पुत्र सुकेशा नाम मुनिने पूछाथा कि "सईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति " < सो किसकेनिकसेहुये मैं निकसा होऊंगा वा किसके स्थितहुये स्थितको प्राप्तहोऊंगा । ऐसे ईक्षणको करताहुआ > अर्थात् सो किस कर्त्ता विशेष के देहसे निकसे हुये मैं निकस्या होऊंगा और किसके शरीर बिषे स्थित हुये मैं स्थिति को प्राप्त होऊंगा, इसप्रकार प्राणादिककी सृष्टिके शरीरसे बाहर निकसने और शरीरके भीतर स्थित होने रूप फलको। और " प्राणाच्छ्रद्धा"< प्राणसे श्रद्धा को रचता भया> इत्यादिरूपक्रम आदिकको [यहां आदि शब्द से "लोकोंबिषे नामको रचताभया" यह आधार और आधेय का भेद ग्रहण करते हैं] विषयकरनेवाले ईक्षण (ज्ञान) को करता भया ॥ इति सिद्धम् ॥३ । ६२ ॥

४ ॥ हे सौम्य ! यहां यह सांख्यमत के अनुसारी वादियों की शंकाहै ॥ ननु ॥ आत्मा अकर्त्ता है और प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, एतदर्थ पुरुष के भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनको अंगीकार करके प्रधान जो है, सो महत्तत्त्वादिरूप आकारसे प्रवृत्तहोता है। तहां यह पुरुषको स्वतन्त्रता करके ईक्षणपूर्वक कर्त्तापने का जो वचन है सो अघटितहै। किंवा सत्त्वादि गुणोंकी साम्यावस्था

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म्मलो का लोकेषु च नाम च ॥ ४ । ६३ ॥

(मिश्रअवस्था) मय प्रमाण प्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होतसंते। अथवा परमाणु कारणवादी के मतानुसार ईश्वरेच्छा के अनुवर्ती सृष्टिका कारण परमाणुके होतसंते। आत्माको कर्त्तापनेके अंगीकार करने से [समीचीन नहीं क्योंकि] आत्मा को एक अद्वैत होनेसे, जैसे कुलालरूप कर्त्ताके दंडचक्रादि सहकारी साधनवत्, सहकारी साधनका अभावहै, ताते दुःखादि अनर्थ के हेतु जे प्राणादिक संसार तिसके कर्त्तापने का असंभवहै एतदर्थ आत्माको सृष्टिके कर्त्तापने का जो वचनहै सो अघटितहै। और जिसकरके प्रत्यक्ष चेतनावान् बुद्धिपूर्वक कार्यका कर्त्ता पुरुष सो अपने अर्थ अनर्थको करता नहीं। एतदर्थ भी [ज्ञानस्वरूपआत्माको] अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनेबिषे प्रवृत्त होना संभवे नहीं। एतदर्थही पुरुषके भोग मोक्षमय प्रयोजनसे ईक्षणपूर्वकवत् नियमित क्रमकरके वर्त्तमान अचेतन प्रधानबिषे 'जैसे राजाके सर्व अर्थके करनेवाले मंत्री आदिकोंबिषे, यहराजाहै, इसआरोपवत् 'स ईक्षाञ्चक्रे' <सोईक्षणको करताभया> इत्यादि रूप यह चेतनवत् आरोप है। [अर्थात्, 'जैसे' बालकबिषे पीतरंग करके युक्ततारूप गुणके योग से अग्निशब्दका प्रयोगहै तद्वत्, मुख्य ईक्षणके कर्त्ता बिषे विद्यमान जे नियमित क्रमकरके प्रवर्त्तमान होने रूप गुण तिसके योगसे 'स ईक्षाञ्चक्रे' <सो ईक्षणको करताभया> ऐसा प्रधानबिषे गौणप्रयोगहै सोई उपचार और आरोप कहतेहैं] यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सांख्यवादियों का कथन है । सो बने नहीं ॥ क्योंकि आत्मा को भोक्तापनेवत् कर्त्तापनेका सम्भव है ताते । और जैसे सांख्यवादि के मत बिषे चेतनमात्र अपरिणामी आत्मा का भी भोक्तापन मानते हैं, तिसप्रकार वेदवादी हमारे मतबिषे स्वरूप से अकर्त्ता हुये आत्माको भी मायारूप उपाधिका किया श्रुति उक्तप्रमाणसे जगत्का कर्त्तापना घटित है ॥ और जो सांख्यवादी ऐसाकहै कि हमारे मतबिषे आत्माको अन्य महदादितत्त्व के स्वरूप की प्राप्ति रूप परिणाम से आत्मा की अनित्यता, अशुद्धता, अनेकताके निमित्त जे चेतनमात्र जे स्वरूपका विकार तिस विकार से पुरुष के स्वरूपबिषेही भोक्तापना तिसके होने से चेतनमात्र जो स्वरूप का विकार (अविवेक से परिणाम) सो दोषके अर्थ नहीं । और तुम्हारे वेदवादियों के मतबिषे आत्माको सृष्टिका कर्त्तापनाहोने से आत्मा का अन्य तत्त्व के स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामही होत है । एतदर्थ आत्मा को अनित्यता आदि सर्व्व दोषों की प्राप्ति होयगी ८[पूर्व्वरूपके परित्यागसे अन्यरूपकी जो प्राप्ति तिसको परिणाम कहते हैं सो परिणाम सजातीय अन्यरूपकी प्राप्ति के हुये, अथवा विजातीय अन्यरूप की प्राप्तिकेहुये अनित्यता आदि दोषोंको सम्पादन करताही है । एतदर्थ भोज्य (भोगनेयोग्य) के अविवेकरूप उपाधि का किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्य है । तिसकारण करके तिस भोज्यके अविवेकरूप उपाधिके रचितपना सो तिस परिणाम के कर्त्तापने बिषे भी तुल्यही है । इस अभिप्रायसे भाष्यकाराचार्य्य मुख्य समाधानको कहते हैं यहां यह भाव है कि परमात्मारूप पुरुषको उपाधिकृत जो कर्त्तापनेका सम्भवहै ताते । और भ्रान्ति करके इस परमात्मासे भिन्न अपूर्णकाम जीवों का सम्भव है ताते तिनके पुरुषार्थरूप प्रयोजनका सृष्टापना तिसही प्रकार के चेतन रूप पुरुषको भी बनत है । एतदर्थ चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानको से जीवों के भोग मोक्षमय पुरुषार्थरूप प्रयोजन का सृजतापन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्त नहीं] ? यह जो सांख्यवादियों का कथन सो बने नहीं। क्योंकि हमारे मत बिषे वास्तव में सहकारी साधन रहित अकर्त्ता आप्तकाम, एक अद्वैत आत्मा को भी अविद्यारूप सहकारी के आश्रय नामरूपात्मक उपाधि और अनुपाधि के किये भेदका अंगीकार है, तिसकरके आत्मा को नामरूप उपाधिका कियाही बन्ध मोक्ष और तिनके साधनरूप शास्त्रोक्त व्यवहारादिक विशेष मानते हैं। और परमार्थ दृष्टिसे अनुपाधि का किया एकही अद्वितीय शुद्ध और सूक्ष्मबुद्धि से ग्रहण करने योग्य, और सर्व तर्कयुक्त बुद्धियोंका अविषय, अभय और शिव (कल्याण) रूपतत्त्व मानते हैं। तिसबिषे कर्त्तापना किंवा भोक्तापना और क्रिया और कारक का फल नहीं है। क्योंकि सर्व पदार्थों को अद्वैत रूपता है ताते ॥ हे सौम्य ! सांख्यवादी तो वेदसे बाहर बोलने वाले होनेसे पुरुषबिषे अविद्या से आरोपितही कर्त्तापना और क्रिया कारकका फल है, ऐसे कल्पिके पुनः तिससे भयको प्राप्त होते हुये परमार्थसेही पुरुषके भोक्तापनेको इच्छते हैं। और पुरुष से अन्यतत्त्व प्रधान को परमार्थ वस्तुरूपही कल्पतेहुये। और सांख्यवादियोंसे अन्य जे जैनादिक सो नैयायिकों करके शिक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवालेहुये अपने मतके खंडनको पावते हैं। और तैसेही जैनादिकोंसे अन्य जे नैयायिक हैं सो सांख्यवादियोंकरके अपने मतके खंडनको प्राप्त होतेहैं॥ हे सौम्य ! इसप्रकार परस्पर विरुद्ध अर्थकी कल्पनाकरनेसे, मांसके अर्थी (श्वानाशिकरादि) जीवों वत् परस्पर विरुद्ध क्रुद्धभये भेदरूप अर्थकेही देखनेवालेहुये तिस करके परमार्थ तत्त्वकी ओर से दूरसे दूरही खींचेगये हैं, ताते यथार्थ निरुपाधि शुद्ध आत्मतत्त्व के अबोधसे 'दूरात् सुदूरे' दूरसे दूरही चले जाते हैं। एतदर्थ जे मुमुक्षु पुरुष हैं सो उनके मतको अनादरपूर्वक त्यागके वेदान्त अर्थ के तत्त्वरूप एकताके ज्ञानको <श्रद्धा विश्वासपूर्वक> आदरदेनेवाले होयँ। इसप्रयोजन के लिये हमों (वेदवादियों) करके इन तर्क करनेवाले सांख्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वादियोंके मतबिषे कुछ दोषका दर्शन देखावते हैं, उनके मतके खंडन करनेके तात्पर्य से नहीं तैसे यहां यह अर्थ शास्त्रान्तरविषे कहाहै तथा च 'विवदन् खेऽवनिक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम् । वेदसंरक्षितसद्बुद्धिःसुखंनिर्यातिवेदवित् ' ८ वेदवेत्ता जो है, उन वादियों से विवाद को करताहुआ चिदाकाशबिषे विरोधकी उत्पत्तिके कारण (परमार्थसे भेददर्शन) को छोड़के रक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवाला हुआ । अर्थात् ऽ [भेददर्शनको परस्परवादियों से उक्तदोषकरके ग्रस्तहोनेसे अद्वैतही निर्दोषहै ऐसे निश्चयवालीबुद्धि करके युक्तहुआ]ऽ सर्वविकल्पसे शान्त होताहै, किंवा ऽ [कुछ दोष का दर्शन देखावतेहैं ' तिसहीको वर्णनकरतेहुये, कर्त्तापने आदिकोंका आरोपितपनाही सांख्यवादियोंकरकेभी कहनायोग्यहै ऐसा कहतेहैं] ऽ तुम्हारे सांख्यमतबिषे भोक्तापने और कर्त्तापनेरूप दोनों विकारोंकेविलक्षणपनेका असम्भवहै, एतदर्थ पुरुषबिषे यह कर्त्तापने रूपजातिसे अन्य जातिरूप भोक्तापनेकरके युक्तविकार कौनहै, कि जिसकरके पुरुष भोक्ताहीहै कर्त्ता नहीं । और प्रधान तो कर्त्ताहीहै भोक्तानहीं, इसप्रकार तुमकरके कल्पना करते हौ सो कहो ॥ ननु, भोक्ता और चैतन्यमात्र स्वरूपही जो पुरुषहै, सो अपने चेतनरूपसे ही विकारको पावताहै, अन्यतत्त्वरूप परिणामसे नहीं। और प्रधान तो अन्यतत्त्वोंके परिणामसे विकारको पावता है, एतदर्थ सो प्रधान, अनेकरूप है अशुद्धहै और जड़है, ताते विलक्षण एकशुद्ध और चैतन्यरूप पुरुषहै । एतदर्थ उनदोनोंके भिन्न २ धर्मरूप कर्त्तापने औरभोक्तापनेकाभी विलक्षणपनाहै, यह सांख्यवादीने कहा ऽ [पुरुषका चैतन्यरूपसे परिणाम जो तैंने कहा सो क्याआगन्तुक (उत्पत्तिनाशवाला) है, वा नहीं, तहां जो द्वितीयपक्षक है तो तिसपक्षबिषे कर्मजन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्ध होयगा और प्रथम पक्षकहै तो तिस पक्षबिषे आगन्तुक विलक्षणतावाला होनेसे अनित्यता आदिककी प्राप्तिसे पुरुषका प्रधानसे कुछविशेष नहीं है ॥ और जो ऐसाकहे कि भोगके अनन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषको पुनःअपने स्वरूपसेही स्थितहोनेसे अनित्यता आदि दोष नहींहै, तब प्रधानको भी प्रलयविषे 'विशेषके अभावसे, अपनेस्वरूप करकेही स्थितिके अंगीकार करने से तिसका विशेष न होगा। इसप्रकार अबसिद्धान्तीदूषणदेतेहैं॥]ऽतबतहांसिद्धान्तीकहेहैंयह विशेष बनेनहीं, क्योंकि भोगकी उत्पत्तिसे पूर्वप्रधान और पुरुषके विकारके भेदको कथनमात्रताही है ताते। ऽ [संक्षेपसे कथनकिये वाक्यका यहां वर्णन करते हैं] ऽजब केवल चैतन्यमात्र पुरुषको भोगकी उत्पत्तिकालविषे भोक्तापना विशेष होताहै, औरजबभोगके निवृत्तभये पश्चात् तिस <भोक्तापनारूप> विशेषसे रहित पुरुष चैतन्यमात्रही होताहै, तब प्रधानभी तैसेही महत्तत्त्वादि आकार से परिणामको पाय पश्चात् प्रलयकालविषे तिस (महत्तत्त्वादि) आकारको छोड़के प्रधानरूपसे स्थितहोताहै, इसरीतिसेचैतन्य रूपसे पुरुषके विकारकी कल्पनाविषे भी विचार कियेहुये अर्थसे प्रधानका और पुरुषका कुछभी विशेषनहीं देखते हैं। एतदर्थ सांख्यवादियों करके प्रधान और पुरुषका विशेष (विलक्षणविकार) अर्थात् दोनोंका पृथक् २ विलक्षणरूप विकारहै, इसप्रकारवाणी मात्रसेही कहाजाताहै परन्तु सोसिद्धहोतानहीं ॥ऽ[पुरुषका चैतन्य रूपसे जो परिणामहै सो आगन्तुक अन्यरूपनहीं। इसप्रकार पूर्वोक्त दोनों पक्षोंमेंसे द्वितीयपक्षको मानिकै वादीकी शंकाहै]ऽऔर जो ऐसाकहै कि भोगकाल बिषेभी 'भोगसे पूर्ववत्, चैतन्यमात्रही पुरुषहै तिसका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, एतदर्थ प्रधानसे विशेष (विलक्षण) है सो कहनाबने नहीं। क्योंकि जब इसप्रकार मानेंगे तब पुरुषको परमार्थ से भोग होयगा। और कर्मसे जन्य जो कदाचित् होनेवाला भोग सो असिद्ध होगा। ऽ [इस दोषके निवारणार्थ आगन्तुक परिणामको मानिकै भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोग है। सो भोग पुरुषकोही होताहै प्रधानको नहीं। इसप्रकार भोगके सद्भावरूप विशेषमात्र से वादीकी शंकाहै] ऽऔर जो कहे भोगकाल बिषे चैतन्यमात्र पुरुषका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकार परमार्थरूपही है तिसकरके सो भोगकालसम्बन्धी विका
रमात्र भोग पुरुषकोही होताहै,प्रधानको नहीं । एतदर्थ भोग
सद्भाव और असद्भावकरके प्रधान और पुरुषका विशेष (भेद
है ऽ[तहांभी क्या भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोगहै, किं
भोगकालसम्बन्धी चैतन्यमात्रगत विकारवान्पना भोगहै, इ
प्रकार विकल्प करिके, प्रथम पक्षबिषे भोगकालमें प्रधानको भ
सुखादिक आकार से विकारवाला होने से भोग होयगा, इस प्र
कार सिद्धान्ती कहतेहैं] ऽ सो बने नहीं, क्योंकि इसप्रकारहोनेसे
भोगकालबिषे प्रधानकोभी सुखादि आकारसे विकारवान् होनेसे
भोक्तापनेकी प्राप्ति होयगी ॥ ऽ [अब द्वितीयपक्षानुसार वादीकी
शङ्काहै] ऽ और ऐसा कहे कि चैतन्यमात्रकाही जो विकार सो
भोक्तापना है, तब उष्णतारूप विकारसे असाधारण धर्मवाले अ
र्थात् अग्निका असाधारण धर्म उष्णताहै, तिस धर्मवाले अग्नि
आदिकोंके अभोक्तापने बिषे कारणका असंभवहोगा, अर्थात् अ
पने असाधारण विकारवाले अग्निआदिकोंको भी भोक्तापने की
प्राप्तिहोगी ॥ और जो ऐसाकहे कि प्रधान और पुरुष इन दोनोंके
एककाल बिषे भोक्तापना है सोभी बने नहीं । क्योंकि प्रधान के
परमार्थरूपताका अभावहै ताते पुरुषकेसमान पारमार्थिक भोक्ता
पना असिद्ध है । और दोनोंको भोक्ताहुये परस्परके प्रकाश
बिषे दोनों प्रकाशनेके गुणप्रधानभाव के असंभववत्, प्रधान और
पुरुषका अन्योऽन्य गुणप्रधानभाव (शेषशेषीभाव) जो पूर्व
गीकार किया है तिसका असंभवहोगा ॥ और ऽ[ननु । भोग जो
सो सत्त्वगुण प्रधान चित्तरूप से परिणामको प्राप्तभई प्रकृ
तिसकाही धर्म है । क्योंकि तिस चित्तको प्रकृति का विका
होने का संभव है ताते । और पुरुषका धर्म नहीं क्योंकि सो पु
अविकारीहै ताते । और तिसपुरुषको भोगके अभावका प्रसंगनहीं
क्योंकि तिसपुरुषको तिसप्रकारके चित्तके प्रतिबिम्बके तर
(निजरूपता) मात्रसे भोक्तापने का कथनहोता है, इसप्रकार चार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शंकाकरेहै] ऽ जो कहे कि भोगरूप धर्मवाले मुख्य सत्त्वगुणकरके युक्त जो चित्त तिसबिषे पुरुष के चेतनपने के प्रतिबिम्बरूप से निर्विकाररूपकोभी भोक्तापनाहै । सोभी बने नहीं । क्योंकि जब इस तेरेकहे प्रकार है तब पुरुषको परमार्थसे सुखदुःखादि भोगरूप अनर्थका अभावभया तब तिसकरके किसकी निवृत्तिके अर्थ पुरुषके मोक्षका साधन शास्त्ररचते हैं, किन्तु किसीकेभी निवृत्त्यर्थ नहीं ॥ और जो ऐसाकहे कि परमार्थसे यद्यपि पुरुषको अनर्थ का अभाव है, तथापि अविद्याकरके आत्मा बिषे आरोपित जे अनर्थ तिसकी निवृत्तिके अर्थ शास्त्रकी रचनाहै । तब, परमार्थसे पुरुषभोक्ताहीहै, कर्त्ता नहीं, और प्रधान कर्त्ताही है भोक्तानहीं, और परमार्थकरके पुरुषसे अन्य वस्तु सत्रूप प्रधानहै,इसप्रकार की जो यह सांख्य मतवादियों की कल्पना सो, वेदबाह्य व्यर्थ और निष्प्रयोजन है । एतदर्थ मुमुक्षुओं करके आदरकरने योग्य नहीं ॥ और जो सांख्यवादी ऐसा कहे कि तुम वेदवादियोंके सर्वकी एकतारूप पक्षबिषे भी निवारण करनेयोग्य बन्धका अभाव है, ताते शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षके साधनकी व्यर्थताहै । सोभीबने नहीं, क्योंकि आत्माकी एकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषसे विपरीत जे अज्ञानी पुरुष तिनके प्रतिदोषके सम्पादन करनेका अभाव है ताते । और जिसकरके शास्त्रकर्त्ता आदिक और तिसके फलके अर्थी पुरुषों बिषे शास्त्रकी रचना निष्प्रयोजनहै वा सप्रयोजनहै, इसप्रकारकी सो कल्पनाहोय । और आत्माकी एकता के निश्चय कियेहुये शास्त्रके कर्त्ताआदिक पुरुष, तिस आत्मासे भिन्न नहींहै । और तिनशास्त्र कर्त्ता आदिकोंके अभावहुये, यह शास्त्रकी रचना सप्रयोजनहै वा निष्प्रयोजन है, ऐसी यह कल्पना अघटितहै ऽ८ अथवा तिसएकताके निश्चयके अभाव होनेसे निवारण करनेयोग्य जे बन्धनादिक तिनके सद्भावसे बन्धकी निवृत्तिके अर्थ यह शास्त्रकी कल्पना अघटितनहीं? किंवा आत्माकी एकताके निश्चयहुये, तिस निश्चयका उत्पादक होनेसे तिसशास्त्रकी प्रयोजनसहित ताको अपने अनु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवकरके सिद्धहोनेसे, तिसआत्माकी एकता के निश्चय अनु
वाले पुरुषकरके यह शङ्का करनेकोभी शक्य नहीं, इसप्रकार
कहतेहैं] ऽ और जिसकरके आत्माकी एकता को माननेवाले
करके आत्मा की एकता के निश्चय किये हुये शास्त्ररूप प्रमाण
प्रयोजन अंगीकार किया, एतदर्थ शास्त्रसप्रयोजनहै किंवा अप्र
जनहै, यह शङ्का करनेकोभी अशक्यहै। और तिस आत्माकीएक
के निश्चय कियेहुये कल्पना का असम्भवहै। इस अर्थको "यत्र
स्यसर्व्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि' < जहां (जिस
ज्ञानदशा बिषे) तो इसपुरुषको सर्व्वआत्माही होताभया, त
किसकरके किसको देखे, इत्यादि । > यह शास्त्र कहताहै। औ
" यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति इत्यादि ' < ज
द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यको देखता है > इत्यादि रूप
बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानीके बिषे शास्त्रकी रच
आदिकके सम्भवको कहता है। और ' अविभक्ते विद्या विद्येऽप
परे' < पर और अपररूप विद्या और अविद्या भिन्नरूपहै > इत्या
शास्त्रके आदि बिषेही विद्या और अविद्याका भेद सूचित किया
एतदर्थ वेदान्तशास्त्ररूप प्रमाण महाराजा की युक्तिरूप भु
करके रक्षित इसआत्माकी अभेद एकतारूप देशबिषे तार्किकम
के वाद रूपशस्त्रकरके
हे सौम्य ! इसप्रकार के कथन करके ब्रह्म को अविद्याकृत
रूपउपाधिकरके रचित अनेक शक्ति और साधनके किये अने
पनेके सद्भावसे, ब्रह्मको सृष्टिआदिकोंके कर्त्तापने बिषे <दंडचक्रा
वत्, साधनका अभावरूपदोष और अपने आपके अर्थ अन
का कर्त्तापना आदि दोष जो पूर्व सांख्यमतवादीने कहाथा, ति
का खंडनभया जानना ॥ और सांख्यवादीने जो पूर्व दृष्टा
कहाथा कि, जैसे, राजाके सर्वकार्य के कर्त्ता कार्याध्यक्ष बिषे उ
चारसे, " यह राजा के कार्यका कर्त्ता राजा है,, इसप्रकार कहते
हैं, सो दृष्टान्त यहां बने नहीं। क्योंकि ' स ईक्षाञ्चक्रे ' < सो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षणको करताभया >। इसप्रमाणरूप श्रुतिके मुख्य अर्थ का बाध है ताते। और <यजमानपाषाणहै> इत्यादि स्थल बिषे जहां शब्द का मुख्यार्थ संभवे नहीं, तहांहीं शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पना रूप उपचार देखा है । और यहां प्रधानके पक्षबिषे तो > अर्थात् <[प्रधानके पक्षबिषे केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभव रूप दोषहै, ऐसे नहीं, किंतु वास्तवसे तो तिसको जगत् का स्रष्टापना भी संभवता नहीं, ऐसे अब कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि प्रधानकी मुक्तपुरुष को छोड़के बद्धपुरुषों के प्रतिही प्रवृत्ति और कर्त्ता कर्म आदिक की अपेक्षा से बन्ध और मोक्ष आदि शब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ नियमित प्रवृत्ति संभवे नहीं। इसकथन करके पुरुष के अर्थ भोग मोक्षमय अर्थ रूप प्रयोजन को अंगीकार करके प्रधान प्रवृत्त होता है। इस प्रकार जो पूर्व शङ्काके अवसर बिषे सांख्यवादीने कहारहा सो खंडनकिया]> अचेतनरूप प्रधानकी मुक्त और बद्धपुरुषों की अपेक्षा से, और कर्त्ता कर्मदेश और कालरूप निमित्तकी अपेक्षासे पुरुषके प्रतिबंध और मोक्ष आदिक फलके अर्थनियमित प्रवृत्ति बने नहीं। और हमों करके उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापने बिषे तो उक्त प्रवृत्ति बने है॥ इस प्रकार वादीके पक्षको खंडन करके, अब श्रुतिके व्याख्यानको कहतेहुये 'स प्राणमसृजत' <सो प्राणको सृजता भया> इस वाक्यके तात्पर्य रूप अर्थको कहते हैं। ईश्वररूप पुरुषकरके राजावत्, सर्वकार्य बिषे अधिकारी ऐसाप्राण सृजाजाताहै। ऐसे तात्पर्यार्थ को कहके अब प्रश्नपूर्वक अक्षरार्थ को कहतेहैं॥ प्र०॥ हे भगवन्! कैसे सृजता भया॥ उ०॥ 'स प्राणमसृजत' <सो प्राणको सृजता भया> सो पुरुष, उक्त प्रकार से त्रैकालवर्त्ति वस्तुओंको विषयकरनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणको करके सर्वके प्राणमय (समष्टिप्राणरूप) हिरण्यगर्भनामवाले सर्व प्राणियों के करणों (इन्द्रियों) के आधाररूप अन्तरात्माको सृजता भया। और ऽ'प्राणाच्छ्रद्धा' <प्राणसे श्रद्धा> ऽइसप्राणसे सर्व प्राणि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योंकी शुभकर्म बिषे प्रवृत्तिकी कारणरूप श्रद्धाको सृजता भया। तिसके पश्चात् कर्मफलके उपभोगके साधनरूपदेहके अधिष्ठान और कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतों को सृजताभया । तहां 'खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी' ८ आकाश वायु ज्योति जल पृथिवी (को सृजताभया) ›› शब्दगुणवाले आकाशको, और अपने गुण स्पर्श और कारण के गुणशब्दकरके युक्त दोगुणवाले वायुको, और तैसेही अपने गुणरूप और कारणके गुणशब्द और स्पर्श करके युक्त तीनगुणवाले तेज (अग्नि) को, और तैसेही अपनेगुण रस और कारण के गुण शब्द स्पर्श और रूपकरके युक्त चार गुणवाले जलको, और तैसेही अपने गुण गंध और कारण के गुण शब्द स्पर्श रूप रस, इनसर्वके मिलनेकरके पांचगुणवाली पृथिवी को सृजताभया । और ८ 'इन्द्रियम् । मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं' ८ इन्द्रियोंको मनको अन्नको और वीर्यको (सृजताभया) ›› तैसेही तिनहीं पंचभूतों से अपंचीकृत अवस्था बिषे ज्ञानके अर्थ और कर्मके अर्थ दशसंख्यावाले दोप्रकारके अर्थात् ज्ञानके अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रिय को और कर्मकेअर्थ पांचकर्मेन्द्रियको, और तिन इन्द्रियोंके नियामकशरीराबिषे स्थितसंशय और संकल्पविकल्पादि लक्षणवाले मन को सृजताभया। और इसही प्रकार प्राणियोंके कार्य और कारण को सृजके तिनकी स्थिति के अर्थ व्रीहि (तंडुलधान्य) और यव आदिरूप अन्नको सृजताभया । तिसके पश्चात् उस अन्नको भोजन कियेहुयेसे, सर्वकर्म बिषे प्रवृत्तिके साधन वीर्य्य (बल) को सृजताभया । और ऽ 'तपो मन्त्राः कर्म लोकालोकेषु च नाम च' ८ तपको मन्त्रोंको लोकको लोकबिषे नामको (सृजताभया) ऽ अन्तःकरणकी अशुद्धता करके भया जो पापाचरण तिन पापों करके संकरता (मिश्रभाव) को प्राप्तभये तिस बलवाले प्राणियोंके संकरताके निवारणार्थ चित्तशुद्धिके साधन तपको सृजताभया और तिन तपसे शुद्धभये हैं अन्तर के और बाह्यके कारण जिन्हों के, ऐसे प्राणियों के अर्थ कर्मके साधनभूत जे व्रीहि यव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साम और अथर्वणवेदरूप मन्त्रोंसे अग्निहोत्रादिरूप कर्म होता भया। और तिन कर्मोंसे कर्मके फलरूप चतुर्दशलोक होतेभये। और तिनलोकों बिषे उत्पन्नभये प्राणियोंका देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुदत्त आदिरूप नाम होताभया ऽ॥ [ननु, ईश्वरके सृष्टापनेके कथनसे कलाओं का सत्यपना अङ्गीकार करना चाहिये। क्योंकि शुक्तिरजत आदिकरूप आरोप बिषे सृष्टपने (उत्पन्न होने) के व्यवहारका अभाव है ताते यह आशंकाकरके, नेत्र बिषे अंगुली के धारण और नेत्रमर्दन आदिक प्रयत्न से उत्पन्न किये दो चन्द्र मशक और मक्षिका आदिकों के आरोप के देखने से, ' अथ रथानथयोगान् पथः सृजत इति ' ८ अब जाग्रत् के अनन्तर, रथ को और रथमें जुड़नेवाले अश्वादिकों को और मार्गों को सृजता भया, इस बृहदारण्य की श्रुति बिषे उत्पन्न होनेकरके उक्त स्वप्न के पदार्थोंकी भ्रमरूपताके देखनेसे, ईश्वरकरके रचित कलाओं का सत्यपना मानना चाहिये यह कहना बने नहीं। इस अभिप्रायसे अब भाष्यकाराचार्य्य कहते हैं। यहां तिमिरशब्द जो है सो नेत्रबिषे अंगुली के धरने आदिक निमित्त के ग्रहणार्थ है] ऽ इसरीति से यह सोलहकला प्राणियों की अविद्या आदि दोषरूप बीजकी अपेक्षासे, तिमिरदोष करके युक्त दृष्टि से सृजेहुये दो चन्द्र मशक और मक्षिका आदिकोंवत्, और स्वप्न के द्रष्टाकरके सृजे हुये सर्व स्वप्नके पदार्थवत् सृजीहुई है। पुनः ऽ [जिसप्रकार आत्माके निश्चयार्थ अध्यारोपको कहके अब तिसके अपवादको प्रकट करते हैं] ऽ समुद्रबिषे नदियोंवत् तिसही पुरुषबिषे अपने २ नामरूपादि उपाधियों के भेदको त्याग के अतिशयकरके लीन होती हैं॥ ४ । ६ ३ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! अब उक्त कलाओं के अपवादको भी सविस्तर दृष्टान्त सहित श्रवणकरो ॥ ' स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ' ८ सो जैसे यह नदियां बहती हुई और समुद्र है अयन (आत्मभाव) जिनका ऐसी हुई समुद्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥ एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेषश्लोकः ॥ ५ । ६४ ॥

को पायके अस्तता को प्राप्त होती हैं > ऽ सोसमुद्रबिषे नदीके लय का दृष्टान्त कैसे है, तहां कहते हैं । जैसे लोक बिषे यह नदियां बहतीहुई और समुद्र है अयन अर्थात् < आदि अन्तमें आत्मभाव, जिनका ऐसी हुई समुद्रको पायके अपने नामरूप के तिरस्कार रूप अस्तताको पावती हैं । और ऽ ' भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ' < और तिनके नाम (और) रूप नाशको पावते हैं समुद्र ऐसेही कहते हैं > ऽ अस्तको प्राप्तभई उन नदियों के गंगा यमुना गोदावरी आदि लक्षणवाले नाम और रूप यह दोनों नाशको पावते हैं । और तिन नामरूपके नाशभये पीछे अवशेषरहा जो जलरूप वस्तु, सो समुद्र ऐसे कहते हैं ॥ हे सौम्य ! जिस प्रकार यह दृष्टान्त है ऽ ' एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ' < ऐसेही इस परिद्रष्टाकी यह षोडशकला (सो) पुरुषहै अयन जिनका ऐसीहुई पुरुषको पायके अस्तको पावे हैं > ऽ तैसेही, उक्त लक्षणवाला प्रसंगबिषे प्राप्त भया पुरुष जो परिद्रष्टा ऽ अर्थात् अपने प्रकाश के कर्त्ता सूर्यवत् सर्व ओरसे स्वरूपभूत दर्शन का कर्त्ता है इस परिद्रष्टा की यह प्राणादि सोलहकला हैं । सो उक्त सोलहकला नदी के अयनरूप समुद्रवत्, पुरुष है अयन (आत्मभाव को प्राप्ति) जिन कला की ऐसी हुई पुरुषरूप आत्मभाव को पाइके अपने नामरूप के तिरस्काररूप अस्तताको पावती है । और ऽ ' भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते ' < तिसके नामरूप नाशको पावते हैं, पुरुष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युपरिव्यथा इति॥ ६।६५॥

ऐसे कहते हैं > तिनकला के प्राणादिक लक्षणवाले नामरूपनाश को पावते हैं। और नामरूप के नाशभये पीछे जोकि अविनाशी तत्व अवशेष रहता है सो ब्रह्मवेत्ताओंकरके पुरुष ऐसे कहते हैं॥ जो पुरुष गुरुने देखाया है कलाके लयकामार्ग जिसको, ऐसाहुआ इसरीतिसे जानताहै ८ ' स एषोऽकलोऽमृतो भवति ' ८ सो यह अकल अमृत होताहै >ऽ सो यह पुरुष, अविद्या काम और कर्म करके जन्य जो प्राणादिक कला तिनके विद्याकरके नाशभये कलारहितहोताहै। और जिसकरके अविद्याकृत कलारूप निमित्त (उपाधि) का किया देह से निकलने आदिक शब्दका वाच्य मरणादिक व्यवहाररूप मृत्युहै, ताते उन कलाके नाश भये यह पुरुष कलारहित होनेसेही अमृत (मरणरहित) होताहै ८ 'तदेषश्लोकः' ८ तिसबिषे यह श्लोकहै >? तिसही इस अर्थ बिषे यह श्लोक (अग्रिमवाक्यरूप वेदका मंत्र) प्रमाणहै॥५।६४॥

६॥ हे सौम्य! ' अराइव रथनाभौ ' ८ जैसे रथकी नाभि बिषे अरा> अर्थात् ऽ[रथकेचक्र (पहिया) की नाभि (मध्यका काष्ठ) तिसको रथनाभि कहतेहैं, तिस रथनाभि बिषे और मार्ग को स्पर्श करनेवाली चक्ररूप नेमी (पूठि) तिसबिषे लगेहुये खड़े काष्ठ तिसको रथचक्रका परिवार कहते हैं। और तिनहींको अरा कहते हैं] सो जैसे रथचक्रके परिवाररूप अरा रथके चक्रकी नाभि बिषे प्रवेशको प्राप्तभये तिस रथचक्रके आश्रित होते हैं। तैसेही ऽ ' कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ' ८ कला जिसबिषे आश्रितहैं >ऽ प्राणादिकला जिस पुरुषबिषे ' उत्पत्ति स्थिति और लय, इन तीनोंकालोंबिषे आश्रित होते हैं ऽ ' तं वेद्यं पुरुषं वेद ' ८ तिस जाननेयोग्य पुरुष को जानना >ऽ तिस कलाके आत्मरूप जाननेयोग्य सर्वत्र पूर्णहोनेसे अथवा सर्व शरीरोंरूपी पुरबिषे रहनेसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परंब्रह्म वेद नातः परमस्ति ॥७।६६॥

पुरुष तिस पुरुषपदसे लक्ष्य पुरुषको जैसाहै तैसाही जानना हे शिष्यो ! ८ 'यथामावोमृत्युपरिव्यथा' < तुमको मृत्यु पीड़ा मतकरै > ८ तुमको मृत्यु जो है सो क्लेशको प्राप्त मत करै अर्थात् जिसकरके तुम क्लेशको प्राप्तभये दुःखीहीहो, एतदर्थ कहताहौं कि तुम्हारेको क्लेश मत प्राप्तहो। इत्यभिप्रायः॥६।६

७॥ हे सौम्य ! पिप्पलादनाम मुनीश्वर आचार्य उक्तरीत्या तिन अपने प्रश्नकर्त्ताओंको उक्त उपदेशकरके पुनः ८ 'तान् होवाच' < तिनकेप्रति कहतेभये > ? तिन अपने शिष्यों को कहतेहुये कि हे प्रियदर्शन ! हे शिष्यो ! ८ 'एतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेद' < इतनाही परब्रह्महै इसको मैं जानता हौं > ? इतनाही जानने योग्य परब्रह्म है इसको मैं जानता हौं और ८ 'नातः परमस्ति इति' < इससे श्रेष्ठ नहीं है > इसकहे हुये परमपुरुष से अन्य अत्यन्त श्रेष्ठ जानने योग्य कोई नहीं है । हे सौम्य ! इसप्रकार अपने शिष्योंको अज्ञात और अवशेष रखने योग्य अन्य वस्तु सद्भावकी आशंकाकी निवृत्ति के अर्थ और हम कृतार्थभये इस प्रकारकी निश्चय आत्मक बुद्धिके जननार्थ पिप्पलाद मुनीश्वर रूप सर्वज्ञ आचार्यने कहाहै ॥ ७ । ६६ ॥

८॥ हे सौम्य ! जब पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्यसे उपदेश को पाय निःसंशयभये वे सुकेशाआदि छवो शिष्य आप कृतार्थ भये तिस निःसंशय कृतार्थकर्त्ता गुरुके अर्थ ब्रह्मविद्या के प्रतिउपकार (बदला) कुछ भी न देखतेभये ॥ प्र० ॥ तब क्या करतेभये उ० ॥ 'तेतमर्चयन्तः' < वे तिसका पूजनकरतेहुये > । अर्थात् छवो शिष्य तिस पिप्पलाद नामवाले अपने गुरुको दोनों पाणि विषे पुष्पांजली अर्पण करनेसे और मस्तक साक्षात् उनके चरणों में रख प्रणिपात (दंडवत्) से पूजन करते हुये, कहते भये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ते तमर्च्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परंपारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति ॥ ८ । ६७ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतःषष्ठप्रश्नः ॥
इति प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ ' त्वंहि नः पितायोऽस्माकं ' < आप हमारे पिताहौ > हे गुरो ! आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीर के विद्याकरके जनक होनेसे पिताहौ । और ('अविद्यायाःपरंपारं तारयसीति ' < जो अविद्यासे परपारकेताईं तारतेहौ > > जो आपही बिपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग और दुःखादिरूप मकरादि तिन करके युक्त जो अविद्यारूप महासागर तिससे, पर विद्यारूप दीर्घ नौकाकरके ऽ महासागर के पारवत्, अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले पारकेताईं हमको पार करतेहौ, एतदर्थ आपका हमारेप्रति अन्य (जन्मदायक) पिता से अधिक पितापना घटित है ॥ और जब अन्यपिता भी शरीर मात्रकोही उत्पन्न और पालन पोषण करता है तथापि लोकबिषे अत्यन्त पूजनें योग्यहै, तब अत्यन्त अभयके दाता सद्गुरुरूप पिताके पूजनेकी योग्यताबिषे क्या कहना है ॥ एतदर्थ ' नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति ' < परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, < ब्रह्म विद्याके सम्प्रदायके कर्त्ता परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु ॥ यहां जो द्विवार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्यों बिषे आदरार्थहै और 'इति,शब्दउपनिषद्की समाप्त्यर्थहै॥ इति सिद्धम् ॥८।६७॥

प्रश्नोपनिषद् के षष्ठप्रश्न की भाषाटीका समाप्त ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लखनऊ के सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस
की
वेदान्त व योगसम्बन्धी पुस्तकें।

(संस्कृत)

अपरोक्षानुभव भाषाटीका सहित -)॥
अवतारसिद्धि ... ... =)॥
अष्टावक्रगीता ... ... १॥)
अष्टावक्र संस्कृतटीकासहित ।)
आत्मबोध भाषाटीकासहित -)॥
ईश्वरदीपिका ... ... ।)
ईश्वरदीपिका उर्दूटीकासहित =)॥
जपग्रन्थ ... ... १)
तर्ज्ञता तर्कसंग्रहादर्श ... ... -)॥
पंचदशी संस्कृतटीकासहित १)
परापूजा भाषाटीकासहित ... ।)
भगवद्गीता सटीक पं० सूर्यदीन १)
भगवद्गीता सटीक मुं० हरिवंशलाल
कागज़ गुन्दा ... ... ॥)
" " गुटका ... ॥।)
भगवद्गीता स० स्वामी आनन्दगिरि १)
भगवद्गीता उर्दू तर्जुमा मुं० श्याम-
सुन्दर ... ... १)
भगवद्गीता सटीक पं० गिरिजाप्र-
साद जी द्विवेदी ... ... १)
भगवद्गीता स० बाबू ज़ालिमसिंह ३)
भगवद्गीता पञ्चरत्न मूल मोटे अक्षर
सजिल्द ... ... १)
" " साधारण अक्षर ॥)
भगवद्गीता संस्कृतटीका सहित =)॥।
रामगीता सटीक पं० सूर्यदीन -)॥
छप्पय रामगीता सटीक पं० बेनीराम -)॥
रामगीता सटीक पं० गिरिजाप्रसाद =)
रामगीता सटीक बाबू ज़ालिमसिंह)
रामहृदय सटीक पं० सूर्यदीन... -)
विवेकदिवाकर सटीक ...)
वेदान्तसारशिरोमणि सटीक ... =)
सांख्यकारिका तत्त्वबोधिनी सटीक
बाबू ज़ालिमसिंह ... ... =)
सांख्यतत्त्वकौमुदी सटीक ...)
सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक ...)

(भाषा)

अनुरागसागर ... ...)
आत्मअनुभवशतक ... ...)
आनन्दामृतवर्षिणी ... ...)
ग्रन्थ गुरु नानकसाहब सजिल्द)
चैतन्यचन्द्रोदय कागज़ गुन्दा ... =)
तत्त्वज्ञानदर्शावनी ... ...)
दोहावली तुलसीदास ...)
नृत्यराघवमिलन ... ...)
पारसभाग ... ...
प्रमोदवनविहार ... ...
विहारवृन्दावन ... ...
बीजक कबीरदास ... ...
भगवद्गीता भाषा ... ...
भक्तमाल वार्तिक ६ भागों में ...
भक्तमाल सटीक नाभादास ...
भक्तमाल सटीक श्रीसीतारामशरण
रामरसरङ्गमणि ... ...
भक्ताम्बुनिधि कागज़ सफ़ेद गुन्दा
" रस्मी कागज़ ...
भागवत गुटका ... ...

मिलने का पता —
मुंशी विष्णुनारायण भार्गव,
मालिक नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

3/22

ॐ

माण्डूक्योपनिषद्

भाषा टीका सहित ॥

जिसमें

ॐकारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्म और आत्मा की अभेदता का निरूपण, आगम, यवैतथ्याख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में अच्छे प्रकार निरूपण कियागया है ॥

जिसको

श्रीमान् सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न श्री मुंशीनवलकिशोरजी सी. आई. ई., ने भारतवर्षीय जनों के उपकारार्थ बहुतसा धन व्यय करके कोलाल्यनगरनिवासी पंचोली यमुनाशंकर नागर ब्राह्मण से सरल देश भाषा में उल्था कराय स्वयंत्रालय में मुद्रित कराय प्रकाशित किया

श्री १०८ पुस्तकालय

तृतीय बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपी

सन् १९१४ ई० ॥

इस किताब का हक़ महफ़ूज़ है बहक़ इस छापेखाने के ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

भूमिका॥

सर्वसुज्ञ आत्मजिज्ञासु पाठक जनोंको विदित हो कि यह सर्व उपनिषदों का सारभूत महाउपनिषद् माण्डूक्यनाम ऋषीश्वर द्वारा इस मनुष्यलोक में प्रकट हुआ है अतएव इसको, माण्डूक्यउपनिषद्, इस नाम से कहते हैं। अथवा जैसे दादुर (मेडक) प्रायः तीन छलांग (कुदान) मारके जल में प्राप्त होताहै, तैसेही आत्मारूपी मेडक जाग्रदादि अवस्थारूप पादरूपी स्थानों से उछलके अपने वास्तविक निरुपाधि ब्रह्मत्वरूप जल को प्राप्त होता है। अर्थात् अन्तःकरणविशिष्ट आत्मरूप मेडक इस उपनिषद् के विचाररूप बल से, प्रथम जाग्रदवस्थादि प्रथम पादरूप स्थानसे उछलके स्वप्नावस्थादिरूप द्वितीय पादरूप स्थान को प्राप्त होताहै, पश्चात् उस स्वप्नावस्थादि पादरूप स्थान से उछल सुषुप्ति अवस्थादिरूप तृतीयपादरूप स्थान को प्राप्त होताहै, पुनः उस तृतीय पादरूप स्थान से उछलके चतुर्थ अमात्रिक अपने परब्रह्मत्वरूप जल को प्राप्त होताहै "शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः" तिस आत्मरूप मेडकका प्रतिपादक होनेसे इस उपनिषद् को, माण्डूक्य, नाम से कहते हैं॥ अरु यह उपनिषद् "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्, एतदालम्बनंज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणसे, संन्यासियों करके उपास्य अरु ब्रह्मप्राप्ति में सर्वोत्तम श्रेष्ठ आलम्बन जे त्रिमात्रिक ॐकार, केवल तिसकाही प्रतिपादक अरु ब्रह्म आत्मा की अभेदता का बोधक होने से सर्व उपनिषदों में मुख्य है। अरु जो कदापि कोई ऐसा कहे कि सर्वही उपनिषद् ब्रह्म आत्मा की अभेदता के बोधक हैं तब इसमें क्या विशेषता है? तो तिसका यह समाधान है कि अन्य जे उपनिषद्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं सो ब्रह्म आत्माकी अभेदता के बोधकहैं परन्तु उनमें सृष्टिकरण
प्राणादिकों की उपासना आदिक अन्य प्रसंग भी हैं अरु इस उपनि
में केवल ॐकार के प्रतिपादन से ब्रह्म आत्माकी अभेदता ही प्रकाशि
है तिससे इतर सृष्टिकरणादिक नहीं, अतएव यह उपनिषद् केवल
आत्मा की अभेदता का बोधक होने से सर्व उपनिषदों में मुख्य है
अतएव उक्त हेतुओं करके इस उपनिषद् को मुख्यत्व होने से श्रीशं
राचार्य महाराज के परमगुरु श्रीगौडपादाचार्यकृत इसके अर्थ बोध
श्लोकबद्ध कारिका है, तिस कारिका के चार प्रकरण हैं .तहां, प्रक
आगमप्रकरण, द्वितीय वैतथ्याख्यप्रकरण, तृतीय अद्वैताख्यप्रकरण, चतु
अलातशान्त्याख्यप्रकरण, इस प्रकार चार प्रकरण हैं ॥ अरु इन चा
प्रकरण से बाह्य इस भाषाभाष्यकारकृत सर्व उपनिषदों में से संग्रह कि
प्रणवोपासना अरु सप्तसिद्धान्तियोंके मतानुसार प्रणवोपासना अरु प्रण
के ॐकारादि दशनामों के अर्थ विचार, अरु अन्यऋषियों के मतानु
मात्राओं के भेद से उपासनविचार, अरु अकारादि मात्रा का क्रमश
लय चिन्तन विचार, इन सर्व के संग्रह का, एक संग्रहप्रकरण नाम
पञ्चम प्रकरण भी कहा है, सो एतदर्थ है कि प्रणवोपासना के जिज्ञा
को इस एकही पुस्तकके अवलोकनसे अनेक ऋषियोंके मतानुसार ॐका
की उपासना जानने में आवे ॥ अरु श्रीगौडपादीय कारिकासहित इस
उपनिषद् ऊपर श्रीभगवत्पादपूज्य श्रीशंकराचार्यजीकृत संस्कृत भाष्य है
अरु तिस भाष्यपर संस्कृत में आनन्दगिरिकृत टीका हैं, अरु तिस भाष
अरु टीकाके अनुसारही द्विजवर श्रीपण्डितराज पीताम्बरजी महाराजकृत
भाषादीपिकानाम टीका है। अरु जैसे सम्यक् प्रकार संस्कृत विद्या के
अभ्यास विना अरु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से अध्ययन किये
विना सभाष्य उपनिषदोंका अर्थ जानने में आवे नहीं, अरु तैसेही जो
केवल भाष्य के अक्षरानुसारही जे पण्डित पीताम्बरजी कृत अक्षरार्थ
टीका तिसका भी यथार्थ जानना सर्व साधारणपुरुषों को सुगम नहीं।
एतदर्थ मैं श्रीपरिव्राजकाचार्य परमहंस स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती जी
महाराज का अतिअल्पज्ञ शिष्य यमुनाशंकरनामक नागरब्राह्मण, उक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाष्यकार अरु टीकाकार के कहे अनुसारही भाषाभाष्यनामक टीका करता हूं उसमें अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार कुछ विशेष भी कहूंगा ॥

सर्वसे साधारण विनय ॥

मुझ अल्पज्ञ करके कहेहुए इस माण्डूक्यउपनिषद् के भाषाभाष्य में जो कछु अनुचित कथन होय तिसको सर्वविवेकी पाठकजन क्षमा करके सुधारलेवें इति ॥

सूचना इस भाषाभाष्यान्तर चिह्नों की ॥

" " इस चिह्नान्तर में भाषान्तर मूल श्रुति, श्लोक ॥

( ) इस चिह्नान्तर में भाषान्तर श्रुति, श्लोक के अक्षरार्थ ॥

“ ” इस चिह्नान्तर में प्रमाणविषयक अन्य श्रुति, श्लोक ॥

( ) इस चिह्नान्तर में प्रमाणविषयक श्रुतिश्लोक के अक्षरार्थ ॥

[ ] इस चिह्नान्तर में संक्षेप से आनन्दगिरि का अक्षरार्थ ॥

{ } इस चिह्नान्तर में भाषाभाष्यकारकृत अर्थानुवाद ॥

, इत्यादि चिह्न साधारण विराम ॥

इति चिह्नसूचना ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ शान्तिपाठः ॥

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्य्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शान्तिःपाठगुरुस्तुति ॥

ॐ शन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्यमा शन्नइन्द्रोबृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः नमोब्रह्मणे नमस्तेवायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतुमामवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

ॐब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ॥

"ॐ सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" "सोयमात्मा" "नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतो प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणम् चिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते" "सआत्मा, अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोविजिघत्सोपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोन्वेष्टव्यः सविजिज्ञासितव्यः" "तद्ब्रह्मेति" "इहैवान्तःशरीरे सौम्य स पुरुषः" "निहितं गुहायां" "दृश्यतेत्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शीभिः" "आत्मावाअरेद्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः साक्षात्कर्त्तेति" "सयोह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति"

"नातःपरमस्ति"

"ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं"
"द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्"
"एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं"
"भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्नमामि"

———*———

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ अथर्ववेदीय ॥

माण्डूक्योपनिषद्

श्रीगौडपादीयकारिकासहितमाण्डूक्योपनिषद् प्रारभ्यते ६ ॥

श्रीमद्भाष्यकारस्वामी श्रीशंकराचार्यकृत ॥

मङ्गलाचरणम्

प्रज्ञानांशुप्रतानैःस्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्यलोकान् भुक्त्वा भोगान् स्थविष्ठान् पुनरपि धिषणोद्भासितान् कामजन्यान्। पीत्वा सर्वान् विशेषान् स्वपिति मधुरभुङ्मायया भोजयन्नो मायासंख्यातुरीयं परममृतमजं ब्रह्मयत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

हे सौम्य ! भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि "परममृतमजं ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि" { अमृत अज जो परब्रह्म है तिसको मैं नमता (नमस्कारकरता) हूं } [अर्थात्, श्रीगौडपादाचार्य को श्रीनारायण के (वा श्रीशुकाचार्य के) प्रसाद से प्राप्तहुए, अरु माण्डूक्यउपनिषद् के अर्थ को प्रकटकरने के परायण जो श्रीगौडपादाचार्यकृतकारिकासंज्ञक श्लोक तिन सहित माण्डूक्योपनिषद् के व्याख्यान करने को इच्छा करतेहुए भगवान् भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्यजी आप करके करने को इच्छित जो भाष्य तिसकी निर्विघ्न समाप्ति के अर्थ पर देवता के स्वरूप के स्मरण पूर्वक शिष्टाचाररूप प्रमाण करके सिद्ध तिस पर देवता के अर्थ नमस्कार रूप मङ्गलाचरण को करतेहुए, अर्थ से इस ग्रन्थ के आरम्भ बिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाञ्छित विषयादिक । अर्थात् ग्रन्थ के प्रयोजन, विषय, सम्बन्ध, अरु अधिकारी । चार प्रकार के अनुबन्ध को भी सूचित करते हैं । तिनमें विधिमुख से वस्तु का प्रतिपादन है, इस प्रक्रिया को देखावते हैं । अरु यहां (ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि) (जो परब्रह्म है तिसको मैं नमता हौं) इस कहने करके मैं (इस अहं) शब्द के । विषय त्वंपद के लक्ष्य । अर्थ की तिस तत् शब्द के लक्ष्यार्थ से एकता के स्मरणरूप नमन को सूचितकरनेवाले आचार्य ने तत्पदके लक्ष्यार्थरूप ब्रह्म का प्रत्यगात्मापना सूचन करके तत्पद अरु त्वंपद के अर्थकी एकतारूप ग्रन्थ का विषय सूचित किया । अरु " यत् " (जो) इस शब्द को प्रसिद्ध अर्थ का प्रकाशक होने से वेदान्तशास्त्र करके प्रसिद्ध जो ब्रह्म है तिसको मैं नमता हौं, इस सम्बन्ध से मङ्गलाचरण भी श्रुति करकेही करते हैं । अरु ब्रह्म को अद्वितीय होने से ही जन्म मरण के अभाव से । अर्थात् एक अद्वैत परिपूर्ण अखण्डब्रह्म में जन्ममरण के हेतुरूप द्वैत का अभाव है ताते । " अमृतमजं " (अमृत अरु अजन्मा) इस प्रकार कहा है अरु जन्म मरणरूप जो बन्ध है सोई संसार है । अरु ब्रह्म में जन्ममरणरूप बन्धलक्षण संसार का अत्यन्ताभाव है । ताते तिस बन्ध के निषेध से । आत्माबिषे । स्वरूप से ही असंसारीभाव के देखावनेवाले आचार्य ने यहां सर्व अनर्थों की निवृत्तिरूप इस ग्रन्थ का प्रयोजन प्रकाशित किया है] ॥ वो परब्रह्म कैसाहै "प्रज्ञानांशुप्रतानैः । (प्रकृष्ट ज्ञानरूपहै) अर्थात् [जब वेदान्तशास्त्र उपनिषद् प्रमाण से सिद्ध ब्रह्म, स्वरूप से अद्वितीय अरु असंसारी है तब तीन अवस्था करके युक्त भोक्ता जीव है इस प्रकार का अनुभव कैसे होता है । अरु । जीव को दुःख सुख का । भोगावनेवाला कोई, ईश्वर है ? इस प्रकार कैसे श्रवण होता है । अरु विषयों का समूहरूप भोज्य (भोगनेयोग्य सामग्री) । ब्रह्मसे । भिन्न कैसे दृष्ट आवती है ? सो यह सर्व एक अद्वैत बिषे विरोध को प्राप्तकरेगा । यह आशङ्का करके एक अद्वैत ब्रह्म बिषे । जीव, जगत्, अरु ईश्वर, यह सर्व । रज्जु में सर्पवत् । कल्पित संभवे है, इस अभिप्राय से यहां कहते हैं] जन्मादि । जायते । अस्ति, वर्द्धते,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विपरिणमते, विपक्षीयते विनश्यति, यह षट्भाव । विकार रहित प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप जो ब्रह्म है "प्रज्ञानंब्रह्म" (प्रज्ञान ब्रह्म है) इस श्रुति प्रमाण से, । तिस सूर्यवत् बिम्बस्थानी ब्रह्म के किरणरूप, जो सूर्य के प्रतिबिम्ब के तुल्य निरूपण किया है । अरु बिम्ब के तुल्य ब्रह्म से पृथक् वा भेद करके असत्य चिदाभास (चैतन्यब्रह्म का आभास) जीव है, तिनके वृक्षादिक स्थिर, अरु मनुष्यादिकचर, इस प्रकार के उद्भिज्जादि चारखानि के स्थिर चर प्राणियों के समूह बिषे व्यापनेवाले विस्तारों से लोक जो विषय तिनके अर्थ व्याप्त होके [इस कथन से उक्त विषयों से जीवों का सम्बन्ध कहा] देवता के अनुग्रह सहित बाह्येन्द्रियों द्वारा बुद्धि के तिस २ विषयाकार परिणाम से जन्यतारूप अतिशय स्थूलतावाले सुखदुःख के साक्षात्काररूप भोगों को भोगिके, अर्थात् [यहां "तान् भुक्त्वा" (तिनको भोगके) इस पद से अरु "स्वपितीति" । सोवता है । इस अग्रिम कहने के पद से सम्बन्ध है। इस कथन से जाग्रदवस्था ब्रह्म बिषे कल्पित है, ऐसा कहाजानना] पुनः [यहां से तिसही ब्रह्म बिषे स्वप्न की कल्पना को देखावते हैं] भी बुद्धि से प्रकाशित हुए, अरु, अविद्या, काम, अरु कर्म से जन्य भोगों को भोगके सर्व [इस प्रकार ब्रह्म बिषे । जाग्रत् स्वप्न । दोनों अवस्था की कल्पना को देखायके अब तहांहीं सुषुप्ति की कल्पना को देखावे हैं] जाग्रत् अरु स्वप्नरूप स्थूल अरु सूक्ष्म विषयों को अज्ञात रूप अपने आत्मा बिषे लय करके जो ब्रह्म सोवता है, अर्थात् कारण के अभाव से स्थित होताहै, अरु जो मधुरभुक् [सुषुप्तिबिषे आनन्द की प्रधानता है इस अभिप्राय से ब्रह्म को । मधुरभुक् वा आनन्दभुक् । यह विशेषण देते हैं] (आनन्द का भोक्ता) है, अरु जो ब्रह्म प्रतिबिम्ब के तुल्य हुआ हमारे बिषे मायाकृत मिथ्यारूपा तीनों अवस्था के सम्बन्धीपनेवत् सम्बन्धीपने को सम्पादन करके हमको माया से भोगावता हुआ वर्त्तता है । अरु तिस मायाकल्पित मिथ्यासंख्या की अपेक्षा से तुरीय (चतुर्थ) । अर्थात् शुद्ध आत्माको चतुर्थ संख्या से कहा है सो माया करके कल्पित जे जाग्रदादि तीनों अवस्था तिनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपेक्षा से है नतु सर्वसंख्याऽतीतबिषे संख्या कोई नहीं । [तिसही ब्रह्म को तीनों अवस्था से पृथक् होनेकरके तिसकी ज्ञानमात्र स्वरूपता को देखावे हैं] मरणरहित अमृत अरु जन्मरहित अज, पर [अर्थात् ब्रह्म को मायावी होने करके तिस बिषे निकृष्टभाव की प्राप्ति की आशङ्का करके तिसके निवारणार्थ "पर" यह पद करके उत्कृष्टताही कहिये है, क्योंकि ब्रह्म को माया (आरोप) द्वारा तिस माया से सम्बन्ध के हुए भी स्वरूप करके माया से ब्रह्म का सम्बन्ध नहीं । क्योंकि तुल्य जातीय वा धर्मादिकवालों का सम्बन्ध सम्भवे है अरु ब्रह्म सत्य चैतन्य आनन्द निर्गुण एकरस है अरु माया तिससे विपरीत असत्य जड़ दुःख सगुण नानारूपवाली है, ताते उक्त प्रकारके ब्रह्मका उक्तप्रकार की माया से सम्बन्ध स्वरूप सेही संभवे नहीं । एतदर्थ ब्रह्म बिषे कैसी निकृष्टता होवेगी ? किन्तु किसी प्रकार भी नहीं । यह अर्थ है] ब्रह्म के अर्थ मैं नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

यो विश्वात्मा विधिजविषयान् प्राश्य भोगान् स्थविष्ठान् पश्चान्यान् स्वमतिविभवान् ज्योतिषा स्वेन सूक्ष्मान् । सर्वानेतान् पुनरपि शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा हित्वा सर्वान् विशेषान् विगतगुणगणः पात्वसौ नस्तुरीयः ॥ २ ॥

हे सौम्य ! जो [प्रथमश्लोक बिषे विधिमुख से वस्तुके प्रतिपादन की प्रतिज्ञा को आश्रय करके 'तत्' पद के 'लक्ष्य' अर्थ से आरम्भ करके तिसकी 'त्वं' पद के लक्ष्यार्थभूत प्रत्यगात्मस्वरूपता प्रतिपादन किया । अरु विषय अरु फल के कथन से, सम्बन्ध, अरु अधिकारी सूचन किये । अब इस द्वितीय श्लोक बिषे निषेधमुख द्वारा वस्तुमात्र के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा को आश्रय करके 'त्वं, पद के वाच्यार्थ से आरम्भ करके तिसकी 'तत्, पद के लक्ष्यार्थभूत असंसारी शुद्ध ब्रह्म रूपता की प्रतीति करावते हैं । तहां प्रथम 'त्वं, पद के लक्ष्यार्थरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वतःसिद्ध चिदात्मा बिषे आरोपित जाग्रदवस्था को उदाहरण करते हैं] यह प्रत्यगात्मा अविद्या अरु काल से उत्पन्न हुए जे धर्म अधर्म-रूप विधि तिससे जन्य जे सूर्यादिक देवता तिनके अनुग्रह सहित बाह्यकरण (चक्षुरादि इन्द्रिय) द्वारा बुद्धि के परिणाम विषय होने करके अत्यन्त स्थूल अरु भोगने के योग्य होने करके भोग शब्द के वाच्य भोग्यों को साक्षात् अनुभव करके स्थितहुआ, पञ्चीकृत पञ्च महाभूत अरु तिनका कार्यरूप स्थूल जगन्मय विराट् का शरीररूप विश्व है तिस जाग्रत् स्थानरूप विश्वबिषे अहंमम (मैं अरु मेरा) यह अभिमानवान् हुआ विश्व (विश्वाभिमानी) जीवरूप होता है। अरु पश्चात् [अब तिसही चैतन्य आत्मा बिषे स्वप्नावस्था के आरोप को कहते हैं] जे जाग्रत् के हेतु कर्म हैं तिनके क्षय होने से अनन्तर स्वप्न के हेतु जे कर्म हैं तिनके उद्भव होने से जाग्रत् के स्थूल विषयों से इतर, अरु तिसही हेतु से सूक्ष्म, अरु बाह्य इन्द्रियों को विषयों से निवृत्त होने करके 'अविद्या, काम, अरु कर्म, इनसे प्रेरणा को प्राप्त हुई अपनी बुद्धि तिसके प्रभाव से ही उत्पन्नहुए अन्तःकरण की वासनामय, अरु स्वप्नबिषे भी सूर्यादिकों के प्रकाश के। जो केवल जाग्रत् के सूर्यादिकों के प्रकाश के संस्कारयुक्त बुद्धि करके कल्पित हैं। अस्त हुए केवल। स्वयं ज्योतिः। आत्मरूप प्रकाश करकेही प्रकाशित हुए (विषय किये गये जे भोग्यपदार्थ तिनको अनुभव करके, अपञ्चीकृत। तन्मात्रारूप। पञ्चमहाभूत अरु तिनके कार्यरूप सूक्ष्म प्रपञ्चमय हिरण्यगर्भ के शरीररूप स्वप्नावस्था के ताईं अभिमान। अहं मम (मैं मेरा) भाव। करता हुआ। चैतन्य आत्माही। तैजसनामक जीवरूप होता है। पुनः [अब तिसही चिदात्माबिषे सुषुप्ति अवस्था की कल्पना को देखावे हैं] भी स्थूल अरु सूक्ष्म उभय शरीररूप उपाधिद्वारा जाग्रत् अरु स्वप्नरूप उभय अवस्थारूप स्थानों बिषे प्रवृत्ति होने से हुआ जो श्रम तिसकी उत्पत्ति के अनन्तर तिस श्रम के परित्याग करने की इच्छा के होने से स्थूल अरु सूक्ष्म के विभाग करके जाग्रत् अरु स्वप्न-रूप उभयस्थानों बिषे स्थित, इन प्रसंग बिषे प्राप्तहुए सर्व भी भोग्यरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशेषों को धीरेसे । क्रमशः वा विनाही क्रमशः । अज्ञात कारणरूप अपने स्वरूप बिषे । अर्थात् सुषुप्ति से उठके कहता है कि ऐसे सोयो जो कुछ भी ख़बर न रही इस अज्ञात लक्षणवान् कारण अविद्या तिस की पृथक्सत्ता का अभाव है, क्योंकि उस अज्ञात अविद्या का परिणाम उसके प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान ज्ञानस्वरूप आत्मा बिषे होता है जैसे कल्पित सर्प का रज्जु बिषे, अरु जिसका परिणाम जिस अधिष्ठानरूप होताहै सो उसही का स्वरूप होताहै, ताते अपनी पृथक् सत्ता के अभाव से अध्यस्त अविज्ञातरूप अविद्या भी सर्वाधिष्ठान आत्मस्वरूप ही है । स्थापन करके अव्याकृतरूप उपाधि की प्रधानतावाला हुआ । वोही चैतन्यआत्मा । प्राज्ञनामक जीवरूप होता है । सो [अब जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों करके युक्त, अरु " नान्तः प्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं " (अन्तःप्रज्ञ नहीं, बाह्यप्रज्ञ नहीं) इत्यादि निषेधमुख श्रुतिवाक्य श्रवण से उत्पन्नहुआ जो प्रमाणज्ञान तिस बिषे आरूढ़हुए तिसही प्रत्यगात्मा के कार्य कारणरूप सर्व अनर्थ विशेषों को श्रुति प्रमाणजन्य ज्ञान के प्रभाव सेही त्याग करके निरुपाधि परिपूर्ण ज्ञानरूप सेही सिद्ध हुए तत्त्व को कथन करते हैं । अरु मङ्गलार्थ तिसकी प्रार्थना करते हैं] यह सर्व गुणों के समूह की कल्पना से रहित अरु नित्य ज्ञानरूप स्वस्वभाववाला तुरीयरूप परमात्मा सर्व कार्य कारणरूप अनर्थों के भेदों को भी श्रुति प्रमाणजन्य ज्ञान के प्रभाव सेही परित्याग करके, अरु व्याख्यान के कर्त्ता होने करके अरु श्रोता होने करके स्थितहुए हमको पुरुषार्थ बिषे विघ्नकारी कारण के । अर्थात् पुरुषार्थ बिषे जे विघ्नों के कारण तिनके निषेध (अभाव) पूर्वक मोक्ष के प्रदान से अरु तिसके हेतु ज्ञान के प्रदान से रक्षणकरो ॥ २ ॥

इति भाष्यकारकृतमङ्गलाचरणम् ॥

अथ भाष्योपरिटीकाकारस्वामीआनन्दगिरि कृतमङ्गलाचरणम् ॥

ॐपरिपूर्णपरिज्ञानपरितृप्तिमते सते । विष्णवे जिष्णवे तस्मै कृष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नामभृते नमः १ शुद्धानन्दपदाम्भोजद्वन्द्वमद्वन्द्वतास्पदम् । नमस्कुर्वे पुरस्कर्तुं तत्त्वज्ञानमहोदयम् २ गौडपादीयभाष्यं हि प्रसन्नमिव लक्ष्यते । तदथोऽतिगम्भीरं व्याकरिष्येस्वशक्तितः ३ पूर्वे यद्यपि विद्वांसो व्याख्यान मिह चक्रिरे । तथापि मन्दबुद्धीनामुपकाराय यत्यते ॥ ४ ॥

ॐमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकारएव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकारएव ॥ १ ॥

हे सौम्य ! यह [जिसको उद्देश करके मङ्गलाचरण किया, तिसको कथन करने को आदिबिषे व्याख्यान करनेयोग्य मन्त्र के प्रतीक [प्रथमपद] को ग्रहणकरते हैं] ॐ इस प्रकार का जो अक्षर है, सो यह सर्व है । तिसका उपव्याख्यान वेदान्त [यह क्या शास्त्रपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है, वा प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है । तहां जो प्रथमपक्ष कहो कि शास्त्रपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है, सो बने नहीं, क्योंकि इस बिषे शास्त्र के लक्षण के अभाव से इस ग्रन्थ को अशास्त्रपना है ताते । अरु एक प्रयोजन से सम्बन्धवाला सर्व अर्थ का प्रतिपादक शास्त्र होता है । सो इस ग्रन्थ बिषे एक मोक्षरूप प्रयोजनपना तो है परन्तु सर्व अर्थ का प्रतिपादकपना नहीं । एतदर्थ शास्त्र के लक्षण के अभाव से इस ग्रन्थ को अशास्त्रपना युक्तही है ॥ अरु जो द्वितीयपक्ष कहो कि इसको प्रकरणपने करके युक्त होने से व्याख्यान करनेको इच्छितहै, तो सो भी बने नहीं, क्योंकि प्रकरण के लक्षण का भी इस बिषे अभाव है । यह आशङ्का करके कहे हैं यहां यह अर्थ है कि शास्त्र के एकदेश से सम्बन्धवाला अरु शास्त्र के अन्य कार्य बिषे स्थित जो होय सो प्रकरण ऐसा कहते हैं । अरु यह ग्रन्थ प्रकरणपने करके व्याख्यान करने को इच्छित है क्योंकि यह निर्गुण वस्तुमात्र का प्रतिपादक है ताते, अरु तिसके प्रतिपादन के संक्षेपरूप अन्यकार्यों का भी होना है ताते, इस ग्रन्थ बिषे प्रकरण के लक्षण सर्वही हैं ताते [यह ग्रन्थ व्याख्यान करने को इच्छित है ।] शास्त्र के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ का सार संग्रहरूप चार प्रकरणवाला " ओमित्येतदक्षरमित्यादि " (यह ओं इस प्रकार का अक्षर है) इत्यादिरूप ग्रन्थ है तिसका आरम्भ करते हैं [इस ग्रन्थ को प्रकरणरूप हुए भी विषयादिक अनुबन्ध रहिततारूप दोष की कीहुई इस ग्रन्थ के व्याख्यान करनेकी अयोग्यता है, यह आशङ्का करके कहते हैं] याहीते इससे पृथक् सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजन कथनकरने को योग्य नहीं, किन्तु जो वेदान्तशास्त्र बिषे सम्बन्ध विषय अरु प्रयोजन हैं सोई यहां कथन करने योग्य हैं। तथापि प्रकरण के व्याख्यान करने की इच्छावाले पुरुष करके संक्षेप से कथन करने योग्य है । तहां श्रीभाष्यकार स्वामी करके प्रयोजनादि अनुबन्ध के कथन की योग्यता के सिद्धहोने से शास्त्र अरु प्रकरण के मोक्षरूप प्रयोजनवान्पने की प्रतिज्ञा करते हैं] प्रयोजनवत् साधनों का प्रकाशक होने करके विषय से सम्बन्धवाला जो शास्त्र सो परम्परा से श्रेष्ठ 'विषय, सम्बन्ध, अरु प्रयोजनवाला होता है ॥ प्र० ॥ पुनः तिसका प्रयोजन क्या है ? ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, जैसे रोग करके आतुरपुरुष को रोगकी निवृत्ति होने से स्वस्थता होती है, तैसेही अन्तःकरणादि उपाधिवाले (दुःखी आत्मा को (दुःख के हेतु (द्वैतप्रपञ्च की निवृत्ति के होने से जो अद्वैतभावरूप स्वस्थता होवे है सोई प्रयोजन है। अरु द्वैतप्रपञ्च अविद्या का किया है अतएव विद्याकरके तिसकी निवृत्ति होतीहै एतदर्थ ब्रह्मविद्या के प्रकाशनार्थ इस ग्रन्थ का आरम्भ करते हैं "यत्राहि द्वैतमिव भवति" । "यत्रत्वाऽन्यदिवस्यात्तत्रान्योऽन्यत्पश्येदन्योऽन्यद्विजानीयात् " " यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् केन कं तद्विजानीयात्, इत्यादि " (जहांही द्वैतवत् होताहै, जहां वा अन्यवत् होता है, तहां अन्य अन्यको देखे, अन्य अन्य को जाने । अरु जहां तो इसको सर्व आत्मा ही होताहुआ तहां किस करके किसको देखे किस करके किसको जाने । इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण करके इस अर्थ की सिद्धि है । तहां [विषय प्रयोजनादि अनुबन्ध के आरम्भद्वारा ग्रन्थके आरम्भके स्थितहुए आदि बिषे इस कारिकारूप (ग्रन्थ के चार प्रकरण एकसे एक अमिलित विषय,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञान की सुगमता के अर्थ सूचनकरने को योग्य है, इस प्रकार कहके प्रथम प्रकरणके विषय को निरूपण करतेहैं] । गौड़पादीय कारिका बिषे। प्रथम ॐकार के निर्णयार्थ आगम प्रधान आत्मतत्त्व के निश्चय का उपायरूप प्रथम प्रकरण है । अरु रज्जुआदिकों बिषे सर्पादिकों के विकल्प की निवृत्ति होने से रज्जु के यथार्थ स्वरूप की प्राप्तिवत्, जिस [अब वैतथ्यनामक द्वितीय प्रकरणके अवान्तर विषयको देखावते हैं] द्वैत प्रपञ्च की निवृत्ति होने से अद्वैत की प्राप्ति होतीहै, तिस द्वैतके हेतु से मिथ्यापने के प्रतिपादनार्थ द्वितीय प्रकरण है । [अब अद्वैतनामक तृतीय प्रकरण के अर्थ विशेषके कहने का आरम्भ करतेहैं] तैसे अद्वैत को भी । द्वैत की सापेक्षता से । मिथ्यापने की प्राप्ति कीहुई युक्ति से तिसके परमार्थपने के लखावने के अर्थ तृतीयप्रकरण है [अब अलातशान्तिनामक चतुर्थ प्रकरणके अर्थ विशेष को कहते हैं] अद्वैत के परमार्थभाव के निश्चय के विरोधीरूप जे वेद विरुद्ध अन्यवाद हैं तिनको परस्पर में विरोधी होने से उनको अयथार्थता के कारण युक्ति करकेही तिनके निराकरणार्थ चतुर्थ प्रकरण है । पुनः[ॐकार के निर्णयरूप द्वार से आत्मज्ञान प्राप्ति का उपायरूप प्रथम प्रकरण है, इस प्रकार जो कहा सो अयुक्त है, क्योंकि ॐकार के निर्णय को आत्मज्ञान होनेकी हेतुता की अयोग्यता है । अर्थात् आत्मज्ञान होनेकी हेतुता के योग्य ॐकार का विचार नहीं । अरु अन्य अर्थ का ज्ञान अन्य अर्थके ज्ञान बिषे व्याप्तिविना उपयोगता को पावता नहीं, अर्थात् ॐकार के अर्थ का ज्ञान आत्मज्ञान के अर्थज्ञान में अव्याप्त होने से ॐकार के अर्थ का ज्ञान आत्मज्ञान होने में उपयोगी होता नहीं । अरु यहां । ॐकार के विचार अरु आत्मज्ञान बिषे । धूम अरु अग्निवत् व्याप्ति देखते नहीं, अरु ॐकार को आत्मा का कार्यपना युक्त नहीं । क्योंकि आकाशादिकों का अवशेष है ताते । अरु तिस ॐकार को आत्मावत् सर्वात्मा होने करके तिसके कार्यपने का व्याघात है ताते । इस प्रकार मानता हुआ वादी पूर्व कहे प्रमाण प्रथम प्रकरण के अर्थबिषे आक्षेप करे है] ॐकारके निर्णय बिषे आत्मतत्त्व की प्राप्तिका उपायपना कैसे प्रतिपादन करते हो ? इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शङ्का पर कहते हैं [हम] धूम अग्निवत्] अनुमान प्रमाण के आश्रय से ॐकार के निर्णय को आत्मज्ञान का उपाय नहीं जानते कि जिस करके व्याप्ति का अभावरूप दोष प्राप्त होवे, किन्तु श्रुतिवाक्य के शब्द प्रमाण से ॐकार का निर्णय आत्मज्ञान का हेतु है, इस प्रकार समाधान करते हैं] " ॐमित्येतत् " । " एतदालम्बनं श्रेष्ठम् " । " एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति " । " ॐमित्यात्मानं युञ्जीत " । " ॐमितिब्रह्म " । " ॐकार एवेदं सर्वम् " (ॐ इस प्रकार का यह, आलम्बन श्रेष्ठ है, हे सत्यकाम ! यह जो पर अरु अपररूप ब्रह्म है सो ॐकार है, ताते विद्वान् इसही साधनसे उभय के मध्य एक को प्राप्त होता है, ॐ इस प्रकार आत्मा (बुद्धि)को योजनाकरे, ॐ यह ब्रह्म है, ॐकार ही यह सर्व है । इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाण से । सर्पादि [ननु आप करके व्याप्तहुए भ्रान्तिवाले सन्मात्र चिदात्मा बिषे प्राणादि विकल्प को कल्पित होने से आत्मा को सर्वका आश्रयपना है परन्तु ॐकार को वो सर्व का आश्रयपना है नहीं क्योंकि तिसके अनुस्यूतपने का अभाव है ताते, यह आशङ्का होने से तहां कहते हैं] विकल्प के आश्रय रज्ज्वादिकोंवत्, जैसे अद्वैतरूप आत्मा परमार्थ करके सत्रूप हुआ प्राणादि विकल्पोंका आश्रय है तैसे प्राणादिरूप विकल्पों को विषय करनेवाला वाणीरूप प्रपञ्च ॐकार ही है । अरु सो [ननु अर्थों के समूह को आत्मरूप आश्रयवाला होनेकरके, अरु ॐकाररूप आश्रयवाला होनेकरके, वाणीरूप प्रपञ्च को दोनों आश्रय प्राप्तहुए, ऐसा कहना बने नहीं, इस प्रकार कहते हैं] ॐकार आत्मा का स्वरूपही है, क्योंकि ॐकार आत्मा का वाचक है ताते । अरु ॐकार के विकार शब्द के उच्चारण का विषय प्राणादि सर्व आत्मा का विकल्पनाम से भिन्न नहीं, क्योंकि "वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्" (वाणी से उच्चारण किया विकार नाममात्र है) अरु "तदे स्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वासेतम्" । " सर्वंहीदं नामात्र त्यादि" (सो इसका यह सर्ववाणीरूप तन्तु से नामरूपा दामों (ब्रजुओं) से बद्ध (बँधे) हैं । सर्वही यह नाम बिषे हैं । इत्यादि श्रुति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के प्रमाण से ॐकार को सर्व का आश्रयपना बने है । [प्रथम प्रकरण के अर्थ को प्रतिपादन करके तिस अर्थबिषे मूल श्रुति को प्रकट करतेहैं] एतदर्थ यह श्रुति "ओमित्येतदक्षरमिदंसर्वम्" (ॐ इस प्रकार का यह अक्षर यह सर्व है) इस प्रकार कहे हैं । जो यह विषयरूप अर्थों का समूह है तिस को नाम से अभिन्न होने करके, अरु नाम को ॐकार से अभिन्न होने करके ॐकार ही यह सर्व है । अरु जो परब्रह्म नाम के कथनरूप उपायपूर्वकही जानने में आवता है सो ॐकारही है । [अब "तस्य" (तिसका) इत्यादिरूप मूलश्रुति के भागको प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] "तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकारएव" (तिसका उपव्याख्यान है, 'भूत, वर्तमान, भविष्यत्' यह सर्व ॐकारही है) अर्थात् तिस इस पर अरु अपर रूप 'ॐ' इस प्रकार के अक्षर को ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय होने से, अरु ब्रह्म के समीप (नाम) होने करके विप्रकृष्ट कथनरूप प्रसंगबिषे प्राप्त जो उपाख्यान है, सो सम्यक्प्रकार जानने के योग्य है । अरु उक्त न्याय से 'भूत, वर्तमान, भविष्यत्' इन तीनों कालों करके परिच्छेद (भेद) करने के योग्य जो वस्तु है सो भी सर्व ॐकारही है । "यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योंकारएव" (जो अन्य तीनों कालों से अतीत (भिन्न) है सो भी ॐकारही है) अर्थात् जो अन्य तीनोंकालों से पृथक् कार्यरूप लिङ्ग से जानने योग्य, अरु काल करके परिच्छेद करने को अयोग्य । कारणरूप । अव्याकृतादिक हैं वा सर्व का कारण परमात्मा है। सो भी ॐकारही है । अर्थात आकाश को सर्वत्र पूर्ण होने से उसको देशकृत परिच्छेद नहीं, परन्तु " एतस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इत्यादि प्रमाण से आकाश को उत्पत्ति वाला होने से वो अपनी उत्पत्ति के पूर्वकाल में अभावरूप है ताते आकाश को कालकृत परिच्छेद है, ताते आकाशादि सर्वकार्य भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान, इन कालत्रयकृत परिच्छेदवाला है, अरु आकाशादि सर्वकार्यों का करण जे सत् चैतन्य परमात्मा ब्रह्म है सो "अजोनित्यः" इत्यादि अनेकश्रुतियोंके प्रमाण से उत्पत्ति विनाशसे रहित अजन्मा नित्य सत्य है, एतदर्थ उस बिषे कालकृत भी व्यवधान नहीं । इस कहने का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभिप्राय यह है कि "भूतं भवद्भविष्यदितिसर्वमोंकारएव" इस श्रुति से आकाशादि सर्वकार्य जो उत्पत्ति विनाशवाला है सो सर्व कालत्रयके परिच्छेदवाला ओंकार का वाच्य है "तदेदवाच्यं प्रणवो हि वाचको" इत्यादि प्रमाण से । अरु "यच्चान्यत्त्रिकालातीतंतदप्योंकारएव" इस श्रुति वाक्य से, जो कालत्रय के विच्छेदवाले कार्यरूप पदार्थों से अन्य जो सर्व का कारण अधिष्ठान सर्वात्मा परब्रह्म है सो ओंकार का लक्ष्य है, ऐसा जानना ।॥ यहां [वाच्य अरु वाचक को एकही सत् वस्तु विषे कल्पित होने करके तिनकी एकरूपता को कथन किया है ताते, पुनः (सर्व यह ब्रह्म है) इस प्रकार क्यों कहते हैं ? ऐसा जहां विकल्प है, तहां उक्त अर्थ के अनुवादपूर्वक अग्रिमवाक्य के फलसहित तात्पर्य को कहते हैं] नाम (वाचक) अरु नामी (वाच्य) इनकी एकता के होने से भी नामकी प्राधान्यता से यह निर्देश किया है ॥ १ ॥

सर्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म सोयमात्मा चतुष्पात् ॥ २॥

२ हे सौम्य ! "ओं" [वाच्य को वाचकपने के कथन करकेही तिन (वाच्य वाचक की) एकता की सिद्धि से, पुनः वाचक की वाच्यरूपता का कथनरूप व्यतिहार (उलटाय के कथन) करना व्यर्थ है, यह आशङ्का करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि वाच्य से वाचक की एकता को न कथन करके वाचक सेही वाचक की एकताके कथन करने से उपाय अरु उपेय की करी हुई जो एकता, सो मुख्य नहीं, किन्तु गौण है, इसप्रकारकी आशङ्का प्राप्त होवेगी, तिसके निवारणार्थ व्यतिहार का कथन सफल है] "ओमित्येतदक्षरमिदंसर्वं" इत्यादि नाम की प्रधानता से निर्देशकरी वस्तु का पुनः नामी की प्रधानता से जो निर्देश कहिये कथन है, सो नाम अरु नामी की एकता के निश्चयार्थ है । अरु अन्यथा नाम के विषे नामी का निश्चय होवेगा, अरु नामी की नामरूपता गौण है, इस प्रकार की शङ्का उत्पन्न होवेगी । अरु वाच्य अरु वाचकरूप नामी अरु नाम की एकता के निश्चय का इन दोनोंको एकही प्रयत्नसे एक कालविषे लय करताहुआ तिससे विलक्षण ब्रह्म को [कि जिसविषे नाम अरु नामी इत्यादि कोई भी कल्पना नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्त होता है, यह प्रयोजन है । अरु तैसेही आगे कहेंगे कि " पादा मात्रामात्राश्चपादाः " (पाद जो हैं सो मात्रा हैं अरु जो मात्रा हैं सो पाद हैं) । सोई [कहेहुए वाचक के वाच्य से अभेद बिषे वाच्य को प्रकट करके योजना करते हैं] कहते हैं " सर्वंह्येतद्ब्रह्मायमात्माब्रह्म " (सर्वही यह ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म है) अर्थात् सो सर्वकार्य अरु कारण ही ब्रह्म है । सर्व जो यह ॐकारमात्र है, इस प्रकार श्रुति ने कहा है, सो यह ब्रह्म है । इस प्रकार सो परोक्षपने करके कथन किये ब्रह्म को प्रत्यक्ष (अपरोक्ष) विशेष करके निर्देश करते हैं । यह आत्मा ब्रह्म है । यह " अयं " (यह) इस करके ' विश्व, तैजस, प्राज्ञ, अरु तुरीय, इन चार पादवाला होने से विभाग को प्राप्तहुए आत्माको प्रत्यगात्मारूप होने करके कथन करने को जो इच्छित अर्थ तिसके निश्चयार्थक साधारण शरीर के हस्ताग्र (अंगुली वा करतल) को अपने हृदय देश पर्यन्त ले आवनेरूप व्यापारमय अभिनय से " अयमात्मा " (यह आत्मा है) । अर्थात् " अंगुष्ठमात्रःपुरुषोऽन्तरात्मा सदाजनानां हृदये सन्निविष्टः " इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे अंगुष्ठप्रमाण हृदयनामक मांसपिण्डी 'जो वक्षस्थल के मध्य है, तिसके सम्बन्ध से तिसके मध्य 'घट में आकाशवत्, अंगुष्ठमात्र चैतन्य पुरुष है तिसको सर्व का द्रष्टा होने से प्रत्यक्ष करके ' अहं आत्मा है, इस प्रकार अंगुलि निर्देश से कहते हैं । इस प्रकार कहते हैं । " सोऽयमात्मा चतुष्पात् " (सो यह आत्मा चार पादवाला है) अर्थात् सो [अब " सोऽयं " (सो यह है) इत्यादि रूप अन्यवाक्य को प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] यह ॐकार का वाच्य अरु पर (सर्वाधिष्ठान) अरु अपर (प्रत्यगात्मा) रूप होने करके स्थित हुआ आत्मा चारपादवाला है । तहां दृष्टान्त कहते हैं, कार्षापणके पादवत्, [आत्मा को सर्वाधिष्ठान होने करके अपरोक्षता से पर (श्रेष्ठ) पना है, अरु उसको प्रत्यगात्मरूपता से अपर (अश्रेष्ठ) पनाहै, तिस हेतु करके कार्यकारणरूप से सर्व का स्वरूप (अपनाआप) होने करके स्थित हुआ जो आत्मा तिसके ज्ञान की सुगमताके अर्थ उस बिषे चार पाद की कल्पना किया है, तिस बिषे दृष्टान्त कहते हैं । यहां यह अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है कि कोई एक देश बिषे षोड़शपण अन्न के माप करने के पात्र विशेष का नाम 'कार्षापण, कहते हैं, । अर्थात् किसी एक पात्र विशेष में एक मन के प्रमाण अन्न विशेष पूर्णता से आवता है अरु उस एकही पात्र में 'एकमन, पौनमन, आधमन, पावमन, इसप्रकार मापने के चार चिह्न होने से उस पात्र की चार पादवाला कल्पना करते हैं तैसे । तहां उसपात्र बिषे व्यवहार की बाहुल्यता सिद्ध्यर्थ पादों की विशेष कल्पना करते हैं, । तैसेही इस आत्मा बिषे भी पादों की कल्पना जाननी। परन्तु जैसे गौको चार पादवाली कहते हैं तैसे आत्मा चार पादवाला कहनेको शक्य नहीं, क्योंकि आत्मा को जो निष्कल निरवयवादिभाव की प्रतिपादक श्रुतियां हैं तिनसे विरोध होवेगा ताते] गौके पादवत् नहीं [विश्वसे आदि लेके तुरीयपर्यन्त । चार पादरूप । पदार्थों बिषे जो पाद शब्द है, सो जब करण व्युत्पत्तिवाला । अर्थात् साधनरूप अर्थवाला । होवे तब विश्वादिकों वत् तुरीय के भी साधन कोटि बिषे प्रवेश के होने से ज्ञेयवस्तु की । अर्थात् मुमुक्षुपुरुष करके श्रवणादि साधनों द्वारा तुरीय आत्मा को आत्मत्व से जानना है तिसकी । असिद्धि होवेगी, अरु जब पाद शब्द विश्वादिक सर्व बिषे कर्म व्युत्पत्ति (विषयरूप अर्थ) वाला होवे है, तब सर्व को ज्ञेयरूप होने से उनको ज्ञानके साधनताकी असिद्धि होवेगी । यह आशङ्का करके पादशब्द की प्रवृत्ति को विभाग करके प्रकट करते हैं] विश्वादिक तीनों के मध्य पूर्व २ । पादों के उत्तर उत्तर पादों बिषे । विलय करने से तुरीया का निश्चय होताहै । अरु इस प्रकार होने से पादशब्द तुरीया के कारण भाव का साधन होता है, अरु प्राप्त होताहै । इस प्रकार होने से पादशब्द तुरीय के कर्म कहिये 'विषय, भाव का साधन होता है। परन्तु निरवयवरूप आत्मा को उभय प्रकार के पादों की कल्पना बने नहीं ॥ २ ॥

जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञः सप्ताङ्गएकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

३ हे सौम्य ! [आत्मा के चार पाद तो दूरसेही निषेध किये हैं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार वादी शङ्काकरे है] प्र० ॥ आत्मा का चारपाद करके युक्तपना कैसे है, उ० ॥ तहां कहते हैं, "[जागरितस्थानोबहिःप्रज्ञः "[(जागरितस्थान बहिःप्रज्ञ है) अर्थात् जाग्रत् अवस्था है [स्थान अर्थात् अभिमान का विषय [जिसका, ऐसा जागरितस्थान है । अरु बहिर जो आत्मा को अपने आप आत्मत्व से भिन्न विषय, तिन बिषे है प्रज्ञा [प्रज्ञा जो बुद्धि, तिसको प्रथम अन्तर होने की प्रसिद्धि से, तिसका "बहिःप्रज्ञः" (बाह्य के विषयवाली) यह विशेषण अयुक्त है, ऐसी आशङ्का करके तिसका व्याख्यान करते हैं । यहां यह भाव है कि, चैतन्यरूप जो स्वरूप भूत प्रज्ञा है सो बाह्य विषयों बिषे भासती नहीं, क्योंकि वो प्रज्ञा विषय की अपेक्षा से रहित है ताते, किन्तु बुद्धिरूप जो प्रज्ञा है सो बाह्य के विषयों बिषे भासती है] जिसकी सो कहिये बहिःप्रज्ञ । अर्थात् अविद्याकृत [बाह्य विषयों का वास्तवकरके अभाव से, वो प्रज्ञा [जो अन्तर है [सो बाह्य विषयों बिषे कैसे भासती है, ऐसी आशङ्का करके कहते हैं । यहां यह तात्पर्य है कि, [आत्मविषयिणी [स्वरूप भूत जो प्रज्ञा है, सो वास्तव से बाह्य विषयवाली नहीं अङ्गीकार किया है, परन्तु बुद्धिवृत्तिरूप जो [विषयादिवस्तुविषयिणी निश्चयात्मक [अज्ञान करके कल्पित प्रज्ञा है, सो बाह्यविषयोंवाली प्रज्ञा होती है । अरु सो बुद्धिवृत्तिरूप प्रज्ञा भी वास्तव से बाह्य विषय भाव को अनुभव नहीं करती क्योंकि अज्ञान करके कल्पित होने से वास्तव में उस प्रज्ञा का अभाव है । अरु उस [प्रज्ञा का विषय [बाह्य विषय सो भी अज्ञान करके कल्पित है ताते । एतदर्थ बुद्धिवृत्ति का जो बाह्य विषयों का प्रकाशकपना है सो प्रातिभासिक (कल्पित) है] जो बाह्य प्रज्ञा है सो बाह्य के विषयवाली (विषयाकार) ही भासे है तैसे [अब पूर्व के विशेषण से इतर विशेषण को योजना करते हैं] "तस्यहवैतस्यात्मनो वैश्वानरस्यमूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहोबहुलोवस्तिरेवरयिः पृथिव्येवपादौ" "अग्निहोत्रकल्पनाशेषत्वेनाग्निमुखत्वेनाहवनीय उक्तः" तिस इस वैश्वानररूप आत्मा का सुन्दरतेज वाला स्वर्गलोक मस्तक है, अरु श्वेतरक्तादि नाना प्रकार के गुणों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाला सूर्य उसका चक्षु है, अरु नाना प्रकार की (तिर्यक्) गति से विचरने के स्वभाववाला वायु उसका प्राण है, अरु विस्तृततारूप शून्य वाला आकाश उसका देहमध्यभाग है, अरु उनका हेतुरूप जल उस का मूत्रस्थान है, अरु पृथिवी उसके दो पाद हैं। अरु अग्निहोत्रकी कल्पना बिषे उपयोगी होने करके आहवनीय नामवाला जो अग्नि है सो उसके मुखरूपसे कहा है। इस प्रकार श्रुति करके उक्त यह सात अङ्ग जिसके ऐसा "सप्तांग" (सातअङ्गवाला) है। अरु "एकोनविंशति मुखः" (एक ऊन बीस मुखवाला है) अर्थात् तैसेही [अब अन्य विशेषणोंकी योजना करते हैं] पांच ज्ञानेन्द्रिय अरु पांचकर्मेन्द्रिय, अरु प्राणादिभेदसे पांचवायु, अरु 'मन, बुद्धि, चित्त, अरु अहंकार, यह चार अन्तःकरणकी वृत्तियां, यह सर्व मिलके हुए जो उन्नीस १९ सोई मुखवत् उसके मुख (ज्ञानके द्वार) [यहां ज्ञान पदकर्म का उपलक्षण है, एतदर्थ ज्ञानके साधन अरु कर्मके साधन इस विश्व नामवाले जीव के मुख (ज्ञान अरु कर्म के साधन) हैं। यहां इस प्रकार विवेचन करने को योग्य है, तहां पांच ज्ञानेन्द्रियाँ अरु एक मन अरु एक बुद्धि (इन सात को पदार्थोंके) को ज्ञानबिषे साधनपना प्रसिद्ध है, अरु वाग्गादि कर्मेन्द्रियों को वचनादि कर्मों बिषे साधनपना प्रसिद्ध है। पुनः प्राणों को ज्ञान अरु कर्म इन दोनों बिषे परम्परासे साधनपना है। क्योंकि प्राणों के होनेसेही ज्ञान अरु कर्म की उपपत्ति है, अरु तिनके अभाव से ज्ञान कर्म की अनुपपत्तिहै ताते। अरु अहंकारको भी प्राणवत् ज्ञान कर्म दोनों बिषे साधनपना मानने के योग्य ही है। अरु चित्त को भी चैतन्याभास के उदयबिषे साधनपना कहाहै] जिसके, इस प्रकार का उन्नीस १९ मुखवाला है। अरु "स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः" (स्थूलभुक् वैश्वानर है सो प्रथम पादहै ; अर्थात् [पूर्वोक्त विशेषणों करके युक्त वैश्वानर का "स्थूलभुक्" ऐसा अन्य विशेषण है, तिसका विभाग करते हैं, यहां शब्दादिक विषयों का स्थूलपनाहै सो दिशादिक देवता के अनुग्रह सहित श्रोत्रादिक इन्द्रियों से ग्रहण होनेरूप है] सो ऐसे विशेषणोंवाला वैश्वानर उक्त उन्नीस द्वारों से शब्दादिक स्थूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषयों को भोगता है ताते सो 'स्थूलभुक् है, अरु [अब वैश्वानर शब्दका प्रसंग विषे प्राप्त विश्व जीवको विषय करनेपना स्पष्ट करते हैं] " विश्वेषां नराणामनेकधानयनाद्विश्वानरः । यद्वा विश्वश्चासौ नर श्चेति विश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः " ८ सर्व नरों को अनेक प्रकार से लेजाता है एतदर्थ विश्वानर है ? अथवा विश्व ऐसा जो नर सो कहिये विश्वानर । विश्वानरही सर्व [विश्व ऐसा जो नर, सो कहिये वैश्वानर । इस प्रकार से सर्व नरों की एकता कैसे बनेगी, क्योंकि जाग्रदवस्थावाले नरों को अनेकरूपता होनेसे तिनके तादात्म्य का असम्भव है ताते, यह आशङ्का करके कहतेहैं । यहां सर्वपिण्डोंका स्वरूप समष्टि विराट् कहते हैं, ताते तिस विराट्रूप से सर्व विश्वजीवों को अभिन्न होनेसे उक्तार्थ की सिद्धि है] पिण्डके स्वरूप से अभिन्न होने करके वैश्वानर है, सो प्रथम पाद है [ननु विश्व की तैजस से उत्पत्ति के होने से तिस तैजसकाही प्रथमपनायुक्त है, अरु कार्यको पश्चात्होना उचित है, यह आशङ्का करके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि विश्वको जो प्रथमपना है सो लय करनेकी अपेक्षा से है, उत्पत्ति की अपेक्षा से नहीं] अरु पिछले तीनपाद के ज्ञान को इसके ज्ञानपूर्वक होनेसे इस वैश्वानर को प्रथमपनाहै शङ्का "अयमात्माब्रह्म, सोयमात्मा चतुष्पात्" यह आत्मा ब्रह्म है सो यह आत्मा चारपादों वाला है? [अब अध्यात्म (व्यष्टि) अरु अधिदैव (समष्टि) के भेदको लेके पूर्वोक्त विश्वके सप्तांगपन के अर्थवादी आक्षेप करता है] इस द्वितीयवाक्य से प्रत्यगात्मा के चारपाद करके युक्तपनेरूप प्रसंग बिषे, स्वर्गलोकादिकों का मस्तकादि अङ्गपना कैसे कहा, तहां कहतेहैं, [अध्यात्म (विश्व) अरु अधिदैव (विराट्) के भेद के अभाव होने से विश्वको पूर्वोक्त सप्ताङ्गपने का विरोध है नहीं, इस प्रकार (आक्षेप का) परिहार करतेहैं यहां कथन किये हेतुका यह भावार्थ है कि, अधिदैव करके सहित पञ्चीकृत पञ्च महाभूत अरु तिनके कार्यरूप सर्वही स्थूलरूप अध्यात्म प्रपञ्च को इस विराट् स्वरूप से प्रथमपादपना है । अरु अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत अरु तिसके कार्य सूक्ष्मरूप तिस अध्यात्म प्रपञ्चको ही हिरण्यगर्भरूप से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीयपादपना है। अरु कार्यरूपता को त्याग के कारणरूपता को
हुए तिसही अध्यात्म प्रपञ्च को अव्याकृत रूपसे तृतीयपादपना है।
कार्य कारणताको त्यागके सर्वकल्पना के अधिष्ठानपने करके स्थि
तिसहीको 'सत्य, ज्ञान, अनन्त, अरु अद्वय आनन्द, रूपसे चतुर्थ
पना है। अतएव ऐसे अध्यात्म अरु अधिदैव के अभेदको लेके
प्रकार से चार पादवान्पने को कहने को इच्छित होनेसे पूर्व २ पाद
उत्तरोत्तर पादरूप से विलय करने से जिज्ञासु की तुरीय स्वरूप
स्थिति सिद्ध होती है] यह दोष है नहीं, क्योंकि अधिदैव सहित
प्रपञ्चके इस आत्मा के स्वरूप से चारपादपना कहने को इच्छित
करके। अरु ऐसे [जब इस प्रकार जिज्ञासु मुमुक्षुकी तुरीय बिषे स्थि
अङ्गीकार करते हैं, तब तत्त्वज्ञान के प्रतिबन्धक प्रातिभासिक
कल्पित द्वैत की निवृत्ति के हुए ८ अद्वैत परिपूर्ण ब्रह्म मैं हौं, इस
कार महावाक्यार्थ का साक्षात्कार सिद्ध होवे है, इस प्रकार फलित
कहते हैं] सर्व प्रपञ्चकी निवृत्ति के हुए, अद्वैत की सिद्धि होती है
सर्व भूतोंबिषे स्थित एक आत्मा देखा (अनुभव किया) होताहै,
सर्व भूत आत्माबिषे देखेहुए होते हैं। इस प्रकार " यस्तु सर्वाणि भू
न्यात्मन्येवानुपश्यति " ८ जो सर्वभूतों को आत्मा बिषेही देखता है,
इस ईशावास्यउपनिषद् के षष्ठ मन्त्ररूप श्रुति का अर्थ समाप्त
होताहै [अध्यात्म अरु अधिदैवके अभेदके अङ्गीकार रूपद्वारसे पूर्वो
रीत्या तत्त्व ज्ञान के । होनेके । अङ्गीकारबिषे दोष कहते हैं] अन्यथा
अपने देह करके परिच्छिन्नही प्रत्यगात्मा सांख्यादिमतवादियोंवत् अनु
भव किया होवेगा। अरु तैसे [ननु, आत्माकी एकता बिषे सुखादिक
के भेद की व्यवस्था के असंभव से । अर्थात् जो कदापि सर्व शरीरों
एकही आत्मा मानिये तो एकके सुखसे सर्वही सुखी, अरु एकके दुः
से सर्वही दुःखी, अरु एक के बद्ध से सर्वही बद्ध, अरु एकके मुक्त
सर्वही मुक्त, ऐसा होना चाहिये, परन्तु सो न होके कोई सुखीहै, कोई
दुःखी है, कोई बद्ध है, कोई मुक्त है, सो सर्वको प्रकट अरु युक्तही
अरु शरीर २ प्रति भिन्न २ आत्मा माननेसे कोई सुखी अरु कोई दुः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि जो लोक बिषे व्यवस्था है सो यथार्थ है अरु सोई सर्व शरीरों बिषे भिन्न २ आत्मा का बोधक लिङ्ग है। शरीर शरीर के प्रति आत्मा का भेद सिद्ध होता है, । यह आशङ्का करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि सांख्यादि शास्त्रों को जो द्वैतको विषयकरनेवाला ज्ञान है सो वाञ्छित है, तिस करके अद्वैत को विषयकरनेवाले तेरे सिद्धान्त के विशेष के अभाव से तेरे पक्षबिषे अद्वैत तत्त्व है। इसरीति का श्रुतिसिद्ध विशेष सिद्ध न होवेगा। एतदर्थ भेदवाद बिषे श्रुति का विरोध प्राप्त होवेगा। अरु सुख दुःखादिकों की व्यवस्था तो उपाधि के किये भेद को आश्रय करके सिद्ध होती है] होने से अद्वैत है, इसप्रकार श्रुति का क्रिया विशेष न होगा, क्योंकि सांख्यादिकोंके मत करके अविशेष से। अरु [ननु, भेदवाद बिषे भी अद्वैत की श्रुति विरोध को पावती नहीं, क्योंकि ध्यानार्थ "अन्नंब्रह्मेति, विजानीयात्" इस वाक्यवत् 'अद्वैत तत्त्व है, इस उपदेश की सिद्धि है, यह आशङ्का करके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि उपक्रम अरु उपसंहार की एकरूपतादि लिङ्ग (चिह्न) से सर्व उपनिषदों का सर्वदेहों बिषे आत्मा की एकता के प्रतिपादनबिषे तात्पर्य इच्छित है, एतदर्थ अद्वैत श्रुतिका ध्यानरूप अर्थवान्पना इच्छा करने को शक्य नहीं क्योंकि एकतारूप वस्तुबिषे तात्पर्य के लिङ्ग का अभाव है ताते] सर्व उपनिषदों को सर्वात्मा की एकता का प्रतिपादकपना अङ्गीकार करते हैं [अध्यात्म अरु अधिदैव की एकता को अङ्गीकार करके अद्वैत बिषे तात्पर्य के सिद्धहुए अध्यात्मिकरूप व्यष्टिस्वरूप विश्व की त्रैलोक्यस्वरूप अधिदैवरूप विराट् के साथ एकता को ग्रहण करके, जो तिस विश्व का सप्ताङ्गवान्पना पूर्व कहाहै, सो अविरुद्ध है, इसप्रकार समाप्त करते हैं] याते इस अध्यात्ममय पिण्डरूप आत्मा की स्वर्गलोकादि अङ्गोंसे युक्तता करके अधिदैवरूप विराट् आत्मा से एकता के अभिप्राय से सप्ताङ्ग करके युक्तता का वचन है। क्योंकि "मूर्द्धा ते व्यपतिष्यदिति" (मस्तक तेरापतनहुआ) अर्थात् [अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकताबिषे अन्य हेतु कहे हैं] इत्यादि लिङ्गको देखतेहैं ताते। अरु यहां [ननु, मूलग्रन्थबिषे विराट्की विश्वसे एकताही देखते हैं। ताते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संपूर्णता करके अध्यात्म अरु अधिदैवकी एकताको कहना वाञ्छित क
भाष्यकार ने अद्वैत बिषे तात्पर्य को कैसे कहा है ? इस शङ्कापर कहे
हैं, यहां यह अर्थ है कि जो मुख से विराट् की एकता देखाई, सो
हिरण्यगर्भ की तैजस से, अरु अव्याकृतनाम उपाधिवाले अन्तर्या
की प्राज्ञ से जो एकता है तिसके उपलक्षणार्थ है । एतदर्थ मूलग्र
बिषे भी संपूर्णता करके अध्यात्म अरु अधिदैव की एकता कहने
इच्छित है । इसही से अद्वैतबिषे तात्पर्य की सिद्धि है] विराट् की
एकता है सो हिरण्यगर्भ अरु अव्याकृतरूप आत्मा के उपलक्षणार्थ
यह मधुब्राह्मण बिषे कहा है " यश्चायमस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृ
मयः पुरुषोयश्चायमध्यात्मभित्यादि" (जो इस पृथिवी बिषे तेजोम
अमृतमय पुरुष है, अरु जो यह अध्यात्म है) इत्यादिक वाक्यों से
अरु [ननु, विश्व अरु विराट् को स्थूल प्रपञ्च के अभिमानी होने से
अरु तैजस, हिरण्यगर्भ को सूक्ष्म प्रपञ्च के अभिमानी होने से तिनकी
एकता युक्त है, परन्तु प्राज्ञ अरु अव्याकृत की किस तुल्यता से एकता
है, इस प्रकार की शङ्काके हुए, कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि प्राज्ञ
जो है सो सुषुप्ति बिषे सर्वविशेष को लय करके निर्विशेष होता है, अ
अव्याकृत जो है सो प्रलयदशाबिषे सर्व विशेष को अपने बिषे लय कर
निर्विशेष रूप से स्थित होता है, ताते उक्त तुल्यता को पूर्व करके तिन
प्राज्ञ अरु अव्याकृत की एकता अविरुद्ध है] प्राज्ञ अरु अव्याकृत की
एकता तो सिद्धही है, क्योंकि दोनों की निर्विशेषरूपता है ताते । इस
प्रकार [पूर्वोक्तरीत्या अध्यात्म (व्यष्टि) अरु अधिदैव (समष्टि) की
एकता के सिद्धहुए द्वैत के विलय की प्रक्रिया से अद्वैत सिद्धहुआ, इस
प्रकार फलित, अर्थात् सिद्धहुए, अर्थ को कहते हैं] सर्व द्वैत की निवृत्ति
के हुए " एकमेवाद्वितीयम् " एक अद्वैत है यह सिद्ध हुआ ॥ ३ ॥

स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्ताङ्गएकोनविंशतिमुख
प्रविविक्तभुक्तैजसोद्वितीयःपादः ॥ ४ ॥

४ हे सौम्य ! [उक्त प्रकार आत्मा के विश्वरूप प्रथमपाद को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्यान करके, अब तैजसरूप द्वितीयपाद को प्रकट करके तिसका व्याख्यान करते हैं] " स्वप्नस्थानो " (स्वप्नरूप स्थानवाला) अर्थात् स्वप्न, हे मसलक्षण अभिमान का विषयरूपस्थान जिस तैजसरूप द्रष्टा का ऐसा जो ,स्वप्नस्थानवाला, ['स्वप्न' इस पद के निरूपणार्थ तिसके कारण को निरूपण करते हैं] जाग्रत् की जो प्रज्ञा (बुद्धि) है सो अनेक साधनोंवाली अरु बाह्य (स्थूल) को विषय करनेवाली हुएवत् भासमान, अरु मनरूप स्फुरणमात्र हुई तिस प्रकार के संस्कार को मनबिषे धारणकरे है । तैसे संस्कारवाला सो मन, चित्रित [जाग्रत् की वासना करके युक्त हुआ जो मन सो स्वप्न बिषे जाग्रत्वत् भासता है, इस अर्थ बिषे दृष्टान्त कहते हैं । जैसे चित्र करके युक्त हुआ जो पट सो चित्रवत् भासता है (अर्थात् अनेक रङ्गों के सूत्र करके निर्मित बेल बूटादिवाला पट चित्रवत् भासता है) तैसे जाग्रत् के संस्कार करके (जो मनही करके कल्पित हैं) युक्त हुआ जो मन सो जाग्रद्वत्ही भासता है, यह युक्त है, इत्यर्थः] पटवत् बाह्य के साधन की अपेक्षा से रहित, अरु ,अविद्या, काम, कर्म, से प्रेरणा को प्राप्तहुआ जाग्रत्-वत् भासता है । अरु ऐसेही बृहदारण्य की श्रुति बिषे कहा भी है "अस्य लोकस्य सर्वावतोमात्रामपादायेति" "तथा परे देवे मनस्येकी-भवतीति" "प्रस्तुत्यात्रैष देवः स्वप्नेमहिमानमनुभवतीत्याथर्वणे" (इस सर्व साधन की सम्पत्तिवाले लोक की मात्रा (लेशरूप वा सूक्ष्म वा-सना) को ग्रहण करके सोवता है) अरु ऐसेही अथर्वणवेद के ब्राह्मण प्रश्नोपनिषद् बिषे भी कहा है, तथाच । (मनरूप परदेव बिषे एकवत् होताहै) ऐसे प्रसंग बिषे प्राप्त करके (इस स्वप्नबिषे यह (मनाख्य) देव महिमा को अनुभव करता है) अरु [ननु विश्व की बाह्यइन्द्रियों से जन्य प्रज्ञा को, अरु तैजस की मन से जन्य प्रज्ञा को अन्तर स्थित होनेकी तुल्यता से, तैजस का "अन्तःप्रज्ञः" (अन्तर की प्रज्ञावाला) यह विशेषण व्यावर्त्तक (विश्वादिकों से पृथक् करनेवाला) नहीं है, जहां ऐसी शङ्का है, तहां कहते हैं] इन्द्रियों की अपेक्षा से मन को अन्तर स्थित होने करके स्वप्न बिषे अन्तर है, तिस मनकी वासनारूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रज्ञा है जिसकी ऐसा जो "अन्तःप्रज्ञ" (अन्तर की प्रज्ञावाला है) अरु "सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः" (सातअंग अरु उन्नीस मुखवाला है?) । अर्थात् यह तैजस जो अन्तर की प्रज्ञावाला है सो । पूर्व के विश्ववत् सात अङ्ग अरु उन्नीस मुखवाला है । अरु "प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः" (वासनामय सूक्ष्मभोगवाला है तैजस द्वितीय पाद है?) । अर्थात् प्रविविक्तभुक्, कहिये वासनामय सूक्ष्मभोग वा विरल भोग का भोक्ता है । [ननु, विश्व अरु तैजसका "प्रविविक्तभुक्" (वासनामय सूक्ष्मभोगों का भोक्ता? यह विशेषण तुल्य है, क्योंकि । विश्व अरु तैजस इन । उभय की । बाह्य अरु अन्तर । प्रज्ञा को भोज्यपने की तुल्यता है ताते, ऐसा जो वादी का कथन सो बने नहीं क्योंकि उक्त उभय की प्रज्ञा को भोज्यपने की तुल्यता के हुए भी तिस प्रज्ञा बिषे मध्य के भेदसे विश्व की भोज्य (भोगने योग्य) जो प्रज्ञा है सो विषय सहित होने से स्थूल करके जानी जाती है । अरु जो तैजस की प्रज्ञा है सो विषय के सम्बन्ध से रहित केवल वासनामात्र रूपवाली है, इस करके तैजस बिषे सूक्ष्मभोग सिद्ध होते हैं, इस प्रकार कहा है] जाग्रत् बिषे विश्व को विषयसहित होने से स्थूल प्रज्ञा का भोग्यपना है । अरु यहां स्वप्नबिषे जिस करके केवल वासनामात्र स्वरूपवाली प्रज्ञा भोग्य है, एतदर्थ प्रविविक्त (सूक्ष्म) भोग है । अरु [स्वप्न के अभिमानी को तेज के कार्य होनेके अभाव से तैजसपना काहेसे होवेगा, यह आशङ्का करके कहते हैं] विषयरहित केवल प्रकाशस्वरूप प्रज्ञा बिषे प्रकाशकपने करके होवे हैं । । अर्थात् स्वप्न का अभिमानी तेज का कार्य नहीं परन्तु स्वप्न का प्रकाशक है एतदर्थ उसको तैजसपना होता है । इस करके जो तैजस है सो द्वितीय पाद है ॥ ४ ॥

यत्र सुप्तोनकञ्चनकामंकामयतेनकञ्चनस्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थानएकीभूतः प्रज्ञानघनएवानन्दमयोह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयःपादः ॥ ५ ॥

५ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार । विश्व अरु तैजस । दोनों पादों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या करके अब तृतीयपाद के व्याख्यान करतसन्ते व्याख्यान करने के योग्य श्रुति बिषे "न कंचन" ८ किसी कोभी नहीं ? इत्यादि विशेषणों के तात्पर्य को कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि स्थूल विषय-वाले ज्ञान की जहां प्रवृत्ति है ऐसा जो जाग्रदादि था सो दर्शन वृत्ति कहते हैं अरु स्थूल विषय के दर्शन से (ज्ञान) से इतर जे दर्शन (ज्ञान) सो केवल वासनामात्र होने से अदर्शन है, तिस । वासना-मय की । वृत्ति जहां है सो स्वप्न, तिस स्वप्न को अदर्शनवृत्ति कहते हैं । अरु तिन । दर्शनवृत्ति, अरु अदर्शनवृत्ति । दोनों बिषे सुषुप्तिवत् तत्त्व के अग्रहणरूप निद्रा को तुल्य होने से । "यत्र सुप्तो" ८ जहां सोया हुआ ? इत्यादि विशेषणों की तिन । उक्त उभय वृत्तियों में । प्राप्ति के हुए, तिनसे भिन्न करके सुषुप्ति के ग्रहणार्थ "यत्र सुप्तो" ८ जहां सोया हुआ ? इत्यादिरूप मूलश्रुति के वाक्य बिषे "नकंचन" ८ किसी को भी नहीं ? इत्यादिरूप विशेषण हैं, सो जाग्रत् अरु स्वप्न उभय स्थानों से पृथक् करके सुषुप्ति को ही ग्रहण करावता है] "यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्" ८ जहां सोया हुआ किसी भी काम की कामना करता नहीं, किसी भी स्वप्न को देखता नहीं, सो सुषुप्तिवाला है ? अर्थात् दर्शन (ज्ञान) अरु अदर्शन (अज्ञान) दोनों वृत्तियांवाली जाग्रत् अरु स्वप्न अवस्था बिषे सुषुप्तिवत् तत्त्व के अबोधरूप निद्रा को तुल्य होने करके, सुषुप्ति के ग्रहणार्थ इस उपनिषद् के पञ्चममन्त्र (श्रुतिवाक्य) बिषे "यत्र सुप्तो" ८ जहां सोया हुआ ? इत्यादिरूप विशेषणहैं । ["न कञ्चन स्वप्नं पश्यति" ८ किसी भी स्वप्न को नहीं देखता ? इसही विशेषण करके दोनों स्थानों (जाग्रत् स्वप्न) से सुषुप्ति के भेद का सम्भव होने से, अन्य विशेषण जो हैं सो "अकिञ्चित्कर" निष्प्रयोजन हैं, यह आशङ्काकरके कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि तत्त्व का अप्रबोधरूप जो निद्रा है तिसको जाग्रदादि तीनों अवस्थारूप स्थानों बिषे तुल्य होने से । तीनों स्थानों को समता है, अतएव । जाग्रत् अरु स्वप्न से विभाग करके सुषुप्ति के लखावने के अर्थ अन्य "यत्रसुप्तो" इत्यादे विशेषण हैं] अथवा जाग्रदादि तीनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवस्थारूप स्थानों बिषे भी तत्त्व की अबोधतारूप जो निद्रा है सो समान है, एतदर्थ पूर्व के जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानों से सुषुप्तिरूप स्थान का विभाग करते हैं, जिस स्थान का वा काल बिषे सोया हुआ पुरुष किसी भी भोग की इच्छा करता नहीं, अरु किसी भी स्वप्न को देखता नहीं । [एकही विशेषण को व्यावर्त्तकपने का संभव होने से, दो विशेषणों का क्या प्रयोजन है ? यह आशङ्का करके दोनों विशेषणों को विकल्प करके व्यावर्त्तपने का संभव है, ताते व्यर्थ न होयके दोनों ही सप्रयोजन हैं, ऐसा मान के कहते हैं,] जिस करके सुषुप्ति बिषे पूर्व के जाग्रत् अरु स्वप्नरूपस्थानोंवत् विपरीत ग्रहणरूप स्वप्न का दर्शन वा कोई भी कामना विद्यमान नहीं है, एतदर्थ सो सुषुप्त कहिये सुषुप्ति है । सो सुषुप्ति है स्थान जिस प्रज्ञा का ऐसा सुषुप्ति स्थानवाला है। अरु " सुषुप्तिस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः " (सुषुप्तिस्थानवाला है, एकीभूत है, प्रज्ञानघन ही होता है, आनन्दमय है, आनन्द का भोक्ता है, चेतोमुख है, प्रज्ञा, तृतीयपाद है) अर्थात् उक्त प्रकार सुषुप्तिरूप स्थानवाला है, अरु एकीभूत है, [उक्त दोनों (किसी विषय वा भोग को इच्छता नहीं, अरु किसी भी स्वप्न को देखता नहीं, इन) विशेषणों करके विपरीत ग्रहण से रहितपना अरु भोग के सम्बन्ध से रहितपना कहने को इच्छित है] अरु जाग्रत् [इस द्वैतसहित प्राज्ञ जीव को एकीभूतपनेरूप विशेषण कैसे संभवे, यह आशङ्का करके कहते हैं] अरु स्वप्न दोनों अवस्थारूप स्थानों बिषे विभाग को पाया जो मन का स्फुरणरूप द्वैत का समूह, सो जैसे अपुनरूप आत्मा से भिन्न है, तैसेही तिस रूप के अपरित्याग से, रात्रि के अन्धकार करके ग्रस्त दिशा वा दिवसवत् अविवेक करके युक्तहुआ अपने विस्तारसहित कारण (अव्याकृत) रूप होता है । तिस अवस्था बिषे तिस (अव्याकृत, कारणरूप) उपाधिवाला हुआ आत्मा को एकीभूत कहते हैं । [यद्यपि सुषुप्ति अवस्थाबिषे सर्व कार्यों का समूह कारणरूप होता है, तब तिस कारणरूप उपाधिवाला हुआ आत्मा ' एकीभूत, विशेषणवाला होता है, तथापि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारणरूप उपाधिवाले आत्मा का "प्रज्ञानघन" (प्रज्ञानघन है) यह विशेषण अयुक्त है क्योंकि । सर्व उपाधि से रहित । निरुपाधिरूप आत्मा कोही "प्रज्ञानघन" इत्यादि विशेषण का होना संभवे है, यह आशङ्का करके कहते हैं] एतदर्थ स्वप्न अरु जाग्रत् बिषे मन का स्फुरणरूप जो प्रज्ञान है सो सुषुप्ति बिषे घनीभूत हुएवत् होता है । सो इस (सुषुप्ति) अवस्था को अविवेकरूप होने से घनप्रज्ञा "प्रज्ञानघन" इस विशेषण से कहते हैं। जैसे रात्रि बिषे रात्रि के घन अन्धकार से अविभाग को पाया सर्व पदार्थ घनवत् होता है । अर्थात् जाग्रत, स्वप्न अवस्था में मन का स्फुरणरूप जो घट पटादिकों का नाना विभागयुक्त प्रज्ञान है सो सुषुप्ति अवस्थामें जब कि बुद्धि तमोगुण अविवेक करके आवृतघन अन्धकार-रूप होती है तब जाग्रत् स्वप्न अवस्था का मन का स्फुरणरूप घट पटादि सर्व पदार्थ । जैसे रात्रि के घन अन्धकार करके अविभाग को पायासता घट पटादि सर्व पदार्थ घनवत् होता है । तैसे आत्मा प्रज्ञान घनही होता है । [यहां "एव" शब्द के पर्याय "ही" शब्द करके अज्ञान से इतर जाति सूचित नहीं है, यह अर्थ होता है] अरु मन को विषय अरु विषयी के आकार से स्फुरण होने से हुआ जो श्रम तज्जनित दुःख के अभाव से । उस अवस्था में । आनन्द की बाहुल्यता से आनन्दमय है, आनन्दरूपही नहीं, क्योंकि । वो सुखानन्द । अविनाशी आनन्द से रहित है ताते । अर्थात् सुषुप्ति का जो आनन्द है सो मनकी स्फुरणाजन्य श्रमजनित दुःख के अभाव से हैं, ताते वो अविनाशी आनन्द न होके नाशवान् होने करके स्वरूपानन्द नहीं किन्तु आनन्दप्रायः है । जैसे लोक बिषे । गमनादि । श्रम से रहित होयके स्थितहुए पुरुष को सुखी आनन्द का भोक्ता कहते हैं । तैसेही सुषुप्ति बिषे यह । प्रज्ञाविशिष्ट चैतन्य । पुरुष जिस करके अत्यन्तश्रमरहित स्थित को । अपनेबिषे । अनुभव करता है, तिस करके इसको आनन्द-भुक् (आनन्द का भोक्ता) कहते हैं "एषोऽस्य परम आनन्द इति श्रुतेः" (यह इस पुरुष का परम आनन्द है) इस श्रुति के प्रमाण से, अरु [प्राज्ञकाही "चेतोमुखः" यह जो अन्य विशेषण है अब तिसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्यान करते हैं] स्वप्न अरु जाग्रत्मय प्रतिबोधरूप चित्त के प्रति द्वारभूत होनेसे चेतोमुख है, वा बोधरूप चित्त है ' स्वप्नादिकों के आगमनप्रति मुख कहिये द्वार जिसको, ऐसा है एतदर्थ सो चेतोमुख है । अरु [इस सुषुप्ति के अभिमानी को भूत अरु भविष्यत् विषयों बिषे ज्ञातापना है, तैसे सर्व वर्त्तमान विषयों बिषे भी ज्ञातापना है । एतदर्थ प्रकर्ष करके जो जानता है सो प्रज्ञ है, अरु जो प्रज्ञ है सोई प्राज्ञनाम से कहाजाता है] भूत अरु भविष्यत् का ज्ञातापना अरु सर्व विषयों का ज्ञातापना इसको ही है, एतदर्थ यह प्राज्ञ है । [सुषुप्ति बिषे सर्व विशेषों के ज्ञान के विलयहुए प्राज्ञ को ज्ञातापना कैसे होवेगा ? यह आशङ्का करके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि यद्यपि सुषुप्तिवाला पुरुष तिस अवस्था बिषे सर्व विशेष के ज्ञान से रहित होवे है, तथापि जाग्रत् अरु स्वप्न बिषे उत्पन्न हुई जे सर्व विषयों के ज्ञातापनेरूप गति, ताते प्रकर्ष करके (सम्यक्प्रकार) सर्वको सर्वओर से जानता है, एतदर्थ सो प्राज्ञशब्द का वाच्य (प्राज्ञनामवाला नामी) होता है,] सुषुप्ति को प्राप्तहुआ पुरुष भी स्वप्न अरु जाग्रत् बिषे व्यतीतहुई सर्व विषयों के ज्ञातापनेरूप पूर्व की गति इस करके । सुषुप्तिस्थ पुरुष को । प्राज्ञ कहते हैं । अथवा । तिस अवस्था बिषे । जिस करके प्रज्ञप्तिमात्र । अर्थात् ज्ञेय के अभाव से ज्ञाता विशेषण रूप विशेषता से रहित निर्विशेष को प्रज्ञप्तिमात्र कहते हैं । इसही का रूप है, तिस करके यह प्राज्ञ है । ऐसा कहते हैं । अरु अन्य दोनों अवस्था बिषे विशिष्टज्ञान भी है, अरु सुषुप्ति विषे अन्यज्ञानरूप उपाधि से रहित ज्ञान है, सो ज्ञान इस प्रज्ञा का स्वरूपभूत होने से ' प्रज्ञप्ति' नाम से कहते हैं, सो यह । प्रज्ञप्तिनामवाला । प्राज्ञ तृतीयपाद है ॥ ५ ॥

एषसर्वेश्वरएषसर्वज्ञएषोऽन्तर्याम्येषयोनिः । सर्वस्य प्रभवाप्ययौहिभूतानाम् ॥ ६ ॥

६ हे सौम्य ! " एषसर्वेश्वर " यह सर्वेश्वर है ? अर्थात् यह प्राज्ञही स्वरूप अवस्थावाला हुआ सर्व का ईश्वर है, अर्थात् आदि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दैव सहित सर्व भेदों के समूह का नियन्ता है, इस हेतुसे अन्य नैयायिकादिकोंवत् अन्य जातिरूप नहीं " प्राणबन्धनंहि सौम्य मन " " हे सौम्य ! प्राणरूप बन्धनवालाही मन है " इस श्रुतिवाक्य से । [अब प्राज्ञ के ही अन्य विशेषणों को साधते हैं] यहही सर्व अवस्था के भेदवालाहुआ सर्व का ज्ञाता है । अर्थात् जाग्रदवस्थाबिषे स्थूल जगत् को अरु स्वप्नावस्था बिषे सूक्ष्म जगत् को अरु सुषुप्ति अवस्था बिषे उभय के कारणमूला विद्या को, इस प्रकार सर्वको सम्यक् प्रकार जानता है । एतदर्थ यह सर्वज्ञ है । [अरु अन्तर्यामीपने रूप अन्य विशेषण को स्पष्ट करते हैं] तैसेही सर्व के अन्तर प्रवेश करके सर्व भूतों का नियामक होने से, यहही सर्व का अन्तर्यामी भी है । अरु जिस करके यह उक्तप्रकार का भेदसहित सर्व जगत् इससे ही उपजता है तिसही करके यह सर्व की योनि (कारण वा उत्पत्ति स्थान) है । [जिस करके जगत् बिषे निमित्त अरु उपादान कारण का भेद नहीं । अर्थात् यह जगत् अभिन्ननिमित्त उपादान कारण है । अरु भूतों की उत्पत्ति अरु विलय, उपादान से इतर एक ठेकाने संभवे नहीं । जैसे घट शरावादिकों की उत्पत्ति अरु विलय, उनके उपादान मृत्तिका से इतर एक ठेकाने संभवे नहीं तैसे । ताते सर्वभूतों की उत्पत्ति अरु विलय यही है] अरु जिसकरके इस प्रकार है तिसही से सर्वभूतों की उत्पत्ति अरु प्रलयभी यहही है ॥ ६ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृततदुपनिषदर्थाविष्करणरूपश्लोकावतरणम् ॥

अत्रैतेश्लोकाः ॥

बहिःप्रज्ञोविभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तुतैजसः । घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएवत्रिधास्मृतः ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकाया प्रथमआगमाख्य प्रकरणभाषाभाष्यप्रारम्भः ॥

१ ॥ हे सौम्य ! [श्रीगौडपादाचार्य ने माण्डूक्योपनिषद् को अध्ययन करके " अत्रैते श्लोकाः " ८ यहां ये श्लोक हैं ? इस प्रकार कि उपनिषद् के व्याख्यानरूप नव ९ श्लोकों का अवतरण किया, तिनका अनुवाद करके भाष्यकार श्रीशंकराचार्य व्याख्यान करते हैं] यहां इन कथन किये उपनिषद् के 'षट् ६, मन्त्रों के अर्थ बिषे यह गौडपादाचार्य कृत ' नव ९, श्लोकहैं "बहिःप्रज्ञो विभुर्विश्वो ह्यन्तःप्रज्ञस्तु तैजसः" ८ बहिःप्रज्ञ विभुविश्व है, अन्तःप्रज्ञ तो तैजस है ? अर्थात् बाहिर की (स्थूल) प्रज्ञावाला विभुरूप विश्व है। अरु अन्तर की (सूक्ष्म) प्रज्ञा वाला तौ तैजसही है " घनप्रज्ञस्तथाप्राज्ञएकएव त्रिधा स्मृतः " ८ तौसे घनप्रज्ञ प्राज्ञ है, एकही तीनप्रकार से कहा है ? अर्थात् (बाह्य की प्रज्ञावाले अरु अन्तर की प्रज्ञावालेवत्) घनीभूत हुई प्रज्ञावाला प्राज्ञ है, इस प्रकार एकही पुरुष को तीन प्रकार से कहा है। इसका यह अभिप्राय है कि [जब आत्मा के चेतनपनेवत् जाग्रदादि तीनोंस्थान स्वाभाविक होवें, तब चेतनपनेवत् सो तीनों स्थान आत्मा से व्यभिचार पावनेयोग्य न होवेंगे, अरु तीनों स्थान क्रम करके अरु अक्रम करके आत्मा से व्यभिचार को पावतेहैं । क्योंकि आत्मा को तीनस्थान वालापना है ताते, एतदर्थ उन तीनों स्थानों से आत्मा का अभिन्नपना सिद्धहुआ " यः सुप्तः सोऽहं जागर्मीति " ८ जो मैं सोया था, सो मैं जागता हौं ? इस अनुसंधान से आत्मा का एकपनाभी निश्चितहुआ, अरु 'धर्म, अधर्म, राग, द्वेष आदिक मल को अवस्था का (वा अन्तःकरणादिकों का) धर्म होनेसे उन अवस्थाओं से भिन्न आत्मा का शुद्धपना भी सिद्धहुआ । अरु संग को भी वेद्य होने से अवस्था के धर्मपने के अङ्गीकारसे अवस्था से भिन्न तिनके द्रष्टा का (अर्थात् ' घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः, इस न्याय प्रमाण अवस्था अरु तिनके धर्म से भिन्न तिन का द्रष्टा का उनसे पृथक्होने करके) असंगपना भी (" असङ्गोह्ययं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषः " इत्यादि श्रुति प्रमाण से । सिद्धहुआ, इत्यर्थः] क्रम करके तीनस्थानवाला होने से, अरु " सोहमस्मि " ८ सो मैंहौं ? इस स्मृति करके, अरु अनुसंधान करके पुरुष का तीनों स्थानों से ' भिन्नपना, एकपना, द्रष्टापना, शुद्धपना अरु असंगपना, सिद्ध हुआ " तद्यथा महामत्स्य उभे कूलेऽनुसञ्चरति पूर्वञ्चापरञ्चैवायं पुरुषः " ८ इस श्रुति उक्त, महामत्स्यादिकों के दृष्टान्त के श्रवण से ॥ १ ॥

दक्षिणाक्षिमुखे विश्वोमनस्यन्तश्च तैजसः। आकाशे च हृदि प्राज्ञस्त्रिधा देहे व्यवस्थितः ॥ २ ॥

२ हे सौम्य ! " दक्षिणाक्षिमुखे विश्वो " ८ दक्षिण नेत्ररूपी द्वार बिषे विश्व को अनुभव करतेहैं, अर्थात् जाग्रदवस्था बिषेही विश्वादि का तीनों के अनुभव के लखावने के अर्थ यह द्वितीय श्लोक है, दक्षिण नेत्ररूपही द्वार बिषे मुख्यता करके स्थूल विषयों का द्रष्टा विश्व, ध्यान-निष्ठ पुरुष करके अनुभव होता है " इन्धे हवैनामैषयोऽयं दक्षिणेक्षन् पुरुष इति श्रुतेः " ८ जो यह दक्षिण नेत्रबिषे पुरुष है, यह प्रसिद्ध इन्ध (प्रकाशवान्) इस नामवाला है, इस बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुति प्रमाण से । इन्ध नाम प्रकाश गुणवाले सूर्यान्तर्गत विराट् के आत्मा वैश्वानर का है । सो अरु चक्षु बिषे जो द्रष्टा है सो एकहै । यह इस श्रुति का तात्पर्य है ॥ ननु. सूर्य मण्डलान्तर्गत समष्टि सूक्ष्मदेह वाला हिरण्यगर्भ, अरु चक्षुगोलकबिषे स्थित इन्द्रियों के अर्थ अनुग्रह का कर्त्ता हिरण्यगर्भ, संसारीजीव से अन्य है, अरु सूर्यमण्डलान्तर्गत समष्टि स्थूलदेह का अभिमानी, अरु चक्षु के उभय गोलकके अनुग्रह का कर्त्ता विराट् आत्मा भी तिससे अन्य नहीं, अरु व्यष्टिदेह का अभिमानी दक्षिण नेत्र बिषे स्थित द्रष्टा, दोनों चक्षु अरु करणों का नियामक, अरु कार्य, कारण का स्वामी क्षेत्रज्ञ है, सो तो उन दोनों समष्टि देह के अभिमानी हिरण्य-गर्भ अरु विराट् से इतर अङ्गीकार करते हैं । इस प्रकार होने से समष्टि अरु व्यष्टिपने करके स्थित जीव के भेद से कथन करि जो एकता सो अयुक्त है, इस प्रकार का जो वादी का कथन सो बने नहीं, क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्पितभेद के होते भी वास्तव करके अभेद के अनङ्गीकार होने से
अरु " एको देवः सर्वभूतेषु गूढ इति श्रुतेः" ८एकदेव सर्वभूतों बिषे गूढ
है> इस श्रुति के प्रमाण से । अरु " क्षेत्रज्ञञ्चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु
भारत" " अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितमिति " ८ हे भारत!
सर्वक्षेत्रों (शरीरों) बिषे क्षेत्रज्ञ (क्षेत्र का जाननेवाला) भी मुझको
को जान । अरु सर्व भूतों बिषे विभाग से रहित हुआ भी विभाग को
प्राप्तहुएवत् स्थित है, इस गीतास्मृति के प्रमाण से । अरु सर्व करण
बिषे समान हुए भी दक्षिणनेत्र बिषे ज्ञान की स्पष्टता के देखने से
तहां विश्वजीव का विशेष करके कथन है । अरु दक्षिण नेत्र बिषे
[यद्यपि देह के देश के भेद बिषे विश्व को अनुभव करते हैं, तथापि
जाग्रत् बिषे तैजस को कैसे अनुभव करते हैं, यह आशङ्का करके द्वितीय
पाद का व्याख्यान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि ' जैसे स्वप्नमें
जाग्रत् की वासनारूप से प्रकटहुए पदार्थों के समूह को द्रष्टा अनुभव
करता है, तैसेही जाग्रत्बिषे दक्षिण नेत्र में द्रष्टा होकर स्थितहुआ अर्थ
रूप को देखके पुनः नेत्र मूंदके, पूर्व देखा जो रूप सो रूप के ज्ञान
से जन्य (उद्भूत) वासनारूपसे मन बिषे प्रकट होता है, तिसको
स्मरणकरताहुआ विश्वही तैजस होताहै । अरु उक्त प्रकार होनेसे
विश्व अरु तैजसके भेद की शङ्का बने नहीं,] स्थित जो विश्व है,
कुरूप को देखके मूँदे हुए नेत्रवाला हुआ तिसही देखेहुए कुरूप को
मनके भीतर स्मरण करताहुआ स्वप्नवत् वासनारूप से प्रकटहुए तिसही
रूप को देखताहै । जैसे यहां जाग्रत् बिषे देखताहै । तैसेही वहां स्वप्न
बिषे भी देखता है । एतदर्थ " मनस्यन्तश्च तैजसः " ८ मनके अन्तर
तो तैजस है ? अर्थात् मन के अन्तर तैजस भी विश्वही है । अरु "अ
काशो च हृदि प्राज्ञः" ८हृदयाकाश बिषे प्राज्ञ है? अर्थात् [अब तृतीयपाद
का व्याख्यान करते हुए जाग्रत्बिषेही सुषुप्ति को देखावतेहैं । यहां
अर्थ है कि, जो विश्व तैजसभाव को प्राप्त हुआ है सो पुनः स्मरण
व्यापार की निवृत्ति के होनेसे हृदयान्तर आकाश बिषे स्थितहुआ
होयके तिस प्राज्ञ के लक्षण करके युक्त होता है । अरु रूप विषय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन अरु स्मरण को छोड़के श्रेष्ठ आकाश (अव्याकृत) बिषे स्थित हुए तिस जीवको प्राज्ञ से अन्य अर्थपना नहीं, एतदर्थ सो 'एकीभूत, (विषय अरु विषयी के आकार से रहित) है। अरु जिस करके एकीभूत है इसही करके घनप्रज्ञ 'अर्थात् विशेषज्ञान अरु अन्यरूप से रहित, हुआ स्थित होताहै। इत्यर्थः] जो विश्व तैजसभाव को प्राप्त हुआ है सो पुनः स्मरणरूप व्यापार की निवृत्तिके हुए हृदयगत आकाश बिषे स्थित हुआ प्राज्ञ एकीभूत अरु घनप्रज्ञ ही होता है, क्योंकि मन के व्यापार का अभाव है ताते। अरु दर्शन अरु स्मरणरूप ही मनके स्फुरण [व्यापार] है, तिनका अभाव होनेसे हृदयान्तरही अव्याकृतमय प्राणरूप से अवस्थानही जाग्रत् बिषे सुषुप्ति है "प्राणो ह्येवैतान् सर्वान् संवृङ्क्त इति श्रुतेः" ८प्राणही इन सर्व को अपने बिषे संहार करता है, इस श्रुति के प्रमाण से। याते अव्याकृतमय प्राणरूप से जाग्रतगत सुषुप्ति बिषे प्राज्ञ का अवस्थान जो कहा सो युक्त हीहै। अरु [पूर्वही विश्व अरु विराट् की एकताको अनन्तर प्राज्ञ अरु अव्याकृत की एकता को लखाई हुई होनेसे, अरु तैजस औ हिरण्यगर्भ के न कथन किये, अरु कहने योग्य अभेद को अब कहते हैं। तैजस जो है सो हिरण्यगर्भरूप है, क्योंकि लिङ्गशरीररूप मन बिषे स्थित है ताते, अर्थ यह है जो, हिरण्यगर्भ को समष्टि मन बिषे स्थित होनेसे, अरु तैजस को व्यष्टि मन बिषे स्थित होनेसे, अरु उस समष्टि अरु व्यष्टिरूप मन को एकरूप होनेसे, तिन व्यष्टि समष्टि बिषे स्थित तैजस अरु हिरण्यगर्भ की भी एकता क्वचित् है] तैजस जो है सो हिरण्यगर्भ है, क्योंकि "मनोमयोऽयं पुरुष, इत्यादि श्रुतिभ्यः" ८यह पुरुष मनोमय है? इत्यादि श्रुति के प्रमाण करके। मन जो है सो लिङ्गरूप है, अरु इस मन बिषे स्थित होनेसे तैजस अरु हिरण्यगर्भ की एकतायुक्त है। ननु, [अब प्राण के पूर्वोक्त अव्याकृतपने के अर्थ वादी आक्षेप करता है। यहां यह अर्थ है कि सुषुप्ति बिषे प्राण जो है सो नाम अरु रूप करके व्याकृत (स्पष्ट) युक्त है, क्योंकि तिस प्राण के व्यापार को सोयेहुए पुरुष के पास बैठेहुए मनुष्यों करके अतिशय स्पष्ट देखतेहैं ताते] सोयेहुए पुरुष

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के पास बैठेहुए जनों करके प्राण के व्यापार को स्पष्टदेखने से सुषु
बिषे जो प्राण है सो नाम अरु रूप करके व्याकृत कहिये स्पष्ट
अरु श्रुति बिषे, करण जो हैं सो उसके प्राणरूप होते हैं, इस प्रक
कहा है, एतदर्थ भी तिस प्राण की व्याकृतताही सिद्ध होती है। तो
। प्राण के अर्थ तुमने कही जो । अव्याकृतता सो कैसे संभवेगी, इ
प्रकार वादी की शङ्का है । तहां कहते हैं, यह । जो तूने कहा सो
दोष नहीं, क्योंकि अव्याकृत को देश अरु कालकृत परिच्छेद का
मात्र है ताते । अरु जैसे देशकालकृत परिच्छेद से रहित अव्याकृ
कहिये माया है, तैसेही सुषुप्तिमान् पुरुष की दृष्टिसे प्राण भी देशका
के किये परिच्छेदसे रहित है । एतदर्थ सुषुप्तिमान् के प्राण की अ
अव्याकृत की एकतायुक्त है। अरु जो कदापि परिच्छिन्न अभिमानवा
पुरुषों के मध्य 'यह मेरा प्राण है, इस प्रकार प्राण के अभिमान
हुए प्राण की व्याकृतताही सिद्ध होती है। तथापि सुषुप्ति अवस्था वि
पिण्ड (देह) करके परिच्छिन्न जो विशेष है तिसको विषय करनेवाल
जो 'यह मेरा प्राण है, इस प्रकार का अभिमान है तिसका निरो
प्राण बिषे होता है, एतदर्थ प्राण अव्याकृतही है।' जैसे मरण के हु
अभिमान के निरोध से परिच्छिन्न अभिमानियों का प्राण अव्याकृ
होता है, तैसेही प्राण के अभिमानी पुरुष को भी सुषुप्ति बिषे प्राण
अभिमान के निरोध से प्राण की अव्याकृतता समानही है। एतदर्थ वि
शेष अभिमान के निरोधहुए । प्राण को । अव्याकृतपना प्रसिद्ध ही हो
किंवा 'जैसे अधिदैवरूप अव्याकृत जगत् की उत्पत्ति का बीज है
तैसेही प्राण नामक सुषुप्ति जाग्रत् अरु स्वप्न की उत्पत्ति का । बीज हो
है। अरु इस प्रकार होनेसे कार्योत्पत्ति की बीजरूपता दोनों को समान
है। अरु अव्याकृत अवस्थावाला जो उन दोनों का अधिष्ठान चैतन्य
है सो एक है, इस करके भी उन दोनों की एकता सिद्ध होती है
एतदर्थ परिच्छिन्न अभिमानवाले उपाधि सहित जीवों की तिस अव्या
कृत के साथ एकता है। इस प्रकार पूर्वोक्त 'एकीभूत प्रज्ञानघन,
'सर्वेश्वर, इत्यादिरूप प्राज्ञ का विशेषण घटितही है ॥ प्रश्न,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राण शब्द को इस (प्राणादि) पञ्च वृत्तिरूप वायु के विकार प्राण बिषे रूढि होने रूप हेतु के होने से अव्याकृत को प्राणशब्द की वाच्यता (नामीपना) कैसे होती है, तहां (उत्तर) कहते हैं, "प्राणबन्धनꣳ हि सौम्यमन" (हे प्रियदर्शन! मन जो है सो प्राणरूपबन्धन (अर्थात् सुषुप्ति बिषे अपने लय के आधार) वाला होता है, इस श्रुति के प्रमाण से) अव्याकृत को प्राणशब्द की वाच्यता (नामीपना) होतीहै॥ ननु, इस श्रुति बिषे "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" (हे सौम्य! आगे सत्ही था) इस प्रकार प्रसंग बिषे प्राप्त किया सत्रूप ब्रह्मही प्राण शब्द का वाच्य है, अव्याकृत नहीं, (जहां ऐसी शंकाहै) तहां कहते हैं, यह (जो तूने कहा सो) दोष नहीं, क्योंकि सत्रूप ब्रह्म की बीजरूपता का अङ्गीकार है ताते। अरु यद्यपि तिस उक्त श्रुति बिषे प्राण शब्द का वाच्य सत् ब्रह्म है, तथापि तहां जीव अरु सर्व कार्य के समूह की उत्पत्ति की बीजता को अपरित्याग करकेही सत्ब्रह्म को प्राणशब्द की वाच्यता अरु सत् शब्दकी वाच्यता है। अरु जब निर्बीजरूप ब्रह्म प्राणादि शब्द का वाच्य कहने को इच्छित होय तब "नेति नेति" (कार्यरूप नहीं, अरु कारणरूप भी नहीं) अरु "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" (जिससे वाणियां निवृत्त होती हैं) अरु "अन्यदेव विदितादथो अविदितादधि" (सो विदित (कार्य) से अन्यही है, अरु अविदित (कारण) से भी अन्यही है, इस श्रुति के प्रमाण से) अरु तैसेही "न सत्तन्नासदुच्यत, इति स्मृतेः" (सो सत् नहीं अरु असत् भी नहीं ऐसा कहते हैं, इस स्मृति के भी प्रमाण से, ब्रह्म को शब्द की विषयता का निषेध किया है, एतदर्थ भी विरोध होवेगा। किंवा जब निर्बीजरूप होनेसेही ब्रह्म इस प्रकरण बिषे कहने को इच्छितहोय तो सुषुप्ति अरु प्रलय में सद्ब्रह्म बिषे लीन अरु एकरूप हुए जीवों के पुनः उत्थान का असंभव होवेगा। अथवा मोक्षदशा बिषे सत्ब्रह्म को प्राप्तहुए मुक्त पुरुषों की पुनरावृत्ति का प्रसंग होवेगा। अरु सर्व को अज्ञानरूप बीज के अभाव की तुल्यता, अरु ज्ञानाग्नि से दाह करने के योग्य बीज के अभावहुए ज्ञान की व्यर्थता का प्रसंग होवेगा। एतदर्थ सर्व श्रुतियों बिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बीज सहित ताके अङ्गीकार सेही सत्ब्रह्म को प्राणभाव का कथन अरु कारणभाव का कथन है । अरु इसही करके "अक्षरात्परतः परः" "स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" "नेतिनेतीत्यादिना" क्या रूप अक्षर से पर है, बाह्य अन्तर सहित है, जिससे वाणियां निवृत्त होती हैं, अरु नेतिनेति, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके बीज सहित ताके निषेध से ब्रह्म का कथन है । अरु तिसही प्राज्ञशब्द के वाच्य (नामी) की तुरीयरूपता से देहादिक संघात के सम्बन्ध से रहित तिस परमार्थ-रूपा अबीज अवस्था को यह श्रुति आगे भिन्न करेगी । अरु "नकिञ्चिदवेदिषमिति" मैं कुछ भी नहीं जानता हुआ, इस प्रकार सुषुप्ति से उत्थान पाये पुरुष के स्मरण को देखते हैं ताते, जीव की अवस्था भी अनुभव करतेही हैं "त्रिधा देहे व्यवस्थितः" तीनि प्रकार से देह बिषे स्थित हुआ है, अर्थात् उक्तरीति से यह जीव उक्त तीन प्रकार करके देह बिषे स्थित हुआ । अर्थात् अभिमान को पाया वा अभिमानी हुआ । है ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत ॥ ३ ॥

३ हे सौम्य ! [इस प्रकार विश्वादि तीनों की देह बिषे तीन प्रकार से स्थिति को प्रतिपादन करके, अब तिनकेही तीन प्रकार के भोगों को सूचित करते हैं,] "विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक्" विश्व नित्यही स्थूलभुक् है, तैजस प्रविविक्तभुक् है ? अर्थात् जाग्रदवस्था का अभिमानी । विश्व नित्यही स्थूल भोगों का भोक्ता है। अरु स्वप्नावस्था का अभिमानी। तैजस । नित्यही। वासनामय सूक्ष्म भोगों का भोक्ता है । अरु "आनन्दभुक्तथा प्राज्ञस्त्रिधा भोगं निबोधत" तैसे प्राज्ञ आनन्दभुक् है, तीनप्रकार के भोगों को जानो, अर्थात् जैसे जाग्रदवस्था का अभिमानी विश्व स्थूल विषयों का, अरु स्वप्नाभिमानी तैजस वासनामय सूक्ष्मभोगों का, भोक्ता है। तैसेही सुषुप्ति अवस्था का अभिमानी प्राज्ञ आनन्द का भोक्ता है, इसरीति से तीन प्रकार के भोगों को जानो ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तन्तु तैजसम्। आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत ॥ ४ ॥

४ हे सौम्य! [अब भोगों से हुई जो तृप्ति तिसको तीन प्रकार से विभाग करके देखावे हैं] "स्थूलं तर्पयते विश्वं प्रविविक्तंतु तैजसम्" ८स्थूलभोग विश्व को तृप्त करे है, सूक्ष्म तो तैजस को तृप्त करे है; अर्थात् शब्दादि स्थूल विषयभोग जाग्रदभिमानी विश्व को तृप्त करता है। अरु जाग्रत् की वासनामय सूक्ष्मभोग स्वप्नाभिमानी तैजस को तृप्तकरता है। तैसेही "आनन्दश्च तथा प्राज्ञं त्रिधा तृप्तिं निबोधत" ८तैसे आनन्द प्राज्ञ को तृप्तकरे है, तीन प्रकार की तृप्ति को जानो; अर्थात् । जैसे विश्व को स्थूलभोग अरु तैजस को सूक्ष्मभोग तृप्त करे हैं। तैसेही । सुषुप्ति के अभिमानी प्राज्ञ को आनन्दरूप भोग तृप्तकरे है, ऐसे तीन प्रकार की तृप्ति को जानो ॥ ४ ॥

त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्त्तितः। तदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते ॥ ५ ॥

५ हे सौम्य! अब [प्रसंग बिषे प्राप्त भोक्ता अरु भोग्य, इन उभय पदार्थों के ज्ञान के मध्य के फल को कहते हैं] "त्रिषु धामसु यद्भोज्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्त्तितः" ८तीन धाम बिषे जो भोज्यहैं, अरु जो भोक्ता कहे हैं; अर्थात् जाग्रदादि तीनों स्थानों बिषे जो 'स्थूल, सूक्ष्म, अरु आनन्द, नामवाला एकही तीनप्रकार का हुआ भोज्य है, अरु विश्व तैजस अरु प्राज्ञ इन नामवाला "सोहमिति" ८सो मैं हौं? इस एकता के अनुसंधान से, अरु द्रष्टापन के अविशेष से एकही भोक्ता कहा है। अरु "तदैतदुभयं यस्तु स भुञ्जानो न लिप्यते" ८जो इन दोनों को जानता है सो भोक्ता हुआ भी लिप्त होता नहीं; अर्थात् जो भोज्य अरु भोक्तापने करके अनेक प्रकार के भेदवाले हुए इन । भोज्य अरु भोक्ता । दोनों को जानता है सो भोक्ता हुआ भी लिप्त होता नहीं, क्योंकि सर्व भोग्य एकही भोक्ता का भोग्य (भोगने योग्य) है ताते। अरु जिसका जो विषय है सो तिस विषय करके घटता नहीं, अरु बढ़ता भी नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"जैसे अग्नि काष्ठादिरूप अपने विषय को दाघ वा भस्म करके घटता नहीं, वा बढ़ता नहीं, तैसे ॥ ५ ॥

प्रभवः सर्वभावानां सतामितिविनिश्चयः । सर्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषः पृथक् ॥ ६ ॥

६ हे सौम्य ! [पूर्व "एष योनिः" ८ यह योनि (कारण) है, इस षष्ठमन्त्र विषे प्राज्ञ को प्रपञ्च का कारणपना प्रतिज्ञा कियाहै । तहां सत् कार्य के प्रति प्राज्ञ को कारणपना है, वा असत्कार्य के प्रति कारणपना है, । इस संशय के हुए तिसका निर्द्धार करने को अब आरम्भ करते हैं,] "प्रभवः सर्वभावानां सतामितिविनिश्चयः । सर्वं जनयति प्राणश्चेतोंऽशून् पुरुषःपृथक् " ६ विद्यमान सर्वपदार्थों की उत्पत्ति होती है, यह निश्चय है । प्राणरूप पुरुष सर्व चैतन्य के अंशों को पृथक् २ उपजावताहै ; अर्थात् विद्यमान पदार्थों की उत्पत्ति का निश्चय है, यातें प्राणरूप पुरुष सर्व जगत् को अरु चिदाभासरूप चैतन्य के अंश (जीवों) को पृथक् २ उपजावताहै ॥ [ननु सत्रूप पदार्थों को सत्रूप होनेसेही तिनकी उत्पत्ति असंभव है, क्योंकि सत्रूप ब्रह्म विषे अतिप्रसंग होताहै तातें, । यह आशङ्का करके श्लोक के पूर्वार्द्ध का व्याख्यान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि अपने अधिष्ठानरूप सेही विद्यमान (सत्रूप) पदार्थोंका ही अविद्याकृत मिथ्या आरोपित स्वरूप है, तिस करके उत्पत्तिरूप संसार होवे है] अपने अधिष्ठानरूप से विद्यमान 'विश्व' तैजस, अरु प्राज्ञरूप भेदवाले सर्वपदार्थों की अविद्या रचित नामरूपमय मिथ्यास्वरूप से उत्पत्तिरूप संसार होता है । अरु जिसको बन्ध्यापुत्र कहते हैं सो यथार्थ (सत्य) रूप से वा मिथ्या रूप से भी जन्मता नहीं, इस प्रकार आगे कथन करैंगे । अरु जो असत्पदार्थ का ही जन्म होय, तो व्यवहारकरने (जानने) जो ब्रह्म तिसके ग्रहण विषे द्वाररूप लिङ्गके अभावसे असत्पने का प्रसंग होवेगा । अरु अविद्यारचित मिथ्या बीज से उत्पन्नहुए रज्जुसर्पादिकों का रज्जुआदिक [अधिष्ठान] रूप से सद्भाव देखाहै । अरु किसी भी पुरुषने अधिष्ठान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(आश्रय) रहित रज्जुसर्प अरु मरुस्थल जल आदिक कहीं भी देखे नहीं। (अर्थात् 'रज्जु' मरुस्थल, शुक्त्यादिरूप, आश्रय विना 'सर्प' जल, रजतादिरूप भ्रान्ति होवे नहीं। 'अरु जैसे रज्जुबिषे सर्पोत्पत्ति से पूर्व रज्जुरूप से सर्प सत्यही होता है। (अर्थात् जिस अधिष्ठान बिषे जो अध्यस्त होता है सो अपने अधिष्ठान की सत्यता से सत्यरूप होता है, क्योंकि अधिष्ठान कल्पित होता नहीं। तैसेही सर्व पदार्थों का अपनी उत्पत्ति से पूर्व प्राणमय बीजरूपसेही सद्भाव है। एतदर्थ "ब्रह्मैवेदं" "आत्मैवेदमग्र आसीदित्यादि"८ ब्रह्मही यह है, आत्माही यह आगे था> इस प्रकार श्रुतियां भी कहती हैं। इस प्रकार प्राण बीजरूप व्यवहार की योग्यता से सर्व अचेतन (जड़) रूप जगत् को उपजावता है। अरु सूर्य के किरणोंवत् चैतन्यरूप पुरुष के चैतन्यरूप, अरु जलगत सूर्य के (प्रतिबिम्बके) समान 'प्राज्ञ, तैजस, अरु विश्व, भेद से 'देव, मनुष्य, तिर्यगादिक, देहके भेदों बिषे भासमान जो चैतन्य के किरणोंवत् चेतनके अंशरूप जीव हैं, तिन विषयभाव से विलक्षण, अरु अग्नि के विस्फुलिङ्गवत्, अरु जलगत सूर्यवत् चैतन्य के लक्षणसहित जीवरूप अन्य सर्व पदार्थों को प्राण बीजरूप पुरुष उपजावता है "यथोर्णनाभिःसृज्यते" "यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः"८ जैसे ऊर्णनाभी (मकड़ीआदिक जन्तुविशेष) से तन्तु (जाला), अरु अग्निसे चिनगारे होतेहैं, तैसे। इत्यादि श्रुतिप्रमाण से॥ ६॥

विभूतिं प्रसवन्त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः। स्वप्न मायास्वरूपेति सृष्टिरन्यैर्विकल्पिता॥ ७॥

७ हे सौम्य! [अब जड़ चेतनरूप जगत् की उत्पत्ति को प्रसंग बिषे प्राप्तहुए अपने मत के विवेचनार्थ अन्यमत के कहने का प्रारम्भ करते हैं] "विभूतिं प्रसवन्त्वन्ये मन्यन्ते सृष्टिचिन्तकाः"८ अन्य सृष्टि के चिन्तन करनेवाले विभूति की उत्पत्ति को मानते हैं? अर्थात् (वेदप्रतावलम्बियों से) अन्य जे सृष्टि के चिन्तक (कहनेवाले) हैं, सो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर की अपने ऐश्वर्यमय विस्ताररूप विभूति की उत्पत्ति को "सृष्टि-रिति" ८ सृष्टि है, ऐसा ? मानते हैं ॥ परमार्थ के चिन्तनकरनेवाले तत्त्व-वेत्तों का तो सृष्टि बिषे आदर है नहीं, क्योंकि "इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप-ईयत इत्यादि" ८ इन्द्र (परमात्मा) माया करके बहुरूप प्रतीत होता है ? इत्यादि श्रुति के प्रमाण से । अरु जैसे माया का रचनेवाला मायावी पुरुष है सो सूत्र के आकाश बिषे फेंकके पुनः वो मायावी पुरुष तिस सूत्र के आश्रय खड्गादि आयुध सहित युद्धार्थ चढ़के अदृश्य हुआ युद्ध में खण्ड खण्ड होय पतनहुआ पुनः [सर्वाङ्गसहित] अरु खड़ाहुआ, तिसको [सम्यक्प्रकार जानके] देखनेवाले पुरुषों को तिस मायावी करके रचित माया अरु मायाके कार्य तिनके स्वरूप के चिन्तन बिषे आदर नहीं होवेगा । तैसेही यह मायावी करके प्रसारित सूत्र के समान सुषुप्ति अरु स्वप्नादिक विलास है, अरु तिस सूत्रोपरि आरूढ़ मायावी के समान उन सुषुप्ति आदिकों बिषे स्थित 'प्राज्ञ, तैजसादिक' जीव हैं, । अरु जैसे सूत्र अरु तिसबिषे आरूढ़ पुरुष तिनसे अन्य परमार्थरूप मायावी है सोई पृथिवीबिषे स्थित अरु माया करके आच्छादित अदृश्यमानही होता है । तैसेही तुरीयनामवाला परमार्थतत्त्व है । एतदर्थ उस परमार्थ तत्त्व के चिन्तन (विचार) बिषेही विवेकी मुमुक्षु पुरुष का आदर है, [खर के केश की संख्याकरनेवत्] निष्प्रयोजन सृष्टि के चिन्तन बिषे आदर नहीं । [परमार्थ के चिन्तन (विचार) करनेवाले पुरुष के सृष्टिबिषे अनादर से, अपरमार्थ बिषे निष्ठावाले पुरुष को ही सृष्टिविषयक विशेष चिन्तन है । इस उक्तार्थ बिषे श्लोक के उत्तरार्द्ध को प्रकट करते हैं । अरु इस मत बिषे जाग्रत् के पदार्थोंकीही स्वप्न बिषे प्रसिद्धि है ताते स्वप्न का सत्यपना है । अरु मणिआदिरूप माया की सत्यता के अङ्गीकार से, इन दोनों विकल्पों की सिद्धि से विलक्षणता समझनी । इति भावः] एतदर्थ सृष्टि के चिन्तक वादिकेही यह विकल्प हैं, ऐसा कहते हैं "स्वप्नमायास्वरूपेति सृष्टिर्विकल्पिता" ८ अन्यवादियों ने स्वप्न अरु मायारूप सृष्टि है, ऐसी कल्पना किया है ? ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरितिसृष्टौ विनिश्चिताः।
कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः॥ ८॥

८ हे सौम्य! "इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिरिति सृष्टौ विनिश्चिताः" कोई एक प्रभु की इच्छामात्र सृष्टि है इस प्रकार सृष्टि के निश्चय को प्राप्त हुए हैं? अर्थात् कोई एक ईश्वरवादी सृष्टिचिन्तक इस प्रकार निश्चय को प्राप्तहुए हैं कि प्रभु (ईश्वर) की इच्छामात्रही सृष्टि है, क्योंकि ईश्वर सत्यसंकल्प है ताते, जैसे घटादिरूप जो सृष्टि है सो कुलालका संकल्पमात्रही है, संकल्प से इतर घटादि कुछ भी नहीं॥ अरु "कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते कालचिन्तकाः" कालके चिन्तन करनेवाले काल करकेही भूतों की उत्पत्ति मानते हैं? अर्थात् कोई एक जे काल के चिन्तन करनेवाले ज्योतिषशास्त्र के वेत्ता हैं सो काल सेही जगदुत्पत्ति को मानते हैं। अरु कहते हैं कि जब सृष्टि की उत्पत्ति का काल आवता है तब उत्पत्ति, अरु प्रलय का काल आवता है तब प्रलय होताहै॥ ८॥

भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे। देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा॥ ९॥

९ हे सौम्य! "भोगार्थं सृष्टिरित्यन्ये क्रीडार्थमिति चापरे" अन्य भोगार्थ सृष्टि है ऐसे, अरु अन्य क्रीड़ार्थ है ऐसे, मानते हैं? अर्थात् उक्तवादियों से अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि भोग के अर्थ है। अरु उनसे अन्यवादी कहते हैं कि यह सृष्टि क्रीड़ा के अर्थ है। अन्यार्थ नहीं। अब सिद्धान्त को कहते हैं। "देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा" यह देव का स्वभावहै, पूर्णकामको कौन इच्छा है? अर्थात् यह सृष्टि स्वयंप्रकाश परमेश्वर का स्वभाव है, उस पूर्ण कामदेव को कौन इच्छा है किन्तु कोई भी नहीं। अर्थात् यावत् कार्य कारणात्मक स्थूल सूक्ष्मनामरूप सृष्टि है सो सर्व उस परिपूर्ण देव के आश्रय उसही बिषे उससे अनन्य है तब इच्छा किसकी होय, किन्तु किसी की भी नहीं। अरु इच्छा जो होतीहै सो अपने से अन्य अप्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तु बिषे होतीहै, सो उस एक परमात्मदेव से अन्य अरु अप्राप्त वस्तु कुछ भी नहीं ।] यहां स्वभाव जो कहा, सो क्या है ? इस प्रकार पूछे हुए स्वाभाविक अपरोक्ष जो मायाशब्द का अर्थ, तिसका नाम स्वभाव है, इस प्रकार कहते हैं] 'यहां स्वभाव पक्ष का आश्रय करके उक्त दोनों पक्षोंबिषे अथवा सर्वपक्षों बिषे दूषण कहा, जैसे [पूर्व आठवें श्लोक बिषे जो " कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यन्ते " ८ काल से भूतों की उत्पत्ति मानते हैं ? इस प्रकार कहा है, तहां कहतेहैं । यहां यह अर्थ है कि जैसे अधिष्ठान भूतरज्जुआदिकों के स्वभावरूप अपने अज्ञान से ही सर्पादिकों का आभासपना है, तैसेही परमात्मा को अपनी माया शक्ति के वश ते आकाशादिकों का आभासपनाहै " एतस्मात् आत्मनः आकाशः संभूतः" ८ आत्मा से आकाश होताहुआ ? इस श्रुति के प्रमाण से । परन्तु काल को भूतों का कारणपना नहीं, क्योंकि तिस बिषे श्रुति के प्रमाण का अभाव है] रज्जुआदिकों को अविद्यारूप स्वभाव विना सर्पादिक आकार के भासने बिषे कारणपना कहने को अशक्य है। तैसेही परमात्मा को मायारूप स्वभाव विना आकाशादि रूपाकार से भासने बिषे कारणपना कहने को शक्य नहीं ॥ ६ ॥

उपनिषद् ॥

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ७ ॥

उपनिषदर्थ ॥

७ हे सौम्य ! [ओंकार के तीन पादों की व्याख्या करनेसे, व्याख्या करने के योग्य होनेसे क्रमके वशते प्राप्तहुए चतुर्थपाद की व्याख्या करनेमें अग्रिम ग्रन्थ की प्रवृत्ति है] अब क्रम से प्राप्तहुआ जो चतुर्थपाद उसके कहने (व्याख्याकरने) को योग्य है । एतदर्थ यह उपनिषद् कहते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"नान्तःप्रज्ञं, न बहिःप्रज्ञं, नोभयतःप्रज्ञं, न प्रज्ञानघनं, न प्रज्ञं, ना प्रज्ञम्" (अन्तःप्रज्ञ नहीं, बहिःप्रज्ञ नहीं, उभयतः प्रज्ञ नहीं, प्रज्ञानघन नहीं, प्रज्ञ नहीं, अप्रज्ञ नहीं? अर्थात् (जो निर्विशेष निरुपाधि सर्वका साक्षी प्रत्यगात्मा है सो (अन्तःप्रज्ञ कहिये भीतर की प्रज्ञावाला (तैजस (सोभी नहीं। अरु बहिःप्रज्ञ कहिये बाहर की प्रज्ञावाला (विश्व) सो भी नहीं। अरु उभयतः प्रज्ञ कहिये उभयओर के प्रज्ञावाला, सोभी नहीं। अरु प्रज्ञानघन (कहिये, अन्तर बाह्यके भेदरहित घनप्रज्ञावाला प्राज्ञ (सो भी नहीं। अरु प्रज्ञभी नहीं॥ अरु "(अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तंशिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः" (अदृष्ट है, अव्यवहार है, अग्राह्य है, अलक्षण है, अचिन्त्य है, अव्यपदेश्य है, एकता के ज्ञान का सार है प्रपञ्च के उपशमवाला है, शान्तहै, शिवहै, अद्वैतहै, चतुर्थ है ऐसा, मानते हैं, सो आत्मा है, सो जानने के योग्य है? अर्थात् (निरुपाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान सर्व का साक्षी शुद्ध आत्मा 'नेत्र का वा ज्ञान का विषय न होने से 'अदृष्ट है। अरु ज्ञानेन्द्रियों का विषय न होने से 'अव्यवहार्य है,। अरु कर्मेन्द्रियों का अविषय होने से वा उसको कर्मों का फलरूप न होने से वो 'अग्राह्य है,। अरु प्रतियोगिता वा सापेक्षता के अभाव से वो 'अलक्षण है,। अरु अन्तःकरण का अविषय होने से वो 'अचिन्त्य है,। अरु वाणी वा शब्दादि प्रमाणों का अविषय होने से वो उपदेश करने के योग्य नहीं, ताते सो 'अव्यपदेश्य है,। तथा च "नाविद्योनविजानीमो यथैतदनुशिष्यात्" इत्यादि श्रुति प्रमाण से॥ इस प्रकार निषेधमुख कहके अब विधिमुख कहते हैं। वो आत्मा एकताके प्रत्यय ज्ञान का सार है "प्रतिबोधविदितं" अरु उस के सम्यक्ज्ञान से समूल द्वैतरूप प्रपञ्च (जगत्) का अत्यन्ताभाव होताहै ताते वो प्रपञ्च के उपशमवाला है। अरु अन्तःकरण के मन आदिकों के संकल्पादिकों कृत क्षोभसे रहित परमशान्त है। अरु परमानन्दमय होने से शिव है। अरु सर्वत्रपूर्ण अखण्ड अनन्त निराश्रय होने से अद्वैत है। अर्थात् 'अदृष्ट, अव्यवहार, अग्राह्य, अलक्षण, अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिन्त्य, उपदेश के अयोग्य, । एकता के ज्ञान का सार, प्रपञ्च के शमवाला, शान्त, शिव, अद्वैत, । इस प्रकार का जो पदार्थ है तिसको चतुर्थपाद करके मानते हैं । अर्थात् जिसको उक्त प्रकार निषेधमुख कहा सो किसीभी संख्या से बद्ध नहीं, परन्तु उसको जो चतुर्थपाद करके कहा है सो पूर्वोक्त तीनपादों की अपेक्षा से है, नतु वास्तव करके उस निर्विशेष तत्त्व बिषे संख्या अरु पादपना कोई भी नहीं । अरु सोई एक निर्विशेष चिन्मात्रतत्त्व जाग्रदादि स्थानरूप उपाधिरहित निरुपाधि परमशुद्ध सर्वका प्रत्यगात्मा है, अरु सोई मुमुक्षु जिज्ञासुजनों करके जानने योग्य है ॥ हे प्रियदर्शन ! यहां "नान्तःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञ नहीं) इत्यादि पदों से यह श्रुति 'सर्व शब्दों की प्रवृत्ति के निमित्त से शून्य (रहित) होने से उस आत्मा को शब्द की विषयता होगी । अर्थात् तत्त्व में शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त विशेषता है, निर्विशेष तत्त्व में निमित्त के अभावसे शब्द की प्रवृत्ति बने नहीं, अरु उस निर्विशेष को विधिमुख कहने से शब्द की विषयता होती है ताते । इस । अन्तःप्रज्ञतादिरूप । विशेष के निषेधसेही । निर्विशेष । तुरीयपाद को कहने की इच्छा करती है ॥ ननु, तब सो तुरीय शून्यही होवेगा, । इस प्रकारके जो वादी का । कथन सो बने नहीं, क्योंकि मिथ्या विकल्प को शब्दप्रवृत्ति के निमित्त से रहितपनेका असंभव है ताते, अरु जिस करके जो 'रजत, सर्प, पुरुष, अरु मृगतृष्णा का जल, इत्यादि विकल्प हैं, सो 'सीपि, रज्जु, स्थाणु अरु ऊषरभूमि, इत्यादिकों से इतर होने से अवस्तुपने के आश्रयहुए कल्पना करने को शक्य नहीं । अर्थात् रज्जु शुक्तिकादिकों बिषे जो सर्प रजतादि विकल्पकल्पना है सो रज्जुशुक्ति आदिकों केही आश्रय है क्योंकि निराश्रय कल्पना होती नहीं, अरु जो रज्जु शुक्ति आदिकों से भिन्न सर्प रजतादिकों का विकल्प करना इच्छिये तो उन कल्पित होनहार सर्प रजतादिकों को अवस्तुपने के आश्रय होने से सो कल्पनाकरने को शक्य होते नहीं । अरु निराश्रय विकल्प कल्पना होवे नहीं, यह अनिवार्य सिद्धान्त है । एतदर्थ तिन विश्व तैजसादिक का विधिमुख निषेधमुख, वा अस्ति नास्ति, वा शून्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशून्य, आदिक विकल्पों । का अधिष्ठानरूप तुरीय शून्य से विलक्षण सत्‌रूप करके माननाचाहिये । क्योंकि 'शून्य है, इस विकल्पकल्पना का आश्रय अधिष्ठान शून्य से विलक्षण किसी भी तत्त्व को सत् है, ऐसा न मानने से अवस्तुपने के आश्रय तेरा 'शून्य है, यह विकल्प होने को अशक्य है । ननु, जब इस प्रकार है, तब प्राणादिक सर्व विकल्पों का आश्रय होनेसे तुरीया को 'जलादिकों का आश्रय घटादिकोंवत्, शब्द की वाच्यता । नाम का नामीपना वा शब्द की विषयता । होगी, निषेधों से प्रतीति करावने की योग्यता न होगी । अर्थात् निर्विशेष तुरीया को प्राणादि विकल्पों का आश्रय अधिष्ठान होने से शब्द की वाच्यता प्राप्त होगी, अरु तैसे हुए "नान्तःप्रज्ञं" इत्यादि निषेधमुख वाक्यों से जो उसकी निर्विशेषता से प्रतीति है तिसकी योग्यता न होगी । इस प्रकार का जो वादी का कथन । सो कथन बने नहीं, क्योंकि 'शुक्ति आदिकों बिषे रजतादिवत्, प्राणादि विकल्प को । कल्पित होने से । असत्यपना है ताते । अरु असत्य को शब्द की प्रवृत्ति के निमित्तवाला अवस्तुरूप होने से । वो केवल वाचारम्भण (कहने) मात्रही हैं, एतदर्थ उनका किया निर्विशेष तुरीया बिषे वाचकपना भी वाचारम्भणमात्रही है । सत् अरु असत् वस्तु का सम्बन्ध है नहीं । अरु आत्मा को स्वरूप से गौ आदिकोंवत् अन्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों की विषयताभी नहीं । अरु पाचकादिकोंवत् क्रियावान्‌पना भी नहीं । अरु नील पीत घटादिकोंवत् गुणवान्‌पना भी नहीं । क्योंकि निराकार है ताते । [। विकल्प । क्या कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, वा वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु किया है, तहां जो प्रथमपक्ष । कहो कि 'कल्पित अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो कहना । बने नहीं । क्योंकि तिस कल्पित अधिष्ठानपने को वास्तविक वाच्यता का असाधकपना है ताते, अरु वास्तविक वाच्यतापने बिषे क्रम का विरोध है नहीं । अरु जो, द्वितीयपक्ष । कहो कि 'वास्तविक अधिष्ठानपना हेतु किया है, तो सो भी । बने नहीं । क्योंकि, शुक्ति आदिकों बिषे कल्पित रजतादिकों को अवस्तु होनेपनेवत्, तुरीया बिषे भी कल्पित प्राणादिकों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को अवस्तुरूप होनेसे, तिस प्रतियोगीवाले अधिष्ठानपने को वास्तविकता की अयोग्यता है ताते । अर्थात् वास्तविक अधिष्ठान तुरीया किंतु अध्यस्त (कल्पित) प्राणादिकों को अवस्तुपना होनेसे उस तुरीया का अधिष्ठानपना अवस्तुपने का प्रतियोगी होनेसे वास्तविकपने के योग्य नहीं । इस प्रकार सिद्धान्ती दूषण कहता है,] एतदर्थ आत्मा । शास्त्रादिक प्रमाणों का अविषय होने से । शब्द से कहने के योग्य नहीं शङ्का । ननु, तब आत्मा को शशशृङ्गादिकों के तुल्य होनेसे असत्पना प्राप्त होवेगा, । समाधान । यह कहना बने नहीं, क्योंकि शुक्ति के ज्ञानहुए रजत की तृष्णा की निवृत्ति होनेवत् तुरीया के सर्वात्मभाव से ज्ञान हुए, तिस ज्ञान को अनात्मवस्तु की तृष्णा की निवृत्ति का हेतु होनेसे, अरु तुरीया के स्वात्मभाव से ज्ञान हुए । कारण । अविद्या अरु । तिसका कार्य । तृष्णादिकदोष तिनका संभव होना है नहीं । अरु तुरीया के आत्मभाव के ज्ञानविषे हेतु का अभाव भी नहीं, क्योंकि " तत्त्वमसि " ‹ सो तू है › " तत् सत्यम् " " अयमात्मा ब्रह्म " । सआत्मा यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म । " सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः " " आत्मैवेदं सर्वं " ‹ सो सत्य है । यह आत्मा ब्रह्म है । सो आत्मा है जो साक्षात् परोक्ष ब्रह्म है । बाहर अन्तर सहित अजन्मा है । आत्माही यह सर्व है › इत्यादि श्रुतिवाक्यों से सर्व उपनिषदों को तिसही प्रयोजनार्थ होने करके परिसमाप्त होने से । सो [इस प्रकार निषेधमुखसेही तुरीया का प्रतिपादन है, विधि मुख से नहीं, इस प्रकार प्रतिपादन करके, अब कहे हुए अर्थ के अनुवादपूर्वक अग्रिम कहने के अर्थ को प्रकट करते हैं] यह आत्मा परमार्थरूप से चारपदोंवाला है इस प्रकार पूर्व द्वितीय मन्त्र करके कहाथा, तिसके अपरमार्थरूप अविद्यारचित रज्जुसर्पादिकों के तुल्य बीज अरु अंकुरस्थानी तीनपादों का लक्षण पूर्व कहा । अब इस मन्त्र विषे अबीजात्मक परमार्थस्वरूप रज्जुस्थानीय चतुर्थ पाद को " नान्तःप्रज्ञं " ‹ अन्तःप्रज्ञ नहीं › इत्यादिरूप वाक्य से सर्पस्थानीय [जाग्रदादि] तीनों स्थानों के निराकरण से कहते हैं । शङ्का । ननु, आत्मा के चारपाद करके युक्तपने की प्रतिज्ञा करके पाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रय के कथनसेही चतुर्थ पाद की अन्तःप्रज्ञ आदिक तीनपादों से पृथक् सिद्धि से "नान्तःप्रज्ञं" (अन्तःप्रज्ञ नहीं) इत्यादि निषेध अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, इस प्रकार जो वादी का कथन। सो कथन बने नहीं, क्योंकि सर्पादिरूप विकल्प के निषेध सेही रज्जु के स्वरूप के निश्चयवत्, तीन अवस्थावाले आत्माको ही तुरीयरूप होने से "तत्त्वमसि" (सो तू है) इस वाक्यवत्। अरु [ननु, जाग्रदादि तीन अवस्था करके विशिष्ट आत्मा को तुरीयत्व नहीं, क्योंकि तुरीय को विशिष्ट से विलक्षण होने करके। उस विशिष्ट से अत्यन्त पृथक्ता है एतदर्थ उस विशिष्ट आत्मा का तुरीयपना अग्रिम कहने के ग्रन्थ करके कैसे प्रतिपादन करते हौ, इस प्रकार की जहां वादी की शङ्का है तहां कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि, तुरीया की प्रातिभासिक से विलक्षणता के हुए भी विशिष्ट अरु उपलक्षित। अर्थात् विशेषण अरु उपलक्षणवाले। आत्मा की अत्यन्त विलक्षणता न होनेसे, तुरीया का विशिष्ट से वास्तव करके भिन्नपना है नहीं, अरु अन्यथा अत्यन्त भिन्न अरु परस्पर के सम्बन्धरहित, होनेसे, इन। विशिष्ट अरु अविशिष्ट। दोनों के उपाय (साधन) अरु उपेय (साध्य) भाव की अयोग्यता से, तुरीया के ज्ञान बिषे विशिष्ट आत्मा को द्वार (कारण) होनेके अभाव होने से' अरु तिस (तुरीया) के ज्ञानके द्वाररूप अन्यवस्तु के अदर्शन होनेसे, तुरीया का अनिश्चय ही होवेगा,] जब तीन अवस्थावाले आत्मा से विलक्षण अन्य तुरीया होय, तब तिसके। अस्तित्व के। निश्चय होने के द्वार के अभाव से शास्त्र का उपदेश अनर्थक (व्यर्थ) होवेगा, अथवा शून्यता प्राप्त होवेगी। जैसे [यहां यह अर्थ है कि विशिष्ट के ही निश्चय से तुरीया का अनिश्चय होनेसे, निश्चित हुए जे विश्वादिक विशिष्ट आत्मा तिनका उलटा उदय होवेगा, अरु वास्तव से अन्य (तुरीया) को अनिश्चित होनेसे निरात्मकताकी ही बुद्धि प्राप्त होवेगी,] अधिष्ठान रज्जु। अध्यस्त। सर्पादिकों से भेद को पावती है, तैसेही जब तीनों स्थानों बिषेभी एकही आत्मा अन्तःप्रज्ञत्वादिकों से भेद को प्राप्त होताहै, तब अन्तःप्रज्ञत्वादिपने के निषेध के ज्ञानरूप प्रमाण के सम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल ही आत्मा बिषे अनर्थरूप प्रपञ्चकी निवृत्तिरूप फल परिसमाप्त होवे है । जैसे [सम्बन्धी के परोक्षज्ञान के हेतु शब्द को असम्बन्धी के अपरोक्षज्ञान की हेतुता का असंभव होनेसे, तुरीया के ज्ञानबिषे अन्य प्रमाण मानना चाहिये, इस पक्ष के । कहने वाले के । प्रति कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि तुरीया के साक्षात्कार बिषे शब्द से इतर प्रमाण खोजने के योग्य नहीं, क्योंकि शब्द को विषय के अनुसार होने से प्रमाण का हेतुपना है ताते, अरु तुरीयरूप विषय को सम्बन्ध रहित अपरोक्षरूपता है ताते,] रज्जु अरु सर्प के विवेक होनेके समकाल में (साथही) रज्जु बिषे सर्प की निवृत्तिरूप फलके हुए, रज्जु के ज्ञान का अन्यफल वा अन्यप्रमाण वा अन्यसाधन, अन्वेषण करनेको योग्य नहीं । तैसेही तुरीया के ज्ञान हुए । तिस ज्ञान से । अन्य प्रमाण वा साधन अन्वेषण करना योग्य नहीं । पुनः [विषयगत प्रकटपना प्रमाण का फल है, अध्यस्त (कल्पित) की निवृत्ति प्रमाण का फल नहीं, यह आशङ्का करके कहते हैं, यहां यह भाव है कि अपने विषय के अज्ञान निवारणार्थ प्रवृत्ति हुई जो प्रमाण की क्रिया सो अपने विषय बिषे स्वभावरूप अतिशयता को जब धारण करे है, तब निवारणरूप अर्थ की तुल्यता से । छेदनरूप क्रिया भी छेदन करने योग्य काष्ठ के संयोग के निवारण से पृथक् अतिशय को धारण करेगी । अरु संयोग के विनाश से इतर विभाग बिषे अनुभव है नहीं । अरु प्रकटता के प्रकाशपने के हुए ज्ञानवत् । जैसे शब्द के अर्थ बिषे ज्ञानस्थित होवे है तैसे । अर्थ बिषे स्थितपना न होगा । अरु अप्रकाशपने के हुए अर्थ बिषे स्थितपना होवेगा, तिस हेतु से अर्थ के विना अर्थ नहीं है,] जिनके मत बिषे अन्धकार के अभाव करने विना घटादिकों के ज्ञान बिषे प्रमाण प्रवर्त्त होता है, तिनके मत में छेदन करने योग्य वृक्ष के अवयव के सम्बन्ध के वियोग किया विना ही दोनों अवयवों में से एक अवयव बिषे भी छेदनरूप क्रिया प्रवर्त्त होती है, इस प्रकार कहना होवेगा । [अज्ञान का निवर्त्तक ही प्रमाण है, इस पक्ष में विषय के स्फुरण बिषे कारण के अभाव से विषय का स्फुरण न होगा, यह आशङ्का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि अन्धकार से आवृत हुआ घट व्यवहार के योग्य स्थित होता है, तिसको अन्धकार से बाह्य करके तिसकी व्यवहार की योग्यता के सम्पादन बिषे प्रत्यक्षादिक प्रमाण प्रवृत्त होते हैं, सो प्रमाण जब ग्रहण करने को अनिच्छित, अरु प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्यज्ञान) के अविषय अन्धकार की निवृत्तिरूप फल बिषे स्थित होवे, तब घट का स्फुरणरूप प्रयोजनवाला प्रमाण का फल होता है। जैसे छेदनरूप जो क्रिया है सो छेदन करने योग्य वृक्ष के दोनों अवयवों के परस्पर के संयोग के निवारण बिषे प्रवृत्त हुई उस छेदन करने योग्य वृक्ष के दोनों (शाखारूप) अवयवों के द्विधाभाव (होने) रूप फल बिषे स्थित होती है, परन्तु वृक्ष के दोनों अवयवों में से एक भी अवयव बिषे भी छेदनरूप क्रिया प्रवृत्ति होती नहीं। तैसेही यहां भी अन्धकार की निवृत्ति बिषे प्रमाण निवृत्ति होवे है, परन्तु घट का स्फुरण तो तिसका फल है। अरु तिस प्रमाण को स्थिरपना नहीं, क्योंकि प्रकाशक प्रमाता के व्यापार को अस्थिरता है ताते,] अरु जब पुनः छेदन करने योग्य वृक्ष के अवयव के दो भाग करने (वा होने) रूप फल बिषे ' अन्तबिषे छेदनरूप क्रिया (कि जिससे दो भाग होता है) तिस अन्तवाली क्रियावत् घट अरु अन्धकार के विवेक के करने बिषे प्रवृत्त हुआ जो प्रमाण सो तो ग्रहण करने को अनिच्छित, अरु अविषयरूप अन्धकार की निवृत्तिरूप फल बिषे अन्तवाला होताहै, तब अन्तरायवाले (तमच्छिन्न) घट का ज्ञान है नहीं, इससे सो प्रमाण का फल नहीं। तैसे [किंवा घटादिक जड़ों को संवित् (चैतन्य) की अपेक्षावाला होने से, तिस बिषे संवित् को प्रमाण की फलरूपता होने से भी एक संवित्रूप अजड़ आत्मा बिषे मन में आरोपित धर्म की निवर्त्तकता के विना संवित् की जनकतारूप व्यापार संभवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि तुरीय रूप आत्मा बिषे प्रमाण को संवेदन का जननरूप व्यापार कल्पते नहीं, क्योंकि, यह तुरीय संवित् (चैतन्य) रूप है ताते, अरु आरोपित की निवृत्ति के विना प्रमाणजन्य फलरूप संवित् की अपेक्षा का अभाव है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताते,] आत्माबिषे आरोपित अन्तःप्रज्ञपने आदिकों के विवेक के करने बिषे प्रवृत्त हुए निषेध के ज्ञानरूप प्रमाण का ग्रहण करनेको अनिच्छित जे अन्तःप्रज्ञपनादिक तिसकी निवृत्ति के बिना तुरीय बिषे व्यापार का संभव नहीं, क्योंकि अन्तःप्रज्ञपने आदिकों की निवृत्ति के समकालही प्रमातापने आदिक भेद की निवृत्ति है ताते, इस प्रकार अग्रिम कहेंगे । तथाच " ज्ञाते द्वैतं न विद्यतइति " ‹ जानेहुए द्वैत विद्यमान है नहीं › इस वाक्यप्रमाण से ॥ [किंवा ज्ञान के आधीन द्वैत की निवृत्ति करके युक्त क्षण विना अन्यक्षणबिषे ज्ञान स्थित होने को समर्थ नहीं । अरु अस्थिर हुआ ज्ञान व्यापारार्थ परिपूर्ण नहीं, अरु तैसे हुए ज्ञान का द्वैत की निवृत्ति से भिन्न आत्मा बिषे व्यापार नहीं, इस प्रकार कहते हैं,] ॥ ज्ञान को भेद की निवृत्तिरूप फल विना अन्यक्षण बिषे अस्थिरता के हुए, अरु [ननु, ज्ञान जो है सो द्वैत का निवर्त्तक हुआ हुआ भी अपने स्वरूप को निवर्त्त करता नहीं, क्योंकि निवर्त्त होनेकी योग्यता का अरु निवर्त्तकतारूप धर्म का एकही धर्मी बिषे होने का विरोधहै ताते। याते यावत् पर्यन्त ज्ञान का निवर्त्तक अन्य न आवेगा तावत् ज्ञान स्थिर होवेगा, यह आशङ्का के हुए समाधान कहते हैं । यहां यह भाव है कि, द्वैत के निवर्त्तकज्ञान को द्वैत की निवृत्ति के अनन्तर भी अपने अन्य निवर्त्तक की अपेक्षा करके स्थित हुए उन उन ज्ञानको अन्य अन्य निवर्त्तक की अपेक्षावाला होनेसे प्रथमज्ञान कोभी निवर्त्तकपने की असिद्धि होवेगी] ज्ञानके स्थिर हुए अनवस्था प्रसंग होनेसे द्वैत की अनिवृत्ति होवेगी । [यहां यह अर्थहै कि ज्ञानको अपने निवर्त्तकपने का असंभव नहीं, क्योंकि । ज्ञान को । अपन अरु दूसरे के विरोधी बहुत पदार्थों की प्रतीति है ताते] एतदर्थ निषेध के ज्ञानरूप प्रमाण के व्यापार के समकाल में ही आत्माबिषे आरोपित जे अन्तःप्रज्ञतापनादिक अनर्थ तिन की निवृत्ति होती है, इस प्रकार सिद्ध हुआ ॥ अब तात्पर्यसहित मूल श्रुति का अर्थ कहते हैं ॥ यहां "नान्तःप्रज्ञमिति" ‹ अन्तः प्रज्ञ नहीं › इस पद से तैजस का निषेध किया, " न बहिःप्रज्ञमिति " ‹ बहिःप्रज्ञ नहीं › इस पद से विश्व का निषेध किया, अरु "नोभयतःप्रज्ञमिति" उभयतः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(प्रज्ञ नहीं) इस पद करके जाग्रत् अरु स्वप्न की सन्धीरूप मध्य अवस्था का निषेध किया, अरु "न प्रज्ञानघनमिति" (प्रज्ञानघन नहीं) इस पद से सुषुप्ति अवस्था का निषेध किया, क्योंकि सुषुप्ति को बीजभाव की अविवेकरूपता है ताते, अरु "नप्रज्ञमिति" (प्रज्ञ नहीं) इस पद करके एक काल बिषे सर्व विषयों के ज्ञातापने का निषेध किया, अरु "नाप्रज्ञमिति" (अप्रज्ञ नहीं) इस पद से अचेतनपने का निषेध किया॥ शङ्का॥ ननु, पुनः आत्माबिषे प्रतीयमान जे अन्तःप्रज्ञ आदिक तिनका रज्जुआदिकों बिषे सर्पादिकोंवत् निषेध होनेसे असत्पना कैसे जानिये? समाधान॥ तहां कहते हैं। अन्तःप्रज्ञ आदिकों के ज्ञानस्वरूप होने बिषे अविशेषताके हुए २ भी रज्जुआदिकों बिषे सर्प जलधारादिकों के कल्पित भेदवत् परस्पर असत्पना है। अर्थात् जैसे एक ही रज्जुरूप अधिष्ठान बिषे अध्यस्त जे 'सर्प' दण्ड, जलधारा, सो कल्पित अरु परस्पर में व्यभिचारी 'अर्थात् जिस काल में रज्जु बिषे सर्प की प्रतीति है तिसही काल में दण्ड अरु जलधारा की नहीं' अरु जिस काल बिषे दण्ड की प्रतीति है तिसकाल बिषे सर्प अरु जलधारा की प्रतीति नहीं, अरु जिस काल में जलधारा की प्रतीति है तिसकाल में सर्प अरु दण्डकी प्रतीति नहीं, ताते अधिष्ठान रज्जु से वास्तव करके अपृथक् भी जे कल्पित 'सर्प' दण्ड, जलधारा, सो उक्त प्रकार परस्पर में व्यभिचारी अरु कल्पित होने से असत् है। तैसे ही विश्वादिक भी अपने अधिष्ठान से पृथक् सत्तावाले नहीं परन्तु परस्पर व्यभिचारी अरु कल्पित होने से असत् हैं। अरु रज्जुआदिकोंवत् अव्यभिचारता से तिनके ज्ञानस्वरूप का सत्यपना है॥ अरु जो ऐसा कहे कि तिनका ज्ञानस्वरूप भी सुषुप्ति बिषे व्यभिचार को पावता है, सो बने नहीं क्योंके सुषुप्तिमान् पुरुष अनुभव का विषय है ताते। अरु "नहिविज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यतइतिश्रुतेः" (विज्ञाता की विज्ञप्ति का लोप विद्यमान नहीं, इस श्रुति के प्रमाण से) अरु जब ऐसा है एतदर्थही "अदृष्टम्" (अदृष्ट है) अरु जिस करके अदृष्ट है, तिसही करके "अव्यवहार्यम्" अव्यवहार (व्यवहार करने के अयोग्य) है, अरु अव्यवहार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने से "अग्राह्य" अग्राह्य (कर्मेन्द्रियों से ग्रहण करने के अयोग्य है, ताहीते "अलक्षणम्" अलक्षण कहिये लिङ्गरहित । अर्थात् अनुमान प्रमाण का अविषय । है । अरु जब ऐसा है तबहीं "अचिन्त्यम्" अचिन्त्य (अन्तःकरण की वृत्तियों का अविषय) है । अरु जिस करके ऐसा है तिसही करके "अव्यपदेश्यम्" अव्यपदेश्य (शब्दप्रमाण का अविषय होने से उपदेश करने वा कहने अयोग्य) है । अरु जब ऐसा है तब "एकात्म्यप्रत्ययसारम्" एकात्म्यप्रत्ययसार है, अर्थात् जाग्रदादि । अवस्थारूप । स्थानों में यह आत्मा एक है, इस प्रकार अव्यभिचारी जो प्रत्यय (ज्ञान) तिस करके अनुसरने (विचार वा अनुभव करने) योग्य है । अरु जिस तुरीया की प्राप्ति बिषे एक आत्मज्ञानरूपही सार (मुख्य प्रमाण) है, इसप्रकार का सो तुरीया है "आत्मेत्येवोपासीतइतिश्रुतेः" ८आत्मा है इसप्रकार ही उपासना करना> । अर्थात् आत्मा को अस्तिरूप से ही निश्चय करना, "अस्तीत्येवोपलब्धव्य" इत्यादि अन्यश्रुति के प्रमाण से । इसप्रकार अन्तःप्रज्ञत्वादि । भावप्रापक जाग्रदादि । स्थानोंके अभिमानी के धर्म का निषेध किया । अरु "प्रपञ्चोपशममिति ८प्रपञ्च से रहित है> इस प्रकार । आत्मा बिषे । जाग्रदादि स्थानों के धर्म का अभाव कहा । अरु उक्त प्रकार का होने से ही "शान्तम्" शान्त (रागद्वेषादि सर्वविकार अरु विक्रियारहित) है । इसही से "शिवम्" शिव (शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव परमानन्द बोधस्वरूप) है, अरु "अद्वैतम्" अद्वैत । अर्थात् जिसकरके सर्वभेद विकल्पसे रहित है, तिसही से "चतुर्थम्" चतुर्थ है ८ । अर्थात् तीन पादों की अपेक्षा चतुर्थ । तुरीयपाद, "मन्यन्ते" मानते हैं> क्योंकि प्रतीयमान विश्वादिक तीन पाद तिनसे विलक्षण है ताते "स आत्मा स विज्ञेय ८सो आत्मा है सो जानने योग्य है> अरु जैसे प्रतीयमान जे भूमि की दरार, दण्ड, जलधारादिक, तिस सर्व से पृथक् । अरु सब का आश्रय अधिष्ठान । रज्जु है । तैसे "तत्त्वमसि" ८सो तू है इत्यादि महावाक्यों का लक्ष्यरूप जो आत्मा । अर्थात् जाग्रदादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवस्थारूप स्थानों का, अरु तदभिमानी विश्वादिकों का आश्रय अधिष्ठान अरु सर्व के धर्म कर्मादिकों से पृथक् सर्व का प्रकाशक साक्षी निरुपाधि शुद्ध विज्ञानघन निर्विशेष निरुपाधि जो आत्मा सो। अदृष्ट (चक्षुरादिकों का अविषय) हुआ, । चक्षुरादि सर्व का । द्रष्टा है, अरु "नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपोविद्यत, इत्यादि" (द्रष्टा की दृष्टि का विपरिलोप विद्यमान नहीं) इत्यादि श्रुतियों ने कहा है, । ताते सोई सर्व का अनुभवी अपना आप सत्य प्रत्यगात्मा है । सो जानने योग्य है॥ यहां । "सविज्ञेय" (सो जानने योग्य है) इस प्रकार कहाहै सो । पूर्व । अपने आप आत्मा की । अज्ञात अवस्था बिषे । अर्थात् अपने आप वास्तविक स्वरूप को यथार्थ न जानने रूप अवस्था बिषे । आत्मा विषयक ज्ञेयपने के हुए, आत्मा को 'जानने योग्य है, इस प्रकार कहा। अरु । महावाक्यों के लक्ष्यार्थ को सम्यक्प्रकार अपने आप । आत्मा करके जाने हुए 'ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इस त्रिपुटि के विभागरूप द्वैत का अभाव होता है॥ ७॥

गौडपादीयकारिकाः॥

निवृत्तेःसर्वदुःखानामीशानःप्रभुरव्ययः। अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्योविभुःस्मृतः॥ १०॥

गौडपादीयकारिकार्थ॥

१० हे सौम्य! "अत्रैते श्लोका भवन्ति" (यहां यह श्लोक होते हैं) अर्थात् 'यहां [अब "नान्तःप्रज्ञत्वादि" (अन्तःप्रज्ञत्व नहीं) इस सप्त संख्यावाले श्रुति मन्त्र करके उक्तार्थ बिषे तिसके वर्णनरूप गौडपादाचार्य कृत नव ९ श्लोकों को प्रकट करते हैं] "निवृत्तेः सर्व दुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः" (सर्वदुःखों की निवृत्ति का ईशान प्रभु है, अव्यय है) अर्थात् 'प्राज्ञ, तैजस, विश्वरूप लक्षणवाले जीवों के सर्वदुःखों की निवृत्ति का ईशान कहिये नियामक तुरीयरूप आत्मा है। सो प्रभु है। अर्थात् यहां 'ईशान, पद का व्याख्यान रूप 'प्रभु, पद है, एतदर्थ ईशान कहिये सर्व दुःखों की निवृत्ति के अर्थ प्रभु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(समर्थ) होता है (अर्थात् जो सर्वदुःखों की निवृत्ति करने में समर्थ होवे तिसको ' प्रभु, इस नाम से कहते हैं, सो एक आत्मा ही अज्ञान सम्यक् ज्ञानद्वारा आध्यात्मिकादि त्रिविधतापों को समूल अशेष निवृत्त करता है ताते तुरीय आत्मा के ' ईशान, इस विशेषण का अर्थ प्रभु (क्योंकि सर्व दुःखों की जो निवृत्ति है सो तिस (आत्मा) के रूप निमित्त से होती है ताते । अरु यह प्रत्यगात्मा जिससे (वास्त करके) स्वरूप से व्यभिचार को पावता नहीं तिस ही से अव्यय है अरु " अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः " (सर्वभावों के मिथ्या होने से) अद्वैत है, देव तुरीय विभु (व्यापक) कहा है) अर्थात् ' जाग्रदादि अवस्थारूप तीनों स्थान अरु तिनके विश्वादिक तीन अभिमानी सो सर्व (रज्जु में सर्पवत् असत् होने से) उन सर्व का आश्रय अधिष्ठानरूप तुरीय आत्मा (अद्वैत है । अरु एतदर्थही (अर्थात् सर्वभावों को मिथ्याहोने सेही) व्यय (व्यभिचार) के हेतु जे द्वैत वस्तु तिसके अभाव से आत्मा अव्यय है । अरु सो यह सर्व का प्रकाशक होने से देव (अर्थात् जाग्रदादि स्थानों सहित विश्वादिकों के ' रज्जु में सर्पवत् अध्यस्तरूप भाव को, अरु स्वरूप से उनके अभाव को, उनका अधिष्ठान साक्षी होके प्रकाशता है ताते आत्मा सर्व प्रकाशकों का प्रकाशक देव (है । अरु विश्वादिकों की अपेक्षा चतुर्थ होने से तुरीय, अरु सर्व में व्यापक होने से विभु है, ऐसा कहते हैं ॥ १० ॥

कार्यकारणबद्धौताविष्येतेविश्वतैजसौ । प्राज्ञःकारणबद्धस्तुद्वौतौतुर्ये न सिध्यतः ॥ ११ ॥

११ हे सौम्य ! अब तुरीया के यथार्थ आत्मपने के निश्चयार्थ [इस श्लोक के तात्पर्य को कहते हैं] " कार्यकारणबद्धौ ताविष्येतां विश्वतैजसौ " (सो विश्व तैजस दोनों कार्यकारण से बद्ध अङ्गीकार करते हैं) अर्थात् विश्वादिकों का सामान्य अरु विशेषभाव निरूपण करते हैं [विश्वादिकों बिषे मध्य की विशेषता वा ' विलक्षणता के निरूपण करने द्वारा तुरीया को ही निरधार करते हैं] यहां ' कार्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं, ऐसा जो फलभाव, सो कार्य है। अरु 'करता है, ऐसा जो बीज भाव, सो कारण है। तिन तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथा ग्रहणरूप बीजभाव अरु फलभाव। अर्थात् तत्त्व का अग्रहण (अज्ञान) सोई बीजभाव अरु तिसी बीज हेतु से हुआ जो तत्त्वविषयक कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अन्यथा ग्रहणभाव सोई उक्त बीज का फलभाव है। तिनसे वे पूर्वोक्त विश्व अरु तैजस ये बद्ध अङ्गीकार करते हैं अरु "प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौ तौ तुर्येन सिध्यतः" (प्राज्ञ तो कारण भाव से ही बद्ध है, विश्व अरु तैजस ये दोनों तुरीया बिषे सिद्ध होते नहीं) अर्थात् प्राज्ञ तो बीजभावरूप कारण सेही बद्ध है अर्थात् तत्त्व का अबोधमात्रही जो बीजभाव सोई प्राज्ञपने बिषे निमित्त है। एतदर्थ वे बीजभाव अरु फलभावमय तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथा ग्रहणरूप विश्व अरु तैजस यह दोनों तुरीया बिषे सिद्ध होते नहीं ॥ ११ ॥

नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम्। प्राज्ञः किञ्चन संवेत्ति तुर्यं तत्सर्वदृक् सदा ॥ १२ ॥

१२ हे सौम्य! प्रश्न। पुनः प्राज्ञ को कारण से बद्धपना कैसे है। वा तुरीयाबिषे तत्त्व के अग्रहण अरु अन्यथा ग्रहणरूप बद्ध जो विश्व औ तैजस सो तिस प्रकार के सिद्ध होते नहीं,। उत्तर। तहां कहते हैं, "नात्मानं नापरांश्चैव न सत्यं नापि चाऽनृतम्, प्राज्ञः किञ्चन संवेत्ति" (प्राज्ञ है सो न आपको न पर को न सत्य को न अनृत (झूठ) को, कुछ भी जानता नहीं) अर्थात् जिस करके प्राज्ञ जो है सो विश्व अरु तैजसवत् कुछ भी आपको जानता नहीं, अरु अविद्यारूप बीज से उत्पन्न बाह्य के द्वैतरूप, अन्यों को भी जानता नहीं, अरु सत्य को। दृश्यादिकों के विषय कार्य को। जानता नहीं। अरु तैसेही अविद्यात्मक बीजरूप अनृत (अविषयकारण) को भी जानता नहीं। एतदर्थ यह प्राज्ञ अन्यथा ग्रहण कहिये 'विपरीत ज्ञान, के बीजमय अग्रहणरूप अज्ञान से बद्ध होता है। अरु "तुर्यंतत्सर्वदृक् सदा" (तुरीया सर्वदा सर्वदृक् है) अर्थात् जिस करके तुरीया अपने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से इतर (अविद्या) के अभाव से सर्वदा सर्वदृक् (सर्वरूप अरु सर्व द्रष्टा) है । एतदर्थ तिस बिषे तत्त्व का अग्रहणरूप (अविद्यात्मक बीज नहीं, 'क्योंकि वो तिस का भी प्रकाशक द्रष्टा है ताते, अरु उस बिषे उक्त बीज नहीं तिसही करके तिस बीज से उत्पन्न हुआ अन्यथा ग्रहरूप । अर्थात् विपरीतज्ञान, जीवभावरूप । फलका तिस बिषे अभाव है । जैसे सर्वदा प्रकाशरूप सूर्य बिषे अप्रकाशता अन्यथा प्रकाशना संभवे नहीं । अथवा जैसे सर्वदा स्वयंप्रकाशरूप सूर्य बिषे अन्धकार नहीं अरु तिसके अभाव हुए तिसका कार्य जो पदार्थ अन्यथा भासना सो भी नहीं । तैसे सर्वदा स्वयंज्योतिःद्रष्टारूप तुरीय बिषे बीजरूप मूलाज्ञान अरु तिसका कार्य अन्यथाग्रहण (विपरीत ज्ञान, जीवभाव) रूप फल दोनों नहीं । क्योंकि " नहिद्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते इति श्रुतेः " (द्रष्टा की दृष्टि का विपरिलोप (अभाव) विद्यमान नहीं) इस श्रुति के प्रमाण से । अरु वो सर्व का द्रष्टा तुरीय पदार्थ का अग्रहणरूप बीज सुषुप्ति का अरु तिसके कार्य विपरीतज्ञान रूप फल का प्रकाशक द्रष्टा है, अरु । घटद्रष्टा घटाद्भिन्नः । इस न्याय प्रमाण दृश्य से द्रष्टा पृथक् होने से उस बिषे उक्त बीज अरु फल का अभाव सिद्ध है । अथवा जाग्रत् अरु स्वप्नादि । सर्व अवस्था में । सर्व भूतों बिषे स्थितिवाला सर्ववस्तुओं का द्रष्टा आभास (प्रतिबिम्बरूप प्रकाश) है सो तुरीयाही है । क्योंकि बिम्ब से प्रतिबिम्ब की पृथक् सत्ता का अभाव है ताते । एतदर्थ सो तुरीया सर्वदा सर्वदृक् (सर्व का द्रष्टा) है । क्योंकि अविद्या से रहित सर्वदा जाग्रत् स्वभाव है । तथाच " नान्यदतोऽस्तिद्रष्टा, इत्यादि श्रुतेः " (इससे अन्य द्रष्टा है नहीं) ॥ १२ ॥

नैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्ययोः । बीजनिद्रायुतः प्राज्ञः स च तुर्ये न विद्यते ॥ १३ ॥

१३ हे सौम्य ! , अब निमित्तान्तर से प्राप्त हुई शङ्का की निवृत्ति के अर्थ यह श्लोक है । अर्थात् तुरीया बिषे अन्यनिमित्तता से प्राप्तहुई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारणता। तिससे हुई जो बद्धपने की शङ्का तिस। बद्धपने की शङ्का की निवृत्ति के अर्थ यह श्लोक है। कैसे कि [विवाद का विषय जो तुरीय सो कारण से बद्ध कहिये सम्बन्धवाला है, द्वैत का अग्रहण है ताते, प्राज्ञवत्। यहां अनुमानको ही देखावते हुए, प्राज्ञ को कारण करके बद्धपने बिषे अन्यनिमित्तको ही प्रकट करते हैं] दोनों बिषे द्वैत के अग्रहणरूप निमित्त की तुल्यता है ताते। इस प्रकार की जो शङ्का प्राप्त हुई 'सो शङ्का, प्राज्ञकोही कारण से बद्धपना है तुरीया को नहीं, इस प्रकार निवारण करते हैं "द्वैतस्याग्रहणं तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्ययोः" (प्राज्ञ अरु तुरीया दोनों को द्वैत का अग्रहणतुल्य है) अर्थात् यद्यपि प्राज्ञ अरु तुरीया इन दोनों को द्वैत का अग्रहण तुल्यही है। तथापि "बीजनिद्रायुतः प्राज्ञः स च तुर्ये न विद्यते" (प्राज्ञ बीज निद्रा-युक्त है, सो तुरीया बिषे विद्यमान नहीं) अर्थात् प्राज्ञ जो है सो विशेष कै। विश्व तैजसादिरूप द्वैत के। बोध के उत्पत्ति का कारण जो तत्त्व का अबोधरूप बीजनिद्रा (मूलाविद्या) तिस करके युक्त है। अरु तुरीया को सर्वदा सर्व का द्रष्टा स्वभाववाला होने से सो 'तत्त्व का अबोधरूप निद्रा (मूलाविद्या), तुरीया बिषे है नहीं एतदर्थ तिस तुरीया बिषे कारण का सम्बन्ध नहीं, यह अभिप्राय सिद्ध है॥ १३॥

स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया। न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्ये पश्यन्ति निश्चिताः॥ १४॥

१४ हे सौम्य!, [अत्र, "कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ"। वे विश्व अरु तैजस कार्य अरु कारण करके बद्ध हैं। इस अष्टादश १८ श्लोकबिषे उक्त अर्थ को, अनुभव के आश्रय से वर्णन करते हैं] "स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया" (आद्यदोनों स्वप्न अरु निद्रा करके युक्त है, अरु प्राज्ञ तो स्वप्न से रहित निद्रा करके ही युक्त है) अर्थात् आद्य (प्रथम कहे) जे विश्व अरु तैजस सो दोनों 'रज्जुबिषे सर्पवत्, अध्यस्त। जे अन्यथा ग्रहणरूप स्वप्न, अरु तत्त्व के अबोधमय अज्ञानरूप निद्रा, तिन स्वप्न अरु निद्रा दोनों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके युक्तहै । एतदर्थ वे । विश्व अरु तैजस । कार्य अरु कारण । दोनों से । बद्ध हैं, इस प्रकार पूर्व कहा । अरु प्राज्ञ ते स्वप्न से रहित केवल निद्रा (अज्ञान) सेही युक्त है । एतदर्थ कारण से बद्ध है, इस प्रकार पूर्व कहा अरु " ननिद्रानैव च स्वप्नं तुर्यं पश्यन्ति निश्चिताः " ' निश्चय को प्राप्त हुए, तुरीया बिषे स्वप्नको नहीं देखते अरु निद्रा को भी नहीं देखते ' अर्थात् जो ' महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञान करके निश्चय को प्राप्तहुए ब्रह्मवेत्ता, सो ' सूर्यबिषे अन्धकारवत् विरुद्धधर्म होनेसे, तुरीयाबिषे स्वप्न को देखते नहीं, अरु निद्रा को भी देखते नहीं । एतदर्थही जो । सर्वका प्रकाशक द्रष्टा । तुरीया है सो कार्य अरु कारण दोनों से बद्ध नहीं, इस प्रकार पूर्व कहा है ॥ १४ ॥

अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रातत्त्वमजानतः । विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते ॥ १५ ॥

१५ हे सौम्य !, शङ्का । ननु । पुरुष स्वप्नबिषे स्थित कब होता है, अरु निद्रा बिषे कब होता है; अरु तुरीया बिषे निश्चय को प्राप्त हुआ कब होताहै, । समाधान । तहां कहते हैं " अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रातत्त्वमजानतः " ' तत्त्व के अन्यथा ग्रहणवाले को स्वप्न होताहै अरु न जाननेवाले को निद्रा है ' अर्थात् स्वप्न अरु जाग्रत् बिषे ' रज्जु में सर्पवत्, तत्त्व को अन्यथा (और प्रकार से) ग्रहण करनेवाले पुरुष को स्वप्न होताहै, अरु तत्त्वके न जाननेवाले को तीनों अवस्था बिषे तुल्य निद्रा है । यहां स्वप्न अरु निद्रा बिषे तुल्यता के होनेसे ' विश्व अरु तैजस, इन दोनों को एकराशि (कोटि) पना है । अरु तिन बिषे अन्यथा ग्रहण से अरु प्रधान (मुख्य) होनेसे गुणरूप निद्रा है अरु विपर्यास स्वप्न है । अरु तृतीयस्थान । द्वितीयकोटि । प्राज्ञ बिषे तो तत्त्व का अज्ञानलक्षणरूप निद्राही केवल विपर्यासहै । एतदर्थ " विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते " ' विपर्यास के क्षीणहुए तुरीयपद को पावता है ' अर्थात् उन कार्य अरु कारणरूप उभय स्थानों के अन्यथा ग्रहण अरु अग्रहण लक्षणमय कार्य कारण से बद्धरूप विपर्यास के ' परमार्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्व के प्रतिबोध करके, क्षीण (विनाश) हुए तुरीयपद को पावता है। अर्थात् जब उक्त प्रकार का विपर्यास नाश होता है तब तिस तुरीया बिषे उभय प्रकार के बन्ध के रूप को न देखता (अनुभवकरता) हुआ पुरुष तुरीया बिषे निश्चय को प्राप्त हुआ होता है ॥ १५ ॥

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते। अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥ १६ ॥

१६ हे सौम्य! [विपर्यय के नाश का हेतु तत्त्वज्ञान कब होता है? इस प्रकार प्रश्न करने की इच्छा के होने से कहते हैं] " अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते " (यह जीव अनादिमाया करके सोया है, सो जब प्रबोध पाता है) अर्थात् जो यह संसारी जीव है सो तत्त्व के अबोधमय बीजरूप अरु अन्यथा ग्रहण फलरूप, जो अनादि काल से प्रवर्त्तहुए उभय लक्षणवाले मायारूप स्वप्न, तिन करके "यह मेरा पिता है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा पौत्र है, यह मेरा क्षेत्र है, यह मेरा पशु है, मैं इनका पोषक स्वामी हौं, दुःखी हौं, इनसे क्षय को पाया हौं, अरु इनसे वृद्धि को भी पाया हौं"। इत्यादि प्रकार के स्वप्नों को जाग्रत् अरु स्वप्न उभय स्थानों बिषे देखता हुआ। अनादि काल से। सोवता है। अरु " अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा "। (जब बोध को प्राप्त होता है तब ' अज है, अनिद्र है, अस्वप्न है, अद्वैत है, ऐसे जानता है,) अर्थात् सो। अनादि काल का सोयाहुआ जीव। जब वेदान्त के अर्थरूप तत्त्व के जाननेवाले परमदयालु आचार्य से " तू इन पुत्रादिकों का हेतु अरु फलरूप नहीं " किन्तु " तत्त्व मसीति "। सो (ब्रह्म) तू है। इस प्रकार श्रवण करके प्रबोध को प्राप्त होता है, । अर्थात् सहस्रावधि माता पिताओं से अधिक जीवों पर परम कृपा करके, इस उक्त स्वप्न के जन्म मरणादि महान् दुःखों से ग्रसित देख आप आचार्य द्वारा होके " उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत "। इत्यादि अपने परम उदारवाक्यों से अज्ञान निद्रा से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जगाय पुनः कहती है कि हे सौम्य ! ' जैसे सर्वजाति के वृक्षों का रस माक्षिका के उदर में भेद से रहित, समान मधुभाव को प्राप्त होता है, तैसेही यह सर्व चिदाभास जीव सुषुप्ति अवस्था में समान एक बिम्बरूप चैतन्यभाव को प्राप्त होते हैं अरु जहां पुत्र पितादि वा ब्राह्मण क्षत्रियादि वा मनुष्य पशुआदि वा जड़ चैतन्यादि कोई भी भेदभाव विशेष रहता नहीं, अरु जहां को प्राप्त हुए विद्वान् पुनः जीवभाव बिषे आवते नहीं ' स आत्मा तत्त्वमसि ' सोई सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है, सोई आत्मा तू है ' इस प्रकार जब परमहितकारणी श्रुति महावाक्यों के लक्ष्यार्थ को जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ आचार्य द्वारा अपने वाक्यों से इन जीवों को ' जो अनादि काल से माया करके सोये हुए नाना प्रकार के जगत्रूप स्वप्नों को देखते जन्म मरणादिकों के महान क्लेशों को पावते हैं, जगायके सावधान करती है ' तब ऐसे जानता है । प्रश्न । कैसे जानता है ? उत्तर । इस आत्मा बिषे बाह्य (कार्य) अरु अन्तर (कारण) वा जन्मादि षट् भावविकार हैं नहीं । अतएव अजन्मा है, अर्थात् ' आत्मा ' बाह्य अन्तर सहित अरु ' बाह्य अन्तर के धर्मादि ' सर्व भावविकार करके वर्जित (रहित) है । अरु जिस करके इस आत्माबिषे जन्मादिकों की कारणरूपा अविद्या अरु अज्ञान स्वरूप बीजमय निद्रा नहीं, एतदर्थ यह अनिद्र है ' अर्थात् सर्वदा बोधस्वरूप है ' अरु जिस करके सो तुरीया अनिद्र ' अबोध रहित ' है, तिसही करके अस्वप्न है, क्योंकि अन्यथा ग्रहणरूप जो स्वप्न है सो अबोधरूप निद्रा के निमित्तवाला है ' अरु सो निद्रा तुरीय आत्मा बिषे है नहीं, अतएव तन्निमित्तक उक्त स्वप्न भी तिस बिषे नहीं । अरु जिस करके अनिद्र अरु अस्वप्न है, तिसही करके अजन्मा अरु अद्वैत है, इस प्रकार तुरीयरूप आत्मा को तब जानता है ' जब स्वस्वरूप बिषे जागता है ॥ १६ ॥

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्त्तेत न संशयः । मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१७ हे सौम्य ! । शङ्का । जब प्रपंचकी निवृत्ति से 'अद्वैत को जानता है, तब प्रपञ्च के अनिवृत्त हुए अद्वैत कैसे सिद्ध होता है, जहां ऐसी शङ्का है तहां कहते हैं, जो कि परमार्थ सेही प्रपञ्च विद्यमान होय तब उक्त प्रकार अद्वैत की असिद्धि होती है, यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु 'रज्जुबिषे सर्पवत्, कल्पित होने से सो । प्रपञ्च । विद्यमान नहीं, एतदर्थ अद्वैतही सिद्ध होताहै अरु "प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्त्तेत न संशयः" । "जो कदापि प्रपञ्च विद्यमान होय तो निवृत्त होय इसमें संशय नहीं" ? अर्थात् जो यह प्रपञ्च । स्वरूपसेही । विद्यमान होवे तो निवृत्त होवे । अर्थात् जो कदापि यह प्रपञ्च स्वरूपसेही विद्यमान होय तो इसकी निवृत्ति हुए अद्वैत सिद्ध होवे परन्तु । जैसे रज्जु बिषे भ्रान्ति बुद्धि करके कल्पित जो सर्प सो विद्यमान हुआ हुआ भी विवेक से निवृत्त होता है, एतदर्थ वस्तु से है नहीं । अर्थात् जैसे रज्जु बिषे सर्प तैसे आत्मा बिषे प्रपञ्च कल्पित होने से रज्जु के यथार्थ विवेक हुए उस प्रपञ्च के हुए हुए भी सत्यरूप रज्जुवत् एक आत्मतत्त्व ही सत्य अद्वैत होवे है, क्योंकि प्रपञ्च भ्रान्ति करके कल्पित है ताते, वा जिन को रज्जु का यथार्थ विवेक नहीं तिनको द्वैतरूप सर्प सत्यवत् हैं, परन्तु उस भ्रान्ति कालबिषे भी सर्प कल्पित होने से रज्जु अद्वैतही है, इस प्रकार अविवेक करके प्रपञ्चकी सत्य प्रतीतिकाल में भी 'प्रपञ्चको भ्रान्ति-मात्र होने से, आत्मा अद्वैतही है । इस प्रकार द्वैतरूप प्रपञ्च के होते भी अद्वैतही सिद्ध है । अरु जैसे मायावी पुरुष ने देखाई जो माया सो विद्यमान हुई हुई भी तिसके देखनेवाले पुरुष के नेत्रबन्ध के हुए निवृत्त होती है, क्योंकि वास्तव से है नहीं । तैसेही "माया मात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः" । "यह द्वैत मायामात्र है अरु परमार्थ से अद्वैत है" ; अर्थात् । जैसे रज्जु बिषे सर्प अरु मायावी बिषे माया । तैसे यह प्रपञ्च नामवाला द्वैत मायामात्र । भ्रान्ति करके कल्पित । है । अरु रज्जु अरु मायावीवत् परमार्थ करके अद्वैतही है । एतदर्थ कोई भी । अविवेकी को । प्रवृत्त हुआ वा । विवेकी को । निवृत्त हुआ । उभय प्रकार । प्रपञ्च है ही नहीं । इति सिद्धम् ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकल्पोविनिवर्त्तेत कल्पितो यदि केनचित् । उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥ १८ ॥

१८ हे सौम्य ! शङ्का । शास्ता (उपदेष्टा) शास्त्र, अरु शिष्य इस प्रकार का विकल्प (अद्वैत बिषे) कैसे प्रवृत्त होता है ? जहां ऐसी शङ्का है, तहां कहते हैं । समाधान । " विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केनचित् " (यदि विकल्प किसी करके कल्पित होय तो निवर्त होताहै ? अर्थात् विकल्प निवर्त होताहै जो किसी करके कल्पित होय तो । जैसे यह प्रपञ्च मायावी की माया अरु रज्जु बिषे सर्पवत् प्रबोध (यथार्थ ज्ञान) से पूर्व है । तैसे यह शिष्यादि भेद रूप विकल्प भी (तत्त्व के) प्रबोध (यथार्थज्ञान) के पूर्वही उपदेश के निमित्त है । याते " उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते " (यह वाद उपदेश के जानेहुए द्वैत है नहीं ? अर्थात् यह शिष्य शास्ता अरु शास्त्ररूप जो (व्यावहारिक) कथन है सो तत्त्वोपदेश से पूर्व है, अरु उपदेश के कार्यरूप ज्ञान के पूर्ण हुए परमार्थ तत्त्व के जानने से (पुनः उपदेशादि रूप (द्वैत है नहीं ॥ १८ ॥

उपनिषद् ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोधिमात्रम् । पादामात्रा मात्राश्चपादाअकारउकारोमकारइति ॥ ८ ॥

उपनिषदर्थ ॥

८ हे सौम्य ! [उक्त प्रकार तत्त्वज्ञान बिषे समर्थ उत्तम अ मध्यम अधिकारियों को अध्यारोप अरु अपवाद से पारमार्थिक तत्त उपदेश किया । अब तत्त्व के ग्रहण में असमर्थ कनिष्ठ अधिकारी आत्मा के ध्यानबिषे विधानार्थ आरोपदृष्टिको ही आश्रय करके श्रुति के चार मन्त्रों का व्याख्यान करते हैं] जो वाच्य की प्रधान वाला ॐकार चारपादवाला आत्मा है इस प्रकार व्याख्यान " सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रम् " (सो यह आत्मा अध्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, ॐकार है, अधिमात्र है? अर्थात् जो पूर्व ॐकार चारपादवाला आत्मा कहा, सो यह आत्मा अध्यक्षर है, अर्थात् वाचक की प्रधानता से अक्षर को आश्रय करके वर्णन किया है एतदर्थ अध्यक्षर कहते हैं। प्र०। पुनः सो अक्षर क्या है। उ०। तहां कहते हैं। सो अक्षर ॐकार है। अरु सो यह ॐकार पादों से विभाग पायाहुआ अधिमात्र है। अरु मात्रा को आश्रय करके वर्त्तता है ताते अधिमात्र है। शङ्का। ननु, आत्माही पादों से विभाग को पावता है, अरु मात्रा को आश्रय करके ॐकार स्थित होता है, ताते पादों से विभाग को प्राप्तहुए ॐकार का अधिमात्रपन कैसे है, जहां ऐसी शङ्का है, तहां कहते हैं, "पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति" ८ पाद हैं सो मात्रा हैं, मात्रा हैं सो पाद हैं, अकार, उकार, मकार यह तीन ॐकार की मात्रा हैं? अर्थात् आत्मा के जे पाद हैं सो ॐकार की मात्रा हैं, अरु जे ॐकार की मात्रा हैं सो आत्मा के पाद हैं। अतएव पाद अरु मात्रा की एकता से यह कथन विरुद्ध है, ताते कौनसी वो ॐकार की मात्रा है, जहां ऐसा प्रश्न है, तहां कहते हैं, अकार उकार अरु मकार, यह तीन ॐकार की मात्रा हैं ॥ ८ ॥

जागरितस्थानोवैश्वानरोऽकारः प्रथमामात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति हवै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

९ हे सौम्य! तहां [पादों के मध्य अरु मात्राओं के मध्य विश्व नामक भेद की अकाररूपता को सूचन करते हैं] विशेष का नियम करते हैं "जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारःप्रथमामात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति"। ९ जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो अकाररूप प्रथमा मात्रा है, व्याप्ति से वा आदिवाले होने से 'आप्नोति,' अर्थात् जो जाग्रत् स्थानवाला वैश्वानर है सो ॐकार की अकाररूप प्रथम मात्रा है। प्र०। किस तुल्यता करके दोनों की एकता है,। उत्तर। व्याप्ति से वा आदिवाले होने से। जैसे अकार से सर्व वाणी व्याप्त है "अकारो वै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्ववागितिश्रुतेः" ८ अकारही सर्व वाणी है ? इस श्रुति के प्रमाण से। अरु तैसेही वैश्वानर से जाग्रत् व्याप्त है । तथाच "तस्यहवैतस्यात्मनो वैश्वानरस्यमूर्द्धैवसुतेज, इत्यादि श्रुतिः" ८ तिस प्रसिद्ध इस वैश्वानररूप आत्मा का मस्तकही स्वर्ग है, इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से, वाच्य (नामी) वाचक (नाम) की एकता को हम कहते हैं "। आदिश्च भवति "। ८ आदिवाला होता है ? अर्थात् जिसकी आदि है, तिसको आदिवाला कहते हैं । अरु जैसे आदि । प्रथमता । वाला अकार नाम-वाला अक्षर है, तैसेही आदिवाला वैश्वानर है । एतदर्थ तुल्य होने से वैश्वानर को अकारपना है ॥ अब तिन । अकार अरु वैश्वानर । की एकता के ज्ञाता के अर्थ फल कहते हैं "। हवैसर्वान्कामान् 'आप्नोति, य एवं वेद "। ८ जो ऐसे जानता है सो निश्चय करके सर्व कामों को पावता है ? अर्थात् जो वैश्वानर अरु अकार की उक्त प्रकार एकता को जानता है सो निश्चय करके सर्व भोगों को पावता है, अरु सो "। आदि श्च भवति "। ८ प्रथम होता है ? अर्थात्, ज्येष्ठ श्रेष्ठों के मध्य प्रथम (मुख्य) होता है ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजसउकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति यएवं वेद ॥ १० ॥

१० हे सौम्य ! [अब द्वितीयपाद अरु द्वितीयमात्रा की एकता को कहतेहैं] "स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीयामात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वा ८ स्वप्नस्थानवाला तैजस उकाररूप द्वितीया मात्रा है, उत्कर्ष से वा उभयरूप होनेसे ? अर्थात् जो । द्वितीय । स्वप्न स्थानवाला तैजस है सो ओंकार की उकाररूप द्वितीया मात्रा है । प्रश्न । किस तुल्यता से दोनों की एकता है ? । उत्तर । उत्कर्षता से वा द्वितीयरूप है तातें जैसे पाठ के क्रम से अकार से उकार उत्कृष्ट है । अर्थात् प्रणव के उ च्चार करने में अकार ह्रस्व है उकार दीर्घ है, तातें अकार से उकार उत्कृष्ट है । तैसेही स्थूल उपाधिवाले विश्व से सूक्ष्म उपाधिवाला

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैजस उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) है ।' अर्थात् स्थूलभूतरूप उपाधिवाले स्थूल देह की अपेक्षा सूक्ष्म अपञ्चीकृत भूतोंरूप उपाधिवाला सूक्ष्मदेह अविनाशि है, एतदर्थ विश्वसे तैजस उत्कृष्ट है ' तिस उत्कर्षसे उन ' उकार अरु तैजस ' की एकता है । अथवा जैसे अकार अरु मकार के मध्य बिषे स्थित उकार है, तैसेही विश्व अरु प्राज्ञ के मध्य बिषे स्थित तैजस है, एतदर्थ उनकी उभयरूपता की तुल्यता से एकता है। अब उनकी एकता के जाननेवाले विद्वान् को जो फल प्राप्त होता है सो कहते हैं। "उत्कर्षति हवै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद" ' जो ऐसे जानता है सो ज्ञान सन्तति को बढ़ावता है अरु समान होता है अरु इसके कुल बिषे अब्रह्मवित् होता नहीं ' अर्थात् जो उक्त प्रकार उकार अरु तैजस की एकता को जानता है ' सो विद्वान् अपने पुत्र वा शिष्यवर्गों में ' ज्ञानसंततिको बध्यमान करता है, अतएव उसके कुल (पुत्रों वा शिष्यों) में अब्रह्मवेत्ता (ब्रह्मका न जाननेवाला)कोई होता नहीं । अरु पुनः वो समान होता है, अर्थात् मित्र के पक्षवत् शत्रु के पक्ष में भी द्वेषकरता नहीं । उभय में समभाव ही रखता है ॥ १० ॥

सुषुप्तस्थानःप्राज्ञोमकारस्तृतीयामात्रा । मितेरपीतेर्वा मिनोतिहवाइदꣳसर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद॥११॥

११ हे सौम्य ! [अब तृतीय पाद अरु तृतीय मात्रा की एकता को कहते हैं] "सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा, मितेरपीतेर्वा" ' सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ मकाररूप तृतीयामात्रा है, परिमाण से वा एकता से ' अर्थात् जो सुषुप्तिस्थानवाला प्राज्ञ है सो ॐकार की मकाररूपा तृतीया मात्रा है । प्रश्न । किस तुल्यता करके दोनों की एकता है। उत्तर । परिमाण से वा एकता से । यहां इस प्रकार इन प्राज्ञ अरु मकारमात्रा ' दोनों की एकताहै, प्रस्थ (धान्यके परिमाण 'मापने' के पात्र) से यव धान्यादिक अन्न के परिमाण (माप) करु, जैसे लय अरु उत्पत्तिबिषे प्रवेश अरु निकलने से । अर्थात् लय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिषे प्रवेश अरु उत्पत्तिबिषे निकलने से । प्राज्ञ करके विश्व अरु तैजस परिमाण किये (मापे) वत् होते हैं । तैसेही अकार अरु उकार, यह दोनों अक्षर, ॐकार के उच्चार की समाप्ति बिषे अरु पुनः उच्चार के प्रारम्भ बिषे मकार में प्रवेश करके निकलेहुएवत् होतेहैं । अर्थात् ॐकार के उच्चारण करते प्रथम अकार निकलता है सो उकार के उच्चारण हुए उकार में लयहुएवत् होता है अरु अन्त के मकार के उच्चारणहुए वो उकार मकार में लयहुएवत् होता है, इस प्रकार अकार उकार दोनों अक्षर ॐकार के उच्चार की समाप्ति बिषे मकार में प्रवेशहुएवत् होते हैं । अरु पुनः ॐकार के उच्चार के प्रारम्भ में वे दोनों अक्षर 'अ, उ, मकार से निकले हुएवत् होते हैं । ताते सो । अकार अरु उकार । मकार करके परिमाण किये (मापे) वत् होतेहैं । एतदर्थ तिन । प्राज्ञ अरु मकार । दोनों की तुल्यता से एकता है । अथवा जैसे ॐकार के उच्चा किये मकाररूप अन्तिम अक्षर बिषे अकार अरु उकार यह दोनों एक रूप हुएवत् होतेहैं, तैसे सुषुप्तिकाल बिषे विश्व अरु तैजस प्राज्ञ बिषे एकहुएवत् होतेहैं । एतदर्थ तुल्य होने से प्राज्ञ अरु मकार की एकता है । अब तिन । प्राज्ञ अरु मकार । की एकता के जाननेवाले विद्वान् को जो फल प्राप्त होता है सो कहते हैं । "मिनोति हवाइदꣳ सर्वं मपीतिश्च भवति य एवं वेद" (जो ऐसे जानता है सो सर्व को जानता जगत् का कारण होता है ; अर्थात् जो उक्त प्रकार प्राज्ञ अरु मकार-मात्रा को एक करके जानता है सो । कारण का ज्ञाता होने से, सर्व को जानता है । अर्थात् प्राज्ञ अरु मकार की एकता का जाननेवाला निश्चय करके इस । कार्यकारणात्मक समस्त । जगत् को यथार्थ जानता है, अरु आप 'प्राज्ञरूप मकारमात्रा का ज्ञाता (अभेदोपासक) होने से । जगत् के कारण भाव को प्राप्त होता है ॥ यहां [एकता के ज्ञान बिषे फल के भेद के कथन से उपासना का भेद होगा, यह आशङ्का करके साधनों बिषे फल के भेद की श्रुति के अर्थ वादपने को अङ्गीकार करके कहे हैं] अवान्तर फल का जो कथन है सो मुख्य साधन की स्तुत्यर्थ है ॥ ११ ॥ हे सौम्य ! यहां जो 'विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पादों की क्रमशः अकार, उकार, मकार, इन मात्राओं के साथ एकता कही है तहां तिनके साथ में जाग्रदादि स्थानों की भी एकता चिन्तनीय है, इसका विचार इस ग्रन्थ के अन्त में प्रकाशित करेंगे॥

गौडपादीयकारिकाः॥

विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्। मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेव च॥ १९॥

गौडपादीयकारिकार्थ॥

१९ हे सौम्य! [पादों का अरु मात्राओं का जो सनिमित्त के एकत्व चार मन्त्रों करके श्रुति ने कहा, तिसविषयक पूर्ववत् श्रुत्यर्थ के वर्णनरूप गौडपादाचार्यकृत षट् श्लोकन को प्रकट करते हैं] "गौडपादीयश्लोकाः" ८अत्रैते श्लोका भवन्ति> ८यहां यह 'गौडपादाचार्यकृत श्लोक, (मन्त्र) होते हैं; "विश्वस्यात्वविवक्षायामादिसामान्यमुत्कटम्" ८विश्व के कहने की इच्छा के हुए आदिपने की तुल्यता श्रेष्ठ देखते हैं; अर्थात् विश्व के अकारमात्रा रूपपने के कहने की इच्छा के हुए, अर्थात् विश्व का अकारमात्रारूपपना जब कथन करने को इच्छित होय, तब उक्त न्याय से आदिपने की तुल्यता श्रेष्ठ देखते हैं। अरु "मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादाप्तिसामान्यमेवच" ८मात्रा के निश्चय बिषे व्याप्ति की तुल्यताही श्रेष्ठ है; अर्थात् मात्रा की एकता बिषे कहिये विश्व का अकारमात्रापना, वा मात्रा की विश्वरूपता, जब निश्चय करते हैं तब। उस एकता के निश्चय बिषे। व्याप्ति की तुल्यता ही श्रेष्ठ है॥ १९॥

तैजसत्वस्य विज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम्। मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तथाविधम्॥ २०॥

२० हे सौम्य! "तैजसत्वस्य विज्ञाने उत्कर्षो दृश्यते स्फुटम्" तैजस के ज्ञान बिषे उत्कर्षरूपता स्पष्ट दीखती है; अर्थात् तैजस के उकारमात्रापने के ज्ञान बिषे, अर्थात् तैजस के उकाररूप मात्रा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पने के कहने की इच्छा के होने से । तिस कथनार्थ । उक्तप्रकार तुल्यता स्पष्ट देखते हैं । अरु " मात्रासम्प्रतिपत्तौ स्यादुभयत्वं तद्विधम् " ' मात्रा के निश्चय बिषे तिसही प्रकार का उभयपना कहिये 'द्वितीयपना, स्पष्टही है । और सर्व पूर्व श्रुति के दशवेंमन्त्र के भाष्य में कहे प्रमाण जानलेना ॥ २० ॥

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् । मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेवच ॥ २१ ॥

२१ हे सौम्य ! " मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् " ' प्राज्ञ के मकार भाव बिषे मानकी समता श्रेष्ठ है ; अर्थात् प्राज्ञ के मकार मात्रारूप भाव (होने) बिषे मान (परिमाण वा माप) की तुल्यता ही श्रेष्ठ है । अरु " मात्रासम्प्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेवच " ' मात्रा के निश्चय बिषे तो लय की तुल्यता ही श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ इस का विशेषार्थ मूल श्रुति के एकादशवें मन्त्र के भाष्य में कहे प्रमाण जानना ॥

त्रिषु धामसु यत्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चितः । सम्पूज्यः सर्वभूतानां वन्द्यश्चैष महामुनिः ॥ २२ ॥

२२ हे सौम्य ! " त्रिषु धामसु यत्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चितः " ' तीन धामों बिषे जो तुल्यसमता को निश्चय को पायासता जो जानता है ; अर्थात्, उक्तप्रकार के ' जाग्रत्, स्वप्न अरु सुषुप्तिरूप तीनों स्थानों बिषे जो तुल्य समता कही है, तिसको ' यह समता इस प्रकारही है, ' इसमें संशय नहीं ' इस प्रकार निश्चय को प्राप्त हुआ जो जानता है सो " सम्पूज्यः सर्वभूतानां वन्द्यश्चैष महामुनिः " ' सर्वभूतों करके सम्यक् प्रकार पूजनेयोग्य, वन्दना करने योग्य महामुनि होता है ; अर्थात् जो उक्त प्रकार अकारादि तीनमात्रा अरु विश्वादि तीन पाद, इनकी अभेदता को निश्चयपूर्वक यथार्थ जानता है, सो विद्वान् इस लोक में सर्व प्राणियों करके पूजने (मान्यदेने) अरु वन्दना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(नमस्कारादि) करने योग्य महामुनि (आत्मवेत्ता) होवै है ॥२२॥

अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्। मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः॥ २३॥

२३ हे सौम्य! अब [पूर्वोक्तपाद अरु मात्राओं की समता के ज्ञानवाले ध्याननिष्ठ के फल को कहते हैं] "अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्" 'अकार विश्व को प्राप्त करता है, अरु उकार तैजस को प्राप्त करता है'; अर्थात्, उक्त प्रकार की तुल्यता से आत्मा के 'विश्वादि' पादों की, 'अकारादि' पादों के साथ एकता को करके 'अर्थात् ॐकार के वाचकपने अरु लक्ष्य वाच्य की एकता को निश्चय करके' पुनः उक्त प्रकार के ॐकार को सम्यक् प्रकार जानके जो ध्यावता 'ध्यान करता' है तिसको, अकार जो है सो विश्व के अर्थ प्राप्त करता है। अर्थात् अकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार को जाननेवाला पुरुष वैश्वानर के भाव को प्राप्त होता है। अरु तैसे ही उकार भी तैजस के अर्थ प्राप्त करता है। अर्थात् उकाररूप आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार का जाननेवाला विद्वान् हिरण्यगर्भ के पद को प्राप्त होता है। अरु "मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रेविद्यतेगतिः" 'पुनः मकार प्राज्ञ के' अर्थ प्राप्त करता है, अमात्र बिषे गति विद्यमान नहीं'; अर्थात् उकार की गति के पश्चात् मकाररूप मात्रा के आलम्बन (प्रधानता) वाले ॐकार का जाननेवाला विद्वान् अव्याकृत भाव को प्राप्त होता है। अरु [अब यहां तो पादों का अरु मात्राओं का विभाग है नहीं। अरु तिस ॐकाररूप तुरीय आत्मा बिषे स्थित हुए पुरुष को, प्राप्त होनेवाला, अरु प्राप्त होने योग्य, अरु प्राप्ति इस तीनोंरूप त्रिपुटी का विभाग है नहीं। इस प्रकार कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि 'स्थूलप्रपञ्चजाग्रदवस्था, अरु विश्व अभिमानी यह तीन अकारमात्रारूप हैं। अरु सूक्ष्मप्रपञ्च, स्वप्नावस्था, तैजस अभिमानी, यह तीन उकार मात्रारूप हैं। अरु स्थूल सूक्ष्म उभय प्रपञ्चोंका कारण, सुषुप्ति अवस्था, प्राज्ञ अभिमानी, यह तीन मकार मात्रारूप हैं। अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिन मात्राओं में पूर्व पूर्व मात्रा उत्तर उत्तर मात्रा के भाव को प्राप्त होती हैं। अर्थात् स्थूल अकार मात्रा सूक्ष्म मकार मात्रा के भाव को, क्योंकि स्थूल का कारण सूक्ष्म है । अरु सूक्ष्म उकार मात्रा सर्व के कारण मकार मात्रा के भाव को, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म सर्वकार्यों को अपने कारण भाव की प्राप्ति होती है, इस प्रकार पूर्व पूर्वमात्रा उत्तरोत्तर मात्रा के भावको प्राप्त होती हैं । सो इस प्रकार सर्व ॐकारमात्र है, इस प्रकार से ॐकार का ध्यान करके स्थित हुए, अरु जो एतावन्त काल पर्यन्त ॐकाररूप से ज्ञात करी वस्तु, शुद्ध ब्रह्मही है । इस प्रकार आचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुए ज्ञान करके मकारपने से ग्रहण किये, जो पूर्वोक्त सर्व विभागोंका निमित्त अज्ञान तिसके क्षय होनेसे शुद्धब्रह्म बिषे स्थित हुए पुरुष की कहीं भी गति कहिये गमन सम्भवे नहीं, क्योंकि देश कालादिकों के परिच्छेदके अभाव से व्यापकता प्राप्त होनेसे] मकार के क्षयहुए बीजभाव के अभाव से अमात्ररूप ॐकार बिषे । प्राप्त हुए को कहीं भी गति । लोकान्तर को गमन । नहीं ॥ क्योंकि "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ८ ब्रह्म का जाननेवाला 'व्यापक' ब्रह्मही होताहै ॥ २३ ॥

उपनिषद् ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

इति माण्डूक्योपनिषन्मूलमन्त्राः समाप्तिङ्गताः ॥

ॐ तत्सत् ॥

उपनिषदर्थ ॥

१२ हे सौम्य ! [ॐकार का स्फुरणरूप जो प्रत्यक् चैतन्य है । अर्थात् ॐकार के स्फुरण से लक्षित लक्ष्यरूप प्रत्यक् चैतन्य है । हे तिनमात्रावाले अध्यस्त (कल्पित) ॐकार के साथ तादात्म्यता ॐकार नाम से कहाजाताहै । तिसकी "अमात्रः" ८ अमात्र है' इत्यादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप यह बारहवीं संख्यावाली श्रुति के मन्त्र करके परब्रह्म के साथ एकता, कहने को इच्छित है, तिसको प्रकट करके व्याख्यान करते हैं] "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यःप्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव" "अमात्र है, चतुर्थ है, अव्यवहार है, प्रपञ्च के उपशमवाला है, शिव है, अद्वैत है, ऐसे, ॐकार आत्माही है, ;" अर्थात् नहीं है मात्रा जिस की ऐसा जो । लक्ष्य रूप । ॐकार सो अमात्र है, अरु चतुर्थ कहिये तुरीयरूप हुआ केवल आत्माही है, अरु वाचक अरु वाच्यरूप जो वाणी अरु मन तिनको 'मूलाज्ञान के क्षयहुए, क्षीण होनेसे व्यवहार करने को अयोग्य हुआ । आत्मा अव्यवहार्य है । अरु प्रपञ्च के उपशमवाला होने से । अर्थात् सकारण प्रपञ्च के उपशम हुए आत्मा प्रकट भान होता है ताते प्रपञ्च के उपशमवाला है, वा अद्वैत आत्मा के सम्यक् ज्ञान होने से प्रपञ्च उपशम भावको प्राप्त होताहै ताते प्रपञ्चके उपशम-वाला है । उसको प्रपञ्चोपशम, इस विशेषण से कहते हैं। अरु शिव (कल्याणस्वरूप है) अरु अद्वैत है । अर्थात् जिस एक संख्या की प्रतियोगी दो संख्या हैं अरु जो दो संख्या की प्रतियोगी एक संख्या है तिनसे रहित, अर्थात् एक अरु दो, यह जो संख्या है सो सापेक्षिक अरु सम विषम भाववाली है, अरु आत्मा है सो सापेक्षता अरु सम विषम भावसे रहित होनेसे सर्व संख्यातीत अद्वैतहै, वा संख्याबद्ध परिच्छिन्नता से रहित होने करके सर्व संख्यातीत अद्वैत है । ऐसे उक्त प्रकार के । ॐकार के लक्ष्य आत्मा के । ज्ञाता पुरुष करके उच्चारण किया हुआ ॐकार । वाचक वाच्य की अभेदता से । तीनमात्रावाला अरु तीन पाद-वाला । एक । आत्माही है । हे सौम्य ! यहां एक यह भी विचार है कि जैसे रज्जु बिषे अध्यस्त जे सर्पवत् सर्परूप अरु तिसका नाम सर्प, यह दोनों नाम नामी की रज्जु के अज्ञान में एकता है, अर्थात् उस अध्यस्त सर्प का नामरूप दोनों रज्जु के अज्ञान से कल्पित होने करके उस अज्ञान में दोनों की एकता है। अरु रज्जु के ज्ञान हुए उन दोनों की कल्पित होने से उनकी असत्यता में एकता है। अरु रज्जु के ज्ञान हुए उस कल्पित सर्प के नामरूप का परिणाम सत्य रज्जुरूप है, क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसकी रज्जुसे पृथक् सत्ता का अभाव है ताते । अरु जो जिसकी अन्त
स्थिति है सोई उसकी आद्यस्थिति है, अरु जो आद्यन्तःस्थिति है
सोई उसकी वर्त्तमान स्थिति है । तथाच " आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त
मानेपि तं तथा " " अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि प्रमाण से । अ
र्थात् रज्जु बिषे भासमान जो सर्प सो भ्रान्तिकाल से पूर्व द्वैत के अभा
से रज्जुरूप है अरु भ्रान्ति के निवृत्तिकाल में भी वो अपनी पृथक् सत्
के अभाव से रज्जुरूप है अरु भ्रान्तिकाल में जो अपने नामरूपसहि
जो इतरवत् भासता है सोई भ्रान्ति है नतु ' सर्प, दण्ड, जलधार
भूदरार, इत्यादि नामरूप से एक रज्जु ही सुशोभित है, अरु तिस वि
जो सर्पादिकों का कथन व्यापार है सो " वाचारम्भणं विकारो नाम
धेयं " इत्यादि श्रुतिप्रमाण से वाचारम्भणमात्रही है । हे सौम्य ! इ
दृष्टान्त के विचारप्रमाणही दृष्टान्तभूत अमात्रिक निर्विशेष तुरीयरू
आत्माबिषे भी विश्वादि तीनोंपाद अरु अकारादि तीनोंमात्रा का विचा
जानना । अरु " संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं यएवं वेद यएवं वेद " जो
ऐसे जानता है सो अपने आत्मरूप से अपने परमार्थरूप आत्मा वि
सम्यक् प्रकार प्रवेश करता है, यहां जो । 'यएवं वेद, दोबार कहाहै सो
उपनिषद् की परिसमाप्ति के अर्थ है ? अर्थात् जो उक्त प्रकार । अमा
त्रिक चतुर्थ तुरीय आत्मा को । जानता है सो अपनेही आत्मा । विश्व
भासरूप । से अपने परमार्थरूप । प्रत्यक् चैतन्य साक्षी । आत्मा वि
सम्यक् प्रकार प्रवेश को पावता है । अर्थात् सुषुप्ति नामवाले तृतीय
स्थानरूप बीजभाव को । जो क्रमशः वा विनाही क्रमशः जाग्रत स्व
स्थान द्वयरूप अंकुरोत्पत्ति का कारण स्थानरूप बीज को, चतुर्थ अमा
त्रिक तुरीय आत्मा के । सम्यक् ज्ञानरूप अग्नि से दग्ध करके परमा
दर्शी आत्मवेत्ताओं के आत्मा बिषे प्रवेश को पाय पुनः जन्म को पावत
नहीं । अर्थात् जैसे अंकुरद्वय के उत्पत्ति के स्थानरूप कारण बीज
दग्धहुए बीजान्तर जो एक महासूक्ष्म सत्ता है सो अंकुर भावपूर्वक द्व
भाव को प्राप्त होती नहीं, तैसेही स्थूल सूक्ष्म शरीरद्वयरूप अंकुर
उत्पत्ति का कारण स्थान अविद्यात्मक सुषुप्तिरूप बीज के, स

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानाग्नि करके दग्ध हुए 'बीजान्तर सूक्ष्म सत्तावत्, सुषुप्तिरूप बीजान्तर तद्विशिष्ट जो चिदाभास जीवसत्ता है सो उक्त अग्निद्वारा उक्तबीज के सम्यक्प्रकार दग्ध हुए पुनः स्थूल सूक्ष्म शरीरद्वयात्मक अंकुरभावपूर्वक संसाररूप वृक्षभाव को प्राप्त होता नहीं। क्योंकि तुरीया को मूलाज्ञान के दग्ध हुए। अबीजरूपता होती है ताते। जैसे रज्जु अरु सर्प के विवेक के हुए रज्जु बिषे प्रवेश को पाया जो सर्प, सो पुनः तिन रज्जुसर्प। के विवेकी पुरुष को भ्रान्ति ज्ञान के संस्कार से पूर्ववत् उदय। होता नहीं। क्योंकि उस विवेकी पुरुष को भ्रान्तिज्ञान का कारण अज्ञानरूपबीज। जोकि सर्परूप अंकुर अरु तज्जनित भयादिरूप वृक्षोत्पत्ति का निमित्त है, सम्यक् विवेक रूप अग्नि से दग्ध होता है ताते। तैसे यहां भी जानना। अरु साधक भाव को प्राप्त हुए, सत्मार्ग में वर्तनेवाले, अरु मात्रा अरु पादों की सम्यक्प्रकार निश्चित एकता के जाननेवाले, ऐसे जे मन्द मध्यम बुद्धिवाले संन्यासी हैं, तिनको तो उक्त प्रकार मात्रा अरु पादों की अभेदता से। यथार्थ उपासना किया ओंकार "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्, एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से। ब्रह्म की प्राप्ति (क्रममुक्ति) के अर्थ। अर्थात् केवल प्रणवोपासना का मध्यमाधिकारी संन्यासी को उक्त प्रकार यथार्थ त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना से ब्रह्मलोक की प्राप्तिरूप आवान्तर फलहोयवहां ब्रह्माद्वारा अमात्रिक तुरीय आत्मा का सम्यग्ज्ञान होने से कैवल्य मोक्ष की प्राप्तिहै। परम आलम्बन है। तैसे अग्रिम कहेंगे "आश्रमास्त्रिविधा हीना इत्यादि" ॥ १२ ॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषन्मूलमन्त्रभाषाभाष्यं समाप्तम् ॥

ॐतत्सद्धरिःॐ ॥

गौडपादीयकारिकाः ॥

ॐकारं पादशो विद्यात् पादा मात्रा न संशयः।
ॐकारं पादशो ज्ञात्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गौडपादीयकारिकार्थ ॥

२४ हे सौम्य ! "पूर्ववदत्रैते श्लोका भवन्ति" ८ पूर्ववत् यहां ये (गौडपादाचार्यकृत) श्लोक होते हैं ? [जैसे पूर्व गौडपादाचार्य ने श्रुत्यर्थ के प्रकाशक श्लोक रचे हैं, तैसे पश्चात् भी उक्त आचार्यकृत श्लोक श्रुत्यर्थ बिषे संभवे हैं, यह कहते हैं] "ॐकारं पादशो विद्यात् पादा मात्रा न संशयः" ८ पादही मात्रा हैं, अरु मात्राही पाद हैं, यामें संशय नहीं, ॐकार को पादों से जानना ; अर्थात् उक्त प्रकार की तुल्यता से (विश्वादि) पादही मात्रा हैं, अरु (अकारादि मात्रा ही पाद हैं, इस विषय में कुछ भी संशय नहीं, अरु ॐकार (आत्मा) पादों करके ही जानना । अरु "ॐकारं पादशो ज्ञात्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्" ८ ॐकारको जानके कुछ भी चिन्तन करना नहीं ; अर्थात् ॐकार (तुरीय) को पादों से (विश्वादि पादों की विशेषता से) जानके (निर्विशेष आत्मा को अनुभव करके) दृष्ट अर्थ रूप (इस लोक के विषय) अरु अदृष्ट अर्थरूप (परलोक के विषय) प्रयोजन को चिन्तन करना नहीं क्योंकि (सर्वरूप से एक ॐकार आत्माही है इस प्रकार का जानने वाला) कृतार्थ, (ज्ञातज्ञेय) होताहै तातें ॥ २४ ॥

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् । प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥ २५ ॥

२५ हे सौम्य ! [ॐकार के ध्यान बिषे कुशल पुरुष को सर्वद्वैत के अपवाद करनेवाले ॐकार के सम्यक् ज्ञान से ही कृतार्थता होती है इस प्रकार कहा । अब तिस ॐकारके ज्ञानसे रहित अरु परके उपदेश मात्र को आश्रय करनेवाले पुरुषके अर्थ ध्यान की कर्तव्यता कहते हैं] "युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्" ८ ॐकार निर्भयरूप ब्रह्म है, ॐकार बिषे चित्त को लगावना ; अर्थात् जिस करके ॐकार निर्भयरूप ब्रह्म है, तिस करके व्याख्यान किये परमार्थरूप ॐकार बिषे चित्तको लगावना । अरु "प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित्" ८ प्रणव बिषे नित्ययुक्त को भय कहीं भी नहीं ; अर्थात् जो ॐकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषे नित्ययुक्त पुरुष को। अर्थात् ॐकार का सर्वदा विधि से उच्चारण रूप जपके, वा पद अरु मात्रा की एकता के विचार के, वा अन्तर अनहद ध्वनि के साधन करनेवाले पुरुष को भय कहीं भी नहीं। क्योंकि "विद्वान्न बिभेति कुतश्चनेति श्रुतेः" विद्वान् (प्रणव के लक्ष्यतुरीय आत्मा का यथार्थ अनुभवी) किसी से भी भय को पावता नहीं, यह श्रुति का प्रमाण है॥ २५॥

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः। अपूर्वोऽनन्तरो बाह्यो न परः प्रणवोऽव्ययः॥ २६॥

२६ हे सौम्य! [ॐकार जो है सो परब्रह्म अरु अपर ब्रह्मरूप से क्रम करिके मध्यम अरु मन्द अधिकारियों के ध्यान की योग्यता को प्राप्त होताहै? ऐसे श्लोक के पूर्वार्द्ध का व्याख्यान करतेहैं] "प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः" ॐकारही अपरब्रह्म है, ॐकार परब्रह्म कहा है? [उत्तमाधिकारी को तो सर्वभेद से रहित एकरस प्रत्यगात्मरूप जो ब्रह्म है, तिस रूप करके ॐकार सम्यक् ज्ञानद्वारा पावने के योग्य होता है, इस प्रकार श्लोक के उत्तरार्द्ध का विभाग करते हैं] अरु "अपूर्वोऽनन्तरो बाह्यो न परः प्रणवोऽव्ययः" ॐकार अपूर्व है, अनन्तर है, अबाह्य है, अनपर है, अव्यय है? अर्थात् ॐकार ही परमात्मा ब्रह्म है, अतएव इसका कारण कोई भी न होनेसे यह अपूर्व है। अरु इस को भिन्नजातिवाला कुछ भी अन्तर नहीं। सर्वाधिष्ठान होने से। ताते अनन्तर है। अरु इससे बाह्य अन्य वस्तु नहीं अतएव अबाह्य है। अरु इसको कार्यता नहीं ताते अनपर है। अरु इसका नाश नहीं ताते अव्यय है "सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः" "सैन्धवघनवदिति श्रुतेः" इत्यर्थः॥ २६॥

सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैव च। एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदनन्तरम्॥ २७॥

२७ हे सौम्य! "सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमान्तस्तथैव च" सर्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का आदि मध्य पुनः तैसेही अन्त ॐकार है ; अर्थात् जैसे माया
(किसी शिल्पी आदि मायावी रचित (हस्ति, रज्जु का सर्प, मृगतृ
का जल, अरु स्वप्नके पदार्थादिकों का जो केवल भ्रान्तिमात्र अध्य
हैं (आदि मध्य अरु अन्त, मायावी रज्जु ऊषर आदिक अधिष्ठान
(अर्थात् जो वस्तु अध्यस्त (कल्पित) भ्रान्तिमात्र होती है, तिस
आदि, अन्त, मध्य, अधिष्ठानरूप ही होता है (तैसेही मिथ्या (भ्रान्ति
मात्र) उत्पन्न हुए आकाशादिक सर्व प्रपञ्च का ' आदि, मध्य, अरु
ही अन्त, एक ॐकार (तुरीय आत्मा (ही है, (अर्थात् जैसे
काश में जो नीलिमा की भ्रान्ति (कि आकाश से इतर नीलिमा
वस्तु है, तिस भ्रान्तिकाल के पूर्व वो नीलिमा आकाशरूप है,
उस कल्पित नीलिमा की आदि आकाश है, अरु आकाश अरु
बिषे अध्यस्त नीलिमा तिनका जब यथार्थ विवेक होता है तब
अध्यस्त नीलिमा का परिणाम आकाशरूप होने से उस नीलिमा
अन्त भी आकाशरूप है, अरु जब वो नीलिमा अपने आदि अन्त
आकाशरूप है तब अपनी पृथक्सत्ता के अभाव से अपने भ्रान्तिक
से वर्त्तमान काल में भी आकाशरूप है ताते उसका मध्य भी आका
रूप है, इस प्रकार आकाश में अध्यस्त नीलिमा तीनों काल अध्यस्त
रूप है, तैसेही आकाशादि सर्व प्रपञ्च एक चैतन्य आत्मा बिषे अध्यस्त
होने से तीनों काल सोई रूप है (अरु " एवं हि प्रणवं ज्ञात्वा व्यश्नु
तदनन्तरम् " (ऐसेही ॐकार को जानके तिसके अनन्तर प्राप्त होत
है ; अर्थात् ऐसेही मायावी रज्जु आदिक स्थानी ॐकार (तुरी
आत्मा) को जानके तिसके अनन्तर (तिसही क्षणसे) तिस परमा
वस्तु के आत्मभाव को प्राप्त होताहै " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " ॥ २७ ॥

**प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम् । सर्व
व्यापिनमोंकारं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २८ ॥**

२८ हे सौम्य ! " प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम्, सर्व
व्यापिनं " (सर्वके हृदय बिषे स्थित ईश्वररूप ॐकार को सर्वव्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानना ? अर्थात् सर्व प्राणियों के समूह के स्मरणरूप वृत्तिके आश्रय हृदय बिषे स्थित ईश्वररूप ॐकार को "आकाशवत् सर्वव्यापी जानना। अरु "ॐकारं मत्वा धीरो न शोचति" ८ धीर पुरुष ॐकार को मानके शोचता नहीं ? अर्थात् । सर्व प्राणियों के हृदय बिषे आकाशवत् महा-सूक्ष्म चैतन्य सर्वव्यापी जो आत्मा तिसको । बुद्धिमान् पुरुष असंसारी । जाग्रदादि स्थान अरु तिनके धर्मादिकों से असंग अलिप्त, सदाशुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव । मानके शोच करता नहीं । क्योंकि उक्त प्रकारके आत्माविषयक जो अज्ञान सोई अपने बिषे जन्ममरणादि क्लेश से जन्य शोक का निमित्त तिसका आत्माके सम्यक् ज्ञानसे अभाव होताहै ताते । "तरति शोकमात्मविदिति" ८ आत्मवेत्ता शोक को तरता है ? ॥ २८ ॥

अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः। ॐकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः ॥ २९ ॥

इति माण्डूक्योपनिषदर्थाविष्करणपरायांगौडपादीयकारिकायां
प्रथममागमप्रकरणंपूर्णम्ॐतत्सद्धरिः ॐ ॥

---

२९ हे सौम्य ! [अब तुरीयभाव को प्राप्त हुए ॐकार को जो सम्यक् प्रकार जानता है तिसकी प्रशंसा करते हैं] "अमात्रोऽनन्तमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः" ८ अमात्र है, अनन्तमात्र है, उपशमरूप है, शिव रूपहै, ? अर्थात् । ॐकार का लक्ष्य । अमात्र (तुरीयपद) है, अरु जिस करके ॐकार का परिमाण कियाजाय ऐसा जो परिच्छेद, सो कहिये मात्रा । सो उक्त लक्षणवाली मात्रा हैं अनन्त जिसकी ऐसा जो ॐकार सो अनन्तमात्र है । अर्थात् इस आत्मा का एतनापना । यह आत्मा एतना है, इस प्रकार का एतनापना । परिच्छेद करनेको शक्य नहीं, अरु द्वैत का उपशमरूप है । अर्थात् सर्वद्वैतका उपशम आत्मरूप है । अरु ऐसा होनेसेही शिवरूप है । इस प्रकार व्याख्यान किया "ॐकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो जनः" ८ ॐकार जिस करके विदित हुआ है सो मुनि है इतर नहीं ? अर्थात् ॐकार जिसको सम्यक् प्रकार ज्ञात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ है सोई परमार्थ तत्त्व का मननकर्ता मुनि है, इससे इतरलोक मुनि नहीं ॥ २९ ॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषन्मूलसहितगौडपादीयकारिकाप्रथमाऽऽगमप्रकरणभाषाभाष्यंपूर्णम् ॐ तत्सद्धरिः ॐ ॥

ॐअथवैतथ्याख्यंद्वितीयंप्रकरणम् ॥

ॐवैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहुर्मनीषिणः। अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना ॥ १ ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायांवैतथ्याख्यद्वितीयप्रकरणंभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१ हे सौम्य ! [प्रथम प्रकरण बिषे आगम कहिये श्रुति तिसकी मुख्यता करके अद्वैत को प्रतिपादन करनेवाले आचार्य ने तिस (अद्वैत) के विरोधी द्वैत का मिथ्यापना । श्रुति के । अर्थ से कहा अब तिस । अद्वैत के विरोधी । द्वैत का मिथ्यापना । यद्यपि सर्व में प्रधान है श्रुति तिसके प्रमाण से कहा है, तथापि युक्ति की मुख्यता से भी । द्वैत का मिथ्यापना । जानने को शक्य है । इस प्रकार देखावने के अर्थ । अर्थात् विचारवानों के मध्य प्रकट करणार्थ । द्वितीय प्रकरण को प्रकट करतेहुए, आदि बिषे प्रपञ्च के मिथ्यापने में स्वप्न के दृष्टान्त की सिद्ध्यर्थ तिस स्वप्न के मिथ्यापने बिषे । अर्थात् जिस वस्तु को दृष्टान्त प्रमाण से, सत्य वा असत्य, सिद्ध करनी है, तहां प्रथम उस वस्तु के दृष्टान्त की, सत्यता वा असत्यता का सिद्ध करना अवश्य है एतदर्थ सर्व प्रपञ्च के मिथ्यापने के सिद्ध करने में दृष्टान्तप्रमाण जो स्वप्न तिसकी असत्यता की सिद्ध्यर्थ । युक्ति सहित वृद्धपुरुषों की संमति को कहते हैं] " ज्ञाने द्वैतं न विद्यत " इस । वाक्यवाले । पच्चीसवें श्लोक बिषे " एकमेवाद्वितीयम् " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से, जो पूर्वद्वैत का मिथ्यापना कहा, सो आगममात्र । अर्थात् श्रुति की प्रधान प्रामाण्यता से व्याप्त । है, युक्तिसे सिद्ध नहीं, परन्तु तिस शास्त्र करके ज्ञात हुए अर्थ । द्वैत के मिथ्यापने । बिषे युक्ति की प्राधान्यतासे भी द्वैत का मिथ्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पना जानने को योग्य है। क्योंकि प्रमाणों की आधिक्यता से निश्चय हुई वस्तु बिषे संशय रहे नहीं ताते द्वितीय प्रकरण का आरम्भ करते हैं "वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आहुर्मनीषिणः" (बुद्धिमान् स्वप्नवत् सर्व भावपदार्थों के असत्यपने को कहते हैं ; अर्थात् । प्रत्यक्षादि । प्रमाणों के ज्ञात करके कुशल जे श्रोत्रित्व अरु ब्रह्मनिष्ठत्व उन उभय लक्षणों करके युक्त । बुद्धिमान् पुरुष हैं सो । स्वप्न बिषे उपलभ्यमान (अनुभव किये जे बाह्य के घटादि सर्वपदार्थ, अरु अन्तर । अन्तःकरण के सुखादिक । सर्वपदार्थों के असत्यपने को कहते हैं । अरु तिनके असत्यपने बिषे हेतु को कहते हैं "अन्तःस्थानात्तु भावानां संवृतत्वेन हेतुना" (सर्वपदार्थों को ' शरीर के , मध्यरूपस्थान वाले होने से ; अर्थात् जिस करके स्वप्न बिषे हस्ति पर्वतादि सर्वपदार्थ । कि जिनका शरीर के भीतर समाना किसी प्रकार भी संभवे नहीं सो । शरीर के भीतर ही प्रतीत होते हैं; । ' उस अवस्था में, शरीर से बाहर नहीं, एतदर्थ सो सर्व (स्वप्न के पदार्थ) मिथ्या होने कोही योग्य हैं । शङ्का । ननु, अन्तर्गृहादिकों के भीतर प्रतीयमान घटादिकों के हुए, यह उक्त हेतु व्यभिचारी होवेगा, । यह आशङ्का करके । समाधान । कहते हैं । शरीरान्तर संकुचित स्थानवाले होनेरूप हेतुसे । अरु जो देहान्तर आवृत नाड़ियां हैं तिन बिषे पर्वत हस्ति आदिकों का सद्भाव नहीं अरु जब देह बिषेही पर्वतादिक नहीं तब देहान्तर्गत जो " ता वाअस्यैताहितानाम नाड्यो यथाक्लेशः स हस्रधा भिन्नस्तावताऽणिम्नातिष्ठन्ति, इत्यादि" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से ' खड़ेकेश के सहस्रवें भागप्रमाण अतिसूक्ष्म नाड़ियां ।जोकि स्वप्न-रूप भ्रान्ति दर्शन का स्थान है । हैं तिन बिषे पर्वत हस्ति आदि कहां से होवेंगे ' किन्तु कहींसेभी कदापि नहीं । अतएव स्वप्नके पदार्थ । अपने होनेयोग्य । देश (स्थान) से रहित होने से । अर्थात् जिन महा-सूक्ष्मनाड़ियों में स्वप्न होता है तिनमें बाह्यके परमाणु का भी प्रवेश बने नहीं तब बाह्य के पर्वत सागर वहां कैसे समायँगे किन्तु कदापि नहीं, ताते वहां स्वप्न के पदार्थों के होनेयोग्य स्थान के अभाव से । रज्जु सर्पादिकोंवत् असत्यही होने को योग्य हैं ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अदीर्घत्वाच्च कालस्य गत्वादेशान्न पश्यति । प्रीतिबुद्धश्च वै सर्वस्तस्मिन्देशेन विद्यते ॥ २ ॥

२ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, स्वप्नविषे देखनेयोग्य पदार्थों का शरीर के भीतर आवृत कहिये संकुचित 'तंग, स्थान है यह कथन असिद्ध है। क्योंकि पूर्व के देशों में सोया हुआ पुरुष उत्तर के देशोंविषे स्वप्नों को देखेहुएवत् देखता है । यह आशङ्का करके ' समाधान ' कहते हैं । पूर्वादिक के देशमें सोया हुआ पुरुष । शरीर से बाह्य । उत्तरादिकों के। अन्यदेशों में जायके स्वप्नों को देखता नहीं, किन्तु शरीर के भीतर ही । अर्थात् पूर्वदिशा के किसी एक देशविषे सोया पुरुष जो उत्तरदिशा के किसी एकदेश विशेष सहित वहां के पदार्थों को स्वप्नविषे देखता है सो शरीर से बाह्य के उपदेश में जायके स्वप्न को नहीं देखता, किन्तु ' जैसे स्वप्न में शरीरान्तर जिन वस्तुओं के स्थान के अभावसे भी 'समुद्र, पर्वत, हस्ति, आदिक पदार्थों को भ्रान्तिकरके वा जाग्रत् के अध्यास संस्कार करके देखता है तैसेही उस देश को अरु पदार्थों को देहान्तरही देखताहै । अरु जिस करके सोया हुआ पुरुष, तत्कालही देहके (जहां सोया है) देश से सौ योजन के अन्तरायवाले अरु मात्र मात्र के काल करके प्राप्त होने योग्य देशोंविषे स्वप्नों को देखेहुएवत् देखता है । अरु उस देश की प्राप्ति अरु वहां से पुनः आगमन के योग्य दीर्घकाल है नहीं । अर्थात् जिस करके सोयाहुआ पुरुष जाग्रत् की निवृत्ति के तत्कालही स्वप्न को देखता है तहां जिसदेशमें सोया है तहां से शतावधि योजनों के अन्तराय (दूर) वाले, अरु एकमास दिवस की अवधिसे भी अधिक दिवसों के कालसे प्राप्तहोनेवाले, देशों को अरु वहां के पदार्थों को जाग्रत् में देखेहुएवत् देखता है । परन्तु उस स्वप्न में जिस दूरस्थ देश को देखता है सो जहां सोया है तहांसे अतिदूर है, अरु तिस देश की प्राप्त अरु वहां से आगमन । अर्थात् स्वप्न में जिस दूरदेश को देखताहै तहां जाने के अरु वहां से स्वदेशमें आवने । योग्य जो आपेक्षक दीर्घकाल सो है नहीं, क्योंकि जाग्रत् की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ति के क्षणहीं स्वप्न को देखता है अरु स्वप्न की निवृत्ति के क्षणही जिस देशमें सोया है तिसही स्थान में जाग्रत् होताहै, । एतदर्थ, "। अदीर्घत्वाच्च कालस्य गत्वा देशान्न पश्यति "। ८ कालकी अदीर्घता से देशों बिषे जायके देखता नहीं ८ अर्थात् । बाह्यके दूरदेश को जाय अरु वहां से पुनः स्वदेश में आवे एतना । दीर्घकाल न होने से स्वप्न को देखनेवाला पुरुष अपने सोवने से अन्य देश में जायके स्वप्न को देखता नहीं। किंवा "। प्रतिबुद्धश्च वै सर्वस्तस्मिन्देशे न विद्यते "। ८ जाग्रत् को प्राप्त हुए को निश्चय करके तिस देश में कुछ भी विद्यमान नहीं ८ अर्थात् स्वप्न का द्रष्टा पुरुष । जिस देश को स्वप्न में देखता है । तिस स्वप्न दर्शन के देश बिषे निश्चय करके प्रबोध (जाग्रत्) को पायाहुआ है नहीं। अर्थात् जो कदापि स्वप्न का द्रष्टा पुरुष अन्यदेश बिषे जायके स्वप्न को देखता होय तो जिस देशबिषे जायके स्वप्न देखे तिसही देश बिषे प्रबोध (जागरण) को प्राप्त हुआ चाहिये, परन्तु सो होता नहीं, । किन्तु जिस देश बिषे सोवता है तहां ही जागता है। किंवा रात्रि बिषे [शरीर के अन्तरही स्वप्न का देखना होता है, इस प्रकार सिद्ध हुए । दूरदेश के गमनागमन । योग्य काल के अभाव से स्वप्न का मिथ्यापना है, इस प्रकार कथन किये अर्थ का वर्णन करते हैं, यहां यह अर्थ है कि, यद्यपि । वो स्वप्न का द्रष्टा पुरुष । रात्रिबिषे सोवता है, तथापि दिवस में । सूर्यादि पदार्थ कि जिनका रात्रि में सर्वथा असंभव है । देखे हुएवत् देखता है। अरु सोया हुआ चक्षुरादि इन्द्रियों के संकोच हुए भी रूपादि विषयों को देखता है, अरु सोयाहुआ भी विचरता है । अर्थात् जाग्रत् की ज्ञानेन्द्रिय अरु कर्मेंद्रियों के उपराम हुए भी स्वप्न में उभय इन्द्रियों के व्यापार को करता है । अरु यद्यपि वो पुरुष सहकारियों से रहित ' अकेला, सोवता है, तथापि बहुत से । सहचारियों के साथ मिला हुआ स्वप्नमें स्वप्न के पदार्थों को देखताहै। एतदर्थ । देशान्तर के गमनागमन । योग्य । दीर्घ । काल के, अरु । उभय । इन्द्रियों के, अरु सहकारियों के । जो दर्शनादिकों की मुख्य सामग्री है । अभाव हुए भी । जो दूर देशादिरूप पदार्थों को देखता सुनता लेता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देता आवता जाता आदिक व्यापार होता भासता है, ताते इस अनुमान लक्षण से भी । स्वप्न का मिथ्यापना सिद्ध है] सोयाहुआ पुरुष दिवसवत् । सूर्यादि । पदार्थों को देखता है, अरु बहुतों के साथ मिलता है । अरु । जो कदापि शरीर से बाह्य निकलके स्वप्न में किसी से मिलता होय तो । जिनसे मिलता है तिन्हों करके जाग्रत् काल बिषे पहिचाना चाहिये, परन्तु उस करके पहिचाना जाता नहीं । क्योंकि जो सोया हुआ पुरुष शरीर के बाह्यदेश में स्वप्नबिषे मिलाहोय तो । 'आज मैंने तुझको अमुक स्थान बिषे देखा था, इस प्रकार तिसपुरुष ने । कि जिस के साथ स्वप्न का द्रष्टा स्वप्न में मिला है । कहना चाहिये, परन्तु इस प्रकार कोई किसी से कहता नहीं । अतएव स्वप्न बिषे अन्यदेश को जाता नहीं ॥ हे सौम्य ! यह पुरुष स्वप्नबिषे जिनपदार्थों को देखता है सो चिरकाल तैसाही न रहके अति शीघ्र अन्यभाव को प्राप्त हुआ देखता है । अर्थात् प्रथम मनुष्य को देखता है, देखतेही देखते तिसही क्षण में उसही को वृक्षादिरूप से देखने लगता है, अरु मथुरादि देशों को देखता २ उसही क्षण में उसको काशी आदिक देशों को देखता है वा मिश्रित वा विपरीत देशकाल ग्रामादिकों को देखता है, तैसा बाह्य का देशादिक अति अल्पकाल में अन्यथा भाव को पावते नहीं, मनुष्य वृक्षाकार होते नहीं । इत्यादिक स्वप्न के अरु बाह्य के देशकाल वस्तु आदिकों में व्यभिचार तारतम्यता के देखने से भी, अरु चिरकाल के मृतकहुओं को भी स्वप्न में देखने से 'कि जिनका उस स्वप्नकाल में बाह्य होना सर्वथा असंभव है, यह स्पष्ट सिद्ध है कि स्वप्न का द्रष्टा शरीर के बाह्य के देशों में जायके स्वप्न देखता नहीं ॥ २ ॥

अभावश्चरथादीनां श्रूयते न्यायपूर्वकम् । वैतथ्यं तेन वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम् ॥ ३ ॥

३ हे सौम्य ! इस अग्रिम कहने के हेतुसे भी स्वप्न बिषे देखने योग्य पदार्थ सर्व मिथ्या है । क्योंकि "अभावश्चरथादीनां श्रूयते न्याय पूर्वकम् ।" रथादिकों का अभावन्यायपूर्वक सुनते हैं ? अर्थात् जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके स्वप्न बिषे देखने योग्य (देखेहुए) जे रथादिक तिनका अभाव "न तत्ररथानरथयोगानपंथानोभवति, इत्यादि श्रुतिः" ८ तहां रथ नहीं, रथमें योजना करने योग्य अश्वचक्रादि नहीं, अरु रथ के मार्ग भी नहीं होते, इत्यादिक श्रुति करके न्याय (युक्ति) पूर्वक श्रवण करते हैं। अतएव "वैतथ्यं तेन वै प्राप्तं स्वप्न आहुः प्रकाशितम्" ९ तिससे स्वप्न बिषे प्राप्तहुआही मिथ्यापना प्रकाशित किया कहते हैं; अर्थात् तिस स्वप्नद्रष्टाके शरीर के मध्य महासूक्ष्म नाड़ीरूप स्थान बिषे संकोच को प्राप्तहोने (स्थान के अभाव) आदिक हेतु से स्वप्न बिषे प्राप्त हुआही जो मिथ्यापना, तिसको अनुवाद करनेवाली अरु स्वप्न बिषे आत्मा के स्वयंज्योतिपने के प्रतिपादनबिषे तत्पर जो यह बृहदारण्यक उपनिषद् सम्बन्धी श्रुति है, तिसने प्रकाशित किया है, इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता कहते हैं॥ ३॥

अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते॥ ४॥

४ हे सौम्य! [उक्त रीति से स्वप्नरूप दृष्टान्त के असत्पनेके सिद्धहुए, फलित अर्थरूप अनुवाद को कहते हैं] "अन्तस्थानात्तु भेदानां तस्माज्जागरिते स्मृतम्। यथा तत्र तथा स्वप्ने संवृतत्वेन भिद्यते" (जैसे तहां स्वप्न में है, तैसे जाग्रत् बिषे भी है ताते जाग्रत् बिषे जान्या है, भेद को प्राप्तहुए को संकोच को प्राप्त होने करके भेद को पावता है; अर्थात् जैसे तिस स्वप्न बिषे है, तैसेही तिस जाग्रत् बिषे भी है, तस्मात् जाग्रत् बिषे भी तैसेही जान्या है। परन्तु स्वप्न बिषे जाग्रत् के पदार्थों से भेद को प्राप्तहुए पदार्थों को शरीर के मध्य सूक्ष्म नाड़ी रूप स्थानवाले होने से जाग्रत् से स्वप्न भेद को पावता है॥ इसका यह अभिप्राय है कि जाग्रत् बिषे दृश्य पदार्थों को यावत् इन्द्रियादिकों का विषय है तिन सर्वको मिथ्यापना है, यह तो प्रतिज्ञा है, क्योंकि दृश्य इन्द्रियादिकों का विषय है ताते यह हेतु है। अरु, स्वप्न बिषे सर्व दृश्य पदार्थोंवत्, यह दृष्टान्त है अरु जैसे तिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

। स्वयोग्य स्थानके अभाववाले । स्वप्न बिषे । देखेहुए वा देखने योग्य । दृश्य पदार्थों का मिथ्यापना है, तैसे जाग्रत् बिषे दृश्यपना । दृश्यपदार्थों को मिथ्यापना । समानही है, यह हेतु का उपनय है । एतदर्थ जाग्रत् बिषे भी मिथ्यापना जान्या है यह निगमन है । अरु शरीर के मध्य । सूक्ष्मनाड़ी । रूप स्थानवाले होने से अरु संकोच को प्राप्त होने करके स्वप्न बिषे दृश्य पदार्थों का जाग्रत् के दृश्य पदार्थों से भेद । भासता है । अरु । वास्तव करके । दृश्यपना अरु मिथ्यापना जाग्रत् अरु स्वप्न दोनों तुल्यही ॥ । अर्थात् जैसे स्वप्न का दृश्य अपने योग्य स्थान के अभाव से सत्य न होयके केवल भ्रान्तिमात्रही है, तैसेही जाग्रत् का सर्व दृश्य अपने योग्य स्थान के अत्यन्त अभावसे केवल भ्रान्तिमात्रही है। क्योंकि एक अद्वैत निराकार परिपूर्ण विज्ञानघन चैतन्य के शिवाय सर्वत्र सघन अस्तित्व में तिससे पृथक् रीति स्थान का अभाव है, अतएव जाग्रत् अरु स्वप्न, इन उभय स्थान का स्थूल सूक्ष्म यावत् इन्द्रियादिकों का विषय दृश्य प्रपञ्च है सो स्वयोग्य स्थान के अत्यन्त अभावरूप हेतु से केवल भ्रान्तिमात्रही है । ऐसा ब्रह्मवेत्तों का निश्चितार्थ है इति सिद्धम् ॥ ४ ॥

स्वप्नजागरिते स्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना ॥ ५ ॥

५ हे सौम्य ! "स्वप्नजागरिते स्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः । भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना" । ६ भेदों को प्राप्तहुए को प्रसिद्ध हेतु से समानता करकेही मननशील स्वप्न अरु जाग्रत् इन उभय स्थानों को एकसेही कहते हैं ; अर्थात् । परस्पर उक्त प्रकार । भेद को प्राप्तहुए जे जाग्रत् अरु स्वप्न के पदार्थ तिनको ग्राह्य अरु ग्राहक होने से दृश्यतारूप प्रसिद्ध हेतु करके समानता होनेसे, मनीषी । मननशील विवेकी । जन हैं सो, स्वप्न अरु जाग्रत् इन दोनों स्थानों के एक (तुल्य) ही कहते हैं । यहां [जाग्रत् अरु स्वप्नबिषे वर्त्तमान परस्पर भेदवाले पदार्थों का ग्राह्यपना और ग्राहकपना समान है । अरु तिस । दृश्यरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हेतुसे तिनका मिथ्यात्व करके समभाव प्रसिद्धही है। अरु तिस [प्रसिद्धसमभावरूप हेतु करके विवेकी पुरुषों को जाग्रत् अरु स्वप्नरूप दोनों स्थानों की एकता वाञ्छित है। इस प्रकार जो पूर्व अनुमान नाम प्रमाण सिद्ध किया, तिसही का 'उभयस्थानों की एकतारूप, फल इस श्लोक करके कहा है। इस प्रकार श्लोक की योजना से देखावते हैं] यह पूर्व सिद्ध प्रमाण का ही फल कहा॥ ५॥

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा। वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥ ६॥

६ हे सौम्य! भेदको प्राप्त [परस्पर में विलक्षण] हुए जाग्रत् बिषे जे दृश्यपदार्थ तिनका आदि अरु अन्त बिषे अभाव होनेसे अर्थात् यावत् उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं सो सर्व अपनी उत्पत्ति से पूर्व अभावरूप हैं- अरु उत्पत्तिमान् पदार्थ को अन्तवाला होनेके निश्चय से, सो उत्पत्तिमान् वस्तु अपने अन्तके पश्चात् भी अभावरूप है [इस कहनेके हेतु से भी तिनका मिथ्यापना है " आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा " [जो आदि बिषे अरु अन्त बिषे नहीं है सो वर्त्तमान में भी तैसाही है]; अर्थात् जो मृगतृष्णादि वस्तु आदि बिषे अरु अन्त बिषे नहीं है, सो अपने वर्त्तमान काल बिषे भी है नहीं, यह लोक बिषे निश्चित है। अरु " वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः " [मिथ्या से सदृशहुए सन्ते भी अमिथ्या (सत्य) वत् जानते हैं]; अर्थात् तैसेही यह भेद को प्राप्तहुए जाग्रत् के दृश्यपदार्थ [अपने] आदि अन्तबिषे अभावरूप होने से मृगतृष्णा आदिक मिथ्या पदार्थों से तुल्य हुए (तुल्य होनेसे) सन्ते मिथ्याही है। तथापि वो अनात्मज्ञानी मूढ लोकों करके सत्यवत् जाने जाते हैं॥ ६॥

सप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते। तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः॥ ७॥

७ हे सौम्य! [उक्तार्थ पर वादी शङ्का करता है]। ननु, स्वप्न के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृश्य पदार्थोंवत् जाग्रत् के दृश्य पदार्थों को भी असत्पना कहा सो अयुक्त है । अरु जाग्रत् के दृश्य जे अन्न पान अरु वाहनादिक हैं, सो क्षुधा तृषा आदिकों की निवृत्ति को अरु गमनागमन आदिरूप कार्य (व्यवहार) को करतेहुए प्रयोजन सहित उनको देखते हैं, अरु स्वप्न के दृश्य पदार्थों को वो प्रयोजन सहितपना है नहीं । ताते स्वप्न के दृश्यपदार्थोंवत् जाग्रत् के दृश्यपदार्थों का असत्पना मनोरथ (कल्पना) मात्र है । इस प्रकार का जो वादी का कथन सो बने नहीं, क्योंकि "सप्रयोजनतातेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते" तिनकी सप्रयोजनता स्वप्न बिषे विरोध को प्राप्त होती है ? अर्थात् जिस करके जाग्रत् बिषे उन अन्नपानादिकोंकी जो प्रयोजन सहितता को देखतेहैं सो स्वप्नबिषे विरोध को प्राप्त होती है । जैसे स्वप्न बिषे अन्नादिक भोजन अरु जलादिक पान करके आतृप्त हुआ पुरुषभी जब उत्थान (जाग्रत्) को पावताहै तब अपने को क्षुधा तृषा करके युक्त अतृप्तही मानता है । तैसेही जाग्रत् बिषे भी भोजन पानादि करके तृप्त, क्षुधा तृषारहित होयके सोया हुआ पुरुष तत्कालही स्वप्न में क्षुधा तृषादि करके अतिपीड़ित दिनरात्रि बिषे जल पान अरु भोजन से रहित अपने को मानता है । अतएव जाग्रत् के दृश्यों का स्वप्न बिषे भी विरोध देखा है । अर्थात् जैसे स्वप्न में भोजन पानादि करके तृप्त हुआ पुरुष जब जागता है तब अपने को क्षुधा तृषा करके युक्तही देखता है ताते यह निश्चय होता है कि स्वप्न बिषे किया खान पानादि सर्व दृश्य जाग्रत् हुए असत्ही होता है, तैसेही जाग्रत् में सम्यक् प्रकार खानपानादि करके आतृप्त हुआ पुरुष सोवता है तब तत्कालही स्वप्न में अपने को क्षुधा तृषा करके पीड़ित देखता है, तिस करके यह निश्चय हुआ कि जाग्रत् के खानपान तृप्ति स्वप्नवान् को असत्य है । अरु जाग्रत् में जाग्रत् सत्य अरु स्वप्न असत्य है अरु स्वप्न में स्वप्न सत्य अरु जाग्रत् असत्य है, ताते इन दोनों की सत्यता असत्यता सापेक्षिक अरु व्यभिचारी है ताते दोनोंही असत्य भ्रान्तिमात्र हैं तातें तिन जाग्रत् के दृश्यों का भी असत्यपना स्वप्न के दृश्योंवत् शङ्का करने के योग्य नहीं । अर्थात् जैसे स्वप्न के दृश्यों के असत्पने में शङ्का नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैसेही जाग्रत् के दृश्यों के भी असत्पने में शङ्का नहीं, अरु जिनको है तिनको भ्रान्ति है। ऐसा हम मानते हैं "तस्मादाद्यन्ततत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः" ८ ताते आदि अन्तवाले होने से वे निश्चय करके मिथ्याही जानने ; अर्थात् तिस करके आदि अरु अन्त करके युक्तपना जाग्रत् अरु स्वप्न इन दोनों बिषे समानही है, । ताते तिस आदि अन्तवाले होने करकें वे मननशील जाग्रत् के दृश्यों को निश्चय करके मिथ्याही जानते, मानते, कहते हैं ॥ ७ ॥

अपूर्वस्थानिधर्मो हि यथा स्वर्गनिवासिनाम्। तानयं प्रेक्षते गत्वा यदैवेह सुशिक्षितः ॥ ८ ॥

८ हे सौम्य ! । पुनः वादी शङ्काकरे है। ननु स्वप्न अरु जाग्रत् के पदार्थों को तुल्य होनेसे जाग्रत् के पदार्थों का जो असत्पना कहा, सो असंगत है, क्योंकि दृष्टान्त को असिद्धता है ताते । कैसे कि जाग्रत् बिषे देखे हुए ये पदार्थही स्वप्न बिषे देखते होवें ऐसा नहीं किन्तु स्वप्नबिषे अपूर्व पदार्थों को देखताहै । क्योंकि जिस करके स्वप्नबिषे चारदांतवाले हस्तिपर आरूढ़ अष्ट भुजावाला आपको । देखता । मानता है, अरु अन्य तीननेत्रवान्पनादिक भी अपने बिषे देखता मानता है। इत्यादि प्रकार अपूर्व (पूर्व न देखे) को स्वप्न बिषे देखता है, एतदर्थ स्वप्न अन्य असत्य के तुल्य नहीं, किन्तु उक्तरीत्या सत्यही है। याते जाग्रत् के मिथ्यापने के साधने बिषे जो स्वप्न का दृष्टान्त है सो असिद्ध है, एतदर्थ स्वप्नवत् जो जाग्रत् को असत्पना कहा सो अयुक्त है। इस प्रकार का जो वादी का कथन सो बने नहीं। क्योंकि, हे वादिन् ! स्वप्न बिषे देखेहुए पदार्थों को जो तू अपूर्व मानता है, सो तो जड़ होनेकरके स्वतः सिद्ध नहीं है, किन्तु "अपूर्वस्थानिधर्मोहि यथा स्वर्गनिवासिनाम्" ८ अपूर्वस्थानी का ही धर्म है, जैसे स्वर्ग के निवासियों का है ; अर्थात् सो अपूर्वस्वप्न के द्रष्टारूप स्वप्नस्थानवाले । तैजसरूप । स्थानी का ही धर्म है। जैसे स्वर्ग के निवासी इन्द्रादिकों का सहस्राक्षपना आदिक धर्म है। तैसे यह अपूर्व स्वप्नस्थानी स्वप्न के द्रष्टा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का धर्म है, द्रष्टा के स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध नहीं । अर्थात् स्वर्गरूप स्थान को प्राप्तहुए को वहां का स्थानीपना अरु स्थान के सम्बन्ध से सहस्राक्षपनादि धर्म उसके होते हैं, अरु जब वो इस लोकरूप स्थान को प्राप्त होताहै तब यहां का स्थानीपना अरु द्विभुजादिक धर्म उसके होते हैं, ताते स्थान के सम्बन्ध से प्राप्तहुए धर्म उस स्थानी के स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होनेसे असत् हैं, क्योंकि जब वो स्वर्ग का स्थानीपन होताहै तब वहां उसके द्विभुजादि धर्म न होयके सहस्रनेत्र चतुर्भुजादि धर्म होते हैं, अरु जब वो इस लोक का स्थानी होता है तब यहां उस के सहस्रनेत्रादि धर्म न होयके द्विभुजादि धर्म होताहै, ताते स्थान से अरु स्थानसम्बन्धी धर्मों में व्यभिचार के होनेसे वे असत् हैं अरु उस स्थानी के बास्तविक स्वरूप में व्यभिचार न होनेसे वो सत्य है। तैसे ही आत्मा को स्वप्न का स्थानी होनेसे वहां का अपूर्वदृश्य उसका धर्म होताहै सपूर्व नहीं, अरु जब वो जाग्रत् का स्थानी होताहै तब यहां का सपूर्व उसका धर्म होताहै अपूर्व नहीं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्नरूप स्थानों का परस्पर में व्यभिचार है तैसे तिनसम्बन्धी सपूर्व अपूर्व दृश्यरूप धर्मों में भी व्यभिचार है परन्तु उभय स्थान के स्थानीरूप आत्मा के अव्यभिचारी स्वरूपवत् स्वतः सिद्ध न होने से दोनों स्थान अरु तत्सम्बन्धी धर्म दोनों तुल्यही असत् हैं । अरु "तानयं प्रेक्षते गत्वा यदैवेह सुशिक्षितः" "तिनको यह जायके देखता है जैसेही यहां सम्यक् शिक्षा पाया । देखता है" अर्थात् तिन इस प्रकार के अपने चित्त के विकल्परूप अपूर्व पदार्थों को यह स्थानी स्वप्न का द्रष्टा स्वप्नरूप स्थान बिषे जायके देखता है, जैसे यहां लोक बिषे शिक्षावान् पाया । पुरुष । जो देशान्तर का मार्ग है तिस मार्ग से देशान्तर को जायके तिन । देशान्तर के । पदार्थों को देखता है, तद्वत् । एतदर्थ रज्जु सर्प अरु मृगतृष्णादिक स्थानी के धर्म का असत्पना है, तैसे स्वप्न बिषे देखेहुए अपूर्व दृश्य पदार्थों को स्थानी का धर्मपनाही है एतदर्थ असत्पना भी है । ताते स्वप्न के दृष्टान्त का । अर्थात् जाग्रत् के दृश्य पदार्थों के असत् होने में जो स्वप्नरूप दृष्टान्त तिसके असत्पने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का। असिद्धपना नहीं। किन्तु उसका असत्पना सिद्धही है। ॥ ८ ॥

स्वप्नवत्तावपित्वन्तश्चेतसा कल्पितन्त्वसत्। बहिश्चेतो गृहीतं सदृतं वैतथ्यमेतयोः ॥ ९ ॥

९ हे सौम्य! [जाग्रत् बिषे देखने योग्य पदार्थों का जो मिथ्यापना है सो तिस बिषे सत् अरु असत् के विभाग की प्रतीति से विरुद्ध है यह शङ्काकरके तिसका दृष्टान्त से समाधान करते हैं] स्वप्नरूप दृष्टान्त के अपूर्वपने की शङ्का का निषेध करके, पुनः जाग्रत् के पदार्थों की स्वप्नके पदार्थों से। तुल्यता को वर्णन करतेहुए कहते हैं "। स्वप्नवत्तावपित्वन्त श्चेतसा कल्पितन्त्वसत्"। "स्वप्नवृत्ति बिषे भी अन्तर तो चित्तसे कल्पित असत् है; अर्थात् स्वप्नवृत्ति (स्वप्नावस्था) रूप स्थान बिषे भी शरीर को। अन्तर तो चित्त से मनोरथ करके कल्पना किया वस्तु तो असत् है, क्योंकि अन्यकल्पना व संकल्प के। उत्थान के। समकालही तिसका अदर्शन है ताते। अरु "। बहिश्चेतो गृहीतं सदृतं वैतथ्यमेतयोः"। "बाह्य चित्त से ग्रहण किया असत् है इनका मिथ्यापना देखा है; अर्थात् तिसही स्वप्न बिषे बाह्य चित्त करके चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जो घटादि वस्तु सो सत्य है। असत्य है, इस प्रकार निश्चय कियेहुए भी सत् अरु असत्य का विभाग देखा है। अरु इन अन्तर अरु बाह्यचित्त से कल्पना किये दोनों वस्तुओं का। कल्पित होने से। मिथ्यापनाही देखा है ॥ ९ ॥

जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसा कल्पितन्त्वसत्। बहिश्चेतो गृहीतं सद्युक्तं वैतथ्यमेतयोः ॥ १० ॥

१० हे सौम्य! "। जाग्रद्वत्तावपित्वन्तश्चेतसा कल्पितन्त्वसत्"। "जाग्रत् की वृत्ति बिषे भी अन्तर चित्त से कल्पना तो असत् है; अर्थात् जाग्रत् की वृत्तिरूपस्थान बिषे भी अन्तर चित्त करके कल्पना किया वस्तु तो असत् है। अरु "। बहिश्चेतोगृहीतं सद्युक्तं वैतथ्यमेतयोः"। "बाहिर चित्त से ग्रहण किया सत् है इनका मिथ्यापनाही युक्त है;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् तिसही जाग्रत् बिषे बाह्य चित्त से चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया घटादि वस्तु सत् है । असत् है इस प्रकार निश्चय कियेहुए भी सत् असत् का विभाग देखा है । अरु इन सत् अरु असत् का मिथ्यापना युक्तही है, क्योंकि अन्तर अरु बाह्य चित्त से कल्पितपनेकी तुल्यता है ताते ॥ १० ॥

उभयोरपि वैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि । एकतान् बुध्यते भेदान् को वै तेषां विकल्पकः ॥ ११ ॥

११ हे सौम्य ! [अब सर्वको मिथ्यापना होने से प्रमाता प्रमाणादिक व्यवहार का असम्भव होने से, पूर्ववादी विशेष शङ्का को करता हुआ कहे है " उभयोरपि वैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि " ? यदि उभय स्थानोंबिषे भेदों को मिथ्यापनाही है ? अर्थात् जब जाग्रत् अरु स्वप्न इन उभय स्थानों बिषे पदार्थों के भेदों का मिथ्यापनाही है, तब "एकतान् बुध्यते भेदान् को वै तेषां विकल्पकः " ? भेदों को कौन जानेगा अरु तिनका निश्चय करके विकल्पक कौन होवेगा ? अर्थात्, इन अन्तर अरु बाह्य चित्तसे कल्पना किये जे पदार्थों के भेद तिनको कौन प्रमाता जानेगा अरु तिनका निश्चय करके विकल्प (कल्पना) करनेवाला कौन होवेगा । यहां अभिप्राय यह है कि तिनकी स्मृति [यहां यह अर्थ है कि कार्य का कर्त्ता जो है सो पूर्व अनुभव किये कार्य को स्मरण करके तिनके सदृश जातिवाले अन्य कार्यों को, इस प्रकार स्मृति अरु अनुभव के आश्रय के आक्षेप से कर्त्ता का आक्षेप कहने को इच्छित है । तैसा होने से सर्व के मिथ्यापने के सिद्धहुए कर्त्ता आदिकों के व्यवहार का असंभव निवारण करनेको अशक्य होवेगा] अरु अनुभव बिषे आश्रय कौन होवेगा ? [जो अध्यात्मरूप प्रमाता (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य जीव) है अरु जे अधिदैवरूप जगत् का कर्त्ता ईश्वर है, यह दोनों भी मिथ्या हैं, इस प्रकार अङ्गीकार करने से प्रमाता आदिकों को असत्पना होवेगा, । यह शङ्का करके पूर्ववादी कहता है। यहां यह अर्थ है कि ' जब प्रमाता वा कर्त्ता तुम्हीं करके अङ्गीकार नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया हैं, तब, तुमको निरात्मभाव (शून्यपना) अभीष्टही होवेगा, परन्तु सो देखने को शक्य नहीं। उसका देखना अशक्य है। क्योंकि आत्मा बिषे। चक्षुरादि। करणों। इन्द्रियों। की प्रवृत्ति का असंभव है, अरु निषेध करनेवाला ही आत्मा है ताते,] जब उनका कोई भी प्रमाता (प्रमाणकर्त्ता) वा कर्त्ता न मानेंगे तब तुमको निरात्म (शून्य) वाद अभीष्ट होवेगा ॥ ११ ॥

कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेवः स्वमायया । सएव बुद्धयते भेदानिति वेदान्तनिश्चयः ॥ १२ ॥

१२ हे सौम्य! "कल्पयत्यात्मनात्मानमात्मदेवः स्वमायया" ८आत्मारूपी देव अपने बिषे अपनी माया से आप करके अपने को कल्पता है; अर्थात् [अब सिद्धान्ती कर्त्ता अरु कार्यादिकों की व्यवस्था के असंभव को दूर करता है] जो आत्मारूपी देव अपने बिषे स्वमाया से आप करके आपको रज्जु आदिकों बिषे सर्पादिकोंवत् अग्रिम कहने के भेद के आकारवाला। देह। कल्पता है। अरु "। सएव बुद्धयते भेदानिति वेदान्तनिश्चयः "। ८ सोई ही भेदों को जानता है ऐसा वेदान्त का निश्चय है; अर्थात् तैसे सोई। आत्मदेव। तिन भेदों को जानता है, इस प्रकार का वेदान्त (उपनिषद् वा ब्रह्मसूत्र) शास्त्र का निश्चय है। अदर्थ अनुभवज्ञान अरु स्मृति ज्ञान का आश्रय। आत्मदेव से। अन्य नहीं। अरु क्षणिकवादियोंवत् अनुभवज्ञान अरु स्मृतिज्ञान निराश्रय नहीं। इत्यभिप्रायः ॥ १२ ॥

विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान् । नियतांश्च बहिश्चित्त एवं कल्पयते प्रभुः ॥ १३ ॥

१३ हे सौम्य! प्रश्न। कौन संकल्प करता हुआ किस प्रकार से कल्पता है?। तहां। उत्तर। कहते हैं, "। विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान्, नियतांश्च बहिश्चित्त एवं कल्पयते प्रभुः"। ८ प्रभु पदार्थों को चित्त के अन्तर स्थित नियमित पुनः अनियमितपदार्थों को नाना करता है; अर्थात् प्रभु (समर्थ) जो ईश्वर आत्मा है सो बाह्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चित्तवाला हुआ बाह्य अपर 'लोकप्रसिद्ध, शब्दादिरूप पदार्थोंको, अन्य (शास्त्रप्रसिद्ध) वासनारूप से अन्तर चित्त बिषे (मायारूप चित्त के अन्तर) स्थित अस्पष्ट पृथिव्यादि नियमित (स्थिर) अरु विद्युत् दिक अनियमित (अस्थिर) पदार्थों को नाना प्रकार से करता है, तैसे अन्तर चित्तवाला हुआ मनोरथादिरूप आप बिषे स्थित पदार्थों को [यहां यह अर्थ है, कि बाह्य चित्तवाला हुआ आत्मा बहिर्मुख (बाह्य के व्यवहारयोग्य) पदार्थों को कल्पता है । अरु अन्तर चित्तवाला हुआ तिन (बाह्यव्यवहारयोग्य पदार्थों) से इतर आप बिषे स्थित मनोरथादि लक्षणरूप व्यवहार के योग्य पदार्थों को कल्पके पुनः व्यवहार की योग्यता के अर्थ कल्पता है । यहां यह कथन किया है कि जैसे लोक बिषे कुलाल वा तन्तुवाय (वस्त्ररचनेवाला) घट वा पटरूप कार्य के करने की इच्छावाला हुआ आदि बिषे व्यवहार के योग्य व्यक्ति को (कार्य के आकार को) जानके वा प्रकट करके, पश्चात् तिसही व्यक्ति को बाहिर के नामरूप करके सम्पादन करता है । तैसेही परा (आत्माख्य) आदिकर्त्ता भी मायालक्षणरूप अपने चित्त बिषे नामरूप करके अप्रकटरूप से स्थित हुए सृजने योग्य पदार्थों को प्रथम सृजने की इच्छा आकार से प्रकट करके पश्चात् बाहर सर्वज्ञान के साधाररूप से सम्पादन करता है । इस प्रकार प्रपञ्च की कल्पना बिषे क्रम का ज्ञान है] बाह्य के योग्य कल्पना करके पुनः व्यवहार की योग्यता के अर्थ कल्पता है ॥ १३ ॥

चित्तकाला हि येऽन्तस्तु द्वयकालाश्च ये बहिः ।
कल्पिता एव ते सर्वेविशेषो नान्यहेतुकः ॥ १४ ॥

१४ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, स्वप्नवत् चित्त करके कल्पित सर्व जाग्रत् का (जगत्) है यह अद्यावधि निर्धार हुआ नहीं । अरु चित्त से कल्पित चित्त करके जाननेयोग्य मनोरथादिरूप पदार्थों से, बाह्य पदार्थों की परस्पर जाननेकी योग्यता रूप विलक्षणता है, एतदर्थ जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है, [जैसे स्वप्न बिषे देखने योग्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कल्पित दृश्य वस्तु मिथ्या ही अङ्गीकार करते हैं, तैसेही जाग्रत् विषे भी देखनेयोग्य सर्ववस्तु चित्त करके भासमान हैं, इस हेतु से कल्पित मिथ्या है, ऐसा अद्यावधि निर्धार किया नहीं, इस विषय में पूर्ववादी हेतु कहता है। यहां यह अर्थ है कि, आत्मा की अविद्या करके कल्पित जो चित्त, तिस चित्त करके प्रथम चित्त केही अन्तररचित, अरु तहांही वर्त्तमान मनोरथ (संकल्प) रूप पदार्थ, अरु बाह्य के रज्जुसर्पादिक पदार्थ सो चित्त करकेही परिच्छेद (भेद) को पावनेयोग्य है। अरु जिस करके वो कल्पनाकाल बिषेही होनेवाले पदार्थ प्रमाणज्ञान (प्रमाणजन्य ज्ञान) के विषय होते नहीं, जिस करके तिनके साथ मन से बाह्य जाग्रत् बिषे देखनेयोग्य भावों (पदार्थों) का विलक्षणपना, अरु परस्पर में परिच्छेद्यता के पावने की योग्यता, अरु दोनों कालों करके परिच्छिन्न होने करके प्रत्यभिज्ञारूप ज्ञान की विषयता देखतेहैं, तिस करके जाग्रत् का स्वप्नवत् मिथ्यापना अयुक्त है,] उत्तर। यह शङ्का युक्त नहीं, इस प्रकार मूल के श्लोक के अक्षरों से उत्तर कहते हैं, चित्त के (कल्पना) काल से इतर अन्य परिच्छेद करनेवाला काल नहीं है (जिनका) ऐसे जे चित्त से परिच्छेद करनेयोग्य (अर्थात् चित्त की कल्पना काल बिषेही जानने के योग्य) पदार्थ सो [जो मनके अन्तर मनोरथरूप पदार्थ हैं, सो चित्तकालवाले होते हैं, तिनके चित्त काल को स्पष्ट करते हैं] चित्तकालवाले कहते हैं, अरु जो परस्पर परिच्छेद करने (पृथक् २ जानने) योग्य पदार्थ हैं तिनको दोनों कालवाले कहते हैं [यहां यह अर्थ है कि, जो पदार्थ मन से बाह्य दीखते हैं सो भेदकाल-वाले हैं। क्योंकि काल का जो भेद सो कहिये भेदकाल, सो भेदकाल जिनका है ऐसे जे पदार्थ तिनको भेदकालवाले कहते हैं। इस व्युत्पत्ति से। ताते सो पूर्व के अन्यकाल करके अरु पीछे के अन्यकाल करके परिच्छेद को प्राप्त होने योग्य हैं। अरु भिन्नकालसे परिच्छिन्न होने करके "सो यह है" इस आकारवाले प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री सहित संस्कार से जन्य प्रत्यभिज्ञा ज्ञानके विषय होते हैं] जैसे [जाग्रत् के पदार्थों की प्रत्यभिज्ञा ज्ञानकी विषयता को उदाहरण करके स्पष्ट करते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं] देवदत्त गऊके दोहन पर्यन्त स्थित होता है, सो यावत् स्थि
होता है तावत् गऊको दोहन करता है, अरु यावत् गऊको दोह
करता है तावत् स्थित होता है, अरु तितने कालपर्यन्त यह है, अ
एतने कालपर्यन्त सो है । इस प्रकार बाह्य के पदार्थों को परस्प
परिच्छेदकपना है, एतदर्थ उनको उभयकालवाले कहते हैं । एतद
" चित्तकालाहियेऽन्तस्तु द्वयकालाश्च ये बहिः, कल्पिता एव ते
विशेषो नान्यहेतुकः " ९ जो अन्तर बिषे तो चित्तकालवाले पदार्थ
अरु बाह्य उभयकालवाले पदार्थ हैं, सो सर्व कल्पितही हैं, विशे
अन्यहेतुवाला नहीं ; अर्थात् जो अन्तर (स्वप्न) बिषे तो चित्तकाल
वाले पदार्थ हैं, अरु बाह्य (जाग्रत् बिषे) दोनों कालवाले पदार्थ
सो सर्व । जाग्रत्स्वप्न के । कल्पितही हैं । बाह्य का दोनोंकाल कहे
युक्ततारूप जो विशेष है सो कल्पितपने से अन्य हेतुवाला नहीं
क्योंकि कल्पित बिषे भी तिस प्रकार के विशेष का सम्भव है ताते, अत
यहां जाग्रत् बिषे भी स्वप्न का दृष्टान्त स्पष्ट होताही है [इसका
रहस्य है कि जो कल्पनाकाल बिषे होनहार पदार्थ मन के अनन्त
बर्त्तते हैं, अरु जो प्रत्यभिज्ञा ज्ञान के विषयहोने करके पूर्वोत्तर काल
बिषे होनेवाले अरु बाहरही व्यवहार के योग्य देखिये हैं, सो सर्व
कल्पित हुए मिथ्याही होने के योग्य हैं । अरु प्रत्यभिज्ञा ज्ञान की वि
यतारूप जो विशेष है सो वस्तु के कल्पितपने का किया है, क्योंकि स्वप्न
दिकों की कल्पित वस्तु बिषे भी " सो यह है " इस प्रकार प्रत्यभिज्ञा
ज्ञान की विषयता देखते हैं ताते ॥ १४ ॥

अव्यक्ता एव येऽन्तस्तु स्फुटा एव च ये बहिः। कल्पिता एव ते सर्वे विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे ॥ १५ ॥

१५ हे सौम्य ! " अव्यक्ता एव येऽन्तस्तु स्फुटा एव च ये बहिः
कल्पिता एव ते सर्वे " ९ जो अन्तर अस्पष्टही है, अरु जो बाह्य ही है
सो सर्व कल्पितही हैं ; अर्थात् जो मन के अन्तरभावनारूप हो
से अस्पष्ट पदार्थही है, अरु जो मन के बाह्य जो प्रतीयमान पदा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्पष्ट होते हैं सो सर्व मनके स्फुरणमात्ररूप होने से कल्पितही हैं। अरु "विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे" (विशेष इन्द्रियों के भेद के किये हैं ; अर्थात् स्पष्टतारूप विशेष तो अन्तर अरु बाह्य इन्द्रिय भेद के हुए। इन्द्रियों के भेदरूप निमित्तवाला। है, तिस बिषे मिथ्यापना वा अमिथ्यापना उपयोग को प्राप्त होता नहीं ॥ इसका यह भावार्थ है कि, यद्यपि मन के अन्तर मन की वासनामात्र से प्रकटहुए पदार्थों का अस्पष्ट (अप्रकट) पना है, वा मन से बाह्य अरु चक्षुरादि इन्द्रियों के अन्तर पदार्थों का स्पष्टपना है, यह विशेष है। तथापि यह विशेष पदार्थों की सत्यता किया नहीं, क्योंकि स्वप्न बिषे भी तैसेही देखते हैं। किन्तु यह विशेष इन्द्रियों के भेदों का किया है, एतदर्थ जाग्रत् के पदार्थ भी स्वप्न के पदार्थोंवत् कल्पितही हैं। इति सिद्धम्, यह सिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथग्विधान्। बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यस्तथा स्मृतिः ॥ १६ ॥

१६ हे सौम्य !। प्रश्न। ननु, बाह्य अरु अन्तर के पदार्थों की 'परस्पर के निमित्त अरु नैमित्तिक होने करके' कल्पना बिषे कारण क्या है ? उत्तर। तहां कहते हैं, आत्मा जो है सो अपनी माया के वश से सर्व को कल्पता हुआ आदि बिषे 'मैं करता हौं' मेरे को सुख दुःख है, इस लक्षणवाले "जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथग्विधान्" (जीव को पूर्व कल्पता है तिसके अनन्तर पृथक् २ भावों को 'कल्पता है' ; अर्थात् उक्त लक्षणवाले, जीवों को 'रज्जु बिषे सर्पवत्'। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि। श्रुति उक्त लक्षणवालेही शुद्ध आत्मा बिषे विशिष्टरूप से पूर्व कल्पता है, अतएव तिसके अर्थ होने करके 'क्रिया, कारक, फल के भेद से प्राणादिक नानाविध बाह्य के अरु अन्तर के पदार्थों को कल्पता है ॥ प्रश्न ॥ तिस कल्पना बिषे क्या हेतु है ? ॥ उत्तर ॥ तहां कहते हैं, "बाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्य स्तथा स्मृतिः" (जैसी विद्यावाला है तैसी स्मृतिवाला होताहै, तिस करके, बाह्य अन्तर के पदार्थों को। सृजता है। ; अर्थात् जो यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आप कल्पित हुआ जीव सर्व कल्पना के करने बिषे अधिकारी है सो जैसी विद्या (विज्ञान) वाला है तैसी ही स्मृतिवाला होता है । [यहां यह अर्थ है कि, अन्नपानादि उपभोग के होते तृप्ति आदिक होती है अरु तिन [उपभोग] के न होने से होते नहीं । इस अन्वय व्यतिरेक रूप युक्ति से भोजनादिक हेतु है । ऐसी कल्पना का विज्ञान उपजता है ताते पुष्ट्यादिक फल है, ऐसी कल्पना का विज्ञान उपजता है, तिसकरके अन्य किसी दिवस में कथन किये दोनों भी हेतु अरु फलकी स्मृति होती है, तिस करके फलके साधन से असमान (भिन्न) जातिवाले अन्य साधन बिषे कर्त्तव्यता का विज्ञान होता है, तिससे वाञ्छित तृप्ति आदिक फलकी प्रयोजनता बिषे पाकादिक क्रिया अरु तिसके कारक (सामग्री) तण्डुलादिक अरु तिनके फल अन्न की सिद्धि आदिक के सम्बन्धी विशेष विज्ञानादिक होते हैं, तिस करके हेतु आदिकों की स्मृति होती है, ताते तिस साधन का अनुष्ठान होता है ताते पुनः फल होता है । इस क्रम करके परस्पर हेतुमद्भाव से कल्पना होती है,] इस करके हेतुकी कल्पना के ज्ञान से फल का ज्ञान होता है, ताते हेतु के फल की स्मृति होती है, तिस करके तिसका ज्ञान अरु तिसके अर्थ क्रिया कारक, अरु तिसके फल के भेदके ज्ञान होते हैं, तिन करके तिनकी स्मृति होती है, अरु तिस स्मृति से पुनः तिसके ज्ञान होते हैं तिन ज्ञान से तिनकी स्मृति होती है अरु तिस स्मृति से पुनः तिनके ज्ञान होते हैं । इस प्रकार बाह्य अरु अन्तर के पदार्थों को परस्पर निमित्त अरु नैमित्तिकभाव से अनेक प्रकार कल्पता है ॥ १६ ॥

अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता । सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥ १७ ॥

१७ हे सौम्य ! तिस पूर्वोक्त श्लोक बिषे जीव की कल्पना सर्व कल्पना का मूल है, इस प्रकार कहा । सोई जीव की कल्पना किस निमित्तवाली है इसको अब दृष्टान्त करके प्रतिपादन करते हैं " अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता, सर्पधारादिभिर्भावैः " (जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्धकार बिषे अनिश्चित हुई रज्जु सर्प अरु जलधारा आदिक भाव करके विकल्प को प्राप्त होता है ? अर्थात् जैसे लोक बिषे मन्द अन्धकार बिषे रही वस्तु अहं अमुक वस्तुही है, इस प्रकार अपने स्वरूप से अनिश्चय को प्राप्त हुई सो , क्या सर्प है वा जलधारा है, वा वक्रदण्ड है, वा भूमि की दरार है ? इत्यादि प्रकार से सर्पधारा आदिक भाव करके अनेक प्रकार से विकल्प को प्राप्त होवे हैं । अर्थात् रज्जु बिषे सर्प अरु स्थाणु (ठूंठ) बिषे जो पुरुष की भ्रान्ति होती है सो मन्द अन्धकार के समय होती है. घन अन्धकार में अरु स्पष्ट प्रकाश में नहीं क्योंकि जिस काल में रज्जु के सामान्य अंश , सर्पवत् वक्राकार, की प्रतीति, अरु विशेष अंश त्रिवली (ऐंठन) की अप्रतीति होती है तिस काल में सर्पादि भ्रान्ति होती है, अरु वादी ने भ्रान्ति होने की सादृश्यतादि अनेक सामग्री कही हैं परन्तु, मुख्यसामग्री उक्त प्रकार का अन्धकार ही है, क्योंकि अन्धकार के अभाव की सामग्री दीपकादिकों के प्रकाश करकेही भ्रान्ति में उपयोगी अन्धकार सहित सर्व सामग्री अभाव होती है अन्धकार में स्थित रज्जु को सम्यक् प्रकार से रज्जुही है ऐसे जानने के अर्थ एक प्रकाशही सामग्री का उपयोग है, भ्रान्तिकालवत् अनेक सामग्री का नहीं । अरु रज्जु बिषे भ्रान्ति काल में जो प्रायः सर्प की स्मृति अरु भ्रान्ति अधिक, अरु दण्डधारादिकों की क्वचित् होती है, तहां सर्प की भ्रान्ति अधिक होने में विशेष करके मरण का भय हेतु है, क्योंकि सर्पके डंश से मरण का भय है दण्ड धारादिकों से नहीं ताते ॥ अरु ऊषर भूमि में जल की अरु शुक्तिका में रजत की भ्रान्ति है सो अन्धकार में न होयके प्रकाश में होती है, परन्तु द्रष्टा के देश से दूरदेश में अरु दृष्टिगोचरता से होती है । अरु शुक्ति की सदृश रजत लोह काग़ज़ आदि होते हैं, परन्तु विशेष करके तहां रजतकी भ्रान्ति होती है तहां प्रायः लोभहेतु है, क्योंकि अन अशनादि निमित्तक क्लेशादिकों की निवृत्ति रजतरूप द्रव्य से होती है ताते । जैसे स्वरूप से यथार्थ निश्चय कियेहुए अपने हस्त की अंगुली आदिकों बिषे सर्प वा जल इत्यादि विकल्प देखते नहीं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैसेही रज्जु को स्वरूप से सम्यक्प्रकार निश्चय कियेहुए सम्मुखवर्ती रज्जुरूप वस्तु बिषे सर्पादि विकल्प होता नहीं । अरु जिस करके ' सर्पादि विकल्प ' होता है ' एतदर्थ ' तिस विकल्प से ' पूर्व रज्जु के स्वरूप का अनिश्चय ही ' निश्चय का न होनाही ' तिसका निमित्त है ' जैसे यह दृष्टान्त है " तद्वदात्मा विकल्पितः " ' तैसे आत्मा विकल्प को प्राप्त हुआ है ' अर्थात् जैसे उक्त दृष्टान्त है तैसे हेतु अरु फलादिक संसार के धर्मरूप अनर्थों से विलक्षण होने करके अपने शुद्ध ज्ञानमात्र सत्तासमान अद्वैतरूप करके अनिश्चय होने से । अर्थात् अपने आप आत्मा के शुद्ध बुद्ध मुक्त ज्ञानमात्र सत्तासमान एक अद्वैत स्वरूप का सम्यक्प्रकार यथार्थ निश्चय न होने से ' जीव अरु प्राणादिक अनेक भावों के भेदों से आत्मा विकल्प को प्राप्त हुआ है । इस प्रकार यह सर्व उपनिषदों का सिद्धान्त है ॥ १७ ॥

निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्त्तते । रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्मविनिश्चयः ॥ १८ ॥

१८ हे सौम्य ! [अविद्या से रचित जीव की कल्पना है, इस प्रकार अन्वयरूप द्वार से कहा, अब तिसही को व्यतिरेकरूप द्वार से देखावे हैं] " निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्त्तते " ' रज्जुरेवेति, " ' जैसे यह रज्जुही है, ऐसे रज्जु के निश्चय हुए विकल्प सर्वथा निवृत्त होता है ' अर्थात् जैसे ' यह रज्जुही है ' इस प्रकार रज्जु के निश्चय होने से तिसके अज्ञान की निवृत्ति से तिससे उत्पन्न हुआ जो सर्पादिरूप विकल्प सो सर्वथा निवृत्त होता है, अरु रज्जुमात्र अवशेष रहे है " तद्वदात्मविनिश्चयः " ' तैसे आत्मा बिषे निश्चय प्राप्त होता है ' अर्थात् जैसेही जब आत्मा बिषे श्रुतिवाक्यानुसार निश्चय प्राप्त होता है, तब आत्मा की अविद्या करके कल्पित जे जीवादिक विकल्प तिनकी अशेष निवृत्ति से एक अद्वैत आत्मतत्त्वही पर्यवशेष रहता है । यह तो श्लोक का अक्षरार्थ है ॥ अब इसका भावार्थ कहते हैं । जैसे " रज्जुरेवेति " ' रज्जुही है ' इस प्रकार निश्चय के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने से सर्व विकल्पों की निवृत्ति के होनेसे रज्जुही अद्वैत है, इस प्रकार "नेति नेति" ८ न इति न इति ? । सूक्ष्मभी नहीं, स्थूल भी नहीं, कार्य भी नहीं, कारणभी नहीं, मूर्त भी नहीं अमूर्तभी नहीं । इत्यादि इस सर्व संसार के धर्म से रहित वस्तु के प्रतिपादक शास्त्रसे जनित ज्ञानरूप प्रकाश का किया जो यह आत्मा का निश्चय है सोई "आत्मैवेदं सर्वं" "अपूर्वमनन्तरमबाह्यं" "स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "अजरोऽमरोऽमृतोऽभय एवाद्वयइति" ८ आत्माही यह सर्व है ? अपूर्व है, अनपर है, अनन्तर है, अबाह्य है, बाह्यान्तर के सहित है, अरु जन्मरहित अज है, अजर है, अमर है, अमृत (रोगरहित) है । अर्थात् जन्मादि षड्भावविकार रहित है । अभयही है । इसप्रकार का जो । अपने आप । आत्मा का दृढ़ निश्चय है, सोई अद्वितीय परिशेष रहता है, पुनः द्वैत सर्वही निवृत्त होता है ॥ १८ ॥

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः । मायैषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम् ॥ १९ ॥

१९ हे सौम्य ! "यद्यात्मैक एवेति" ८ जब आत्मा एकही है ? अर्थात् जब उक्त प्रकार से आत्मा एकही है, इस प्रकार का निश्चय है तब "प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः, मायैषा तस्य देवस्य" ८ प्राणादि अनन्तभावों करके विकल्प को प्राप्त हुआ है, यह उस देव की मायाही है ? अर्थात् जब निश्चय करके सर्व संसार धर्मरहित आत्मा एकही है, तब इन संसाररूप प्राणादि अनन्तभाव से कैसे विकल्प को प्राप्त होता है ? । जहां इस प्रकार का संशय है । तहां कहते हैं; श्रवण करो, यह उस आत्मरूप देवकी माया है । जैसे मायावी पुरुष करके रचना को प्राप्त हुई जो उसकी माया, सो 'अतिशय निर्मल' जो आकाश, तिसको पुष्पपत्र सहित वृक्षों करके पूर्णहुएवत् पूर्णकरे हैं, तैसे यह आत्मदेव की माया भी है । अरु जैसे इन्द्रजाली की माया से लौकिक द्रष्टा जन उस मायाकृत मोह से उस मायाके ही वश हुए देखते हैं । तैसे अपनी मायासेही यह आत्मा । अपने चिदाभासरूप से । आपभी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मोह को प्राप्त होता है। एतदर्थ मोहरूप कार्य द्वारा आत्मा विषेही माया का ज्ञान होता है। अर्थात् मूलाज्ञान की शक्ति जो शुद्ध माया तद्विशिष्ट आत्मा को माया के कार्य मोह करके अपने बिषे माया का ज्ञान होता है, अरु सर्व शब्द के अर्थ की साम्यता जो माया तिसका ज्ञाता होने से उसको सर्वज्ञ कहते हैं अरु वो माया से रहित अरु माया का आश्रय शुद्ध अविशिष्ट अपना सत्य स्वरूप तिसको स्वरूपसे ही जानता है ताते ईश्वर है। अरु अज्ञानकी द्वितीय शक्ति मलिन अविद्या तद्विशिष्ट जीव अविद्या के कार्य मोहरूप निमित्त से उसको अविद्या का ज्ञान होता है कि मुझ बिषे अविद्या वा माया है, अरु तिससे पृथक् अपने आप शुद्ध स्वरूप को, विना आचार्य के उपदेशके, जानता नहीं ताते जीव है, अरु एतदर्थही श्रुति कहती है कि "आचार्यवान् पुरुषो वेद" अरु माया अरु अविद्यारूप उपाधि के अभावसे उक्त विशिष्ट चैतन्य आत्मा की अविशिष्ट ज्ञप्तिमात्र तत्त्व बिषे एकता है। परन्तु आचार्य के उपदेश द्वारा सम्यक् प्रकार के आत्मज्ञान विना माया अरु अविद्या की निवृत्ति होवे नहीं। तथाच "मम माया दुरत्यया" (मेरी माया दुःख से तरने योग्य है) इस गीतोक्ति से भगवान्ने भी माया को मोहकी हेतुता कही है ॥ १९ ॥

प्राणइति प्राणविदो भूतानीति च तद्विदः। गुणाइति गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः ॥ २० ॥

२० हे सौम्य! [कौनसे वे प्राणादिक अनन्तभाव हैं कि जिन करके माया से आत्मा भेद को पावता है, इस प्रकार के प्रश्न की इच्छा के हुए प्राणादिकों की कल्पना को उदाहरण करके कहते हैं] "प्राण इति प्राणविदो भूतानीति च तद्विदः" (प्राण ऐसे प्राण के वेत्ता, अरु भूत ऐसे भूतके वेत्ता। कहते हैं।) अर्थात् प्राण। कहिये सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ जगत् का ईश्वर वा जगत् का हेतु है। इस प्रकार प्राण के वेत्ता हिरण्यगर्भ के उपासक अरु वैशेषिकमतावलम्बी कल्पना करते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि उस हिरण्यगर्भ को जगत् का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हेतु होने के विषय में प्रमाण का अभाव है। अरु हिरण्यगर्भ उत्पत्तिवाला है ताते। अरु पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, यह चार भूतही जगत् का कारण हैं। इन से इतर ईश्वरादि कोई नहीं, इस प्रकार चार्वाक कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि इन भूतों को जड़ होनेसे स्वतः सिद्धता। जगत् की रचना में स्वतन्त्रता। नहीं ताते। अरु "गुणा इति गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः" "गुण ऐसे गुणके वेत्ता, अरु तत्त्व ऐसे तत्त्व के वेत्ता। कहते हैं।" अर्थात् सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों की साम्यावस्था जगत् का कारण है, इस प्रकार सांख्यमतवादी मानते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि साम्यावस्था को प्राप्तहुए गुणों को जड़त्व होनेसे उन बिषे ईक्षण बनै नहीं अरु श्रुतिप्रमाण से ईक्षणपूर्वक सृष्टि है, ताते श्रुतिबाह्य होने से गुणों को जगत् का कारणत्व कल्पनामात्रही है। अरु 'आत्मा, विद्या अरु शिव, यह तीन तत्त्व जगत् के प्रवर्त्तक हैं, इस प्रकार शैवमतवादी मानते हैं, परन्तु श्रुतिबाह्य होनेसे सो भी केवल कल्पनामात्रही है॥ २०॥

पादाइतिपादविदो विषयाइति च तद्विदः। लोकाइति लोकविदो देवाइति च तद्विदः॥ २१॥

२१ हे सौम्य! "पादाइतिपादविदो विषया इति च तद्विदः" "पाद है ऐसे पादवेत्ता अरु विषय ऐसे विषय के वेत्ता 'कहते हैं," अर्थात् एक आत्मा के जे विश्वादिक पाद हैं सोई सर्व व्यवहार के हेतु हैं इस प्रकार पादों के वेत्ता कहते हैं, तथापि सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि एक निरंश आत्मा के बिषे विश्वादि अंशों का भेद अनुपपन्न है। अर्थात् एक निरंश आत्मा बिषे पादरूप अंशभेद वास्तव से न होयके केवल अविद्या करके कल्पित है। ॥ अरु शब्दादिविषय बारम्बार भोगेहुए परमार्थ तत्त्व है, इस प्रकार उन विषयों के वेत्ता वात्स्यायनादिक काव्य के कर्त्ता कहते हैं, सो कहना विभ्रममात्र है, क्योंकि विषयों का विष से भी अतिनिकृष्टपना है, विष भक्षण करने से अर्थात् भक्षणक्रिया विष एकबार हनन करता है, अरु विषय स्मरणमात्रसे ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्मजन्मान्तर में भी मारताही रहता है । अरु विषयों का अनुसंधान सर्वथा निन्दित है ताते निन्दितों को पारमार्थिक तत्त्वभाव मानना सर्वथा अयोग्य है "लोका इति लोकविदो देवा इति च तद्विदः" लोक ऐसे लोक के वेत्ता अरु देवता ऐसे देवता के वेत्ता । मानते हैं । ? अर्थात् , भूर्, भुवर्, स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप पृथिवी (मनुष्यलोक) अन्तरिक्ष (पितृलोक) स्वर्ग (देवलोक) यह तीनों लोक ही परमार्थ वस्तुरूप हैं, इस प्रकार लोकों के वेत्ता पौराणिक कल्पना करते हैं, सो उनका विभ्रममात्रही है, क्योंकि इनकी तीन संख्यावाले अरु स्थानभेदवाले व्यभिचारी अरु कर्मों का फल अरु "कर्मजितो लोकःक्षीयत" इत्यादि प्रमाण से विनाशी होनेसे अरु अग्नि, वायु अरु इन्द्र इत्यादि देवता । अपने अनुग्रह से । तिन तिन । यज्ञादि कर्मों के । फल के दाता हैं, इनसे इतर ईश्वर कोई नहीं, इस प्रकार देवताओं के वेत्ता कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि देवताओं को उत्पत्ति विनाशवान् अरु आत्मा के जानने में संशययुक्त विषयासक्त अहंकारी होनेसे उनको परमार्थरूपता अयोग्य है ताते ॥ २१ ॥

वेदाइति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः । भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः ॥ २२ ॥

२२ हे सौम्य ! "वेदा इति च वेदविदो यज्ञाइति च तद्विदः" वेद ऐसे वेद के वेत्ता अरु यज्ञ ऐसे यज्ञ के वेत्ता । कल्पना करते हैं, अर्थात् , ऋग्वेदादि चारवेदही परमार्थरूप हैं । क्योंकि ब्रह्माद्वारा वेद ही सर्वजगत् के प्रवर्त्तक हैं ताते । इस प्रकार वेद के वेत्ता पाठक कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है, क्योंकि वेद जो है सो लौकिक अकारादि स्वर अरु ककारादि व्यञ्जन, इन वर्णों से इतर दीखे नहीं, अरु । वेदवाणी का विवर्त्त होने से वाणी के अभावहुए अभावरूप है, अरु आदिपुरुष जो ब्रह्मा तिस द्वारा स्फुरण हुए हैं, अरु निर्विशेष आत्मा बिषे अवेदरूप है, ताते वेद को लोकान्तर लौकिक हो से । वेद को परमार्थरूपता सम्भवे नहीं । अरु ज्योतिष्टोमादिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ वस्तुरूप हैं इस प्रकार यज्ञों के वेत्ता बौधायनादिक यज्ञ के कर्त्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि "यज्ञं व्याख्यास्यामो द्रव्यं देवता त्याग इति" यज्ञ को कहता हौं तहां तिसकी समिध, हवि, कुण्डादिक, सामग्री अरु यज्ञाभिमानी देवता अरु यज्ञमें त्याज्य वस्तु को। अरु यज्ञ की सर्व कारक सामग्री प्रत्येक जड़हैं ताते काष्ठभारवत् यज्ञ की समुच्चयता को जड़त्व होनेसे उसको यज्ञका विज्ञान नहीं, अरु यज्ञकर्त्ता के आधीन जड़ हैं, अरु यज्ञकर्म के कर्त्ता कर्म के फल में अतिरागवान् (आसक्त) होने से परमार्थतत्त्व को न जानके यज्ञको ही परमार्थ तत्त्व मानते हैं ताते। अरु "भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः" ६ भोक्ता ऐसे भोक्ता के वेत्ता, अरु भोज्य ऐसे भोज्य के वेत्ता ६ कल्पना करते हैं ६; अर्थात् भोक्ता ही आत्मा है, कर्त्ता नहीं, इस प्रकार आत्मा को केवल भोक्ताही माननेवाले जे सांख्यशास्त्र के वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी भ्रान्तिमात्रही है क्योंकि जो कदापि सांख्यमतवादी तिस आत्मा बिषे जो भोक्तृत्वरूप विक्रिया स्वरूपसेही स्वीकार करते हैं तब अनित्यत्वादि क्यों नहीं अङ्गीकार करते, किन्तु करना चाहिये, अरु आत्माबिषे जो भोक्तापनेकी प्रतीतिहै सो विषय की सांनिध्यता से स्फटिक में रक्तादिवत् है तिसको वास्तव से मानना भ्रान्ति है। अरु जे भोज्यवस्तु के वेत्ता सूपकार(रसोई करनेवाले) स्वादके वश हुए भोज्यकोही परमार्थपने की प्रतिज्ञाकरतेहैं॥२२॥

सूक्ष्मइतिसूक्ष्मविदःस्थूलइति च तद्विदः। मूर्तइति मूर्तविदो अमूर्तइति तद्विदः॥ २३॥

२३ हे सौम्य! "सूक्ष्मइति सूक्ष्मविदः स्थूल इति च तद्विदः" ६सूक्ष्म ऐसे सूक्ष्म के वेत्ता, अरु स्थूल ऐसे तिसके वेत्ता ६ कल्पते हैं ६; अर्थात् आत्मा परमाणु के परिमाण सूक्ष्म है। अरु सोई परमार्थ वस्तु है। इस प्रकार कोई एक सूक्ष्मतत्त्व के वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी यथार्थ नहीं, क्योंकि जो आत्मा अणु परिमाण होवे तो शरीरान्तर अणु परिमाण देशमेंही होवेगा अरु जो अणुपरिमाणदेशव्यापि आत्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुआ तो तिसको चैतन्य होने से तिसही देश के सुख दुःख का अनुभवहोना चाहिये अन्यदेश का नहीं, परन्तु आत्मा पादाग्र से लेकरके मस्तकाग्र पर्यन्त आकाशवत् नखशिख में व्याप्त है क्योंकि पादाग्र में मेरे को व्यथा है अरु मस्तक में सुख है इस प्रकार शरीर में हुए सुख दुःख का समकाल मेंही अनुभव होता है ताते, अरु श्रुतिने भी आत्मा को सर्वव्यापी विभु कहा है, ताते आत्मा को जो अणुपरिमाण कहते हैं सो भ्रान्ति से श्रुतिबाह्य कहते हैं । अरु स्थूलदेह आत्मा है । अरु सोई परमार्थतत्त्व है । इस प्रकार तिस स्थूल के वेत्ता कोई एक चार्वाक कहते हैं । सोभी कल्पनामात्रही है, क्योंकि । मृतक अरु सुषुप्ति विषे भी भूतों के संघातरूप शरीर से चैतन्य पृथक्ही है शरीर आत्मा नहीं क्योंकि जिनभूतों का संघात शरीर है सो प्रत्येकभूत को चैतन्यत्व के अभाव से जड़त्व है ताते जड़भूतों का संघातरूप शरीर काष्ठभारवत् जड़ होने से इसको आत्मत्व सम्भवे नहीं । अरु "। मूर्तइतिमूर्तविदो अमूर्तइतितद्विदः " ' मूर्तऐसे मूर्त के वेत्ता अरु अमूर्त ऐसे तिनके वेत्ता । कल्पना करते हैं ; अर्थात् त्रिशूलादिकों के धारणकरता महेश्वर अरु चक्रादिकों के धारणकरता विष्णु । यह मूर्तपदार्थ परमार्थरूप है ऐसे मूर्तके वेत्ता आगमाभिमानी कल्पना करते हैं, परन्तु सोभी भ्रान्तिमात्रही है क्योंकि मूर्तपदार्थ एकदेशी परिच्छिन्न कल्प होने से नाशवान् होवे है ताते । अरु सर्वआकार से रहित निःस्वभाव जो अमूर्त सो परमार्थरूप है, इस प्रकार तिस अमूर्त के वेत्ता शून्यवादी कल्पना करते हैं, सोभी केवल भ्रान्तिमात्रही है ॥ २३ ॥

कालइतिकालविदोदिशइति च तद्विदः । वादा इति वादविदो भुवनानीतितद्विदः ॥ २४ ॥

२४ हे सौम्य ! "। काल इति कालविदो दिश इति च तद्विदः " ' काल ऐसे काल के वेत्ता, अरु दिशा ऐसे दिशा के वेत्ता । कल्पना करते हैं ; अर्थात् काल के वेत्ता जे ज्योतिषी सो कालको ही परमार्थरूप से कल्पना करते हैं, परन्तु सो काल भी परमार्थतत्त्व नहीं, क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल का एकरूप होवे तो मुहूर्तादि व्यवहार, कि यह मुहूर्त श्रेष्ठ है, अरु यह मुहूर्त नेष्ट है, तिसकी अयोग्यता है ताते, अरु तिन मुहूर्तादि व्यापार करके काल को श्रेष्ठता अश्रेष्ठता आदिक नानात्व है ताते, अरु काल अन्य विषयों करके प्रतीयमान होताहै । अर्थात् वृक्ष के पत्र पात होने से वसन्तऋतु ज्ञात होता है । ताते काल को स्वतन्त्रता अरु स्वप्रकाशता नहीं । अरु जो परमार्थतत्त्व है सो नानात्व से रहित एक एकरस सदा स्वतन्त्र स्वयंसिद्ध चैतन्य है ताते काल के वेत्ताओं का कथन जो 'कालही परमार्थतत्त्व है, सो भ्रान्तिमात्र ही है। अरु स्वरोदयशास्त्र के वेत्ता पूर्वादि दिशाही परमार्थ वस्तु है इस प्रकार कहते हैं सोभी भ्रान्तिमात्रही है, अरु "। वादा इति वादविदो भुवनानीति तद्विदः "। ९ वाद ऐसे वाद के वेत्ता, अरु भुवन ऐसे तिनके वेत्ता । कल्पना करते हैं । ?, अर्थात् धातुवाद । रसायनशास्त्र । अरु मन्त्रवाद । मन्त्रशास्त्र । इत्यादि वाद परमार्थ वस्तुरूप होते हैं, इस प्रकार वाद के वेत्ता कल्पना करते हैं, सो केवल कल्पनामात्रही है, क्योंकि ताम्रादि धातु सुवर्णादि अरु सुवर्णादि धातु ताम्रादि भाव को प्राप्त होते एकरसता को त्यागके व्यभिचारी हैं अरु ओषधी के योगसे अपने स्वरूप स्वभाव को त्यागते हैं, अरु आकारवान् परिच्छिन्न जड़ अनेकरूप परतन्त्र है, ताते इत्यादि दूषणयुक्त लोभ का विषय धातु परमार्थतत्त्व होने के योग्य नहीं। अरु मन्त्रवाद भी साधककाल आदिक अपनी कारक सामग्री के आधीन होने से परतन्त्रतादि दोषयुक्त हुए परमार्थतत्त्वरूप होने के योग्य नहीं। "वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः" "अन्या वाचोविमुञ्चथ, वाचोविग्लापनंहि तत्" अरु चतुर्दशभुवन वस्तुरूप है, इस प्रकार उन भुवनकोश के वेत्ता कल्पना करते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है क्योंकि सो अदृष्ट अरु विवाद का विषय हैं ताते ॥ २४ ॥

मनइति मनोविदो बुद्धिरिति च तद्विदः । चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विदः ॥ २५ ॥

२५ हे सौम्य ! "। मन इति मनोविदोबुद्धिरिति च तद्विदः "। ८ मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार मन के वेत्ता, अरु बुद्धि ऐसे तिस बुद्धि के वेत्ता । कल्पना करते हैं । ? अर्थात् कोई एक मन के वेत्ता चार्वाक मत के भेद विशेष के मतवादी पुरुष, मनही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इस प्रकार कल्पना करते हैं, सो उनका कहना भी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि मन स्वतन्त्र नहीं, चञ्चल है अरु विषयासक्त हुआ विवेकशून्य है, अरु अनात्मा होने से घटवत् करणविशेष हैं अरु । जैसे दीपक पदार्थों को प्रकाशता है परन्तु दीपक का प्रकाशक तिससे अन्य चक्षु है, तैसे मन विषयों को प्रकाशता है परन्तु उसको जड़ होने से उसका सिद्धकर्त्ता प्रकाशक साक्षी आत्मा उससे भिन्नही है । ताते उक्त दोष स्वभाववाला मन आत्मा । परमार्थतत्त्व होने के योग्य नहीं । अरु कोई एक जे बुद्धि के वेत्ता बौद्धमतवादी हैं सो, बुद्धिही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है, इस प्रकार कल्पना करते हैं, सो भी भ्रान्ति सेही करते हैं क्योंकि सुषुप्तिविषे ज्ञान से रहित हुई बुद्धि अपने कारण अविद्या में लय होती है तब बुद्धि की अभावरूप जड़ अवस्था का प्रकाशक आत्मा पृथक्ही सिद्ध है ताते बुद्धिस्वरूप से ही ज्ञान शून्य जड़ परतन्त्र होने से आत्मा । परमार्थ तत्त्व । होनेके योग्य नहीं । अरु "। चित्तमिति चित्तविदो धर्माधर्मौ च तद्विदः "। ८ चित्त ऐसे चित्त के वेत्ता अरु धर्माधर्म ऐसे तिनके वेत्ता कल्पना करते हैं ? अर्थात् चित्तही आत्मा । परमार्थतत्त्व । है इसप्रकार चित्तके वेत्ता कल्पना करतेहैं, सो भी भ्रान्तिमात्रही है, क्योंकि चित्त अन्तःकरण की वृत्तिविशेष होने से सोभी उक्तदोष करके अरु क्वचित् स्वस्थ अरु क्वचित् भ्रमी होनेसे परमार्थरूपहोनेके योग्य नहीं । अरु जो धर्माधर्म के वेत्ता मीमांसक धर्माधर्म कोही परमार्थरूप कहतें हैं, सो भी श्रुतिबाह्य होनेसे भ्रान्तिमात्रहीहै । तथाच "अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे परमार्थरूप आत्मा धर्माधर्मसे पृथक्ही है॥ २५॥

पञ्चविंशकइत्येके षड्विंशइति चापरे । एकत्रिंशद इत्याहुरनन्तइतिचापरे ॥ २६ ॥

२६ हे सौम्य ! "। पञ्चविंशक इत्येके षड्विंश इति चापरे ।८ एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक अरु षड्विंशत्यात्मक ऐसे कोई एक कल्पना करते हैं? अर्थात् [प्रधान जो है सो मूल प्रकृति (मूलकारण) है, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पञ्चतन्मात्रा (सूक्ष्मभूत) यह सात प्रकृति विकृति हैं। अर्थात् उक्त जो महदादि सप्त हैं सो अग्रिम कहने के षोडश पदार्थ जो केवल विकृति (कार्य) ही हैं तिनकी अपेक्षासे प्रकृति (कारण) है, अरु पूर्व कहा जो प्रधान मूल प्रकृति तिसकी अपेक्षा से विकृति (कार्य) ही है। अरु, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांचकर्मेन्द्रियां, पांच विषय, अरु एक मन, यह षोडश पदार्थ केवल विकृति (कार्य) मात्र ही हैं। इन षोडश विकृति पदार्थ कहे हैं तिनमें जो पञ्च विषय हैं तिनके स्थान में कोई पञ्च महाभूतों को भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि विषय कोही तन्मात्रा कहते हैं सो पूर्व प्रकृति विकृति में कहा है तातें अरु पुरुष तो सर्वका द्रष्टारूपही है, वो किसी का भी कार्य कारण नहीं। इस प्रकार पञ्चविंशति संख्यावाला प्रपञ्च वास्तवहै, इस प्रकार सांख्यवादी कहते हैं, सोभी कल्पनामात्रही है। अरु उक्त पञ्चबीस तत्त्व से एक ईश्वर अधिक होनेसे छब्बीस संख्यावाला प्रपञ्च परमतत्त्व है इस प्रकार छब्बीसतत्त्व के वेत्ता पातञ्जलि कल्पना करते हैं, सो कल्पना भी अयुक्तही है, क्योंकि ईश्वर का पुरुष बिषे अन्तरभाव है तातें, अरु जो ईश्वर का पुरुष बिषे अन्तरभाव नहीं पृथक् है तो ईश्वर को घटवत् अनीश्वरभाव की प्राप्ति का प्रसंग होता है तातें। अरु "[एकत्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे "[६ एकतीस ऐसे कहते हैं, अनन्त ऐसे अन्य कहते हैं? अर्थात् उक्त पञ्चबीसतत्त्व से 'राग, अविद्या, नियति, काल, कला, माया' यह छः अधिक होने से हुए जो इकतीस संख्यावाला प्रपञ्च सो वस्तुरूपहै, इसप्रकार पाशुपतमतवादी कहतेहैं, सो भी कल्पनामात्र ही है। अरु पदार्थों के भेद अनन्त हैं नियमित [कि यह इतनाही है ऐसा [नहीं, तातें अनन्तपदार्थ वस्तुरूप हैं, इस प्रकार अन्यमतावलम्बी वादी कहते हैं, सो भी कल्पनामात्रही है ॥ २६ ॥

लोकाँल्लोकविदः प्राहुराश्रमाइतितद्विदः। स्त्रीपुन्नपुंसकेभ्योऽन्यः परापरमथापरे ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२७ हे सौम्य ! "लोकान् लोकविदः प्राहुराश्रमाइति तद्विदः" ऐसे लोकोंको लोकके वेत्ता कहतेहैं, अरु आश्रम ऐसे तिनके वेत्ता कल्पना करते हैं, अर्थात् लोकों को रञ्जन (प्रसन्न) करनाही परमतत्त्व है एस लोक के वेत्ता कहते हैं ? अर्थात् लोकों को प्रसन्न करनाही परमार्थ तत्त्व है इस प्रकार लोक के वेत्ता लौकिकजन कल्पना करते हैं, सो भी विभ्रममात्रही है, क्योंकि लोकों की भिन्न २ रुचि होनेसे उनके चित्त को अनुरञ्जन करना ईश्वर करके भी अशक्य है ताते। अरु दक्षादि आश्रमही परमार्थरूप हैं, इस प्रकार तिन आश्रमों के वेत्ता कल्पना करते हैं, सोभी असत् ही हैं, क्योंकि आश्रम शब्द का अर्थ वेश है तिस वेश की शूद्रादिपर्यन्त भी व्याप्ति का प्रसंगादि दोषों की प्रवृत्ति है ताते। अरु "स्त्रीपुन्नपुंसकंलैङ्गाः परापरमथापरे" ऐसे स्त्री, पुरुष, नपुंसक, लिङ्गवाले, अरु इतरपर अपर को कल्पना करते हैं, अर्थात् 'स्त्री, पुरुष, नपुंसक—इनतीन लिङ्गात्मक शब्दों का समूहही परमार्थरूप है, इस प्रकार वैयाकरणी कल्पना करते हैं, सो भी अयुक्त ही है। अरु कोई एक जे अपर अरु पर उभय ब्रह्म के माननेवाले हैं सो कहते हैं कि पर अरु अपर दोनों ब्रह्म परमवस्तुरूप हैं। सो उनका कथनभी यथार्थ नहीं, क्योंकि दो ब्रह्म होनेसे परस्पर में परिच्छिन्नतादि दोष की प्राप्ति होती है ताते ॥ २७ ॥

सृष्टिरितिसृष्टिविदो लयइति च तद्विदः। स्थितिरिति स्थितिविदः सर्वंचेहतुसर्वदा ॥ २८ ॥

२८ हे सौम्य ! "सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इति च तद्विदः" ऐसे सृष्टि ऐसे सृष्टि के वेत्ता, अरु लय ऐसे तिसके वेत्ता कहते हैं, अर्थात् सृष्टि (जगदुत्पत्ति) ही तत्त्व है इस प्रकार सृष्टि के वेत्ता कहते हैं, वा कोई एक लय के माननेवाले कहते हैं कि लय ही तत्त्व है, अरु "स्थितिरिति स्थितिविदः सर्वं चेहतुसर्वदा" ऐसे स्थिति ऐसे स्थिति के वेत्ता अरु यह सर्वतो सर्वदा है। ऐसे कहते हैं ? अर्थात् स्थितिही परमार्थतत्त्व है ऐसी कल्पना करते हैं, अरु उत्पत्ति, स्थिति, लय यह ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्त्व है, इस प्रकार पौराणिक कल्पना करते हैं, सोभी अयुक्तही है, क्योंकि सत् से असत् की उत्पत्त्यादिकों का अभाव वक्ष्यमाण है ताते, ॥ हे सौम्य ! अब [उक्त कल्पना के अधिष्ठान को सूचित करते हैं] उक्त अनुक्त [अर्थात् जो कहे सो, अरु नहीं कहे सो] यावत् कल्पना के भेद हैं, सो सर्व यहां इस आत्मा बिषे तो सर्वदा कल्पनावस्था बिषे कल्पना करतेहैं, परन्तु [जिस कल्पक से यह कल्पित हैं तिस] आत्मा को कल्पितपना नहीं, क्योंकि जो आत्मा भी कल्पित होय तो सर्व कोही कल्पित होने से सर्वको ही अधिष्ठानपने की अयोग्या प्राप्त होती है ताते अरु [जो सर्वका कल्पक आत्मा है सो कल्पित नहीं क्योंकि जिसको आत्मा का कल्पक मानेंगे सो आत्मा करके कल्पितही होगा, अरु जो कल्पित होगा तिसको असत् होने से उस बिषे कल्पकपने का असंभव है। अरु अनवस्थादोष भी आवता है ताते [प्राणरूप प्राज्ञ सर्व का बीजरूप है, तिसके कार्य के भेदही अन्यस्थिति पर्यन्त [अपने कारण के लक्षण से भिन्न कार्यपने के लक्षण की स्थितिपर्यन्त] पदार्थ हैं, अरु अन्य सर्वलौकिक प्राणियों की सर्वकल्पना के कल्पित भेद हैं, सो जैसे रज्जु बिषे सर्प, तैसे तिनसे रहित आत्मा बिषे, आत्मस्वरूप के अनिश्चय की हेतु जो अविद्या तिस अविद्या करके कल्पितहै। यह २१, वें श्लोक से २८, वें श्लोकपर्यन्त नव श्लोकों का समुदायरूप अर्थ है। प्राणादि श्लोकन के एक २ पदार्थों के व्याख्यान का अल्पप्रयोजन के हुए प्रयत्न किया नहीं [यह भास्कराचार्य स्वामी की उक्ति है ॥ २८ ॥

यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं स तु पश्यति। तच्चावति स भूत्वासौ तद्ग्रहः समुपैति तम् ॥ २९ ॥

२९ हे सौम्य ! " यं भावं दर्शयेद्यस्य तं भावं स तु पश्यति " ८ जिस पदार्थ के ताईं जिसको देखावे है सो तो तिसको देखता है ; अर्थात् बहुत कहने से क्या है, किन्तु प्राणादिकों के मध्य उक्त वा अनुक्त जिस एक पदार्थ के ताईं जिसको आचार्य वा अन्य असुप्त [जाग्रत् हुआ] पुरुष " इदमेव तत्त्वमिति " ८ यहही तत्त्व है ;

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार देखावता (लखावता) है सो पुरुष तो तिस पदार्थ को "अयमहमिति वा ममेति" ८ यह मैं हूं वा मेरा है, इस प्रकार आत्मरूप देखता है। अरु तिस देखनेवाले को यह पदार्थ जैसा गुरु आदिकों ने देखाया है सो तैसा होके उसकी रक्षा करता है, अर्थात् अपने स्वरूप करके उसको सर्व ओर से रोकता है। अर्थात् मनुष्यों से आचार्य जिस पदार्थ बिषे निश्चय करावता है सो पदार्थ पुनः अपने से अन्य पदार्थों में उस पुरुष का निश्चय होने देना नहीं किन्तु अपनी ओरही खींचता है। "तच्चावति स भूत्वाऽसौ तद्ग्रहः समुपैति तम्" ८ तिस बिषे आग्रह है सो तिसको प्राप्त होता है, अर्थात् तिस पदार्थ बिषे यहही तत्त्व है ऐसा जो आग्रहरूप अभिनिवेश है सो तिस ग्रहण करनेवाले को प्राप्त होता है, अर्थात् सो तिसके आत्मभाव को प्राप्त होता है ॥२९॥

एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः। एवंयो वेद तत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः ॥ ३० ॥

३० हे सौम्य! ८ उक्त ज्ञानकी स्तुत्यर्थ यह श्लोक कहते हैं, "एतैरेषोऽपृथग्भावैः पृथगेवेति लक्षितः" ८ इन अपृथक्भावों से यह पृथक्ही है ऐसे लक्ष्य कराया है, अर्थात् इन प्राणादि आत्मा से अपृथक् भूत करके अपृथक्भावोंसे यह आत्मा सर्पादिक कल्पनारूप भावों से रज्जुवत् पृथक्ही है, इस प्रकार लक्ष्य कराया है। अर्थात् रज्जुके आश्रय कल्पित सर्प रज्जुसे अपृथक् हुआ भावरूप है, परन्तु उस कल्पित सर्पादिकों से अकल्पित सत्यरूप रज्जु पृथक्ही है' अर्थात् कल्पित सर्प का आश्रय होने से उस अधिष्ठानरूप रज्जु का उस सर्पबिषे अन्वय है, अरु उस अकल्पित अधिष्ठानरूप रज्जु बिषे अध्यस्त सर्प का व्यतिरेक है, तैसे आत्मरूप अधिष्ठान के आश्रय कल्पित अरु अधिष्ठानसे अभिन्न भावरूप प्राणादिक तिसबिषे आत्मा का आश्रयरूप से अन्वय है, अरु उन कल्पित प्राणादिकों का अकल्पित आत्मरूप अधिष्ठान बिषे व्यतिरेक है, ताते वो सत्यरूप आत्मा कल्पितभावरूप प्राणादिकों से पृथक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही है, इसप्रकार आचार्यने लक्ष्य कराया है। तथापि मूढ़ पुरुषों करके अलक्षितही है "विमूढानानुपश्यन्ति"। अर्थात् कल्पित प्राणादिकों की स्वाधिष्ठान आत्मा से पृथक् सत्ता के अभाव से सो आत्मरूप ही है, परन्तु सो अविवेकी को तैसा भासता नहीं। अरु विवेकी पुरुषों को, रज्जु बिषे कल्पित सर्पादिकोंवत् प्राणादिक आत्मा से पृथक् नहीं। अर्थात् जो जिसके आश्रय भासता है तिसकी स्वसत्ता के अभाव से वो अपने आश्रय से अपृथक् हुआ सोई रूप है, इस प्रकार "पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः"। विवेकी पुरुष देखते हैं। यह अभिप्राय है॥ "इदं सर्वं यदमात्मेति" ८ यह सर्वपद आत्मा है ? इस श्रुतिप्रमाण से। "एवं यो वेद तत्त्वेन कल्पयेत्सोऽविशङ्कितः"। ८ इस प्रकार तत्त्व से जानता है सो शङ्कारहित हुआ कल्पता है ? अर्थात् जो उक्त प्रकार [उक्त प्रकार के ज्ञानवाला जो पुरुष है सो वेद का किंकर होता नहीं, किन्तु सो वेद के जिस अर्थ को कहता है सोई वेदार्थ होता है यह अर्थ है] रज्जु सर्पवत् आत्मा बिषे कल्पित अनात्मपदार्थों के स्वाधिष्ठान से पृथक् हुए असत्भाव को, अरु। कल्पना कल्पित से रहित। निर्विकल्प। सर्वाधिष्ठान। आत्मा के। सद्भाव। को जो पुरुष। आत्मज्ञान (महावाक्यार्थज्ञान) रूप तत्त्व करके श्रुति के वाक्यप्रमाण से अरु अनुभव युक्तिप्रमाण से जानताहै, सो शङ्कारहित हुआ यह वाक्य इसके अर्थ के पर है, अरु यह अन्य अर्थ के पर है, इस प्रकार विभाग से वेदार्थ को कल्पता है। अरु यहां। इस अर्थ बिषे। मनुमहाराज का वचन प्रमाण है "नह्यनध्यात्मविद्वेदान् ज्ञातुं शक्नोति तत्त्वतः। नह्यनात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुत, इति मनुवचनम्" ८ अध्यात्मतत्त्व का न जाननेवाला वेदों को तत्त्व करके जानने को समर्थ होता नहीं, अरु कोई भी अनात्मवेत्ता क्रिया (प्रमाण) के फल (तत्त्वज्ञानको पावता नहीं) यह मनुमहाराज का वचन है॥ ३०॥

स्वप्नमाये यथादृष्टे गन्धर्वनगरं यथा। तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः॥ ३१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३१ हे सौम्य ! [जिन युक्तियों करके इस वैतथ्याख्यप्रकरण विषे द्वैत का मिथ्यापना कहाहै तिन युक्तियों को प्रमाण के अनुग्रह करके युक्त होनेसे तिनकी यथार्थता निश्चय करनेके योग्य है, ऐसे कहते हैं] जो यह द्वैत का असद्भाव युक्ति से कहा सो वेदान्त (उपनिषद्) के प्रमाणसे निश्चित है, इस प्रकार कहते हैं । " स्वप्नमाये यथादृष्टे गन्धर्वनगरं यथा " ' जैसे स्वप्न माया देखेहैं, जैसे गन्धर्वनगर (देखे हैं) ' अर्थात् स्वप्न अरु माया (इन्द्रजालीकृतकौतुक) असत्वस्तुरूप असत्य हैं, तथापि सो अविवेकी जनों करके सत्वस्तुरूप हुएवत् लखने में आवताहै, अरु सो (स्वप्न, माया) विवेकी जनों करके असत्रूप लखने में आवता है । अर्थात् जो पुरुष स्वप्न अरु माया के वर्त्तमानकालमें ही यह स्वप्न अरु मायाही है, इस प्रकार यथार्थ अनुभव से सम्यक् प्रकार जानता है सो उनको असत्यही मानता है । अरु जैसे जहां तहां स्वपाणिप्रसारितवत् प्रकटता को प्राप्तहुए क्रय विक्रय करने योग्यादिरूप पदार्थों करके सम्पन्न हट्टों (बज़ारों) करके युक्त गृह गोपुर अट्टालियां प्रासादादि अरु स्त्री पुरुष पशु आदिरूप व्यवहार करके पूर्णहुएवत् सत्रूप करके देखाहुआही गन्धर्वनगर अकस्मात् ही अभावको प्राप्तहोता देखाहै " तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः " ' तैसे यह विश्व देखा है वेदान्त विषे विचक्षण (पुरुषों) करके ' अर्थात् जैसे स्वप्न जगत्, मायावी की माया, अरु गन्धर्वनगर, यह प्रत्यक्ष भासते सन्ते भी असत्यही हैं, तैसे ही यह विश्वभी देखा है ' प्रश्न ' कहां किन्होंने देखा है 'उत्तर' कहते हैं, " नेह नानास्ति किञ्चन " " इन्द्रो मायाभिः " " आत्मैवेदमग्र आसीत् " " ब्रह्मैवेदमग्र आसीत् " " सदेव सौम्येदमग्र आसीत् " " द्वितीयाद्वैभयंभवति " " नतु तद्द्वितीयमस्ति " " यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूदित्यादिषु " ' यहां नाना कुछ भी नहीं । परमात्मा माया करके नानारूप को प्राप्त होता है । यह आगे आत्माही था । यह आगे ब्रह्मही था । हे सौम्य ! यह आगे एक सत्ही था । दूसरे से निश्चय करके भय होताहै । सो द्वितीय तो है नहीं । जहां तो इसको सर्वआत्माही होता हुआ । इत्यादि उपनिषद्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रूप वेदान्त बिषे लक्षित जे एक परमार्थ वस्तुके देखनेवाले अत्यन्त निपुणतर साक्षात् आत्मानुभवी आत्मवेत्ता पण्डितरूप विलक्षण पुरुष करके देखाहै ॥ तथाच " तमः शब्भ्रनिभं दृष्टं वर्षबुद्बुदसन्निभम्, नाशप्रायं सुखाद्धीनं नाशोत्तरमभावगमितिहि " ? मन्द अन्धकारबिषे स्थित रज्जु बिषे भूच्छिद्रादिकों के तुल्य अरु वर्षा बुद्बुद के तुल्य नाश करके प्राप्त सुखसे हीन नाशोत्तर अभावरूपता को प्राप्त होनेवाला विश्व विवेकियों करके दृश्य है, इस व्यासस्मृति के प्रमाणसेभी द्वैत वस्तुका असद्भावही निश्चित है ॥ ३१ ॥

न निरोधो नचोत्पत्तिर्नबद्धो नच साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥ ३२ ॥

३२ हे सौम्य ! ६ प्रमाण अरु युक्ति से द्वैत के मिथ्यापने के साधने करके, अद्वैत ही पारमार्थिक है, इस प्रकार सिद्ध हुए, तिस निर्द्धारकिये अर्थको इस श्लोक बिषे संक्षेप से कहते हैं ? अब । इसद्वितीय प्रकरण की समाप्ति के अर्थ यह श्लोक कहते हैं । जब द्वैतमिथ्या है अरु एक अद्वैत आत्माही परमार्थसे सत्स्वरूपहै तब यह सिद्धहुआ कि " न निरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धो नच साधकः, न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता " ६ निरोध नहीं पुनः उत्पत्तिभी नहीं, बद्ध नहीं, साधक नहीं मुमुक्षु नहीं, मुक्त नहीं, यह परमार्थता नहीं अर्थात् यह सर्व लौकिक अरु वैदिक व्यवहार अविद्याका विषय । अज्ञानपर्यन्त । है तब निरोध कहिये प्रलय सो नहीं, उत्पत्ति कहिये जगत् का जन्म सो भी नहीं, अरु जब जगदुत्पत्ति नहीं तब बद्ध कहिये संसारी जीव सो भी नहीं, अरु जब बद्ध नहीं तब साधक कहिये मोक्षार्थ साधन करनेवाला सो भी नहीं, अरु मुमुक्षु कहिये साधनसम्पन्न मोक्ष की इच्छावाला सो भी नहीं, अरु जब बद्ध से मुमुक्षु पर्यन्त नहीं तब मुक्त कहिये सर्वबन्धनों से छूटा पुरुष सो भी नहीं । इस प्रकार उत्पत्ति प्रलय के अभाव से बद्धादिक कुछ भी हैं नहीं, यह परमार्थता है ॥ [उक्तार्थको ही प्रश्नोत्तर से विचार करते हैं] प्रश्न । उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव कैसे है ? उत्तर ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस द्वैत के असद्भाव से उत्पत्ति अरु प्रलय का अभाव है, क्योंकि "यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितर इतरं पश्यति" "य इह नानेव पश्यति" "आत्मैवेदं सर्वम्" "ब्रह्मैवेदं सर्वम्" "एकमेवाद्वितीयमिदं सर्वम्" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "यदयमात्मा" "नेहनानास्ति किञ्चन" ८ जहांही द्वैतवत् होता है तहां और का और देखता है, जो यहां (एक अद्वैत आत्मतत्त्व बिषे) नानात्ववत् देखता है, आत्माही यह सर्व है, ब्रह्मही यह सर्व है, एकही अद्वितीय यह सर्व है, निश्चय करके सर्व ब्रह्मही है, जो यह आत्मा है, इत्यादि अनेक श्रुतियों करके द्वैत का असद्भाव ही सिद्ध है। अरु सत्वस्तुकीही उत्पत्ति वा प्रलय होती है, शशशृङ्ग (खरहा के सींग) आदिक असत्पदार्थों की उत्पत्ति प्रलय होवे नहीं अरु अद्वैतवस्तु भी उत्पत्ति वा लय होती नहीं (अर्थात् जो वस्तु उत्पत्ति अरु लय होती है सो दूसरे की हेतुवाली है, क्योंकि जो उपजती है सो अपने से इतर कारण से उपजती है अरु दूसरे में ही लीन होती है ताते) अरु अद्वैत है सो उत्पत्तिवाला भी है यह कहना विरुद्ध है। एतदर्थ ही जो पुनः प्राणादिरूप अद्वैत का व्यवहार है सो रज्जु बिषे सर्पवत् आत्मा बिषे कल्पित है, इस प्रकार कहा है अरु रज्जु सर्पादिरूप जो मन की कल्पना है तिसके रज्जु बिषे उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है, अरु तैसेही मन बिषे रज्जु सर्प की उत्पत्ति वा प्रलय नहीं है। अरु रज्जु अरु मन दोनों से भी नहीं है तैसेही द्वैत को मन की कार्यता के अविशेष से (अर्थात् द्वैत प्रपञ्च को मन की कार्यतारूप विशेष के अभाव से) तिस द्वैत की उत्पत्ति वा प्रलय बने नहीं। अरु जिस करके निरोध किये (अफुर हुए) मन बिषे वा सुषुप्ति बिषे द्वैत देखते नहीं (एतदर्थ मन की कल्पनामात्रही द्वैत है यह सिद्ध हुआ। तातेही कहा है कि द्वैत के सुसद्भाव से निरोधादिकों का अभाव परमार्थतः है, ॥ हे सौम्य ! जब उक्त प्रकार द्वैत के अभाव बिषे शास्त्र का व्यापार है, द्वैत बिषे नहीं, क्योंकि अभाव के बोधन बिषे व्याप्त जो शास्त्र तिसका भाव के बोधन बिषे व्यापार होनेका विरोध है ताते। अरु तैसे हुए (अर्थात् अभावबोधक शास्त्र को भावबोधन से विरोध हुए) अद्वैत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की वस्तुरूपताबिषे प्रमाण के अभावहुए अरु द्वैतके अभावहुए शून्यवाद का प्रसंग प्राप्त होवेगा। जहां वादी की ऐसी शङ्का है। तहां सिद्धान्ती समाधान कहे है, यह वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि जैसे रज्जु सर्पादिकों की कल्पना को निराश्रयता का असंभव है। अर्थात् रज्जु सर्पादिक यावत् कल्पना है सो निराश्रय होती नहीं। तैसेही द्वैत की कल्पना को अधिष्ठान (आश्रय) से रहितपने का असंभव है ताते, एतदर्थ तिस द्वैत का अधिष्ठान होने करके अद्वैत आस्था करने के योग्य है। इस प्रकार ॐकार के प्रकरण बिषे इस शङ्का का समाधान हमने किया है तिसको तू पुनः कैसे उठावता है॥ । यह सिद्धान्ती के कहने पर शून्यवादी। कहता है कि सर्पादि सर्व विकल्पों की आश्रयरूप जो रज्जु सोभी तुम्हारे मत बिषे कल्पितही है, इस प्रकार दृष्टान्त का सम्भव है,। सो वादी का कथन बने नहीं, क्योंकि कल्पना के क्षय हुए अवशेष रही अवधिरूप सत्ता को रज्जु आदिकों बिषे देखते हैं ताते। अरु द्वैतभ्रम के बोध का साक्षी होने करके जो स्फूर्त्तिमात्र चैतन्य है तिसको अकल्पित होने करकेही सद्भाव का सम्भव है ताते शून्यभावकी प्राप्ति है नहीं॥ अरु जो कदापि ऐसा कहे कि रज्जु सर्पवत् अद्वैत का असद्भाव है, सो भी बने नहीं, क्योंकि आत्मा। भ्रमरूप न होके। भ्रम का साक्षी है ताते। सर्प के अभाव के (भ्रान्ति) ज्ञान से पूर्व अकल्पित रज्जुके अंशवत् नियम से अकल्पित है ताते। अरु कल्पना के कर्त्ता को कल्पनाकी उत्पत्ति से पूर्व सिद्ध होनेके अङ्गीकारसे ही तिसके असद्भाव का असम्भवहै। अर्थात् कल्पना के कर्ता की कल्पनासे पूर्व अरु पश्चात् सिद्धि होनेसे अरु कल्पनाके भावाभाव का साक्षी होने से तिसका असद्भाव कदापि सिद्ध होवे नहीं। अरु जो ऐसा कहे कि अद्वैतस्वरूप बिषे व्यापार के अभाव हुए पुनः शास्त्र को द्वैत के ज्ञान की निवर्तकता कैसे होवेगी, सो दोष भी नहीं, क्योंकि रज्जु बिषे सर्पादिकोंवत् आत्मा बिषे द्वैत को अविद्या करके अध्यस्तपना है ताते। अरु अध्यस्त द्वैत के निवर्तक शास्त्रको भी अध्यस्तपना है ताते॥ प्रश्न। आत्मा बिषे द्वैतका अध्यस्तपना कैसेहै। उत्तर। जन्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हौं, सुखी हौं, दुःखीहौं, जीर्ण हुआ हौं, मरताहौं, मूढ़ हौं, देहवान्हौं, देखता हौं, स्थूल हौं, सूक्ष्म हौं, कर्ता हौं, भोक्ता हौं, संयोग वियोगवान् हौं, वृद्ध हौं, जर्जर हौं, यह मेरा है मैं इसका हौं, इत्यादि सर्व विकल्प आत्माबिषे अध्यस्त होवे है। जैसे सर्प जलधारादिक भेदों बिषे अव्यभिचारसे रज्जु अनुगत है। तैसे सर्वत्र अव्यभिचार से इन सबि आत्मा अनुगत है। जब इस प्रकार विशेष्य के स्वरूप की प्रतीति को सिद्ध होनेसे, शास्त्र से कर्त्तव्यता है नहीं, अरु अकृतवस्तु का कर्त्ता जो शास्त्र है सो कृतवस्तु के अनुसारीपने के हुए अप्रमाण होवेगा। अरु जिस करके आत्माका अविद्यासे आरोपित सुखीपनादिक जे विशेष प्रतिबन्ध तिसके स्वरूप से अनवस्थान, अरु स्वरूपसे अवस्थान श्रेयहै ताते सुखी दुःखीपने आदिकोंका निवर्त्तक जो शास्त्रहै सो "नेति नेति" "अस्थूलमनएवं" इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से आत्मा बिषे असुखीपने आदिकों की प्रतीति के करने से आत्मस्वरूपवत् असुखीपनादिक भी सुखीपने आदिक भेदों बिषे अनुगत धर्म नहींहै, अरु जब अनुगत होत तब सो सुखीपने आदिकरूप विशेष आरोपित न होगा। जैसे उष्णस्पर्शरूप गुणविशेषवाले अग्निबिषे शीतता है तैसे। एतदर्थ तिस निर्विशेष ही आत्मा बिषे सुखीपने आदिक विशेष कल्पितहै। अरु जो आत्मामें असुखीपने आदिकों का जो प्रतिपादक शास्त्र है, सो तिसके सुखीपने आदिक विशेष की निवृत्ति के अर्थ ही है, यह सिद्ध हुआ, । यही "सिद्धन्तु निवर्तकत्वात्" ८ सिद्ध है निवर्तकहोने से ? इस प्रकार वेदार्थवेत्ता द्रविडाचार्य का सूत्र प्रमाण है ॥ [यहां इस सूत्र का यह अर्थ है कि ब्रह्म बिषे पदों की प्रवृत्तिके अभाव हुए भी शास्त्र का प्रमाणिकपना सिद्धही है, क्योंकि अभाव के बोधन बिषे प्रवृत्त "नञ् (नकार)" पद करके युक्त स्थूलादिक अर्थवाले पदों से स्वाभाविक द्वैत के अभाव के बोधन करके अध्यस्त का निवर्तकहै ताते,] ॥ ३२ ॥

भावैरसद्भिरेवायमद्वयेन च कल्पितः । भावाअप्यद्वयेनैव तस्मादद्वयता शिवा ॥ ३३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३२ हे सौम्य! [निरोधादिक सर्व विशेषके अभावकरके उपलक्षित जो वस्तु है सो वास्तवरूप है, ऐसा उक्त श्लोक का अर्थ है। तिसको सामान्य विशेष वस्तु बिषे विशेषता से आश्रय करके निरोधादिकों का सम्यक् साधनरूप होनेसे, तिसके असत्पने की शङ्का करते हैं, तिस हेतु करके तिसके साधने की अपेक्षा होनेसे तिसके लखावने के परायण यह श्लोक है] अब पूर्व कहे श्लोक का हेतु कहते हैं "भावैरसद्भिरेवायमद्वयेन च कल्पिता" (असत्रूपही भावों से अरु अद्वैत से यह कल्पित है? अर्थात् जैसे रज्जु बिषे असद्रूप सर्प अरु जलधारादिकों से, अरु सद्रूप अद्वैत रज्जु द्रव्य से, यह सर्प है वा यह जलधाराहै वा यह भूदरार है वा यह दण्ड है, इत्यादि प्रकारसे रज्जु द्रव्यही कल्पना करते हैं। इस प्रकार ही अविद्यमान प्राणादिक अनन्त असत् वस्तुओंसे ही यह आत्मा कल्पना करतेहैं, परमार्थ से तिनकी सत्ता नहीं। अर्थात् आत्मा से इतर प्राणादिकों की पृथक् सत्ताके अभाव से यह प्राणहै यह मनहै यह इन्द्रिय है, इस प्रकार आत्माको ही कल्पतेहैं। अरु जिस करके अचल। संकल्पादि सर्ववृत्तिसे रहित अफुर। हुए मन बिषे कोई भी पदार्थ किसीकरके भी जाननेको शक्य होता नहीं अरु आत्माका चलन कल्पना करने को अशक्य है, अरु चञ्चलता से रहित आत्मा के ही प्रतीयमान जो भाव हैं सो परमार्थ से सद्रूप कल्पना करने को शक्य हैं नहीं, एतदर्थ असद्रूपही प्राणादिभावों से, अरु रज्जुवत् सर्व विकल्प के आश्रयभूत परमार्थ सद्रूप आप अद्वैत से एकसत् स्वभाववाला हुआ भी यह आत्मा आपही कल्पित है। अरु "भावा अप्यद्वयेनैव तस्माद्वयता शिवा" (भाव भी अद्वय से ही। कल्पित। हैं तस्मात् अद्वयता शिव है? अर्थात् पुनः वे प्राणादि भाव भी सद्रूप अद्वैत आत्मा से ही कल्पित हैं। अरु जिस करके अधिष्ठान। आश्रय। रहित कोई भी कल्पना देखते नहीं, एतदर्थ सर्वकल्पना का अधिष्ठान होनेसे अपने स्वरूप से अद्वैतता के अव्यभिचार से कल्पनावस्था में भी अद्वैतता शिव कहिये कल्याणरूप ही है। अरु सो कल्पनाही तो रज्जु सर्पआदिकोंवत्। जन्म मरणादि लक्षणरूप। भय का कारण है एतदर्थही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशिवरूप है, अरु । भय का कारण जे कल्पना तिससे पृथक् करने रहित अरु तिनका आश्रय । जो अद्वयता सो जिस करके अभयरूप । । क्योंकि " अभयं वै जनकप्राप्तोऽसीति " इत्यादि श्रुतिप्रमाण से अद्वयरूप आत्मा को जाननेवाला अभयरूप अपने आपको प्राप्त होता है । ताते सोई सर्वका परमकल्याण शिवरूप है । " विद्वान्न बिभेति कदाचन " ॥ ३३ ॥

नात्मभावेननानेदं नस्वेनापि कथञ्चन । नपृथङ्नापृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदो विदुः ॥ ३४ ॥

३४ हे सौम्य ! [किंवा यह नानारूप द्वैत क्या आत्मा के तादात्म्य से सिद्ध होताहै, वा स्वतन्त्र सिद्ध होताहै ? यह विवेचन करने के योग्य है । तिनमें प्रथमपक्ष । आत्मा की तादात्म्यता । बने नहीं । यहां यह अर्थ है कि यह नानारूप द्वैत आत्मा के तादात्म्य से सिद्ध होनेके योग्य नहीं, क्योंकि परस्पर में विरुद्ध स्वभाववाले जे जड़ अरु अजड़ तिनके तादात्म्य का असम्भव है ताते । अरु सर्व भेद से रहित जो आत्मा तिससे तादात्म्य के हुए द्वैत के नानापने की असिद्धि होवेगी, ताते] अद्वैतता शिवरूप कहां से होवेगी, क्योंकि जहां अन्य से अन्य का नानारूप भिन्नपना देखा है तहां अशिव होता है, । ऐसा जो कदापि वादी कहे सो नहीं । क्योंकि " नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन " । " यह आत्मभाव से नाना नहीं, अपने से भी कदाचित् नहीं । अर्थात् जिस करके इस परमार्थ से सत्‌रूप आत्मा बिषे प्राणादिक सार का समूहरूप यह जगत् आत्मभाव (परमार्थरूप) से नाना हिये आत्मा से अन्य वस्तुरूप होता नहीं । जैसे रज्जुस्वरूप से प्रकाश कर निरूपण किया जो कल्पित सर्प सो नानारूप नहीं, तद्वत् । अपने प्राणादिक स्वरूप से भी यह जगत् कदाचित् भी विद्यमान नहीं, क्योंकि रज्जु में सर्पवत् कल्पित है ताते, अरु जैसे अश्वसे भिन्न पृथक् ही विद्यमान है, तैसे प्राणादि वस्तु परस्पर में भिन्न नहीं । इदं दर्थ " नपृथङ्नापृथक्किञ्चिदितितत्त्वविदो विदुः " । " पृथक् अपृथक् इन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी नहीं ऐसे तत्त्व के वेत्ता कहते हैं ? अर्थात् । नानात्व को । असत् होनेसे परस्पर में वा अन्य से कुछ भी पृथक् नहीं, इस प्रकार परमार्थ तत्त्व के वेत्ता ब्राह्मण जानते हैं। एतदर्थ अशिव की हेतुता के अभाव से अद्वैतता ही शिवरूप है। यह अभिप्रायहै ॥ ३४ ॥

वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः। निर्विकल्पोह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ॥ ३५ ॥

३५ हे सौम्य ! यह जो सम्यक् दर्शन कहा अब तिसकी स्तुति करते हैं। "वीतरागभयक्रोधैर्मुनिभिर्वेदपारगैः" (राग भय क्रोध से रहित मुनि अरु वेद के पार को प्राप्त हुए पुरुषों करके ? अर्थात् विगत कहिये अभाव हुए हैं राग भय क्रोधादिक सर्व दोष जिनके, । अर्थात् राग भय क्रोधादिक दोष जे सम्यक् आत्मज्ञान की प्राप्ति में प्रतिबन्धक हैं तिनका हेतु अविद्याजन्य द्वैतभाव है सो जिसका एक अद्वैत आत्मज्ञान करके निर्मूल होता है तब रागादि सर्व दोषों का अभाव होता है इस प्रकार जे रागादि दोष रहित । अरु सर्वदा मनन करने के स्वभाव वाले मननशील परम विवेकी मुनि, अरु वेद के पार को प्राप्तहुए जे वेदार्थ तत्त्व के ज्ञाता अरु वेदान्त के अर्थ बिषे परम बोधवान्, ऐसे पुरुषों करकेही "निर्विकल्पो ह्ययं दृष्टः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः" (निर्विकल्प प्रपञ्चके उपशमवाला अद्वैतरूप यह देखा (जाना) है ? अर्थात् उक्त प्रकार के मुनि ज्ञानी पुरुषों करके सर्व विकल्प से रहित अरु द्वैत भेद के विस्ताररूप प्रपञ्च के अभाववाला, इसहीसे अद्वैतरूप यह आत्मा 'देखा जाना' यथार्थ अनुभव किया है। इस कहने का अभिप्राय यह है कि द्वेषादि दोषरहित वेदान्त के अर्थ बिषे तत्पर पण्डित संन्यासी करकेही परमात्मा देखने । अनुभव करने । को शक्य है। अरु तिनसे इतर रागादि दोष करके मलिन हुए चित्तवाले, अरु अपने पक्षपात के देखनेवाले तार्किकादिकों करके नहीं "न कर्मिणो प्रवेदयन्ते रागात्" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ।॥ ३५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् । अहं समनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् ॥ ३६ ॥

३६ हे सौम्य ! " तस्मादेवं विदित्वैनमद्वैते योजयेत् स्मृतिम् " ताते ऐसे जानके अद्वैत बिषे स्मृति को जोड़ना; अर्थात् । जिस कारण परमार्थरूप अद्वय आत्मा उक्त प्रकार का शिवरूप है । ताते इस प्रकार । उपनिषदादि वेदान्त । शास्त्र से सम्यक् प्रकार जानके अद्वैत बि स्मृति को जोड़ना । लगावना । अर्थात् अद्वैत के ज्ञानार्थ स्मृति करना वा रखना । अर्थात् जब शास्त्र अरु आचार्य करके सम्यक् अद्वैततत्त्व का यथार्थ साक्षात् अनुभवपूर्वक उसका दृढ़ निश्चयात्मक भाव होता है तब असत् नामरूप क्रियात्मक जगत् तिसकी सकारण विस्मृतिरू निर्विकल्प अवस्थान समाधि से जब उत्थान होवे तब प्रत्यक्ष भास मान जे मृगतृष्णा के जलवत् पञ्चविषयात्मक समस्त जगत् तिस बि तिसके अधिष्ठान की स्मृति करना कि यह सर्व नानात्मक द्वैत अप अद्वैताधिष्ठान से इतर नहीं यह वोही रूप है सो अद्वय अधिष्ठानहीं सर्वात्मा है, ताते " मत्तःपरतरन्नान्यत् किञ्चिदस्ति " मुझ सर्वाधिष्ठान से इतर कुछ भी नहीं, इस प्रकार अपनी दृढ़ भावनारूप स्मृति को अद्वैततत्त्व में जोड़ना । अरु " अद्वैतं समनुप्राप्य जडवल्लोकमाचरेत् " अद्वैत को सम्यक् प्रकार प्राप्त होके जड़वत् लोकबिषे बिचरे; अर्थात् उक्त प्रकार अद्वैत में स्मृति को योजना करके । इस अद्वैत की " अहं ब्रह्मास्मि " मैं ब्रह्महौं, ऐसे सम्यक् प्रकार जानके सर्वलौकिक व्यवहार को त्यागके । केवल शरीर यात्रामात्र के लिये । जड़ (मूर्ख) वत् हुआ लोकबिषे बिचरे । अभिप्राय यह है कि 'मैं इस प्रकार का यह हौं, ऐसे आपको विद्या अरु कुलादिक से अप्रख्यात अपने लक्ष्य को अप्रकट करता हुआ विद्वान ज्ञानी लोक बिषे बिचरे' " भैक्षचर्यं चरन्ति " ॥ ३६ ॥

निस्स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एवच । चल चलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत् ॥ ३७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

३७ हे सौम्य! प्रश्न। पूर्व कहा जो विद्वान् जड़वत् हुआ लोक विषे बिचरे सो। किस आचरण से बिचरे,। उत्तर "। निस्स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एवच "। ६ स्तुति से रहित, नमस्कार से रहित, स्वधाकार से रहितही होवे; अर्थात्। अपने आत्मा से। अन्य देवताओं की स्तुति (आराधनादिक) से रहित होवे, अरु मनुष्यों (ब्राह्मणादिकों) के अर्थ नमस्कारादिकों से रहित होवे, अरु पितरों के अर्थ स्वधाकार से रहित होवे। अर्थात् उक्त प्रकार का एकात्मदर्शी विद्वान् स्तुति यज्ञादि देवकार्य से, अरु नमस्कार आतिथ्यादि मनुष्यकार्य से, अरु स्वधाश्राद्धादिक पितृकार्य से, रहित यती (संन्यासी) ही होवे। अभिप्राय यह है कि स्तुति नमस्कारादि सर्व कर्मों से रहित, अरु तिन कर्मों में प्रवृत्ति के हेतु जे, वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा, अर्थात् वित्त पुत्र अरु स्वर्गलोक, इनकी कामना तिसका अशेषत्यागी हुआ परमहंस परिव्राट् आश्रम को प्राप्त होवे "एतंवैतमात्मानंविदित्वेत्यादि श्रुतेः" "तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणा इत्यादिस्मृतेश्च" इस प्रसिद्ध तिस आत्मा को जानके। अरु तिस बिषे बुद्धिवाले तिस रूप तिस बिषे निष्ठावाले तिस परायण हुए, इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाण से। अरु "। चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत्"। ७ चलाचल निकेतवाला यति यादृच्छिक होवे; अर्थात् चल कहिये क्षण क्षण बिषे अन्यथाभाव होनेरूप स्वभाववाला चल शरीरहै, अरु निराकार सर्वत्र पूर्ण होने से अचल आत्मा है। ताते जब कदाचित् भोजनादिक व्यापार के निमित्त आकाशवत् अचलरूप आत्मतत्त्वरूप। अपने निकेत, आश्रय, (आत्मस्थिति) को विस्मरण करके। अर्थात् लौकदृष्टिमात्र विस्मरण करके क्योंकि स्मरण अरु विस्मरण अन्य बिषे होताहै ज्ञानोत्तर अपने आप आत्मा बिषे नहीं। मैं हौं ऐसे मानता है, वा साधारणलोक उसको यह भोजनआदि करताहै ऐसा मानते हैं। तिस समय विद्वान् शरीररूप चल निकेत (आश्रय) वाला होता है, अरु तिस भोजनादि व्यापार से अन्य काल बिषे आत्मतत्त्वरूप अचल निकेतवाला होवेहै। इस प्रकार यह विद्वान् चलाचल निकेतवालाहै।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु बाह्यविषयों के आश्रयवाला नहीं । अरु सो विद्वान् यादृच्छिक होवे है, अर्थात् यदृच्छा जो दैवगति तिससे प्राप्तहुए । अर्थात् विना यत्न के अनायास प्राप्तहुए । कोपीन आच्छादन अरु ग्रासमात्र से देह की स्थितिवाला होवे ॥ ३७ ॥

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः । तत्त्वीभूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत् ॥ ३८ ॥

इति गौडपादीयकारिकायां वैतथ्याख्यंद्वितीयंप्रकरणं समाप्तम् ॥ २ ॥

३८ हे सौम्य ! [" अहमेव परंब्रह्म न मत्तोऽन्यदस्ति किञ्चिदिति " । मैं ही परब्रह्म हौं मुझसे अन्य रज्जुकमात्रभी कुछ नहीं इस प्रकार की स्मृति का सन्तान कहिये प्रवाह करना । अर्थात् अपने वास्तविक आत्मरूप का अनुसंधानरूप स्मरण प्रवाहरूप से करना । सो कोई एक काल बिषे करना ऐसा नियमित नहीं, किन्तु निरन्तर करनेको योग्य है । " निमेषार्द्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना" । ऐसे कहाहै । इस श्लोकका यह अर्थहै कि शरीरादिक कल्पित आध्यात्मिक वस्तु को अधिष्ठानमात्र देखके, अरु शरीर से बाह्यवत् स्थित हुए पृथिव्यादिकों को कल्पितपने करके अवस्तुरूप होने से सो अधिष्ठानही है इतर नहीं, इस प्रकार अनुभव करके आप द्रष्टा पुरुष भी परमार्थ वस्तु के स्वभाव को प्राप्त हुआ, तहांही आसक्त चित्तवाला, अरु बाह्यविषय से निवृत्त बुद्धिवाला हुआ तिसही परमार्थ तत्त्व बिषे स्थित हुआ तिसके ज्ञान बिषे स्थितहोवे है] " वाचारम्भणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतेः " ८ वाणी से उच्चारण किया विकार नाममात्रहीहै ? इत्यादि श्रुति प्रमाण से, " तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वा तु बाह्यतः " ८ आध्यात्मिक को तत्त्व देखके, अरु बाह्यको तो तत्त्व देखके ? अर्थात् रज्जु सर्पवत् अरु स्वप्न मायादिवत् असत् शरीर प्राण इन्द्रियादिरूप आध्यात्म , अन्तरवस्तु, को तत्त्व (अधिष्ठान) स्वरूप देखके । अरु शरीरादिकों की अपेक्षा से बाह्य पृथिव्यादिरूप वस्तुओं को भी तत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अधिष्ठान) स्वरूप देखके, "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" "अपूर्वोऽनपरोऽनन्तरोऽबाह्यः" "कृत्स्नघन" "आकाशवत् सर्वगतः" "सूक्ष्मोऽचलो, निर्गुणो, निष्कलो, निष्क्रियः" "तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसीति श्रुतेः" ८ बाह्यान्तर सहित अजन्मा है, अपूर्व है अनपर है अनन्तर है अबाह्य है, सम्पूर्ण है, आकाशवत् सर्वगत है, सूक्ष्म है, अचल है, निर्गुण है, निष्कल है, निष्क्रिय है, सो सत् है सो आत्मा है सो तू है ? इत्यादि श्रुतियों की एकवाक्यता से, "तत्त्वी भूतस्तदारामस्तत्त्वादप्रच्युतो भवेत्" ८ तत्त्वरूप अरु तिस बिषे रमण वाला तत्त्व से अप्रच्युत होवे ? अर्थात् उक्त प्रकार तत्त्व की दृष्टि से तत्त्वस्वरूप अरु तिस बिषे रमणवाला, अरु बाह्यविषयों बिषे अरमण वाला हुआ तत्त्व से अचलित होवे। 'जैसे कोई एक अतत्त्वदर्शी चित्त को आत्मतत्त्व करके जानता हुआ चित्त के चलने पीछे आत्मा को चलित हुआ मानता सता 'अभी मैं आत्मतत्त्व से चलित हुआ हौं, इस प्रकार देहादिरूप आत्मा को चलितहुआ मानता है। अरु चित्त के एकाग्र हुए कदाचित् 'अभी मैं तत्त्वरूप हुआ हौं, इस प्रकार प्रसन्न हुए चित्तरूप आत्मा को तत्त्वरूप मानताहै। तैसे आत्मवेत्ता होवे नहीं, क्योंकि आत्मा एकरूप एकरस है ताते उसका स्वरूप से चलना असंभव है। किन्तु "अहंब्रह्मास्मीति" मैं ब्रह्म हौं इस प्रकार। ब्रह्मानुसंधान करता हुआ। सदैव तत्त्व से अप्रच्युत (अचलित) होवे। अभिप्राय यह है कि सदा अचलित आत्मा के दर्शन (अनुभव) वाला होय। "समो नागे समो मशके" "शुनिचैव श्वपाके च। समं सर्वेषु भूतेषु" ८ हाथी अरु मच्छर बिषे समान है। श्वान बिषे अरु चाण्डाल बिषे पण्डित समदर्शी है। अरु सर्वभूतों बिषे समस्थित होने वाले आत्मरूप परमेश्वर को। विद्वान् आत्मनिष्ठ अनुभव करता है। इत्यादि श्रुति अरु गीतास्मृति के प्रमाण से ३८ ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतमाण्डूक्योपनिषद्कारिकायां वैतथ्याख्य द्वितीयंप्रकरणं भाषाभाष्यं समाप्तम् ॥ २ ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥ हरिः ॐ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ अथ अद्वैताख्यं तृतीयप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

उपासनाश्रितोधर्मो जाते ब्रह्मणि वर्त्तते । प्रागुत्पत्तेरजं सर्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः ॥ १ । ८० ॥

अथ गौडपादाचार्यकृतकारिकायामद्वैताख्यतृतीय प्रकरणभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१ । ८० हे सौम्य! [पूर्व तर्क(युक्ति) से द्वैतके मिथ्यापनेके निरूपण को समाप्त करके, अब परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैत को युक्ति करके निश्चय करावने को अद्वैतनामवाले तृतीय प्रकरण के आरम्भकरने को इच्छते हुए आचार्य प्रथम उपास्य अरु उपासक इस भेद दृष्टिकी निन्दा करते हैं] प्रथम प्रकरण बिषे ॐकार के निर्णय में । " प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत आत्मेति " ८ प्रपञ्च के उपशमवाला शिव अद्वैत आत्मरूप है, इन विशेषणों करके आत्मा प्रतिज्ञामात्र से अद्वैतरूप कहा । अरु तहां प्रथम प्रकरण बिषेही "ज्ञाते द्वैतं न विद्यत इति च " ८ जाने हुए द्वैत है नहीं ? इस स्थल में प्रतिज्ञामात्र से द्वैतका अभाव कहा, सो द्वैत का अभाव तो द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरण से ,स्वप्न, माया, गन्धर्वनगर, इत्यादि दृष्टान्तरूप अरु दृश्यपने आदिक अन्तवान्पने आदिक हेतु रूप युक्ति से प्रतिपादन किया । अरु इस बिषे प्रतिपादन करने योग्य अवशेष है नहीं ॥ प्रश्न ॥ क्या अद्वैत वस्तु शास्त्रमात्र से ही जानने योग्य है किंवा तर्क से भी जानने योग्य है ॥ उत्तर ॥ तहां कहते हैं, अद्वैतवस्तु तर्क से भी जानने को शक्य है ॥ प्र० ॥ सो अद्वैत वस्तु तर्क (युक्ति) से कैसे जानने को शक्य है, ॥ उत्तर ॥ तहां कहते हैं, इस अर्थ के जानने के अर्थ । अर्थात् युक्ति से भी एक अद्वैत तत्त्व के जानने के अर्थ । अद्वैतसंज्ञक तृतीय प्रकरण का आरम्भ करते हैं। पूर्व के द्वितीय प्रकरणबिषे उपास्य अरु उपासना आदिक भेदों का समूह सर्वमिथ्या है अरु केवल अद्वैत आत्मा परमार्थ सत्यरूप है, इस प्रकार सिद्ध हुआ है, एतदर्थ यहां आरम्भ बिषे उपासक की निन्दा करते हैं " उपासनाश्रितो धर्मो जाते ब्रह्मणि वर्तते, प्रागुत्पत्तेरजं सर्वं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेनासौ कृपणः स्मृतः" ८ धर्म उत्पन्न हुए ब्रह्म बिषे बर्त्तता है उत्पत्ति से पूर्व सर्व अजन्मा था उपासना को आश्रित हुआ तिससे यह कृपण चिन्तन किया है ; अर्थात् देह के धारण से धर्म जो जीव सो। आकाशादि। भूतों के समुदाय के आकार से उत्पन्न हुए ब्रह्म बिषे तिसका अभिमानी होके बर्त्तता है। सो उत्पत्ति से पूर्व सर्व अजन्मा था, इस प्रकार काल करके परिच्छिन्न वस्तु को मानता है। सो। जीव। पुनः उपासना को पुरुषार्थ का साधन जानके तदाश्रित हुआ देहपात हुए पश्चात् तिसही ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा, इस प्रकार जिस कारण से मिथ्या ज्ञानवान् होयके स्थित होवे है, तिस कारण से यह ब्रह्मवेत्ता पुरुषों ने कृपण (अल्प) चिन्तन किया है। हे सौम्य! इसका यह अभिप्राय है कि उपासना के आश्रित हुआ। अर्थात् उपासना को अपने मोक्षका साधन मानके प्राप्त हुआ " उपासकोऽहं ममोपास्य ब्रह्म, तदुपासनं कृत्वा जाते ब्रह्मणि इदानीं वर्त्तमानोऽजं ब्रह्मशरीरपातादूर्ध्वंप्रतिपत्स्ये प्रागुत्पत्तेश्चाजमिदं सर्वमहंच " ८ मैं उपासकहूं मेरा उपास्य ब्रह्म है तिसकी उपासना करके अब भूतों के संघातके आकार से उत्पन्नहुए ब्रह्म बिषे वर्त्तमान हौं, अरु शरीर के पतनहुए पश्चात् अजन्मा ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा, अरु उत्पत्ति से पूर्व अवस्था बिषे यह सर्व अजन्मा था अरु मैं भी तैसाही अजन्मा था। इस प्रकार जिस करके उपासक मानता है एतदर्थ पूर्वावस्थावाले ब्रह्म को विषय करनेवाली अजन्मापने की श्रुति बने है। अब " इदानीं जातो जाते ब्रह्मणि च वर्त्तमान उपासनया पुनस्तदेव प्रतिपत्स्यइत्येवउपासनाश्रितोधर्मः" ८ उत्पत्ति अवस्था बिषे मैं जन्म को पाया हौं, अरु इस स्थित अवस्था बिषे उत्पन्न हुए ब्रह्म बिषे। अर्थात् भूतों के संघातरूप शरीराकार से उत्पन्न हुए ब्रह्मबिषे। वर्त्तमान हौं, अरु उत्पत्ति से पूर्व जिस रूपवाला हुआ स्थित था तिसही को पुनः प्रलय अवस्थाबिषे उपासना से प्राप्त होवोंगा। इस रीति से उपासना के आश्रित हुआ साधक जीव सो जिस हेतुसे इस प्रकार करके अल्प ब्रह्म का वेत्ता है तिसही हेतुसे यह नित्य अजन्मा ब्रह्म के दर्शी (अनुभवी) महात्मा पुरुषों ने। उक्त प्रकार के उपासक को। कृपण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दीन, अल्पक, करके चिन्तन किया है "यद्वाचा नाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेवब्रह्म, त्वं, विद्धि, नेदंयदिदमुपासत, इत्यादि" ८ जो वाणी से अप्रकाशित है । अर्थात् जिसको वाणी कह नहीं सक्ती । अरु जिस करके वाणी प्रकाशित होती । अर्थात् जिसकी सत्ता से वाणी अन्यों को कहने में समर्थ होती है । तिसही को तू ब्रह्म करके जान, जिसको यह । भेदवादी । लोक उपासते हैं सो ब्रह्म नहीं, वा जिसको लोक उपासते हैं सो साकार परिच्छिन्न हुए ब्रह्म होनेको योग्य नहीं । इत्यादि सामवेदीय तलवकार शाखा की श्रुति के प्रमाण से ॥ १ । ८० ॥

अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतांगतम् । यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समं ततः ॥ २ । ८१ ॥

२ । ८१ हे सौम्य ! [अद्वैत के विरोधी द्वैतवादी भेदी उपासकों की निन्दा करके अब सम्पत्ति अद्वैत प्रतिपादन की प्रतिज्ञा करते हैं] "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" । इत्यादि श्रुति प्रमाण से जो बाह्य अन्तर सहित अजन्मा आत्मा है । कि जिसके जाननेसे और का जानना अवशेष रहता नहीं । तिसके जानने में असमर्थ हुआ, अरु अविद्या करके अपने आपको दीन जानता हुआ "जातोऽहंजातेब्रह्मणिवर्तेतदुपासनाश्रितः सन् ब्रह्मप्रतिपत्स्ये" ८ मैं जन्मा हौं अरु उत्पन्न हुए ब्रह्म बिषे बर्त्तता हौं, अरु तिसकी उपासना के आश्रित हुआ ब्रह्मको प्राप्त होवोंगा, इस प्रकार जाननेवाला पुरुष कृपण होताहै । अर्थात् "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि श्रुति आदिकों के प्रमाण अनुभव से जो जन्म मरण रहित सदा एक रस आत्मा तिसको, अरु "स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि प्रमाण से सहित बाह्य अन्तर सर्वाधिष्ठान सर्वरूपसे सुशोभित ब्रह्म तिसको । जो कि वास्तव में दोनों एक अरु जन्मादि विकार रहित हैं । जन्मे मानके, तिनमें परस्पर स्वामी सेवकादि वा उपास्य उपासकादि भेद मानके अरु अपने आपको अति दीन अपराधी ईश्वर के आश्रित हुआ तिसकी उपासना से ब्रह्मभावकी प्राप्ति मानके जो उपासना करनेवाले पुरुष हैं सो आपभी मुये अरु ब्रह्मको भी मारा क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" इत्यादि प्रमाण से जो जन्मता है सो मरता है, अरु उस भेदी ने जीवरूप से आत्मा को अरु भूतों के संघातरूप से ब्रह्म को जन्मा माना है, ताते उक्त प्रकार के भेदी उपासकों को श्रुति अरु ब्रह्मवेत्तादि महात्मा कृपण कहते हैं। एतदर्थ अब अजन्मा ब्रह्मरूप अकृपण भाव की कहता हौं "यत्रान्योऽन्यत् पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं मर्त्यसद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयमित्यादि श्रुतिभ्यः" ८ जिस बिषे अन्य अन्य को देखता है, अन्य को सुनता है अन्य को जानता है सो अल्प मरनेके योग्य है, वाणी से कहा विकार नाममात्र है ? इत्यादिक श्रुतियों के प्रमाण से। अरु सो उक्त प्रकार का। अर्थात् भेदी उपासक करके माना। ब्रह्म कृपणभाव का आश्रय है। अरु तिससे विपरीत। अर्थात् श्रुतियों के वाक्यप्रमाण अभेदवादी ब्रह्मवेत्ताओं करके जाना। बाह्य अन्तर रहित अज भूमाख्य ब्रह्म अकृपणभावरूप है। अरु जिसको जानके अविद्या-कृत सर्वकृपणभाव की अशेष निवृत्ति होवे है तिस को अकृपणभाव कहते हैं, तिस अकृपणभावको अब कहता हौं, इत्यर्थः "अतो वक्ष्या मकार्पण्यमजातिसमतां गतम्" ८ अजाति है समता को प्राप्तहै अकृ-पणभाव है तिसको कहता हौं ? अर्थात् सो ब्रह्म कैसा है कि अजाति है। अर्थात् जाति जो जन्म तिससे रहित अज है। वा जो जन्मवान् होता है सो मनुष्यादि वा ब्राह्मणादि जातिवाला होता है अरु ब्रह्म अजन्मा होने से ब्राह्मणादि वा मनुष्यादि जातिमान् नहीं ताते सो अजाति अजन्मा है। अरु सर्व समता को प्राप्त हुआ है, क्योंकि उस विषे अवयवों की विषमता का अभाव है। अरु जो सावयव वस्तु है सो अवयवों की विषमतावाली होती है, इस प्रकार कहते हैं। अरु यह आत्माख्यब्रह्म। तो निरवयव है इस हेतुसे समता को प्राप्त हुआ है। अरु सो ब्रह्म किसी भी अवयवों से जन्म को पावता नहीं एतदर्थ सो सब ओर से पूर्ण जन्मरहित अकृपणभाव है तिसको कहता हौं। अरु यथा न जायते किञ्चिज्जायमानं समंततः" ८ जैसे कुछ भी जन्मता नहीं जायमान सर्व ओर से वर्तता है ? अर्थात् जैसे रज्जु बिषे सर्प

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्रान्ति से जन्मता (उत्पन्न होता) है, तैसेही सर्व अविद्याकृत भ्रान्ति दृष्टि से जन्म को प्राप्त होने करके भासमान है, तथापि, जिस प्रकार से वस्तुकरके कुछ भी जन्मको पावता नहीं, किन्तु सर्व देश काल अ वस्तु से पूर्ण कूटस्थ ही वस्तु होता है । [अर्थात् सर्व देश काल अ वस्तुरूप से एक अद्वैत ब्रह्मही सुशोभित है] तैसे तिस प्रकार को श्रवणकर । यह इसका अर्थ है ॥ २ । ८१ ॥

आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदितः । घटादि वच्च संघातैर्जातावेतन्निदर्शनम् ॥ ३ । ८२ ॥

३ । ८२ हे सौम्य ! जन्मरहित ब्रह्मरूप अकृपणभाव को कहा हौं, इस प्रकार प्रतिज्ञा किया जो वस्तु तिसकी सिद्धि के अर्थ हेतु अ दृष्टान्त को कहते हैं, इस प्रकार कहता हौं " आत्मा ह्याकाशवज्जी र्घटाकाशैरिवोदितः " [आत्मा आकाशवत् है, अरु घटाकाशों से तु जीवों से कहा है ; अर्थात् [प्रतिज्ञा किये वाक्य बिषे ब्रह्मज्ञा करके प्रसंग में प्राप्त किया जो परमात्मा सो कैसा है, इस प्रकार प्र करने की इच्छा के हुए कहते हैं । इस श्लोक के पूर्वार्द्ध का यह अ है कि जैसे आकाश विभु (व्यापक) पने आदिक धर्मवाला हु अपने बिषे स्थित वास्तबिक भेदवाला होता नहीं, तैसे विलक्षणता अभाव से परमात्मा भी है । अरु जैसे एक महदाकाश अनेक घटा के आकार से प्रतीत होता है [अर्थात् जैसे एकही महदाकाश म मठ घटादिकों की उपाधि से अनेक आकारवान् नाना प्रतीत होत तैसेही एकही परमात्मा [हिरण्यगर्भ से लेके पिपीलिकादि प उत्तम मध्यम छोटे बड़े] नाना प्रकार के जीवों के आकार से प्र होता है [परन्तु उपाधिकृत भेद से रहित वास्तव करके एक अद्वैत है ।] आत्मा जो परब्रह्म सो जिस करके आकाशवत् सूक्ष्म नित्य सर्वगत है तिसही से उसको आकाशवत् कहा है । अरु घटा के दृटान्त से आकाश के तुल्य क्षेत्रज्ञ रूप जीवों के स्वरूप करके है । सोई आकाश के तुल्य परब्रह्मरूप आत्मा है । अथवा जैसे घटा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उत्पन्न हुआ महदाकाश है, तैसेही परमात्मा जीवों से उत्पन्न हुआ है। अर्थात् जीवों की परमात्मा से जो उत्पत्ति वेदान्तशास्त्र करके श्रवण करते हैं सो वास्तव करके महदाकाश से घटाकाशों की उत्पत्ति के समान है, यह इसका अभिप्राय है। अरु जैसे तिसही महदाकाश से वायुआदि क्रम करके। घटादिक संघात उत्पन्न होते हैं, तैसे ही महदाकाश स्थानीय परमात्मा से पृथिव्यादिक भूतों के भौतिकसंघात, अरु कार्य कारणरूप आध्यात्मिक देहादिसंघात, यह सर्व रज्जु में सर्पवत् कल्पित हुए उत्पन्न होते हैं, एतदर्थ "। घटादिवच्च संघातैर्जातावेत निदर्शनम्" ? घटादिवत् संघात से उत्पन्न हुआ ऐसा कहते हैं ? अर्थात् जब मन्दबुद्धिवाले जिज्ञासु को निश्चय करावने की इच्छावाली श्रुति ने आत्मा से जीवादिकों की उत्पत्ति कही है, तब जानने योग्य तिस उत्पत्ति बिषे उत्पन्न हुए आकाशवत्, इत्यादिरूप यह दृष्टान्त है॥३।८२॥

घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा। आकाशे संप्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि॥ ४। ८३॥

४।८३ हे सौम्य! "। घटादिषु प्रलीनेषु घटाकाशादयो यथा। आकाशे संप्रलीयन्ते तद्वज्जीव इहात्मनि" ? जैसे घटादिकों के लीन हुए घटाकाशादिक आकाश बिषे लीन होते हैं, तैसे इस आत्मा बिषे जीव होते हैं ? अर्थात् जैसे घटमठादिकों के अपने कारण पृथिवी बिषे लय होने से तद्गत जे घटाकाशादिसंज्ञक आकाश सो अपने से अभिन्न महदाकाश बिषे लीन होते हैं, तैसेही इस आकाशवत् पूर्ण आकाश का भी आश्रय महासूक्ष्म अधिष्ठान चैतन्य आत्मा बिषे, यह शरीरादि संघातविशिष्ट चिदाभास जीव लीन होता है। [जीवों के उत्पत्ति अरु प्रलय उपाधि के किये हैं, स्वाभाविक नहीं। अरु तिस प्रकार होने से उत्पत्ति की प्रतिपादक श्रुति से होता जो अद्वैत का विरोध तिसके अभाववत् प्रलय की श्रुतिसे भी अद्वैत का विरोध है नहीं, इस प्रकार श्लोक के अक्षरों के व्याख्यान से प्रकट करते हैं] अर्थ यह है कि, जैसे घटादिकों की उत्पत्ति से घटाकाशादिकों की उत्पत्ति होवे है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु जैसे घट मठादिकों के लय हुए घटाकाशादिकों का भी लय होती है । तैसेही देहादिक संघात की उत्पत्ति से । घटाकाशवत् । जीवों की उत्पत्तिहोती है, अरु तिन देहादिसंघात का स्वकारण में लय होने से इन जीवों का (संघातविशिष्ट चैतन्य का) इस (संघातोपहित एक अद्वैत आत्मा बिषे लय होता है, परन्तु स्वरूप करके इस चैतन्य जीव की उत्पत्ति लय नहीं " न जायते म्रियते वा कदाचित् " इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ॥ ४ । ८३ ॥

यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते । नसर्वे संप्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः ॥ ५ । ८४ ॥

५ । ८४ हे सौम्य ! सर्वदेहों बिषे आत्मा की एकता के होते जन्म मरण अरु सुखादिक धर्मवाले एक आत्मा के हुए, सर्व आत्मा को उन जन्मादिक धर्मोंसे सम्बन्ध होवेगा, और क्रिया अरु फल का मिश्रभाव होवेगा, इस प्रकार जो द्वैतवादी कहता है, तिसके प्रति अब यह उत्तर कहते हैं । " यथैकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभिर्युते । न सर्वे संप्रयुज्यन्ते तद्वज्जीवाः सुखादिभिः " । जैसे रज अरु धूमादिक करके युक्त एक घटाकाशके हुए, सर्व घटाकाशादिक तिन रज धूमादिक करके संयोग को पावते नहीं तैसे जीव सुखादिकों से संयोग को पावते नहीं ; अर्थात् । अनेक घटों में आकाश एकही है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से अनेक आकाश कहेजाते हैं, अरु उन अनेक घटाकाशों में से एक घटाकाश को धूलि धूमादि करके युक्त होनेसे सर्व घटाकाश तिन धूलि धूमादिकों से संयोग को पावते नहीं, तैसे एक आत्मा बिषे एक जीव को सुखादि करके युक्त हुए सर्वजीव सुखादिकन से संयोग को पावते नहीं ॥ ननु, तब क्या सर्वत्र एकही आत्मा है, ऐसी शङ्का है । तहां कहते हैं, यह तेरा कथन सत्यहै । जो सर्वत्र एक आत्मा है । शङ्का । ननु, तिस आत्मा की एकता युक्तिरहित है तिसको कैसे अङ्गीकार करते हौ ? । उत्तर । तहां कहते हैं । सर्वसंघातों में एकही आत्मा है, इस प्रकार जो हमने पूर्व युक्तिसहित आत्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकता कही सो क्या तैंने श्रवण किया नहीं। शङ्का। ननु, जब एकही आत्मा है तब सो सर्वत्र सुखी अरु दुःखी होवेगा ?। समाधान, तहां कहते हैं, यह प्रश्न सांख्यवादी का है, किंवा वैशेषिकादिकों का है। तिनमें जब यह सांख्यवादी का प्रश्न होवे, तब असंभव है, क्योंकि जिस करके सांख्यवादी जो है सो सुख दुःखादिकों के बुद्धि के समवाय सम्बन्ध के अङ्गीकारसे आत्मा को सुख दुःखादिक धर्मवान्पना इच्छता नहीं, अरु ज्ञानस्वरूप आत्मा के भेद की कल्पना बिषे प्रमाण नहीं, एतदर्थ यह सांख्यका प्रश्न संभवे नहीं॥ अरु जो ऐसा कहे कि आत्मा के भेद के अभाव हुए प्रधान को पर के अर्थ होनेका संभव होवेगा ऐसा कहे तो सो बने नहीं, क्योंकि प्रधान के भोग मोक्षरूप अर्थ के आत्मा बिषे असमवाय है ताते। अरु जब प्रधान का किया बन्ध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुषों बिषे भेद करके समवाय को प्राप्तहोवे, तब आत्मा की एकता करके प्रधान को परार्थ (जीवों का शेष) होनेका असंभव होवे। एतदर्थ पुरुष के भेद की कल्पना युक्तहै, परन्तु सांख्यवादियों ने बन्ध वा मोक्षरूप अर्थ पुरुष से समवाय सम्बन्धवाला अङ्गीकार किया नहीं, किन्तु निर्विशेष चेतनमात्र आत्मा अङ्गीकार कियाहै, एतदर्थ पुरुष की सत्तामात्र का कियाही प्रधान का परार्थपना सिद्धहै, नतु पुरुष के भेद का किया। किंवा प्रधान का जो परार्थपना है सो अन्यशेषी की अपेक्षा करता है, तिस बिषे भेद की अपेक्षा नहीं एतदर्थ पुरुषके भेद की कल्पना बिषे प्रधान का परार्थपना हेतु नहीं। अरु सांख्यवादियों को पुरुष के भेद की कल्पना बिषे अन्य प्रमाण है नहीं। अरु प्रधान जो है सो इस पर (पुरुष) की सत्तामात्र को ही निमित्त करके आप बद्ध होवे है अरु मुक्त होवेहै। अरु सेश्वर सांख्यवादियों के मत बिषे पर जो ईश्वरहै सो ज्ञानमात्र सत्ता स्वरूप से प्रधान की प्रवृत्ति बिषे हेतु नहीं, किन्तु किसी भी विशेषसे हेतु होगा। एतदर्थ सांख्यवादी करके केवल मूढ़तासेही पुरुष के भेद की कल्पना अरु वेदार्थ का परित्याग कियाहै, युक्ति अरु प्रमाण से नहीं॥ अरु जो वैशेषिकादिमतवादी कहतेहैं कि इच्छा आदिक आत्मा से समवाय सम्बन्धवाले हैं, सो उनका कहना भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असत् है । क्योंकि स्मृति के हेतु संस्कारों के अवयवरूप प्रदेशरहित [अर्थात् स्मृतिके हेतु जे संस्कार तिन संस्कारोंके अवयवरूप प्रदेश तिनसे रहित] आत्माबिषे समवाय का अभाव है ताते तिनके सिद्धान्त की असिद्धि होगी । अरु आत्मा अरु मन के संयोग से स्मृति की उत्पत्ति का अङ्गीकार करनेसे स्मृतिके नियमका असंभव होवेगा (आत्मा, मन के संयोगरूप स्मृति के कारण के होते अनुभवकाल बिषेभी स्मृति होवेगी) वा एककाल बिषे सर्व स्मृतियों की उत्पत्तिका प्रसंग होवेगा। भिन्न [किंवा समान जातिवाले अरु स्पर्शादिक गुणवाले पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध देखा है । जैसे मल्लोंका मेषोंका अरु रज्जुघटादिकनका सम्बन्ध है । तिस समानजाति अरु स्पर्शादि गुण के अभावसे आत्मा का मनआदिकों से सम्बन्ध की असिद्धि ते, अरु उक्त असमवायि कारण से ज्ञानादि गुणों की उत्पत्ति सिद्ध होवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जातिवाले स्पर्शादि गुणरहित जीवोंका मन आदिकोंसे सम्बन्ध युक्त है नहीं । अरु नैयायिकन के [गुणादिकों की समान जाति के अरु स्पर्शादिक गुण के अभावहुए भी द्रव्य से सम्बन्धवाले आत्मा का मन आदिकोंसे सम्बन्ध सिद्ध होताहै, इसप्रकार जो कदापि वादी कहै, सो बने नहीं ऐसा कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि स्वतन्त्र जो सन्मात्रवस्तु सो यहां द्रव्य शब्द करके कहते हैं । अरु वेदान्तियों के मतबिषे तिस द्रव्य से भेद करके गुणादिक विद्यमान हैं नहीं । क्योंकि " शुक्लःपटः षण्ढो गौरित्यादि " ८ शुक्लपट है, नपुंसक बैल है ? इत्यादि स्थान में गुण गुणी आदिकों के समानाधिकरण के देखने से । अरु द्रव्य ही कल्पना से तिस तिस आकार करके भासता है, इस प्रकार अङ्गीकार करनेसे । एतदर्थ दृष्टान्त का असंभव है नहीं] मतबिषे द्रव्य से रूपादिक गुणकर्म जातिविशेष अरु समवाय भिन्न हैं नहीं । अरु जब गुणादिक द्रव्य से अत्यन्त भिन्न ही होवें, अरु जब इच्छा आदिक आत्मा से अत्यन्त भिन्न होवें, तब भी तैसेही द्रव्य से गुणादिकों के सम्बन्ध का अरु आत्मा से इच्छा आदिकों के सम्बन्ध का असंभव होवेगा। अरु जो कहे कि अयुत (अभिन्न) सिद्ध वस्तुओं का समवायसंबन्ध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध विरोध को पावता नहीं, सो कथन बने नहीं [हे वादी ! तैंने जो यह गुणादिकों का अयुतसिद्धपना कहा, सो क्या अभिन्न कालवान्पनेरूप है, किंवा अभिन्न देशवान्पनेरूप है, किंवा अभिन्न स्वभाववान्पनेरूप है, किंवा संयोग अरु विभाग की अयोग्यतारूप है, इस प्रकार यह चार पक्ष हैं। तिनमें प्रथमपक्ष बने नहीं क्योंकि विकल्प को असहन करता है ताते। इस प्रकार कहते हैं] क्योंकि ऐसे होने से अनित्य इच्छा आदिकों से पूर्व नित्य आत्मा सिद्ध हैं ताते। अरु आत्मा के अयुत सिद्धपने का असंभव है [यहां क्या इच्छा आदिकों की अपेक्षा से आत्मा का अभिन्न कालवान्पना है, किंवा आत्मा की अपेक्षा से इच्छादिकों को अभिन्न कालवान्पना है। इस प्रकार विकल्प करके प्रथम पक्षके अर्थ दूषण दिया है] आत्मा से इच्छा आदिकन के अयुत सिद्धपने के होने से इच्छादिकों को आत्मगत महत्पनेवत् नित्यता का प्रसंग होवेगा, सो अनिष्ट है, क्योंकि इच्छादिकों की नित्यता के हुए आत्मा के मोक्ष के प्रसंग का अभाव होवेगा ताते। अरु [जब आत्मा के साथ इच्छा आदिकों को अभिन्न कालवान्पना है, तब आत्मा को अनादि होनेसे तिस बिषे स्थित जो महत्पना तद्वत् तिन इच्छा आदिकों को भी नित्यताकी प्राप्ति होवेगी, इसप्रकार कहते हैं] समवायसम्बन्ध को द्रव्य से इतरपने के हुए, जैसे द्रव्य अरु गुण का समवायसम्बन्ध है, तैसे तिस समवाय का द्रव्य से अन्य सम्बन्ध कहना योग्य है। अरु जो ऐसा कहे कि समवाय नित्य सम्बन्धही है, एतदर्थ तिनका अन्य सम्बन्ध कहना योग्य नहीं। तो तैसे [समवाय को नित्य सम्बन्धरूप होने से समवायसम्बन्धवाले द्रव्य गुण आदिकों को भी इस नित्य सम्बन्धवाले होनेसे कदाचित् भी भेद की अप्रतीतिसे तिनके भिन्नपने की प्रसिद्धिका असम्भव होवेगा, इस प्रकार दूषण कहते हैं] हुए समवायसंबन्धवाले द्रव्य गुण आदिकों को भी नित्यसम्बन्ध के प्रसंग से भिन्नता का असंभव होवेगा। अरु द्रव्यादिकों की अत्यन्त भिन्नता के हुए, स्पर्शवान् अरु स्पर्शवान् द्रव्य के असम्बन्धवत् तिनके सम्बन्ध का असंभव होवेगा। अरु आत्मा को गुणवान्पने के हुए इच्छा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिकों की उत्पत्ति अरु नाशवत् आत्मा को अनित्यता का प्रसंग होवेगा । अरु देह अरु फलादिकोंवत् सावयवपना, अरु देहादिकोंवतही विकारवान्पना यह उभय दोष निवारण करने को अयोग्य होवेंगे । जैसे [जब आत्मा को इच्छादिक गुणवान्पना नहीं, तब तिस को बन्धके अभावसे मोक्ष न होवेगा, एतदर्थ बन्धमोक्षकी व्यवस्था के असंभव से देह देह के प्रति सुख दुःखादि करके विशिष्ट आत्माके भेद की सिद्धि है, इसप्रकार की शङ्का करके कहते हैं] आकाश को अविद्या से आरोपित ' रज, धूम, अरु मलपने आदिक दोषवान्पना है, तैसेही आत्मा को अविद्या करके आरोपित बुद्धि आदिक उपाधि के किये सुख दुःखादि दोषवान्पना है ऐसे अङ्गीकार किये व्यावहारिक बन्ध अरु मोक्षादिक विरोध को पावते नहीं, क्योंकि सर्व वादियों करके अविद्याकृत व्यवहार का अङ्गीकार है ताते । अरु परमार्थ (मोक्ष) बिषे व्यवहार का अनङ्गीकार है ताते । एतदर्थ तार्किकों करके आत्मा के भेदकी कल्पना वृथाही किया है ॥ ५ । ८४ ॥

रूपकार्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै । आकाशस्य न भेदोस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ॥ ६ । ८५ ॥

६ । ८५ हेसौम्य ! । शङ्का । ननु, एकही आत्माबिषे अविद्याकृत आत्मा के भेद निमित्तक व्यवहार यद्यपि श्रुति आदिकोंसे बने हैं, तथापि अनुमान से कैसे बने हैं ? । समाधान । तहां कहते हैं, " रूपकार्य समाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै " ? रूप कार्य अरु नाम तिन तिन बिषे भिन्न देखते हैं ? अर्थात् जैसे इस एकही आकाश बिषे घट मठ कमण्डलु अन्तर्गृह आदिकों के सम्बन्धी आकाश के अल्पपने अरु महत्पने आदिक रूप । अर्थात् घटाकाशकी अपेक्षा मठाकाशको महत्पना अरु कमण्डलुगत आकाश को अल्पपना ' इत्यादि प्रकार एकही अखण्ड आकाश को घटादिकों के सम्बन्ध से अल्पपना अरु महत्पना आदि रूप । अरु जलका लाना धारण करना, अरु शयन करना इत्यादि कार्य, अरु घटाकाश मठाकाश कमण्डल्वाकाश अरु अन्तर्गृहाकाश, इत्यादिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिन घटादिरूप उपाधियों के किये नाम। अर्थात् एक आकाश बिषे जो घटाकाश मठाकाशादि नाम भेद हैं सो उन घटादि उपाधि के सम्बन्ध से हैं स्वरूप से ही नहीं। यह सर्व तिस तिस व्यवहार बिषे तहां २ भिन्न २ देखते हैं। अरु यह सर्व आकाश के रूपादिकों के भेदों का किया व्यवहार अपरमार्थसेही है, अरु परमार्थसे तो "आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः" ८आकाश का भेद है नहीं, तैसे जीवों बिषे निर्णय किया है ; अर्थात् जैसे आकाश बिषे जो नाम रूप क्रियादि सहित भेद है सो घटादि उपाधि अरु तिनके भेदका किया है। अरु वास्तव करके तो आकाश का भेद है नहीं। अरु जैसे आकाश के भेदरूप निमित्त का किया व्यवहार सो घटादिक उपाधियों के किये द्वार विना है नहीं। तैसेही देहादिरूप उपाधि के किये घटाकाशादि स्थानीय जीवों बिषे भेद के निरूपणसे बुद्धियों करके किया भेद है, वास्तव करके आत्मा के स्वरूप से भेद है नहीं, यह सम्यक् आत्मवेत्ताओं ने सम्यक् प्रकार निर्णय किया है॥ ६। ८५॥

नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा। नैवा त्मनः सदा जीवो विकारावयवौ तथा॥ ७। ८६॥

७। ८६ हे सौम्य!। शङ्का। ननु तहां घटाकाशादिकों बिषे रूप अरु कार्य आदिकों के भेदका व्यवहार परमार्थरूप आकाश का किया ही है। इस प्रकार का जो वादी का कथन सो बने नहीं। उ०। क्योंकि जैसे सुवर्ण का कुण्डल कङ्कणादि विकार है, वा जैसे जल का फेन बुदबुद बरफआदि विकार है, तैसे परमार्थरूप आकाश का घटाकाश विकार है नहीं। अरु जैसे वृक्ष की शाखा आदिक अवयव हैं, तैसे भी आकाश का घटाकाशादि अवयव भी नहीं। ताते घटाकाशादिकों बिषे जो भेद व्यवहार है सो परमार्थरूप आकाश का किया नहीं। ताते "नाकाशस्य घटाकाशो विकारावयवौ यथा" ८जैसे आकाश का घटाकाश विकार अरु अवयव नहीं ; अर्थात् जैसे कुण्डलादिक सुवर्ण के अरु बुदबुदादि जल के विकार अरु शाखादि वृक्ष के अवयव हैं, तैसे घटा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काशादि महदाकाश के विकार अवयव नहीं । अरु " नैवात्मनः सदा जीवो विकारावयवौ तथा " (तैसे आत्मा का जीव सर्वदा विकार अरु अवयव है नहीं ; अर्थात् जैसे आकाश के घटाकाशादि विकार अरु अवयव नहीं, तैसेही परमार्थ से सत्यरूप महाकाशस्थानीय एक अखण्ड अद्वैत निराकार परब्रह्म से अभिन्न आत्मा का यह घटाकाशस्थानीय जीव सर्वदा (सर्वथा) उक्त दृष्टान्तवत् विकार नहीं, अरु अवयव भी नहीं, एतदर्थ आत्मा के भेद का किया व्यवहार मिथ्याही है । यह अर्थ है ॥ ७ । ८६ ॥

यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः । तथाभवत्यबुद्धीनामात्माऽपि मलिनो मलैः ॥ ८ । ८७ ॥

८ । ८७ हे सौम्य ! [जीव जो है सो ब्रह्म का अंश नहीं अरु विकार भी नहीं किन्तु उपाधि बिषे प्रवेश को पाया ब्रह्मही जीव शब्द का वाच्य है । इस प्रकार जो तुमने कहा सो अयुक्त है । क्योंकि ब्रह्म तो (उपाधि से रहित (शुद्ध है ताते । अरु जीव जो है सो रागादिक मलवाला है ताते । अरु जीव अनेक हैं ताते, इत्यादि प्रकार से तिस (ब्रह्मजीव) की एकता का असंभवहै यह आशङ्का करके परमार्थसे जीव को भी मलवान्पना आदिक है नहीं, ऐसा कहते हैं] जैसे घटाकाशादिक जो नामरूप कार्यादिक भेद का व्यवहार है सो भेदबुद्धि का किया है , तैसेही उपाधिवाले जीवों का भेद अरु जन्म मरणादि व्यवहार है सो (अविद्या के किये हैं) ताते तिस अविद्यारचित भेद का कियाहुआ क्लेश कर्म फल अरु रागादिक मल करके युक्तपना है, परमार्थ से नहीं । इस अर्थ को दृष्टान्त से प्रतिपादन करने को इच्छते हुए कहते हैं " यथा भवति बालानां गगनं मलिनं मलैः " (जैसे बालकों को आकाश मलिन करके मलिन होता है ; अर्थात् जैसे लोक बिषे (विचारशून्य) अविवेकी बालकों को, परम शुद्ध जो आकाश है सो मेघ रज धूमादि मल करके मलिन (मैलवाला) भासता है, परन्तु जो आकाश के स्वभाव के जाननेवाले जे विवेकी पुरुष हैं तिनको आकाश मलवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीत होता नहीं। अर्थात् जिन पुरुषों को आकाश के यथार्थस्वरूप स्वभाव का ज्ञान है तिनको आकाश में धूमधूलिआदिकमल के होते सन्ते भी, आकाश मलिन प्रतीत होके जैसा है तैसाही प्रतीत होताहै। "तथा भवत्यबुद्धीनामात्माऽपि मलिनो मलैः" ९ तैसे आत्मा भी अबुद्धियों को मलकरके मलिन होताहै?। अर्थात् जैसे अविवेकी बालकों को आकाश धूम धूलि करके युक्त मलिन भासताहै। तैसे जो विज्ञाता प्रत्यक् चैतन्य परब्रह्मरूप आत्मा है, सो भी तिस प्रत्यगात्मा के यथार्थ विवेक से रहित अबुद्धिमान् (अज्ञानी) पुरुषों को क्लेश कर्म अरु कर्म फल इत्यादि मलों करके मलिन (विकारी) प्रतीत होताहै। अर्थात् सर्व शरीरों में शुद्ध बुद्ध मुक्तरूप एकही आत्मा है, परन्तु सो तैसा होता सत्ता भी अविवेकी पुरुषोंको देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरण क्लेश क्रिया फलादि धर्मवान्पने करके युक्त भासता है। परन्तु जैसे ऊषर देश को देखके तिस बिषे, जल की कामनावाला तृषित पुरुष जल फेन तरङ्गादिकों का आरोप करता है, तथापि तिस असत् आरोप से वो ऊषरदेश जल फेन तरङ्गादिवाला होता नहीं, तैसेही सदा शुद्ध निर्विकार प्रत्यगात्मा सो अबुद्ध अविवेकी अज्ञानी पुरुषों करके आरोप किये क्लेशादिक मल तिन करके मलिन होता नहीं। अर्थात् जिन पुरुषों को अपने आप सदा शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव प्रत्यगात्मा का यथार्थ ज्ञान नहीं सो पुरुष अपने आप आत्मा बिषे देहेन्द्रिय मन प्राणादिकों के जन्म मरणादि धर्मों का आरोप करते हैं, परन्तु तिनके आरोप से वो सदा शुद्ध आत्मा कदापि किसी प्रकार से विकारवान् मलिन सदोष होता नहीं। इत्यर्थः ॥ ८ । ८७ ॥

मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि । स्थितौ सर्व शरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः ॥ ९ । ८८ ॥

९ । ८८ हे सौम्य ! शङ्का [ननु, जीव जो है सो मरण के अनन्तर अपने धर्म (शुभाचरण) के अनुसार स्वर्ग को जाता है, अरु अधर्म (दुराचरण) के वश हुआ नरक को पावता है। अरु धर्म अधर्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोनों के सुख दुःखादि फल भोग के अनन्तर उनके क्षीण हुए पुनः यहां आयके कोई एक योनि में जन्मता है, अरु तहां भी यावत् प्रारब्ध भोग है तावत् स्थिर होय प्रारब्ध भोग आगे को धर्माधर्म कर्मकर पुनः भी परलोक के अर्थ गमन करता है । इसका आवागमन मिटा नहीं । इस प्रकार इस लोक अरु परलोक में अपने कर्मानुसार विचरने रूप व्यापारवाला जीव सो । आवागमन से रहित सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव एकरस कैसे होवेगा । जहां इस प्रकार की शङ्का है तहां कहते हैं] पुनः भी उक्त अर्थको ही वर्णन करते हैं "। मरणे संभवे चैव गत्यागमनयोरपि । स्थितौ सर्वशरीरेषु आकाशेनाविलक्षणः" । "सर्व शरीरों बिषे , जन्म, मरण, गमन, आगमन और स्थिति के हुए भी आकाश से अविलक्षण है" ; अर्थात् घटाकाश के जन्म मरण गमन आगमन अरु स्थितिवत् सर्व शरीरों बिषे आत्मा को जन्म मरण गमन आगमन औ स्थिति के हुए भी आत्मा आकाशसे अविलक्षण (आकाश के तुल्य) प्रतीति करने को योग्य है । अर्थात् घटाकाश जो है सो घट की उत्पत्ति होनेसे उत्पन्न हुएवत् अरु घटके ध्वंसहुए ध्वंसहुएवत् अरु घटके गये गयेवत् अरु घटके आये आयेवत् अरु घटके स्थितहुए स्थित हुएवत्, इत्यादि प्रकार घटाकाश बिषे जो उत्पत्ति आदि प्रतीत होवे है सो घटरूप उपाधि के सम्बन्ध से होवे है, परन्तु घट से पृथक् दृष्टिकर केवल आकाश कोही अनुभव दृष्टि से देखिये तो घट के वर्त्तमानकाल में भी आकाश उत्पत्ति विनाशादिकों से रहित अपने स्वरूप करके ज्यों का त्यों एकरसही है, तैसेही आकाश से भी महासूक्ष्म परिपूर्ण एकरस आत्मा बिषे जो जन्म मरण सुख दुःख अरु परलोकमें गमन पुनः आगमन इत्यादि प्रतीत होताहै सो शरीरादि संघातरूप उपाधि के सम्बन्धसे होताहै, नतु वास्तव अपने स्वरूप करके निरुपाधि आत्मा आकाशवत् गमनागमनादि संघात के धर्मों से रहित सदा एकरस परिपूर्ण विज्ञानघनही है । इस प्रकार अपने आप आत्मविषयक प्रतीत करनेको योग्य है, यह इसका भावार्थ है ॥ ६ । ८८ ॥

संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः । आधि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते॥ १०। ८९॥

१०। ८९ हे सौम्य! "संघाताः स्वप्नवत्सर्वे आत्ममायाविसर्जिताः" ८ सर्वसंघात स्वप्नवत् आत्मा की माया से रचित है; अर्थात् देह इन्द्रिय मन प्राणादिकों का सर्व संघात तो स्वप्न बिषे दृश्य (देखे) देहादिकोंवत्, अरु मायावी (इन्द्रजाली) पुरुष करके किये देहादिकोंवत् आत्मा की अविद्यारूपा माया से रचित है, परमार्थ से नहीं। अरु जिस करके तिर्यक् (तिरछे चलनेवाले पक्षी आदिक) के देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारण रूप संघातों की "आधिक्ये सर्वसाम्ये वा नोपपत्तिर्हि विद्यते" ८ आधिक्यता के हुए वा सर्व की साम्यता के हुए उपपत्ति विद्यमानहै नहीं; अर्थात्। तिर्यक् देहादिकों की अपेक्षा से देवादिकों के कार्य कारणात्मक संघातों की आधिक्यता के हुए [देवतादिकों के शरीरों को अतिपूजनीय होने करके सर्व से अधिकता के अङ्गीकार से तिनके असत्यपने की सिद्धि न होवेगी, यह शङ्का करके, देहके भेदों बिषे मूढ़पुरुषों की दृष्टि से चैतन्य की अधिकता को कल्पितहुए भी विवेकी पुरुषों की दृष्टि से सर्व देह समान पञ्चभूतात्मक होने से सर्वकी समता के अङ्गीकार किये संघातों की सत्यता बिषे कोई भी संभव नहीं इस प्रकार कहते हैं] वा सर्व की समता के हुए इन शरीरादि संघातों के सद्भाव का प्रतिपादक हेतु नहीं। इत्यर्थः॥ १०। ८९॥

रसादयोहि ये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके। तेषामात्मा परो जीवः खं यथा संप्रकाशितः॥ ११। ९०॥

११। ९० हे सौम्य! अब उत्पत्ति आदिकों से रहित इस अद्वैतरूप आत्मा को श्रुतिरूप प्रमाण करके सिद्धता के लखावने के अर्थ श्रुतिवाक्यों के कहने का आरम्भ करते हैं "रसादयो हि ये कोशा व्याख्यातास्तैत्तिरीयके" ८ रसादिक कोश तैत्तिरीय बिषे व्याख्यान किये हैं; अर्थात् अन्नमय, रसमय, प्राणमय, मनोमयादिक खड्गादिकों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के कोश (म्यान) वत् जो पञ्चकोश हैं सो यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद् विषे उत्तरोत्तर की अपेक्षा से [जैसे खड्गादिकों के कोश जो हैं सो खड्गादिकों की अपेक्षा बाह्य होते हैं, तैसेही इन पञ्चकोशों को भी कहते हैं। तिस विषे हेतु कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि पूर्व के अन्नमयादिक कोशों को पिछले २ प्राणमयादिकों की अपेक्षा से बाह्यपना होने करके, अरु सर्वान्तर आधाररूप ब्रह्म की अपेक्षा से आनन्दमय को भी तिनके तुल्य बाह्य होने से, इन अन्नमय से आनन्दमय पर्यन्त पांचों का कोशपना तुल्यही है] पूर्व के बाह्य भाव से व्याख्यान किये हैं "तेषामात्मा परो जीवः खं यथा संप्रकाशितः" ८ तिनका परला आत्मा जीव है, जैसे आकाश सम्यक् प्रकाश किया है ? अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशों का परब्रह्मरूप आत्मा जीव है ॥ शङ्का ॥ सो आत्मा तिन कोशों का जीव कैसे है ? समाधान । जिस अत्यन्त आत्मा आत्मा से यह पांच कोश भी आत्मावाले होते हैं, सो आत्मा तिन कोशों को जीवन का निमित्त है, एतदर्थ तिन अन्नमयादि कोशों का जीव है ॥ सो कौन है । उ० । जो परब्रह्मरूप आत्मा पूर्व "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ८सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है ? । इस प्रकार प्रसंगवश प्राप्त किया है । औ जिस आत्मा से स्वप्न अरु माया आदिकोंवत् आकाशादिकों के क्रम से अन्नमयादि कोशरूप संघात आत्मा की माया से रचित है, इस प्रकार कहा है । अरु सो आत्मा हमों करके जैसे आकाश है, तैसे "आत्माह्याकाशवत्" इत्यादि ८ आत्मा आकाशवत् है ? यह इस प्रकरण के तीसरे श्लोक से सम्यक् प्रकार प्रकाश किया । परन्तु नैयायिकों करके कल्पित आत्मावत् पुरुष की बुद्धि करके कल्पित प्रमाणों का विषयरूप आत्मा प्रकाश किया नहीं । यह अभिप्राय है ॥ ११ । ९० ॥

द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्मप्रकाशितम् । पृथिव्यामुदरेचैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः ॥ १२ । ९१ ॥

१२ । ९१ हे सौम्य ! [मैं मनुष्य हौं, प्राणी हौं, प्रमाता हौं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्ता हौं, भोक्ता हौं, इन उपाधिविशिष्ट पांचों का जो एक स्वरूप अनुस्यूत प्रत्यक् चैतन्य है सो ब्रह्मही है, इस प्रकार जीव ब्रह्म की एकता बिषे तैत्तिरीय श्रुति के तात्पर्य को कहके, अब तिसही अर्थ बिषे बृहदारण्यक उपनिषद् की श्रुतिके भी तात्पर्य को कहते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्गत मधुब्राह्मण बिषे बहुत से पर्यायन में अधिदैव अरु अध्यात्मरूप भिन्नस्थानों बिषे "अयमेवसइति" ८ यह ही सोहै ? इस प्रकार परब्रह्मरूप प्रत्यगात्मा प्रकाश किया (लखाया) है एतदर्थ बृहदारण्यकश्रुति का भी इस ब्रह्म और आत्मा की अभेद एकताबिषे तात्पर्य है। यह इस श्लोक के पूर्वार्द्ध का अर्थ है] किंवा "अधिदैवमध्यात्मञ्च तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषः पृथिव्याद्यन्तर्गतो यो विज्ञाता पर एवात्मा ब्रह्म सर्वमिति" ८ अधिदैव अरु अध्यात्मतेजोमय अमृतमय पृथिव्यादिकों के अन्तर्गत जो विज्ञाता पुरुष है ? सो परमात्माही है, सर्वब्रह्म है ८ इस प्रकार "द्वयोर्द्वयोर्मधुज्ञाने परंब्रह्म प्रकाशितम्" ८ द्वय द्वयबिषे परब्रह्म प्रकाश किया है मधुज्ञानबिषे ; अर्थात् उक्त प्रकार दोनों २ स्थानों बिषे द्वैत के क्षय होने पर्यन्त परब्रह्म प्रकाशित किया है॥ प्र०॥ कहां प्रकाशित किया है ? ॥ उ०॥ जिस बिषे ब्रह्म विद्या नामक मधु (अमृत) अमृतत्व का मोद न होनेसे। अर्थात् ब्रह्मविद्या का अमृतत्व (मोक्ष) परमानन्द की प्राप्ति का हेतु होनेसे मधु वा अमृत कहते हैं, अरु यही मुख्य अमृत है क्योंकि इसही करके जन्म मरणादि लक्षणवान् जीव सकारण मरण से रहित अमर अभय भाव को प्राप्त होता है। जानते हैं, ऐसा जो मधुज्ञान। अर्थात् बृहदारण्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के अन्तक मधुब्राह्मण। तिस बिषे प्रकाशित किया है। प्र०। किसवत् प्रकाशित किया है। उत्तर। "पृथिव्यामुदरे चैव यथाऽऽकाशः प्रकाशितः" ८ जैसे पृथिवी अरु उदर बिषे आकाश प्रकाशित किया है जैसे लोकबिषे, पृथिवी बिषे अरु उदर बिषे एकही आकाश अनुमान प्रमाण से प्रकाशित कियाहै, तैसे मधु ब्राह्मण में पृथिवी आदिकों बिषे अधिदैवरूप अरु शरीरादिकों बिषे अध्यात्मरूप से परब्रह्म ही प्रकाशित किया है। इत्यर्थः॥ १२। ९१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेनप्रशस्यते । नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवंहि समञ्जसम् ॥ १३ । ६२ ॥

१३ । ६२ हे सौम्य ! " जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते " ८ जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अभेद करके प्रशंसा का विषय करते हैं ; अर्थात् जो कि युक्तियों से अरु श्रुतियों के प्रमाण से निर्धार किया जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना । अर्थात् " तत्त्वमस्यादि " महावाक्यों करके त्वंपद के लक्ष्य अरु तत्पद के लक्ष्य का अनन्य अभेदपना । व्यासादिक महर्षियों करके शास्त्र (ब्रह्मसूत्रादि वेदान्त) से अभेद करके प्रशंसा का विषय किया है । अर्थात् श्रुतियों के महावाक्यों करके निर्धार निश्चित किया जो जीव अरु परमात्मा का अनन्यपना अरु तिस अनन्यपने का यथार्थज्ञान, अरु तिस ज्ञानसम्पन्न ज्ञानी, इनको व्यासादि महर्षियों ने अपने ब्रह्मसूत्रादि शास्त्र करके प्रशंसा के विषय किये हैं " सत्यं वै अभेदो " " ज्ञानादेवतु कैवल्यं " " ज्ञानं विमोक्षाय " " ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति " " तस्मादित्यवज्ज्ञानं " " ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम् " इत्यादि प्रमाण से । अरु " नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवं हि समञ्जसम् " ८ नानात्वनिन्दा का विषय किया है, जो सो ऐसेही समीचीन है ; अर्थात्, जो सर्व प्राणियों को साधारण स्वाभाविक (अविद्यारचित) शास्त्र से बाह्य किये कुतर्कों के कर्ता वादियों करके रचित नानात्व दर्शन तिनको । वेदशास्त्राचार्यमहर्षियों ने निन्दा का विषय किया है । तथाच " नतु तद्द्वितीयमस्ति " " द्वितीयाद्वैभयं भवति उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति " " इदं सर्वम् यदयमात्मा " " मृत्योःसमृत्युमाप्नोति, इत्यादि " ८ सो द्वितीय नहीं है, द्वितीय से निश्चय करके भय होता है, जो यह सर्व है, सो यह आत्मा है, अल्पभी अन्तर को करता है पश्चात् तिस को भय होता है, सो मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है जो यहां (आत्मा अरु ब्रह्म विषे) नानावत् देखता है, इत्यादि श्रुतिवाक्यों करके अरु अन्य ब्रह्मवेत्ता पुरुषों करके निन्दा का विषय किया है । अरु जो यहहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो ऐसेही समीचीन है। अरु जो तर्क करनेवाले पुरुषों करके कल्पना करीहुई कुदृष्टियां हैं, सो तो समीचीन नहीं। अरु निरूपण करीहुई घटना को प्रकाशे भी नहीं॥ यह अभिप्राय है॥ १३। ९२॥

जीवात्मनोः पृथक्त्वंयत्प्रागुत्पत्तेःप्रकीर्तितम्। भविष्यद्वृत्त्यागौणंतन्मुख्यत्वं हि न युज्यते॥ १४। ९३॥

१४। ९३ हे सौम्य!। शङ्का। ननु, सम्यक् ज्ञान से पूर्व। अर्थात् जिस सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाली उपनिषदों के वाक्यों से पूर्व कर्मकाण्ड बिषे। "इदं कामोऽदः कामइति" ८ यह काम है यह काम है, इस प्रकार अनेक काम करके कामना के भेद से जीवों का भेद कहा है अरु "परञ्च सदाधारपृथिवीद्यामित्यादि मन्त्रवर्णैः" ८ सो परमात्मा इस पृथिवी अरु स्वर्गको धारण करताहुआ, इत्यादि मन्त्रों के कथन से तिन। पृथिव्यादिकों से पृथक् परमात्मा कहा है, इस प्रकार जो जीव अरु परमात्मा का पृथक्पना कहाहै। तहां कर्मकाण्ड अरु ज्ञानकाण्ड के वाक्यों से विरोधहुए ज्ञानकाण्ड के वाक्यों के एकतारूप अर्थकाही समीचीनपना कैसे निश्चय करते हौ, जहां ऐसी शङ्का है, तहां कहते हैं। समाधान "। जीवात्मनोः पृथक्त्वं यत्प्रागुत्पत्तेः प्रकीर्तितम्"। ८ सम्यक् ज्ञानरूप। उत्तरकाण्ड के। पूर्व जो जीव अरु परमात्मा का पृथक्पना कहा है? अर्थात् "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" "यथाऽग्नेः क्षुद्राविस्फुलिङ्गाः" "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" "तदैक्षत" "तत्तेजोऽसृजत, इत्यादि" ८ जिससे प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, जैसे अग्नि से क्षुद्रविस्फुलिङ्ग होते हैं? जिस वा इस आत्मा से आकाश उपजता हुआ, सो ईक्षण करताहुआ, सो तेज को सृजता हुआ, इत्यादिक सम्यक् ज्ञानरूप अर्थवाले उपनिषदों के वाक्यों से पूर्वकर्मकाण्डबिषे जो जीव अरु परमात्मा का भिन्नपना कहा है "। भविष्यद्वृत्त्या गौणं तन्मुख्यत्वं हि न युज्यते"। ८ सो भविष्यद्वृत्ति से गौण है निश्चय करके मुख्यपना घटता नहीं? अर्थात् कर्मकाण्ड बिषे जो जीव अरु परमात्मा का पृथक्पना कहा है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो परमार्थरूप नहीं, किन्तु महदाकाश अरु घटाकाश के भेदवत् "यथौदनं पचतीति" ८ चावल की (रसोई) पकावताहै ? इस वाक्य बिषे जैसे भविष्यत् प्रवृत्ति से चावलों बिषे भोजनपना है, तद्वत् गौण है परन्तु भेदवाक्यों का कदाचित् भी मुख्य भेदरूप अर्थवान्पना घटता नहीं, क्योंकि आत्मा के भेद के वाक्यों को स्वाभाविक (अनादि) अविद्यावाले प्राणियों की भेद दृष्टि अनुवादी (अनुवाद करनेवाली) है ताते । अरु यहां उपनिषद् बिषे उत्पत्ति अरु प्रलयादिकों के वाक्यों से, अरु "तत्त्वमसि" "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद" ८ सो तू है, यह अन्य है मैं अन्य हौं, ऐसे जो जानता है सो नहीं जानता, इत्यादि श्रुतिवाक्यों से जीवात्मा अरु परमात्मा का ऐक्यपना ही प्रतिपादन करने को इच्छित है । एतदर्थ उपनिषदों बिषे एकपना श्रुति करके प्रतिपादन करनेको इच्छितहोवेगा, इस प्रकार भविष्यवृत्तिवाले उत्पत्त्यादिकों के वाक्यों की मुख्यावृत्ति को आश्रय करके, जो लोक बिषे भेद दृष्टि का अनुवाद है, सो गौणही है । यह अभिप्राय है ॥ अथवा "तदैक्षत, तत्तेजोऽसृजत" ८ सो ईक्षणकरता (इच्छा वा देखता) हुआ, सो तेज को सृजताहुआ ? इत्यादिक वाक्यों से "उत्पत्तेः प्रागेकमेवाद्वितीयम्" ८ उत्पत्ति से पूर्व एकही अद्वितीय था ? इस प्रकार एकपना कहा है । अरु "तत्सत्यं सआत्मा तत्त्वमसि" ८ सो सत् है, सो आत्मा है, सो तू है ? इस प्रकार सोई एकपना होवेगा । इस प्रकार की त्रिविध भविष्यद्वृत्ति की अपेक्षाकरके जो जीव अरु आत्मा का भिन्नपना जहां किसी भी वाक्य बिषे जानने में आवता है, सो "यथौदनं पचतीति" ८ चावल की रसोई पकावता है ? इस वाक्य बिषे जैसे भविष्यद्वृत्ति से तण्डुलों बिषे भोजनपना है, तद्वत् गौण है ॥ हे सौम्य ! यहां जो जीव अरु परमात्मा में भेद के बोधक कर्मकाण्ड के वेद मन्त्र को गौणपना कहा है तिसका यह भी अभिप्राय जानना कि कर्मकाण्ड वेद है सो यज्ञादि कर्मोंद्वारा संसार का ही प्रवर्तक अरु प्रापक है, एतदर्थ उसको उपनिषद् ज्ञानकाण्ड ' जो समूल जगत् का निवर्तक अरु परमानन्द मोक्ष का प्रापक है, बिषे "तत्रापरा ऋग्वेदो" इत्यादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाक्यों करके अविद्यात्मक कहा है, एतदर्थ कर्मकाण्ड के वा अन्य के जे जीवात्मा अरु परमात्मा के भेद के बोधक वाक्यहैं तिनकी गौणीवृत्ति जाननी ॥ १४ । ९३ ॥

मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदिताऽन्यथा । उपायः सोऽवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन ॥ १५ । ९४ ॥

१५ । ९४ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, यद्यपि उत्पत्ति से पूर्व जन्मरहित सर्व एकही अद्वितीय था, तथापि उत्पत्ति के अनन्तर यह सर्व उत्पन्न हुआ है अरु जीव भिन्न है, इस प्रकार मत कहो क्योंकि उत्पत्ति की श्रुति का अन्य अर्थ है ताते । अरु " स्वप्नवदात्ममायाविसर्जिताः संघाताः घटाकाशोत्पत्तिभेदादिवज्जीवानामुत्पत्तिर्भेदादिरिति " ८ संघात स्वप्नवत् आत्मा की माया से रचित है, अरु घटाकाश की उत्पत्ति अरु भेदादिकोंवत् जीवों की उत्पत्ति अरु भेदादिक हैं ? इस प्रकार पूर्व भी हमने यह दोष निवारण किया है, एतदर्थ भी यह प्रश्न अवकाशरहित है । अरु इसही से उत्पत्ति अरु भेदादिक की श्रुतियों से खींचके यहां पुनः उत्पत्ति की श्रुतियों के ब्रह्मआत्मा की एकता बिषे तात्पर्य के प्रतिपादन करने की इच्छा से यह कहने का आरम्भ है । तथाच " मृल्लोह विस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदितान्यथा " ८ मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादि से अरु अन्य प्रकार से जो सृष्टि कही है ? अर्थात्, । " यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्यात् " " यथा सौम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातंस्यात् " " यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः " इत्यादि श्रुतियों करके कहे । मृत्तिका लोह अरु विस्फुलिङ्गादिकन के दृष्टान्त के कथन से जो सृष्टि कही है, अरु अन्यप्रकार से जो सृष्टि कही है, सो सर्व सृष्टि का प्रकार हमारे (ब्रह्मवेत्ताओं के) मत बिषे जीवात्मा अरु परमात्मा के एकता की बुद्धि की उत्पत्ति के अर्थ उपाय है । अरु जैसे प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद बिषे वाक् आदिकों की आख्यायिका श्रवण करते हैं । अरु देवता अरु असुरों के संग्राम बिषे देवताओं ने उद्गातापने करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वीकार किये वागादिकन के पाप से असुरों करके बधादि होने की आख्यायिका श्रवण करते हैं, सो सर्व प्राण की श्रेष्ठता के बोध की उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है। तैसेही श्रुति उक्त सृष्टिआदिक की प्रक्रिया भी अद्वैत बोध की उत्पत्ति के अर्थ कल्पित है॥ अरु जो ऐसा कहे कि, संवाद श्रुति के मुख्यार्थ होने से सो श्रुति उक्त उदाहरण भी असिद्ध होवेगा। सो कथन बने नहीं, क्योंकि अन्य शाखा बिषे अन्य प्रकार से प्राणादिकों के संवाद के श्रवण से जब संवाद परमार्थ रूपही होता, तब सो संवाद एक रूपही सर्व शाखाओं बिषे श्रवण करने में आवता। अरु अनेक विरुद्ध प्रकार से जो श्रवणकरने में आवता है सो तैसे सुनाजाता नहीं। [श्रुतियां कहीं कहीं प्राणादिक परस्पर में विवाद करतेहुए आपही अपने निर्णय करने में असमर्थ होय प्रजापति (ब्रह्म) के पासगये। अरु अपने परस्परके विवादके हेतुको श्रवणकराय अपने विवाद का निर्णय इच्छते हुए। तब प्रजापति ने कहा कि। तुम्हो सर्व के मध्य से। जिसके निकल जाने से यह शरीर अमङ्गलरूप होय तिसको तुम सर्व बिषे श्रेष्ठ जानो। इस प्रकार तिन। प्राणादिकों। का। अपने निर्णयार्थ। देह से बाह्य गमन करना श्रवण होता है। अरु किसी एक श्रुतिबिषे तो। उन प्राणादिकों को स्वतन्त्रहोने करके। परस्पर में अपनी २ ज्येष्ठता श्रेष्ठता के निर्णयार्थ परस्पर में कहते हुए कि। जिसके उत्क्रमण होने (निकलजाने) से यह शरीर मृत हुआ पतन होय, सोई अपने सर्व के मध्य श्रेष्ठ है। इस प्रकार विचार के। अपने ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व के निर्णयार्थ। तिनका देह से बाह्य गमन कहा है। अरु किसी श्रुतियों करके पुनः वाक्, चक्षु, श्रोत्र, अरु मन, इन चतुष्टयों को, मुख्य प्राण से ये भिन्न हैं, ऐसा श्रवण करने में आवता है। अरु कहीं त्वचा आदिक को प्राण करके श्रवण करते हैं॥ इस प्रकार परस्पर में विरुद्ध अनेक प्रकार से प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद का श्रवण है इस अभिप्राय से कहते हैं।] अरु जिस करके। परस्पर में। विरुद्ध अनेक प्रकारसे। प्राण अरु इन्द्रियों का। संवाद श्रवण करने में आवता है, तिसही करके। प्राणादिकोंके।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संवाद की श्रुतियों का अपने मुख्यार्थबिषे तात्पर्य नहीं, किन्तु अन्य अर्थ बिषेही है। अर्थात् सर्व के मध्य प्राण के ज्येष्ठत्व श्रेष्ठत्व के लखावने के अर्थ बिषेही सर्व संवाद की श्रुतियों का तात्पर्य है, क्योंकि सर्व विरुद्ध संवादों में भी प्राण की ज्येष्ठ श्रेष्ठता अविरुद्धही प्रकाशित है। तिनका तात्पर्य है। [उक्त दृष्टान्त के अनुसार से जगदुत्पत्ति के वाक्य भी। मुख्यता सें। स्वार्थ बिषे तात्पर्यवाले नहीं। क्योंकि कहींक। तैत्तिरीयउपनिषद् की "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" इस। श्रुति बिषे आकाशादिकोंके क्रमसे सृष्टि कही है। अरु कहींक। छांदोग्य उपनिषद् बिषे "तत्तेजोऽसृजत" इत्यादि प्रकार तेज के क्रमसे सृष्टि कही है। अरु कहींक। प्रश्नोपनिषद् बिषे "आत्मनः एष प्राणो जायते", इत्यादि प्रकार प्राणादिकों के क्रमसे सृष्टि कही है। अरु कहींक क्रम विनाही सृष्टि कही है। इस प्रकार। सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियों का। परस्परमें विरोध देखने से यहां कहते हैं] तैसेही उत्पत्ति के वाक्य भी शाखाओं के भेद से विरुद्ध अनेक प्रकारके होनेके कारण। वो अपने। मुख्यार्थ बिषे तात्पर्यवाले नहीं, किन्तु अन्य अर्थ बिषे तात्पर्यवाले हैं। अर्थात् सृष्टि की प्रतिपादक श्रुतियों का परस्पर में भिन्न २ विरुद्ध कथन से प्रतीत होताहै कि वास्तव करके सृष्टि कुछ हुई नहीं, क्योंकि जो वास्तव करके सृष्टि हुई होती तो सर्व श्रुतियों की एक वाक्यता हरु एक ही क्रम होता, अरु तिसही करके उन श्रुतियों के। सृष्टिप्रतिपादक वाक्य। अपने मुख्यार्थ बिषे तात्पर्यवाले नहीं, किन्तु अन्य मुख्यार्थ बिषे तात्पर्यवाले हैं। अर्थात् सृष्टिप्रतिपादक श्रुतियों बिषे परस्पर में विरुद्ध क्रम होने से प्रतीत होता है कि उन श्रुतियों का तात्पर्यार्थ सृष्टि के प्रतिपादन बिषे न होयके एक अद्वैत आत्मतत्त्व के लखावने बिषे तात्पर्य है, क्योंकि उन श्रुतियों बिषे क्रमका विरुद्ध भेद है परन्तु सर्व श्रुतियों ने सृष्टि का कारण अधिष्ठान एक सत् चैतन्य आत्मा ब्रह्मही कहा है, ताते उन सर्व श्रुतियों का मुख्य तात्पर्य एक अद्वैत आत्मतत्त्व के प्रकाशने बिषे है अन्य बिषे नहीं। अरु जो ऐसा कहैं कि कल्प कल्प की सृष्टि के भेदसे संवादकी श्रुतियों का भी सृष्टि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सृष्टि के प्रति अन्यथापना होवेगा, सो कथन बने नहीं, क्योंकि उक्त बुद्धि की उत्पत्तिरूप प्रयोजन के विना संवादकी श्रुतियों की निष्फलता होती है ताते । अरु संवाद अरु उत्पत्ति की श्रुतियों का, उक्त बुद्धि की उत्पत्ति के विना अन्य प्रयोजनवान्पना कल्पना करनेको शक्य नहीं । अर्थात् प्राणादिकों के संवाद की श्रुतियों का अरु सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियों का, शरीरादि संघात में सर्वका ज्येष्ठ श्रेष्ठत्वपना, अरु आत्मा का एक अद्वैतपना जानने की बुद्धि की उत्पत्ति के विना अन्य प्रयोजन कल्पना करने को शक्य नहीं । अरु जो ऐसा कहै कि प्राणादिभाव की प्राप्तिके लिये ध्यानार्थ प्राणादिकों का कीर्तन है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि कलह की उत्पत्ति अरु प्रलय की प्राप्ति यह सर्वकोही अनिष्ट होवे है ताते उक्त आख्यायिका प्राणका कीर्तन नहीं। एतदर्थ उत्पत्त्यादिकों की जो श्रुतियां हैं सो आत्मा के एकता की बुद्धि की उत्पत्त्यर्थ हैं, अन्य अर्थवाली कल्पना करनेको योग्य नहीं । एतदर्थ उत्पत्ति आदिकों का किया भेद किसी प्रकार से भी है नहीं ॥ १५॥

आश्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः । उपासनोपदिष्टेयं तदर्थमनुकम्पया ॥ १६ । ९५ ॥

१६ । ९५ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, "एकमेवाद्वितीयम्" एकही अद्वितीय है, इत्यादि श्रुतियों के वाक्य प्रमाण से यदि परब्रह्मरूप आत्मा नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त, स्वभाववाला एक परमार्थरूप सत् है अरु अन्य असत्य है, तब "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः" "यआत्माऽपहतपाप्मा, सक्रतुंकुर्वीत" "आत्मेत्येवोपासीतेत्यादि" अरे मैत्रेयी ! आत्मा निश्चय करके देखनेयोग्य है, जो आत्मा पाप रहित है सो ध्यानकरने के योग्य है, सो अधिकारी क्रतु (उपासना के संकल्प) को करे, आत्मा है इस प्रकारही उपासना करना इत्यादि श्रुतिवाक्यों से यह उपासना किस अर्थ उपदेश किया है। अग्निहोत्रादि कर्म किसवास्ते उपदेशकिये हैं ॥ जहां ऐसी शङ्का तहां सिद्धान्ती कहे हैं, कि हे वादिन् ! तहां कारण श्रवणकर !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रमास्त्रिविधाहीनमध्यमोत्कृष्टदृष्टयः" (आश्रम तीन प्रकारके हैं मन्द, मध्यम अरु उत्कृष्ट दृष्टि करके युक्त हैं) अर्थात् आश्रम। अर्थात् आश्रमवाले अधिकारी। अरु आश्रमशब्द के देखावने के अर्थ शूद्र से पृथक् सन्मार्गगामी वर्ण (वर्णवाले अधिकारी) तीन प्रकार के हैं। प्रश्न। कैसे वे तीन प्रकार के हैं। उत्तर। वे मन्द, कार्य ब्रह्म को विषय करनेवाली, अरु मध्यम, कारण ब्रह्म को विषय करनेवाली, अरु। उत्कृष्ट, शुद्ध अद्वैत को विषय करनेवाली, दृष्टि (बुद्धिकी सामर्थ्य) करके युक्त है। वा 'मन्द वैश्य वर्ण, मध्यम क्षत्रिय वर्ण, उत्कृष्ट ब्राह्मणवर्ण, यह तीन क्रमशः उक्तप्रकार की दृष्टि करके युक्त हैं" उपासनोपदिष्टेयंतदर्थमनुकम्पया" (तिनके अर्थ दया करके यह उपासना उपदेश किया है) अर्थात् तिन मन्द अरु मध्यम। कार्य ब्रह्म की अरु कारणब्रह्म की। दृष्टिवाले वर्णाश्रमियों के अर्थ, कि मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले सन्मार्गगामी हुए इस सर्वोत्तम। ब्रह्म आत्मा की। एकता की सम्यक् दृष्टि को कैसे प्राप्त होवेंगे?। इनको भी अभेद दृष्टि' जो परम कल्याणकारी है, प्राप्त होनी चाहिये। इस प्रकार विचार के परमदयालु वेदने उन पर दयाकरके यह उपासना उपदेश कही है, अरु कर्म उपदेश किये हैं। अर्थात् जो मन्द मध्यम अधिकारी है, जिनको अभेद सर्वात्मदृष्टि प्राप्त होनेकी इच्छा है तिन पुरुषों के हितार्थ दया करके वेद भगवान् ने उनके अन्तःकरण की शुद्धि के अर्थ विहित नित्य निष्काम कर्म अरु अन्तःकरण की स्थिरता के अर्थ प्रणव की वा श्रवण मननरूपसे आत्मा की ज्ञानाङ्ग उपासना कही है, क्योंकि अन्तःकरण के मलविक्षेपरूप दोष अभाव हुए विना आवरण भङ्गपूर्वक सर्वात्म अभेद दृष्टि प्राप्त होवे नहीं। "आत्मैकएवाद्वितीय" (आत्मा एकही अद्वितीय है) इस प्रकार की निश्चयात्मक उत्तमदृष्टि जिन को प्राप्त हुई है तिन उत्तमाधिकारी के अर्थ कर्म उपासना कही नहीं। क्योंकि "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" "तत्त्वमसि" "आत्मैवेदं सर्वमिति" [उपास्य जो है सो ब्रह्मही नहीं, इस प्रकार के निषेध से उपासना को मन्द मध्यम दृष्टि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाले पुरुषों की विषयता भासती है, ऐसा कहते हैं] जिसको मन से मनन करता नहीं, अरु जिसने मनको जान्यो है तिसहीको तू ब्रह्मजान, जिस इसको लोक उपासते हैं यह ब्रह्म नहीं। सो तू है, आत्माही यह सर्वहै ॥ इत्यादि श्रुतियों से ॥ १६ । ९५ ॥

स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनोनिश्चिताद्दढम् । परस्परं विरुध्यन्ते तैरियं न विरुध्यते ॥ १७ । ९६ ॥

१७ । ९६ हे सौम्य ! शास्त्र अरु युक्ति करके निश्चित होनेसे अद्वैत आत्मा का दर्शन (यथार्थ अनुभव) सम्यक् दर्शन है, ताते अन्यदर्शन शास्त्र अरु युक्ति से बाह्य होने करके मिथ्यादर्शन हैं, यह निर्धार किया। अब इस कथन के हेतु से भी द्वैतवादियों का मिथ्या दर्शनहै, क्योंकि उन द्वैतवादियों को रागद्वेषादि दोषों करके युक्तपना है ताते (अरु उनके यहां अद्वैतबोधक श्रुतियों का अग्रहण है अरु जो कदापि ग्रहण भी है तो विपरीत अर्थ से है ताते) । प्रश्न । उन द्वैतवादियों को उक्त दोष करके युक्तपना कैसे है, । उत्तर । तहां कहते हैं " स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिताद्दढम् " (द्वैतवादी अपने सिद्धान्त की रचना के नियमों बिषे दृढ़ निश्चित हुए) अर्थात् कपिल कणाद अरु बुद्ध इन आदिकों की दृष्टिके अनुसारी जो द्वैतवादी हैं सो अपने सिद्धान्त की रचना के नियमों में " एवमेवैषपरमार्थो नान्यथेति " ८ यह ऐसे ही परमार्थ रूप है अन्यथा नहीं ? इस प्रकार तहां तहां (अपने अपने सिद्धान्तों बिषे) दृढ़ आसक्त हुए । अरु अपने प्रतिपक्षी को देख तिस के अर्थ द्वेष करतेहुए (अर्थात् द्वैतवादी अपने २ कल्पित सिद्धान्तों में आसक्त हुए) अरु " परस्परं विरुध्यन्ते तैरियं न विरुध्यते "८ परस्पर विरोध करते हैं तिस करके यह विरोध को पावता नहीं ? अर्थात् कपिलादि द्वैतवादी स्वकल्पित सिद्धान्त में रागपूर्वक आसक्त हुए अपने प्रतिपक्षियों से द्वेषमान उनकी निन्दापूर्वक उनके सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं । इस प्रकार राग द्वेष करके युक्त हुए अपने सिद्धान्त के दर्शन के निमित्त ही परस्पर विरोध को पावते हैं । तिन परस्पर विरोधवादियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके यह हमारा वेदोक्त आत्मा की एकता के दर्शन का पक्ष सर्व से अन्यक् (अनन्य) होनेसे 'जैसे पुरुष अपने हस्त पादादिकों से विरोध को प्राप्त होता नहीं, तैसेही, विरोध को पावता नहीं। अरु सर्वत्र एक आत्मा की दृष्टिवाला सम्यक् आत्मवेत्ता "नातिवादी" अतिवादी किसी की भी निन्दा स्तुतिकरनेवाला होता नहीं। इस प्रकार रागद्वेष की अनाश्रयता (त्यागी) होने से आत्मा की एकता की बुद्धि ही सम्यक्दर्शन है, इतर नहीं। इत्यभिप्रायः॥ १७। ९६॥

अद्वैतं परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते। तेषामुभयथा द्वैतं तेनायं न विरुद्ध्यते॥ १८। ९७॥

१८। ९७ हे सौम्य!। प्रश्न। किस हेतुकरके यह। अद्वैत सर्वात्मा। इस तिन। द्वैतवादियों से। विरोध को पावता नहीं,। उत्तर। "अद्वैतं परमार्थो हि द्वैतं तद्भेद उच्यते" ८ अद्वैतही परमार्थरूप है, द्वैत तिस का भेद कहते हैं; अर्थात् जिस करके अद्वैत ही परमार्थरूप है, अरु इस जो नानात्व सो तिस अद्वैत का भेद कहिये कार्य कहते हैं। अर्थात् जितना कुछ द्वैत नानात्व है सो सर्व अद्वैतका ही भेदरूप कार्य है, क्योंकि "एकमेवाद्वितीयम्, तत्तेजोऽसृजत" ८ एकही अद्वितीय था सो तेज को सृजता हुआ > इस प्रकार श्रुति का प्रमाण है ताते। जो निर्विकल्प समाधि बिषे, अरु घन सुषुप्ति बिषे, अरु गाढ़ मूर्च्छा बिषे, द्वैत के अभाव हुए अपने चित्त के स्फुरण के अभाव से द्वैत के अदर्शनरूप युक्ति करके अद्वैतही सिद्ध है। अर्थात् उक्त प्रकार समाधि सुषुप्ति अरु मूर्च्छा इन तीनों अवस्था बिषे चित्तवृत्ति के अफुर हुए द्वैत के अभाव से केवल उनका साक्षी अद्वैत आत्मा ही अवशेष रहता है, इस युक्ति के सारा नानात्व चित्त की स्फुरणा करके कल्पित है, अरु बिना आश्रय कल्पना होवे नहीं, अतएव एक अद्वैत आत्मसत्ता के अनाश्रय चित्त की स्फुरण नानात्व की कल्पना करेहै। । ताते नानात्व को अद्वैत का कार्य कहते हैं, कारण नहीं। अरु "तेषामुभयथा द्वैतं तेनायं न विरुद्ध्यते" ८ तिनको उभय प्रकार से भी द्वैतही है, तिनसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह विरोध को पावता नहीं ; अर्थात् तिन द्वैतवादियों को तो व्यवहा
अरु परमार्थ इन उभय प्रकार से भी द्वैतही है । अरु जब उन भे
भेदी पुरुषों को द्वैत की दृष्टि है, अरु अस्मदादि अभ्रान्त अभेदी पु
को अद्वैत की दृष्टि है, तब तिस हेतुकरके यह हमारा अद्वैतपक्ष तिन
से विरोध को पावता नहीं "इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते" "नेह
द्वितीयमस्ति" 'इन्द्र माया करके बहुतरूप पावता है' सो तो द्वि
है नहीं, इन श्रुतियों के प्रमाण से । [भ्रान्तिरूप मूल है जिसका
द्वैत के सिद्धान्त से, प्रमाणरूप मूल है जिसका ऐसा अद्वैत सिद्धा
अविरुद्ध है, इस अर्थ को यहां दृष्टान्त से प्रतिपादन करते हैं]
उन्मत्त गजारूढ़ हुआ जो पुरुष सो पृथ्वी पर आरूढ़ हुए पुरुष के
"गजारूढोऽहं वाहय मां प्रतीति" ८ मैं गजारूढ़ हौं मेरे प्रति वह
कर (लेजा) इस प्रकार के कहनेवाले भी उन्मत्त पुरुषों को दोसि
तिसके ताईं विरोध बुद्धि से बहन करता नहीं, तद्वत् । ताते परमार्थ
ब्रह्म चैतन्य द्वैतवादियों का भी आत्माही है । इस हेतु से यह हमा
पक्ष तिन द्वैतवादियों से विरोध को पावता नहीं । क्योंकि अपने
आत्मा से किसी का भी विरोध सम्भव नहीं ॥ १८ । ९७ ॥

**मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन । तत्त्व
भिद्यमाने हि मर्त्यताममृतं व्रजेत् ॥ १९ । ९८ ॥**

१९ । ९८ हे सौम्य ! द्वैत जो है अद्वैत का भेद कहिये कार्य है,
प्रकार का जो कथन किया ताते द्वैत भी अद्वैतवत् परमार्थ से
होवेगा, जहां इस प्रकार की किसी को भी शङ्का होय तहां कहते
परमार्थ से सद्रूप जो अद्वैत है, यह तिमिर दोष करके युक्त दृष्टि
पुरुषों करके कल्पित अनेक चन्द्रमावत्, अरु सर्प अरु जलधारा आदि
भेदों से रज्जुवत् "मायया भिद्यते ह्येतन्नान्यथाऽजं कथञ्चन" ८
से भेद को पावता है, यह अजन्मा किसी भी प्रकार से अन्यथा
नहीं ; अर्थात् माया करके भेद को पावता है, परमार्थ से नहीं [वि
का विषय जो भेद, सो मिथ्या है, भेद होनेसे चन्द्रादिकों के भेद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवाद का विषय जो आत्मतत्त्व, सो स्वरूप से भेद रहित है, क्योंकि निरवयव है ताते, अरु नित्य है ताते, अरु अजन्मा है ताते, व्यतिरेक से मृत्तिकादिकोंवत्। इस प्रकार कहते हैं] क्योंकि आत्मा निराकार निरवयव है ताते। अरु जिस करके सावयव वस्तु अवयवन के अन्यथा भाव से भेद को प्राप्त होता है। जैसे घटसरावादिकन के भेदों से मृत्तिका भेद को पावती है, [यह व्यतिरेकी दृष्टान्त है, ताते निरवयव अरु अजन्मा जो अद्वैत सो किसी भी प्रकार से अन्यथा (भेद को प्राप्त) होता नहीं, यह अभिप्राय है ॥ अरु " [तत्त्वतो भिद्यमानेहि मर्त्यता मृतं व्रजेत् "] जाते तत्त्वसे भेद को प्राप्त हुए अमृत मरने की योग्यता को प्राप्तहोवेगा ? अर्थात् जिस करके परमार्थ से भेद को प्राप्त होने के स्वभाव से अमृत [अमरणधर्मा] अरु अजन्मा हुआ अद्वैत मरण की योग्यता को प्राप्त होवेगा। जैसे अग्नि शीतलता को प्राप्त होवे तैसे सो स्वभाव के विपरीतपने की प्राप्ति, सर्व प्रमाणों के विरोध से अनिष्ट है ।[अर्थात् अग्नि का अपनी स्वभावभूत उष्णता को त्याग शीतलस्वभाव होना सर्व प्रमाणों से विरुद्ध है, तैसे निरवयव निराकार अजन्मा एक अद्वैत स्वभाववाले आत्मतत्त्व का, सावयव साकार सजन्मा नानाद्वैत स्वभाववाला विनाशीधर्मा होना सर्व प्रमाणों से अरु युक्ति अनुभव से विरुद्ध है, ताते सो किसीको भी इष्ट नहीं]। एतदर्थ [अजन्मा अविनाशी जो आत्मतत्त्व सो अपनी माया करकेही भेद को पावता है परमार्थ से नहीं। एतदर्थ द्वैत किसी प्रकार भी परमार्थ से सत्य है नहीं ॥ १९ । ९८ ॥

अजातस्यैवभावस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः ।
अजातोह्यमृतोभावोमर्त्यतां कथमेष्यति ॥ २० । ९९ ॥

२० । ९९ हे सौम्य ! जो [इस प्रकार अपने पक्ष को कहके, अब अपने वेदान्ती के यूथ बिषे परिगणित वादियों के पक्ष को अनुवाद करके दूषण देते हैं] पुनः कोई एक उपनिषदों की व्याख्या करनेवाले वाचाल ब्रह्मवादी (उपासक) " [अजातस्यैव भावस्य जातिमिच्छन्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वादिनः " ८वादीलोक अजन्मा भाव की उत्पत्ति को इच्छते हैं, अर्थात् जे अन्तर से उपासना के आग्रहवाले अरु बाह्य अद्वैत ज्ञान के कथ ऐसे जे वाचाल ब्रह्मवादी सो स्वभाव से अजन्मा अरु अमररूप आत्मतत्त्वरूप भाव की परमार्थसेही उत्पत्ति को इच्छते हैं " जातं त्तदेवमर्त्यतामेष्यत्यवश्यम् " ८ जन्म को पाया है सो अवश्यही मर की योग्यता को प्राप्त होवेगा, इस न्याय से तिनका सो आत्मा, स्व से अजन्मा अरु अमृतभावरूप हुआ मरण की योग्यता को कैसे प्र होवेगा, किन्तु किसी प्रकार से भी मरण की योग्यतारूप स्वभाव विपरीतता को पावनेका नहीं । [अर्थात् जो तत्त्व वास्तव करके आ स्वरूपसेही अजन्मा अविनाशी शुद्धबुद्ध मुक्तस्वभाव है सो कभी कि प्रकार से भी अपने स्वरूप स्वभाव से अन्यथा भाव को प्राप्त हो नहीं ।] इत्यर्थः ॥ २० । ९९ ॥

नभवत्यमृतं मर्त्यं नमर्त्यममृतंतथा । प्रकृतेरन्यथा भावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ २१ । १०० ॥

२१ । १०० हे सौम्य ! [पदार्थों को स्वभाव के विपरीतपने की प्राप्ति अघटित है, ऐसा जो कहा तिसही को वर्णन करते हैं] " न भ त्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा " ८ अमृत मरनेके योग्य होता नहीं तैसे मरने के योग्य अमृत होता नहीं ; अर्थात् जिस करके लोक में अमृत (अविनाशी) वस्तु मरने (विनाश के) योग्य होती नहीं ताते अग्नि के [यहां यह अर्थ है कि अग्नि के स्वभावरूप उष्णत्व को शीतलपने की प्राप्तिरूप विपरीतपना अयुक्त है, तैसे अन्य ठिकाने भी स्वभाव का विपरीतपना अयुक्त है; क्योंकि तैसे हुए स्वरूप के नाश का प्रसंग प्राप्त होता है ताते] उष्णस्वभाववत् । ताते " प्रकृतेरन्यथा भावो न कथञ्चिद्भविष्यति " ८ स्वभाव का अन्यथा भाव किसीभी प्रकार से होता नहीं ; अर्थात् जैसे स्वरूप से ही जो अग्नि का उष्णस्वभाव सो अन्यथा होता नहीं ८ तैसेही स्वभाव का अन्यथाभाव (स्वरूप से इतरपना) कदापि किसी प्रकार सेभी होगा नहीं ॥ [हे सौम्य ! यह

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को अन्यथा करना ' जैसे आम्र का फल प्रथम खट्टा होता है सोई पश्चात् परिपक्व अवस्था बिषे मधुर होता है सो काल करके होता है, क्योंकि वस्तु को अन्यथा करना काल का लक्षण है, परन्तु जो वस्तु उत्पन्न होती है सो काल के व्यवधान से युक्त होने करके, कदाचित् काल के प्रभाव से अन्यथा भाव को प्राप्त होवे तो होवे परन्तु जो अजन्मा काल के व्यवधान से रहित सर्वदा एकरस स्वभाव है तिसका किसी करके किसी प्रकार से भी अन्यथा भाव होवे नहीं। यह परम सिद्धान्त है ॥ २१ । १०० ॥

स्वभावेनामृतोयस्य भावो गच्छति मर्त्यताम्। कृतकेनामृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः ॥ २२ । १०१ ॥

२२ । १०१ हे सौम्य ! " स्वभावेनामृतो यस्य भावो गच्छति मर्त्यताम् " (जिसका स्वभावसे अमृतरूप भाव मरने की योग्यता को प्राप्त होताहै ? अर्थात् । शङ्का । ननु, ब्रह्म कारणरूप से कार्योत्पत्ति के पूर्व मरणरहित हुआ भी कार्य के आकार से उत्पत्ति के अनन्तर काल बिषे मरण की योग्यता को पावेगा, ताते स्वरूप के भेदसे दोनों अविरुद्ध हैं। जहां ऐसी शङ्का है तहां कहते हैं। जिस वादी का स्वभावसे अमृतरूप भाव मरण की योग्यता को पावता है। अर्थात् परमार्थ से जन्म को पावता है तिस वादी की " प्रागुत्पत्तेः सभावः स्वभावतोऽमृत इति " सो भाव, उत्पत्ति से पूर्व स्वभाव से अमृत है। ऐसी जो प्रतिज्ञा सो मिथ्याही होवेगी। प्रश्न। तब कैसे है ? उत्तर " कृतकेनामृतस्तस्यकथं स्थास्यति निश्चलः " (तिसका अमृत निश्चल हुआ कैसे स्थित होवेगा ? अर्थात् तिस वादी का जन्यहोने करके अमृत, सो भाव निश्चल हुआ। अर्थात् अमृतपने के स्वभाव करके। कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी प्रकार से भी स्थित होवे नहीं। इसका यह अभिप्राय है कि आत्मा की उत्पत्ति वादी के मत बिषे सर्वदा अजन्मा वस्तु कोई है नहीं, किन्तु यह सर्ववस्तु मरण के योग्यहै, इस करके मोक्ष के अभाव का प्रसंग प्राप्त होवेगा ॥ २२ । १०१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूततोऽभूततोवाऽपि सृज्यमाने समाश्रुतिः । निश्चितं युक्तियुक्तश्च यत्तद्भवति नेतरत् ॥ २३ । १०२ ॥

२३ । १०२ हे सौम्य ! [परिणामवादकी सृष्टिप्रतिपादक श्रुति के अनुसार से अङ्गीकार करनेकी योग्यता की शङ्का करके निषेध करतेहैं] शङ्का । ननु, आत्मा की अनुत्पत्तिके वादी को सृष्टि की प्रतिपादक श्रुति प्रमाणिक न होवेगी, जहां ऐसी शङ्का है तहां कहते हैं , सृष्टि की प्रतिपादक श्रुति हैं यह जो तेरा कहना है सो सत्य है परन्तु सो अन्य अर्थ के परायण है, सृष्टि परायण नहीं । अरु यह हमने " उपायःसोव ताराय " ८ सो अद्वैत बोध की उत्पत्त्यर्थ उपाय है ? इस प्रकरण के पञ्चदश १५ वें श्लोक बिषे कहा है । अब समाधान के पूर्व कहे हुए भी तेरा प्रश्न अरु उत्तर जो कहते हैं सो कहने को वाञ्छित अर्थ के प्रति सृष्टि प्रतिपादक श्रुति के अक्षरोंके अनुलोमपनेके विरोध की शङ्का-मात्रके निवारणार्थ है " भूततोऽभूततोवाऽपि सृज्यमाने समाश्रुतिः " भूत से वा अभूतसे भी उत्पन्न होनेवाले बिषे श्रुति सम है ? अर्थात् भूत से, कहिये परमार्थ से, उत्पन्न होनहार वस्तुबिषे, वा अभूत, कहिये माया से, वा माया विनाही सृज्यमान वस्तु बिषे, सृष्टि की श्रुति तुल्यहै [यहां यह भावहै कि, परिणामवाद बिषे अरु विवर्तवाद बिषे सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियों के अविशेष से अद्वैत के अनुसारी श्रुति अरु युक्ति के वशते विवर्त्तवादकी ही अङ्गीकार करने की योग्यता है] । शङ्का । ननु, मुख्य अरु गौण दोनों कार्यों के मध्य मुख्य बिषे शब्द के अर्थ का निश्चय युक्त है, । इस प्रकार जो वादी ने कहा सो बने नहीं, क्योंकि मिथ्या-पने विना अन्य प्रकार से सृष्टि अप्रसिद्ध है ताते, अरु निष्प्रयोजन है ताते । [अर्थात् वास्तव सिद्धान्त के विचार से देखिये तो आप्तकाम एक अद्वैत परिपूर्ण परमात्मा को सृष्टिरचने के प्रयोजन का अभाव होनेसे सृष्टि अप्रयोजन है] अरु " सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः " ८ बाह्य अन्तर सहित है अरु अजन्मा है ? । इस श्रुति के प्रमाण से । अरु अविद्या अवस्था बिषेही विद्यमान सर्वगौणी (स्वप्नगत रथादि) अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुख्या जाग्रद्वत घटादि रूप सृष्टि परमार्थ से है नहीं, इस प्रकार हम कहते हैं। ताते [सृष्टि की श्रुति को अद्वैत के अनुसारीपने के हुए प्रमाण अरु युक्ति के अनुग्रह सहित अद्वैत ही अङ्गीकार करने के योग्य है, इस प्रकार फलित अर्थ कहते हैं] ताते "निश्चितं युक्ति युक्तञ्च यत्तद्भवति नेतरत्" ८ निश्चित युक्ति करके युक्त सोई होता है अन्य नहीं ? अर्थात् श्रुति करके निश्चित जो एक ही अद्वितीय अजन्मा अमृतरूप वस्तु है, अरु युक्तियों करके युक्त है, सोई श्रुति का अर्थ होने को योग्य है अन्य कदाचित् भी नहीं। इस प्रकार इस पूर्व के ग्रन्थ से कहते हैं ॥ २३ । १०२ ॥

नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रो मायाभिरित्यपि । अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः ॥ २४ । १०३ ॥

२४ । १०३ हे सौम्य ! [सृष्टि के मिथ्यापने के स्पष्टकरनेरूप द्वार से अद्वैतको ही श्रुति के अर्थपने से निर्द्धार करने को श्रुति के निश्चय को ही वर्णन करते हैं]। प्र० । श्रुति का निश्चय कैसा है ?। उ० । जब भावरूप ही सृष्टि होय तो तिस करके नाना सत्य ही होवेगा। अरु जब नानात्व सत्य होय, एतदर्थ तिसके अभाव के दिखावने के अर्थ वेद का वाक्य न होवेगा। अरु "नेहनानेतिचाम्नायादिन्द्रो मायाभिरित्यपि" ८ इस बिषे नाना कुछ भी नहीं, यह वेद का आम्नाय (वाक्य) है, अरु इन्द्र माया करके ऐसे भी है ? अर्थात् । "नेह नानास्ति किञ्चन" । ८ यह नाना कुछ भी नहीं ? इत्यादि, यह द्वैतभाव के निषेधरूप अर्थवाला वेद का वाक्य है । ८ अर्थात् जो यह सृष्टिभाव (सत्य, कुछ वस्तु) रूप होती तो, सृष्टि प्रतिपादक श्रुतियां सर्व उपनिषदों में एकरूप ही होतीं, अरु "नेहनानास्ति किञ्चन" यह नानात्व के अभाव के प्रतिपादक अर्थवाली श्रुति न होती, अतएव सृष्टि के वाक्यों में विरुद्ध नानात्व अरु नानात्व के निषेध की श्रुतियों के देखने से नानात्व का अभावही प्रतीत होता है । ताते प्राण के संवादवत् । अर्थात् प्राण अरु इन्द्रियों के संवाद की जो आख्यायिका है सो सर्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संघात में प्राण की ज्येष्ठता श्रेष्ठता के लखावने के अर्थ कल्पित है, तैसेही एक अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चय करावने के अर्थ कल्पित जो सृष्टि सो मिथ्याही है अरु "इन्द्रो मायाभिः" ८ इन्द्र माया करके, इस प्रकार मिथ्या अर्थ के प्रतिपादक मायाशब्द करके कथन है ताते। शङ्का। ननु, मायाशब्द प्रज्ञा का वाची है, तातें मिथ्याअर्थवाला नहीं है,। उ०। यह जो तेरा कथन है कि मायाशब्द प्रज्ञा का वाची है सो सत्य है। [यहां यह अर्थ है कि मायाशब्द की वाच्य जो प्रज्ञा सो चैतन्य ब्रह्म है नहीं, क्योंकि "भूयश्चान्तेविश्वमायानिवृत्तिः" ८ पुनः अन्तबिषे विश्व। कार्य। अरु माया। कारण। इसकी निवृत्ति होती है, इत्यादिक श्रुतिवाक्यों से माया की निवृत्ति श्रवण करने में आवती है ताते। किन्तु यह प्रज्ञा इन्द्रियजन्य है अरु तिसको अविद्या के अन्वय अरु व्यतिरेक की अनुसारी होने से अविद्यारूप होने करके मिथ्या होनेसे माया शब्द के मिथ्या अर्थवान्पने बिषे असंभव नहीं] तथापि इन्द्रियजन्य प्रज्ञा को अविद्यात्मक होने करके माया (मिथ्या) पनेके अङ्गीकार से दोष नहीं। अर्थात् अविद्या से आकाशादि भूत तिन से इन्द्रियां तिनसे प्रज्ञा इस प्रकार होने से अविद्या का अन्वय जो अविद्यात्मक प्रज्ञा तिसको मायारूप से अङ्गीकार करने में दोष नहीं, एतदर्थ इन्द्र शब्द करके जो परमात्मा सो अविद्यारूप इन्द्रियजन्य बुद्धिवृत्तिमय माया करके बहुतरूप हुआ प्रतीत होता है। तथाच "अजायमानो बहुधा विजायत इति" ८ जन्मरहित हुआ बहुतप्रकार से जन्मता है, इस श्रुति के प्रमाण से। ताते "अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः" ८ सो तो जन्मरहित हुआ माया करके ही बहुत प्रकार जन्मता है, अर्थात् सो इन्द्रनामवाला परमात्मा माया करकेही बहुतरूप से जन्मता है। अतएव जैसे एकही अग्नि बिषे शीतलता अरु उष्णता जो परस्पर में विरुद्ध है, इन दोनों का होना असंभव है, तैसे एकही आत्मा बिषे जन्मरहित अजपना, अरु बहुत प्रकार से जन्मपना, यह दोनों जो परस्पर में विरोधी हैं। संभवे नहीं। एतदर्थ सो परमात्मा माया करकेही बहुत प्रकार से जन्मता है, यह कथन युक्त ही है। अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

फलवान् होने से आत्मा की एकता का ज्ञानही सृष्टि की श्रुतियों का निश्चितार्थ है "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" ८ तहां एकता के देखनेवाले को क्या मोह अरु क्या शोक है ? ? इत्यादि वेदमन्त्र का कथन है ताते। अरु "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" ८ जो यह एक आत्मा बिषे नानात्व को देखता है सो मृत्यु से मृत्यु को पावता है ? इस प्रकार सृष्टि आदिक भेददृष्टि निन्दित है॥ २४। १०३॥

संभूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिषिद्ध्यते। कोन्वेनं जनयेदिति कारणं प्रतिषिद्ध्यते॥ २५। १०४॥

२५। १०४ हे सौम्य! [भेद दृष्टि के मिथ्यापने बिषे अन्य हेतु कहते हैं] "संभूतेरपवादाच्च सम्भवः प्रतिषिद्ध्यते" ८ संभूति के अपवाद (निन्दा) से संभव का निषेध करते हैं ? अर्थात् "अन्धंतमः प्रविशन्ति ये संभूतिमुपासते" ८ जो संभूति की उपासना करते हैं सो अन्धतम में प्रवेश करते हैं ? इस श्रुति के प्रमाण करके संभूति के उपासकों की निन्दा से संभव कहिये कार्य का निषेध किया है। अरु जिस करके परमार्थ से संभूति के विद्यमान होनेसे तिसकी निन्दा संभवे नहीं, अरु श्रुति बिषे निन्दा किया है, एतदर्थ तिसका अवस्तुपना ही सिद्ध हुआ। शङ्का। ननु, विनाश (कर्म) से संभूति कहिये देवता की उपासना के समुच्चयार्थ संभूति की निन्दा है, जैसे "अन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते" ८ जो अविद्या (कर्म) को उपासते हैं सो अन्धतम में प्रवेश को पावते हैं ? इस वाक्य बिषे कर्म से उपासना के समुच्चय की विधि अर्थ कर्म की निन्दा है तैसे, समाधान। संभूति (हिरण्यगर्भ) रूप विषयवाली देवता की उपासना के, अरु विनाश शब्द के वाच्य कर्म से समुच्चय के विधानार्थ, संभूति की निन्दा है, यह तेरा कथन सत्य है, तथापि जैसे [यहां यह अर्थ है कि कामचार (यथेष्टाचरण) कामवाद (यथेष्टकथन) अरु कामभक्षण (यथेष्ट भोजन) इत्यादि स्वाभाविक प्रमादमय प्रवृत्तिरूप अशुद्धि का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वियोगरूप संस्कार जैसे नित्य अग्निहोत्रादिकों का फलहै, तैसे निष्काम पुरुष करके अनुष्ठानकिये कर्म उपासना के समुच्चय का फलरूप काम नामक अशुद्धि की निवृत्ति है, सो भी संस्कार है] पुरुषके संस्काररूप अर्थवाले विनाशनामक कर्म को स्वाभाविक अज्ञान से जन्य प्रवृत्ति रूप मृत्यु का तरणरूप अर्थवान् पना है, तैसे पुरुष के संस्काररूप अर्थवाले देवता के ज्ञान अरु कर्म के समुच्चय को, कर्मफलविषयक राग से जन्य जो प्रवृत्ति तिस प्रवृत्तिरूप साध्य अरु साधन इन दोनों की इच्छारूप मृत्यु का तरनारूप अर्थवान्पना है । इस प्रकार कर्मरूप अविद्या से दोनों एषणारूप मृत्यु से तरे हुए, अरु उपनिषद्रूप शास्त्र के विचार बिषे तत्परहुए, विरक्त को परमात्मा के एकता के विद्या की उत्पत्ति अन्तरायवाली नहीं, इस प्रकार पूर्व होनेवाली कर्मरूप अविद्या की अपेक्षा से पश्चात् होनेवाली अमृत भाव की साधनरूप ब्रह्मविद्या, एक पुरुष से सम्बन्ध को प्राप्त हुई कर्मरूप अविद्या से समुच्चय को प्राप्त होती है, इस प्रकार कहाहै । एतदर्थ अन्य अर्थ के होने से अमृतभाव की साधनरूप ब्रह्मविद्या की अपेक्षा करके संभूति का जो अपवाद है सो निन्दा के अर्थ ही होता है, समुच्चय की विधि के अर्थ नहीं। अरु यद्यपि कर्म अरु उपासना का समुच्चय अशुद्धि के वियोग (अभाव) का हेतु है, एतदर्थ सोई तिसका अन्यार्थ होवेगा, अपवादरूप अन्य अर्थ नहीं। तथापि परमार्थ से पवित्रतारूप फल के अभाव से अपवाद की सिद्धि है एतदर्थ संभूति के अपवाद से संभूति का आपेक्षकही सत्पना है, इस प्रकार परमार्थ सत्रूप आत्मा के एकता की अपेक्षा करके अमृत नामवाले संभव (कार्य) का निषेध किया है। इस प्रकार माया से रचित अरु अविद्या से स्थितहुए जीव को अविद्या के नाशहुए स्वभाव रूप होने से परमार्थ से "कोन्वेनं जनयेदिति कारणं प्रतिषिद्धयते" उसको कौन उत्पन्न करेगा इस प्रकार कारण का निषेध किया है। अर्थात् इसको कौन उत्पन्नकरेगा ? किन्तु कोई भी नहीं। जैसे अविद्या से रज्जु बिषे आरोपित, अरु पुनः रज्जु के विवेक से नष्ट हुए सर्प को कोई भी उत्पन्न करता नहीं, तैसे इसको कोई भी उत्पन्न करता नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार कारण का निषेध करिहै। अभिप्राय यह है जो, अविद्या से उत्पन्नहुए अरु नष्ट हुए जीवका उपजावनेवाला कारण कुछ भी नहीं, क्योंकि यह किसी से भी हुआ नहीं अरु कोई भी नहीं होता हुआ "नाऽयंकुतश्चिन्न बभूव कश्चिदिति श्रुतेः" ॥ २५ । १०४ ॥

स एष नेति नेतीति व्याख्यातं निह्नुते यतः। सर्व ग्राह्यभावेन हेतुनाऽजं प्रकाशते ॥ २६ । १०५ ॥

२६ । १०५ हे सौम्य ! [इस कथन करने से वास्तव करके द्वैत होता नहीं इस प्रकार कहते हैं] " अथातो नेति नेतीति आदेशः " ८ अब इसके अनन्तर नेति नेति यह आदेश होताहै ? इस प्रकार सर्व निषेध के प्रतिपादन किये आत्मा के दुःख से बोधन करने की योग्यता को मानती हुई श्रुति, बारम्बार अन्य उपायपने करके तिसही आत्माके प्रतिपादन करने की इच्छा से जो जो व्याख्यान कियाहै तिन सर्वको निषेध करेहै, अर्थात् [८ सर्वको निषेध करेहै ? इत्यादि रूप अर्थ को स्पष्ट करतेहुए " सएष नेति नेतीति " ८ सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं ? इस श्रुतिवाक्य का व्याख्यान करते हैं। यहां यह अर्थ है कि ८ सो यह ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, इत्यादि रूप श्रुति विशेषके निषेधमुख द्वार से आत्माकी अदृश्यरूपता को देखावती हुई जो दृश्यरूप कार्य, मन अरु इन्द्रीं का विषय है तिन सर्वको अर्थ से निषेध करेहै। सोई श्रुति परमार्थ से तो अदृश्य ऐसे कहती हुई दृश्य का वस्तुपना बने नहीं, इस प्रकार कहती है। अरु तैसे हुए वस्तुपने के असंभव से दृश्यवर्ग का अवस्तुपना ही सिद्धहुआ] " सएषनेति नेतीति व्याख्यातं निह्नुतेयतः " ८ सो यह नेति नैति व्याख्यान करते हैं जाते निषेध करते हैं ? अर्थात् सो यह ऐसा नहीं ऐसा नहीं इस प्रकार आत्माकी अदृश्यता को देखाती हुई श्रुति, अर्थ से उत्पत्तिवाले बुद्धिके विषय ग्राह्यवस्तु को निषेध करती है। अरु अर्थ से [शङ्का ननु यह श्रुति प्रपञ्चके समूह को क्यों निषेध करती है, अरु इस प्रकार होनेसे ८ पङ्कप्रक्षालन, (कीचड़ के धोनेके) न्याय की प्राप्ति से व्याख्यान किये अर्थकी व्यर्थता होवेगी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह शङ्का करके "अग्राह्यभावेन" ८ अग्राह्यभाव से ? इत्यादि पदों का व्याख्यान करते हैं । यहां अर्थ यह है कि "द्वैवावेत्यादि" ८ दोनों प्रसिद्ध ? इत्यादि वाक्य करके व्याख्यान किये, अरु ब्रह्म आत्मामात्र स्वरूप से स्थितिपर्यन्त अप्रतिपादन किये अरु ब्रह्मरूप उपेयवत् उपायपने से मानेहुए प्रपञ्च के वास्तवपने करके जानने के योग्यता की जो शङ्का, सो न होय, इस प्रकार सर्व प्रपञ्च से रहित होने करके अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप के निर्धार करने के अर्थ श्रुति ' प्रपञ्च को आरोपित होने से तिसका निषेध करे है] उपाय को उपेय बिषे स्थिति को न जाननेवाले पुरुष को उपायपने करके व्याख्यान किये वस्तुकी उपेयवत् ग्राह्यता मति हो, इस अभिप्रायसे जिसकरके अग्राह्य भावरूप हेतुसे व्याख्यान किये सर्वको निषेध करते हैं । [उपाय को कल्पित होने करके उसको वास्तवपने का अभाव है] ताते, अरु उपेय (उपाय करके प्राप्त होने योग्य ब्रह्म) को कैसे तिस प्रकार से (उपाय के अवस्तुपने के प्रकार से ? वा (तिस सत्यरूप प्रकार के) वस्तु की प्राप्ति कैसे होवेगी ? । यह शङ्का करके "अजं" अजन्मा इत्यादि पद का व्याख्यान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि, आरोपित सर्व प्रपञ्च के निषेध सेही, आरोपित सर्पादिकों के अधिष्ठानपने से भिन्न असत्पनेवत् , स्वतन्त्रपने करके (अर्थात् अधिष्ठान की सत्ता विना) मूर्त्तादि प्रपञ्च रूप उपाय के वास्तवपने के अभाव के निश्चय से, उपेयरूप अद्वितीय ब्रह्ममात्र स्वरूपता ही प्राप्तहुए, अरु ब्रह्मकी सदा एकरूपता कूटस्थता नित्यज्ञान स्वरूपवता, आदिकों के जाननेवाले जो पुरुष तिन उत्तमाधिकारियोंको, अन्य की अपेक्षा से विना उक्त विशेषणवाला आत्मतत्त्व स्वयं आपही प्रकाशित होताहै । अरु कल्पित प्रपञ्च का जो उपायपना है प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् अविरुद्ध है] ताते ऐसे उपाय की उपेय बिषे स्थिति को जाननेवाले को अरु उपेय की नित्य एकरूपता है, इस प्रकार जाननेवाले तिस (उत्तमाधिकारी) पुरुष को, बाह्य अन्तर सहित अरु रहित अजन्मा आत्मतत्त्व आप से आपही प्रकाशता है ॥ २६ । १०

सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः । तत्त्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जायते यस्य जातं तस्य हि जायते ॥ २७। १०६ ॥

२७। १०६ हे सौम्य! [जो आत्मतत्त्व है सो अजन्मा अद्वितीय परमार्थरूप है, अरु जो द्वैत है सो माया से कल्पित असत्य है, इस प्रकार प्रतिपादन किया, तहांही अन्यहेतु को भी कहते हैं] इसप्रकार ही शतावधि श्रुतियों के प्रमाण से बाह्यान्तर सहित अजन्मा आत्मतत्त्व अद्वैत है, ताते अन्य है नहीं, इस प्रकार। विद्वानों को। निश्चितही है, अरु सो तैसे युक्ति से भी निश्चितही है,। अब यह ही आत्मतत्त्व। जो श्रुति के प्रमाणों से अरु युक्तियों से निश्चित किया है। पुनः अन्ययुक्ति से भी निर्द्धार करते हैं, ऐसे कहा है। अरु जो ऐसा कहे कि तहां यह आत्मतत्त्व सदा ही अग्राह्य है ताते असत् होवेगा, सो कथन बने नहीं, क्योंकि कार्यरूप लिङ्गवाले अनुमान के वशसे [यहां यह अनुमानरूप अर्थ है कि विवाद का विषय जो जगत् का जन्म सो सत्रूप अधिष्ठानवाला है, कार्य होनेसे, प्रसिद्धकार्यवत्] आत्मतत्त्व के अकारणपने करके सद्भाव के निर्णय से। जैसे विद्यमान मायावी का माया करके जन्मरूप कार्य है, तैसे जगत् का जन्मरूप जो कार्य है सो ग्रहण किया हुआ मायावीवत् विद्यमान जगत् के जन्म अरु माया का आश्रयरूपही आत्मा को लखावे है। जो कारण सहित इस जगत् का कोई आश्रय अधिष्ठान सत्य चैतन्यरूप है। अरु जिस करके विद्यमान कारण से मायारहित हस्ति आदिक कार्योंवत् माया से जगत् का जन्म घटे है, असत्कारण से नहीं, ताते कारण का सद्भाव विवाद से रहित है। अरु परमार्थ से तो आत्मा का जन्म घटता नहीं। अथवा जैसे विद्यमान रज्जुआदिक वस्तुका सर्प आदिकरूप से जन्मवत् माया करके जन्म घटित है, स्वरूप करके तो नहीं। तैसे "सतोहि मायया जन्म युज्यते नतु तत्त्वतः" "सत् का माया से जन्म घटे है तत्त्व से तो नहीं" अर्थात् जैसे रज्ज्वादिकों का सर्पादिरूप से जन्म घटे है, तैसे अग्राह्य सत्रूप आत्मा का भी माया से जन्म घटित है, परन्तु तत्त्व (परमार्थ) सेही अजन्मा आत्मा का जन्म है नहीं। अरु "तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते" "जिसके। मतबिषे। जाते जन्मता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है तिसके । मतबिषे । जन्म को पाय सत्ता जन्मता है, अर्थात् पुनः जिस वादी के मत बिषे जिस करके तत्त्व से । अर्थात् परमार्थ सत्रूप से । अजन्मा आत्मतत्त्व जगत्रूप से जन्मता है, तिस वादी के मत बिषे अजन्मा जन्मता है, इस प्रकार कहने को शक्य नहीं । क्योंकि अजन्मा का जन्म से विरोध है ताते एतदर्थ तिस वादी के मत बिषे, अर्थात् जन्म को पावता हुआ जन्मता है, इस प्रकार प्राप्त हुआ । तिस करके जन्म को प्राप्त हुए आत्मा को पुनः जन्म को प्राप्त होने करके अनवस्था की प्राप्ति है अर्थात् अजन्मा एकही आत्मतत्त्व है, यह सिद्ध हुआ ॥ २७ । १०६ ॥

असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते । बन्ध्या पुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते ॥ २८ । १०७ ॥

२८ । १०७ हे सौम्य ! [कार्य जो है सो सत्रूप कारणपूर्वक है, ऐसी व्याप्ति है नहीं, क्योंकि असद्वादियों करके असद्रूपकारण से सत्रूप कार्य के जन्म का अङ्गीकार है, " असदेवेदमग्र आसीदेकमेवा द्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत " यह शङ्का करके कहते हैं] " असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते " । असत् का माया से वा तत्त्व से जन्म घटता नहीं, अर्थात् असत् वादियों के मताबिषे असत् पदार्थ का माया करके वा तत्त्व से किसी भी प्रकार से जन्म घटित नहीं, तिसको अदृष्टरूपता है ताते अरु " बन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते " । बन्ध्या का पुत्र तत्त्व करके वा माया करके भी जन्मको पावता नहीं, अर्थात् बन्ध्या का पुत्र जो अत्यन्त असत् है ताते उसका वास्तव करके तो क्या किन्तु माया करके भी जन्म को पावता नहीं, अत एव असद्वाद दूर सेही अघटित । त्याजनीय । है, इत्यर्थः ॥२८।१०७॥

यथा स्वप्नेऽद्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः । यथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः ॥ २९ । १०८ ॥

२९ । १०८ हे सौम्य ! [सत्वस्तु का ही माया से जन्म होता है, इस प्रकार कथन किये अर्थ कोही प्रतिपादन करते हैं] । प्रश्न ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुनः सत्वस्तु काही माया से जन्म कैसे है? उत्तर। तहा कहते हैं, जैसे रज्जुबिषे कल्पित सर्प अपने अधिष्ठान रज्जुरूप से देखेहुए सत्य है, इस प्रकार मन जो है सो परमार्थ ज्ञानस्वरूप आत्मरूप से देखाहुआ सत् है "। यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः "। ‘जैसे मन स्वप्न बिषे माया से द्वैताभासरूप हुआ स्फुरता है’, अर्थात् जो मन अपने अधिष्ठानरूप से देखा हुआ सत् है, सो मन जैसे रज्जुमें सर्प तैसे माया करके ग्राह्य अरु ग्राहकरूप से द्वैताभासरूप हुआ स्फुरता है। तैसेही "तथा जाग्रद्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः "। ‘तैसे जाग्रत् बिषे मन माया करके द्वैताभासरूप हुआ स्फुरताहै’, अर्थात् जैसे मन स्वप्न बिषे माया वा अविद्या करके द्वैताभास ‘जगदाभास’ रूप हुआ स्फुरता है, तैसेही जाग्रत् बिषे भी मन माया करके जगदाभासरूप हुआ स्फुरता है। अर्थात् अविद्या के आश्रय हुआ मन स्वप्न बिषे अध्यास संस्कार के वश आपही जगदाकार से स्फुरण होता है, तहां जैसे पूर्व के संस्कार अध्यास से स्वप्न में आपको सोया हुआ स्वप्नान्तर में देखता है तैसेही स्वप्न के जाग्रत् में से स्फुरण के तीव्र संवेग से उस जाग्रदन्तर इस दीर्घ जाग्रत्रूप स्फुरण जगदाकार होताहै। ताते यह सर्व स्वप्नरूपही है, परन्तु तैसा भासता तब है जब बोधरूप जाग्रत् में स्वस्वरूप बिषे जागता है अरु जाग्रत् स्वप्न का जो भेदहै सो मनके ‘मन्द’ मन्दतर तीव्र तीव्रतर स्फुरण का भेद है, परन्तु असत्यता अरु स्मृतिमात्रता में दोनों की तुल्यता है। ॥ २९। १०८॥

अद्वयञ्चद्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः। अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः॥ ३०। १०९॥

३०। १०९ हे सौम्य! [तब द्वैत का स्वीकार किया यह आशङ्का करके कहते हैं] "। अद्वयं च द्वयाभासं मनः स्वप्ने न संशयः "। ‘स्वप्न बिषे अद्वैत हुआ मन द्वैताभास स्फुरताहै यहां संशय नहीं’, अर्थात् रज्जुसर्पवत् ‘परमार्थ से आत्मारूप करके अद्वैत हुआ मन स्वप्न बिषे द्वैताभास ‘नानारूप’ होय के स्फुरता है। अरु स्वप्न बिषे हस्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हयादिक ग्राह्य, अरु चक्षुरादिक ग्राहक यह दोनों ज्ञान से भिन्न नहीं एतदर्थ इसमें । मनके स्वप्नरूप से स्फुरणे बिषे । संशय नहीं । तैसेही "। अद्वयञ्चद्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः "। ६ तैसेही जाग्रत् विषे भी मन अद्वैतरूपहुआ सताभी द्वैताभास । नाना प्रपञ्चाकार । होयके स्फुरता है इसमें भी संशय कुछ नहीं । क्योंकि परमार्थसत्रूप विज्ञानमात्र रूप का अविशेष है ताते । अर्थात् यावत् जाग्रत् स्वप्न का नानात्व जगत् है सो केवल एक मन के स्फुरणेमात्र है क्योंकि सुषुप्ति समाधि आदिकों बिषे मन के लयहुए जगत् का अभावही है ताते मन के स्फुरण से इतर जगत् नहीं ॥ ३० । ११९ ॥

मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् । मनसोह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ ३१ । ११० ॥

३१ । ११० हे सौम्य ! मनोमात्र द्वैत है इस । कथन । बिषे अब प्रमाण कहते हैं] रज्जु सर्पवत् कल्पनारूप मनही द्वैतरूप से युक्त है तहां कौन प्रमाण है, जब यह शङ्का हुई तब अन्वय अरु व्यतिरेक रूप अनुमान को कहते हैं । प्रश्न । सो कैसा अनुमान है ? । उत्तर । "। मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित्सचराचरम् "। ६ देखने योग्य जो कुछ यह चराचर द्वैत है मनही है ; अर्थात् तिसही कल्पनारूप मनसे देखने योग्य जो कुछ यह सचराचर नाना द्वैत है सो सर्व । मन की कल्पना रूप होने से । मनही है, यह प्रतिज्ञा है, क्योंकि तिस मन के भावहुए द्वैत का भाव अरु मन के अभावहुए द्वैत का अभाव होताहै ताते । अरु "। मनसोह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते "। ६ जाते मनके अमनीभाव हुए द्वैत को देखते नहीं ; अर्थात् जिस करके रज्जुबिषे लय को प्राप्त हुए सर्पवत्, विवेक ज्ञान के आभास अरु सम्यक् वैराग्य करके 'समाधि बिषे वा सुषुप्ति बिषे मन के अमन भाव (अफुर, निरोध) के हुए द्वैत प्रपञ्च देखते नहीं । अर्थात् रज्जु बिषे जब सर्प की प्रतीति भ्रान्ति से होती है तब तिस अध्यस्त सर्प से भय कम्प स्वेदादिक हो आवते हैं। अरु तिस भ्रान्तिरूप अवस्थाबिषे जो भय कम्पत्वादि होतेहैं तिसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण अध्यस्त सर्प है रज्जु नहीं। अरु जब सत्यरूप रज्जु का सम्यक् विवेक ज्ञान होता है तब उस अध्यस्त सर्प के स्वाधिष्ठान में लय हुए भय कम्पत्वादि सर्वका अशेष अभाव होताहै, अरु एक सत्यरूप रज्जुही अवशेष रहती है। तैसेही रज्जुस्थानीय एक अद्वैत सत्‌रूप आत्मा बिषे तिसके अज्ञान से सर्पस्थानीय मन स्फुरण होताहै तिस मन करके भय कम्पत्वादि स्थानीय सचराचर प्रपञ्च 'द्वैतरूप जगत् उपजता है, ताते द्वैतरूप प्रपञ्चका कारण मन का स्फुरण है। अरु जब आचार्य करके अपने आप सत्यरूप आत्मा का सम्यक् विवेकज्ञान होताहै तब निर्विकल्प वा विचार समाधि में मन के अमन 'अफुर' भाव के प्राप्तहुए समस्त द्वैतभास का अशेष अभाव होताहै। एतदर्थ यहां द्वैत के अभाव से अद्वैत भाव सिद्ध है॥ ३१। ११०॥

आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा। अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम्॥ ३२। १११॥

३२। १११ हे सौम्य! [समाधि अरु सुषुप्ति बिषे द्वैत की अप्रतीति के हुए भी तिसका असत्पना नहीं, यह शङ्का करके प्रमाण के आधीन प्रमेय की सिद्धि है इस अभिप्राय से कहते हैं॥ अरु मन का जो अमन भाव कहा, अब तिसको प्रतिपादन करतेहैं]। प्रश्न। पुनः इस मनका। जो द्वैत का कल्पक है। अमनीभाव कैसे होताहै, उत्तर "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इस वाणी से उच्चार किया विकार नाममात्र। कहनेमात्र। ही है अरु मृत्तिकाही सत्य है, इस श्रुति के प्रमाण से मृत्तिकावत् आत्मरूप ही जो सत्यहै, तिस सत् का "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" इत्यादि शास्त्र का आचार्य द्वारा उपदेश होने के अनन्तर जो बोध होताहै सो सत्यरूप आत्मा का अनुबोध है, ऐसे कहते हैं। आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा" सत्यरूप आत्मा के अनुबोध से जब 'मन' संकल्प को करता नहीं, अर्थात् तिस सत्यरूप आत्मा के अनुबोध से संकल्प के अभाव से युक्त होने करके जब (तिस काल बिषे) मन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संकल्प को करता नहीं । अर्थात् जैसे बरफ़ की पूतली सूर्य के तेज के प्रभाव से अपने कारणरूप जल में लय होती है, तैसे यह स्वाधिष्ठान से अभिन्न मनरूप पूतली आचार्यरूप सूर्य के उपदेश के प्रभाव से अन्तर्मुख हुई बरफ़ की पूतलीवत् अपने कारण अधिष्ठान आत्मरूप जल में लीन होता है, तब तिस काल में वा तिस निर्विकल्प समाधि में अपने अमनभाव को प्राप्तहुआ संकल्प करता नहीं, अर्थात् स्फुरण होता नहीं। "अमनस्तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम्" (तब ग्राह्य के अभावहुए ग्रहणरहित हुआ सो 'मन' अमनभाव को पावता है; अर्थात् आत्मा के अनुबोध से यह मन संकल्प को करता नहीं, तब, तिस काल विषे, जलावने योग्य काष्ठादिकों के अभाव हुए अग्नि के जलने के अभाववत्, ग्राह्य वस्तु के अभावहुए ग्रहणकी कल्पना से रहित हुआ सो मन अमन भाव को प्राप्त होता है॥ अर्थात् "अमनाःशुभ्रो" इत्यादि प्रमाण से जैसा मन का अधिष्ठान आत्मा अमन है तैसा ही मन अमन होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ॥ ३२ । १११ ॥

अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते । ब्रह्मज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते ॥ ३३ । ११२ ॥

३३ । ११२ हे सौम्य ! जो यह मन प्रधान द्वैत असत् है, तो यह समीचीन आत्मतत्त्व किस करके जानाजाता है, जहां इस प्रकार की शङ्का है तहां समाधान कहते हैं "अकल्पकमजं ज्ञानं ज्ञेयाभिन्नं प्रचक्षते" (कल्पनारहित अज ज्ञानस्वरूप को ज्ञेयसे अभिन्न कहते हैं; अर्थात् सम्यक् आत्मानुभावी जे ब्रह्मवेत्ता हैं सो सर्वकल्पना से रहित अजन्मा । अर्थात् "येनेदꣳ सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात्" "यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतं" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से जो मन बुद्ध्यादिकों की कल्पना में आवता नहीं अरु जो मन बुद्ध्यादि 'अर्थात् तृण से ब्रह्मपर्यन्त, सर्वका कल्पक है, अरु जो सर्वका कल्पक है सो कल्पित होता नहीं, इस परम सिद्धान्त से, सर्व कल्पना से वर्जित है, अरु जिस करके सर्वकल्पना से वर्जित है तिसही करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजन्मा है। ऐसा जो ज्ञप्तिमात्र ज्ञानस्वरूप। आत्मा। है तिसको परमार्थ से सत् ब्रह्मरूप ज्ञेय अभिन्न कहते हैं। मुमुक्षुओं करके अज्ञात अवस्था में जाननेयोग्य। से अभिन्न कहते हैं। अर्थात् "अयमात्मा ब्रह्म" यह आत्माही ब्रह्म है, ताते "नातः परमस्ति" इस आत्मा से भिन्न 'ब्रह्म नहीं' क्योंकि "तत्त्वमेवत्वमेवतत्" "तत्त्वमसि" इत्यादि श्रुतियों के महावाक्यों ने इस ज्ञानस्वरूप चैतन्य आत्मा कोही ब्रह्म करके कहा है, तातें सम्यक् आत्मानुभावी ब्रह्मवेत्ता इस ज्ञानरूप आत्मा को उक्त प्रकार ज्ञेयरूप ब्रह्म से अभिन्न कहते हैं। क्योंकि, "न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपोविद्यते" "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" अग्निकी उष्णतावत् विज्ञाति (बुद्धि) के विज्ञाता का लोप नहीं, विज्ञान आनन्दरूप ब्रह्म है, सत्यज्ञान अनन्तब्रह्म है। इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से सो ज्ञान ब्रह्मरूप ज्ञेय से अभिन्न है॥ अब तिस ज्ञान के विशेषण कहते हैं। सो ज्ञान कैसा है कि, "ब्रह्म ज्ञेयमजं नित्यमजेनाजं विबुध्यते" ८ ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला अजन्मा नित्य है, अजन्मा से जन्मरहित को जानता है; अर्थात् अग्नि से अभिन्न उष्णता अरु उष्णता से अभिन्न अग्निवत् जिस ज्ञानके स्वरूप बिषे स्थित ब्रह्मरूप ज्ञेय है, इस प्रकार का ब्रह्मरूप ज्ञेयवाला है। पुनः कैसा है कि, अजन्मा है अरु नित्य है। अर्थात् जिस करके ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है तिसही करके अजन्मा है अरु जिस करके अजन्मा है तिसही करके नित्य है। तिस आत्मस्वरूप अजन्मा ज्ञान से जन्मरहित ज्ञेय को आत्मतत्त्व आपही सम्यक् प्रकार जानता है। अर्थात् जैसे सूर्य नित्य प्रकाशरूप है, तैसे नित्य एकरस विज्ञानघन है ताते। अन्य ज्ञानान्तर की अपेक्षा करता नहीं॥ इत्यर्थः॥ ३३। ११२॥

निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः। प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः॥ ३४। ११३॥

३४। ११३ हे सौम्य! [मुक्त पुरुष को जो ज्ञान का फल है, सो स्वर्गादिवत् परोक्ष है नहीं, किन्तु प्रत्यक्ष है। एतदर्थ प्रसंग बिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्त हुए मन के निरोधरूप ज्ञान के फल की प्रत्यक्षता के अर्थ प्रसंग को कहते हैं] सत्यरूप आत्मा के अनुबोध करके संकल्प को न करता हुआ बाह्य विषयों के अभाव से इन्धनादि रहित अग्निवत्, मन जो है सो शान्तता अरु निरोधता को प्राप्त होता है, इस प्रकार कहा अरु इस प्रकार मनके अमनीभाव के होने से द्वैत का अभाव कहा । अब कहते हैं । "निगृहीतस्य मनसो निर्विकल्पस्य धीमतः । प्रचारः स तु विज्ञेयः सुषुप्तेऽन्यो न तत्समः" । निग्रह किये सर्वकल्पना से रहित विवेकवाले मन का प्रचार सो तो जानने योग्य है सुषुप्ति बिषे अन्य है, तिसके तुल्य नहीं ; अर्थात् इस प्रकार तिस निग्रह किये सर्वकल्पना से रहित (निर्विकल्प) अरु धीमान् (विवेकवाले) ऐसे मनका जो प्रचार (प्रत्यगात्मरूप से स्थिति । सो तो कोई एक प्रकार करके योगी पुरुषों करके जानने योग्य है ॥ शङ्का । ननु, सर्ववृत्तियों के अभाव हुए सुषुप्ति बिषे स्थित मन का जैसा प्रचार है, तैसाही प्रचार निरोध । अरु निर्विकल्पता । को प्राप्तहुए मन का भी होवेगा, क्योंकि उभय प्रकार से वृत्ति की निरोधता तुल्य है ताते । अतएव तिस निरोध को प्राप्तहुए मन बिषे क्या जानने योग्य है ? । समाधान । सो बने नहीं, क्योंकि सुषुप्ति बिषे अविद्या अरु तिसके कार्य मोहरूप अज्ञान से ग्रस्त अरु अन्तर लीन (गुप्त) हुई अनेक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासनावाले । उक्त प्रकार की वासना करके युक्त । मन का प्रचार अन्य है । अरु सत्रूप आत्मा के । महावाक्यजन्य । अनुबोधरूप अग्नि से अशेष नाश हुई है अविद्याऽऽदिक अनर्थरूप फलवाली प्रवृत्तियों की बीजरूपा वासना जिसकी, अरु शान्त हुए हैं सर्वक्लेशरूप मल जिसके, इस प्रकार के निरोध को प्राप्तहुए मन का जो ब्रह्मस्वरूप बिषे स्थितिरूप स्वतन्त्र प्रचार है सो अन्य है । अर्थात् काम कर्म वासना अविद्या इत्यादि अनर्थ करके युक्त मन का जो सुषुप्ति बिषे प्रचार (लय) है सो अविद्या में लय है, जैसे सधूम अग्नि आवरण को पाया लयहुएवत् भासता है तैसे । अरु महावाक्यार्थ के सम्यक् ज्ञानाग्नि करके जिसकी कामकर्म वासना अरु अविद्या, अशेष भस्म हुई हैं, ऐसे मन की जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निर्विकल्प समाधि बिषे आत्मतत्त्व में लयता है सो। इन्धनादि उपाधि से रहितहुए अग्नि की अपने सामान्यनिर्विशेष रूप में लयतावत् है। ताते सुषुप्ति में मन की लयता से यह ब्रह्मस्थितिरूप लयता अन्यही है; इस लयता को सोई जानता है कि जिस योगी को निर्विकल्प समाधि प्राप्त है। एतदर्थ यह सुषुप्ति को प्राप्तहुए मन का प्रकार तिस आत्मस्थिति को प्राप्तहुए मन के प्रचार। के तुल्य नहीं। जिस करके इस प्रकार है; तिसही करके तिस निरोध को प्राप्तहुए मन को जानने को। वा करने को। योग्य है। इत्यभिप्रायः॥ ३४। ११३॥

लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते। तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः॥ ३५। ११४॥

३५। ११४ हे सौम्य! पूर्व जो कहा कि सुषुप्ति को प्राप्तहुए मन के प्रचार का अरु। निर्विकल्प। समाधि को प्राप्तहुए मन के प्रचार का भेद है, तिस बिषे अब हेतु कहते हैं "। लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते "। ६ सुषुप्ति बिषे सो लीन होता है, गृहीत हुआ लीन होता नहीं; अर्थात् जिस करके सुषुप्ति बिषे सो मन लीन होता है, अर्थात् सर्व अविद्यादिक वृत्तियों की बीजरूप वासना करके सहित अज्ञानमय अविशेषरूप बीजभाव को पावता है, अरु सो समाधि को पाया हुआ प्रत्यक्ष विवेक ज्ञानपूर्वक निरोध को पाया सत्ता लीन होता नहीं अर्थात् अज्ञानरूप बीजभाव को पावता नहीं। ताते सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले मन के प्रचार का लीनता का भेद युक्त ही है। अरु जब समाधि को प्राप्तहुआ मन, ग्राह्य अरु ग्राहकरूप अविद्या के किये उभय मलसे रहित होता है, तब सो मन परम अद्वैतरूप ब्रह्मभाव को ही प्राप्तहुआ होता है। एतदर्थ "। तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः "। ६ सोई निर्भय है ब्रह्म है ज्ञानालोक है सर्वओर से है; अर्थात् जब। सम्यक् आत्मज्ञान को पायके यह मन अज्ञानरूप बीजभाव से रहित शुद्ध होता है। तब सो मन परम अद्वैतरूप परब्रह्मही को प्राप्त हुआ है, एतदर्थ सोई भयरहित निर्भय ब्रह्म है। "विद्वान्न बिभेति कदाचन" क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भयका निमित्तरूप जो द्वैत तिस द्वैतभाव के ग्रहण का अभाव है तातें ब्रह्म शान्त अरु अभय है ॥ अब तिसही ब्रह्म को विशेषण देते हैं । सोई ब्रह्म ज्ञानालोक है, अर्थात् आत्मा की स्वभावभूत चैतन्यस्वरूप ज्योति-रूप ज्ञान है ८ आलोक ? कहिये प्रकाश जिसका । अर्थात् ज्ञानरूप है प्रकाश जिसका । ऐसा जो ब्रह्म तिसको ज्ञानालोक । एकरस ज्ञानघन कहते हैं, अरु सर्व ओरसे है, । ताते उसको ' समन्ततः ' कहते हैं । अर्थात् आकाशवत् सर्वओर से निरन्तर व्याप्त है " आकाशवत्सर्वगत स नित्यः " ॥ ३५ । ११४ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् । सकृद्विभातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन ॥ ३६ । ११५ ॥

३६ । ११५ हे सौम्य ! [प्रसंग बिषे प्राप्तहुए अर्थ को अन्य प्रकार से भी निरूपण करतेहैं] " अजमनिद्रमस्वप्नमनामकमरूपकम् । ८ अज है अनिद्र है अस्वप्न है अनाम है अरूप है ? अर्थात् सोई ब्रह्म । अर्थात् ब्रह्मनामक आत्मा कि जिस बिषे ज्ञानद्वारा लीन हुआ मन ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है । जन्म के निमित्त के अभाव से " सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः " बाह्य अन्तर सहित अजन्मा है । अरु जिस करके रज्जुसर्पवत् अविद्यारूप निमित्तवाला जन्म है, इस प्रकार हम कहते हैं । अर्थात् जन्म के निमित्त जे अविद्या कामकर्मादिक तिनके अत्यन्ताभाव से ब्रह्म बिषे जन्म का हेतु न होने से वो वास्तव करके सदा अजन्मा ही है, तिस बिषे अद्वैत के बोधार्थ आरोपमात्र जन्म (जगदुत्पत्ति) कही है, सो ' जैसे भ्रान्तिरूप निमित्त से रज्जु का सर्परूप से जन्म है तैसे उस अज ब्रह्म का अविद्यारूप निमित्तवाला जन्म है ऐसा हम कहते हैं । अरु सो अविद्या आत्मारूप सत्य के अनुबोध से निरोध को प्राप्तहुई है, एतदर्थ सो अजन्मा है । अर्थात् ' जैसे रज्जु को स्वस्वरूपविषयक भ्रान्ति का अत्यन्ताभाव है ताते सो भ्रान्ति करके भी सर्परूप से ' जो केवल भ्रान्तिमात्रही है, जन्मवान् न होने सदा अजन्माही है, क्योंकि रज्जु जो सर्परूप से भासती है सो भ्रान्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल बिषे बुद्धि को भासती है स्वयं रज्जु को नहीं, तैसेही सदा ज्ञान-प्रकाशस्वरूप अद्वितीय आत्मा में जन्म के निमित्त अविद्या आदिकों के अत्यन्ताभाव से उसके शुद्ध सत्यज्ञान स्वरूप में द्वैत के अभाव से जन्म (जगदुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र भी नहीं, ताते उस बिषे जे जन्म (जगदुत्पत्ति) अध्यारोपमात्र कही है सो भी अविद्याश्रित बुद्धि ने अद्वैत आत्मतत्त्व के निश्चयार्थ कही है, परन्तु तिस अविद्यात्मक बुद्धि का उस आत्मदेव बिषे सूर्य में अन्धकारवत् अत्यन्त अभाव है, क्योंकि सो अविद्या अपने अधिष्ठान चैतन्यसत्ता के आश्रय चैतन्यवत् हुई स्वाधिष्ठान में जन्मादि (जगदुत्पत्त्यादि) कों की कल्पना करती है, सो अविद्या आचार्य से महावाक्यार्थ का ज्ञानोपदेश पाय अपने अधिष्ठान आत्मारूप सत्य के अनुबोधवती हुई आप अपने सत्य चैतन्य अद्वैत आत्मारूप अधिष्ठान में निरोध (लय) को प्राप्त होती है, ताते वास्तव करके आत्मा बिषे उस कल्पक अविद्या के लयहुए, उस ब्रह्मनामक शुद्ध निरुपाधि निर्विशेष चैतन्य आत्मा बिषे कल्पना के भी निमित्त का अत्यन्ताभाव होने से अध्यारोपमात्र भी जन्म (जगत् की उत्पत्त्यादि) नहीं । ताते वो नित्य अजन्मा है अरु जिस करके सो अजन्मा है तिस करकेही अनिद्र (निद्रा से रहित) है । अर्थात् निद्रादिक अविद्यात्मक बुद्धि के धर्म हैं तिससे पृथक् जो अज आत्मा तिसके नहीं ताते सो अनिद्र है । । अरु जिस करके अविद्यारूप अनादि मायामय निद्रा से अद्वैतरूप आत्मतत्त्व बिषे प्रबोध को पाया है, तिस करके स्वप्न से भी रहित है । अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदिक जे अविद्यात्मक बुद्धि की अवस्था तिनसे रहित है । अरु जिस करके अप्रबोध के किये जो अपने नामरूप है, सो रज्जु के ज्ञान से सर्पवत् अपने प्रबोध से नाश को प्राप्तहुए पश्चात् यह ब्रह्मनाम करके कहते नहीं । अर्थात् एक अद्वैत निर्विशेष आत्मतत्त्व बिषे नामरूपादिकों की कल्पना करनेवाले के अभाव से उस बिषे नामरूपादि दोनों नहीं । वा जो किसी भी प्रकार से निरूपण किया जाता नहीं । क्योंकि वाणी आदिकों का अविषय है ताते । ताते सो निर्विशेष आत्मतत्त्व आकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विकार से रहित निराकार होनेसे नाम अरु रूप से रहित है "यतो वाचो निवर्त्तन्ते" ८जहां से वाणियां निवृत्ति होती हैं, इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से किंवा "सकृद्विभातंसर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन" ८सर्वदाही प्रकाशरूप है सर्वज्ञ है किसीप्रकार से भी उपचार हैं नहीं अर्थात् सो । आत्मतत्त्व सर्वदाही प्रकाशरूप है, क्योंकि अग्रहण अन्यथा ग्रहण आबिर्भाव अरु तिरोभाव इन सर्वका अभाव है ताते अग्रहण अरु अग्रहणरूप दिवस अरु रात्रि, अरु अविद्यारूप अन्धकार, यह तीन सदा अप्रकाशपने बिषे कारण हैं, तिनका । उस अद्वैत आत्मतत्त्व बिषे । अभाव है ताते । सो सर्वदा प्रकाशरूप ही है । अरु नित्य चैतन्य प्रकाशरूप होनेसे ब्रह्म का सर्वदा ही प्रकाशरूप होना युक्तही है । इसही करके सर्वरूप जो ज्ञानस्वरूप सो कहिये ज्ञानस्वरूप सो कहिये सर्वज्ञ, ऐसा है । अर्थात् उस ज्ञानस्वरूप को सर्वरूप से सुशोभित होने करके उसको उक्त प्रकार का सर्वज्ञ कहते हैं । इस प्रकार के इस ब्रह्म (ब्रह्मवेत्ता) बिषे किसी प्रकार से भी उपचार (कर्तव्य) है नहीं । जैसे अन्य । अनात्मवेत्ता । को आत्मस्वरूप से इतर चित्त की एकाग्रता आदिक कर्तव्य है, तैसे ब्रह्मवेत्ता को नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव करके अविद्या के सम्यक् विनाश हुए किसी प्रकार से भी कर्तव्यता का संभव है नहीं [यहां यह अर्थ है कि अविद्यादशा बिषे ही सर्व व्यवहार है, अरु विद्यादशा बिषे अविद्या को असत् होने करके कोई भी व्यवहार है नहीं । परन्तु 'बाधितानुवृत्ति से' अर्थात् बाधित हुए व्यवहार की अनुवृत्ति से । विद्वान् बिषे । व्यवहार के प्रतीति की सिद्धि है । प्रातिभासिकवत् । । तिस करके उस विद्वान् के स्वरूप बिषे किञ्चित् भी क्षति नहीं ॥ ३६ । ११५ ॥

सर्वाभिलापविगतः सर्वचिन्तासमुत्थितः । सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलोभयः ॥ ३७ । ११६ ॥

३७ । ११६ हे सौम्य ! ["ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाण से। विद्वान्ही ब्रह्म है, इस प्रकार अङ्गीकार करके अब प्रसंग विषे प्रासहुए ब्रह्मको पुरुष के वाची लिंग से कहते हैं] अब {ब्रह्मविषे} नाम से रहितता आदिक उक्तार्थ की सिद्धि के अर्थ कारण कहते हैं "सर्वाभिलापविगतः सर्वचिन्तासमुत्थितः" ८ सर्व अभिलाप से रहित है, सर्व चिन्ता से सम्यक् उत्थान को पाया है; अर्थात् भाषण करते हैं जिस करण विशेष से ऐसा जो सर्व प्रकार के कथन का करण वाणी, तिसको अभिलाप कहते हैं, तिस सर्व अभिलाप {कथन} से रहित है "नातिवादी" अर्थात् यह जो एक वागिन्द्रिय को कहा है सो उपलक्षमात्र के अर्थ है, एतदर्थ ब्रह्मरूप विद्वान् व गिन्द्रिय उपलक्षण करके सर्व बाह्यकरणों से रहित है, यह इसका अर्थ है। तैसेही जिस करके चिन्तन करते हैं ऐसी जो बुद्धि तिसको चिन्ता कहते हैं, तिस सर्व चिन्ता से सम्यक् प्रकार उत्थान को पाया है, अर्थात् बुद्धि उपलक्षण करके बुद्धि आदि सर्व अन्तःकरणों से रहित है, क्योंकि "अप्राणोह्यमनाःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः" ८ अप्रमाणहै अमनहै, अरु शुभ्र कहिये शुद्ध है, अरु कार्य से पररूप अक्षर (कारण) तिससे पर है ८ इस श्रुति के प्रमाण करके सर्व करण अरु तिनके विषयादि इनसे रहित है। अरु "सुप्रशान्तः सकृज्ज्योतिः समाधिरचलोऽभयः" ८ निरन्तरशान्त है, सर्वदाही प्रकाशरूप है समाधिरूप है अचल है अभय है; अर्थात् जिस करके बाह्यान्तर के करणादिकों से रहित है, इसही करके निरन्तर शान्त है अरु आत्म चैतन्यस्वरूप से सर्वदा ही प्रकाशरूपहै, अरु समाधि रूप निमित्तवाली बुद्धि से जाननेयोग्य होनेसे समाधिरूप है। अर्थात् "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" "प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से समाधिरूप निमित्तवाली बुद्धि का विषय होने योग्य है, ताते समाधिरूप है, वा "समाधानं क्रियते चित्तं यस्मिन् स समाधिः" ८ जिस बिषे समाधान करते हैं चित्त को सो कहिये समाधि, ताते भी आत्म चैतन्य प्रकाश को समाधि कहते हैं, ताते वो समाधि है, वा इस परमात्मा बिषे जीव वा तिसकी उपाधि स्थापित करते हैं, याते यह परमात्मा समाधि है अरु अचल (सर्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रिया से रहित) है अरु जिस करके क्रिया का उस बिषे अभाव है तिस ही करके अभय है ॥ ३७ । ११६ ॥

ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते । आत्म संस्थन्तदाज्ञानमजातिसमतांगतम् ॥ ३८ । ११७ ॥

३८ । ११७ हे सौम्य ! [प्रसंगबिषे प्राप्तहुए अविकारी ब्रह्म बिषे विधि निषेध के आधीन लौकिकरूप अरु वैदिकरूप ग्रहण अरु त्याग व्यवहार है नहीं, इस प्रकार कहते हैं] जिस करके ब्रह्म की समाधि अचल अरु अभय है इस प्रकार कहा है, एतदर्थ " ग्रहो न तत्र नोत्सर्गश्चिन्ता यत्र न विद्यते " ८ तिस बिषे ग्रहण नहीं त्याग नहीं, अरु जिस बिषे चिन्ता विद्यमान नहीं ? अर्थात् तिस ब्रह्म बिषे ग्रहण नहीं वा त्याग नहीं। अर्थात् जहां विकार वा विकार का विषयपना होताहै, तहां ग्रहण अरु त्याग होता है। ताते अन्य विकार हेतु के अभाव से अरु निरवयव होने से इस ब्रह्मबिषे वे ' ग्रहण अरु त्याग दोनों संभवें नहीं याते तिस बिषे ग्रहण अरु त्याग यह हैं भी नहीं अरु तिस ब्रह्म बिषे चिन्ता नहीं। अर्थात् जहां सर्व प्रकार [मोक्षपर्यन्त] की भी चिन्ता नहीं संभवे है, अरु अमनीभाव है, तहां ग्रहण अरु त्याग कहां से होंगे ' किन्तु कदापि न होंगे, इत्यर्थः। अरु जबही आत्मरूप सत्य का अनुबोध हुआ तबही विषय के अभाव से अग्नि की उष्णतावत् " आत्म संस्थन्तदा ज्ञानमजातिसमतांगतम् " ८ आत्मा बिषे ही स्थित हुआ जन्म से रहित समता को प्राप्त हुआ ज्ञान होता है ? अर्थात् आत्मा के सम्यक् बोधहुए विषयों के अभाव से अग्नि बिषे उष्णतावत्, आत्मा बिषेही स्थित हुआ, अरु जन्म से रहित परमसमता को प्राप्त हुआ ज्ञान होता है " अतोवक्ष्याम्यकार्पण्यमजातिसमतां गतमिति " ८ याते जन्मरहित अरु समता को प्राप्तहुए अकृपणभाव को कहताहौं, इस प्रकार जो इस तृतीयप्रकरण की आदि के दूसरे श्लोक में पूर्व प्रतिज्ञा किया है सो यह युक्ति से अरु शास्त्र से कहा, सो यहां " अजातिसमतां गतम् " ८ जन्मरहित समता को प्राप्तहुआ होता है ? इस प्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहके समाप्त किया। अरु इस आत्मरूप सत्य के अनुबोध से जन्य कृपणता को विषय करनेवाला है, क्योंकि " यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः, इति " ८ हे गार्गि! जो इस अक्षर को न जानके इस मनुष्य शरीररूप लोक से मरण को प्राप्त होता है सो कृपण है? इस प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् के पञ्चमाध्याय के अष्टम ब्राह्मण बिषे याज्ञवल्क्य महाराज ने गार्गीप्रति कहा है। इस श्रुति के प्रमाण से इस तत्त्वज्ञान को पायके सर्वजन कृतकृत्य ब्राह्मण होते हैं। इत्यभिप्रायः॥ " यो वा एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात् प्रैति स ब्राह्मणः " इत्यादि श्रुतिः॥ ३८। ११७॥

अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः। योगिनो बिभ्यतिह्यस्मादभयेभयदर्शिनः॥ ३९। ११८॥

३९। ११८ हे सौम्य! यद्यपि [परमार्थरूप ब्रह्मस्वरूप से स्थिति रूप फलवाला जब अद्वैत का ज्ञान है, तब तिसका सर्वपुरुष आदर सों नहीं करते, जहां ऐसी शङ्का है, तहां कहते हैं] यह परमार्थ रूप-तत्त्व प्रत्यगात्मारूप कूटस्थ सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म इस प्रकार श्रोत्रीकरीत्या तत्त्वज्ञान से प्राप्त होता है तथापि। तिसकी अप्राप्ति से। अनीष को प्राप्तहुए जे मूढपुरुष सो तिस बिषे निष्ठावान् होते नहीं इस प्रकार कहते हैं " अस्पर्शयोगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः "। ८ अस्पर्शयोग नामवाला प्रसिद्ध स्मरण करते हैं, अरु योगियों से दुःख से निश्चिनकरने योग्य है?। सर्ववर्णाश्रमादि धर्म अरु पापादिमल] से सङ्गस्वरूप स्पर्श से रहित है ताते, अरु जीव को ब्रह्मभाव बिषे योजना करता है, यह अद्वैत का अनुभवरूप अस्पर्शयोग उपनिषदों बिषे स्मरण करते हैं। अर्थात् उक्त योग उपनिषदों के वाक्य प्रमाण से निश्चित करते हैं। सो वेदान्तशास्त्र। उपनिषद् ब्रह्मसूत्रादि। के विज्ञान से रहित बहिर्मुख जे कर्मनिष्ठरूप सर्वकर्मयोगी। कर्मासक्त। तिन्हों करके श्रवण मननादिरूप दुःखसे देखने के योग्यहै। अर्थात् कर्मासक्त कर्मी पुरुषों कर के वेदान्तशास्त्र ब्रह्मविद्या के श्रवण मननादि साधनों के दर्शन भी अति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुःसाध्य हैं । क्योंकि "न कर्मिणो प्रवेदयन्ति रागात्" इत्यादि श्रुति प्रमाण से उस कर्मनिष्ठ को कर्मों के फलके निमित्त कर्म में राग अधिक है ताते । अर्थात् आत्मरूप सत्य के अनुबोधरूप वस्तु की प्राप्ति सो श्रम से होने को योग्य है । अरु "योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये सर्व दर्शिनः" ८भयरहित बिषे भय को देखने के स्वभाववाले । कर्मयोगी भय को करते हैं ? अर्थात् जिस करके भयरहित इस । आत्मरूप सत्य के अनुबोधरूप । योग बिषे, भय का निमित्त जो अपना नाश तिसको देखने के स्वभाववाले । अर्थात् अविनाशी अभयरूप अपने आप आत्म बिषे नाशरूप भय के देखने के स्वभाववाले । जे अविवेकी । कर्मयोगी हैं सो अपने नाशरूप योग को मानते हुए, सर्वभय से रहित भी इस । आत्मानुबोधरूप । योग से, भय को करते हैं । तातें सो । आत्मानुबोध रूप योग । सर्व योगियों करके दुःख सेही देखने (प्राप्त होने) को योग्य हैं, इस प्रकार इस श्लोक के पूर्वार्ध से सम्बन्ध है ॥ ३९।११८॥

मनसोनिग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम् । दुःखक्षयश्च बोधश्चाऽप्यक्षयाशान्तिरेवच ॥ ४० । ११९ ॥

४०।११९ हे सौम्य ! [उक्त प्रकार उत्तमबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषों के अर्थ, अद्वैतज्ञान अरु अद्वैत ज्ञान का फलरूप मनके निरोधको कहके अब मन्दबुद्धिवाले अधिकारी पुरुषों के अर्थ मन के निरोध के आधीन आत्मज्ञान के कहने का आरम्भ करते हैं] पुनः जिनको ब्रह्मस्वरूप से भिन्न मन अरु इन्द्रियादिक । आत्मा बिषे रज्जु बिषे सर्पादिवत् कल्पित ही है, परमार्थ से नहीं । इस प्रकार का अनुबोध हुआ है । तिन ब्रह्म स्वरूप पुरुषों को अभय (तत्त्वज्ञान) अरु मोक्षनामक अक्षय शान्ति स्वभाव से ही सिद्धहै, अन्य साधनों के आधीन नहीं, क्योंकि "ब्रह्मविद्भातं सर्वज्ञं नोपचारः कथञ्चन" ८ किसी प्रकार से भी उपचार करि कर्तव्य सो है नहीं यह पूर्व इसही प्रकरण के ३६ वें श्लोक बिषे कह है ताते, इस प्रकार हम कहते हैं । अरु जो इन उत्तमाधिकारियों से अन्य सन्मार्गगामी मन्द अरु मध्यम दृष्टिवाले योगी (कर्मयोगी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपासनयोगी) आत्मा से भिन्न मन अरु अन्य इन्द्रियादिक तिनको आत्मा का सम्बन्धी देखते हैं तिनको "मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्वयोगिनाम्" ८ सर्वयोगियों को मन के निग्रह के आधीन अभय है ? अर्थात् जो मन अरु इन्द्रियों को आत्मा के सम्बन्धी देखते हैं तिन आत्मरूप सत्य के अनुबोध से रहित, सर्वयोगियों को मन के निग्रह के आधीन अभय (तत्त्वज्ञान) है। अर्थात् मन का संकल्पादिकों से अरु इन्द्रियों का विषयों से यावत् निग्रह होता नहीं तावत् यथार्थतत्त्व (आत्म) ज्ञान होता नहीं इस प्रकार योगीजन मानते हैं ।। अथवा जिस करके अविवेकी पुरुषों को आत्मा के सम्बन्धी मनको चञ्चल होने से दुःख का क्षय होता नहीं, एतदर्थ उनको दुःख का क्षय मन के निग्रह के आधीन है। अर्थात् जो अविवेकी मन को आत्मा का सम्बन्धी मानते हैं तिनके मत में आत्मा को जो दुःख है सो तिसके सम्बन्धी मन के चञ्चल होने से है ताते आत्मा के दुःख का क्षय मन के निग्रह होने के आधीन है जब मन का निग्रह होय तबहीं दुःख का क्षय होवे तिस विना नहीं । ताते "दुःखक्षयःप्रबोधश्चाऽप्यक्षया शान्तिरेव च" ८ दुःख का क्षय आत्मा का प्रबोध अरु अक्षयशान्ति भी 'मन के निग्रहसेही है ? अर्थात् जो योगीपुरुष मन को आत्माका सम्बन्धी मानते हैं तिनके मत में दुःख का क्षय अरु आत्मज्ञान अरु पराशान्ति मोक्ष यह मन के निग्रह के आधीनही है ॥ ४० । ११९ ॥

उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना । मनसो निग्रहस्तद्वद्वेदपरिखेदतः ॥ ४१ । १२० ॥

४१ । १२० हे सौम्य ! [मोक्ष की इच्छावाले मुमुक्षुपुरुषों को मन का निरोध कैसे सिद्ध होवेगा, यह शङ्का करके कहते हैं] "उत्सेक उदधेर्यद्वत् कुशाग्रेणैकबिन्दुना" ८ जैसे कुश के अग्र से एक बिन्दु करके समुद्र का उत्सेक हुआहै ? अर्थात् जैसे अतिसूक्ष्म कुशा के अग्र करके बाह्य फेंके हुए एक बिन्दु करके समुद्र का उत्सेक (बाह्य फेंकने का निश्चय) टिट्टिभनामक पक्षी को हुआ है "मनसो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निग्रहस्तद्वदखेदपरिखेदतः " (तैसे अखेद से मनका निग्रह भी होता है ; तैसे निश्चयवाले अरु उद्वेगरहित अन्तःकरणवाले जो हैं तिन पुरुषों को अनिर्वेदरूप अखेद से (खेदरहित) मन का निग्रह भी होता है " अभ्यासेनतुकौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते " ॥ ४१ । १२० ॥

उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तं कामभोगयोः । सुप्रसन्नं लयेचैव यथाकामो लयस्तथा ॥ ४२ । १२१ ॥

४२ । १२१ हे सौम्य ! [समाधि करनेवाले पुरुषों को तत्त्व के साक्षात्कार होने के प्रतिबन्धक (विघ्न) ' लय, विक्षेप, रसास्वाद (सुरुचि) अरु कषाय (राग) है, तिन से आगे कहने के उपाय करके मनका निग्रह करना, क्योंकि अन्यथा समाधि की सफलता का असंभव है ताते, इसप्रकार कहते हैं [प्रश्न ॥ क्या खेदरहित निश्चय-मात्रही मनका निग्रह होने बिषे उपाय है ? । उ० । तहां ' नहीं, इस प्रकार कहते हैं " उपायेन निगृह्णीयाद्विक्षिप्तंकामभोगयोः " (उपायसे कामभोग बिषे विक्षेप को प्राप्तहुए को निरोध करे ; अर्थात् खेद से रहित निश्चयवान् हुआ अग्रिम कहने के उपायसे कामभोग अरु विषयों बिषे विक्षेपवान् हुए मन को आत्मा बिषेही निरोधकरे (अर्थात् मन सहित सर्व उत्तम स्वर्गादिकों के अरु मध्यम इस लोक के यावत् दृश्य अरु अदृश्य विषयादि भोगे हैं सो एक सर्वाधिष्ठान आत्मा बिषे अध्यस्त हैं ताते स्वाधिष्ठान से उनकी इतरसत्ता के अभाव से वो असत् है अरु उन सर्व का अधिष्ठान आत्मा सत्य है, ताते जहां २ जिस जिस बिषे मन जाय तहां २ तिसको असत्य कल्पितजान तिनका आश्रय सत्यरूप आनन्दघन आत्मा का निश्चयकर तहांहीं मनको स्थिरकरे (अरु " सुप्रसन्नं लये चैव यथाकामोलयस्तथा " (लय बिषे प्रसन्नहुए को जैसा काम तैसा लय भी है ; अर्थात्, किंवा जिस बिषे मन लीन होता है, ऐसी जो सुषुप्ति तिसको लय कहते हैं, तिस लय बिषे प्रसन्न हुए (अर्थात् खेदरहित हुए (भी मनको निरोध करे (अर्थात् प्राणादिकों का निग्रह करके समाधि में स्थितहुआ पुरुष अपने मनको सुषुप्ति,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निद्रा, बिषे न जानेदे क्योंकि निर्विकल्प चिन्मात्र स्थिति में अविद्यारूप जड़ सुषुप्ति विघ्नकारी है ताते। शङ्का॥ ननु जब मन प्रसन्न हुआ तब किसवास्ते तिसका निरोध करिये?। जहां इसप्रकारकी शङ्का है, तहां समाधान कहते हैं "सुप्रसन्नं लये चैव यथाकामो लयस्तथा" लय बिषे प्रसन्न हुए को भी। निरोधकरे। जैसा काम है तैसाही लय भी है अर्थात् सुषुप्ति में लय हुआ मन प्रसन्न होता है परन्तु सुषुप्ति अविद्यरूप होने से तिस बिषे लय हुआ मन पुनः जाग्रत् स्वप्नरूप विक्षेप दुःख को ही पावता है, ताते जैसा काम मनको अनर्थ का हेतु है, तैसाही सुषुप्तिबिषे। लय का होना भी अनर्थकारी है, अतएव कामको विषय करनेवाले मन के निग्रहवत्, । अर्थात् जैसे काम अरु विषयादिकों से मनका निग्रह करते हैं। निद्रारूप लयसे भी मनका निरोध करना योग्य है। अर्थात् लय। सुषुप्ति में मनका लय (निद्रा) का होना, अरु विक्षेप, अफुर हुए मन में संकल्पों का फुरना, अरु रसास्वाद, समाधि सुख में राग का होना, अरु कषाय कर्मणी बुद्धि आदिक अन्तःकरण के दोष। यह चारो समाधिवाले पुरुष को समाधि में विक्षेप करनेवाले विघ्न हैं, ताते मुमुक्षुपुरुष करके जैसे काम से मन को निग्रह करना है तैसेही लयादि चारों से भी मनका निग्रह करना योग्य है॥ ४२।१२१॥

दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्त्तयेत्। अजंसर्वमनुस्मृत्य जातं नैवतु पश्यति॥ ४३। १२२॥

४३। १२२ हे सौम्य! [ज्ञान के अभ्यास अरु वैराग्य। अर्थात् आत्मा के श्रवण मननरूप ज्ञान का अभ्यास अरु समस्त नाम रूप क्रियात्मक जगत् से वैराग्य। इन दोनों उपायों करके 'लय' अरु विक्षेप से निवर्त (निरोध) किया जो मन सो जब राग से प्रतिबन्ध को प्राप्त होवे, तब श्रवण मनन अरु निदिध्यासन के अभ्यास से जन्य संप्रज्ञात (सविकल्प) समाधिपर्यन्त अभ्यास से तिस रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त करने को योग्य है। अर्थात् आत्मा के श्रवणादिकों के अभ्यासरूप उपाय करके इस मन को रागरूप प्रतिबन्ध से निवर्त करना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योग्य है ।] ॥ प्रश्न ॥ तिस मन के । । कि जिसका स्थित अचल होना योगीजन इच्छते हैं ? । निग्रह करने का उपाय कौन है ? । तहां ज्ञानाभ्यास अरु वैराग्य । उपाय । है, इस प्रकार उक्त प्रश्न का उत्तर कहते हैं "। दुःखं सर्वमनुस्मृत्य कामभोगान्निवर्तयेत् "। ८ सर्व दुःखरूप ही है इस प्रकार स्मरण करके काम के भोग को निवारणकरे ? अर्थात् अविद्यारचित समस्त द्वैत सर्व दुःखरूपही है, इस प्रकार । ज्येष्ठ श्रेष्ठों से वा शास्त्र से स्मरणकर । सर्वदा स्मृति में रख । के काम के भोग (रूपादि विषय) से प्रसरित हुए मनको । अर्थात् जो कामना के वश हुआ मृगजलवत् इस लोक परलोकादिकों के उत्तम मध्यम विषयभोग तिन बिषें आसक्त प्रसरित हुआ क्षणमात्र को भी विश्राम पावता नहीं, ऐसा जो विक्षेपवान् चञ्चल मन तिसको । वैराग्य की भावना से निवारण करे । । अर्थात् यावत् उत्तम मध्यम विषय भोग हैं, तिन बिषे यद्यपि सुख भी प्रतीत होता है, तथापि विषयुक्त अतिसुन्दर स्वादिष्ठ पाकवत् साधन परतन्त्रत्व अरु क्षीणत्व यह दो अनिवार्यदोष तिन करके युक्त विषय दुःखरूपही हैं इस प्रकार सम्यक् जान के अनुभव करके, अरु "। श्वोभावामर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणाञ्जरयन्ति तेजः "। इत्यादि श्रुतिवाक्यों से स्मरणकर उक्त प्रकार सर्वत्र सम्यक् दोष दृष्टिरूप वैराग्य की भावना से निवारणकरे । अरु "। अजं सर्वमनुस्मृत्य जातं नैव तु पश्यति "। ८ अजन्मा सर्व है ऐसा स्मरण करके उत्पन्न हुआ कुछ भी तो जानता नहीं ? अर्थात् अजन्मा ब्रह्मरूप सर्व है, इस प्रकार श्रुति अरु आचार्य के उपदेश से स्मरण करके पश्चात् तिस ज्ञानाभ्यास के दृढ होनेसे तिस सर्वात्मभाव से विपरीत द्वैतके समूह को तिसके अभावसे देखताही नहीं ॥ ४३ । १२२ ॥

लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः । सकषायं विजानीयात् समप्राप्तं न चालयेत् ॥ ४४ । १२३ ॥

४४ । १२३ हे सौम्य ! "। लये सम्बोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः । ८ लय बिषे चित्तको प्रबुद्धकरे विक्षेप के प्राप्त हुए को शान्तकरे ? अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उक्त प्रकार के इन ज्ञान के अभ्यास अरु वैराग्यरूप उभय उपायों करके लय (सुषुप्ति) बिषे लीनहुए चित्त को जगावे । (अर्थात् आत्मा के अनुभव ज्ञान बिषे लगावे (अर्थात् समाधिकाल में जब चित्त सुषुप्ति में प्राप्त होनेलगे तब लय होने से पूर्व उस निर्विकल्प अवस्था बिषे कि जहां मन अरु प्राण के अवरोध से विशेष वृत्ति आदिकों का अभाव अरु सामान्य आत्मानुभवाकार वृत्ति का भाव है तिन भावाभाव का प्रकाशक साक्षी आत्मा अज्ञात सुषुप्ति से पृथक् सिद्ध है (कि जिस करके अज्ञान सुषुप्ति सिद्ध होती है सो अनुभवतत्त्व लयादिकों का साक्षी नित्य जाग्रत् (बोध) स्वभाव है तिस अधिष्ठान बिषे चित्तको जोड़े ॥ पुनः कामों के भोगों (विषयों) बिषे विक्षेप को प्राप्तहुए चित्त को शान्त करे । इस प्रकार बारम्बार विचार अभ्यास करनेवाले योगी का चित्त लयसे जगाया गया, अरु विषयों से निवृत्त कियागया, अरु समभाव को प्राप्त हुआ नहीं, किन्तु मध्य अवस्थावाला है, तब सो उस अवस्था में कषायदोषवाला है "स कषायं विजानीयात् समप्राप्तं न चालयेत्" (कषाय सहित को जानना सम प्राप्त को चलावे नहीं ; अर्थात् लयता से जागा अरु समता को प्राप्त हुआ नहीं ऐसे जो समाधि की मध्यमावस्था को प्राप्त हुआ चित्त सो कषायदोष सहित होता है तब तिस कषाय राग के (बीज) सहित को जानना । अरु तिस कषाय से भी सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न से निर्विकल्प समाधिरूप समभाव को प्राप्तकरे है, परन्तु जब चित्त सर्व विशेष वृत्तियों को त्यागके केवल समभाव की प्राप्ति के सम्मुख होय तब तिस समप्राप्तिवाले चित्तको चलावे 'स्फुरणा के सम्मुख करे नहीं ॥ ४४ । १२३ ॥

नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसङ्गप्रज्ञया भवेत्। निश्चलं निश्चरच्चित्तं एकीकुर्यात् प्रयत्नतः ॥ ४५ । १२४ ॥

४५ । १२४ हे सौम्य ! [समाधि करनेकी इच्छा बिषे जो सुख उपजता है तिस सुख को विषय करनेवाली इच्छा से भी मनको रोकना योग्य है इस प्रकार कहते हैं] समाधि करनेकी इच्छावाले योगी को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"। नास्वादयेत् सुखं तत्र निःसङ्गप्रज्ञया भवेत् "। ६ सुख को स्वादनकरे नहीं तहां प्रज्ञा करके निःसङ्ग होय ; अर्थात् । निर्विकल्प । समाधिको प्राप्त होनेकी इच्छावाले योगी को । निर्विकल्प समाधि से पूर्व सविकल्प समाधि बिषे चित्त को विषयों से उपराम अरु प्रत्यक् आत्मा के सम्मुख होने से । जो सुख होता है तिसको सो योगी आस्वादन करे नहीं । अर्थात् सविकल्प समाधि के अन्त अरु निर्विकल्प समाधि के पूर्व में जो सुख है तिसके आस्वादन को रसास्वाद कहते हैं तिस बिषे आसक्त होवे नहीं । क्योंकि तिस समाधि बिषे जो सुख प्रतीत होता है सो अविद्या करके कल्पित । विशेष के अभाव अरु अन्तरमुखता करके जन्य । मिथ्या है । क्योंकि वो सत्य आत्मानन्द सुख नहीं ताते । ऐसी विवेकवती बुद्धि करके निःसङ्ग । अर्थात् उक्त अविद्यात्मक सुख से निःस्पृह होवे । अर्थात् उस सुखकी स्पृहा से रहित असंग हुआ परमानन्दमय आत्मा की भावना करे, अर्थात् तिस समाधि सुख के राग से भी चित्त को निरोधकर अराग आत्माकार होवे। अरु "। निश्चलं निश्चरच्चित्तं एकीकुर्यात् प्रयत्नतः "। ६ निश्चल बाहर जानेवाले चित्त को प्रयत्न से एकाकारकरना ; अर्थात् जब सुख के राग से निवृत्त होके निश्चल स्वभाववाला हुआ चित्त पुनः बाह्य जानेवाला होवे । अर्थात् रसास्वाद से निवृत्त निश्चल हुआ चित्तभी जो कदापि पूर्वाभ्यास के संस्कारवश बाह्य विषयों के सम्मुख वा तिस अवस्था बिषे दर्शित हुई जो सिद्धि तिसमें रागवान् हुआ तिनके सम्मुख होवे । तब तिस निश्चल हुए परभी पूर्व संस्कारों के वश बाह्य जानेवाले चित्त को भी, तिन तिन विषयों से उक्त ज्ञानाभ्यासादिक उपायों से रोंकके पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न करके आत्मा बिषेही एकरूप करना । अर्थात् निर्विकल्प समाधि करके युक्त चैतन्यस्वरूप सत्ता समानमात्र ही सम्पादन करना ॥ । अर्थात् समाधि से उत्थान (विषय सम्मुख) हुए चित्त को पुनः सविकल्प समाधिरूप प्रयत्न से अन्तर आत्मा के सम्मुखकर अचेत्य चिन्मात्र सत्ता समान स्वरूप बिषे अभेदता से एकाकार स्थिर करना ॥ ४५ । १२४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदा न लीयते चित्तं नच विक्षिप्यते पुनः। अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा ॥ ४६। १२५ ॥

४६। १२५ हे सौम्य ! [पुनः यह चित्त ब्रह्ममात्र को कब पावता है, जहां इस प्रकार की शङ्का है तहां कहते हैं] " यदा न लीयते चित्तं नच विक्षिप्यते पुनः " (चित्त लीन होवे नहीं अरु पुनः विक्षेप को पावता नहीं ; अर्थात् उक्त (ज्ञानाभ्यास अरु वैराग्यरूप) उपायों से निरोध किया चित्त जब सुषुप्तिबिषे लीन होवे नहीं, अरु पुनः विषयों बिषे विक्षेप (उत्थान) को पावता नहीं (अर्थात् समाधि की प्राप्ति में जे ' लय, विक्षेप, रसास्वाद, अरु कषाय, यह चार विघ्न तिनसे रहित होता है) अरु पवन से रहित दीपशिखावत् अचल अरु अनाभास (अर्थात् किसी भी कल्पितविषय के अभाससमान, अर्थात् जैसे सुषुप्ति में अपने कारण अविद्या में लय हुआ चित्त भासता नहीं, तैसे ही समाधि में अपने अधिष्ठान आत्मतत्त्वबिषे लीन हुआ भासे नहीं ऐसा) होवे " अनिङ्गनमनाभासं निष्पन्नं ब्रह्म तत्तदा " (अचल अरु अनाभास होवे तब सो चित्त ब्रह्मसम्पन्न होता है ; अर्थात् जब उक्त प्रकार अचल अरु अनाभास होता है तब सो चित्त ब्रह्मस्वरूप करके निष्पन्न होता है ॥ ४६। १२५ ॥

स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम्। अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते ॥ ४७। १२६ ॥

४७। १२६ हे सौम्य ! [असंप्रज्ञात (निर्विकल्प) समाधि बिषे जिस रूप करके चित्त सम्पन्न होता है तिस ब्रह्मस्वरूप को विशेषण देते हैं] " स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम् " (उत्तम सुख जो स्वस्वरूप बिषे स्थित शान्त निर्वाण अरु अकथ कहते हैं ; अर्थात् उक्त प्रकार के योगी के प्रत्यक्ष परमार्थरूप सर्वोत्तम ब्रह्म सुख को ब्रह्मवेत्ता (आत्मरूप सत्य का अनुबोधरूप स्वस्वरूप बिषे स्थित अरु सर्व मनोरथों की (कामना की) निवृत्तिरूप शान्त, अरु निर्वाण (मोक्ष कर के सहित वर्त्तमान, अरु असाधारण विषयवाला होने से कहने को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अशक्य । अर्थात् नेत्र में लगाया अञ्जन नेत्र के अति समीप नेत्रान्तर होनेसे वो नेत्र का विषय नहीं, तैसेही वागादिक सर्व इन्द्रियों का अन्तरात्मा अत्यन्त निकट होनेसे वागादिकों का अविषय है । अरु "। अजमजेन ज्ञेयेन सर्वज्ञं परिचक्षते "। ' जन्म से रहित अनुत्पन्न हुए ज्ञेयसे सर्वज्ञ ब्रह्मही कहते हैं ; अर्थात् जैसे स्त्रीसंगादि सुख विषयजन्य है तैसे सर्वोत्तम ब्रह्मानन्द सुख विषयजन्य न होनेसे अरु केवल परमशान्त निर्वाणरूप होनेसे वाणी आदिकों का विषय नहीं किन्तु जन्म से रहित अनुत्पन्न हुए ज्ञेय से । अर्थात् ' अज्ञानपर्यन्त जानने योग्य अरु वास्तव से ज्ञानस्वरूप ' निर्विकल्प समाधि करके प्राप्त जो निर्विशेष ज्ञप्तिमात्र सत्तासमान आत्मतत्त्व सो अव्यक्तादिवत् जन्मवान् न होनेसे जन्मरहित अज है अरु । आकाशादिक जो ज्ञेय हैं सो उत्पन्न हुए ज्ञेय हैं, अरु आत्मतत्त्व जो ज्ञेय है सो अज्ञानपर्यन्त ज्ञेय है वास्तव करके अनुत्पन्न ज्ञेय है । तिस जन्मरहित अनुत्पन्न हुए ज्ञेय से अभिन्न हुआ अपने सर्वज्ञरूप से सर्व ब्रह्मही कहते हैं । अर्थात् निर्विकल्प समाधि करके ब्रह्म को प्राप्त हुआ योगी " ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति " इत्यादि प्रमाण से ब्रह्मही होताहै ॥ ४७ । १२६ ॥

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते । एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥ ४८ । १२७ ॥

इति अद्वैताख्यं तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ३ ॥

४८ । १२७ हे सौम्य ! [उक्त उपायों को परमार्थ से सत्यता हुए अद्वैत की हानि होवेगी, अरु अन्यथा उन उपायों का प्रमाज्ञान होवेगा, यह शङ्का करके तब कहते हैं] मन के निग्रहादिक उपाय अरु मृत्तिका सुवर्णआदिकोंवत् सृष्टि अरु उपासना, यह सर्वही परमार्थ स्वरूप की प्राप्ति के उपाय होने करके । परमार्थरूप । कहे हैं परन्तु वास्तव से सत्य हैं नहीं, क्योंकि " । न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते " । ' कोई भी जीव उत्पन्न होता नहीं, इसका कारण है नहीं ; अर्थात्, मन के निग्रह आदिक जे उपाय (साधन कहे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तो परमार्थ से सत्य नहीं, क्योंकि परमार्थ से सत्य तो कोई भी करता ओंकाररूप जीव किसी भी प्रकार से उत्पन्न होता नहीं । एतदर्थ स्वभाव से अजन्मारूप इस एकही आत्मा का कारण है नहीं । अरु जिस करके कारण नहीं तिसही करके कोई भी जीव उपजता नहीं । यह इसका अर्थ है । अरु " एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते " (तिनके मध्य यह उत्तम सत्य है जहां (जिसबिषे) कुछ भी उपजता नहीं ; अर्थात् पूर्वके ग्रन्थबिषे उपायपने करके कथन किये जो तिन व्यावहारिक सत्य-रूप साधनों के मध्य यह उत्तम सत्य है जिस सत्यरूप ब्रह्म बिषे कुछ (अणुमात्र) भी उत्पन्न होता नहीं ॥ ४८ । १२७ ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतमाण्डूक्योपनिषद्कारिकायांअद्वैताख्य तृतीयप्रकरणभाषाभाष्यं समाप्तम् ॥ ३ ॥

हरिःॐ तत्सद्ब्रह्म

ॐ अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य चतुर्थप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

ज्ञानेनाकाशकल्पेन धर्म्मान् यो गगनोपमान् । ज्ञेया भिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदांवरम् ॥ १ । १२८ ॥

अथ गौडपादीयकारिकायां अलातशान्ताख्य चतुर्थप्रकरणभाषाभाष्यं प्रारभ्यते ॥

१ । १२८ हे सौम्य ! [पूर्व के अरु पिछले प्रकरण के सम्बन्धकी सिद्धि के अर्थ पूर्वोक्त तीनप्रकरणों बिषे उक्तार्थ को क्रम से कथन करते हैं] ॐकार के निर्णयरूप द्वार करके आगमनामक प्रथम प्रकरण से प्रतिज्ञा किये । अरु द्वितीय वैतथ्याख्य प्रकरण बिषे बाह्य विषयों के भेद को मिथ्यापने से सिद्धहुए अरु पुनः अद्वैताख्य तृतीय प्रकरण बिषे शास्त्र अरु युक्तियों करके साक्षात् निर्धार किये अद्वैत का " तदुत्तमं सत्यमिति " । यह उत्तम सत्य है । यह इस तृतीय प्रकरण के अन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के श्लोक विषे । पूर्व प्रकरण की प्रतिज्ञा । समाप्त किया । अरु तिसं इस श्रुति के अर्थरूप जो अद्वैत सिद्धान्त तिसके विरोधी (प्रतिपक्षी) हुए जे भेद (द्वैत) वादी अरु वैनाशिक (निरात्मवादी) हैं तिनका परस्पर में विरोध होने से उनका सिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेशों का आश्रय है । अर्थात् सर्वभेदवादियों के सिद्धान्तरूप वृक्ष रागद्वेषादि क्लेशरूप पक्षियों के विश्राम का आश्रय हैं । अरु अद्वैतवादियों का जो सिद्धान्त है सो रागद्वेषादि क्लेशों का अनाश्रय है । अर्थात् रागद्वेषादि क्लेशों का आश्रय नहीं, क्योंकि रागद्वेषादि क्लेश परस्परके भेद को आश्रय करके रहते हैं, अरु परस्पर का भेद द्वैत के आश्रय है, अरु सो सर्व अनर्थों का आश्रय जो द्वैतभाव सो अद्वैत सिद्धान्त में नाममात्रभी नहीं ताते तिन के आश्रित जे राग द्वेषादि अनर्थ क्लेश सो कैसे होगा ? किन्तु कदापि नहीं । वा अद्वैत सिद्धान्त से " सर्वमात्मैवाभूत् " जिनको सर्वात्मदृष्टि होने से उसको भेद के अभाव से रागद्वेषादि क्लेश आश्रय करते नहीं; अरु " नातिवादी " वो अतिवादी होते नहीं अर्थात् निन्दा स्तुति करते नहीं ॥ अरु भेदवादियों को परस्पर में रागद्वेषादि क्लेशों का आश्रयपना, वैष्णवमतवादी अरु शैवमतवादियों में इस सांप्रतकाल में सर्वको प्रत्यक्ष है, ताते भेदवादियों का सिद्धान्त रागद्वेषादि क्लेश का आश्रय है । अरु अद्वैत सिद्धान्त है सो उक्तक्लेशों का अनाश्रय होनेसे । सम्यक् ज्ञान है । इस प्रकार अद्वैतज्ञान की स्तुति के अर्थ, तिन । भेदवादियों के । सिद्धान्त का मिथ्याज्ञानपना सूचित किया । अरु सो तिनके पक्षों का मिथ्या ज्ञानपना यहां परस्पर विरुद्ध होने करके विस्तार से देखायके तिसके निषेध से अद्वैतज्ञान की सिद्धि, आवीतन्याय करके (आवीतन्याय नाम, व्यतिरेकन्याय का है जैसे जो क्रिया करके साध्य है सो अनित्य है इस अन्वय से अनित्यता के जानेहुए भी जो अनित्य नहीं, सो क्रिया करके साध्य भी नहीं, इस प्रकार का व्यतिरेक भी व्यभिचार की शङ्का से रहित होने करके व्याप्तिके निश्चयार्थ अङ्गीकार करते हैं । अरु तैसे तर्क से घटित हुए अर्थके ज्ञान से जानेहुए भी विरोधी अन्यवाद के निषेध के वर्णन विना अन्यपक्ष के सम्यक्पने की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शङ्का होवेगी। एतदर्थ अन्यवादों के निषेधसे अद्वैत सिद्धान्तकी सिद्धि समाप्त करने को योग्य है। इस अभिप्राय से अलात शान्ति के (अर्द्ध-दग्ध काष्ठ के घुमावने के) दृष्टान्त से उपलक्षित अलात शान्तिनामक चतुर्थप्रकरण प्रारम्भ करते हैं। इत्यर्थः] समाप्त करने के योग्य है। एतदर्थ यह अलात शान्तिनामक चतुर्थ प्रकरण प्रारम्भ करते हैं। अरु तिस चतुर्थ प्रकरण बिषे अद्वैत ज्ञानके संप्रदायके कर्ता नारायण भगवान् रूप आचार्य के अद्वैत स्वरूप सेही नमस्कारार्थ यह प्रथम श्लोक है। [आदि अन्त अरु मध्य बिषे मङ्गलाचरण करके युक्त जो ग्रन्थ हैं सो प्रवृत्तिवाले होतेहैं, इस अभिप्रायसे श्रीगौडपादाचार्य आदि बिषे ओंकार के उच्चारणवत् अरु अन्तबिषे परदेवताके प्रणामवत् मध्यबिषेभी परदेवता रूप उपदेष्टा (आचार्य) को प्रणाम करते हैं] जिस करके शास्त्र के आरम्भ बिषे वाञ्छित अर्थकी सिद्धिके लिये आचार्यकी पूजा अङ्गीकार करते हैं। एतदर्थ यहां आचार्य को नमस्काररूप मङ्गल करतेहैं" ज्ञाने नाकाशकल्पेन धर्मान् यो गगनोपमान्, ज्ञेयाभिन्नेन सम्बुद्धस्तं वन्दे द्विपदांवरम् " (जो ज्ञेयों से अभिन्न आकाश के तुल्य ज्ञानसे आकाश की उपमावाले धर्मों को सम्यक् जानता हुआ, तिन द्विपदन के मध्य श्रेष्ठ को वन्दना करता हौं ; अर्थात् जो नारायणनामक परमेश्वर अग्नि की उष्णता अरु सूर्य के प्रकाशवत् उपाधि करके कल्पितभेद से बहु-रूप आत्मस्वरूप धर्मरूप ज्ञेयपने से अभिन्न आकाश के तुल्य यद्यपि [आकाश को जड़ता की अधिकतासे स्वप्रकाशरूप ज्ञान को आकाश की उपमा अपूर्ण है, तथापि ज्ञान के व्यापकपने आदिक बिषे आकाश की उपमा पूर्णता से जानने योग्यहै] ज्ञानरूपता से आकाशके तुल्यता की उपमावाले आत्मा के धर्म्मों को सम्यक्प्रकार जानता हुआ, तिस द्विपदों (मनुष्य से उपलक्षित पुरुष) के मध्य श्रेष्ठ (प्रधान) पुरुषो-त्तम [गौड़पादाचार्य जो हैं सो पूर्व नरनारायण करके आश्रित बदरि-काश्रम बिषे नारायण भगवान् को चित्त में ल्यायके बड़े तप को तपते हुए, ताते नारायण भगवान् प्रसन्न होयके तिनके अर्थ विद्या वरदान देतेहुए। ताते तिस नारायण भगवान्रूप परमेश्वर बिषे वेदान्त सम्प्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाय का परमगुरुपना प्रसिद्ध है । यह भाव है] को मैं वन्दना करता हौं, यह अभिप्राय है ॥ उपदेष्टा आचार्य के नमस्काररूप से विरोधी पक्षों के निषेध द्वारा इस चतुर्थप्रकरण विषे प्रतिपादन करनेको इच्छित ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाता के भेद रहित । अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, इस त्रिपुटी से रहित । परमार्थ तत्त्व का ज्ञान । परमार्थ बोधरूप । प्रतिज्ञा किया होताहै ॥ १ । १२८ ॥

अस्पर्शयोगो वै नाम सर्वसत्त्वसुखोहितः । अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् ॥ २ । १२९ ॥

२ । १२९ हे सौम्य ! अब अद्वैत दर्शनरूप योग की । अर्थात् अद्वैतज्ञान की स्तुति के अर्थ तिसको नमस्कार से स्तुति करते हैं । "अस्पर्शयोगो वै नाम सर्वसत्त्वसुखोहितः" । अस्पर्शयोग प्रसिद्ध नाम है सर्वसत्त्व सुख होताहै हितरूप है ; अर्थात् जिस योग का किसी सेभी कदाचित् भी स्पर्श । सम्बन्ध । होवे नहीं, ऐसा जो ब्रह्मस्वरूप योग सो कहिये अस्पर्श योग नाम है, सो ब्रह्मवेत्ताओं को यह अस्पर्श योग है । अन्यों को नहीं । यह प्रसिद्ध है । । अर्थात् अस्पर्शयोग नामवाला अद्वैत ब्रह्मरूप ज्ञान है सो अद्वैत ब्रह्म के जाननेवाले सम्यक् ब्रह्मवेत्ताओं को है । तिनसे इतर जे कर्मवादि तर्कवादि आदिक भेदी हैं तिन को "न कर्मिणो वेदयन्ते" "नैषा तर्केण मतिरापनेया" । इत्यादि श्रुति प्रमाण से सो ज्ञान नहीं । ॥ अरु कोई एक अत्यन्त सुख के साधन । दिव्य सर्वोत्तम भोग्य सामग्री । करके युक्त हुआ भी योग दुःखरूप है ॥ । जैसे तप अरु यह । ब्रह्मरूप अस्पर्श योग । तैसा नहीं । किन्तु "सर्वेषां सत्त्वानां देहभृतां सुखयतीति" इस व्युत्पत्त्यर्थ से जो सर्वदेहधारी जीवों को सुखी करे, सो सर्व सत्त्वसुख है । ताते सो अस्पर्श नामयोग सर्वजीवों को सुखरूप है । अरु तैसेही इस योग करके हित होता है । अर्थात् जो कदापि किसी विषय का उपभोगरूप सुख है सो सुख तो है परन्तु सो हितरूप नहीं । क्योंकि विषयों का उपभोगजन्य सुख है सो क्षणिक अरु परिणामी है ताते । अरु यह । अस्पर्श योग । सुखरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, अरु हितरूप है, क्योंकि । सो क्षणिक अरु परिणामी न होयके । सर्वदा एकरस अचल स्वभाववाला है ताते । किंवा " । अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् " । ८ अविवाद है अविरुद्ध है उपदेश किया है तिसको मैं नमस्कार करता हौं ; अर्थात् जिस बिषे पक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहण से विरुद्ध कथनरूप विवाद नहीं, एतदर्थ अविवाद है । अर्थात् जहां द्वैत है तहां स्वपक्ष अरु प्रतिपक्ष का ग्रहण है तहां ही परस्पर में राग द्वेषपूर्वक विरुद्ध कथनरूप विवाद है अरु इस भेद-रहित अद्वैत अस्पर्श नामयोग बिषे भेद के अभावसे स्वपक्ष अरु परपक्ष अरु तदाश्रित रागद्वेष अरु परस्पर का विरुद्ध कथनरूप विवाद समूल नहीं, ताते सो अविवाद है अर्थात् जिस पुरुष को एक अद्वितीय ब्रह्म का सो रूपही अस्पर्श योग प्राप्त हुआ है सो विद्वान् " विद्वान् भवते नातिवादी " सम्यक् अद्वैत ज्ञानी हुआ किसीका भी खण्डन मण्डनरूप विवाद करता नहीं, ताते सो अविवाद है । क्योंकि अविरुद्ध है । अतएव ऐसा जो । सर्वोत्तम सुखरूप हितरूप अविवाद अरु अविरुद्ध ' योग जिस शास्त्र ने सम्यक् उपदेश किया है, तिस शास्त्रको मैं नमस्कार करता हौं ॥ २ । १२९ ॥

भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेव हि। अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् ॥ ३ । १३० ॥

३ । १३० हे सौम्य ! [अद्वैतवाद को अविरुद्ध होने करके तिस बिषे विवाद के अभाव को स्पष्ट करने को प्रथम द्वैतवादियों के विवाद को उदाहरण करके कहते हैं] । प्रश्न । द्वैतवादी परस्पर विरोध को कैसे प्राप्त होते हैं, । उत्तर । कहते हैं " भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेवहि " । ८ कोई एक वादी विद्यमान भूतों (वस्तुओं) की उत्पत्ति इच्छते हैं ; अर्थात् जिस करके कोई एक सांख्यशास्त्र मतके अनुसारी द्वैतवादी विद्यमान वस्तु की उत्पत्ति को इच्छतेहैं, सर्व नहीं अरु " अभूतस्यापरे धीरा विवदन्तः परस्परम् " । ८ पण्डितपने के अभिमानी अन्य अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति को इच्छते परस्पर विवाद करते हैं ; अर्थात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाते सांख्यवादियों से अन्य अपने बिषे पण्डितपने के अभिमानी वैशेषिक अरु नैयायिक मतके, अविद्यमान वस्तु की उत्पत्ति को इच्छतेहैं, एतदर्थही परस्पर विवाद करते हैं (अन्यको जय करने को इच्छते हैं इत्यभिप्रायः) ॥ ३ । १३० ॥

भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते । विवदन्तोऽद्वयाह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते ॥ ४ । १३१ ॥

४ । १३१ हे सौम्य ! । प्रश्न । इस कहे प्रकार विरुद्ध कथन से परस्पर के पक्ष के खण्डनके कर्ता वादियों करके सिद्ध किया क्या होता है ? उत्तर । तहां कहते हैं "भूतं न जायते किञ्चिदभूतं नैव जायते" "कुछ भी भूत (विद्यमान) उपजता नहीं, अविद्यमान उपजता नहीं" ; अर्थात् कुछ भी विद्यमान वस्तु उपजता नहीं, क्योंकि सो आत्मावत् विद्यमान है ताते, इस प्रकार कहता हुआ असत् वादी सत् के जन्मरूप सांख्य के पक्ष का निषेध करता है । अरु तैसे अविद्यमान वस्तु भी उपजता नहीं, क्योंकि सो शशशृङ्गवत् अविद्यमान है ताते । इस प्रकार कहता हुआ सांख्यवादी भी असत् के जन्मरूप असत्वादी के पक्ष का निषेध करता है "विवदन्तोऽद्वयाह्येवमजातिं ख्यापयन्ति ते" "ऐसे अद्वैतवादी विवाद करते हुए अनुत्पत्ति को ख्यापन करते हैं" ; अर्थात् जो अद्वैतवादी हैं सो विवाद करते (निर्णयकरते) हुए । अरु सत् अरु असत् के जन्मरूप, इस परस्पर के पक्षरूप विवादको निषेध करतेहुए । कोई कहता है इस विद्यमान वस्तु की उत्पत्ति है कोई कहता है अविद्यमान की उत्पत्ति है इस प्रकार परस्पर में वादी विवाद करते हैं, तिन दोनों के पक्षको निषेध करतेहुए । सत् असत् से भिन्न (विलक्षण) वस्तु के अर्थ से अनुत्पत्ति को प्रकाश करते हैं ॥ ४ । १३१ ॥

ख्याप्यमानामजातिन्तैरनुमोदामहे वयम् । विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत ॥ ५ । १३२ ॥

५ । १३२ हे सौम्य ! [तब वादियों करके उक्त होने से अनुत्पत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भी तुम करके निषेध करने को योग्य है यह शङ्का करके कहते हैं [इस प्रकार तिन प्रतिवादियों करके। अर्थात् " ख्याप्यमानामजातिन्तैर नुमोदामहे वयम् " ' तिन करके प्रकाशित किया अनुत्पत्ति को हम अनुमोदन करते हैं ' अर्थात् ऐसे तिन प्रतिवादियों करके प्रकाशित किया जो अनुत्पत्ति तिसकोही इस प्रकार होवो, ऐसे हम केवल अनुमोदन करते हैं। परन्तु " विवदामो न तैः सार्द्धमविवादं निबोधत " ' तिनके साथ विवाद करते नहीं अविवाद को श्रवणकरो ' अर्थात् जैसे वे (भेदवादी) परस्पर विवाद करते हैं, तैसे हम तिनके साथ पक्ष अरु प्रतिपक्ष के ग्रहण से विवाद करते नहीं। एतदर्थ हे हमारे शिष्यो ! हम करके अनुमोदन किये अविवाद को (अर्थात् विवाद से रहित परमार्थ रूप ज्ञानको श्रवण करो ॥ ५ । १३२ ॥

अजातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः । अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति ॥ ६ । १३३ ॥

६ । १३३ हे सौम्य ! [उत्पन्नहुए वस्तुकेही जन्म करके अनर्थकी प्राप्तिसे अरु अनवस्थादोष की प्राप्ति से अनुत्पन्न हुए पदार्थ केही जन्म को सत्वादी अरु असत्वादी सर्वही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अन्यवादियों के पक्ष का अनुवाद करते हैं] " अजातस्यैव धर्मस्यजाति मिच्छन्ति वादिनः " ' सर्ववादी जन्मरहित धर्म की उत्पत्ति को इच्छते हैं ' अर्थात् सर्व जो सत् असत्वादी है सो , जो जन्मरहित ही धर्म नामवाला परमात्मा है, तिसकी उत्पत्तिको इच्छते हैं परन्तु " अजातो ह्यमृतो धर्मो मर्त्यतां कथमेष्यति " ' अजन्मा मरणरहित धर्म मरनेकी योग्यता को कैसे पावेगा ' अर्थात् अजन्मा अरु अमृत (मरणरहित) जो धर्मनामक परमात्मा सो मरणकी योग्यता को कैसे प्राप्त होवेगा ?, किन्तु किसी प्रकारसे भी प्राप्त होवे नहीं ॥ अर्थात् जो जन्मता है तिस का मरण भी निश्चित है, ताते जो परमात्मा उत्पन्न होय तो विनाश भी अवश्य होगा, परन्तु सो परमात्मा श्रुतिके प्रमाण अरु अनुभव से निराकार महासूक्ष्म एक अद्वैत परिपूर्ण अजन्मा है, अरु जिस करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजन्मा है तिसही करके कदापि मरण के योग्य नहीं ।॥ ६ । १३३ ॥

न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतन्तथा । प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ ७ । १३४ ॥

७ । १३४ हे सौम्य ! [परिणामी ब्रह्म के वाद बिषे जो अब्रह्मवादियों करके दूषण कहेहैं, सो भी हमने अनुमोदन कियाहै, इसप्रकार मानके कहते हैं,] " न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्यममृतं तथा " (मरण रहित मरनेके योग्य होता नहीं, तैसे मरने के योग्य मरणरहित नहीं, अर्थात् मरणरहित जो ब्रह्म सो मरनेके योग्य होता नहीं, क्योंकि स्थितिरूप का विरोधहै ताते । तैसेही मरनेके योग्य कार्य सो स्वरूपकी स्थिति बिषे वा प्रलय अवस्था बिषे मरणरहित ब्रह्म को पावता नहीं । एतदर्थ " प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति " (प्रकृति का अन्यथाभाव किसी प्रकार से भी होगा नहीं ? अर्थात् प्रकृति , कहिये स्वभाव, का अन्यथाभाव किसीप्रकारसे भी होनेका नहीं ॥ इति सिद्धम् ॥ ७ । १३४ ॥

स्वभावेनामृतो यस्य धर्मो गच्छति मर्त्यताम् । कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः ॥ ८ । १३५ ॥

८ । १३५ हे सौम्य ! " स्वभावेनामृतो यस्य धर्मो गच्छति मर्त्यताम् " (जिसका स्वभाव से मरणरहित धर्म मरने की योग्यता को पावताहै ? अर्थात् जिस परिणामवादी के मतमें स्वभावसेही मरणरहित धर्म [परमात्मानामक पदार्थ] कार्यभाव की प्राप्ति से मरने की योग्यता को प्राप्त होता है " कृतकेनाऽमृतस्तस्य कथं स्थास्यति निश्चलः " (तिसका समुच्चय के अनुष्ठान से मरणरहित निश्चल हुआ कैसे स्थित होवेगा ? अर्थात् तिस वादी के मतबिषे समुच्चय के अनुष्ठान से मरण रहित अरु मुक्त हुआ कहने के योग्य है । सो धर्म निश्चल हुआ कैसे स्थित होवेगा, किन्तु किसी प्रकार से भी स्थित होवे नहीं ॥ पूर्व अद्वैत नामक प्रकरण बिषे कथन कियाहै अर्थ जिन्होंका ऐसे इन ६ से लेके ८ पर्यन्त तीन श्लोकों का जो पुनः यहां निवेश किया है, सो अन्यवादियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षों के परस्पर विरोध करके प्रसिद्ध हुए अपने अनुमोदनके लखावने
अर्थ किया है ॥ ८ । १३५ ॥

**सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या । प्र
तिः सेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या ॥ ९ । १३६ ॥**

९ । १३६ हे सौम्य ! जिस करके जब यह लौकिक प्रकृति भी अ-
न्यथा भाव को पावती नहीं, तब यह अजन्मा अरु अमृतस्वभाववाली
प्रकृति अन्यथाभाव को न प्राप्त होवे, इसमें क्या कहना है ' किन्तु
कुछभी नहीं । प्रश्न । कौन यह प्रकृति है ' ? तहां । उत्तर । कहते हैं ।
" सांसिद्धिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या " ? सांसिद्धिकी है
स्वाभाविकी है सहजा है अरु जो अकृत है ; अर्थात् [प्रकृति का अ-
न्यथाभाव किसी भी प्रकार से होनेका नहीं, इस प्रकार ७ वें श्लोक
विषे कहा । तहां प्रकृति शब्द के अर्थ को कहते हैं] सम्यक् सिद्धि
विषे होनहार है एतदर्थ सांसिद्धिकी है । जैसे सिद्ध योगियों की अ-
णिमादि ऐश्वर्य की प्राप्तिरूप जो प्रकृति है, सो भूत अरु भविष्यत्काल
विषे अन्यथाभाव को पावती नहीं, तैसेही सो प्रकृति अन्यथाभाव को
पावती नहीं, एतदर्थ तिसको सांसिद्धिकी कहते हैं । तैसेही स्वभावही
से सिद्ध है याते सोई स्वाभाविकी है, जैसे अग्निआदिकों की उष्ण अरु
आकाशादिरूप प्रकृति है सो भी कालान्तर बिषे अरु देशान्तर बिषे भी
व्यभिचार को प्राप्त होती नहीं, तैसेही यह भी व्यभिचार को पावती
नहीं एतदर्थ इसको स्वाभाविकी कहते हैं । अरु तैसेही सहजा आत्मा
के साथही होनहार है । जैसे पक्षी आदिकों की आकाश बिषे गम-
नादिरूप प्रकृति (स्वभाव) सहज है । तैसेही यह आत्मा के साथही
होनेवाली है, एतदर्थ इसको सहज कहते हैं । अरु अन्यभी जो कोई
एक किसी निमित्त से भी अकृत (अरचित) होवे, जैसे जल की
अधोदेश बिषे गमनादि रूप प्रकृति है, अरु जैसे घटका घटत्व है अरु
पट का पटत्व है, तैसे अन्यभी जो कोई एक कदाचित् भी स्वभाव को
त्यागे नहीं सो सर्व प्रकृति है । इस प्रकार जानने को योग्य है । अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"प्रकृतिःसेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या" ८जो स्वभावको त्यागे नहीं सो सर्व प्रकृति है इस प्रकार । प्रकृति शब्द का अर्थ जानने योग्य है ?, अरु जब लोक बिषे मिथ्या कल्पित लौकिक वस्तु बिषे जो प्रकृति (स्वभाव) है सो भी अन्यथा होता नहीं, तब अजन्मा स्वभाववाले परमार्थरूप सत्य वस्तु बिषे जो अमृत भावरूप स्वभाव है सो अन्यथा न होवे, तिसमें क्या आश्चर्य है किन्तु कुछ भी नहीं । यह इसका अभिप्राय है ॥ ९ । १३६ ॥

जरामरणनिर्मुक्ताः सर्वेधर्माः स्वभावतः । जरामरणमिच्छन्तश्च्यवन्ते तन्मनीषया ॥ १० । १३७ ॥

१० । १३७ हे सौम्य ! । प्र० । पुनः जिसका अन्यथाभाव वादियों करके कल्पित है, ऐसी जो प्रकृति सो किस विषयवाली है, अरु तिसके अन्यथाभाव की कल्पना करनेबिषे उन वादियों की क्या हानि है ? । तहां । उ० । कहते हैं "जरामरणनिर्मुक्ताःसर्वे धर्माः स्वभावतः" । ८सर्व धर्म स्वभावसेही जन्म मरणरहित हैं ?, अर्थात् सर्वधर्म [प्रसंग बिषे प्राप्तहुई ही जीवों की प्रकृति (स्वभाव) तिसके देखावने को, कहने का आरम्भ करते हैं] कहिये आत्मा । अर्थात् "अणुरेषधर्मः" इस कठकी श्रुतिमें आत्माको धर्म नाम करके कहा है । आत्मा सो स्वभावही से जन्ममरणादि सर्व । षट्भाव । विकारों से रहित है, ऐसे स्वभाववाले हुए जे धर्म (आत्मा) हैं । । यहां जो आत्मा को बहुवचन से कहा है सो घटाकाशोंवत् शरीरादिक उपाधि के सम्बन्ध से कहा है । । तिस बिषे । "जरामरणमिच्छन्तश्च्यवन्ते तन्मनीषया" । ८जरा मरण को इच्छते हैं सो तिसकी चिन्ता करके भ्रष्ट होते हैं ?, अर्थात् जो अपने स्वभावसेही जन्म मरणादिक सर्व विकारों से रहित अजर अमर अमर आत्मा हैं, तिस बिषे जो रज्जुबिषे सर्पवत् । अनहुआही । जन्म जरा मरण को इच्छतेहुएवत् इच्छा करते हैं (कल्पते हैं) सो तिस जरामरण की चिन्ता करके स्वभाव से । अपने जन्ममरणादि भाव से । भ्रष्ट होते हैं । अर्थात् जन्मादि सर्व विकाररहित जो आत्मा तिस बिषे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार की कल्पना के हुए तिसकी वासना से उन वादियों को स्वभाव की हानिही होती है यह दोषहै ॥ १० । १३७ ॥

कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते। जायमानं अजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत् ॥ ११ । १३८ ॥

११ । १३८ हे सौम्य ! [प्रसंग बिषे प्राप्तहुए अर्थ को त्याग के सांख्यवादियों के पक्ष बिषे वैशेषिक आदि करके कथन किया अरु रूप अद्वैतवादियों करके अनुमोदन किया जो दूषण है, तिसका अनुवाद करते हैं] सत् कहिये विद्यमान वस्तु की उत्पत्ति के कहनेवाले सांख्यवादियों करके अघटित कैसे कहा है, जहां ऐसा प्रश्न है तहां शेषिक कहते हैं 'कारणं यस्य वै कार्यं कारणं तस्य जायते' 'जिस मतबिषे, कारणही कार्य होताहै तिसके मत बिषे, कारण जन्मता ' अर्थात् जिस सांख्यवादियों के मत बिषे मृत्तिकावत् उपादानरूप कारण ही कार्य होता है । जैसे मृत्पिण्ड घटरूप परिणाम को तैसे कारण कार्य के आकार से परिणाम को प्राप्त होता है । तिनके मत बिषे जन्मरहित ही कारण महत्तत्त्वादि कार्यरूपसे ही जन्मता है। अरु जब महत्तत्त्वादिकों के आकार से उत्पन्न होनेवाला प्रधान है तब सो अजन्मा अरु नित्य कैसे कहा है, एतदर्थ जन्मता है अरु अजन्मा नित्य इसप्रकार तिन करके यह विरुद्ध कथन किया है । अरु 'जायमानं अजं भिन्नं नित्यं कथञ्च तत्' 'सो जायमान है तब अज कैसे होवेगा, अरु विदारण को प्राप्तहुआ नित्य कैसे होवेगा' अर्थात् सो प्रधान एकदेश से भिन्नता भेद वा विदारण, को प्राप्त हुआ नित्य कैसे होवेगा [विवाद का विषय जो प्रधान सो अनित्य है, क्योंकि सावयव होते । घटादिकोंवत्, इस अनुमान के अभिप्रायसे दृष्टान्त को साधते हैं] जिस करके लोक बिषे सावयव एकदेश से फूटने रूप धर्मवाला अनित्य देखा नहीं, एतदर्थ एकदेशसे विदारणको पाया जो प्रधान सो अजन्मा है अरु नित्यहै, इसप्रकार जो उन सांख्यवादियों करके कथन किया है सो विरुद्ध किया है । यह इसका अभिप्रायहै ॥ ११ । १३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारणाद्यदनन्यत्वमतः कार्यमजं यदि । जायमानाहि वै कार्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् ॥ १२ । १३९ ॥

१२ । १३९ हे सौम्य ! अब पूर्व देखाया जो कार्य कारण का भेदवाद तिसके निषेधरूप उक्तार्थ कोही स्पष्ट करने के अर्थ कहते हैं " कारणाद्यदनन्यत्वमतः कार्यमजं " ? जब कारण से अनन्यपना मानता है तब कार्य अजन्मा है ? अर्थात् जब जन्मरहित कारण से कार्य का अनन्यपना तेरेको वाञ्छित (मन्तव्य) है, तब तिस प्रकार से (जन्मरहित) कारण से अपृथक् होने करके कार्य भी अजन्मा है, ऐसे प्राप्त हुआ । एतदर्थ तेरे मत को प्रधान का अजन्यपना अरु जन्यपना यह विरोध हुआ । अरु कार्य है औ अजन्मा है यह दूसरा विरुद्धहुआ किंवा कार्य कारण के अनन्य भाव बिषे अन्य दोष यह है कि " यदि जायमानाहि वै कार्यात् कारणं ते कथं ध्रुवम् " ? जब प्रसिद्ध जायमान कार्य से अनन्य कारण है तब सो तेरे मत बिषे नित्य अरु अचल कैसे होवेगा ? किन्तु किसी प्रकारसे भी होवे नहीं । अरु जैसे कोई कहै कि कुक्कुट (मुरगे) का एक अङ्ग । मस्तकादि कोई । भोजनार्थ पचावते (पकावते) हैं अरु दूसरा अङ्ग 'गर्भाशय' अण्डों के जन्मार्थ कल्पना करते हैं । रहने देते हैं । सो कहना बने नहीं । तैसे कार्य से अभिन्न कारण नित्य अरु ध्रुव है, ऐसी व्यवस्था तेरे मत बिषे बने नहीं, अरु अद्वैतवादियों के माया विवाद बिषे कार्य कारण के अभेद होने से कार्य केही कारणमात्रपने के अङ्गीकार से यह दोष है नहीं यह सिद्ध हुआ ॥ १२ । १३९ ॥

अजाद्यै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै । तान्न जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते ॥ १३ । १४० ॥

१३ । १४० हे सौम्य ! " अजाद्यै जायते यस्य दृष्टान्तस्तस्य नास्ति वै " ? अजन्मा से जन्मता है तिसबिषे दृष्टान्त है नहीं ? अर्थात् जिस प्रधानवादी के मतबिषे अनुत्पन्न वस्तु से कार्य उत्पन्न होता है तिसके मतबिषे दृष्टान्त है नहीं । अरु दृष्टान्त के अभाव से केवल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ करकेही अनुत्पन्न वस्तु से कुछ भी उत्पन्न होता नहीं, इस प्रकार सिद्ध होता है। अरु "जाताच्च जायमानस्य न व्यवस्था प्रसज्यते" ८ उत्पन्न हुए से उत्पन्न हुए का अङ्गीकार है तब सो व्यवस्था को प्राप्त होता नहीं ८ अर्थात् जब पुनः उत्पन्न हुए कारण से उत्पन्न हुई वस्तुका अङ्गीकार है, तब सो अन्य उत्पन्नहुए से उत्पन्न होता है, अरु सो भी अन्य उत्पन्न हुएसेही उत्पन्न होता है, इस प्रकार होनेसे व्यवस्था प्राप्त न होगी, किन्तु अनवस्था दोष ही प्राप्त होवेगा। इत्यर्थः॥ १३। १४०॥

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च। हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते॥ १४। १४१॥

१४। १४१ हे सौम्य! [द्वैतवादियों करके परस्पर पक्ष के निषेध द्वारा सिद्ध किया जो वस्तु का जन्यपना, सो अद्वैतवादी ने अनुमोदन किया। अब श्रुतिप्रतिपादित अरु विद्वान् के अनुभव का अनुसारी द्वैत का निषेध भी इस अद्वैतवादी ने अनुमोदन कियाही है। इस प्रकार कहते हैं] "यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाऽभूत्तदिति" ८ जहां तो जिस पुरुष को सर्व आत्माही होता हुआ ८ इस प्रकार श्रुति ने परमार्थ से द्वैत का अभाव कहा है। तिसको आश्रय करके कारणरूप द्वैतका दुर्निरूपणपना कहते हैं "हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च" ८ जिस हेतु का आदि फल है अरु फल का हेतु आदि है ८ अर्थात् जिन वादियों के मत बिषे धर्मादिरूप हेतु का आदि (कारण) देहादि संघातरूप फल है, अरु देहादि संघातरूप फल का धर्मादिरूप हेतु आदि (कारण) है। इस प्रकार हेतु अरु फल के परस्पर के कार्य अरु कारणभाव करके आदिवान्पने के कहनेवाले करके "हेतोः फलस्य चानादिः कथं तैरुपवर्ण्यते" ८ तिन करके हेतु अरु फल का अनादिपना कैसे वर्णन किया है ८ अर्थात् उक्त प्रकार के हेतु अरु फल के परस्पर के कार्य कारणभाव करके (अर्थात् फल का कारण हेतु, अरु हेतु का कारण फल इस प्रकार के कार्य कारण भाव करके) आदिवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पने के कहनेवाले जे वादी तिन वादियों करके हेतु अरु फल का निषेध (विरुद्ध) अनादिपना कैसे वर्णन किया है ? जिस करके नित्य कूटस्थ निर्विकार आत्मा की हेतु अरु फलरूपता संभवे नहीं, एतदर्थ हेतु अरु फल का आत्मा के परिणाम होनेसे आदिमान्पना अरु उपादानरूप से अनादिपना भी बने नहीं ॥ १४ । १४१ ॥

हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च । तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा ॥ १५ । १४२ ॥

१५ । १४२ हे सौम्य ! [हेतु (अदृष्ट) अरु फल (शरीरादिक) इनके परस्पर के आदिमान्ता को कहनेवाले वादी ने तिस हेतु अरु फलरूप संसार का अनादिपना निषेध किया । इस प्रकार प्रतिपादन किया । अब तिनका कार्य कारणभाव भी संभवे नहीं, ऐसे कहते हैं]। प्र० । तिन करके विरुद्ध अङ्गीकार कैसे किया है, तहां । उ० । कहते हैं " हेतोरादिः फलं येषामादिर्हेतुः फलस्य च " ? जिनके हेतु का आदि फल है अरु फल का आदि हेतु है ; अर्थात् जिनके मत बिषे धर्मादि रूप हेतु का आदि (कारण) फल (देहादिसंघात) है अरु फल का आदि, हेतु है, तिन हेतु से जन्यही फल से हेतु के जन्म को अङ्गीकार करनेवाले वादियों के मत में इस प्रकार का विरोध कथन किया होता है कि " तथा जन्म भवेत्तेषां पुत्राज्जन्म पितुर्यथा " ? जैसे पुत्र से पिता का जन्म तैसे जन्म होवेगा ; अर्थात् पुत्र से पिता का जन्म होना असम्भव अरु कहना विरुद्ध है तैसे फल से हेतु का जन्म कहना विरुद्ध होवेगा । यह तात्पर्य है ॥ १५ । १४२ ॥

सम्भवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया । युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाणवत् ॥ १६ । १४३ ॥

१६ । १४३ हे सौम्य ! [प्रतीति से हेतु अरु फल की उत्पत्ति को स्वीकार करने योग्य होनेसे तिसका निषेध करना युक्त नहीं, यह शङ्का करके कहते हैं] " संभवे हेतुफलयोरेषितव्यः क्रमस्त्वया " ? हेतु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु फल की उत्पत्ति बिषे क्रम तुझ करके अन्वेषण करने को योग्य है? अर्थात्, हे वादिन्! जब उक्त प्रकार का विरोध अङ्गीकार करनेके योग्य नहीं, ऐसे तू मानता है। तब हेतु अरु फल की उत्पत्ति बिषे हेतु पूर्व है फल पश्चात् है इस प्रकार का जो क्रमहै सो तुझ करके अन्वेषण करने योग्य है। अरु। "युगपत्सम्भवे यस्मादसम्बन्धो विषाण वत्"। ८ जाते एक काल बिषे सम्भव के हुए शृङ्गोंवत् असम्बन्ध होवेगा? अर्थात् जिस करके एक काल बिषे उत्पत्ति के होनेसे शृङ्गोंवत् असम्बन्ध होवेगा। जैसे एक काल बिषे उत्पन्न होनेवाले वाम दक्षिण रूप जो गौके दोनों शृङ्ग तिनका परस्पर कार्य कारण भाव करके असम्बन्ध है, तैसेही एक काल बिषे उत्पन्न हुए हेतु अरु फल का कार्य कारण भाव से असम्बन्ध होवेगा, एतदर्थ तिनका क्रम तुझ करके अन्वेषण करने के योग्य है॥ १६। १४३॥

फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति। अप्रसिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति॥ १७। १४४॥

१७। १४४ हे सौम्य! [अब। "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति"। ८ पुण्यकर्म करके निश्चय पुण्यरूप होता है? इत्यादिक श्रुति प्रमाण से धर्मादिकों बिषे हेतु अरु फलभाव की शङ्का करके श्रुति को अघटित अर्थ बिषे प्रमाण होने के असम्भव से श्रुति का पूर्वापर भाव (प्रथम पश्चात् पना) अवश्य कहने के योग्य है, इस प्रकार कहते हैं]। प्र०। तब तिनका (हेतु अरु फलका) सम्बन्ध कैसेहै,। उ०। कहते हैं, "फलादुत्पद्यमानः सन्न ते हेतुः प्रसिद्ध्यति"। ८ फल से उत्पन्न होनेवाला हुआ हेतु सिद्ध होगा नहीं? अर्थात् जन्य अरु स्वरूप से अप्रतीतिरूपवाले फल से उत्पन्न होनेवाला हुआ हेतु शशशृङ्ग आदिक असत् वस्तुवत् सिद्ध न होवेगा (अर्थात् जन्म को न पावेगा) अरु "अप्रसिद्धः कथं हेतुः फलमुत्पादयिष्यति"। ८ अप्रसिद्ध हुआ हेतु कैसे फल को उत्पन्न करेगा? अर्थात् शशशृङ्गादिकोंवत् अप्रतीतिरूपवाला अप्रसिद्ध हुआ हेतु तेरे मत बिषे कैसे फल को उत्पन्न करेगा? क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परस्पर की अपेक्षा करके सिद्धिवाले शशशृङ्ग के तुल्य वस्तुओंका कार्य कारणभावसे कहीं भी सम्बन्ध देखा नहीं ॥ यह अभिप्रायहै ॥१७।१४४॥

यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः । कतरत्पूर्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया ॥ १८ । १४५ ॥

१८ । १४५ हे सौम्य ! "यदि हेतोः फलात्सिद्धिः फलसिद्धिश्च हेतुतः" ८ जब फल से हेतु की सिद्धि अरु हेतुसे फल की सिद्धि है, अर्थात् असम्बन्धपने रूप दोष से हेतु अरु फल के परस्पर कार्य कारणभाव के निषेध किये हुए भी जब तुझ करके फलसे हेतुकी सिद्धि अरु हेतुसे फलकी सिद्धि अङ्गीकार कियाही है, तब "कतरत्पूर्वनिष्पन्नं यस्य सिद्धिरपेक्षया" ८ पूर्व की सिद्धि की अपेक्षा से जिसकी सिद्धि होती है ऐसा पूर्व उत्पन्न हुआ कौन है ? अर्थात् उक्त प्रकार जब हेतु अरु फल की परस्पर से सिद्धि अङ्गीकार किया है, तब हेतु अरु फल के मध्य पूर्व की सिद्धि की अपेक्षा से जिस पश्चात् होनहार की सिद्धि होती है, ऐसा पूर्व उत्पन्न हुआ कौन है ? सो आप कहिये ॥ १८ । १४५ ॥

अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः । एवं हि सर्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता ॥ १९ । १४६ ॥

१९ । १४६ हे सौम्य ! "अशक्तिरपरिज्ञानं क्रमकोपोऽथवा पुनः" ८ अशक्ति अपरिज्ञान है, अथवा क्रम कोप होवेगा ? अर्थात् जब यह क्रम जानने को अशक्य है, इस प्रकार मानता है, तब सो यह अशक्ति । अर्थात् कहने का असामर्थ्य । अज्ञान है, अर्थात् तत्त्व का अविवेकरूप मूढ़ता है । अथवा पुनः जो यह तूने । हेतु से फल की सिद्धि होती है अरु फल से हेतु की सिद्धि होतीहै, इस प्रकार अन्योन्य के पश्चात् होने रूप क्रम कहा । अर्थात् हेतु से पश्चात् फल होताहै अरु फल से पश्चात् हेतु होता है ऐसा क्रम तूने कहा । तिसका कोप । अर्थात् अन्यथाभावरूप विपर्यय । होवेगा । यह अभिप्राय है । अरु "एवं हि सर्वथा बुद्धैरजातिः परिदीपिता" ८ ऐसे बुद्धिमानों ने सर्वप्रकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेंही अनुत्पत्ति ही प्रकाशित किया है? अर्थात्, इस प्रकार [परस्पर के पक्ष के निषेधरूप द्वार से सत् अरु असत् वस्तु के जन्म के निषेध कियेहुए क्रम अरु अक्रम करके उत्पत्ति के असम्भव से वादियों करके दिखाई हुई अनुत्पत्ति ही हम को इष्ट होती है, इस प्रकार अजातवाद को समाप्त करते हैं] हेतु फलके कार्यकारणभाव के असम्भवसे परस्पर की अपेक्षा से दोष के कहनेवाले वादीरूप पण्डितों ने सर्व प्रकार सेही सर्व वस्तु की अनुत्पत्तिही प्रकाशित कियाहै ॥ १९ । १४६ ॥

बीजाङ्कुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः। नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते॥ २० । १४७॥

२० । १४७ हे सौम्य! अब पूर्वपक्षी शङ्का करताहै। शङ्का। हे सिद्धान्तिन्! हेतु अरु फल का कार्य कारणभाव है, इस प्रकार हमने कहाहै। अरु तैंने 'जैसे पुत्र से पिता का जन्म होता है, अरु गौ के शृङ्गोंवत् असम्बन्ध होवेगा, इत्यादिरूप कहनेको इच्छित अर्थसे रहित शब्दमात्र को आश्रय करके, यह छल कहा है। अरु जिस करके हमों ने असिद्ध हेतु से फल की सिद्धि, वा असिद्धफल से हेतु की सिद्धि, अङ्गीकार किया नहीं, किन्तु बीजांकुर न्यायवत् हेतु अरु फल का कार्य कारण भाव अङ्गीकार कियाहै, तहां हमारे मत बिषे कोई भी दोष नहीं। अब समाधान कहते हैं "बीजाङ्कुराख्यो दृष्टान्तः सदा साध्यसमो हि सः" "बीज अंकुर नामवाला जो दृष्टान्त है सो सदा साध्य करके तुल्य है" अर्थात् जो बीजांकुर न्यायवाला दृष्टान्तहै सो मुझ मायावादी के मत बिषे साध्य करके सदा तुल्यही है, क्योंकि वास्तव करके कार्य कारणभाव की प्रतीति कहीं भी नहीं ताते। यह तात्पर्य है। शङ्का। ननु, बीज अरु अंकुर का जो कार्यकारणभाव है सो प्रत्यक्ष अनादि है, इस प्रकार जब वादी ने कहा तब सिद्धान्ती समाधान कहता है, हे वादिन्! बीज अरु अंकुर व्यक्ति का कार्य कारणभाव तुझ करके अङ्गीकार किया है, किंवा बीज अरु अंकुर के सन्तान का कार्यकारण भाव अङ्गीकार किया है, तहां प्रथमपक्ष। जो बीज अरु अंकुर की व्यक्ति का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कार्याकारणभाव सो । बने नहीं, क्योंकि पूर्व पूर्व के पिछलेवत् आदि-मान्पने का अङ्गीकार है ताते । जैसे, अभी उत्पन्न हुआ बीज आदिक-वाला पिछला अंकुर और पिछला बीज, अन्य अंकुर अरु बीज से पूर्व है, एतदर्थ क्रम करके उत्पन्न होनेसे आदिवाला है । इस रीति से एक एक सर्व बीज अरु अंकुर के समूह को आदिवाला होने से किसीके भी अनादिपने का । अर्थात् परस्पर कारणपने का । सम्भव नहीं, । इस प्रकार हेतु अरु फलों के भी अनादिपने का अरु परस्पर कारणपने का सम्भव नहीं । अरु जो दूसरा पक्ष कहे कि बीज अरु अंकुर की सन्तति (सन्तान) का अनादिपना है, तो सो भी बने नहीं, क्योंकि तिनकी सन्तति की एकरूपता का असम्भव है ताते । अरु जिस करके उन बीज अरु अंकुर के अनादिपने के वादियों करके, बीज अरु अंकुर से भिन्न बीज अरु अंकुर का सन्तान नामक एक व्यक्ति अङ्गीकार किया नहीं । अतएव हेतु अरु फल का अनादिपना उन वादियों करके कैसे वर्णनकिया है, सो कहो । तैसे हेतु अरु फल के कार्यकारण भावकी कहीं भी प्रतीति का सम्भव न होने से, अन्यभी जो हमों ने कहा है सो छलरूप है नहीं । यह अभिप्राय है । अरु लोक में प्रमाण बिषे कुशल पुरुषों करके "नहि साध्यसमो हेतुः सिद्धौ साध्यस्य युज्यते" (साध्य से तुल्य हेतु साध्य की सिद्धि बिषे जोड़ते नहीं ; अर्थात् साध्यवस्तु से तुल्य हेतु कहिये दृष्टान्त साध्य की सिद्धिबिषे सिद्धि के निमित्त योजना करते नहीं यहां हेतुशब्द के मुख्यार्थ को त्यागके दृष्टान्तरूप गौणअर्थ कहने को इच्छित है, क्योंकि सूचक है ताते । अरु जिस करके प्रसंग बिषे प्राप्तहुआ हेतु है नहीं दृष्टान्त है, याते सोई ग्रहण कियाहै ॥२०।१४७॥

पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम् । जायमानादि वै धर्मात्कथं पूर्वं न गृह्यते ॥ २१ । १४८ ॥

२१ । १४८ हे सौम्य ! । प्रश्न । पण्डितों ने सर्व वस्तुकी अनुत्पत्ति कैसे प्रकाशित किया है, । उत्तर । "पूर्वापरापरिज्ञानमजातेः परिदीपकम्" (पूर्वापर (कार्य कारण) का अपरिज्ञान अनुत्पत्तिका प्रकाशक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है? अर्थात् जो यह हेतु अरु फल के कार्य अरु कारणभाव का अपज्ञान है सोई यह अनुत्पत्ति का प्रकाशक कहिये अवबोधक है। अरु "जायमानाद्धि वै धर्मात्कथं पूर्वं न गृह्यते" "उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध धर्म से पूर्व कैसे ग्रहण करते नहीं? अर्थात् जब उत्पन्न होनेवाला धर्म कहिये कार्य ग्रहण करते हैं, तब उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध कार्यरूप धर्म से पूर्व (कारण) कैसे ग्रहण करते नहीं। अरु जिस करके उत्पन्न होनेवाले कार्य के ग्रहण करनेवाले पुरुषों करके तिसका जनक अवश्य ग्रहण करने योग्य है, क्योंकि जन्य जनक का सम्बन्ध अभिन्न है ताते, अतएव सो कार्य कारण का अज्ञान अनुत्पत्ति का प्रकाशक है इत्यर्थः॥ २१। १४८॥

स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते। सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते॥ २२। १४९॥

२२। १४९ हे सौम्य! इस कथन करने के हेतु से कुछ भी वस्तु जन्मता नहीं, इस प्रकार सिद्ध होता है। अरु "स्वतो वा परतो वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते। सदसत्सदसद्वाऽपि न किञ्चिद्वस्तु जायते" "स्वतः वा परतः वा उभय से कुछ भी वस्तु उत्पन्न होती नहीं याते सत्, असत्, वा सदसत्, कुछ भी वस्तु उत्पन्न होती नहीं अर्थात् जिस करके आपसे वा पर से वा दोनों से भी कुछभी वस्तु उपजती नहीं, एतदर्थ सत्, असत्, वा सदसत् दोनों रूपभी कुछभी वस्तु उत्पन्न होती नहीं। अर्थात् जब स्वतः वा परतः कुछ किसी प्रकार भी उत्पन्न होता नहीं, तब सत्रूप से वा असत्रूप से वा सदसत् उभयरूप से कुछभी उपजता नहीं॥ इसका यह भावार्थ है कि जो उत्पन्न होनेवाली वस्तु आपसे वा पर (दूसरे) से वा स्व, पर दोनों से सत् वा असत् वा सदसत् उभयरूप उपजती है, तिसका किसी भी प्रकार से जन्म संभवे नहीं। जैसे घट आपही तिसही घटसे उपजता नहीं, तैसे प्रथम आपही अनुत्पन्न होनेसे अपने स्वरूप से उपजता नहीं जैसे घटसे पट अरु पट से अन्यपट उपजता नहीं, तैसे अन्य से अन्य भी उपजता नहीं। अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जैसे घट अरु पट इन दोनों से घट वा पट उपजता नहीं, तैसे दोनों से भी कोई वस्तु उपजता नहीं । शङ्का । ननु, मृत्तिका से घट उपजता है अरु पिता से पुत्र उत्पन्न होता है । । तब कैसे कहते हो जो उक्त प्रकार कुछ भी उपजता नहीं । । समाधान । तहां कहते हैं ' मूढ़ पुरुषों को ' उपजता है, ऐसा ज्ञान अरु शब्द है, यह तेरा कथन सत्य है, तथापि सोई शब्द अरु ज्ञान विवेकी पुरुषों करके वे शब्द अरु ज्ञान क्या सत्य है ? वा असत्य है, इस प्रकार यावत् परीक्षा करते हैं तावत् वो मिथ्या है । क्योंकि तद्विषयक निश्चय नहीं । । इस प्रकार परीक्षा किये हुए शब्द अरु ज्ञान का विषय घट पुत्रादिकरूप जो वस्तु है सो शब्द-मात्रही है " वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् " ८ वाणी से उच्चारण किया विकार कहनेमात्रही है ? इस श्रुति के प्रमाण से । अतएव शब्द अरु ज्ञान को । अर्थात् शब्द अरु तदाश्रितज्ञान को । । असत्य विषय-वान्पना मानने के योग्य है अरु जब सत् है तब उपजता नहीं, क्योंकि सत्वस्तु उत्पत्तिमान् होती नहीं ताते, । मृत्पिण्डवत् । अरु जब असत् है तोभी जन्मता नहीं (विद्यमान नहीं) क्योंकि शशशृङ्गवत् असत् है ताते । अरु जब सदसद्रूप है तोभी जन्मता नहीं, क्योंकि तमप्रकाशवत् परस्पर विरुद्धरूप के एकवस्तुपने का असंभव है ताते । एतदर्थ कुछ भी वस्तु जन्मता नहीं, इति सिद्धम् ॥ पुनः जिन बौद्धों के मत बिषे उत्पत्तिरूप क्रियाही उपजती है, इस प्रकार क्रिया कारक अरु फल की एकता अरु वस्तु का क्षणिकपना अङ्गीकार किया है एतदर्थ वे वादी दूरसेही युक्ति करके रहित हैं, क्योंकि ' यह ऐसे है ' इस निश्चय की स्थिति का अन्य क्षण बिषे अभाव है ताते, अरु अनुभव किये वस्तु की स्मृति का अभाव है ताते ॥ २२ । १४९ ॥

हेतुर्नजायतेऽनादेः फलञ्चापि स्वभावतः । आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते ॥ २३ । १५० ॥

२३ । १५० हे सौम्य ! किञ्च, हेतु अरु फल के अनादिपने को अङ्गीकार करनेवाले तुझ वादी करके बलात्कार से हेतु अरु फल को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुत्पत्तिही अङ्गीकार की होगी। प्रश्न। कैसे अङ्गीकार की होगी। उत्तर। तहां कहते हैं "हेतुर्नजायतेऽनादेः फलं चापि स्वभावतः। आदिर्न विद्यते यस्य तस्य ह्यादिर्न विद्यते" ८ आदिरहित से हेतु जन्मता नहीं अरु आदिरहित हेतु से फल भी स्वभाव से 'उपजता नहीं'। अरु जिसकी आदि नहीं तिसकी आदि विद्यमान नहीं; अर्थात् आदिरहित फल से। ८ अर्थात् जो फल 'देहादिक' आदि से है नहीं तिनसे ८। तिनसे हेतु (अद्दष्ट) जन्मता नहीं, अरु आदिरहित हेतु से फल भी स्वभाव से ८ अपने आपसे ८ जन्मता नहीं। अरु जिस करके अनुत्पन्न हुए अनादि फल से ८ अर्थात् जो उत्पन्नही नहीं हुआ ऐसे फल से ८ हेतुका जन्म, अरु आदिरहित अजन्मा हेतु से फल भी स्वभावसेही ८ अर्थात् निमित्त विनाही ८ उपजता है इस प्रकार तुझ करके अङ्गीकार न किया होगा। ताते हेतु अरु फल के अनादिपने के अङ्गीकार करनेवाले तुझ करके हेतु अरु फल की अनुत्पत्ति ही अङ्गीकार किया है। एतदर्थ लोक बिषे जिसका आदि (कारण) है नहीं तिसकी आदि (उत्पत्ति) है नहीं। अर्थात् कारणवाली वस्तु की ही उत्पत्ति अङ्गीकार करते हैं, कारणरहित की नहीं। एतदर्थ अनादिरूप इन हेतु अरु फल की अनुत्पत्ति ही सिद्ध हुई। इति सिद्धम्॥ २३। १५०॥

प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमन्यथाद्वयनाशतः। संक्लेशस्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽसितामता॥ २४। १५१॥

२४। १५१ हे सौम्य! [वस्तु के वास्तव करके जन्म के अभाव से एक अजन्मा विज्ञान घनमात्र तत्त्व है इस प्रकार कहा अब बाह्य अर्थ के वाद को उठावते हैं] उक्तार्थ को ही दृढ़ करने की इच्छा से पुनः आक्षेप करते हैं "प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमन्यथाद्वयनाशतः" ८ प्रज्ञप्ति का निमित्त करके सहितपना है अन्यथा द्वैत के नाश से तिस का नाश प्राप्त होवेगा; अर्थात् शब्दादिकों की प्रतीतिरूप जो ज्ञान सो प्रज्ञप्ति है' तिस प्रज्ञप्ति का विषयरूप निमित्त (कारण) करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सहितपना (आपसे पृथक् विषयवान्पना) है, इस प्रकार हम प्रतिज्ञा करते हैं । ताते शब्दादिकों की प्रतीतिरूप प्रज्ञप्ति विषयरहित होवे नहीं, तिसको विषयरूप निमित्त करके सहितपना है ताते । अतएव इस प्रज्ञप्ति को आपते भिन्न वस्तुरूप विषयवान्पना युक्त है । अन्यथा (अर्थात् तिसको विषयरहितपने के हुए) शब्द स्पर्श नील पीत रक्तादिकों के ज्ञानों की विषयतारूप द्वैतका अभाव है नहीं, क्योंकि सो प्रत्यक्ष है ताते । एतदर्थ ज्ञानों की विचित्रतारूप द्वैत के दर्शनसे अन्य वादियों का शास्त्र परतन्त्र है, इस प्रकार अन्यों का जो शास्त्र तिसके परन्तत्र आश्रयरूप ज्ञान से । भिन्न बाह्यार्थ की अस्तिता (विद्यमानता) माननी (हमको वाञ्छित) है अरु प्रकाशवान् स्वरूप प्रज्ञप्ति का नील पीतादि बाह्य विषयों की विचित्रता विना स्वाभाविक भेद से ही विचित्रपना संभवे नहीं, जैसे स्फटिक का नीलादिक उपाधिरूप आश्रयों के विना विचित्रपना घटे नहीं तैसे, यह अभिप्राय है । इस [बाह्यार्थ विना अग्नि करके दाहआदिकों के किये दुःखकी प्रतीति का असंभव है ताते, बाह्यार्थ है, इस प्रकार करते हैं ।] अन्य हेतु से भी परतन्त्र आश्रयरूप ज्ञान से पृथक् बाह्यार्थ की अस्तिता (सद्भाव) है । अरु " संक्लेशस्योपलब्धेश्च परतन्त्राऽस्तितामता " ६ क्लेशकी उपलब्धि से परतन्त्र की अस्तिता मानी है ; अर्थात् क्लेशकहिये दुःख तिसकी प्रतीति से परतन्त्रकी अस्तिता मानीहै । जिसकरके अग्नि आदिक निमित्त का किया दुःख प्रतीत होताहै । अरु जब दाहाऽऽदिकों का निमित्त अग्नि आदिक बाह्यवस्तु, ज्ञानसे भिन्न न होय तो दाहादिकरूपदुःख प्रतीत न होना चाहिये, परन्तु सो प्रतीत होताहै, एतदर्थ तिस प्रतीति करके बाह्यार्थ है, इसप्रकार हम मानतेहैं । अरु जिसकरके विज्ञानमात्र बिषे क्लेशयुक्त नहीं, अरु अन्य स्रक् चन्दनादिकों के ठिकाने दुःखका अदर्शनहै ताते । अर्थात् अग्निदाहादिकों से क्लेश की प्रतीति है ताते, अरु स्रक् चन्दनादिकों के ठिकाने दुःखका अदर्शन है ताते । । एतदर्थ ज्ञानसे भिन्न बाह्यार्थ के अभावहुए दुःखकी प्रतीति का अभावहै, ताते । ज्ञान से भिन्न बाह्यार्थ संभव है ताते । इत्यभिप्रायः ॥ २४ । १५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रज्ञप्तेःसनिमित्तत्वमिष्यतेयुक्तिदर्शनात् । निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यतेभूतदर्शनात् ॥ २५ । १५२ ॥

२५। १५२ हे सौम्य ! इस प्रकार [दोनों अर्थापत्ति प्रमाणों करके बाह्यार्थ के वाद के प्राप्त हुए विज्ञानवाद को प्रकट करते हैं ।] वादी ने पूर्वश्लोक बिषे आक्षेप किया । तिसकी निवृत्त्यर्थ कहते हैं । " प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वमिष्यते युक्तिदर्शनात् " (प्रज्ञप्ति का निमित्त करके सहितपना युक्ति के देखने से तुझ करके अङ्गीकार है सो सत्य है ; अर्थात्, हे वादिन् ! उक्तप्रकार द्वैत अरु दुःख की प्रतीतिरूप युक्ति के देखने से प्रज्ञप्ति का विषयरूप निमित्त करके सहितपना तुझ करके अङ्गीकार किया है यह सत्य है, परन्तु प्रथम बाह्यार्थरूप वस्तु की प्रज्ञप्ति की विषयता के अङ्गीकार बिषे पूर्वोक्त युक्ति का देखना कारण है, इस अर्थ बिषे तैंने स्थित रहना ॥ प्र० ॥ मैं विचारदृष्टि को ही आश्रय करके वर्तता हौं तिस करके मेरेको क्या दूषण है सो कहो । तहां सिद्धान्ती [उत्तर] कहता है कि, दूषण कहते हैं " निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यते भूतदर्शनात् " (निमित्त का अनिमित्तपना अङ्गीकार करते हैं परमार्थ के देखने से ; अर्थात् तेरे करके प्रज्ञप्ति के आश्रय मानेहुए जे घटादिरूप निमित्त तिनका अनिमित्तपना । [अर्थात् विचित्रता का अकारण होनेरूप अनाश्रयपना] हमों करके अङ्गीकार किया है, क्योंकि परमार्थ को देखा है तातें । अरु घट जो है सो परमार्थरूप मृत्तिका के स्वरूप से देखा हुआ ' जैसे अश्व से भिन्न महिष है तैसे, [मृत्तिका से घट] भिन्न नहीं । वा जैसे तन्तु से भिन्न पट अरु अंशु [अतिसूक्ष्म तन्तु वा तूल] से पृथक् तन्तु नहीं, इस प्रकार उत्तरोत्तर परमार्थरूप वस्तु के देखेहुए शब्द अरु ज्ञान से आरम्भ करके [अर्थात् पद पदार्थ अरु पद पदार्थ का ज्ञान इनसे आरम्भ करके] सर्व के निरोध हुए प्रज्ञप्ति का निमित्त हम देखते नहीं यह अर्थ है । अथवा रज्जु बिषे सर्पादिकोंवत् परमार्थ के देखने से बाह्यार्थ का अनिमित्तपना अङ्गीकार करते हैं, यह अर्थ है । अरु भ्रान्तिज्ञान का विषय होने से निमित्त का अनिमित्त-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पना होता है । अरु जिस करके सुषुप्तिमान्, समाधिमान् अरु मुक्त इन पुरुषों को भ्रान्तिदर्शन के अभावहुए, आपसे भिन्नपदार्थ प्रतीत होते नहीं । अरु जिस करके अनुत्पत्ति से । अर्थात् उत्पत्ति के अभाव हुए । भी उत्तम पुरुष करके ज्ञातवस्तु विद्वानों करके तिस प्रकार का जानते नहीं [देहाभिमानी को जो बाह्य अर्थ की प्रतीति का निश्चय है । कि यह जो बाह्य प्रतीतिमान् पदार्थ है सो सत्य है । तिस करके अद्वैतदर्शी को भी तिसकी प्रतीति प्रतिबन्धरहित होवेगी, । यह शङ्का करके कहते हैं] एतदर्थ भ्रान्ति के अभाव हुए बाह्यार्थ का अभाव बनताहै । [बाह्यार्थ के प्रतिपादनार्थ कथन किये जे उभय अर्थापत्ति प्रमाण सो कैसे निषेध करनेके योग्यहै, इस शङ्काके हुए कहते हैं, इस कथन करके द्वैत का दर्शन अरु दुःखकी प्रतीतिरूप प्रज्ञप्ति के निमित्त सहितपने बिषे कथनकिये कारणका निषेध कियाजानना ॥ २५ । १५२ ॥

चित्तं न संस्पृशत्यर्थं नार्थाभासं तथैवच । अभूतोहि यतश्चार्थो नार्थाभासस्ततः पृथक् ॥ २६ । १५३ ॥

२६ । १५३ हे सौम्य ! जिस करके [ज्ञान को आश्रय कहिये विषय वा ज्ञेय तिस करके सहितपने की प्रसिद्धि के हुए । अर्थात् ज्ञान जो है सो ज्ञेय करके सहितही है, इस प्रसिद्धि के हुए ? । वास्तवदृष्टि करके देखे हुए ज्ञेय के अभाव से ज्ञानका भी अभाव होवेगा, । यह शङ्का करके कहते हैं] बाह्य निमित्त नहीं है एतदर्थ है " चित्तं न संस्पृशत्यर्थं नार्थाभासं तथैवच " ८ चित्त अर्थ को स्पर्श करता नहीं, पुनः तैसेही अर्थ के आभास को ? अर्थात् जब बाह्य निमित्त है नहीं, ताते चित्त जो है चैतन्य सो बाह्य के आश्रय अरु विषयरूप अर्थ को स्पर्श करता नहीं [चैतन्य को पदार्थ के अर्थ स्पर्श करने के स्वभाव के अभाव हुए भी तिस पदार्थ के आभासार्थ स्पर्श करने का स्वभाव होवेगा, । यह शङ्का करके तब कहते हैं] अरु " अभूतोहि यतश्चार्थो नार्थाभासस्ततःपृथक् " ८ जाते अर्थ मिथ्या है ताते अर्थाभास भी तिस से भिन्न नहीं ? अर्थात् चित्त कहिये जो चैतन्य है सो बाह्य के अर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु तिसके आभास को स्पर्श करता नहीं, क्योंकि [निराकार] चैतन्य है ताते 'जैसे स्वप्न के पदार्थों को चैतन्य स्पर्श करता नहीं तैसे, । अरु जिस (उक्तहेतु) करके [अब श्लोक के तृतीय पाद का व्याख्यान करते हैं । विवाद का विषय जो अर्थ सो सत्‌रूप होता नहीं, क्योंकि अर्थ है ताते, प्रसिद्ध अर्थोंवत् । इस अनुमान से ज्ञान का आश्रय है नहीं । इत्यर्थः] जाग्रत् बिषे भी बाह्य शब्दादिरूप अर्थ स्वप्न के अर्थवत् मिथ्याही हैं । एतदर्थ [यहां यह अर्थ है कि, जब घटादिक बाह्यार्थ को ग्रहण नहीं करते, तब असत्‌रूप तिस घटादिक बिषेही तिन घटादिकों की प्रतीति के होने से ज्ञान का विपर्यास कहिये भ्रम होवेगा, क्योंकि तिस करके रहित बिषे तिसकी बुद्धिरूप विपर्यास तिस प्रकार का है ताते, अरु विपर्यास के अङ्गीकार किये कहीं भी अविपर्यास कहिये अभ्रान्ति कहने के योग्य है, क्योंकि अन्यथा ख्यातिवादियों करके भ्रान्ति की अभ्रान्तिपूर्वक तिसका अङ्गीकार है ताते] अर्थाभास भी उक्त चित्त से भिन्न है नहीं, किन्तु चित्त कहिये 'ब्रह्म' चैतन्य ही घटादिरूप अर्थवत् भासता है । जैसे स्वप्न बिषे भासता है तैसे ॥ २६ । १५३ ॥

निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसुत्रिषु । अनिमित्तो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति ॥ २७ । १५४ ॥

२७ । १५४ हे सौम्य ! [ज्ञानको विषयरूप आश्रय करके सहितता के अभाव हुए तिसके तिस प्रकार होनेकी प्रतीति भ्रान्ति होवेगी, अरु भ्रान्ति जो है सो अभ्रान्तिरूप प्रतियोगी वाली है, इस प्रकार अन्यथा ख्याति के मतकी शङ्का लेके कहते हैं] शङ्का । ननु, तब चैतन्य को असत् घटादिकों बिषे घटादिक की आभासतारूप विपर्यय (भ्रम) होवेगा, । अरु तैसे हुए कहिंक (किसी भी ठिकाने) अविपर्यय कहने को योग्य है । अर्थात् जब चैतन्य को असत् घटादिकों बिषे घटादिकों की आभासतारूप भ्रम होवेगा तब तिस भ्रम का प्रतियोगी जो अभ्रम सो भी किसी न किसी बिषे कहने को योग्यहो है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तहां उत्तर कहते हैं, [भ्रान्ति तो अन्यप्रकार से भी होवेगी, इस प्रकार कहते हैं] " निमित्तं न सदा चित्तं संस्पृशत्यध्वसु त्रिषु " ८ निमित्त तीनमार्गों बिषे भी सदा चित्त (चैतन्य) को स्पर्श करता नहीं ; अर्थात् निमित्त जो है विषय सो भूत भविष्यत् अरु वर्तमानरूप इन तीन मार्गों (कालों) बिषे भी चित्ताख्य चैतन्य को स्पर्श करता नहीं, जब कहीं भी स्पर्श करे तब सो परमार्थ से अविपर्यय है । एतदर्थ तिस चित्त के स्पर्श की अपेक्षा से असत् घट बिषे घट का आभासरूप विपर्यास होवे है, परन्तु सो चित्त (चैतन्य) का अर्थ (विषय) से कदाचित् भी स्पर्श है नहीं " अनिमित्तो विपर्यासः कथं तस्य भविष्यति " ८ निमित्तरहित विपर्यास तिसको कैसे होवेगा ? अर्थात् जब चैतन्य का अर्थ से स्पर्श किसीप्रकार भी नहीं, ताते निमित्तरहित तिस चित्त को विपर्यास कहिये भ्रान्ति कैसे होवेगी ? किन्तु किसी प्रकार से भी विपर्यास है नहीं । इत्यभिप्रायः । अरु यहही चित्त (ब्रह्मचैतन्य) का स्वभाव कहिये अविद्या है कि जो घटादिरूप निमित्त के अविद्यमानहुए तद्वत् (विद्यमानहुएवत्) भासना एतदर्थ अभ्रान्ति के अभाव से भ्रान्तिके भी असम्भवहुए । (अर्थात् जो जिसका सापेक्षक है सो तिसके अभाव से अभाव होता है) ज्ञानकी असत् घटादिकों बिषे घटादिकों की अभासरूपता निर्वाह करते हैं ॥ २७ । १५४ ॥

तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न जायते । तस्य पश्यन्ति ये जातिं खेवै पश्यन्ति ते पदम् ॥ २८ । १५५ ॥

२८ । १५५ हे सौम्य ! [इस प्रकार बाह्यार्थवादी के पक्ष को विज्ञानवादी के मत द्वारा निषेध करके अब विज्ञानवाद का भी निषेध करते हैं] " प्रज्ञप्तेः सनिमित्तत्वं " ८ प्रज्ञप्ति का निमित्त सहितपना है ? इससे आदि लेके यहां पर्यन्त विज्ञानवादी जो बौद्ध तिसका बाह्यार्थ के वादी के पक्ष के निषेध परायण वचन हैं, सो आचार्य ने अनुमोदन किया । अब तिसही वचन को हेतु करके तिस विज्ञानवादी के पक्ष के निषेधार्थ यह कहते " तस्मान्न जायते चित्तं चित्तदृश्यं न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जायते " ८ ताते चित्त जन्मता नहीं । जैसे । चित्त का दृश्य जन्मता नहीं ? अर्थात्, जिस करके विज्ञानवादी ने असत्ही जो घटादिक तिस बिषे चित्त (चैतन्य) को घटादिकों की आभासरूपता अङ्गीकार किया है सो हमोंने भी परमार्थदृष्टि से अनुमोदन किया । अतएव तिस चित्त की भी जन्म के अविद्यमान हुए ही जानने में आवनहार वस्तु की आभासरूपता होने को योग्य है एतदर्थ चित्त कहिये चैतन्य जन्मता नहीं, जैसे चित्त का दृश्य जन्मता नहीं तैसे । एतदर्थ तिसही चित्त करके देखने को अशक्य चित्तस्वरूप के धर्म, तिस कारण से , क्षणिकता दुःखरूपता अरु अनात्मरूपता, इत्यादिकों को देखतेहुए " तस्य पश्यन्ति ये जातिं खे वै पश्यन्ति ते पदम् " ८ जो तिसकी उत्पत्ति को देखते हैं सो आकाश बिषे पादों को प्रसिद्ध देखते हैं ? अर्थात् जो विज्ञानवादी तिस चित्त । चैतन्य । की उत्पत्ति को देखते हैं सो आकाश बिषे । अनहुए । पक्षि आदिकों के पादचिह्नों को प्रसिद्ध देखते हैं । एतदर्थ यह विज्ञानवादी अन्य द्वैतवादियों से भी अत्यन्त विचारशून्य है । इत्यर्थः । अरु जे शून्यवादी हैं सो भी सर्व की शून्यता को देखते हुए ही अपने सिद्धान्त को भी शून्यता की प्रतिज्ञा करते हैं, सो आकाश को मूठी बिषे ग्रहण करने की इच्छा करते हैं । अतएव सो शून्यवादी विज्ञानवादी की अपेक्षा तिससे भी अधिकतर विचार शून्यही है ॥ २८ । १५५ ॥

अजातं जायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः । प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति ॥ २९ । १५६ ॥

२९ । १५६ हे सौम्य ! " अजमेकं ब्रह्मेति " ८ अजन्मा एक ब्रह्म है ' इस प्रकार जो पूर्व प्रतिज्ञा किया है, तिसके कहेहुए हेतुओं से जो जन्म का अनिरूपण तिसकरके सो अजन्मा ब्रह्म सिद्धहुआ । तिस सिद्ध हुए अर्थके फल की समाप्ति के अर्थ यह श्लोक है । [यहां यह अर्थ है कि, जब चैतन्यरूप स्फूर्ति अजन्मा इष्टहै, तब सो ब्रह्मही है, क्योंकि सो एक कूटस्थस्वभाववाला है ताते । अर्थात् कूट नामेहै लोहकार वा सुवर्णकार की ऐरन का कि जिसके आश्रय वो सर्व कार्यों को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करतेहैं अरु वो जहां जैसाहै तहां तैसाही निर्विकारहै, तद्वत् निरुपाधि निर्विकार एकरस चैतन्यको भी " कूटवत्तिष्ठतीति कूटस्थः " इस व्युत्पत्त्यर्थ से उसको कूटस्थ कहते हैं । सो पुनः वास्तव से अजन्माही है, तथापि माया से जन्मवान् होता भासे है, इस प्रकार जब कल्पना करते हैं, तब तिस कूटस्थ को अजन्मा होने करके तिसकी अनुत्पत्ति ही [अजन्मापनाही । प्रकृति कहिये स्वभाव होता है] " अजातं जायते यस्मादजातिः प्रकृतिस्ततः " ६ जिस करके अजन्मा जन्मता है, तिस करके अनुत्पत्तिही प्रकृतिहै ; अर्थात् अजन्माही जो चैतन्य ब्रह्महै सो जन्मता है, इस प्रकार वादियों करके कल्पना कियाहै । अरु जिसकरके सो चैतन्य ब्रह्म कूटस्थ, अजन्मा जन्मता है, एतदर्थ तिसकी अनुत्पत्ति प्रकृति कहिये स्वभाव है । ताते " प्रकृतेरन्यथाभावो न कथञ्चिद्भविष्यति " प्रकृतिका अन्यथाभाव किसी प्रकारसे भी होता नहीं ; अर्थात् जाते चैतन्य ब्रह्म की अनुत्पत्ति ही स्वभाव 'प्रकृति, है ताते सो अनुत्पन्नतारूप प्रकृति का अन्यथाभाव कहिये उत्पत्ति , जन्म , किसीप्रकार से भी होता नहीं ॥ इति सिद्धम् ॥ २९ । १५६ ॥

अनादेरन्तवत्त्वं च संसारस्य न सेत्स्यति । अनन्तता चादिमतो मोक्षस्य न भविष्यति ॥ ३० । १५७ ॥

३० । १५७ हे सौम्य ! आत्मा के बिषे संसार अरु मोक्ष इनके परमार्थ से सद्भाव के माननेवाले वादियों को यह दूसरा दूषण कहते हैं । पूर्वथा नहीं, इस अवच्छेद से रहित अनादि संसार की अन्तवत्ता कहिये समाप्ति युक्ति से सिद्ध न होगी । अरु जिस करके लोक बिषे अनादि हुआ कोई भी पदार्थ अन्तवान् देखा नहीं, एतदर्थ [यहां यह अनुमान है कि विवाद का विषय जो संसार सो अन्तवान् है नहीं क्योंकि आत्मावत् अनादिभावरूप है ताते] यह अर्थ घटित है ॥ अरु जो ऐसा कहै कि बीज अरु अंकुर का हेतु अरु फल भाव से जो सम्बन्ध है, तिसके सन्तान के अनादि भावरूप हुए भी तिसका अन्त देखते हैं ताते, संसार की अनन्तता के साधने बिषे "अनैकान्तिकतेति"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनादि होनेसे ? । यह जो हेतु कहा तिसको व्यभिचारवानता है। सो कथन बने नहीं, क्योंकि बीज अरु अंकुर के सम्बन्ध के संतानरूप वस्तु को एकरूपता के अभावकरके पूर्व इस प्रकरण के २० वें श्लोक से निषेध किया है। अरु "अनन्तताचादिमतो मोक्षस्य न भविष्यति" आदिवाले मोक्षकी भी अन्तता न होगी? अर्थात् तैसे ज्ञान की प्राप्ति काल बिषे उत्पत्तिरूप आदिवाले मोक्षकी अनन्तता भी न होगी, क्योंकि आदिवाले घटादिकों बिषे अनन्तता को देखते नहीं। अरु जो कहे कि घटादिक नाशवान् हैं क्योंकि अवस्तुरूप हैं ताते, इसप्रकार मानेहुए दोष नहीं, । तो तैसा होने से परमार्थ से मोक्ष के सद्भाव के प्रतिज्ञा की हानि होवेगी, अरु मोक्ष को शशशृङ्गवत् असत् होतेही तिसके आदिवान्पने का (ज्ञान से उत्पत्ति का) अभाव होवेगा ॥ ३० । १५७ ॥

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा। वितथैः सदृशाःसन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ॥ ३१ । १५८ ॥

३१ । १५८ हे सौम्य ! । वादी कहता है । तब मोक्ष को आदि अन्तवान्पना होहु, । तहां । सिद्धान्ती । कहता है, "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा, वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः" । जो आदि अरु अन्त बिषे नहीं है सो वर्तमान बिषे भी नहीं, जैसे मिथ्यावस्तु के सदृशहुए भी सत्यवत् जानते हैं? अर्थात् मृगजलादिक वस्तुआदि अरु अन्तबिषे है नहीं सो अपने वर्तमानसमय भी तैसेही, आदि अन्तवत्ही, है नहीं । । अथवा जो वस्तु अपने अभाव हुए है नहीं, सो अपनी उत्पत्ति से पूर्वभी है नहीं अरु जो अपने आदि अन्त में नहीं सो अपने वर्तमान कालमें भी है नहीं "अव्यक्तादीनि भूतानि" इत्यादि गीतोक्तिप्रमाण से । जैसे यह दृष्टान्त है तैसे मोक्षादिक पदार्थ भी । सम्यक् ज्ञान करके जन्य होने से । मिथ्यावस्तु के तुल्य है, तथापि उसको मूढ़ पुरुष सत्यवत् जानते हैं । । अर्थात् सत् शुद्ध स्वरूप आत्मा बिषे जो भ्रान्तिमात्र बन्ध है सो अविवेकी को सत्यवत् भासता है, तैसेही भ्रान्तिरूप बन्ध का प्रतिपक्षी (सापेक्षिक)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो मोक्ष सोभी भ्रान्तिरूप असत् है तथापि सो भी अविवेकी पुरुषों को सत्यवत् भासता है । ॥ ३१ । १५८ ॥

सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते । तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः ॥ ३२ । १५९ ॥

३२ । १५९ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, मृगजलादिकों से स्नान पानादिरूप प्रयोजन की अप्रतीति (असिद्धि) से । सो मिथ्या है, परन्तु । मोक्ष अरु स्वर्गादिकों के सुखादिकों की प्राप्तिरूप प्रयोजन की प्रतीति है, ताते मोक्षादिकों का मिथ्यापना नहीं, । यह शङ्का करके समाधान, कहते हैं " सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते " । तिन की सप्रयोजन सहितता स्वप्नबिषे विपर्यय को पावती है ? अर्थात् तिन मोक्षादिकों की सप्रयोजनता स्वप्न बिषे विपर्यय को प्राप्त होती है । अरु जैसे स्वप्न बिषे देखे हुए पदार्थों की विपरीतता (असत्यता) जाग्रत् बिषे होती है । । अर्थात् स्वप्न में यह स्वप्न है अरु मिथ्या है ऐसी प्रतीति होती नहीं अरु जब जाग्रत् को प्राप्त होता है तब जाग्रत् से स्वप्न की विपरीतता प्रतीत होती है । । तैसे जाग्रत् बिषे देखे हुए पदार्थों की विपरीतता स्वप्न बिषे होती है । । अर्थात् जाग्रत् से विपरीत स्वप्न है अरु स्वप्न से विपरीत जाग्रत् है इस कहने से स्वप्न बिषे जाग्रत् नहीं अरु जाग्रत् बिषे स्वप्न नहीं, अतएव ये दोनों परस्पर विपरीत व्यभिचारी होने से मिथ्या हैं । । यह अर्थ है । अरु " तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः " । तस्मात् आदि अन्तवान् होने करके तिन को निश्चय करके मिथ्या ही जाना है ? अर्थात् तिस । जाग्रत् अरु स्वप्न के परस्पर विपरीत व्यभिचारीपने के दृष्टान्त । करके आदि अरु अन्तवान् होनेसे, विवेकी पुरुषों ने निश्चय करके मोक्षादि सर्व मिथ्या ही जाने हैं । । अर्थात् जाग्रत् अरु स्वप्नवत्, बन्ध अरु मोक्ष यह भी परस्पर विपरीत व्यभिचारी, अरु सापेक्षिक होनेसे मिथ्या हैं, अरु जैसे जाग्रत् स्वप्न का परस्पर व्यभिचार है, तैसे उनका एक साक्षी आत्मा से भी व्यभिचारहै, तैसेही इन बन्ध अरु मोक्ष का परस्पर, अरु अन्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिचारी निरपेक्ष सत्य एकरूप आत्मा से, व्यभिचार है, ताते ज्ञानवानों ने इन बन्ध अरु मोक्ष दोनों को निश्चय से मिथ्या करकेही जाना है ।। अरु यद्यपि यह दोनों श्लोक द्वितीय प्रकरण में व्याख्या किये हैं, तथापि यहां बंध अरु मोक्ष के अभाव के प्रसंग से पुनः पठन किये हैं, ताते यहां पुनरुक्तिदोष विचारणीय नहीं ॥ ३२ । १५९ ॥

सर्वेधर्मा मृषा स्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात्। संवृत्तेऽस्मिन्प्रदेशे वै भूतानां दर्शनं कुतः ॥ ३३ । १६० ॥

३३ । १६० हे सौम्य ! "निमित्तस्यानिमित्तत्वमिष्यते भूतदर्शनात्" ८ परमार्थ के देखने से निमित्त का अनिमित्तपना हमों करके अङ्गीकार किया है, यह २५ वें श्लोक बिषे कथन किया जो अर्थ सो अब इन श्लोकों से बिस्तारित करते हैं । [जिस हेतु करके स्वप्न का मिथ्यापना इष्ट हैं तिस हेतु को जाग्रत् बिषे भी तुल्य होनेसे । जाग्रत् का भी मिथ्यापना इष्ट करके । अजन्मा (जन्मादि विकाररहित) ज्ञानमात्र तत्त्वही अङ्गीकार करने योग्य है, इस कहने के अभिप्राय से कहते हैं] "सर्वे धर्मा मृषा स्वप्ने कायस्यान्तर्निदर्शनात्" ८ स्वप्न बिषे सर्वधर्म मिथ्या है शरीरान्तर होनेसे ; अर्थात् जब शरीरान्तर होनेसे स्वप्न के सर्व पदार्थ असत्यहैं, तब विराट् के शरीरान्तर सर्वजगत् के देखने से तिसका मिथ्यापना निवारण करनेको शक्य नहीं । [अर्थात् बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे, शरीर के अन्तर एक खड़े केश के सहस्रवें भाग प्रमाण हिताना्मि नाड़ियां हैं तिनभें से एक नाड़ी के अन्तर स्वप्न जगत् भासता है, परन्तु स्वप्न के पर्वत सागरादि सहित जगत् के होने प्रमाण देश काल वस्तु का अतिसंकोच अभाव होने से, अरु तिस नाड़ी के अन्तर भी महासूक्ष्म आत्मा की पूर्णता से, एक ठिकाने दो वस्तु रहे नहीं इस न्याय से, उस नाड़ी के अन्तर स्थानादिकों के अभाव से वहां भासमान जो स्वप्न जगत् सो भ्रान्तिमात्र होनेसे असत् है । तैसेही इस जाग्रत् जगत् को विराट् के शरीरान्तर होनेसे अरु तहां भी इस व्यष्टि शरीरवत् देशकालादिकों के संकोच से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु चैतन्य आत्मा की पूर्ण व्याप्ति से यह दृश्यमान जो जाग्रत् जगत् तिसको भी भ्रान्तिरूप होनेसे तिसका मिथ्यापना निवारण करने को शक्य नहीं। अरु जो ऐसा कहो कि यह समस्त जाग्रत् जगत् विराट् का वपु है विराट् के शरीरान्तर स्वप्नवत् नहीं, ताते असत्भी नहीं,। तो श्रवण करो हे सौम्य ! आकाश से भी महासूक्ष्म आत्मतत्त्व घन शिलावत् पूर्णता से व्याप्त है, उससे खाली स्थान जगत् के रहने को कोई नहीं, अरु एक ठिकाने दो वस्तु रहे नहीं इसन्याय प्रमाण देखने से उस परिपूर्ण अखण्ड चैतन्य बिषे उससे रीते स्थान के अभाव से आकाशादि सर्वजगत् उस अधिष्ठानतत्त्व बिषे रज्जु में सर्पवत् अध्यस्त होनेसे भ्रान्तिरूप असत्यही निश्चयकरने के योग्य है। यह अर्थ है, किंवा, जब योग्य देश के अभाव से स्वप्न का मिथ्यापना दृष्ट है, तब प्रत्यगात्मा से अभिन्न अखण्ड एकरस अवकाशरहित इस ब्रह्मरूप देश बिषे प्रसिद्ध विद्यमान वस्तु का दर्शन कहां से होगा, किन्तु ब्रह्म को आपसे इतर अवकाशरहित होने से किसी प्रकार से भी उस बिषे अन्यका दर्शन बने नहीं,। अरु जिसकरके स्थान विना जगत् का दर्शन होता है, ताते स्थान विना के स्वप्नवत् जाग्रत् जगत् भी मिथ्या है। यह इसका अर्थ है ॥ ३३ । १६० ॥

न युक्तं दर्शनं गत्वा कालस्यानियमाद्गतौ । प्रतिबुद्धश्च वैसर्वस्तस्मिन्देशे न विद्यते ॥ ३४ । १६१ ॥

३४ । १६१ हे सौम्य ! अब उक्तार्थको ही वर्णन करते हैं " नयुक्तं दर्शनं गत्वा कालस्यानियमाद्गतौ " गति बिषे काल के अनियम से जाय के दर्शन युक्त नहीं; अर्थात् जैसे स्वप्न बिषे देशान्तर को जानेमें काल के अनियम से देशान्तर को जायके देखना युक्त नहीं । अर्थात् स्वप्न में जो अनेक योजनों के अन्तरवाले देशान्तर वा द्वीपान्तर को अरु तहां के पदार्थों को पुरु देखता है सो शरीर से बाह्य उन देशान्तर वा द्वीपान्तर में जायके देखता नहीं क्योंकि जाग्रत् को त्याग के स्वप्न को प्राप्त होनेके मध्य इतना दीर्घकाल नहीं जो उन देशान्तर के प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होने में चाहिये, किन्तु शनैः शनैः जाग्रत् की निवृत्ति अरु स्वप्न की प्रवृत्ति प्रायः समकालही होती है, अरु तैसेही स्वप्न की निवृत्ति के समकालही जाग्रत् की प्राप्ति होती है ताते जाग्रत् से स्वप्न में जाने अरु स्वप्न से जाग्रत् में आवने के मध्य इतना दीर्घकाल नहीं जो स्वप्न में देहसे बाह्य देशान्तर को जाय अरु आवे। तैसे जाग्रत् बिषे भी मरणोत्तर अर्चिरादि मार्ग से जायके ब्रह्म का दर्शन युक्त नहीं, क्योंकि ब्रह्म जो है सो काल, अरु देश, के अवच्छेद से रहित है। अर्थात् यहां जो स्वप्न के दृष्टान्त से, जाग्रत् बिषे मरणोत्तर अर्चिरादि मार्ग से जायके ब्रह्म के दर्शन युक्त नहीं ऐसा कहाहै सो अस्तु परन्तु अर्चिरादि उत्तरायण मार्ग के साधनेवाले को, ब्रह्मात्मा के अभेद ज्ञानीवत् शरीर से उत्क्रमण (निकले) विना यहांही "ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति" निर्विशेष ब्रह्मभाव की प्राप्तिवत्, ब्रह्मप्राप्ति नहीं, किन्तु उसको अर्चिरादि क्रम से ब्रह्मलोक प्राप्ति है, ताते उसका मरणोत्तर बाह्य गमनयुक्त है "ये च मेऽरण्ये श्रद्धातपइत्युपासते तेऽर्चिषमभिसम्भवत्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणयक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदङ्ङेतिमासाꣳस्तान्। मासेभ्यः संवत्सरꣳ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो मानवःसएनां ब्रह्म गमयत्येषदेवयानःपन्था इति" "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेतीति" इत्यादि प्रमाण से अर्चिरादिकों के उपासक को साक्षात् मोक्ष प्राप्ति न होय के उसको सुषुम्णानाड़ी के मार्ग देह से उत्क्रमण होय देवयानमार्ग की रीति से ब्रह्मलोकप्राप्ति अरु ब्रह्मा के साथ सापेक्षिक मोक्ष है, ॥ किंवा ॥ "प्रतिबुद्धश्च वै सर्वस्तस्मिन्देशे न विद्यते" "सर्वजन प्रबोधको पाया हुआ तिस देश बिषे विद्यमान होता नहीं" अर्थात् जैसे सर्वजन जिस देश बिषे स्थित होय सोये हुए स्वप्नों को देखते हैं सो पुनः प्रबोध (जाग्रत्) को पाय के तिस देश बिषे कि जिन देशान्तर वा द्वीपान्तरों को स्वप्न में देखता है, स्थित होता नहीं। इस प्रकार होनेसे स्वप्न का मिथ्यापनाही वाञ्छित है। तैसे जाग्रत् बिषे भी जिस देहरूप देश बिषे स्थित हुआ पुरुष संसार को अनुभव करता है, पुनः ब्रह्म भाव को पाया हुआ तिस देहरूप देश बिषे स्थित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है, क्योंकि परिपूर्ण ब्रह्मरूप होयके स्थित हुआहै । एतदर्थ जाग्रत् का भी मिथ्यापना अङ्गीकार करने योग्यहै ॥ इस श्लोक का तात्पर्यरूप अर्थ यह है कि जाग्रत् बिषे गमनागमनके काल जो नियमित हैं अरु जो देश प्रमाण से हैं, तिनके नियम से स्वप्न बिषे देशान्तर को गमन होवे नहीं, किन्तु देहके भीतर देशान्तरादि प्रपञ्च देखते हैं, तैसे जाग्रत् बिषे भी घटितहैं, याते तिन (जाग्रत् अरु स्वप्न) दोनों को तुल्य होनेसे, उन दोनोंका मिथ्यापना भी तुल्यही है ॥ ३४ । १६१ ॥

मित्राद्यैःसह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते । गृहीत्वापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति ॥ ३५ । १६२ ॥

३५ । १६२ हे सौम्य ! [जैसे स्वप्न बिषे विसंवाद से, अर्थात् निष्फल प्रवृत्ति के जनक भ्रमरूपता से, अप्रमाणपना इच्छित है, तैसे ही जाग्रत् बिषे भी ब्रह्मवादियों के साथ मिल विचार करके अविद्या निद्रा से सम्यक्प्रकार प्रबोध को पाया जो पुरुष, सो पुरुष, परमश्रेय, हमों करके साधने योग्य है, (वा नहीं) इस प्रकार विचार किये मोक्ष के साध्य भाव को जानता नहीं (अर्थात् ब्रह्मवेत्ताओं का सत्सङ्गी सम्यक् विचारवान् आत्मानुभावि पुरुष, मोक्ष हमों करके साधने योग्य है इस भाव को जानता नहीं) क्योंकि, उसको सत्संग के प्रभाव से आत्मा की एकता के अनुभव हुए सर्वकी नित्य मुक्तता का निश्चय है ताते । एतदर्थ मुमुक्षुपना अरु श्रवणादिसाधनों की कर्तव्यता भ्रान्ति से ही है, इस प्रकार कहते हैं] " मित्राद्यैः सह सम्मन्त्र्य सम्बुद्धो न प्रपद्यते । गृहीत्वापि यत्किञ्चित् प्रतिबुद्धो न पश्यति " (मित्रादिकों के साथ गुप्तभाषण करके प्रबोध को पाया हुआ पावता नहीं, अरु ग्रहण किये जिस किसी को भी देखता नहीं ; अर्थात् स्वप्नबिषें मित्रादिकों के साथ गुप्त भाषण करके प्रबोध को पाया हुआ पावता नहीं । अरु [किंवा स्वप्नवत् अनुभव किये उपदेशादिकों को विद्वान् देखता नहीं, क्योंकि तिस विद्वान् करके साध्यफल का अभाव है, (उससे श्रेष्ठ अरु अन्य कुछ भी न होने से) इस प्रकार कहते हैं] ग्रहण किये जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसको। अर्थात् स्वप्न बिषे ग्रहण किया जो कुछ। सुवर्णादि पदार्थ तिनको भी देखता (पावता) नहीं, अरु गया हुआ देशान्तर के ताईं जाता नहीं। अर्थात् स्वप्न बिषे जिन देशान्तर को जाता है, तिन देशान्तर को जाग्रत् हुआ जाता नहीं॥ ३५। १६२॥

स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्। यथा कायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम्॥ ३६। १६३॥

३६। १६३ हे सौम्य! [किंवा स्वप्नावस्था बिषे जिस शरीर करके नदी अरण्यादिकों बिषे बिचरता है, सो मिथ्या है, क्योंकि तिस स्वप्नगत देह से भिन्न निश्चल जाग्रत्गत शरीर को देखते हैं, जैसे जाग्रत् बिषे भी जिस संन्यासी आदिक शरीर से लोगों करके पूजने योग्य वा द्वेष करने योग्य देखते हैं, तिसको मिथ्या कहते हैं, क्योंकि तिस शरीर से पृथक् ब्रह्मनामवाला कूटस्थरूप शरीर का यथार्थ अनुभव हैं ताते, इस प्रकार कहते हैं] "स्वप्ने चावस्तुकः कायः पृथगन्यस्य दर्शनात्" "स्वप्न बिषे जो शरीरहै सो अवस्तुरूपहै, अन्य से पृथक् देखने से" अर्थात् स्वप्नबिषे अरण्यादिकों में भ्रमता हुआ जो शरीर देखते हैं सो अवस्तुरूप है, क्योंकि तिस स्वप्न के शरीर से पृथक् जाग्रत् का शरीर देखते हैं ताते "यथाकायस्तथा सर्वं चित्तदृश्यमवस्तुकम्" "जैसे शरीर तैसे चित्त का दृश्य सर्व अवस्तुरूप है" अर्थात् जैसे स्वप्न का दृश्य शरीर असत् है तैसे जाग्रत् बिषे भी सर्व चित्त का दृश्य अवस्तुरूपही है, क्योंकि चित्त का दृश्य कल्पित है ताते। अरु स्वप्न के तुल्य होने से जाग्रत् भी असत्यही है, ऐसा इस प्रकरण का अर्थ है॥ ३६। १६३॥

ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते। तद्धेतुत्वात्तु तस्यैव सज्जागरितमिष्यते॥ ३७। १६४॥

३७। १६४ हे सौम्य! [जैसे जाग्रत् को अनुभव करते हैं, तैसे स्वप्न को भी अनुभव करते हैं। अरु स्वप्न को जाग्रत् का कार्य होनेसे जो स्वप्न का द्रष्टा है तिसही का जाग्रत्। स्वप्नरूप कार्य हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्यमान है । अरु स्वप्न असत् है । एतदर्थ स्वप्नवत् जाग्रत् का मिथ्यापनाही है । इस प्रकार कहते हैं] इस कहने के हेतु से भी जाग्रत् की वस्तु का असत्पना है । " ग्रहणाज्जागरितवत्तद्धेतुः स्वप्न इष्यते " । जाग्रत्वत् ग्रहण से तिस हेतुवाला स्वप्न अङ्गीकार करते हैं, अर्थात् जाग्रत्वत् ग्राह्य ग्राहकरूप से स्वप्न के ग्रहण से तिस जाग्रत्रूप हेतुवाला । जाग्रत् का कार्य स्वप्न अङ्गीकार करते हैं, [किंवा, जाग्रत् का अनेक पुरुषों को साधारण होने रूप जो विद्यमानपना है सो वास्तव से है नहीं, क्योंकि स्वप्न का कारण है ताते, किन्तु तैसे अनेक को साधारण होनेवत् भासमानपना है, इस प्रकार कहते हैं] तिस हेतुवाला होनेसे (जाग्रत् का कार्य होनेसे) तिसही स्वप्न के द्रष्टा को जाग्रत् सत्य अङ्गीकार करते हैं, अन्यों का नहीं । जैसे स्वप्न है, । [प्रमाता के होते बाध्य होनेरूप स्वप्न का मिथ्यापना है, अरु जाग्रत् को पुनः तिस बाध्य होने की अप्रतीति से परमार्थ से सत्पना है, अरु कार्य को मिथ्यापने के हुए कारण को भी मिथ्यापना है, इस विषे प्रमाण के अभाव से सर्व को साधारण अरु विद्यमान जो जाग्रत् सो मिथ्या होनेके योग्य नहीं । यह शङ्का करके कहते हैं] यह अभिप्राय है । जैसे स्वप्न जो है सो स्वप्न के द्रष्टा को ही सत्य है । अर्थात् साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, तैसे तिस जाग्रत्रूप कारणवाला होनेसे तिस स्वप्न का स्वप्न के द्रष्टा कोही साधारण विद्यमान वस्तुवत् भासता है, परन्तु साधारण विद्यमान जो वस्तु है सो स्वप्नवत् है नहीं । यह इसका अभिप्राय है ॥ ३७ । १६४ ॥

उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजंसर्वमुदाहृतम् । नचभूताद भूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन ॥ ३८ । १६५ ॥

३८ । १६५ हे सौम्य ! [स्वप्न अरु जाग्रत् के कार्य कारण भावके हुए भी दोनों का मिथ्यापना तुल्य नहीं । क्योंकि सो परस्पर अत्यन्त विलक्षण है । यह शङ्का करके कहते हैं] शङ्का । ननु, जाग्रत् के पदार्थ को स्वप्न की कारणता के हुए तिस । जाग्रत् के पदार्थ । का स्वप्नवत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवस्तुपना न होवेगा, क्योंकि जिस करके स्वप्न अत्यन्त अस्थिर है अरु जाग्रत् को स्थिर देखते हैं, अतएव तिनकी परस्पर विलक्षणता है ताते। तहां। समाधान। कहते हैं। हे वादिन्! तिस प्रकार का अनुभव अविवेकी पुरुषों को होता है, यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु विवेकी पुरुषों को तो किसी भी वस्तु की उत्पत्ति प्रसिद्ध है नहीं "उत्पादस्याप्रसिद्धत्वादजं सर्वमुदाहृतम्" [उत्पत्ति को अप्रसिद्ध होने से सर्व अजन्मा कहा है] अर्थात् विवेकी पुरुषों को किसी भी पदार्थ की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं, एतदर्थ उत्पत्ति को अप्रसिद्ध होने से अज आत्मा ही सर्व है "सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" 'बाहर भीतर सहित है अरु अजन्मा है' इस श्रुति के प्रमाण से। इस प्रकार वेदान्तों बिषे सर्व अजन्माही कहा है। अरु सत्‌रूप जाग्रत्‌से असत्‌रूप स्वप्न उपजाता है, इस प्रकार तू मानता है, तथापि सो। जाग्रत्। असत्‌ही है। क्योंकि "नच भूतादभूतस्य संभवोस्ति कथञ्चन" विद्यमान से अविद्यमान का किसी प्रकार से भी संभव नहीं] अर्थात् विद्यमान पदार्थ से अविद्यमान वस्तु का किसी प्रकार से भी संभव होना संभवे नहीं। अरु लोक बिषे असत्यरूप शशशृङ्गादिकों का किसी प्रकार से भी संभव होता नहीं अरु देखा भी नहीं॥ ३८। १६५॥

असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः। असत् स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति॥ ३९। १६६॥

३९। १६६ हे सौम्य!। शङ्का। ननु, हे सिद्धान्तिन्! तूनेही तो १७ वें श्लोकबिषे स्वप्न जाग्रत् का कार्य है इस प्रकार कहा है तब उत्पत्ति अप्रसिद्ध है ऐसा कैसे कहता है,। तहां समाधान कहते हैं, हे वादिन्! जिस प्रकार कार्य कारणभाव हमों करके कहने को इच्छित है, तैसे कहते हैं, सो तू सावधान होय श्रवणकर "असज्जागरिते दृष्ट्वा स्वप्ने पश्यति तन्मयः" [जाग्रत् बिषे असत् को देखके तन्मय हुआ स्वप्न बिषे देखता है] अर्थात् असत् (रज्जुसर्पवत्‌कल्पित) वस्तु को देखके तिसके भाव की भावना करके युक्त 'वा तिस असत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तु के ज्ञानके दृढ़ संस्कार करके युक्त ' तन्मय हुआ पुरुष जाग्रत्वत् स्वप्नबिषे ग्राह्य अरु ग्राहक (विषय अरु इन्द्रिय) रूप से कल्पना करता हुआ देखता है, [जैसे जाग्रत्बिषे देखेहुए प्रपञ्च को स्वप्न बिषे देखने से जाग्रत् की वासना के आधीन जो स्वप्न सो जाग्रत् का कार्य होने करके व्यवहार करते हैं, तैसे स्वप्न बिषे देखेहुए प्रपञ्च को जाग्रत् बिषे भी देखने से जाग्रत् को तिस स्वप्न का कार्यपना सिद्ध होता है, यह शङ्का करके श्लोक के उत्तरार्द्ध को कहते हैं (व्याख्यान करते हैं)] तैसे " असत्स्वप्नेऽपि दृष्ट्वा च प्रतिबुद्धो न पश्यति " (स्वप्नबिषे असत् को देखके जाग्रत् को प्राप्त हुआ देखता नहीं ; अर्थात् ' जैसे जाग्रत् के असत् पदार्थों में तन्मय हुआ स्वप्न बिषे तिनको देखता है, तैसे स्वप्न बिषे भी असत् अविद्यमान, वस्तु को देखके जाग्रत् को प्राप्त हुआ पुरुष कल्पना न करता हुआ देखता नहीं, अरु तैसे कदाचित् जाग्रत् बिषे भी देखके स्वप्न बिषे नहीं देखता है, यह अर्थ श्लोक के चकार से बोधित है । ताते विशेष करके स्वप्न को जाग्रत् की वासना के आधीन होने से, जाग्रत् को स्वप्न का हेतु है इस प्रकार कहते हैं, परन्तु सो ' जाग्रत् ' परमार्थ से सत्य है ऐसे करके कहते नहीं ॥ ३९ । १६६ ॥

नास्त्यसद्धेतुकमसत्सदसद्धेतुकन्तथा । सच्चसद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः ॥ ४० । १६७ ॥

४० । १६७ हे सौम्य ! [व्यवहार दृष्टि से जाग्रत् अरु स्वप्न का कार्य कारणपना कहा, अरु वास्तवदृष्टि से तो कहीं भी कार्य कारणपना है नहीं । इस प्रकार कहतेहुए वस्तु के अज्ञान से अवस्तुही कार्य होता है, ऐसे कहनेवाले के मत का निषेध करते हैं,] परमार्थ से तो किसी का भी किसीभी प्रकार से कार्य कारणभाव संभवता नहीं । प्रश्न । कार्य कारणभाव कैसे नहीं संभवे है, । उत्तर । तहां प्रथम , जो वस्तु के अज्ञान सेही अवस्तुरूप कार्य होता है, ऐसे माननेवाले पुरुषों प्रति कहते हैं " नास्त्यसद्धेतुकमसत् सदसद्धेतुकन्तथा " [असत् हेतुवाले को असत् कहते हैं सो है नहीं, सत् असत् हेतुवाला है नहीं] अर्थात् असत् जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शशशृङ्गादिक सो जिस असत् का ही कारण है ऐसे जे आकाश के पुष्पादिक तिनको असत् हेतुवाला असत् कहते हैं सो है नहीं। अरु शून्यवादी तो। "असतः सज्जायते" इस विकल्प की श्रुति प्रमाण से। शून्य सेही सत्‌रूप कार्य होता है इस प्रकार मानते हैं, अब तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत्, विद्यमान, घटादिरूप वस्तु भी असत् हेतुवाला। अर्थात् शशशृङ्गादिकों का कार्य। होता नहीं। अर्थात् अभाव (असत्) रूप जे शशा के शृंग (सींग) तिसका कार्य भावरूप, सत्य, घनुष किसीने भी कहीं भी किसी काल बिषे भी देखा नहीं, ताते अभावरूप शून्य कारण से भावरूप सत्य कार्य की उत्पत्ति कहनी माननी असत् ही है॥ अब कारण अरु कार्य दोनों के सद्भाव के माननेवाले जे सांख्यादिवादी तिन के प्रति कहते हैं "। सच्चसद्धेतुकं नास्ति सद्धेतुकमसत्कुतः"। [, सत्, सत् हेतुवाला नहीं, तब सत्‌रूप हेतुवाला असत् कैसे होगा, कदापि होता नहीं,] अर्थात्। सांख्यवादी कारण प्रधान अरु तिसका कार्य सूक्ष्म स्थूल प्रपञ्च इन दोनों बिषे सद्भाव मानते हैं कि सत् कारण से सत् कार्य होता है। तिनके प्रति कहते हैं, जैसे सत् विद्यमान घटादिक सत् हेतुवाला। अर्थात् अन्य सत् वस्तु का कार्य नहीं। । अर्थात् सत् उसको कहते हैं जो उत्पत्त्यादि रहित कालत्रय अबाध्य सदा एकरस रहै सो सत्, अरु प्रधान कार्यरूप से उत्पन्न होनेवाला ताते सत् नहीं, अरु कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अरु लय के पश्चात् अभावरूप होनेसे उत्पत्ति अभाववाला हुआ कदापि सत् होनेके योग्य नहीं, ताते कार्य, कारण उभय विसत् भावना के करनेवाले का मत सत् नहीं। अब कोई एक वादी इस मिथ्या प्रपञ्चरूप सृष्टि का सत्‌रूप ब्रह्म कारण है। । अर्थात् सत्‌रूप ब्रह्म से यह मिथ्यासृष्टि उत्पन्न होती है, इस प्रकार वर्णन करते हैं, तिनके प्रति निषेध करते हैं कि, तैसे सत्‌रूप हेतुवाला (सत् का कार्य) कैसे संभवेगा। किन्तु कदापि नहीं। अर्थात् जो सत् होता है सो कार्यभाव को प्राप्त होता नहीं क्योंकि एकरस सत्‌रूप है ताते, अरु सत् से असत्‌कार्य, अर्थात् सत् का कार्य असत् होता नहीं क्योंकि कारण सद्रूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, अरु कार्यरूप प्रपञ्च असत् है, ताते सो सत् का कार्य होने के योग्य नहीं, ताते सत् रूप ब्रह्म अरु असत् प्रपञ्च इनका कार्य कारण भाव युक्त नहीं । अरु जो कहो कि " सदेवसौम्येदमग्रआसीत् " इत्यादि श्रुतियों ने इस सृष्टि का कारण सत् कहा है, तो तिन श्रुतियों का तात्पर्य कार्याकारण भाव कहने का नहीं किन्तु एक अद्वैत आत्मतत्त्व के प्रकाशनार्थ है, क्योंकि " वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् " इत्यादि श्रुतियों ने कार्य को वाचारम्भण (कहने) मात्रही कहा है पृथक् सत्तावाला नहीं, ताते " मृत्तिकेत्येव सत्यं " । एक मृत्तिका ही सत्यहै, इस दृष्टान्त से एक सर्वाधिष्ठान सत् आत्मा ही सत् है, ऐसे कहके " ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ सआत्मा तत्त्वमसि " इस उपदेश से कार्याकारण भाव भेद रहित एक अद्वैत आत्मतत्त्व प्रकाशित किया है ॥ ताते सत्रूप ब्रह्म का असत्रूप सृष्टिकार्य है यह कथन अयुक्त है ॥ अरु अन्य प्रकार का कार्यकारण भाव सम्भवे नहीं, वा कल्पना करने को शक्य नहीं, एतदर्थ विवेकी पुरुषों को किसी भी वस्तु का कार्याकारण भाव सिद्ध नहीं ॥ इत्यभिप्रायः ॥ ४० । १६७ ॥

विपर्यासाद्यथा जाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् ।
तथा स्वप्ने विपर्यासाद्धर्मांस्तत्रैव पश्यति ॥ ४१।१६८॥

४१ । १६८ हे सौम्य ! पुनः भी असद्रूप जाग्रत् अरु स्वप्न के पदार्थों से कार्य कारण भाव की शङ्का को अन्य हेतु से दूर करते हुए कहते हैं " विपर्यासाद्यथाजाग्रदचिन्त्यान् भूतवत् स्पृशेत् " (जैसे जाग्रत्बिषे विपर्यास से अचिन्त्य परमार्थवत् स्पर्श करता है ; अर्थात् जैसे कोई पुरुष जाग्रत्बिषे विपर्यास कहिये अविवेक से अचिन्त्य कहिये चिन्तन करने को अशक्य, रज्जु सर्पादिक पदार्थों को परमार्थवत् स्पर्श करता है । अर्थात् स्पर्श करतेहुएवत् विकल्प करता है " तथा स्वप्ने विपर्यासाद्धर्मांस्तत्रैव पश्यति " (तैसे स्वप्न बिषे विपर्यास से धर्मों को तहांहीं देखता है ; अर्थात् जैसे जाग्रत् बिषे तैसे स्वप्नबिषे विपर्यास (अविवेक) से हस्तिअश्वादि पदार्थों को तहांहीं (अपने अन्तर जहां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वप्न के पदार्थयोग्य स्थान का अभाव है) देखता है, । अर्थात् देखे हुएवत् कल्पना करता है, परन्तु जाग्रत् से उत्पन्न होनेवाले को देखता नहीं ॥ ४१ । १६८ ॥

उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम्। जाति स्तु देशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतां सदा ॥ ४२ । १६९ ॥

४२ । १६९ हे सौम्य ! [वास्तवदृष्टि से कार्यकारण भाव के अप्रसिद्धहुए "जन्माद्यस्य यतः" , इस जाग्रत् के जन्मादिक जिससे होते हैं, इत्यादि वेदान्त शास्त्र व्याससूत्रों करके ब्रह्म को जगत् का कारण कैसे सूचित किया है, । यह शङ्का करके कहते हैं] "उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तुत्ववादिनाम्। जातिस्तुदेशिताबुद्धैरजातेस्त्रसतांसदा" "उत्पत्ति उपालम्भ से अरु सम्यक् आचरण से, ऐसे कहने के स्वभाववाले अरु अनुत्पत्ति से सदा भय के पावनेवाले के अर्थ उपदेश किया है" अर्थात् व्यासादिक अद्वैतवादी पण्डितों ने जो जगदुत्पत्ति कही है (उपदेश किया है) सो तो उपालम्भ , द्वैत की प्रतीति, से । अरु वर्णाश्रमादिक धर्म के सम्यक् आचरण से । [इन दोनों हेतुओं से "वस्तुभावमस्ति" , द्वैत का वस्तुभाव है, इस प्रकार कहने के स्वभाववाले वस्तुवादी, अरु जगत् की अनुत्पत्ति से सदा भयके पावनेवाले दृढ़ आग्रही कर्मादिकों बिषे श्रद्धावान् मन्दविवेकियों के अर्थ [कार्यकारण भाव को अङ्गीकार करके जन्म के उपदेश करनेवाले अद्वैतवादियों का उपदेश मन्दविवेकियों बिषे विवेकी दृढ़ता का उपाय होने करके कैसे होवेगा, यह शङ्का करके तब कहते हैं] वो [कर्मवादी मन्दविवेकी] तिस उत्पत्ति को प्रथम ग्रहण करो, परन्तु पश्चात् वेदान्त के अभ्यासियों को अजन्मा अद्वय आत्मा को विषय करनेवाला विवेक स्वतः ही होवेगा "वेदान्ताभ्यासिनान्तु स्वयमेवाजाद्वयात्म विषयो विवेको भविष्यतीति" इसप्रकार दृढ़विवेक का उपाय होने करके, उपदेश करते हैं, परन्तु परमार्थबुद्धि से नहीं । अरु जिस करके वे [कर्मवादी] अविवेकी पण्डित स्थूल , बहिर्मुख, बुद्धिवाले होने से,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुत्पन्न हुए वस्तु से अपने विनाश को मानतेहुए सदा भयको ही पावते हैं, एतदर्थ तिनके लिये सूत्रकारादिक पण्डितों की प्रवृत्ति उचित है। यह अर्थ है। अर्थात् कर्मवादी आदिक जे बहिर्मुखवृत्तिवाले मन्द विवेकी हैं तिनको आत्मसत्ता से पृथक् सत्ताबाला जगत् भासता है, तिसकी निवृत्ति के अर्थ उनपर उपकार करते हुए सूत्रकार व्यासादि वेदान्ती पण्डितों ने ब्रह्म से जगदुत्पत्ति कही है तिसकरके वो स्वतःही समझेंगे कि कारण से कार्य की पृथक् सत्ता होती नहीं अरु यह सर्व जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है ताते इसकी पृथक् सत्ता के अभाव से यह ब्रह्मरूपही हैं, इस प्रकार एक अद्वैत ब्रह्मज्ञान होने के अर्थ सूत्रकार ने ब्रह्म से सृष्टि का जन्म (उत्पत्ति) कही है, परमार्थदृष्टि से नहीं। अरु यहही अर्थ "उपायः सोवताराय नास्ति भेदः कथञ्चन" इस तृतीय प्रकरण के १५ वें श्लोक बिषे कहा है। सो सृष्टि का प्रकार। अद्वैत बिषे बुद्धि की उत्पत्ति के अर्थ है॥ ४२। १६९॥

अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्भियन्ति ये। जातिदोषा न सेत्स्यन्ति दोषोऽप्यल्पोभविष्यति॥ ४३। १७०॥

४३। १७०। हे सौम्य! ["उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवतीति" ८ जो थोड़ा भी अन्तर (भेद) करता है पश्चात् तिसको भय होता है? इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म बिषे विकार के देखनेवाले को भय का होना सुनते हैं। अरु तैसे हुए श्रुति के अर्थ के जाननेवाले पण्डितों को भी भेदज्ञान से अनुग्रह की योग्यता न होगी। यह शङ्का करके तब कहते हैं] "अजातेस्त्रसतान्तेषामुपलम्भाद्भियन्ति ये" ८ अनुत्पत्ति से भय को पावते हुए उपलम्भ (आत्मा) से विरुद्ध जाते हैं? अर्थात् जो ऐसे उपलम्भ (प्रतीति) से अरु सम्यक् आत्मरण से अनुत्पत्ति से। अर्थात् अनुत्पन्न हुई वस्तु से। भय को पावते हुए द्वैतवस्तु है, इस प्रकार अद्वैत आत्मा से विरुद्ध जाते हैं। अर्थात् द्वैत को प्राप्त होते हैं। तिन अनुत्पत्ति से भय को प्राप्त होनेवाले अर्थात् सम्पन्न सन्मार्ग को आश्रय करनेवाले को "जातिदोषा न सेत्स्यन्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषोऽप्यल्पो भविष्यति" (जाति के किये दोष होते नहीं, यद्यपि कोई दोष अल्पही होवेगा ; अर्थात् जाति कहिये प्रतीति के किये दोष होते नहीं। अर्थात् सिद्धि को पावते नहीं, क्योंकि सन्मार्ग कहिये विवेक मार्ग तिस बिषे प्रवृत्त होते हैं ताते। अरु यद्यपि (जो कदापि) कोई एक दोष होता है, सो भी सम्यक् ज्ञान की अप्राप्तिरूप निमित्त का किया गर्भवासादिरूप अल्पही दोष होवेगा यह अर्थ है॥ अर्थात् यहां जो कहा है कि जो कदापि कोई एक दोष होता है सोभी सम्यक् ज्ञान की अप्राप्तिरूप निमित्त का किया गर्भवासादि अल्प दोष होवेगा, सो गर्भवास को अल्प दोष कहा सो आक्षेप प्रतीत होता है, क्योंकि गर्भवासरूप दोष सर्व दोषों का मूल है, ताते उक्त कथन का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि सम्यक् ज्ञान से रहित पुरुष को गर्भवास उपलक्षण करके सर्व दोष (अनर्थ) प्राप्त होता है॥ ४३। १७०॥

उपलम्भात् समाचारान्माया हस्ती यथोच्यते। उपलम्भात्समाचारादस्तिवस्तु तथोच्यते॥ ४४। १७१॥

४४। १७१ हे सौम्य!। शङ्का। ननु, द्वैत की प्रतीति अरु वर्णाश्रम के धर्म के आचार को प्रमाणरूप होने से, द्वैतवस्तु वास्तव ही है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि प्रतीति कहिये अनुभव अरु आचार का परस्पर में व्यभिचार है ताते। प्रश्न। तिनका व्यभिचार कैसे है। तहां उत्तर, कहते हैं "। उपलम्भात् समाचारान्माया हस्तीयथोच्यते" [जैसे माया का हस्ती प्रतीति से अरु आचार से। हस्ती ऐसे। कहते हैं] अर्थात् जैसे माया का। किसी इन्द्रजाली आदिकों करके रचित। हस्ती (हाथी) हस्तिवत् प्रतीति होता है, अरु जैसे अन्य हस्ती के अर्थ आचरते हैं तैसे इस माया के हस्ती बिषे भी आचरते हैं, । अर्थात् उस के रूप गुण स्वभावादिकों के वर्णन में प्रवर्त्त होते हैं। एतदर्थ जैसे असत् हुआ भी माया का हस्ति को प्रतीति अरु आचार से। अर्थात् हस्ति के सम्बन्धी धर्मों से। यह हस्ती है इस प्रकार कहते हैं "। उपलम्भात् समाचारादस्तिवस्तु तथोच्यते" (तैसे प्रतीति अरु आचार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से वस्तु हैं, इस प्रकार कहते हैं ? अर्थात् जैसे माया के हस्ति को प्रतीति अरु आचार से हस्ती है ऐसा कहते हैं । तैसेही प्रतीति अरु आचार करके भेदरूप द्वैतवस्तु है इस प्रकार कहते हैं । एतदर्थ [जैसे । मायावी करके रचित । मायामय हस्तिबिषे वास्तवता का अभाव होने से भी तिसकी प्रतीति अरु आचरण होता है, तैसे द्वैतबिषे भी उनकी प्रतीति अरु वर्णाश्रम आदिकों के आचरण को भी । देखते करते हैं परन्तु तिस करके तिस द्वैत बिषे । वास्तविकपने की साधकता नहीं, इस प्रकार इस प्रसंग को समाप्त करते हैं ।] प्रतीति अरु आचार द्वैतवस्तु के सद्भाव बिषे हेतु होता नहीं यह इसका अभिप्राय है ॥ ४४ । १७१ ॥

जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च । अजा चलमवस्तुत्वं विज्ञानंशान्तमद्वयम् ॥ ४५ । १७२ ॥

४५ । १७२ हे सौम्य ! [वास्तव दृष्टि के आश्रय से निमित्त को अनिमित्तपना कहा, सो यह अनन्त श्लोकों करके कहा है, अब वास्तव दृष्टि को समाप्त करते हैं] । प्रश्न । तब जिस आश्रय कहिये अधिष्ठान वालियां उत्पत्त्यादिकों की मिथ्याबुद्धियां हैं, ऐसी जो परमार्थ वस्तु सो क्या है, । उत्तर । कहते हैं " जात्याभासं चलाभासं वस्त्वाभासं तथैव च " [जात्याभास है चलाभास है अरु वस्तुआभास है तैसेही] अर्थात् जैसे देवदत्त । अर्थात् कोई एक मनुष्य । उत्पन्न होता है । अर्थात् देवदत्त इस नाम से जो शरीर तिस शरीरान्तर जो शरीरी जीव सो देवदत्त नाम का लक्ष्य है सो जीव अनादि होने से उत्पन्न होता नहीं परन्तु शरीर की उत्पत्ति से तिस शरीरी का उत्पन्न होना है सो आभासमात्र है, परन्तु कहते हैं, जैसे देवदत्त उत्पन्न होता है । तैसे विज्ञान (विज्ञानघन, विज्ञप्ति) सो उत्पत्त्यादिकों से रहित हुआ भी । स्वमाया करके । उत्पन्नहुएवत् भासता है, एतदर्थ वो जात्याभास है । अरु जैसे सोई देवदत्त चलता है, । अर्थात् वास्तव करके देवदत्त नामक देही (जीवात्मा) अचल है, परन्तु शरीर के सम्बन्ध से घटाकाशवत् चलता भासता है सो उसमें आभासमात्र है तथापि तिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को देख के कहते हैं कि, देवदत्त चलता है। तैसे सो। विज्ञान आप अचल हुआ स्वमाया करके। चलता भासता है, अतएव सो चलाभास है। अरु जैसे सोई देवदत्त गौर है दीर्घ है पीन (मोटा) है, इस प्रकार भासता है तैसे सो विज्ञान (विज्ञप्ति चैतन्य) द्रव्यरूप धर्मीवत् भासता है। परन्तु "अस्थूलमन एवमदीर्घ" इत्यादि प्रमाण से द्रव्य के धर्मों से रहित अद्रव्यहै। अरु "रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च" द्रव्यों के साथ मिलने से द्रव्य धर्मवान् भासता है। एतदर्थ वो वस्त्वाभास है। ताते देवदत्त जन्मता है, चलता है, वस्तु है, दीर्घ है, गौर है तैसेही यह विज्ञान भासता है। परन्तु "अजाचलमवस्तुत्वं विज्ञानं शान्तमद्वयम्" ८ अजन्मा है, अचल है, अवस्तुभाव है, विज्ञानघन है, शान्त है, अद्वय है, अर्थात् जो। विज्ञप्ति शरीरादि अनहुई उपाधि साथ मिलने से 'उपजेवत् चलतेवत् वस्तुवत् भासता है, सो वास्तव करके अजन्मा है अचल है अद्रव्य है केवल विज्ञानघन है अरु जन्मादि सर्व विकार से रहित होने से शान्त है, अरु एतदर्थही "एक मेवाद्वितीयम्" एक अद्वैत अद्वितीय है,। इत्यर्थः॥ ४५। १७२॥

एवं न जायते चित्तमेवं धर्मा अजाःस्मृताः। ऐवमेव विजानन्तो न पतन्ति विपर्यये॥ ४६। १७३॥

४६। १७३ हे सौम्य! "एवं न जायते चित्तमेवं धर्मा अजाः स्मृताः" ८ ऐसे चित्त (चैतन्य) जन्मता नहीं ऐसे धर्म (आत्मा) को अजन्मा कहते हैं? अर्थात्। । अब परमाचार्य प्रकरणों का उपसंहार करते हैं। । पूर्वोक्तप्रकार कहेहुए हेतुओं से, चित्त कहिये जो चैतन्य ब्रह्म है सो। अज है। एतदर्थ जन्मता नहीं इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता। आत्मानुभवि। यों ने धर्मकहिये आत्मा को अजन्मा जानाहै। अरु "एवमेव विजानन्तो न पतन्ति विपर्यये" ८ ऐसेही जानेहुए विपर्यय विषे गिरते नहीं? अर्थात् ऐसे उक्तप्रकार से जानेहुए ही। । अर्थात् तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का आचार्य से सम्यक्उपदेश पाय पुनः तिस का मनन निदिध्यासनकर साक्षात् यथार्थ आत्मानुभव कियेहुएही।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्मादिकों से रहित । अर्थात् एकजन्म उपलक्षण करके, जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, विनश्यति, इन छः षट्भाव विकार । से रहित अद्वैत । निरुपाधि निर्विशेष शुद्ध । आत्मतत्त्वरूप विज्ञान । विज्ञप्तिमात्र विज्ञानघन ब्रह्म को । "कश्चिद्धीरा प्रत्यगात्मनमैक्षतावृत्त चक्षुः" इत्यादि श्रुतियों के वाक्यानुसार । बाह्यशब्दादिक विषयों की इच्छा से रहित । समाहित चित्त । होयके, जानेहुए पुनः 'यह विद्वान्' अविद्यामय अन्धकार के सागररूप विपर्यय बिषे । अर्थात् अजन्मादि लक्षणवान् आत्मा, तिससे विपर्यय जे जन्मादि षट्विकार भावादि लक्षणवान् शरीरादि संघात तिस विषयक जे आत्मभावरूप अज्ञानमय महा अन्धसागर । तिसबिषे गिरते नहीं । क्योंकि "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यत" इत्यादि मन्त्रवर्ण के प्रमाणसे ॥ ४६।१७३॥

ऋजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितं यथा । ग्रहण ग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा ॥ ४७। १७४॥

४७। १७४ हे सौम्य ! ८ अजन्मा अचल अरु जात्याभास है, इस प्रकार पूर्व ४५ वें श्लोक बिषे, कथन किये परमार्थरूप ज्ञान को दृष्टान्त से वर्णन करतेहुए कहते हैं "। ऋजुवक्रादिकाभासमलातस्पन्दितं यथा "। ८ जैसे सरल अरु वक्रादिक आभास अलातका चलना है, अर्थात् जैसे लोकबिषे सरल अरु वक्र । अर्थात् सीधा अरु टेढ़ा । आदिक प्रकार वा आकारवाला जो आभास कहिये प्रकाश है, सो अलात कहिये बनेठी वा अर्धदग्ध काष्ठरूप उल्का, तिसका चलना है । अर्थात् बनेठी वा अर्धदग्धकाष्ठ के मुखपर जो एक अग्निबिन्दु है तिस अग्निबिन्दु का जो वक्रादि रूप से सीधा टेढ़ा आदिक भासना है सो उस बनेठी वा अर्धदग्ध काष्ठ के चलने वा भ्रमण से है, उस अग्निबिन्दु के स्वरूप से ही नहीं । "ग्रहणग्राहकाभासं विज्ञानस्पन्दितन्तथा" । ८ तैसे ग्रहण अरु ग्राहक का आभास विज्ञान का चलना है ? अर्थात् । जैसे अलातगत अग्निबिन्दु का जो सीधा टेढ़ा भासना है सो उस अलात के भ्रमणादिकों से है, तैसेही ग्रहण अरु ग्राहक का जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आभास कहिये भासना है सो विज्ञान का अविद्या से चलनेवत् चलना है। [अपने स्वरूप को न त्याग करनेवाले अधिष्ठान का जो असत् नाना आकार से अवभास। प्रतीति अरु तिसका विषय। है तिसका विवर्त्त कहते हैं। यहां विज्ञान का जो स्फुरण 'जगदाकार से भासना' है सो विवर्त्तरूप है] जिस करके अचल विज्ञान को वास्तव से चलना नहीं, तिस करके ही विज्ञान को, अजन्मा अचल है, इस प्रकार पूर्व कहा है ॥ ४७ । १७४ ॥

अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा। अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा ॥ ४८ । १७५ ॥

४८ । १७५ हे सौम्य! अब, विज्ञानशान्त है, इस प्रकार पूर्व ४५ वें श्लोक बिषे वर्णन किया है तिसको अब दृष्टान्त करके दृढ़ करते हैं, "अस्पन्दमानमलातमनाभासमजं यथा" जैसे चलने से रहित अलात अनाभास अरु अजन्मा है? अर्थात् निस्पन्दमान अलात। अर्थात् भ्रमणे से रहित बनेठी। सरलादिक आकार से जन्मरहित हुआ अनाभास अरु अजन्मा है। अर्थात् अलात के वा काष्ठ के मुखपर लगा जो अग्निबिन्दु सो अलात के भ्रमणे से भ्रमणरूप से उत्पन्न होय भ्रमतेवत् भासता है अरु उस अलात के स्थितहुए वो अग्निबिन्दु जैसा उत्पत्ति अरु भ्रमण से रहित है तैसाही अनाभास अरु अजन्मा होता है, अर्थात् वो अलातपर का अग्निबिन्दु जैसे अलात के भ्रमण से पूर्व है तैसाही अलात के भ्रमण के शान्त हुए है, अरु मध्यबिषे जो भ्रमणरूप से उत्पन्न हुए अरु भ्रमतेवत् भासताहै सो अलातके भ्रमण-रूप उपाधि करके भासता है, परन्तु तिस अलात के भ्रमणकाल में भी वो अग्निबिन्दु अपने स्वरूप से अलात के भ्रमणादिकों करके रहित सदा एकरस है। । "अस्पन्दमानं विज्ञानमनाभासमजं तथा" तैसे निस्पन्द हुआ विज्ञान अनाभास अरु अजन्मा है? अर्थात् जैसे अलात का अग्निबिन्दु जैसा अज अचल है तैसा अलात के स्थिर हुए भासता है तैसेही अविद्या करके चलायमान अरु अविद्या की निवृत्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के हुए चलने से रहित । अर्थात् उत्पत्त्यादि आकार से अभासमान।। हुआ जो विज्ञान सो अनाभास कहिये अचल अरु अजन्माही है। वा विज्ञान कहिये बुद्धि तद्विशिष्ट जो विज्ञान (चैतन्य) सो बुद्धिरूप उपाधि के साथ मिलने से बुद्धि के जन्मादि वा कर्त्तृत्व भोक्तृत्वादि धर्मवान् भासता है परन्तु स्वरूप से तैसा नहीं । इत्यर्थः ॥ ४८ । १७५॥

अलातेस्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः । न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्नालातम्प्रविशन्ति ते ॥ ४९ । १७६ ॥

४९ । १७६ हे सौम्य ! [अलात के दृष्टान्तविषे सरल वक्रादिक आकारों का असत्पना कैसे है, इस शङ्का के हुए निरूपण के असहन करने से तिनका असत्पना है, इस प्रकार समाधान कहते हैं, । यहां यह अर्थ है कि अलात वा अर्द्धदग्ध काष्ठ जब भ्रमता है तब तिसविषे अन्य देशान्तर से उसमें आयके प्रकाश होता है, इस प्रकार कथन करने को शक्य नहीं क्योंकि सरल अरु वक्रादिक प्रकाशों के देशान्तर से आगमन की अप्रतीति है ताते, अरु जब सोई अलात स्थित वा स्थिर होता है तब तिससे अन्य ठिकामे प्रकाश होता है यहभी कहने को शक्य नहीं क्योंकि तहांभी तिसकी अप्रतीति की तुल्यता है ताते। । अर्थात् जैसे अलात के अग्निबिन्दु के जे सरल वक्रादिरूप प्रकाश हैं तिनका अलात के भ्रमणकाल में देशान्तर से आयके अलात में प्रवेश की अप्रतीति है, तैसेही अलात के भ्रमण रहित स्थिर हुए उन प्रकाशों की देशान्तर जाने की भी अप्रतीति है ताते अलातबिन्दु के सरलवक्रादिक प्रकाशों की देशान्तर से आवागमन की अप्रतीति तुल्य ही है । अरु वे आभास, प्रकाश, इसही अलात बिषे लीन भी होते नहीं, क्योंकि उस अलात को उन आभासों के उपादानपने का अभाव है ताते । अरु जब भ्रमण का निमित्त अलात उपादान होवे, तब तिस को प्रतीतिमात्र निमित्त होनेसे तिस निमित्त करके हुए जे प्रकाश तिन के अभाव के अदर्शन से सरल अरु वक्रादिक जे आकार हैं, सो भ्रमण के अभाव के हुएभी अलात बिषे होवेंगे । परन्तु ऐसा है नहीं, एतदर्थ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सो अलात सरल घक्रादि प्रकाशों का उपादान नहीं, ताते किसीप्रकार से भी निरूपण के असहन से तिनका असत्पना है "। अलातेस्पन्द माने वै नाभासा अन्यतो भुवः "। ८ अलात के स्पन्दमानहुए आभास अन्य ते होनेवाले नहीं ; अर्थात् , किंवा तिसही अलात के चलते हुए सीधे अरु वक्रादिक आभास (प्रकाश) अलात से अन्य किसी भी देश से आयके अलात बिषे होते नहीं, एतदर्थ सो प्रकाश अन्यसे होनेवाले नहीं। अरु " न ततोऽन्यत्रनिस्पन्दान्नालातम्प्रविशन्ति ते "। ८ अचल हुए तिससे अन्य ठिकाने निकलते नहीं, औ अलात के ताईं प्रवेश करते नहीं ; अर्थात् अलात के अचल हुए सो सीधे टेढ़े प्रकाश अलात से निकल अन्य ठिकाने (देशान्तर) को जाते नहीं, अरु वे प्रकाश अचल हुए अलात बिषे प्रवेश करते नहीं। अर्थात् अलातबिषे लगा जो अग्निबिन्दु तिसके भ्रमण से भासते जे सीधे टेढ़े प्रकाश सो किसी देशान्तर से आयके भासते नहीं अरु उस अग्निबिन्दु के स्थिर हुए देशान्तर को जाते नहीं अलातही में लयभी होते नहीं 'क्योंकि अलात से निकले नहीं, ताते, अभिप्राय यह है कि अलात के जे सीधे टेढ़े आदिक प्रकाशहैं सो न तो उस अग्निबिन्दुसे निकलेहैं न देशान्तर से आये हैं, अरु अग्निबिन्दु के स्थिर हुए न तो देशान्तर को जाते हैं न उसही में लय होते हैं। किन्तु उस काष्ठ के भ्रमण से वह अग्निबिन्दु आपही सीधा टेढ़ा हो भासता है सोभी उपाधि के सम्बन्ध से है स्वरूप से नहीं ४९। १७६ ॥

न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः। विज्ञाने ऽपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः ॥ ५०। १७७ ॥

५०। १७७ हे सौम्य! किंवा " न निर्गता अलातात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः "। ८ अलात से निकले हुए नहीं द्रव्यभाव के अभाव के योग से ; अर्थात् वे आभास कहिये सीधे टेढ़े प्रकाश ग्रह से निकले हुएवत् अलात (अग्निबिन्दु) से निकले हुए नहीं, क्योंकि उनको द्रव्यभाव के अभाव का योग है। अर्थात् उनको वस्तुपने का अभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है । ताते । जिस करके वस्तु का प्रवेशादिक सम्भवे है अवस्तु का नहीं, ताते तिन आभासों को । वस्तुपने के अभाव से अवस्तुरूप हुए । तिनके निकलने का अरु प्रवेश होनेका असम्भव है ताते । अरु " विज्ञानेपि तथैव स्युराभासस्याविशेषतः " (तैसे ही विज्ञानबिषे भी आभास से अविशेष (तुल्य) होनेसे ; अर्थात् अलात के अग्निबिन्दुवत्, विज्ञान (विज्ञप्तिमात्र चैतन्य) बिषे भी उत्पत्त्यादिकों के आभास होते हैं, तिनकी अलात के आभासों से अविशेषता है । अर्थात् अग्निबिन्दु के सीधे टेढ़े प्रकाशाकारों बिषे अरु विज्ञान (चैतन्य) के जन्मादिक आकारों बिषे आभासमात्रता की तुल्यता है ॥ ५० । १७७ ॥

विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः । न ततोऽन्यत्र निस्पन्दान्न विज्ञानं विशन्ति ते ॥ ५१ । १७८ ॥

५१ । १७८ हे सौम्य ! । प्र० । तिन । अलात के सीधे टेढ़े प्रकाशरूप आभास की अरु विज्ञान के जन्मादिक आभासों की । बिषे आभासों की एकता कैसे है, । तहां उत्तर कहते हैं " विज्ञाने स्पन्दमाने वै नाभासा अन्यतो भुवः " (विज्ञान के स्पन्दहुए अन्य से भी आभास होने को योग्य नहीं ; अर्थात् विज्ञान । कहिये विज्ञप्तिमात्र चैतन्य आत्मा, जो कि अपने स्वरूप करके अचल है । तिसके जिस किस प्रकार से । अर्थात् मायादिक उपाधि से । भी चलतेहुए तिस विज्ञान से अन्य । प्रधानादिक । अन्य किसी कहीं से भी आयके आभास । जन्मादिक । तिस ' विज्ञान ' बिषे होने को योग्य नहीं, क्योंकि तिसकी प्रतीति का अभाव है ताते । अरु " न ततोऽन्यत्र निस्पदान्न विज्ञानं विशन्ति ते " (निस्पन्द हुए तिसके अन्य ठिकाने होनेको योग्य नहीं, अरु वे विज्ञान बिषे प्रवेश करते नहीं ; अर्थात् । जो किसी भी प्रकार से चलन को प्राप्त हुए विज्ञान के । चलनेसे रहित अचल स्थिर हुए तिस विज्ञान से इतर ठिकाने वे आभास होनेके योग्य नहीं, क्योंकि प्रतीतिरूप आभास को सर्वत्र तबही विज्ञान की अचलपने करके स्थिति बिषे तुल्यता है ताते । अरु सो आभास तिसही विज्ञानबिषे प्रवेश करते नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि तिस केवल शुद्ध विज्ञान को तिन आभास के उपादानपने की अप्रतीति है ताते ॥ अर्थात् ज्ञप्तिमात्र चैतन्य विज्ञान से जन्मादि आभास उपजते नहीं तिसही से तिस बिषे प्रवेश को पावते नहीं एतदर्थ वे जन्मादि आभास तिस विज्ञान बिषे मायाकृत भ्रान्तिमात्रही हैं, वास्तव से नहीं ॥ ५१ । १७८ ॥

न निर्गताविज्ञानात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः । कार्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याःसदैवते ॥ ५२ । १७९ ॥

५२ । १७९ हे सौम्य ! "न निर्गताविज्ञानात्ते द्रव्यत्वाभावयोगतः" "सो विज्ञान से निकलते नहीं द्रव्यत्व के अभाव करके युक्त होनेसे" अर्थात् जैसे वे जन्मादि आभास विज्ञान कहिये चैतन्य बिषे प्रवेश करते नहीं, तैसेही वे आभास विज्ञप्ति से निकलते भी नहीं, क्योंकि वह द्रव्यभाव कहिये वस्तुभाव के अभाव करके युक्त हैं ताते ॥ इसका यह तात्पर्य है विज्ञान का अन्यसर्व अलात के तुल्य है, परन्तु विज्ञान का जो सदा अचलपना है सो अलात से विशेष है । अर्थात् विज्ञान बिषे जो जन्मादिक आभास हैं सो कुछ वस्तु न होयके केवल आभास (भ्रान्ति) मात्रही हैं ताते वास्तव करके न तो विज्ञान से निकलते हैं न विज्ञान में प्रवेश को प्राप्त होते हैं । अरु अलात के आभासों का (प्रकाशों का) जो अलातसे निकलना अरु अलात में प्रवेश का पावना भासता है सो अलात के भ्रमण करके भासता है, अरु विज्ञान है सो अलातवत् चल न होयके अचल है यह उसमें अलात से विशेषता होनेसे उस बिषे जन्मादिक आभासके होनेके हेतुका अभावहै । प्रश्न । तब अचल विज्ञान, ज्ञप्तिमात्र, बिषे जन्मादिकों के आभास किसके किये हैं । तहां उत्तर कहते हैं, "कार्यकारणताभावाद्यतोऽचिन्त्याः सदैव ते" "जाते वे कार्यकारणभाव के अभाव से सदैव अचिन्त्य हैं" अर्थात् जिसकरके वे जन्मादि आभास तिन आभासों के अरु विज्ञप्तिमात्र विज्ञानके कार्यकारणभाव का अभाव होने से । अर्थात् जन्य जनक भावके असंभव करके सो आभास अभावरूप हैं ताते । सो सदा अचिन्त्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहिये अनिर्वचनीय है ॥ । अथवा आभासों को अरु विज्ञान को कार्य कारण भाव का अभाव है, अर्थात् आभासों को भ्रान्तिमात्र होने से न तो कोई उनका कारण है न वह किसी का कार्य है, अरु विज्ञान को अजन्मा होने से न वह किसी का कारण है न किसीका कार्य है, अत एव आभास अरु विज्ञान के कार्यकारण भाव का अभाव है, परन्तु वे आभास केवल भ्रान्तिमात्र अध्यस्त होने से सत् नहीं किन्तु असत् हैं अरु विज्ञान उन आभासों का अधिष्ठान (आश्रय) होने से असत् न होके सत्रूप है क्योंकि आश्रय विना भ्रान्ति होती नहीं, अरु ज्ञान काल बिषे भ्रान्ति के अभाव हुए सत्रूप अधिष्ठान पावता है, अरु जैसे मरुस्थल का जल अनहुआ भी अपने अधिष्ठान मरुस्थल को सत्रूप होनेसे सदैव भासता है ताते अत्यन्त असत्भी नहीं, अरु जो पुरुष जल जानके प्रवर्त होताहै तिसको जल की प्राप्ति होती नहीं ताते सो सत्भी नहीं किन्तु अनिर्वचनीय है, तैसेही अनहुए जन्मादि आभास अपने अधिष्ठान नित्य सत्विज्ञान बिषे सदाही अनिर्वचनीय है । एतदर्थ सो मिथ्या ही होते हैं ॥ जैसे अलातबिन्दुमात्र बिषे मिथ्या जो सरलादिक अलात के आभास तिन बिषे । विना विचारित । सरलादि आभास बुद्धि होतीहै, तैसेही विज्ञान (विज्ञप्ति) मात्रबिषे मिथ्या जो जन्मादिक तिन बिषे । विना विचारितही । जन्मादिक बुद्धि है सो मिथ्या है । ताते सो सर्वथा त्याग करने योग्यही है । यह समुदाय का तात्पर्यार्थ है ॥ ५२ । १७९ ॥

द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुःस्यादन्यदन्यस्य चैवहि । द्रव्यत्व मन्यभावोवा धर्माणां नोपपद्यते ॥ ५३ । १८० ॥

५३ । १८० हे सौम्य ! " कार्यकारणताभावात् " ८कार्य अरु कारणभाव के अभाव से ? इस प्रकार जो ५२ वें श्लोक बिषे कहा, तिसको प्रतिपादन करने का अब आरम्भ करते हैं । यहां यह अर्थ है कि, अवयवरूप जो द्रव्य है सो अवयवीरूप द्रव्य का उपादान है । अरु अवयव के जो गुण हैं सो अपने समान जातिवाले अवयवी के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुणों बिषे असमवायी कारण देखे है। इस प्रकार आत्मा को द्रव्यपना है नहीं कि जिस करके उसको उपादानपना होवे। अरु तिसरूपवाले गुणों का कहीं भी असमवायी कारणपना है नहीं क्योंकि तिस आत्मा बिषे भेदरूप गुण गुणी भाव के कथन का असम्भव है ताते] इस प्रकार "अजमेकमात्मतत्त्वमिति" ८ अज, कहिये अवयव अवयवी भाव रहित, अरु एक कहिये गुण गुणी भाव रहित, आत्मतत्त्व है, इस प्रकार सिद्ध हुआ। तिस आत्मतत्त्व बिषे जिन वादियों करके जन्मादिकों के आभास अरु विज्ञान का कार्यकारण भाव कल्पित है, तिनके मत बिषे "[द्रव्यं द्रव्यस्य हेतुः स्यादन्यदन्यस्य चैवहि "]; द्रव्य द्रव्य का अरु अन्य अन्य का हेतु (कारण) होता है; अर्थात् जिन वादियों के मत बिषे जन्मादि आभासों का अरु विज्ञान का कार्य कारणभाव कल्पित है तिनके मत बिषे द्रव्य द्रव्य का अरु अन्य अन्य का कारण होता है, परन्तु तिसही का [अर्थात् अपना कारण आप [सो होता नहीं। अरु जिस करके लोक बिषे जो अद्रव्य कहिये रूपादि गुण है, सो स्वतन्त्र किसीका भी कारण देखा नहीं। अरु "[द्रव्यत्वमन्यभावो वा धर्माणां नोपपद्यते "[९ धर्मका द्रव्यभाव वा अन्य भाव उपपद्य नहीं; अर्थात् जिस करके आत्मा को अन्य का कारणपना वा कार्यपना प्राप्त होवे ऐसा आत्मरूप धर्मों का द्रव्य भाव वा किसी से भी अन्य भाव बनता नहीं [अर्थात् द्रव्यभाव करके रहित निराकार निर्विशेष आत्मा का द्रव्यभाव न होने से वो किसी का भी कारण नहीं अरु एक अद्वैत होनेसे उसका किसीसे अन्यभाव भी नहीं [एतदर्थ अद्रव्यरूप होनेसे अरु सर्वसे अभिन्न अनन्य होनेसे आत्मा न किसीका कार्य है न किसीका कारण है, यह अर्थ है ॥ ५३ । १८० ॥

एवं न चित्तजा धर्माश्चित्तं वाऽपि न धर्मजम्। एवं हेतुफलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः ॥ ५४ । १८१ ॥

५४ । १८१ हे सौम्य! [रचने को इच्छित जो घट तिस घट के ज्ञान के अनन्तर घट उत्पन्न होता है, अरु उपजा हुआ, इदं घट, इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार विषयरूप होने से अपने ज्ञान का उत्पादक है, इस प्रकार का व्यवहार भी संभवता नहीं, क्योंकि किसी भी वस्तु को विद्वान् की दृष्ट्यनुसार भिन्नरूपता नहीं इस प्रकार कहते हैं,] "[एवं न चित्तजा धर्माश्चित्तं वाऽपि न धर्मजम् "[इस प्रकार [धर्म, चित्त से जन्य नहीं, वा चित्त भी [बाह्य, धर्म से जन्य नहीं ; अर्थात् ऐसे उक्तप्रकार के हेतुओं करके आत्मरूप विज्ञान स्वरूपही चित्त कहिये चैतन्य ब्रह्म है, एतदर्थ घटादिरूप बाह्य धर्म चित्त जो चैतन्य तिस करके जन्य नहीं । वा चित्तभी बाह्य धर्म से जन्य नहीं । अरु जीवरूप धर्मों का परमात्मस्वरूप चित्त से जन्म युक्त नहीं, क्योंकि सर्वजीवाख्य धर्मों को विज्ञानस्वरूप के आभास कहिये प्रतिबिम्ब भावहै ताते [अर्थात् यावत् जीव हैं सो सर्व विज्ञानरूप चैतन्य के [जलगत सूर्य के प्रतिबिम्बवत्, प्रतिबिम्बरूप है ताते उनका परमात्मा से जन्म युक्त नहीं, "[एवं हेतु फलाजातिं प्रविशन्ति मनीषिणः]" [इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष हेतु अरु फल की अनुत्पत्ति को निश्चय करते हैं ; अर्थात् चैतन्य करके बाह्य घटादिक जन्य नहीं, तैसेही चैतन्य भी बाह्य घटादिक करके जन्य नहीं, अरु अन्तरसर्वजीव भी चैतन्य से जन्य नहीं [प्रतिबिम्बरूप होने से, ताते अन्तर बाह्य के सर्वधर्म चैतन्य करके जन्य नहीं केवल भ्रान्तिमात्र हैं [इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष कहते हैं वा निश्चय करते हैं । तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्मरूप हुए ब्रह्मवेत्ता हैं सो वह ब्रह्मवेत्ता कहिये यथार्थ वेदवेत्ता हैं सो आत्मा बिषे हेतु अरु फल को [अर्थात् प्रारब्ध अरु देह जो परस्पर हेतु अरु फलरूपहैं तिन्हों को [अभावरूप ही निश्चय करके जानते हैं ॥ ५४ । १८१ ॥

यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः । क्षीणे हेतुफलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः ॥ ५५ । १८२ ॥

५५ । १८२ हे सौम्य ! [फल जो देहादिक तिनसे हेतु जे धर्मादिक सो होते नहीं, अरु तैसेही उक्तहेतु से उक्तफलादिक भी होते नहीं । इस प्रकार वास्तविक दृष्टि से उपदेश किया । अब तिस विष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यक मुमुक्षुओं के आग्रह की निवृत्ति के अर्थ तिस बिषे आग्रह के अभावाभाव के हुए तिनकी उत्पत्ति अरु अनुत्पत्ति को देखावे हैं] प्रश्न। जो पुनः हेतु अरु फल बिषे आग्रह को प्राप्त हुए हैं तिनको क्या फल होताहै ?। उत्तर। " यावद्धेतुफलावेशस्तावद्धेतुफलोद्भवः " ' यावत् हेतु अरु फल बिषे आग्रह है तावत् हेतु अरु फल का उद्भव होता है ' अर्थात् धर्म अरु अधर्मनामवाले जे हेतु ' शरीरोत्पत्ति के कारण ' हैं तिनका कर्ता मैं हौं, धर्म अधर्म मेरे हैं तिन धर्म अधर्मों का फल कालान्तर बिषे कोई एक ' स्वर्गनरकादि ' देश बिषे प्राणधारियों के समूह बिषे ' अर्थात् कितेक योनि बिषे ' उत्पन्नहुआ मैं भोगूंगा। इस प्रकार का यावत् हेतु अरु फल बिषे ' कर्तृत्व भोक्तृत्व का ' आग्रह है। अर्थात् तिनबिषे तत्पर चित्तवाले पुरुष करके अपने आप बिषे हेतु अरु फल का आरोप करते हैं तावत् धर्म अधर्मरूप हेतु का अरु तिनके फल का उद्भव कहिये, उच्छेदरहित प्रवृत्ति, होती है। तथाच " धर्मेतरौ तत्र पुमः शरीरकं पुनः क्रियाश्चात्र उदीर्यते भवः " अरु " क्षीणे हेतुफलावेशे नास्ति हेतुफलोद्भवः " ' हेतु अरु फल बिषे आग्रह के क्षीण हुए हेतु अरु फल का उद्भव होता नहीं ' अर्थात्, जब पुनः, जैसे मन्त्र अरु ओषधि करके प्रेतादिक के आवेश के अभाव होनेवत्, उक्त प्रकारके अद्वैत तत्त्व के, श्रवण मनन, दर्शन से ' अविद्या करके उद्भूत जो हेतु अरु फल तिनका आवेश सम्यक् प्रकार दूर होता है। तब तिन उक्त हेतु अरु फल बिषे आग्रह के क्षीण ' नाश ' हुए हेतु अरु फल का पुनः उद्भव होता नहीं। इति सिद्धम्॥ ५५। १८२॥

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः। क्षीणे हेतु फलावेशे संसारं न प्रपद्यते॥ ५६। १८३॥

५६। १८३ हे सौम्य !। प्रश्न। जो कदापि हेतु अरु फल का उद्भव होवे तो क्या दोष है ?। उत्तर। कहते हैं। " यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः " अर्थात् यावत् सम्यक् ज्ञान करके हेतु अरु फल का आग्रह ' सम्यक्प्रकार अशेष ' निवृत्त होता नहीं, किन्तु ' अज्ञान '

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके होता है तावत् अक्षीण हुआ संसार दीर्घ होता है । अर्थात् यावत् सम्यक् आत्मज्ञान करके उक्त हेतु अरु फल इन विषयक आग्रह अशेष निवृत्त होता नहीं तावत् अज्ञान करके हेतु अरु फलरूप संसार विस्तार को ही पावता है । अरु "क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते" ८ हेतु अरु फलविषयक आग्रह के क्षीण हुए संसार को पावता नहीं ? अर्थात् पुनः जब । सम्यक् आत्मज्ञान करके । उक्तहेतु अरु फलविषयक । समूल 'अज्ञान' के । आग्रह अशेष क्षीण (नाश) होता है तब कारण के अभाव हुए संसार को पावता नहीं ॥ इति सिद्धम् ॥ ५६ । १८३ ॥

संवृत्त्याजायते सर्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै । सद्भावेन ह्यजं सर्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै ॥ ५७ । १८४ ॥

५७ । १८४ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, "अजादात्मनोऽन्यन्नास्ति" ८ अजन्मा आत्मा से अन्य है नहीं ? इस प्रकार कूटस्थ अद्वितीय आत्मतत्त्व को इच्छनेवाले तुम करके, हेतु अरु फल, अरु संसार की, उत्पत्ति अरु विनाश कैसे कहा है, हे वादिन् ! अपनी इस शङ्का का समाधान श्रवण कर "संवृत्त्या जायते सर्वं शाश्वतं नास्ति तेन वै" ८ ढापने से सर्व उपजता है तिस करके नित्य नहीं है ? अर्थात् अविद्या के आधीन लौकिक व्यवहाररूप ढापने से सर्व उपजता है तिस हेतु करके उत्पन्न हुए अविद्या के आधीन वस्तु बिषे नित्य । नित्यता । है नहीं, एतदर्थ उत्पत्ति अरु विनाशरूप संसार उपजता है, इस प्रकार कहते हैं । अरु "सद्भावेन ह्यजं सर्वमुच्छेदस्तेन नास्ति वै" ८ सद्भाव से जन्मरहित सर्व है तिस करके उच्छेद है नहीं ? अर्थात् जिस करके परमार्थ सद्भाव, परमार्थ सत्ता, से तो जन्मरहित सर्व आत्मा ही है "आत्मैवेदं सर्वम्" इत्यादि श्रुति । एतदर्थ तिस जन्म के अभावरूप कारण करके हेतु अरु फलादिक किसी का भी उच्छेद कहिये विनाश है नहीं ॥ [यहां यह भाव है कि, जैसे सम्मुखवर्ति रज्जु बिषे सर्प के अभाव का अनुभवकर्ता विवेकी पुरुष, सर्प नहीं यह रज्जु है वृथाही भय को क्यों प्राप्त होता है, इस प्रकार भ्रान्त पुरुषको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताहै अरु वह भ्रान्तपुरुष तो अपने अपराध से ही [शुद्ध रज्जुबिषे] की कल्पनाकर भय को पावतसन्ते भागता है। तहां विवेकी का न मूढ़ की दृष्टि से विरोध को पावता नहीं, तैसे परमार्थरूप कूटस्थ त्मा का दर्शन व्यावहारिक जन्मादिकों के वचन से विरोध को न के अविरुद्धही है॥ ५७। १८४॥

धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्त्वतः। जन्म योपमन्तेषां सा च माया न विद्यते॥ ५८। १८५॥

५८। १८५ हे सौम्य! ["संवृत्या जायते सर्वम्" ८ लौकिक हार से सर्व होता है? इस प्रकार ५७ वें श्लोक के बिषे कहा, को अब पुनः वर्णन करते हैं] "धर्मा य इति जायन्ते जायन्ते तेन तत्तः" ८ जो भी धर्म जन्मते हैं ऐसे तत्त्व से सो जन्मते नहीं; अ- जो भी आत्मा अरु अन्य अनात्मरूप धर्म कहिये पदार्थ उपजते इस प्रकार कहते हैं। अर्थात् कल्पना करते हैं। सो धर्म इसप्रकारके इस प्रकार पूर्वोक्त लौकिक व्यवहाररूप ढक्कन (पड़दा) कहते हैं, ढांपने कहिये गुप्तपने सेही वे धर्म जन्मते हैं, परन्तु तत्त्व कहिये मार्थ से जन्मते नहीं। अरु "जन्ममायोपमन्तेषां सा च माया न वि ते" ८ तिनका जन्म मायाकी उपमावाला है अरु सो माया विद्यमान नहीं; अर्थात् जो पुनः ढपने से तिन उक्त प्रकार के धर्मों का जो न्म है सो, जैसे माया का जन्म होताहै तैसे है, एतदर्थ सो तिनका न्म माया की उपमावाला प्रतीत करने के योग्य है। प्रश्न। तब यानामक कुछ वस्तु होवेगी,। उ०। सो माया कुछ विद्यमान नहीं, सिप्राय यह है कि अविद्यमान वस्तुका नाम मायाहै॥ ५८। १८५॥

यथा मायामयाद्बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः। नाऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजना॥ ५९। १८६॥

५९। १८६ हे सौम्य! प्रश्न। तिन धर्म कहिये पदार्थों का जन्म या की उपमावाला कैसेहै,। तहां, उत्तर, कहते हैं "यथा मायामयाद्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बीजाज्जायते तन्मयोऽङ्कुरः " (जैसे मायामय बीज से मायामय अंकुर होता है ; अर्थात् जैसे आम्रादिकों के मायामय बीज से । अर्थात् कोई ये मायावी पुरुष करके आरोपित आम्रादिक वृक्ष के मायामयबीज से मायामय अंकुर उपजता है । अरु " नाऽसौ नित्यो न चोच्छेदी तद्वद्धर्मेषु योजना " (यह नित्य नहीं वा विनाशी नहीं तैसे धर्मों बिषे योजना है ; अर्थात् यह , मायामय , अंकुर नित्य नहीं, वा विनाशी नहीं, क्योंकि मिथ्याहै ताते, तैसेही धर्म कहिये पदार्थों बिषे जन्म अरु नाशादिकों की योजना है । अर्थ यह है कि परमार्थ से धर्मों का जन्म वा नाश घटता नहीं ॥ ५९ । १८६ ॥

नाजेषु सर्वधर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा । यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ॥ ६० । १८७ ॥

६० । १८७ हे सौम्य ! [सद्भाव से सर्व अजन्मा हैं, इस प्रकार जो ५७ वें श्लोक बिषे कहा, तिसको वर्णन करते हैं] " नाजेषु सर्व धर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा " (अजन्मा सर्व धर्मों बिषे नित्य है वा अनित्य है ऐसा नाम 'कहना' नहीं (अर्थात् परमार्थ से तो नित्य एक रस विज्ञप्तिमात्र सत्तारूप अजन्मा सर्व धर्म कहिये आत्माबिषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा नाम , कहना, प्रवर्त्त होता नहीं । क्योंकि " यत्र वर्णा न वर्त्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते " जिन बिषे वर्ण प्रवर्त्त होते नहीं तिन बिषे विवेक कहते नहीं ; अर्थात् जिन्हों करके अर्थों का वर्णन करिये ऐसे जे शब्द तिनको वर्ण कहते हैं, सो जिस आत्मा बिषे वर्ण "यह ऐसा है" इस प्रकार कहने को प्रवर्त्त होते नहीं, तिस [आत्मा] बिषे नित्य है वा अनित्य है, ऐसा विवेक कहते नहीं क्योंकि " यतो वाचो निवर्त्तन्ते " इत्यादि श्रुति प्रमाण है ॥ ६० । १८७ ॥

यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया । तथा जाग्रद्द्वयाभासं चित्तं चलति मायया ॥ ६१ । १८८ ॥

६१ । १८८ हे सौम्य ! आत्मा को शब्द की अगोचरता के [अ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

र्थात् अविषयता के । हुए, यह आत्मा व्याख्याकारों करके, शब्दों से ही प्रतिपादन करने की योग्यता को कैसे प्राप्त होता है, । यह शङ्का करके चित्त का स्फुरणमात्र अविचारित सुन्दर प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादक रूप द्वैत है, इस प्रकार दृष्टान्त सहित कहते हैं " यथास्वप्नेद्वयाभासं चित्तं चलति मायया । तथा जाग्रद्वयाभासं चित्तं चलति मायया " (जैसे स्वप्नबिषे द्वैताभासरूप चित्त (मन) माया से चलता है, तैसे जाग्रत् बिषे द्वैताभासरूप चित्त माया करके चलित होताहै ? ॥ ६१ । १८८ ॥

अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः । अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः ॥ ६२ । १८९ ॥

६२ । १८९ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, स्वप्न बिषे प्रतिपाद्य अरु प्रतिपादकरूप द्वैत को मन के चलन कहिये स्फुरणमात्ररूप के हुए भी जाग्रत् बिषे तिस प्रकार । मन का स्फुरणमात्र । कैसे होवेगा, यह शङ्का करके उत्तर कहते हैं " अद्वयञ्च द्वयाभासं चित्तं स्वप्ने न संशयः । अद्वयञ्च द्वयाभासं तथा जाग्रन्न संशयः " (स्वप्न बिषे अद्वैतरूप हुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है, यामें संशय नहीं, तैसे जाग्रत् बिषे अद्वैत-रूप हुआ चित्त द्वैताभासरूप होता है इसमें संशय नहीं ; अर्थात् स्वप्न बिषे वास्तव करके अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणता से द्वैतरूप होताहै तिसमें संशय नहीं, तैसे जाग्रत् बिषे भी अद्वैतरूप हुआही मन अपनी स्फुरणता से द्वैतरूप होता है इसमें भी संशय नहीं ॥ अरु जो आनः परमार्थ से अद्वैतरूप विज्ञानमात्र वस्तु को वाणी का विषयपना है सो मनका स्फुरणमात्र है, परमार्थ से नहीं, यह पूर्व अद्वैतनामक तृतीय प्रकरण बिषे व्याख्यान किये इन ६१, ६२, दो श्लोकों का तात्पर्य है ॥ ६२ । १८९ ॥

स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु स्थितान् । अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ॥ ६३ । १९० ॥

६३ । १९० हे सौम्य ! " स्वप्नदृक् प्रचरन् स्वप्ने दिक्षु वै दशसु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थितान् । अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ॥ ८ स्वप्न का द्रष्टा स्वप्न बिषे बिचरता हुआ दशहों दिशा बिषे स्थित, अण्डज वा स्वेदजरूप भी जीवों को सदा देखता है ? अर्थात् इस कथन के हेतु से भी वाणी का विषय जो द्वैत तिसका अभावहै, जैसे स्वप्नरूप स्थान बिषे स्वप्न जगत् का देखनेवाला ऐसा जो स्वप्न का द्रष्टा सो स्वप्न बिषे बिचरता हुआ दशहों दिशा बिषे स्थित कहिये वर्तमान अण्डज वा स्वेदजरूप भी । जरायुज अरु उद्भिज्जरूप । जिन प्राणियों को सदा देखता है सो तिससे भिन्न नहीं इस प्रकार अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है ॥ ६३ । १९० ॥

स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्। तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते ॥ ६४ । १९१ ॥

६४ । १९१ हे सौम्य ! । प्र० । जब ऐसे है तब तिस करके हुआ क्या, । तहां उत्तर कहते हैं "स्वप्नदृक् चित्तदृश्यास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" ८ स्वप्नद्रष्टा के चित्त करके देखनेयोग्य तिससे पृथक् नहीं, अर्थात् स्वप्नद्रष्टा के चित्त कहिये मन करके देखनेयोग्य वे जीव सो स्वप्नद्रष्टा के चित्त से भिन्न नहीं । अरु जो ऐसा कहे कि तब चित्तही जीवादिक भेद के । द्रष्टा अरु चित्त के । आकार से विकल्प को पावता है, । सो कथन बने नहीं । तहां कहते हैं "तथा तद्दृश्यमेवेदं स्वप्नदृक् चित्तमिष्यते" ८ तैसे यह स्वप्न के द्रष्टा का चित्त तिस करके देखने के योग्यही अङ्गीकार करते हैं ? अर्थात् तैसे यह स्वप्न के द्रष्टा का चित्त तिस स्वप्न के द्रष्टा करके देखने के योग्य ही अङ्गीकार करते हैं । अर्थात् जैसे स्वप्न के द्रष्टा करके स्वप्न के पदार्थ देखने योग्य हैं, तैसे चित्त भी है । एतदर्थ स्वप्न के द्रष्टा से भिन्न चित्त नाम कोई वस्तु नहीं, इत्यर्थः ॥ ६४ । १९१ ॥

चरन् जागरिते जाग्रद्दिक्षु वै दशसु स्थितान् । अण्डजान् स्वेदजान् वाऽपि जीवान् पश्यति यान् सदा ॥ ६५ । १९२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६५। १९२ हे सौम्य! अब दृष्टान्त बिषे स्थित अर्थ को दार्ष्टान्त बिषे योजना करते हैं। "चरन् जागरिते जाग्रद्दिक्षु वै दशसु स्थितान्। अण्डजान् स्वेदजान्वाऽपि जीवान् पश्यति यान्सदा" ऐसे जाग्रत्बिषे जाग्रत् के दशहो दिशा बिषे बिचरता तहां स्थित अण्डज वा स्वेदज भी जिन जीवों को सदा देखता है; अर्थात् जाग्रत् बिषे जाग्रत् अवस्थावाला पुरुष दशहो दिशा बिषे स्थित जे अण्डज वा स्वेदज, जरायुज अरु उद्भिज्जरूप, चारि खानि के जिन जीवों को। (अर्थात् कार्य कारणात्मक संघात को) सदा देखता है॥ ६५। १९२॥

जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्। तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रताश्चित्तमिष्यते॥ ६६। १९३॥

६६। १९३ हे सौम्य! "जाग्रच्चित्तेक्षणीयास्ते न विद्यन्ते ततः पृथक्" ऐसे जाग्रत् के चित्त से देखने के योग्य तिससे पृथक् विद्यमान नहीं; अर्थात् जाग्रदवस्थावाले पुरुष के चित्त करके देखने के योग्य वे (उक्त चार खानि के) जीव तिस जाग्रदवस्थावाले पुरुष के चित्तसे भिन्न नहीं "तथा तद्दृश्यमेवेदं जाग्रताश्चित्तमिष्यते" ऐसे यह जाग्रत् का चित्त तिस द्रष्टा करके देखने के योग्यही अङ्गीकार करते हैं; अर्थात् जैसे जाग्रत् के द्रष्टा करके जाग्रत् के जीवादि पदार्थ देखने के योग्यहैं, तैसे इस जाग्रदवस्थावाले पुरुष का चित्त तिस जाग्रत् के द्रष्टा पुरुष करके देखने के योग्य है ऐसा अङ्गीकार करते हैं॥ अरु इन '६५,६६' दो श्लोकों के भावार्थरूप यह दो अनुमानहैं। जाग्रदवस्थावाले पुरुषके दृश्य जो जीवादि सो तिसके चित्तसे अभिन्नहै, क्योंकि चित्तकरके देखने योग्य है ताते, जैसे स्वप्न के द्रष्टाके चित्त करके देखनेके योग्य स्वप्न के जीवादिक (चित्तसे अभिन्न हैं) तैसे॥ अरु सो जीवोंके देखनेरूप चित्त है सो द्रष्टा से अभिन्न है, क्योंकि द्रष्टा का दृश्य है ताते, स्वप्न के चित्तवत्॥ ६६। १९३॥

उभे ह्यन्योन्यदृश्येते किन्तदस्तीति चोच्यते। लक्षणा शून्यमुभयं तन्मतेनैव गृह्यते॥ ६७। १९४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

६७ । १९४ हे सौम्य ! [दृश्य अरु दर्शन के भेद के ग्राहक प्रमाण करके बाधित हुए यह दोनों हेतु हैं, । यह शङ्का करके तब कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि दृश्य अरु दर्शन यह दोनों परस्पर की अपेक्षा से सिद्ध होनेवाले हैं । दृश्यके सिद्ध हुए तिस करके अविच्छिन्न कहिये विशिष्ट, दर्शन (ज्ञान) सिद्ध होता है, अरु तिस दर्शन के सिद्ध हुए तिस करके अविच्छिन्न दृश्य (विषय) सिद्ध होते हैं । इस प्रकार अन्योन्याश्रयरूप दोष करके दृश्य वा दर्शन सिद्ध होते नहीं । एतदर्थ तिनके भेद के ग्राहक प्रमाण के अभाव से उन दोनों हेतुओं का बाध है नहीं] वे जीव अरु चित्त यह दोनों परस्पर के दृश्य कहिये विषय होते हैं । अरु जिस करके जीवादिक विषयोंकी अपेक्षावाला चित्त प्रसिद्ध होता है, अरु जिस करके चित्तकी अपेक्षावाला जीवादिक दृश्य है, एतदर्थ " उभेह्यन्योन्यदृश्येते किन्तदस्तीति चोच्यते " (वे दोनों अन्योन्य करके दृश्य हैं सो क्या है ऐसे (प्रश्नकर्ता प्रति) कहते हैं ; अर्थात् वे जीव अरु चित्त दोनों परस्पर के दृश्य हैं । (अर्थात् परस्पर करके देखने (विषय करने) योग्यहैं, । अरु जिस करके वे दोनों परस्परके दृश्य हैं, एतदर्थ (अन्योन्याश्रयरूप दोष के सद्भाव से) चित्त अथवा चित्त करके देखनेके योग्य जो दृश्य पदार्थ है सो क्या है, इस प्रकार प्रश्न कियेहुए, विवेकी पुरुष करके ' यह कुछ भी है नहीं, इस प्रकार कहा है वा कहते हैं । जैसे स्वप्न बिषे । " तत्र रथा न रथयोगा " इत्यादि प्रमाणसे (हस्ती वा हस्तीका चित्त विद्यमानहै नहीं तैसे यहां जाग्रत् बिषे भी विवेकी पुरुष को कुछभी वस्तु विद्यमान करके प्रतीत होता नहीं ॥ यह अभिप्राय है । प्रश्न ॥ जाग्रत् बिषे चित्त वा चित्त का दृश्य यह दोनों विद्यमान कैसे नहीं, । तहां , उत्तर, कहते हैं " लक्षणाशून्यमुभयं तन्मतेनैव गृह्यते " (यह दोनों लक्षणाशून्य हैं तिनके मतसेही ग्रहण करते हैं ; अर्थात्, जिस करके लखा (देखा) जाय सो कहिये लक्षणा ऐसा जो प्रमाण तिसको यहां लक्षणा कहते हैं । अरु जिस करके चित्त अरु चित्त का दृश्य, चैत्य , यह दोनों लक्षणा कहिये प्रमाण तिससे रहित हैं, ताते तिनके भेद का प्रमाणीकपना (प्रमाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करने योग्यपना । है नहीं । अरु वादियों ने तो तिनके मत करके । तिस दृश्य अरु ज्ञान बिषे तत्पर चित्तवान्तारूप दोष करके । सो दृश्य अरु दर्शन ग्रहण किये हैं, ताते घट की बुद्धि को दूर करके [यहां यह अर्थ है कि, घट बिषे क्या प्रमाण है, । इस प्रकार प्रश्न किये हुए , ज्ञान प्रमाणहै, ऐसा उत्तर बने नहीं, क्योंकि अन्य वस्तुओंके ज्ञान बिषे अतिप्रसङ्ग । अतिव्याप्ति । होवेगी ताते । अरु घट का ज्ञान प्रमाण है, ऐसा उत्तर भी बने नहीं क्योंकि अन्योन्याश्रयदोष का प्रसंग प्राप्त होता है ताते । अतएव घट अरु तिसके ज्ञान का प्रमाण अरु प्रमेयभाव सम्भवे नहीं] घट ग्रहण करते नहीं, अरु घटको दूर करके घटकी बुद्धि (ज्ञान) भी ग्रहण करते नहीं । एतदर्थ तिस ज्ञान अरु ज्ञेयरूप ।चित्त अरु चित्त के दृश्य बिषे प्रमाण अरु प्रमेय का भेद कल्पना करने को शक्य नहीं इत्याभिप्रायः ॥ ६७ । १९४ ॥

यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च । यथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥ ६८ । १९५ ॥

६८ । १९५ हे सौम्य ! [दर्शन कहिये ज्ञान से भिन्न अण्डजादि दृश्य पदार्थों के असद्भाव के अनुमान के ग्राहक प्रमाण करके बाध को निवारण करके, अब दर्शनसे भिन्न तिन अण्डजादिकन के असद्भाव के हुए जन्मादिकों की प्रतीति का बाध होवेगा, इस शङ्का को दूर करते हैं,] " यथा स्वप्नमयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च । तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च " ? जैसे स्वप्नमय जीव जन्मता है अरु मरताभी है, तैसेही यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते ? ॥ अर्थात् जैसे स्वप्न बिषे अनहुएही जीव जन्मते अरु मरते हैं, तैसे यह जाग्रत् के जीव भी न हुए हुए जन्मते अरु मरते हैं ॥ ६८ । १९५ ॥

यथा मायामयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च । तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥ ६९ । १९६ ॥

६९ । १९६ हे सौम्य ! [अब मायामय जीव के अरु निर्मितक जीवके भेदके जानने की इच्छावाले के प्रति कहते हैं] " यथा माया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च । तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च " (जैसे मायामय जीव उपजता है अरु मरता भी है, तैसे यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते ; अर्थात् । जैसे इन्द्रजालिक मायावियों की माया से । मायामय जीव जन्मताहै अरु मरता भी है, तैसेही प्रज्ञप्तिमात्र चैतन्य की माया से । जो कि वास्तव में है नहीं । यह । अण्डजादि । सर्व जीव उत्पन्न होते भी हैं अरु नहीं भी होते ॥ ६९ । १९६ ॥

यथा निर्मितको जीवो जायते म्रियतेऽपि वा । तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च ॥ ७० । १९७ ॥

७० । १९७ हे सौम्य ! " यथा निर्मितको जीवो जायते म्रियतेपि वा । तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च " (जैसे निर्माण किया जीव जन्मता भी है व मरता भी है, तैसे यह सर्व जीव होते भी हैं अरु नहीं भी होते ; ॥ अर्थात् जैसे मन्त्र औषध आदिक सामग्री से इन्द्रजाली आदिक मायावियों करके निर्माण किया जीव जन्मता भीहै अरु मरता भी है, तैसेही यह अण्डजादि सर्व जीव होते हैं नहीं भी होते । अर्थात् , ६८, ६९, ७०, इन तीन श्लोकों का तात्पर्यार्थ यह है कि, जैसे [संवित् कहिये चैतन्यरूप ज्ञान तिससे भिन्न अण्डआदिकों का परमार्थ करके सद्भाव के अभाव के अनुमान का जन्मादिक की प्रतीति से बाध होता नहीं, क्योंकि सद्भाव के अभाव हुए भी स्वप्नादिकों बिषे जन्मादि विकल्प के बाहुल्यता की प्रतीति है ताते । इस प्रकार , ६८, ६९, ७०, इन तीन श्लोकों के तात्पर्य को कहते हैं] स्वप्नमय मायामय अरु औषध आदि करके रचित अण्डजादि जीव जन्मते हैं अरु मरते हैं, तैसेही यह मनुष्यादिरूप जीव भी अविद्यमान हुएही चित्तकी कल्पनामात्रही हैं ॥ ७० । १९७ ॥

न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न विद्यते । एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते ॥ ७१ । १९८ ॥

७१ । १९८ हे सौम्य ! " न कश्चिज्जायते जीवः सम्भवोऽस्य न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद्यते " ' इसका कारण नहीं ताते कोई भी जीव जन्मता नहीं ' अर्थात् जिस करके [जो वादी ' जन्मादिक सत्य है, इस प्रकार मानता है तिसके प्रति पूर्व तृतीय प्रकरण के अन्त के श्लोक बिषे " न कश्चिज्जायते जीवः" इत्यादि कहा है तिस अर्थको पुनः स्मरण करावते हैं] इस (जगत्) का कारण नहीं, तिसही करके कोई भी जीव जन्मता (उपजता) नहीं । अरु " एतत्तदुत्तमं सत्यं यत्र किञ्चिन्न जायते " ' जिस बिषे कुछ भी जन्मता नहीं यह तिनके मध्य उत्तम सत्य है ' अर्थात् जिस सत्यरूप ' एक अद्वितीय ' ब्रह्म बिषे कुछ किञ्चिन्मात्र भी उपजता नहीं, यह उन पूर्व के ग्रन्थों बिषे उपायपने करके उक्त सत्यों के मध्य उत्तम सत्य है । इसका भावार्थ यह है कि ' व्यवहार बिषे सत्य विषय का अरु जीवों का जन्म मरणादिक स्वप्नादिकों के जीवोंवत् है ' अर्थात् जैसे स्वप्न बिषे जीवादिक अनेक पदार्थ उपजते विनशते हैं तैसेही यह जाग्रत् के जीवादिकों को कल्पनामात्रही जानना ' इस प्रकार पूर्व के तीन श्लोकों बिषे कहा, परन्तु " न कश्चिज्जायते जीवः" ' कदापि कोई भी जीव जन्मता नहीं ' यह परमार्थ से जो सत्य है ॥ इस श्लोक का अर्थ पूर्व तृतीय प्रकरण के अन्त के श्लोक बिषे कहा है ॥ ७१ । १९८ ॥

चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम् । चित्तं निर्विषयं नित्यमसङ्गं तेन कीर्तितम् ॥ ७२ । १९९ ॥

७२ । १९९ हे सौम्य ! " चित्तस्पन्दितमेवेदं ग्राह्यग्राहकवद्द्वयम् । चित्तं निर्विषयं नित्यमसङ्गं तेन कीर्तितम् " ' चित्तका स्फुरणरूपही यह ग्राह्य अरु ग्राहकवाला द्वैत, विषयरहित चित्त है तिस करके नित्य असंग कहा है ' अर्थात् [ज्ञानको, कल्पित दृश्य करके उपहित कहिये उपाधिवाले रूप करके दृश्यपना होने से, तिसका देखेहुए पदार्थों से भिन्न सद्भाव है नहीं, इस प्रकार स्वप्न के दृष्टान्त से कहा, अब वास्तव से ज्ञान को विषय से सम्बन्ध के अभाव से आत्माही ज्ञान है, इसप्रकार कहते हैं] चित्त जो मन तिसका स्फुरणरूपही यह ग्राह्य कहिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषय अरु ग्राहक कहिये इन्द्रिय, इनवाला द्वैतहै, अरु विषयरहित चित्त कहिये चैतन्य आत्मा है । तिसहेतु करके सो चित्त कहिये आत्म चैतन्यको नित्य असंग कहा है । इसका तात्पर्य यह है कि सर्व ग्राह्य अरु ग्राहकवाला चित्त का स्फुरणरूपही द्वैत परमार्थ से आत्माहीहै "आत्मैवेदं सर्वं" एतदर्थ सो चित्तसंज्ञक चैतन्य आत्मा निर्विषय है । अरु तिस निर्विषय होनेरूप हेतु करके तिसको नित्य असंग कहाहै " असङ्गो ह्ययं पुरुषः " ८ असंगही यह पुरुष है, यह बृहदारण्यउपनिषद के प्रमाण से । विषय सहित वस्तु का विषय बिषे संग कहिये आसक्ति होवे है अरु चित्तसंज्ञक आत्मा जिस करके अविषय है एतदर्थही असंग है इस युक्ति से आत्मा का असंगपना सर्वदा सिद्धही है । जैसे आकाश निराकार निरवयव अतिसूक्ष्म होने से जल घृत तैलादिक सर्व में व्याप्त हुआ भी जलादिक किसी पदार्थ अरु तिनके धर्मोंसाथ कदापि स्पर्शमात्र भी करता नहीं, तैसे आकाशसे भी महासूक्ष्म निराकार निर्विकार आत्मा आकाशादि सर्व में व्याप्तहुआ हुआ भी सदा असंगही है । ॥ ७२ । १९९ ॥

योऽस्ति कल्पितसंवृत्त्या परमार्थेन नास्त्यसौ । परतन्त्राभिसंवृत्त्या स्यान्नास्ति परमार्थतः ॥ ७३ । २०० ॥

७३ । २०० हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, जब निर्विषय होने करके चित्त जो चैतन्य ब्रह्म, तिसका असंगपना है, तब सो असंगपना सिद्ध होता नहीं, क्योंकि शास्ता कहिये शिक्षा का करनेवाला गुरु, शास्त्र अरु शिष्य । अर्थात् ' शास्ता, शास्त्र अरु शिष्य, इत्यादि । प्रमाता प्रमाणादिक विषय विद्यमानहैं ताते, । समाधान । यह दोष बने नहीं, क्योंकि " योऽस्तिकल्पितसंवृत्त्या परमार्थेन नास्त्यसौ " ८ जो कल्पित तिस करके हैं यह परमार्थ से है नहीं ; अर्थात् जो शास्त्र शास्तादि पदार्थ विद्यमान है, सो परमार्थ की प्राप्ति का साधन । उपाय । होने करके कल्पित जो व्यवहार तिस करके है । परन्तु यह शास्त्रादि पदार्थ परमार्थ से है नहीं । इसमें " ज्ञाते द्वैतं न विद्यते " ८ जानेहुए द्वैत है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं ? यह प्रथम प्रकरणके २५ वें श्लोक करके, उक्त वाक्य अनुकूल है। अरु [ननु, वैशेषिक वादी जो हैं सो द्रव्य से आदि लेके समवाय पर्यन्त षट्पदार्थों को परमार्थ से मानते हैं, अरु जब तैसे है तब चैतन्य को असंगपना कैसे है, । तहां ,समाधान, कहते हैं, । यहां यह अर्थ है कि वैशेषिक मतवादियों की परिभाषा से कल्पित व्यवहार के अनुसार से जो द्रव्य से आदि लेके समवाय पर्यन्त पदार्थ हैं सो परमार्थ से हैं नहीं, किन्तु व्यवहार सत्ता करके भासता है, अतएव चैतन्य आत्मा का असंगपना सर्वदा अविरुद्धही है ।] " परतन्त्राभिसंवृत्त्या स्या न्नास्ति परमार्थतः " ८ अन्य , शास्त्र के, व्यवहार से होय सो परमार्थ से नहीं ? अर्थात् जो अन्य वैशेषिकादि मतवादियों के शास्त्र के व्यवहार से होवे सो परमार्थ से निरूपण कियाहुआ नहीं। अतएव तिस करके असंग कहा है, इस प्रकार का जो हमारा कथन सो युक्तही है ॥ ७३ । २०० ॥

अजः कल्पितसंवृत्त्या परमार्थेन नाप्यजः । परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्त्या जायते तु सः ॥ ७४ । २०१ ॥

७४ । २०१ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, शास्त्रादिकनको व्यवहाररूपताके होनेसे " अज इति" ८ अजन्मा है ? यह । शास्त्रोक्त कल्पना भी व्यवहाररूपही होगी, । समाधान । तहां ऐसेही सत्यहै, यह कहते हैं " अजः कल्पितसंवृत्त्या परमार्थेन नाप्यजः " ८ कल्पितव्यवहार से ही अजन्मा है परमार्थ से अजन्माभी नहीं ? अर्थात् शास्त्रादिकों के कल्पित व्यवहारसेही अजन्मा है, ऐसा कहते हैं, अरु परमार्थ से तो अजन्मा भी नहीं । अरु " परतन्त्रोऽभिनिष्पत्त्या संवृत्त्या जायते तु सः " ८ अन्य शास्त्र की प्रसिद्धि से सो तो व्यावहारिक है, अरु जन्मता है, अर्थात् जिस करके [यहां यह अर्थ है कि, द्रव्यका अरु गुणादि पांच का जो लक्षण है, सो तिससे व्यावर्तक अपने लक्षण के संभव विना कल्पते नहीं । अरु तैसे हुए तिन तिनके लक्षण से तिनकी प्रतीति के हुए तिससे भिन्न की प्रतीति होवे है, अरु तिस भिन्न पदार्थ के औ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्षण से तिसकी प्रतीति के हुए तिससे व्यावृत्त (पृथक् किये) पदार्थ की प्रतीति होवे है । इस प्रकार परस्पर के आश्रयरूप दोष से कुछ भी वस्तु वास्तव से सिद्ध होती नहीं] अन्य परिणामवादियों के शास्त्र की प्रसिद्धि से । (अर्थात् अन्यों के शास्त्र बिषे जो परिणामरूप जन्म की प्रसिद्धि है तिसके निषेध से) । जो " आत्मा अजन्मा है " ऐसे कहा है सो तो व्यवहारसे है । अरु जिस करके अजन्मा है ताते जन्मरूप प्रतियोगी को व्यवहार करके सिद्ध होने से तिसका निषेधरूप अजन्मापना भी तैसाही है । यह अर्थ है । एतदर्थ " अजइति " अजन्मा है, इस प्रकारकी यह कल्पना भी परमार्थरूप विषयसे प्रवृत्त होती नहीं । [अजन्मापने आदिक व्यवहार करके उपलक्षित जो स्वरूपहै तिसका अकल्पितपना है, क्योंकि तिसको कल्पना का अधिष्ठानपना है ताते । अरु कल्पित शास्त्रादिकों को अकल्पित वस्तु के प्रमाज्ञान (प्रमाणजन्य ज्ञान) की अहेतुता नहीं, क्योंकि प्रतिबिम्बादिकों को बिम्बादेकों के प्रमाकी हेतुता सिद्ध है ताते, ऐसा जानना] इत्यर्थः ॥ ७४ । २०१ ॥

अभूताभिनिवेशोऽस्ति द्वयं तत्र न विद्यते । द्वयाभावं स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते ॥ ७५ । २०२ ॥

७५ । २०२ हे सौम्य ! । शङ्का । ननु, [ज्ञान को कल्पित शास्त्रादिकों से अन्यता (पृथक्ता) के हुए तिसको मिथ्या होनेसे अपुनरावृत्ति कहिये आवागमन से रहित मोक्षरूप फलकी साधनता होगी नहीं,] । समाधान । तहां कहते हैं " अभूताभिनिवेशोस्ति द्वयं तत्र न विद्यते । द्वयाभावं स बुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते " (असत् बिषे अभिनिवेश है तिस बिषे द्वैत विद्यमान नहीं, द्वैत के अभाव को जानके ही निमित्तसे रहित होता है सो नहीं ; अर्थात् जिस करके असत् कहिये मिथ्या ज्ञान का विषय संसार है, एतदर्थ असत्यरूप द्वैतबिषे केवल अभिनिवेश , कहिये आग्रह, है । अरु जिस करके तिस आत्मा बिषे मिथ्या आग्रहमात्र अरु जन्म का कारण द्वैत विद्यमान है नहीं, एतदर्थ जो पुरुष द्वैत के अभाव को जानके ही मिथ्या द्वैत के आग्रहरूप निमित्त से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रहित होता है सो जन्मता नहीं। अर्थात् मिथ्या ज्ञानरूप द्वैत प्रपञ्च के आग्रहरूप अभिनिवेश के सम्यक् अभाव हुएही मोक्ष है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ॥ ७५। २०२ ॥

यदा न लभते हेतूनुत्तमाधममध्यमान्। तदा न जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः ॥ ७६। २०३ ॥

७६। २०३ हे सौम्य! ["निर्निमित्तो न जायते" ८ निमित्त से रहित हुआ जन्मता नहीं? इस प्रकार जो पूर्व ७५ वें श्लोक बिषे कहा तिस इस अर्थ को वर्णन करते हैं] जाति कहिये वर्ण अरु आश्रम को। अर्थात् ब्राह्मणादि वर्ण अरु ब्रह्मचर्यादि आश्रम इन करके युक्त पुरुष के अर्थ विधान किये जे। शम दम अग्निहोत्रादि विहित कर्मरूप हेतु, सो फलाभिलाषासे रहित निष्काम अधिकारी पुरुषोंकरके अनुष्ठानकिये धर्म। अर्थात् धर्म अरु कर्म का इस प्रकार विचारहै कि कर्म जो शब्द है सो, नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त, अरु कामुक, अरु निषिद्ध इन पांचो प्रकार के कर्मों बिषे समान बर्तता है, परन्तु सर्व कर्म धर्म नहीं क्योंकि निषिद्ध आदि कर्मों को धर्मपना नहीं, ताते जिन सन्ध्या गायत्री अग्निहोत्रादिक कर्मों के न करने से प्रत्यवाय (पातक) होता है सो कर्म मुख्य (उत्तम) धर्म है, अरु जिन अश्वमेधादिक यज्ञरूप कर्म के न करने में प्रत्यवाय नहीं अरु करे तो फलकी प्राप्ति होय, ताते सो कामनाबाले के अर्थ होनेसे गौण (मध्यम) धर्म है, अरु अश्वमेधादि यज्ञ जो पूर्व राजर्षियों ने किये हैं सो बहुधा स्वर्गप्राप्ति की कामना से, वा महत् प्रायश्चित्त की कामना से किये हैं, अतएव यज्ञादिक कामुक कर्म गौण धर्म है, ताते निष्काम अधिकारी करके अनुष्ठान किये अग्निहोत्रादि कर्मरूप मुख्य धर्म। सो देव भावादिक उत्तम जन्म की प्राप्ति के प्रयोजनार्थ होने से केवल उत्तम है। अरु धर्म अधर्म मिश्रित रूप कर्म। अर्थात् यहां धर्म अधर्म को मिश्रित कहा है तिस करके कुछ अश्वमेधादि धर्म अरु ब्रह्महत्यादि अधर्म का समुच्चय नहीं कहा, किन्तु कामना से रहित जो केवल उत्तम अग्निहोत्रादि धर्म, अरु तिनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपेक्षा कामुक कर्मरूप अधर्म तिनका समुच्चय धर्माधर्म अरु मिश्रित शब्द का अर्थ जानना । सो मनुष्यादिक मध्यम जन्म भाव की प्राप्ति के अर्थ होनेसे, मध्यम है । अरु । जो निषिद्धाचरण हैं सो तिर्यगादि अधमयोनि की प्राप्ति का निमित्त होने से अधर्मरूप प्रवृत्ति विशेष अधर्म है । अतएव " यदा न लभते हेतूनुत्तमाधममध्यमान् । तदा न जायते चित्तं हेत्वाभावे फलं कुतः " ८ जब चैतन्य उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को देखता नहीं, तब जन्मता नहीं अरु हेतु के अभाव हुए फल कहां से होगा ? अर्थात् । उक्त प्रकार के उत्तम मध्यम अधम हेतुओं को । जब चित्त कहिये चैतन्य उन अविद्या करके कल्पित उत्तम मध्यम अरु अधम हेतुओं को, सर्वकल्पना से रहित एक ही अद्वितीय आत्मतत्त्वको जानता हुआ, देखता नहीं । जैसे अविवेकी बालकों करके आकाश बिषे दृश्यमान जो मल (मलिनता) तिसको विवेकी पुरुष देखता नहीं, तद्वत् तब देवादिक आकारों करके उत्तम मध्यम अरु अधम, कर्मों के फलरूप से जन्मता नहीं । अरु बीजादिक के अभाव हुए धान्य के वृक्षादिकोंवत् हेतुके अविद्यमान हुए फल उपजता नहीं, एतदर्थ हेतु के अभाव हुए फल कहांसे होवेगा किन्तु कहीं से भी नहीं ॥ ७६ । २०३ ॥

अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया । अजातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः ॥ ७७ । २०४ ॥

७७ । २०४ हे सौम्य ! [" तदा न जायते चित्तं " ८ तब चित्त जन्मता नहीं ? इस प्रकार अभी ७६ वें श्लोक बिषे कहा, सो कालपरिच्छेदकी प्रतीति से आगन्तुकताकी शङ्का करके निवारण करते हैं] " हेत्वभावे चित्तं नोत्पद्यत इति " ८ हेतु के अभाव हुए चित्त उपजता नहीं ? इस प्रकार पूर्व श्लोक बिषे कहा । पुनः तिस चित्त की अनुत्पत्ति किस प्रकारकी है सो अब कहते हैं " अनिमित्तस्य चित्तस्य याऽनुत्पत्तिः समाऽद्वया " ८ अनिमित्त चित्त की जो अनुत्पत्ति है सो सम अद्वैतरूप है ; अर्थात् परमार्थज्ञान दर्शन से निवृत्त हुआ है , धर्म अधर्म नाम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाला जो उत्पत्ति का निमित्त है सो, जिसका ऐसा जो चित्त सो अनिमित्तचित्त कहते हैं। तिस अनिमित्त चैतन्यकी जो मोक्षनामवाली अनुत्पत्ति है सो सर्वदा [जैसे रूपेकी कल्पना काल बिषे भी सीपीका अरूपापना स्वाभाविक है। अर्थात् अविवेकी पुरुष को लोभ के वश से जिस काल में सीपी बिषे रूपेकी भ्रान्ति होती है, तिस काल बिषे भी सीपी का जो अरूपापना है सो स्वाभाविक सिद्धही है। तैसेही जन्म की कल्पना कालबिषे भी चैतन्यरूप ज्ञान की निष्प्रपञ्च अद्वितीय ब्रह्मरूपता स्वाभाविकही है। अरु जन्म के भ्रम की निवृत्तिकी अपेक्षा से तो "तदा न जायते" ८ तब जन्मता नहीं ७ इस प्रकार कहा। अरु यह ,सर्वदा, इस पद करके सूचित करते हैं। केवल मोक्षावस्थावाले चैतन्य काही अजन्मापना होय ऐसा नहीं, किन्तु घटादिक उपहित चैतन्यको भी अजन्मापना है, इस अभिप्राय से यहां ,सर्व अवस्था बिषे, इस प्रकार कहा। अरु चैतन्य के सर्वही प्रतिबिम्ब को अपने बिम्ब के तुल्य ब्रह्मरूपता है ताते। इस हेतु के अभिप्राय से यह अनुत्पत्ति अद्वैतरूप कही है] सर्वावस्था बिषे सम कहिये विशेष रहित अरु अद्वितीय है। [सर्व द्वैत को चैतन्य का दृश्य होने करके मिथ्यात्व होने से, अरु नित्य सिद्ध परिपूर्ण चैतन्यनामक स्फूर्ति को जन्मका असंभव है ताते, तिस की जो अनुत्पत्ति है सो उक्त लक्षणवाली युक्तही है] अरु "अजातस्यैव सर्वस्य चित्तदृश्यं हि तद्यतः" ८ जन्मरहित चित्त का सर्व दृश्यही है ७ अर्थात् जिस करके सम्यक् ज्ञानसे पूर्व भी सो द्वैत अरु जन्मचित्त (चैतन्य) का दृश्यही है। एतदर्थ निमित्त रहित अद्वैतरूप चैतन्यकी जो अनुपपत्ति सो सम अरु अद्वैतही है। अरु सो अनुत्पत्ति पुनः कदाचित् होता है, इस प्रकार नहीं, वा कदाचित् होता नहीं, इस प्रकार नहीं, किन्तु चैतन्य आत्मा सर्वदा एकरूप एकरसही है "वह प्रत्यक् एकरसः" इत्यर्थः ॥ ७७ । २०४ ॥

बुद्ध्वा निमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन्। वीतशोकं तथा काममभयं पदमश्नुते ॥ ७८ । २०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

७८ । २०५ हे सौम्य ! [" द्वयाभावं सबुद्ध्यैव निर्निमित्तो न जायते " ८ सो द्वैतके अभावको जानके निमित्तसे रहित हुआ जन्मता नहीं ? इस प्रकार पूर्व ७५वें श्लोक बिषे कहाहै, तिसको अब पुनः वर्णन करते हैं] " बुद्ध्वा निमित्ततां सत्यां हेतुं पृथगनाप्नुवन् " ८ निमित्त रहित सत्ताको जानके हेतुको पृथक् ग्रहण करता हुआ ? अर्थात् उक्त प्रकार की युक्ति करके जन्म का निमित्त जो द्वैत तिस के अभाव हुए, निमित्तरहित परमार्थरूप सत्ता को जान के धर्मादिक कारणरूप हेतुको देवादिक योनिकी प्राप्ति के अर्थ भिन्न ग्रहण करताहुआ । अर्थात् बाह्य विषयों की इच्छा से रहित हुआ । " वीतशोकं तथा काममभयं पदम श्नुते " ८ विगतशोक काम से रहित अभयपदको प्राप्त होताहै ? अर्थात् देवादि योनि के प्रापक जे उक्त धर्मादिक तिनको अग्रहण करता हुआ, अरु कामसे रहित विगत शोक हुआ । अर्थात् अविद्यादि कारण कार्य से रहित हुआ । अभय पद को प्राप्त होता है । पुनः जन्म को पावता नहीं । अर्थात् यहां जो कहा कि पुनर्जन्म को पावता नहीं सो जिन अविवेकियोंकी दृष्टि से आत्मा जन्मताहै तिनकी दृष्टिकी अपेक्षा से कहा है, नतु आत्मा तो सदा अजन्मा एकही है ॥ ७८ । २०५ ॥

अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशे तत्प्रवर्तते । वस्त्वभावं सबुद्ध्यैव निःसङ्गं विनिवर्तते ॥ ७९ । २०६ ॥

७९ । २०६ हे सौम्य ! [। जब ऐसे है तब । उक्त प्रकार के पद की प्राप्ति सदाही है, यह शङ्का करके कहते हैं] " अभूताभिनिवेशाद्धि सदृशे तत्प्रवर्तते " ८ अभूत अभिनिवेश से सदृश बिषे सो प्रवर्त होता है ? अर्थात् जिस करके मिथ्या द्वैत बिषे द्वैतके सद्भावका निश्चयरूप जो मिथ्या आग्रह है, तिस अविद्यात्मक व्यामोहरूप मिथ्या अभिनिवेश कहिये आग्रह से सदृश कहिये तिसके अनुसारी, वस्तु बिषे सो चित्त प्रवर्त होता है । एतदर्थ " वस्त्वभावं सबुद्ध्यैव निःसङ्गं विनिवर्तते " ८ सो वस्तु के अभाव को जानके ही निःसंग हुआ निवृत्त होता है ? अर्थात् सो पुरुष तिस द्वैतरूप वस्तु के अभाव को सम्यक्प्रकार जानकेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

। अर्थात् जब जानता है तब । अपना चित्त जैसे तिस मिथ्या अभिनिवेश के विषय से निःसंग । कहिये निरपेक्ष, हुआ निवृत्त होता है, तैसे तिस की निवृत्तिके अनुसारी होता है ॥ ७६ । २०६ ॥

निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चला हि तदा स्थितिः ।
विषयः सहि बुद्धानां तत् स्वाम्यमजमद्वयम् ॥ ८० । २०७ ॥

८० । २०७ हे सौम्य ! "। निवृत्तस्याप्रवृत्तस्य निश्चलाहि तदा स्थितिः । विषयः स हि बुद्धानां तत्स्वाम्यमजमद्वयम् "। निवृत्त हुए अप्रवर्त्त भये की अचल ब्रह्मरूप स्थिति होती है, जाते वह बुद्धिमानों का विषय है सो समभाव अज अद्वैतहै ? अर्थात् यदि ऐसे (उक्त प्रकार) होय तदा द्वैतरूप विषयों से निवृत्त हुए, अरु अन्य विषय बिषे अभावके ज्ञानसे अप्रवर्त हुए चित्त (आत्मा) की चलन से रहित (अचल) स्वरूपही अद्वैत एकरस विज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थिति होती है । अर्थात् भेदवादियों करके कल्पित शास्त्रों का जो द्वैतभावरूप विषय तिस द्वैत-भावादिरूप विषयों से निवृत्त हुए, अरु अन्य शब्दादि विषयों बिषे तिन को भ्रान्तिरूप होनेसे तिनके अभावदर्शक यथार्थज्ञानसे तिन बिषे अप्र-वर्त्त हुए चित्त 'कहिये आत्मा, की यह निश्चल स्वरूपही । अर्थात् स्वरूपसेही जैसी है तैसी । निश्चल अद्वैत एकरस विज्ञानघन ब्रह्मरूप स्थिति होती है । अरु जिस करके सो मोक्षरूप आत्मा "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्" इत्यादि श्रुतिप्रमाण से, परमार्थदर्शी बुद्धिमानों का विषय है, एतदर्थ सो समभाव कहिये परम निर्विशेष वस्तु अजन्मा अरु अद्वैतरूप है ॥ ८० । २०७ ॥

अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् । सकृद्वि भातो ह्येवैष धर्मो धातुः स्वभावतः ॥ ८१ । २०८ ॥

८१ । २०८ हे सौम्य ! प्रश्न । पुनः भी यह सूक्ष्मदर्शी बुद्धिमान् पण्डितों का विषय ब्रह्मस्वरूप से स्थितिरूप मोक्ष कैसाहै ? तहां उत्तर कहते हैं "। अजमनिद्रमस्वप्नं प्रभातम्भवति स्वयम् "। अज है, निद्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से रहित है, स्वप्नरहित है, अरु आपही प्रकाशरूप होता है ; अर्थात् सो समभाव अजन्मा है, अरु निद्रा अरु स्वप्न से रहित है, अरु आपही प्रकाशरूप होता है, अन्य सूर्यादिक प्रकाशवानोंकी अपेक्षावाला नहीं, अर्थात् ज्ञानरूप स्वप्रकाश स्वभाववाला है " तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अरु " सकृद्विभातोह्येवैष धर्मो धातुः स्वभावतः " ; सर्वदा प्रकाशरूपही यह धर्म स्वभाव से धातु है ; अर्थात् सर्वदा प्रकाशरूपही यह इस लक्षणवाला आत्मनामक धर्म स्वभाव सेही धातु कहिये सर्वका धारण करनेवाला है वा धातु कहिये वस्तु के स्वभाव से युक्त प्रकारका है ॥ ८१ । २०८ ॥

सुखमाव्रियते नित्यं दुःखं विव्रियते सदा । यस्य कस्य च धर्मस्य ग्रहेण भगवानसौ ॥ ८२ । २०९ ॥

८२ । २०९ हे सौम्य ! प्रश्न । इस प्रकार कथन किया भी परमार्थतत्त्व लौकिक पुरुषों करके क्यों नहीं ग्रहण होता । तहां उत्तर कहते हैं " सुखमाव्रियते नित्यं दुःखं विव्रियते सदा । यस्य कस्य च धर्मस्य ग्रहणे भगवानसौ " ; जिस किस भी धर्म के ग्रहणसे सुख सदा आच्छादित करते हैं, दुःख सदा प्रकट करियेहै यह भगवान् ; अर्थात् तिस करके जिस किसभी द्वैतवस्तुरूप धर्म । कहिये पदार्थ, के ग्रहण के आग्रह से । । अर्थात् द्वैतरूप वस्तु कुछ है इस प्रकारके आग्रह से । सुख जो हैं सो सदा श्रम विना ही आच्छादन करते हैं । अर्थात् उक्त प्रकार के असत् द्वैतरूप वस्तु के आग्रहरूप आवरण करके सुख स्वरूप जो आत्मा है तिसको निरन्तर विना ही श्रम के आच्छादन करते हैं । अरु तिस सुख बिषे । उक्त प्रकार का । आवरण जो है, सो अपनी निवृत्ति के अर्थ अद्वैत के ज्ञानके निमित्त । साधन । कोही इच्छता है, अन्य प्रयत्न की अपेक्षा करता नहीं । अरु दुःख जो है सो सदा प्रकट करते हैं, क्योंकि परमार्थ का ज्ञान अतिदुर्लभ है ताते । अर्थात् यावत् यह पुरुष अपने दुःखों को आचार्य के समीप जाय प्रकट कहता नहीं अरु आचार्य उसको दुःखी देखता नहीं तावत् उसको दुःखकी समूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवृत्ति के अर्थ तत्त्वज्ञान उपदेश करता नहीं, अतएव तत्त्वज्ञान को अतिदुर्लभ जानके दुःखको सदा प्रकट करते हैं। तिस हेतु से यह भगवान् 'कहिये सर्व करके पूजनेयोग्य' अद्वैतरूप आत्मदेव, वेदान्तशास्त्र अरु आचार्यों करके अनेक प्रकार से कथन कियाहुआ भी जानने को शक्य नहीं। क्योंकि "आश्चर्यो यस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा" ८ इस आत्मा का कहनेवाला आश्चर्यरूपहै, अरु प्राप्त होनेवाला कुशल है, यह श्रुतिके प्रमाणसे आत्मदेवका वक्ता श्रोता आश्चर्यवत्है॥८२।२०९॥

अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्ति वा पुनः।
चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः॥ ८३। २१०॥

८३। २१० हे सौम्य! "अस्तिवानास्ति" ८ है वा नहीं है, इत्यादिक 'सूक्ष्म विषयवाले बुद्धिमान् पण्डितोंके भी आग्रहसे जब भगवान् परमात्मा के आवरणही है तब मूढ़जनों की बुद्धि को आवरण है तिस में क्या कथन है, इस प्रकार के अर्थको देखावतेहुए कहते हैं "अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्तीति नास्ति वा पुनः, चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः" ८ है, नहीं है, है नहीं है, नहीं है पुनः नहीं है, ऐसे। अरु सत् असत्भाव जो है सो स्थिर अस्थिररूपहै ताते इन चल, स्थिर उभयरूप अरु अभावों करके बालक आवरण करतेही हैं; अर्थात् "आत्मा देहादिकों से भिन्नहै, इस प्रकार कोई एक वैशेषिकादि मतवादी जानते हैं। अरु आत्मा देहादिकों से तो भिन्न है परन्तु बुद्धि से भिन्न नहीं। इस प्रकार अन्य क्षणिकवादी जानता है। अरु आत्मा है भी अरु नहीं भी है, इस प्रकार अन्य जो अर्ध क्षणिकवादी सत्य अरु असत्य का कहनेवाला दिगम्बर जानता मानता कहता है। अरु आत्मा नहीं है पुनः नहीं है, इस प्रकार हठपूर्वक अत्यन्त शून्यवादी मानता है [यहां यह अर्थ है कि अनित्य घटादिकों से सुखादि आकार परिणामवाला होने करके, विलक्षण होनेसे अस्तिभावरूप जो यह प्रमाता कहा सो चल अरु सोपाधिक हुआ परिणामी है] तिनमें अस्ति मात्र जो है जो चल, कहिये अस्थिर, है। क्योंकि घटादि अनित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्तुओंकरके विलक्षणहै ताते । अरु नास्तिभाव जोहै सो स्थिरहै क्योंकि सदा निर्विशेष निरुपाधि है ताते अरु सदसद्भाव जो है सो स्थिर अरु अस्थिर, उभयरूप है । अरु स्थिर अस्थिर विषय हैं, सो अभाव है । तिन इन चल अरु स्थिर उभयरूप अरु अभाव करके सर्व भी सत् अरु असत् वादियों का वादीरूप बालक कहिये अविवेकी भगवान् (प्रत्यगात्मा) को आच्छादन करताही है । अरु यद्यपि वो वादी पण्डित है, तथापि परमार्थतत्त्व के अबोध से उक्त प्रकार के, बालकही हैं । तब जो स्वभावही से मूढ़ पुरुष हैं सो बालक कहिये परमार्थतत्त्व के विवेक से शून्य होय इसमें क्या आश्चर्यहै । इत्यभिप्रायः ॥ तथा च " नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम् " ॥ ८३ । २१० ॥

कोट्यश्चतस्रएतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृतः । भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्वदृक् ॥ ८४ । २११ ॥

८४ । २११ हे सौम्य ! । प्रश्न । पुनः जिसके सम्यग्ज्ञान करके पुरुष, अबालक, कहिये विवेकी बुद्धिमान् पण्डित, होते हैं ऐसा जो परमार्थतत्त्व । प्रत्यगात्मा । सो कैसा है ? तहां, उत्तर, कहते हैं " कोट्यश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृतः " ? जिनके आग्रह से सदा आवृत है, चार कोटियां हैं तिन करके ? अर्थात् जिन कोटियों के प्राप्ति के निश्चयरूप ग्रहणों से । अर्थात् आग्रह, हठ, विशेष से । आत्मा सदा आवृत, कहिये ढका हुआ, है । अरु वे प्रसिद्ध " अस्ति नास्ति, इति " ? है अरु नहीं है ? इत्यादिक प्रकारसे कथन करी हुई वादियों करके कल्पित शास्त्रों के निर्णय से निरूपण करने योग्य चार कोटियां, कहिये पक्ष, हैं । अरु " भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्वदृक् " ? भगवान् स्पर्शरहित जिसने देखा है सो सर्वदृक् (द्रष्टा) होता है ? अर्थात् तिन वादियों की इन " अस्ति नास्ति " इत्यादि चार कोटियों से । अर्थात्, अस्ति, नास्ति, निर्विशेष, विशेष, इन चार कोटियों से । जो भगवान् (प्रत्यगात्मा) स्पर्शरहित । अर्थात्, अस्ति, नास्ति, भावादिकों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से रहित । है जिस । मुनि कहिये वेदान्तशास्त्र के मनन बिषे कुशल पुरुष ने देखा (साक्षात् यथार्थ अनुभव किया) है सो उपनिषदों का वेत्ता पुरुष । अर्थात् मुख्यता करके उपनिषद्ही वेदान्त है । सर्वदृक् कहिये सर्वज्ञ, परमार्थदर्शी बुद्धिमान् पण्डित होताहै ॥ क्योंकि "मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इद ँ सर्वं विदितम्" इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से जो सर्वाधिष्ठान प्रत्यगात्माको सम्यक्प्रकार जानता है सो पण्डित सर्वज्ञ होता है । तिससे इतर सर्वमायिक सर्वज्ञता है, इस प्रकार जानना ॥ ८४ । २११ ॥

प्राप्य सर्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम्। अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते ॥ ८५ । २१२ ॥

८५ । २१२ हे सौम्य ! "प्राप्य सर्वज्ञतां कृत्स्नां ब्राह्मण्यं पदमद्वयम् । अनापन्नादिमध्यान्तं किमतः परमीहते" सम्पूर्ण सर्वज्ञता को पायके अद्वैत अरु आदि मध्य अन्तको प्राप्तहुए अरु ब्रह्मभावरूप पदको पायके इसके पश्चात् क्या चेष्टा करता है, कुछ भी नहीं, ? अर्थात् सो ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण, इस उक्तप्रकार की समस्त सर्वज्ञता को पायके अद्वैत, अरु 'आदि मध्य अन्त कहिये उत्पत्ति स्थिति अरु लय' इनको अप्राप्त होयके, अरु "एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य" यह नित्य महिमा ब्राह्मण की है ? इस बृहदारण्यकी श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्मभावरूप पद को पायके इस सर्वोत्कृष्ट आत्मलाभ के । कि "आत्मलाभान्न परं विद्यते" इत्यादि प्रमाण से जिस लाभसे पर (श्रेष्ठ) अन्य लाभ विद्यमान नहीं । पश्चात् क्या निष्प्रयोजन चेष्टा करता है, । अर्थात् साक्षात् आत्मज्ञान होनेके पश्चात् सो विद्वान् क्या निष्प्रयोजन कर्मादिकों में प्रवर्त्त होता है । किन्तु कदापि वृथा चेष्टा करता नहीं क्योंकि "नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेन कार्यं न विद्यते" इत्यादि गीतास्मृति के प्रमाण से उसको कर्मों से कुछ भी अर्थ नहीं, ताते उसको कुछ भी कर्तव्यता विद्यमान है नहीं । अर्थात् उक्त प्रकारके आत्मलाभी को कुछभी कर्तव्य नहीं ॥ ८५ । २१२ ॥

विप्राणां विनयो ह्येष शमः प्राकृत उच्यते । दमः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्च्छमं व्रजेत् ॥ ८६ । २१३ ॥

८६ । २१३ हे सौम्य ! [" यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति " ८यावत् जीवता रहे तावत् अग्निहोत्र को करे> इत्यादि श्रुति को अविद्वान् को विषय करनेवाली होनेसे, विद्वान् (आत्मज्ञानी) को अग्निहोत्रादि कर्म कर्तव्य नहीं, इस प्रकार कहा] अब तिस विद्वान् को भी शमदमादिक की विधि से कर्तव्य है, यह शङ्का करके कहते हैं,। यहां यह अर्थ है कि ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को यह विनय स्वाभाविक है, ताते सो श्रुति की आज्ञा के अधीन कर्तव्यता को सम्पादन करता नहीं अरु शमभी स्वाभाविक है ताते श्रुति की आज्ञा से करता नहीं । अरु दम भी स्वाभाविक होनेसे श्रुति की आज्ञा को इच्छता नहीं । अर्थात् शमदमादिक जो साधन है सो सम्यक् आत्मज्ञान की प्राप्ति से पूर्व जिज्ञासावस्था में " शान्तो दान्त उपरतितितिक्षुसमाहितो भूत्वा " इत्यादि श्रुति आज्ञा प्रमाण कर्तव्य है अरु जब उन साधनों करके अन्तःकरण की शुद्धिद्वारा सम्यक्ज्ञान होता है, तब वह पूर्व किये शमादिक साधन स्वभावभूत होने से वह विद्वान् साधनप्रवर्तक श्रुति आज्ञाको इच्छता नहीं । इस प्रकार कूटस्थरूप आत्मस्वरूप का जाननेवाला विद्वान् पुरुष सर्वविकार से रहित ब्रह्मस्वरूप से स्थित होता है " ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति "] " विप्राणां विनयो ह्येष शमः प्राकृत उच्यते । दमः प्रकृतिदान्तत्वादेवं विद्वाञ्च्छमं व्रजेत् " ८ ब्राह्मणों का विनय है सोई स्वाभाविक शम कहते हैं, अरु दम भी यही है स्वाभाविक दम होनेसे ऐसे विद्वान् शम को पावता है ? अर्थात् ब्राह्मणों (ब्रह्मवेत्तों) का जो यह स्वाभाविक आत्मस्वरूप से स्थितिरूप विनय है, यह विनय है । अरु यहही विनय स्वाभाविक शम कहते हैं । अरु दम भी यही है, क्योंकि स्वभाव से शान्तरूप होने से स्वाभाविक दम करके युक्त है ताते । ऐसे उक्त प्रकार का स्वभाव से शान्त ब्रह्म का जाननेवाला विद्वान् ब्रह्मस्वरूप स्वाभाविक शान्तिरूप शम को पावता है । अर्थात् सम्यक् आत्मवेत्ता विद्वान् की जो स्वरूप स्थिति है सोई

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शमदमादि हैं, क्योंकि आत्मा स्वभाव से ही शम दमादिरूपहै ताते, सो विद्वान् भी तैसाही है ॥ ८६ । २१३ ॥

स वस्तु सोपलम्भं च द्वयं लौकिकमिष्यते । अवस्तु सोपलम्भं च शुद्धं लौकिकमिष्यते ॥ ८७ । २१४ ॥

८७ । २१४ हे सौम्य ! [इस प्रकार परमत के निराकरण द्वारा आत्मतत्त्व निर्धार किया । अब अपनी प्रक्रिया से तीन अवस्था के कथन द्वारा भी तिस आत्मतत्त्व का निर्धार करने को प्रथम दोनों अवस्था का कथन करते हैं] ऐसे (उक्त प्रकार) परस्पर विरुद्ध होनेसे संसार के कारण अरु रागद्वेषरूप दोषों के आश्रय वादियों के सिद्धान्त है, एतदर्थ सो मिथ्याज्ञातरूपही है, इस प्रकार तिनकी युक्तियों सेही देखायके, अरु उक्त चार कोटियों से रहित राग द्वेषादिक दोषों का अनाश्रय स्वभाव से ही शान्त अद्वैतसिद्धान्त ही सम्यक्ज्ञान है , यह निर्णय यहां पर्यन्त समाप्त किया । अब [यहां यह अर्थ है कि शिष्य करके साधनेयोग्य जे आरोपदृष्टि तिसको आश्रयकरके जाग्रदादि पदार्थ के शोधनपूर्वक जों बोध का प्रकार सो अपनी प्रक्रिया है । ताते तिसही आत्मतत्त्व के लखाने के अर्थ (परायण) शेष ग्रन्थहै] अपनी प्रक्रिया से आत्मतत्त्व लखाने के अर्थ अवशेष रहे ग्रन्थ का आरम्भ है, [जो प्रातिभासिक अरु व्यावहारिकरूप स्थूल पदार्थों का समूह, सूर्यादि देवता के अनुग्रह करके युक्त इन्द्रियों करके जानाजाय व जानते हैं सो जाग्रदवस्था है] सत् , कहिये स्थूल, वस्तु करके सहित जो वर्तमान होवे ऐसा जो व्यवहार, तिसको सवस्तु कहते हैं " सवस्तु सोपलम्भश्च द्वयं लौकिक मिष्यते " सवस्तु अरु सोपलम्भरूप , शास्त्र , द्वैतलौकिक प्रसिद्ध है; अर्थात् स्थूल वस्तु करके वर्तमान होय ऐसा जो व्यवहार तिसको सवस्तु, कहते हैं । अरु तैसेही उपलम्भ , कहिये प्रतीति, तिस करके सहित जो वर्तमान होवे तिसको , सोपलम्भ , कहते हैं । ऐसा जो सवस्तु अरु सोपलम्भरूप शास्त्रादिक सर्व व्यवहार का विषय ग्राह्य अरु ग्राहकरूप द्वैतलौकिक । अर्थात् लोक बिषे प्रसिद्ध जाग्रदवस्था ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऐसे लक्षणवाला जाग्रत् वेदान्त बिषे अङ्गीकार कियाहै [बाह्य इन्द्रियन का किया जो व्यवहार, सो संवृत्ति, शब्द का अर्थ है । सो भी स्थूल पदार्थोंवत् स्वप्न बिषे होते नहीं , तैसे होने से बाह्य इन्द्रियों के विलय हुए जाग्रत् की वासना से मन का तिन तिन पदार्थों के आभास रूप आकार से भासना सो ,स्वप्न, शब्द का अर्थ है] । अरु " अवस्तु सोपलम्भञ्च शुद्धं लौकिकमिष्यते " ' अवस्तु अरु सोपलम्भरूप शुद्ध लौकिक अङ्गीकार करते हैं ' ; अर्थात् स्थूल व्यवहार के भी अभाव से अवस्तु रूप, अरु प्रतीति सहित वस्तुवत् असत् वस्तु बिषे भी प्रतीति होवे है । तिस प्रतीति करके सहित वर्तमानहै, एतदर्थ , सोपलम्भ, है । ऐसा अवस्तु अरु सोपलम्भरूप शुद्ध । अर्थात् स्थूल जाग्रत् से केवल सूक्ष्म । लौकिक । अर्थात् सर्वप्राणियों को साधारण (सम) होने से लोक बिषे प्रसिद्ध स्वप्न । है इसप्रकार अङ्गीकार करते हैं ॥ ८७ । २१४॥

अवस्त्वनुपलम्भञ्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् । ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम् ॥ ८८ । २१५ ॥

८८ । २१५ हे सौम्य ! " अवस्त्वनुपलम्भञ्च लोकोत्तरमिति स्मृतम् " ' अवस्तु अरु अनुपलम्भ, लोकोत्तर है ऐसे जान्या है ' ; अर्थात् अवस्तु , कहिये स्थूल अरु सूक्ष्म वस्तुरूप विषयों से रहित, अरु अनुपलम्भ , कहिये सर्वज्ञानों से रहित, अर्थ यह जो ग्राह्य अरु ग्रहण से जो रहित है सो लोकोत्तर है । अर्थात् उक्त जाग्रत् अरु स्वप्नरूप लोक से पीछे होनेवाली जो सुषुप्ति अवस्था तिसको लोकोत्तर कहते हैं । इस प्रकार जान्या है, अतएव । तिस सुषुप्ति को लोकातीत कहते हैं । अरु जिस करके ग्राह्य अरु ग्रहण का विषयही लोक है, तिस के अभाव से सर्व प्रवृत्ति का बीज सुषुप्ति अवस्था है, इस प्रकार शास्त्रवेत्ता पुरुषों को प्रसिद्ध है । अरु " ज्ञानं ज्ञेयञ्च विज्ञेयं सदा बुद्धैः प्रकीर्तितम् " ' ज्ञान अरु ज्ञेय, अरु विज्ञेय सदा बुद्धिमानोंने कहा है ' ; अर्थात् उपाय सहित परमार्थ तत्त्व लौकिक, शुद्धलौकिक, अरु लोकोत्तर, इस क्रम करके जिस ज्ञान से जानिये है, सो ज्ञान उक्त इन तीन ज्ञेयरूप है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि इस ज्ञान से भिन्न ज्ञेय का असम्भव है ताते। अरु सर्ववादियों करके कल्पित वस्तु के इन्हीं तीनों विषे अन्तरभाव होनेसे, विशेष करके जाननेयोग्य परमार्थरूप सत्य एकतुरीयनामवाला अद्वैत अजन्मा आत्मतत्त्वही सदा परमार्थदर्शी ब्रह्मवेत्ता पण्डितों ने कहा है " ज्ञेयं यत्तत् प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते " इत्यादि गीतोक्त भगवद्वाक्य प्रमाण से सर्व ब्रह्मवेत्ता पण्डितों ने अपने शिष्य मुमुक्षुओं प्रति विशेष करके जानने योग्य वस्तु एक तुरीयनामवाला आत्मतत्त्वही कहा है। अतएव सर्व जिज्ञासुओं को आत्मज्ञानार्थ पुरुषार्थ कर्तव्य योग्य है ॥८८।२१५॥

ज्ञाने च त्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम्। सर्वज्ञताहि सर्वत्र भवतीह महाधियः ॥ ८९। २१६ ॥

८९। २१६ हे सौम्य! [" आत्मनि विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति " ८ आत्मा के जानते सन्ते सर्व यह जाना जाता है ?। इस श्रुति की जो प्रतिज्ञा है सो उक्तवस्तु (आत्मा) के ज्ञानहुएही सिद्ध होती है, इस प्रकार कहते हैं] " ज्ञाने च त्रिविधे ज्ञेये क्रमेण विदिते स्वयम्, सर्वज्ञता हि सर्वत्र भवतीह महाधियः " ८ ज्ञान बिषे अरु तीन प्रकार के ज्ञेय बिषे क्रम करके स्वयं (आत्मा को) जाने हुए, महाबुद्धिमान् पुरुष को इस लोक बिषे सर्वत्र सर्वज्ञता ही होती है ?। अर्थात् लौकिकादिक विषयवाले ज्ञान बिषे, अरु लौकिकादिक तीन प्रकार के ज्ञेय बिषे, तहां प्रथम लौकिक । जाग्रत् । स्थूल है, तिसके अभाव हुए पश्चात् शुद्ध लौकिक । स्वप्न । है, तिसके अभाव हुए पश्चात् लोकोत्तर । सुषुप्ति । है। इस प्रकार ही क्रम करके तीनों स्थान के अभाव से, परमार्थ सत्य तुरीय अज अद्वैत अभय आत्मतत्त्व के जाने हुए सर्वलोक से अतिशय । अलौकिक । वस्तु को विषय करनेवाली सूक्ष्म बुद्धि करके युक्त होनेसे । इस प्रकार जाननेवाला जो आत्मवेत्ता महाबुद्धिमान् पुरुष है तिसको इस संसार बिषे सर्वदा आत्मस्वरूपभूत ही सर्वज्ञता । कहिये सर्वरूप ज्ञानभाव, होती है, क्योंकि एक बार के जानेहुएही स्वरूप बिषे व्यभिचार का अभाव है ताते, ।। अर्थात् जैसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकबारही सम्यक् प्रकार रज्जु के जानेहुए पुनः उस बिषे सर्प जलधारादि भ्रान्तिरूप व्यभिचार होता नहीं तैसे ।। अरु जिस करके अन्यवादियों-वत् परमार्थ के ज्ञाता पुरुष को ज्ञानके उद्भव अरु तिरस्कार होता नहीं, एतदर्थ ,आत्मवेत्ता, विद्वान्को परिपूर्ण ज्ञानरूपता होवेहै ॥८९।२१६॥

हेयज्ञेयाप्यपाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः । तेषामन्यत्रविज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः ॥ ९० । २१७ ॥

९०। २१७ हे सौम्य ! [तीन अवस्था के ज्ञेयपने के कथन से तिनका परमार्थ से सद्भाव होवेगा, । यह शङ्का करके तिसका निषेध करते हैं] लौकिकादिकन के क्रम करके ज्ञेयपने के कथन से परमार्थ से अस्तिभाव की शङ्का होती है, । सो युक्त नहीं, इस प्रकार कहते हैं । त्यागने योग्य लौकिकादि, , जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन आत्मा बिषे असत्पने करके रज्जु बिषे सर्पवत् त्याग करने योग्य(हेय) है । अरु यहां उक्त चार कोटियों से रहित जो परमार्थतत्त्व सो ज्ञेय कहते हैं अरु बाह्य तीन एषणा से संन्यासी करके प्राप्त होने योग्य , पाण्डित्य, बाल्य, अरु मौन, इन नामवाले क्रमसे जे 'श्रवण, मनन, निदिध्यासनरूप साधन सो प्राप्त करने योग्य है । अरु राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोहादि जो कषायनामवाले दोष हैं सो पकावने को योग्य होने से पाक्य हैं ।। अर्थात् जैसे पाक किया अन्नादिक उदर बिषे विकार के हेतु वा अंकुर के उत्पादक होते नहीं, तैसेही शम दम क्षमा आर्जवता आदिरूप अग्नि करके सम्यक् प्रकार से पाक किये उक्त कषायादि दोष सो विद्वान् के बिषे आभासमात्र रहेहुए अपने अनर्थरूप अंकुर वा फल के उत्पादक होते नहीं ।। ताते " हेयज्ञेयाप्यपाक्यानि विज्ञेयान्यग्रयाणतः । तेषामन्यत्र विज्ञेयादुपलम्भस्त्रिषु स्मृतः " ९ हेयज्ञेय आप्य पाक्य उपायों करके जानने योग्य है। तिनका ज्ञेय से अन्यत्र उपलम्भ, तीन ठिकाने जान्या है ? अर्थात् उक्त सर्व हेय (त्याज्य) ज्ञेय (जाननेयोग्य) आप्य (पावनेयोग्य) पाक्य (पकावनेयोग्य) जो हैं सो संन्यासियों करके उपायन से जानने के योग्य हैं । अरु प्रथम से तिन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यादिकों का ज्ञेयते। (अर्थात् परमार्थ सत्य एक ब्रह्मरूप ज्ञेय को
ोड़िके) अन्य ठिकाने जो अविद्या की कल्पनामात्र उपलम्भ कहिये
ान है, सो (हेय, आप्य, अरु पाक्य, इन तीन बिषे भी ब्रह्मवेत्ता पुरुषों
जान्या है तिनके परमार्थ सत्यसे नहीं ॥ इत्यर्थः ॥ ९० । २१७ ॥

**प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्मा अनादयः । विद्यते
हि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन ॥ ९१ । २१८ ॥**

९१ । २१८ हे सौम्य ! [जो पूर्व कहा, अस्ति आदि चार कोटियों
रहित जो ज्ञेय (जानने योग्य) है सो परमार्थ तत्त्व है, तिसको
व स्पष्ट करते हैं] " (प्रकृत्याकाशवज्ज्ञेयाः सर्वे धर्मा अनादयः । वि
ते नहि नानात्वं तेषां क्वचन किञ्चन " (सर्व धर्म स्वभावसे आकाश-
त् हैं अरु अनादि हैं अरु जानने योग्य हैं तिनका नानात्व कहीं
ी कुछ भी विद्यमान नहीं (अर्थात् परमार्थ से तो सर्व धर्म ' कहिये
आत्मा ' स्वभाव से सूक्ष्म निरञ्जन अरु सर्वगतपने बिषे आकाशवत्
" आकाशवत्सर्वगतः स नित्यः " अरु अनादि ' कहिये व्यवधान
रहित नित्य हैं, इस प्रकार मुमुक्षुओं करके जानने योग्य हैं । अरु
नका नानात्व कहीं भी (अर्थात् देश काल अवस्थादिक किसी बिषे
(कुछ भी (अर्थात् अणुमात्र भी) विद्यमान नहीं (अर्थात्
क अद्वैत परिपूर्ण आत्मा बिषे एक अणुमात्र भी नानात्व नहीं ॥
ह अर्थ है ॥ ९१ । २१८ ॥

**आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चिताः । यस्यैवं
धृतिः क्षान्तिः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ ९२ । २१९ ॥**

९२ । २१९ हे सौम्य ! अब आत्माख्यधर्म की ज्ञेयता कहिये जा-
न की योग्यता, भी व्यावहारिकही है, पारमार्थिक नहीं, इस प्रकार
हते हैं । " (आदिबुद्धाः प्रकृत्यैव सर्वे धर्माः सुनिश्चिताः " (सर्व धर्म
भावसे ही आदि बिषे बुद्ध निश्चित स्वरूपवाले हैं (अर्थात् सर्व धर्म
कहिये आत्मा, स्वभावसे ही आदि बिषे बुद्धहै, (अर्थात् जैसे नित्य
आकाशस्वरूप है तैसेही नित्य बोधस्वरूप है अर्थात् नित्य निरन्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बोधरूप ही प्रकाशवाला है । अरु तिसका निश्चय अब करने का है ऐसा नहीं, अरु ऐसा है, ऐसे भी नहीं इस प्रकारके संशय युक्त स्वरूपवाले नहीं, किन्तु नित्य निश्चित स्वरूपवाले हैं "यस्यैवम्भवति क्षान्तिः सोऽमृतत्वाय कल्पते" । ६ जिसको ऐसे शान्ति होती है सो अमृतभाव के अर्थ समर्थ होता है ६ अर्थात् जिस करके सर्व धर्माख्य आत्मा बोधरूप निश्चित स्वरूपवाले हैं, ताते जिस मुमुक्षु को ऐसे उक्त प्रकार करके अपने अर्थ वा परके अर्थ सर्वदा बोधरूप निश्चय बिषे निरपेक्षतारूप शान्ति होती है । अर्थात् जैसे सूर्य अपने अर्थ अरु पर के अर्थ अन्य प्रकाश की अपेक्षा से रहित होता है, तैसे जिसको आत्मा बिषे सर्वदा बोध के कर्तव्यता की निरपेक्षारूप शान्ति होती है सो अमृतभाव, कहिये मोक्ष, के अर्थ समर्थ होता है ॥ इत्यर्थः ॥ ६२ । २१६ ॥

आदिशान्ताह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्वे धर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम् ॥ ६३ । २२० ॥

६३ । २२० हे सौम्य ! [अब विद्वान् मुमुक्षु की रुचि बढ़ावने के अर्थ अविद्वान् की निन्दा को दिखावते हैं] तैसे (उक्त प्रकार के) आत्मा बिषे शान्ति की कर्तव्यता भी है नहीं, इस प्रकार कहते हैं "आदिशान्ता ह्यनुत्पन्नाः प्रकृत्यैव सुनिर्वृताः । सर्वेधर्माः समाभिन्ना अजं साम्यं विशारदम्" । ६ सर्व धर्म आदिबिषे शान्त अनुत्पन्न हैं अरु स्वभाव से ही सम्यक् सुखरूप हैं अरु समानहैं अभिन्नहैं अरु जन्मरहित समभाव विशारदहैं ६ अर्थात् जिसकरके सर्व धर्म, कहिये आत्मा, आदि बिषे, कहिये नित्यही शान्त हैं, अरु अनुत्पन्न, कहिये अजन्मा, हैं अरु समान हैं अरु अभिन्न हैं । इस प्रकार जिस करके जन्मरहित समभाव, कहिये आत्मतत्त्व, विशारद, कहिये विशुद्ध है, ताते शान्ति वा मोक्ष कर्तव्य नहीं । अरु जिस करके नित्य एक स्वभाववाले आत्मा का कुछभी किया हुआ होता है नहीं एतदर्थ आत्मा को संसार दुःख की निवृत्ति वा सुख की उत्पत्ति क्रिया जन्य नहीं, किन्तु नित्यही सिद्ध है इत्यर्थः ॥ ६३ । २२० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा। भेदनिघ्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः॥ ९४। २२१॥

९४। २२१ हे सौम्य! [ऐसे, उक्त प्रकार, अविद्वान् नानात्वदर्शी की निन्दा को दिखायके, अब विद्वान् की प्रशंसा को प्रसारित करते हैं] जो पुरुष उक्त प्रकार के परमार्थतत्त्व के ज्ञाता हैं सोई लोक बिषे अकृपण (ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण) हैं "एतदक्षरं गार्गि विदित्वा अस्माल्लोकात्प्रेति स ब्राह्मणः"। अरु तिन अकृपण से अन्य तो सर्व कृपण हैं, इस प्रकार कहते हैं "वैशारद्यन्तु वै नास्ति भेदे विचरतां सदा। भेदनिघ्नाः पृथग्वादास्तस्मात्ते कृपणाः स्मृताः" द्वैतवादी भेद के अनुयायी हैं ताते तिनको कृपण जानते हैं, भेद बिषे सदा वर्तमान की विशुद्धि है नहीं? अर्थात् जिस करके, नानावस्तु है, इस प्रकार के कहनेवाले द्वैतवादी भेद के अनुयायी। अर्थात् संसार के अनुगामी। संसार के पीछेही चलनेवाले। हैं एतदर्थ तिनको कृपण तुच्छ जानते हैं वा जानने। अरु जिस करके उन अविद्याकल्पित द्वैत मार्गरूप भेद बिषे सर्वदा वर्तमान पुरुषों की विशुद्धि नहीं है, तिस करके उनका कृपणपना युक्तही है "एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वा अस्माल्लोकात्प्रेति सकृपणः" "मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इत्यभिप्रायः॥९४।२२१॥

अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यन्ति सुनिश्चिताः। ते हि लोके महाज्ञातास्तच्च लोको न गाहते॥ ९५। २२२॥

९५। २२२ हे सोम्य! जो यह परमार्थतत्त्व है सो अमहात्मा अपण्डित वेदान्त विचार से बाह्यहुए तुच्छ अल्पज्ञ अविवेकी पुरुषों करके जानने को अयोग्य है। अर्थात् उन भेदवादी अपण्डितों करके परमार्थतत्त्व (प्रत्यगात्मा) जानने के योग्य नहीं। इसप्रकार कहते हैं "अजे साम्ये तु ये केचिद्भविष्यन्ति सुनिश्चिताः। तेहि लोके महाज्ञातास्तच्च लोको न गाहते" जो कोई एक अज समभाव बिषे सम्यक् निश्चित होवेंगे, तब सोई महाज्ञानी है, अरु तिसको लोक विषय करता नहीं? अर्थात् जो कोई एक स्त्रीआदिक भी अजन्मा समभाव, कहिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समपरमात्मतत्त्व, बिषे, यह ऐसेही है, इस प्रकार जब सम्यक् निश्चय वाला होता है वा होवेंगे, तब सोई लोक बिषे महाज्ञानी । अर्थात् सर्व से अधिक साक्षात् तत्त्व को विषय करनेवाले ज्ञानवान् । हैं । अर्थात् सोई विज्ञान पुरुष है । "ज्ञानीत्वात्मैव मे मतं" अरु तिस तिनके जाने हुए परमार्थ तत्त्वरूप मार्ग को, अन्य सामान्य बुद्धिवाला लोक विषय करता नहीं, क्योंकि "सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतहितस्य च । देवामार्गेऽपि मुह्यन्ति ह्यपदस्य पदैषिणः ॥ शकुनीनामिवाकाशे गतिर्नैवोपलभ्यत, इत्यादि स्मरणात्" ८सर्वभूतों के आत्मारूप अरु सर्वभूतोंके हितरूप विद्वान् के मार्ग बिषे पद । पदचिह्न । को खोजते हुए देवता भी मोह को पावते हैं । जैसे आकाश बिषे पक्षियों की वा जल बिषे मीनादिकों की गति । खोज वा पादचिह्न । देखते (पावते) नहीं, तैसेही पावने योग्य पद से रहित पुरुष, परिपूर्ण ज्ञानवान् महात्मा की गति जाननेको शक्य नहीं । क्योंकि वो ज्ञानवान् आवागमन से रहित होने से गति (मार्ग) से रहित है । ताते "गतिरत्र नास्ति" इत्यादिक श्रुतियों के प्रमाण से ॥ ९५ । २२२ ॥

अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न क्रमते ज्ञानमसङ्गं तेन कीर्तितम् ॥ ९६ । २२३ ॥

९६ । २२३ हे सौम्य ! ["अजे साम्ये" ८अजन्मा समभाव है, इस प्रकार जो पूर्व ९५ वें श्लोक बिषे कहा, सो प्रमेय है, तिसको विषय करनेवाले निश्चयवाला प्रमाता है, अरु तिस प्रकार का निश्चय रूप ज्ञान प्रमाणहै । इस प्रकार वस्तु के परिच्छेद, कहिये भेद, के हुए तिन ज्ञानी पुरुष का महाज्ञानवान्पना कैसे है । यह शङ्का करके कहते हैं] । शङ्का । कैसे उनका महाज्ञानीपना है, । तहां, समाधान, कहते हैं "अजेष्वजमसंक्रान्तं धर्मेषु ज्ञानमिष्यते । यतो न क्रमतेज्ञानमसङ्गं तेन कीर्तितम्" ८अजन्मा धर्मों बिषे अजन्मा ज्ञान है न जाननेवाला अङ्गीकार करते हैं । जाते ज्ञान गमन करता नहीं ताते असंग कहा है, अर्थात् जिस करके सूर्य बिषे उष्णता अरु प्रकाशवत्, अजन्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहिये अचलधर्म कहिये आत्मा बिषे अजन्मा कहिये अचल ज्ञान अङ्गीकार करते हैं, क्योंकि आत्मा ज्ञानस्वरूप है ताते एतदर्थ अजन्मा ज्ञान अन्य अर्थ बिषे न जाननेवाला अङ्गीकार करते हैं। अरु जिस करके ज्ञान अन्य अर्थ बिषे गमन करता नहीं, तिसही कारण करके सो आकाश के तुल्य असंग है ॥ ९६ । २२३ ॥

अणुमात्रेऽपि वैधर्म्ये जायमानोऽविपश्चितः । असङ्गता सदा नास्ति किमुतावरणच्युतिः ॥ ९७ । २२४ ॥

९७ । २२४ हे सौम्य ! [कूटस्थरूप ब्रह्मही तत्त्व है, इस प्रकार अपने सिद्धान्ती के मत बिषे ज्ञान असंग सिद्ध होता है, इस प्रकार कहा। अरु मतान्तर बिषे पुनः अपनेको विषय करनेवाला होनेसे ज्ञान का असंगपना असंगत होताहै, इस प्रकार कहते हैं] "अणुमात्रेऽपि वैधर्म्ये जायमानोऽविपश्चितः। असङ्गता सदा नास्ति किमुतावरणच्युतिः" अणुमात्र भी विरुद्ध धर्मवाले अरु उत्पन्न होनेवाले बिषे अविवेकी को सदा असंगभाव नहीं तब आवरण का नाश क्या कहना है? अर्थात् याते अन्य वादियों के मत बिषे अणुमात्र कहिये अल्प रञ्चकमात्र, भी विरुद्ध धर्मवाले, अरु बाह्य वा अन्तर उत्पन्न होनेवाले वस्तु (पदार्थ) बिषे अविवेकी पुरुष को जब सदा (निरन्तर) असंग भाव नहीं है तब उनको बन्धरूप आवरण का नाश न होवे इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं ॥ ९७ । २२४ ॥

अलब्धावरणाः सर्वे धर्माः प्रकृतिनिर्मलाः । आदौ बुद्धास्तथामुक्ता बुद्ध्यन्तइति नायकाः ॥ ९८ । २२५ ॥

९८ । २२५ हे सौम्य ! जो कोई ऐसा कहे कि तिन वादियों को आवरण का नाश नहीं ऐसे कहनेवाले जो तुम सिद्धान्ती अनावरण वादी तिन, तुमने अपने सिद्धान्त बिषे आत्मारूप धर्मोंको आवरण अङ्गीकार किया, सो कथन बने नहीं, इस प्रकार कहते हैं "अलब्धावरणाः सर्वे धर्माः प्रकृतिनिर्मलाः" सर्वधर्म आवरण को अप्राप्त हैं अरु स्वभाव से निर्मल हैं; अर्थात् सर्व धर्म कहिये आत्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

। अर्थात् यहां आत्मा को सर्व शब्द करके जो बहुवचन है सो बुद्धादिरूप उपाधि को लेके हैं 'घटाकाशवत्, ऐसे जानना, अरु निरुपाधि आत्मा तो एकही है महदाकाशवत्' ऐसे जानना । अविद्यादिक बन्धनरूप आवरण को अप्राप्त 'कहिये बन्धनरहित, हैं । अरु स्वभाव से निर्मल 'कहिये सदा शुद्ध, हैं "शुद्धमपापविद्धम्" "। आदौ बुद्धास्तथामुक्ता बुद्धन्त इति नायकाः "। ' आदि बिषे बुद्ध हैं तैसे मुक्त हैं' ऐसे नायक जानते हैं ऐसे कहते हैं ' अर्थात् ' जैसे धर्माख्य आत्मा आवरणरहित शुद्ध है तैसे, आदिबिषे कहिये नित्य, बुद्ध ' कहिये बोध स्वरूप, है । अरु तैसेही नित्यमुक्तहै । जिस करके नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाववाले आत्मा हैं तातेही बन्धनरहित हैं, इसप्रकार पूर्वके "अलब्धावरणाः" इसपदसे सम्बन्धहै । अरु प्रश्न जब ऐसेहैं तब कैसे जानते हैं ? तहां 'उत्तर' कहतेहैं, जैसे नित्य प्रकाशरूपहुआ भी सूर्य प्रकाशता है, इस प्रकार कहते हैं, अथवा जैसे नित्य अचलहुए भी पर्वत नित्य ही स्थित होते हैं, इसप्रकार कहते हैं । तैसेही ये आत्मा नायक । अर्थात् जानने को समर्थ होने करके स्वामी । हुए भी अर्थात् बोधशक्ति युक्त स्वभाववाले हुए भी जानते हैं, इस प्रकार कहते हैं ॥ ९८ । २२५ ॥

क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः । सर्वे धर्मास्तथा ज्ञानं नैतद्बुद्धेन भाषितम् ॥ ९९ । २२६ ॥

९९ । २२६ हे सौम्य ! "क्रमते नहि बुद्धस्य ज्ञानं धर्मेषु तापिनः । सर्वेधर्मास्तथाज्ञानं नैतद्बुद्धेनभाषितम्" ' संतापवाले पण्डितन का ज्ञान धर्मों बिषे जाता नहीं, अरु सर्व धर्म भी अरु ज्ञान भी तैसे हैं ' अर्थात्, जिस करके सन्तापवाले 'कहिये सूर्य के तापवाले, आकाश के तुल्य भेद से रहित, वा पूजा करनेयोग्य बुद्धिमान् परमार्थदर्शी पण्डित का ज्ञान अन्य बिषयरूप धर्मों बिषे जाता नहीं, किन्तु जैसे सूर्य बिषे प्रकाश अभिन्नरूप से स्थित है, तैसे आत्मरूप धर्म बिषेही स्थित है, इस प्रकार अङ्गीकार करते हैं । ताते आत्मा बिषे मुख्यपना होनेके योग्य है । अरु सर्व धर्म ' कहिये आत्मा, भी तैसेही है अर्थात् ज्ञान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वतहीं आकाश के तुल्य होने करके अन्य अर्थ बिषे कोई भी जाते नहीं। अरु जो इस चतुर्थ प्रकरण के प्रथम श्लोक बिषे "ज्ञानेनाकाश कल्पेन" ८ आकाश के तुल्य ज्ञान से इत्यादिक कथन करने का आरम्भ किया था, सो यह आकाश के तुल्य रूपवाले परमार्थदर्शी पण्डितों का। ज्ञान आत्मा से। अभिन्न होने करके, आकाश के तुल्य ज्ञान अन्य किसी भी अर्थ बिषे जाता नहीं। अर्थात् जैसे आकाश की अवकाशता आकाश से अभिन्न होने करके अन्य किसी बिषे भी जाता नहीं, तैसे परमार्थदर्शी विद्वान् का ज्ञान आत्मा से अभिन्न होने करके अन्य किसी भी अर्थ बिषे जाता नहीं। तैसे धर्माख्य आत्मा है॥ इस रीति से आकाशवत्, अचल, अक्रिय, निरवयव, नित्य, अद्वितीय, असंग, अदृश्य, अग्राह्य, क्षुधादिकों से रहित ब्रह्मरूप आत्मतत्त्व है। क्योंकि "नद्रष्टुर्दृष्टिविपरिलोपो विद्यते"। ८ द्रष्टा की दृष्टि का लोप विद्यमान है नहीं? इस श्रुति के प्रमाण से। अरु, ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञाता, इनके भेद से रहित परमार्थ तत्त्व अद्वैत है। अर्थात् अद्वैतरूप आत्मतत्त्व से इतर ज्ञेय (जाननेयोग्य) वस्तु का अभाव है ताते जानेरूप ज्ञान का भी अभाव है अरु जब, ज्ञेय, ज्ञान का अभाव है ताते आत्मा बिषे ज्ञाता विशेषण का भी अभाव है, इस प्रकार विशेष विशेषण, अरु विशेष्यत्व के अभाव से एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्वही है। यह बुद्ध ने कहा नहीं। अरु यद्यपि बाह्यार्थ का निषेध अरु ज्ञानमात्र की कल्पनारूप अद्वैत वस्तु की समीपता कही है तथापि वह तो परमार्थ तत्त्वरूप अद्वैत वेदान्त बिषेही जानने के योग्य है॥ इत्यर्थः॥ ९९। २२६॥

दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्यं विशारदम्। बुद्धा पद्मनानात्वं नमस्कुर्मो यथाबलम्॥ १००। २२७॥

इति गौडपादीयकारिकायामलातशान्ताख्यंचतुर्थप्रकरणम्॥ ४॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतकारिकासहितमाण्डूक्योपनिषद्सम्पूर्तिमगात्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०० । २२७ हे सौम्य ! [चार प्रकरणों करके युक्त इस कारिका-रूप शास्त्र की आदिवत् अन्तबिषे भी परदेवतारूप तत्त्व को स्मरण करते हुए तिसके नमस्काररूप मङ्गलाचरण को सम्पादन करते हैं] शास्त्रकी समाप्ति बिषे परमार्थतत्त्व की स्तुत्यर्थ नमस्कार कहते हैं "दुर्दर्शमतिगम्भीरमजं साम्यं विशारदम् । बुद्ध्वा पदमनानात्वं नमस्कुर्मो यथाबलम्" । दुःख से देखने योग्य अतिगम्भीर अजन्मा समभावरूप विशुद्ध नानाभाव से रहित पद को जानके यथाबल तथा नमस्कार करते हैं ; अर्थात् दुःख से दर्शन के योग्य , कहिये "अस्ति नास्ति" है, नहीं है ? इत्यादि चार कोटियों से । जो वादियों करके कल्पित सापेक्षकहैं । रहित होनेसे अतिश्रम । सूक्ष्मबुद्धि करने । से जानने योग्य है, अरु एतदर्थही अतिगम्भीर , कहिये अल्पबुद्धिवाले पुरुषों करके महासमुद्रवत् दुःख से प्रवेश करने के योग्य, अरु अजन्मा समभाव-रूप विशुद्ध नानाभाव से रहित, ऐसे पद को जानके तिसरूप हुए हम तिस पद के अर्थ , परमार्थ से व्यवहार करने के अयोग्य को भी, माया से व्यवहार का विषय सम्पादन करके । अर्थात् जो वास्तव करके सर्व व्यवहारातीत एक अद्वैत निर्वाच्य परमार्थ तत्त्व है, तिस बिषे नमस्कार करने योग्य अरु नमस्कार करनेवाला अरु नमस्काररूप क्रिया इनकी कल्पना करके । जैसी सामर्थ्य है तैसे नमस्कार , विधान , करते हैं ॥ १०० । २२७ ॥

इति श्रीगौडपादाचार्यकृतकारिकाचतुर्थप्रकरण, भाषाभाष्य, समाप्तहुआ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाष्यकारश्रीशंकराचार्यकृतमङ्गलाचरणम् ॥

अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्ययोगादगति च गति मत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविधविषयधर्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि ॥ १ ॥

१ हे सौम्य ! अब भाष्यकार श्रीशंकराचार्य भी भाष्य की समाप्ति बिषे शास्त्र करके प्रतिपादन किये पर देवता के स्वरूप को स्मरण करके तिसके नमस्काररूप मङ्गलाचरण को आचरण करते हैं ॥ "अजमपि जनियोगं प्रापदैश्वर्ययोगादगति च गतिमत्ताम्प्रापदेकं ह्यनेकम् । विविध विषयधर्मग्राहिमुग्धेक्षणानां प्रणतभयविहन्तृ ब्रह्म यत्तन्नतोऽस्मि" ८ जो जन्म से रहितहुआ भी ऐश्वर्य के योग से प्राप्त होता हुआ, गति से रहित हुआ गतिमान्पने को प्राप्त होताहुआ अरु एक हुआ विविध प्रकार के विषयरूप धर्मों के ग्रहण करनेवाले विवेकहीन दृष्टिवाले को अनेकवत् भासता है, अरु जो ब्रह्म प्रणत के भय को नाश करता है तिसके अर्थ मैं नमस्कार करता हौं ? अर्थात् जो ब्रह्म जन्मादिक सर्व षड्भाव ; विकाररहित हुआ भी ८ अर्थात् वास्तव से कूटस्थ सिद्ध है तथापि ? सो अनिर्वचनीय अज्ञान के शक्तिरूप ऐश्वर्य के योग से आकाशादि कार्यरूप करके जन्म के बन्धन को प्राप्त होताहुआ । अर्थात् प्राप्त होयके जगत् का उपादान कारण है, ऐसे व्यवहारका भागी होता है, इस प्रकार श्रुति अरु ब्रह्मसूत्र बिषे ब्रह्मको जगत् का कारणपना सिद्धहै । अरु जो ब्रह्म, यद्यपि कूटस्थपने अरु व्यापकपने करके गमन से रहितहुआ स्थित होताहै, तथापि उक्त प्रकारके अज्ञानके माहात्म्य से कार्य ब्रह्मरूपताको पायके गमनमानपने को प्राप्त होताहुआ । अरु जो ब्रह्म एक हुआ , अर्थात् वास्तवसे सर्व नानाभावसे रहित एकरस अद्वैत है, इस प्रकार उपनिषदों करके जाना जाता है, तथापि अनादि अनिर्वचनीय अविद्याके वशते विविध प्रकार के विषयरूप धर्मों के ग्रहण करने वाले होने करके विवेकरूप दृष्टिसे रहित पुरुषोंको , जीव, जगत् , अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ईश्वर, इन भेदों करके अनेकवत् भासता है । अरु जो ब्रह्म आचार्य के उपदेश से जनित बुद्धिवृत्ति बिषे फलरूपसे आरूढ़हुआ प्रणत, कहिये ब्रह्मनिष्ठावान् पुरुषों के, अविद्या अरु तिसके कार्यरूप भय का नाश करता है, तिस सर्व उपनिषदों बिषे प्रसिद्ध सर्व परिच्छेद (भेद) से रहित प्रत्यगात्मारूप ब्रह्म के अर्थ मैं नमस्कार करता हौं, अर्थात् तिसको विषय करनेवाले भाव को प्रकट करता हौं ॥ १ ॥

प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरे समुद्रे । कारुण्यादुद्धाराम्रतमिदममरैर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तं पूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि ॥ २ ॥

२ हे सौम्य ! अब ग्रन्थरचना के प्रयोजन के देखावने पूर्वक इस व्याख्यान किये आगमरूप शास्त्र के कर्ता होनेरूप से स्थित हुए परम गुरु को प्रणाम करते हैं " प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधेर्वेदनाम्नोऽन्तरस्थं भूतान्यालोक्यमग्नान्यविरतजननग्राहघोरेसमुद्रे । कारुण्यादुद्धाराम्रतमिदममरैर्दुर्लभं भूतहेतोर्यस्तंपूज्याभिपूज्यं परमगुरुममुं पादपातैर्नतोऽस्मि " (जो निरन्तर जन्मरूप ग्राहोंकरके भयंकर समुद्र बिषे परवश हुए भूतों को देखके करुणाभाव से बुद्धिरूप मन्थनकाष्ठ कैं डालने से विलोडन को प्राप्तहुए वेदनामक समुद्र के अन्तरस्थित अरु देवताओं को भी दुःखसे प्राप्तहोने योग्य इस अमृत को भूतन के हेतु से उद्धार करता हुआ, तिस इस पूज्यों करके भी पूजने को योग्य परमगुरु को पादन बिषे पतनसे मैं नम्र हुआ हौं ; अर्थात् जो जन्मादिरूप ग्राहादि जलचरों करके भयंकर जो संसाररूप समुद्र तिस बिषे पर (कर्म) वश हुए प्राणियों को देखके प्रकटहुई जो करुणा तिस करके बुद्धरूपी मन्थनकाष्ठ (रयि) के डालने से मन्थन को प्राप्तहुए वेदनामक समुद्र के अन्तरस्थित अरु " देवैरत्रापिविचिकित्सितंपुरा नहि सुविज्ञेयमणुरेषधर्मः " इत्यादि प्रमाण से (देवताओं करकेभी दुष्प्राप्य, इस ज्ञानरूप अमृत को प्राणियों के हितार्थ उद्धारकरता (निकालता) हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिस इस पूज्यों करके भी पूजनेयोग्य । अर्थात् श्रीशंकराचार्य करके पूजनेयोग्य उनके गुरु श्रीगोविन्दाचार्य, अरु तिन करके पूजनेयोग्य उनके गुरु श्रीगौडपादाचार्य, अतएव यहां भाष्यकार श्रीशंकराचार्य ने परमगुरु गौडपादाचार्य के अर्थ । पूज्यों करके भी पूजने योग्य यह विशेषण दिया है । परमगुरु को उनके चरणों बिषे अपने मस्तक के वारंवार नमनभावरूप पतन से । अर्थात् उनके चरणों में वारंवार अपने मस्तक को स्पर्श करावने से । मैं नम्र हुआ हौं ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्य मोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये ॥ ३ ॥ इति ॥

३ हे सौम्य ! पुनः अब अपने गुरुकी भक्ति के , विद्या की प्राप्ति बिषे अन्तरङ्गपने को अङ्गीकार करके तिस गुरु के पादपद्म युगल को प्रणाम करते हैं " यत्प्रज्ञालोकभाषा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धकारो मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वतित्रासनेमे । यत्पादावाश्रितानां श्रुतिशमविनयप्राप्तिरग्राह्यमोघा तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैर्नमस्ये " ८ जिनकी बुद्धिरूप प्रकाश की प्रभासे मेरा अनेक जन्ममय घोर भयंकर समुद्र बिषे अनुद्भूत अरु उद्भूत अन्तःकरण बिषे मोहरूप अन्धकार नाश को प्राप्त होता हुआ, तिनके उभय पादपद्म के अर्थ आश्रित हुए श्रवणज्ञान शान्ति अरु विनयकी प्राप्ति होती है, अरु जाते सफल है ताते श्रेष्ठ है, अरु पवित्र करनेवाले, संसारके किये भय को नाश करनेवाले, तिनके उभय पादपद्मों के अर्थ सर्व के भाव से नमस्कार करताहौं ? अर्थात् जिनकी बुद्धिरूप प्रकाश की प्रभा से मेरा अनेक देव तिर्यक् आदिक योनियों बिषे नाना प्रकार के देहभेद के ग्रहणरूप जन्ममय घोर कहिये क्रूर, अरु भयंकर समुद्र बिषे कदाचित् कार्यरूप से अनुद्भूत अरु कदाचित् कार्यरूप से उद्भूत कहिये अनर्थ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारी अन्तःकरण बिषे व्याकुलता के हेतु अविवेक का कारण अनादि अज्ञानमय मोहरूप अन्धकार नाश होता हुआ, अरु जिन गुरुके उभय चरणों के ताईं आश्रित हुए अन्य शिष्योंको भी मनन अरु निदिध्यासन सहित श्रवणज्ञान अरु इन्द्रियों की उपरतिरूप शान्ति अरु नम्रतारूप विनय (निरहंकारता) की प्राप्ति होती है। अरु जिस करके उन श्रवणादिकों की प्राप्ति सफलहै ताते श्रेष्ठहै सो होती है। अरु सर्व जगत् के भी पवित्र करनेवाले अरु अपने सम्बन्धी सर्वजनों के संसारके किये भयको कारण सहित नाश करनेवाले, तिन हमारे गुरुके युगलपादपद्मों के अर्थ , कायिक, वाचिक, मानसिक, इन सर्व के प्रकटभाव से नमस्कार करता हौं, नमस्कार करता हौं, नमस्कार करता हौं ॥ ३ ॥ इति मङ्गलम् ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यब्रह्मानन्दसरस्वतिपूज्यपाद , अति अल्पज्ञ, शिष्य यमुनाशंकर नागरब्राह्मणकृत माण्डूक्योपनिषद् सहितगौडपादीयकारिका, श्रीभगवत्पादभाष्यानुसार कंचित् स्वकल्पित भाषाभाष्य समाप्त हुआ ॥

हरिःॐतत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब इस भाषाभाष्यकारकृत सर्व उपनिषद् आदिकों का प्रणवोपासन विचार देखावनेके अर्थ संग्रह नाम प्रकरण प्रारम्भ करते हैं॥

सूचना॥

हे सौम्य! यह माण्डूक्यनाम उपनिषद् केवल प्रणव की व्याख्या अरु ब्रह्म आत्मा की अभेद एकता का बोधक अरु संन्यासियों का उपास्य इष्ट होनेसे सर्व उपनिषदों का सार है, अतएव कर्मादिकोंसे अरु तिनके फलादिकोंसे उपरामचित्त वैराग्यशील मुमुक्षुओं को उसकी उपासना अरु अर्थ विचार अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि ब्रह्म प्राप्तिके अर्थ यह सर्वोत्तम आलम्बन (आश्रय) है "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे। एतदर्थ यहां इस उपनिषद्की अरु तदुपरि श्रीगौडपादाचार्यकृत कारिका की व्याख्या की समाप्तिके पश्चात् अवसर पायके अन्य उपनिषदों में जो प्रणवोपासना अरु तिसका फल अरु प्रणव की महिमा कही है, अरु जिस प्रकार हिरण्यगर्भादिक सातो सिद्धान्तकारों ने अपने अपने सिद्धान्तानुसार प्रणवोपासना कही है अरु जिसप्रकार अन्य ऋषियोंने मात्राके विचार कहे हैं अरु प्रणव के जो १० नाम हैं सो अरु तिनकी व्याख्या अरु जिस प्रकार अकारादि मात्राओं के लय चिन्तन से सर्वाधिष्ठान निर्विशेष शुद्ध प्रणवके लक्ष्य तुरीय आत्माका लक्ष्य कराया है सो इत्यादि सर्व अरु अन्य भी कल्पित विचार, जो प्रणवविषयक है, तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहता हौं क्योंकि यहां प्रणवविषयक विचार कहने का अवसर अवकाश है, तिसको भी सावधान होय श्रवण करो॥

अथ ईशावास्योपनिषद्कृत ओङ्कारोपासना॥

ॐ क्रतोस्मरकृतछं स्मर क्रतोस्मरकृतछंस्मर॥ १॥

अथ ईशावास्योपनिषत्सम्बन्धिप्रणवविचार॥

हे सौम्य! अब प्रथम ईशावास्य नामक शुक्लयजुर्वेदीय संहितोप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निषद्के सप्तदशवें मन्त्रके उत्तरार्ध बिषे प्रणवोपासनापूर्वक निष्काम कर्म-कर्ता पुरुषके अर्थ वा वर्णत्रयी के मनुष्य जो वेदाध्ययन के अधिकारी हैं तिनके अर्थ उनके अन्तकाल ,कहिये देहावसान समय, ॐकार के स्मरण करने के अर्थ वेद की वा वेद द्वारा ईश्वर की आज्ञा है। अरु तिस आज्ञा के अनुसार उक्त प्रकार के उत्तम विद्वान् पुरुष अपने देहावसान समय अपने मनको जो शिक्षा करते हैं तिसको श्रवण करो। तथा च श्रुतिः "ॐक्रतोस्मरकृतंस्मर क्रतोस्मरकृतंस्मर" वे विद्वान् अपने मनसे कहते हैं, हे निरन्तर संकल्प विकल्प के करनेहारे, महाचञ्चल, संकल्परूप, मन! तू इतने कालपर्यन्त असंख्य संकल्पोंको करताही रहा, अरु उभयलोक के विषयों को अरु शास्त्रानुसार कर्मों के होनहार फल को स्मरण करताही रहाहै सो अस्तु, परन्तु अब जो तुझको स्मरण करने योग्य है तिसही के स्मरण करने का समय आय उपस्थित हुआ है, अरु जिसकी तैने सम्यक्प्रकार उपासना ,कहिये जप अरु अर्थ की भावना, किया है तिस ॐकार का, जो ब्रह्मका प्रतीक है, स्मरण कर, क्योंकि जिस समय के साधने के अर्थ बाल्यावस्था से ही उपासनादिक किये हैं, सो समय अब प्राप्त है। अत एव अब तू अपने परम कल्याणार्थ ॐकार का स्मरण कर। अरु हे मन! बाल्यावस्था (यज्ञोपवीतसंस्कार) से अरु अद्यावधि पर्यन्त जो तूने कर्मानुष्ठान किया है, अर्थात् जिन संध्या गायत्री अग्निहोत्रादि निष्काम कर्मों के करने से अशुभ ,कामुक, कर्म स्पर्श करते नहीं "एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे" इस मन्त्र प्रमाण से। तिन कर्मों को स्मरण कर। अर्थात् तेरे कर्म उपासना ऐसे नहीं कि देहत्यागोत्तर अवगति प्राप्त होने का भय होय, अतएव तू अपने किये सर्वोत्तम कर्म उपासना को इस उपस्थित समय स्मरणकर समय को साध निर्भय हो॥ हे सौम्य! इस प्रकार मनुष्य वर्णत्रयी को सर्वकाल परमोत्तम वेदोक्त कर्म उपासना करके अन्तसमय तिनके स्मरण से अवगति से निर्भय होय परमोत्तम गति को प्राप्तहोना योग्य है यह शुक्ल यजुर्माध्यन्दिनीसंहिता की अन्तिम आज्ञा है। अरु इस मन्त्रार्ध में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो स्मरण करनेको दो बार कहाहै सो स्मरण के आदरार्थ है, अतएव अपने कल्याणार्थ ओंकार का स्मरण विचार अवश्यही कर्तव्य है॥ इति सिद्धम्॥ १॥

अथ कठवल्लीउपनिषद्गतप्रणवोपासना॥

सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपाछंसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यञ्चरन्ति तत्तेपदछं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥ एतद्ध्येवाक्षरम्ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ एतदालम्बनछंश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ २॥

अथ कठवल्लीउपनिषत्सम्बन्धिप्रणवविचार॥

हे सौम्य! अब कठवल्ली उपनिषद्बिषे जो ओंकारोपासना की प्रशंसा महिमा कही है तिसको भी श्रवण करो। हे प्रियदर्शन! कोई एक उद्दालकनाम ऋषि के नचिकेता नाम बालक पुत्र सर्वोत्तमाधिकारी ने आत्मदेव के जानने की इच्छा धारके तीसरे वरदान करके अपने आचार्य भगवान् वैवस्वत (यमराज, वा मृत्यु) महाराज से प्रार्थना किया कि हे भगवन्! "अन्यत्रधर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्। अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद" जो शास्त्रोक्त धर्म अरु तिसके स्वर्गादिक फलसे, अरु तिनके कारक साधनों से पृथक् है, अरु तैसेही शास्त्र करके कहे अधर्म अरु तिनके नरकादिफल अरु कारक साधनों से पृथक् है अरु तैसेही इन कार्य अरु कारणों से भी अन्य है, अरु तैसेही भूत भविष्यत् अरु वर्तमान कालत्रयसे भी जो पृथक् है, अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान यह तीन काल, अरु कार्य कारण देश, अरु धर्म अधर्म अरु तिनके फल अरु सोधन, यह वस्तु। इस प्रकार उक्त देश काल वस्तु से पृथक् हुआ, इन करके परिच्छेद (भेद) को प्राप्त होता नहीं, ऐसा जो सर्व व्यवहार के विषय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से रहित है, अर्थात् जो प्रमाणादिक अरु बुद्ध्यादिक किसी का भी विषय नहीं, तिस वस्तु को आप देखतेहौ अर्थात् साक्षात् यथार्थ अनुभव करते हौ अतएव सो वस्तु मेरे प्रति कहो ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब नचिकेता ने आत्मजिज्ञासापूर्वक मृत्यु भगवान् से विनय किया तब तिसको श्रवणकर प्रथम निर्विशेष आत्मतत्त्व न कहके तिसकी प्राप्ति में मुख्य आलम्बन जो आत्मा का प्रतीक ॐकार तिसकी उपासना की अरु तिसके ज्ञान की महिमा कहते हुए ॥ मृत्युरुवाच "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यञ्चरन्ति तत्तेपदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ एतद्ध्येवाक्षरंब्रह्म एतदेवाक्षरम्परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ एतदालम्बनꣳश्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" १५, १६, १७, ॥ हे नचिकेतः ! ऋगादि सर्ववेद, अर्थात् ऋगादि वेद के एकदेश ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद्, जिस पावने योग्य पद को अविभाग से, एकही निश्चय से, प्रतिपादन करते हैं ॥ हे सौम्य ! यहां वेद शब्द के अर्थ से वेद के एकदेशरूप उपनिषद् का ग्रहण है, तिसका यह तात्पर्य है कि उपनिषद् जो है सो ज्ञान के साधन होने करके तिस प्रणव के लक्ष्य परमात्मपद से साक्षात् सम्बन्धवाले हैं । अर्थात् उपनिषदों के महावाक्यार्थ ज्ञान से परमात्मा की अपरोक्ष साक्षात् अनन्यप्राप्ति होती है, अतएव उपनिषद् परमात्मपद से साक्षात् सम्बन्धवाले हैं । अरु जिसकी प्राप्ति के अर्थ सर्वविद्वान् तप को (स्वधर्मानुष्ठान को) कहते हैं । अथवा सर्व तप आचरण करनेवाले तपस्वी जिसको कहते हैं । अरु जिसकी इच्छा धारके गुरुकुलवासादि ब्रह्मचर्य को आचरते हैं । अर्थात् जिस प्रणव के लक्ष्य परमात्मपद की प्राप्ति की इच्छावाले श्रद्धासम्पन्न हुए गुरुकुल में वासकर उपनिषदों का अध्ययनादिरूप ब्रह्मचर्य करते हैं । अरु जिस पद के जानने की इच्छा तू भी करताहै । हे नचिकेतः ! तिसपद को तेरे अर्थ संक्षेपमात्र कहताहौं सो यह ॐकारही है । अर्थात् हे नचिकेतः ! जिस पद को जानने को तू इच्छता है तिसका प्रतीक (प्रापक) ॐकार है, क्योंकि वह ॐकार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

का लक्ष्य अरु ॐकाररूप प्रतीकवाला है। ताते यह ॐअक्षर सगुण वा त्रिमात्रिक होने से अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है, अरु यही अक्षर अपने लक्ष्यरूप से गुण वा मात्रा से रहित अविनाशी अमात्रिक निर्गुण पर (श्रेष्ठ) ब्रह्म है। एतदर्थ इस उक्त अक्षर को सम्यक्प्रकार जानके जो उपासना करता है सो पर वा अपर जिस ब्रह्म को प्राप्त होनेको इच्छता है तिसको सोई होताहै। अर्थात् जो ब्रह्मलोक की इच्छा धारके त्रिमात्रिक प्रणव की समाहितचित्त ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक जपादिरूप से उपासना करता है तिसको सोई ब्रह्मलोक होता है। अरु जो मुमुक्षु मोक्ष की इच्छा धारके त्रिमात्रिक प्रणव के विचारपूर्वक तिसके अधिष्ठान अमात्रिक आत्मा का ब्रह्म के साथ अभेद अभ्यास वा निदिध्यासन करता है तिसको प्राप्त होता है। अतएव हे नचिकेतः! ब्रह्मलोक प्राप्तिवाले को अन्य अज्ञादि आलम्बनों से इस त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रणवोपासना के आलम्बन से ब्रह्मलोक को प्राप्त हुआ विद्वान् ब्रह्मा से प्रणव के लक्ष्य का ज्ञान पाय पुनरावृत्ति से रहित मोक्ष होता है। अरु परब्रह्मप्राप्ति की इच्छावाले को इस ॐकार की विचाररूप उपासना अन्यसर्व साधनों के मध्य प्रशंसा करने योग्य परमोत्तम आलम्बन (आश्रय) है, मुमुक्षु को परमात्मप्राप्ति के अर्थ इस ॐकार की उपासना से अधिक श्रेष्ठ आलम्बन कोई नहीं, एतदर्थ इस आलम्बन को सम्यक्प्रकार जानके उपासना करनेवाला ब्रह्मलोक बिषे महिमा को पावता है, अर्थात् जो ब्रह्मलोक की प्राप्ति की इच्छा से त्रिमात्रिक ॐकार की उपासना करता है सो तिसके आश्रय ब्रह्मलोक में जाय ब्रह्मवत् पूजनीय होता है। अरु जो साक्षात् ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ इस ॐकाररूप प्रतीकद्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्म की उपासना करता है सो ब्रह्मरूप लोक बिषे अनन्य हुआ तिसकी महिमा को प्राप्त होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" हे सौम्य! उक्तप्रकार मुमुक्षु के अर्थ अमृतत्व प्राप्ति में ॐकार की उपासनारूप आलम्बन से इतर सर्वोत्तम आलम्बन कोई नहीं। ऐसा कठवल्ली उपनिषद् की श्रुतिवाक्य प्रमाण से सिद्धही है। अतएव मुमुक्षु करके अपने मोक्षार्थ सर्वोत्तम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमश्रेष्ठ ॐकारोपासना का ही आश्रय करना उचित है ॥ इति ॥ २ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गतप्रणवोपासना ॥

स योहवैतद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमंवावसतेन लोकं जयतीति ॥ तस्मै सहोवाच । एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ ३ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद्गत ॐङ्कारोपासना ॥

हे सौम्य ! अब अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में जिस प्रकार प्रश्नपूर्वक ॐकार के पर अरु अपर दो भेद अरु क्रमसे मात्राओंके उपासकोंकी गति कही है, तिसको भी संक्षेपमात्र कहता हौं सावधान होय श्रवण करो ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रश्नोपनिषद् के पञ्चम प्रश्न बिषे सत्यकामनामक ऋषिने अपने आचार्य पिप्पलाद नामक ऋषि से प्रश्न कियाहै कि "स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत, कतमं वावसतेन लोकं जयतीति" हे भगवन् (पूजने योग्य) मनुष्यों के मध्य सो आश्चर्यवत् है जो कोई एक मनुष्य अपने मरण पर्यन्त सम्यक् प्रकार सर्वधर्माचरण अरु इन्द्रियों के अरु मनके निग्रहवाला हुआ समाहितचित्तता से ॐकार के अभिध्यान से 'कर्मों के फल जे स्वर्गादि अनेक लोकहैं तिनमें से कौन से लोक का जय करता है' अर्थात् वह प्रणवोपासक कौन से लोक को प्राप्त होताहै, सो आप कृपा करके कहिये ॥ हे सौम्य ! इस प्रकार जब सत्यकाम नामवाले ऋषिने अपने आचार्य पिप्पलाद ऋषि से प्रश्न किया तब सो उत्तर कहते हुए "तस्मैस होवाच । एतद्वैसत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति" पिप्पलाद मुनि तिस प्रश्नकर्ता सत्यकाम प्रति कहते हुए हे सत्यकाम ! यह जो सत्य अक्षर पुरुषनामवाला परब्रह्म है अरु जो प्रथम उत्पन्न हुआ प्राणनामक अपर ब्रह्म है, सो उभय प्रकार का ब्रह्म ॐकार ही है । अथवा ॐकार का लक्ष्य सर्वाधिष्ठान अमात्रिक परब्रह्म है, क्योंकि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्रारूप उपाधि से पर (पृथक्) है ताते वा मात्रावाले सोपाधि ब्रह्म से श्रेष्ठ है ताते। अरु तिसका प्रतीक होने से त्रिमात्रिक अक्षर वर्णात्मक ॐकार अपर (अश्रेष्ठ) ब्रह्म है। अरु इस ॐकार अक्षर (वर्ण) को जो ब्रह्मत्व है सो 'जैसे शालग्रामनामक पाषाणको विष्णु (हिरण्यगर्भ) का प्रतीक होने से उसको भी विष्णुपना है, तैसे है, ताते इस ॐकार को निरुपाधि निर्विशेष सर्वाधिष्ठान परब्रह्म का प्रतीक होने से यह अपर ब्रह्म है, तिसकी अकारादि मात्राकी जाग्रदादि अवस्थादिरूप पादों के साथ एकताकर प्रथममात्रा को दूसरी में अरु दूसरी को तीसरी में, अरु तीसरी को, तीनों की अपेक्षा से जो सर्वाधिष्ठान चतुर्थ शिव है तिसमें लयकर तदाकार अनन्य स्थिति से एकात्म्य ध्यानकरके उस ॐकार का लक्ष्य जानने में आवता है। इस प्रकार जानके जो परब्रह्म है सो ॐकार ही है। अर्थात् "ॐ" इस ॐकार अक्षरका जो लक्ष्य अविनाशी अक्षर परब्रह्म है ताते ॐकार ही परब्रह्म है, अरु परब्रह्म का वाचक 'प्रतीक' होने से यह अपरब्रह्म है। इस प्रकार ॐकार को पर अरु अपर उभय ब्रह्मरूप जाननेवाला पुरुष ॐकार की उपासनाके आश्रय दोनों में से एक को पावता है। अर्थात् जो ॐकार की उपासना (मात्राओं की लयता) के विचाररूप आलम्बन से सर्ववृत्ति आदिकों के अभावसे निर्विकल्प समाधि में निर्विशेष आत्मस्थिति दृढ़ता से पावता है सो अभेदता से परब्रह्म को पावता है। अरु जो उक्त प्रकार की आत्मस्थिति को न पायके तिसकी प्राप्ति के अर्थ 'ॐ' इस अक्षर की जप विचारात्मक उपासना को सम्यक्प्रकार यथाशास्त्र विधि आश्रय करता है, सो तिसका फल ब्रह्मलोकको प्राप्तहोय वहां ब्रह्मद्वारा लक्ष्य को पावता है॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार कहके पुनः पिप्पलाद मुनि कहताहुआ कि हे सत्यकाम! अब ॐकार की मात्रा के ज्ञान उपासना के आश्रय अधिकारी उपासकों को जो जो फल, कहिये गति, प्राप्त होता है तिसको भी क्रमशः श्रवण करो जो पुरुष ॐकार को ब्रह्म का प्रतीक होने से समीपवर्त्ती अरु आलम्बनों में श्रेष्ठ आलम्बन परम उपकारक साधन जानता है, अरु त्रिमात्रिक प्रणव की उपासना करने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योग्य है, इस प्रकार जानता है । परन्तु ॐकार की सर्व मात्राओं को यथार्थ विभागपूर्वक जानता नहीं, किन्तु ॐकार की एक अकारमात्रा ही उपासना करने योग्य है, इस प्रकार जानके ॐकार की पूर्णरूप से उपासना न करके खण्डरूप से एक मात्रा की ही उपासना करताहै सो खण्डोपासक भी अवगति को पावता नहीं॥ ३ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति ॥ ४ ॥

अब उसको जो गति प्राप्त होती है सो श्रवण करो "स यद्येकमात्रमभिध्यायीत तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान मनुभवति" अर्थ यह जो, सो उक्त प्रकारका उपासक जब केवल एक मात्रा के विभाग का जाननेवाला हुआ सर्वदा एक मात्रारूप से ही ॐकार को ध्यावता (ध्यान विचार करता) है, सो पुरुष तिस ॐकार की एकमात्रा के ध्यान के प्रभावसे ही तिस मात्रा का साक्षात्कारवान् हुआ, देहत्याग के अनन्तर तत्काल ही पृथिवी (मनुष्यलोक) बिषे (जन्म) पावता है, तहां पृथिवी बिषे अनेक योनियों के जन्म हैं तिन में तिस उपासक को सर्वोत्तम वर्णत्रयी में से कोई एक मनुष्यलोक (शरीर) को ॐकार की ऋग्वेदरूप प्रथम मात्रा प्राप्त करती है, तब सो उपासक मनुष्यलोक में द्विजोत्तम हुआ, तप करके, ब्रह्मचर्य करके, श्रद्धा करके, सम्पन्न हुआ महिमा को अनुभव करता है । हे सौम्य ! महिमा का स्वरूप सामवेदीय छान्दोग्य उपनिषद् बिषे "गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्ति हिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति" गो, अश्व, हस्ति आदिक पशु अरु सेवकादिक भृत्य । अरु भार्या उपलक्षण करके भार्या, पुत्र, पौत्रादि कुटुम्ब अरु सुवर्ण उपलक्षण करके सुवर्ण, रजत, रत्नादिक धन अरु रोगादिकों से रहित अरु दीर्घायु सहित सुन्दर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शरीर अरु क्षेत्र पृथिवी (राज्य) अरु आयतन कहिये सुन्दर निवास-स्थान। इत्यादिकों को महिमा करके प्रतिपादन किया है तिस महिमा को वो ॐकारकी एक मात्रा का उपासक पावताहै। परन्तु श्रद्धादिकों से रहित हुआ यथेष्टाचरण करता नहीं किन्तु शास्त्रानुसार ही चेष्टा। अरु पूर्वाभ्यास वश प्रणवोपासना। ही, करता है। अतएव उक्त प्रकार का प्रणवोपासक दुर्गति को कदापि प्राप्त होता नहीं॥ ४॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते॥ ५॥

हे सौम्य! उक्त प्रकार के उपासकसे अन्य पुरुष "अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते" अर्थ, यदि ॐकारकी दो मात्रा के जाननेवाला ॐकार को, अकार, उकार, इन दो मात्रारूप जानके मात्राओं के विभागपूर्वक ॐकार को ध्यावता है। अर्थात् ॐकार का जप अरु दो मात्रा के विभाग के विचार से अर्थभावना रूप ध्यान करता है, सो यजुर्वेदमय चन्द्रमारूप दैवतवाले। अर्थात् चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसे मन बिषे एकाग्रता से आत्मभावको प्राप्त होताहै, सो। देहत्यागानन्तर। यजुर्वेद सम्बन्धी ॐकारकी दो मात्राके प्रभाव से अन्तरिक्षरूप आधारवाले चन्द्रलोक को प्राप्तहोता है, अर्थात् तिस ॐकार की दोमात्रा के उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्म प्राप्त करताहै। अर्थात् जो पुरुष यजुर्वेदसम्बन्धी ॐकारकी दो मात्रारूप से उपासना करते हैं सो उस उपासना के प्रभाव से यहां देहत्यागानन्तर चन्द्रलोक में। जो इस लोककी अपेक्षा उत्तम अरु द्वितीय है। जन्म पावता है, तब सो तिस चन्द्रलोक सम्बन्धी महिमा (विभूति) को अनुभव करके (भोगके) पुनः इस मनुष्यलोकमें आय जन्म पावताहै। यह ॐकार को दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले की गति कही है। अरु धूमादि दक्षिणायन मार्गवालों की भी यही गति है॥ ५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेणपरं पुरुष मभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदर स्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम् । सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के तीनों मात्रा की पूर्ण उपासक की जो गति है तिसको भी श्रवण करो " यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः " अर्थ , पुनः जो पुरुष तीनमात्रा का ज्ञाता हुआ, अरु इस ॐकार को ब्रह्म का प्रतीक होने से ब्रह्मप्राप्ति में उसको परम आलम्बन जानके त्रिमात्रिक ॐकार-रूप सूर्य के अन्तर्गत पुरुष को (ॐकार के लक्ष्यको) ध्यान करता है । (अर्थात् जिस अधिष्ठानरूप परम पुरुष के आश्रय तीनों पादरूप मात्रा अध्यस्त हैं, अरु सर्प में रज्जु के अन्वयवत् जिसका तीनों मात्राओं में अन्वय है । अरु सत्यरूप रज्जु में अध्यस्त असत्य सर्प के व्यतिरेकवत् व्यतिरेक है, तिस सर्वाधिष्ठान निरुपाधि परम पुरुष को, त्रिमात्रिक ॐकार जो ब्रह्म का प्रतीक है तिसरूप सूर्य बिषे उक्त परमपुरुष को ध्यान करता है, वा आकाशगत सूर्यमण्डल बिषे, अरु त्रिमात्रिक ' ॐ ' इस अक्षररूप सूर्य बिषे जो सूर्यादि सर्व का प्रकाशक सर्वाधिष्ठान सर्व का आश्रय परमपुरुष है तिसको उभय सूर्य बिषे एक जानके अरु तिसके साथ आत्मा की एकता जानके (अर्थात् जो चैतन्य पुरुष प्रकाशरूप से सूर्य बिषे स्थित है, अरु सर्वका साक्षीरूप से शरीरादि संघात बिषे स्थित है, अरु लक्ष्यार्थरूप होयके त्रिमात्रिक ' ॐ ' इस अक्षर बिषे स्थित है, सो एकही है इसप्रकार ' ॐ ' इस अक्षर बिषे, अरु सूर्यमण्डल बिषे, अरु शरीरादि संघात बिषे, अरु इन तीनों को उपलक्षण करके , अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म, इन तीनोंप्रकार के जगत् बिषे , एक अखण्ड अविनाशी चैतन्यपुरुष को " ॐकारेवेदं सर्वम् " इत्यादि श्रुति अरु स्वानुभवप्रमाण से) । जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्राओं के ज्ञानपूर्वक ध्यान करता है सो तिस ध्यान उपासना के प्रभाव से मरणोत्तर । तेजोमय हुआ । तेजोमय सूर्य बिषे प्राप्त होता है। अरु सो उपासक , जैसे ॐकार की दो मात्रा का उपासक चन्द्रलोक में विभूति को अनुभवकर पुनरावृत्ति को प्राप्त होता है, तैसे त्रिमात्रा का उपासक सूर्यमण्डल बिषे प्राप्त हुआ पुनरावृत्ति को प्राप्त होता नहीं, किन्तु सूर्य बिषे प्राप्त हुआ ही होता है । अर्थात् सूर्यलोक में जाय वहां की विभूति महिमा को भोक्ता हुआ वहां ही रहता है "। यथा पादोदरस्त्वचा विमुच्यत एवं ह्वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं "। अरु सो पुरुष , जैसे सर्प अपनी जीर्णत्वचा को त्याग के पश्चात् नवीन हुआ पुनः उस परित्याग कीहुई जीर्ण त्वचा को देखता (पावता वा ग्रहण करता) नहीं। तैसेही प्रसिद्ध सो प्रणवोपासक सर्प की त्वचास्थानीय अशुचितारूप पापों से मुक्त होताहै । । अथवा जैसे सर्प अपनी जीर्णत्वचा को त्याग नवीन हुआ पुनः उस त्यागी हुई त्वचा को ग्रहण करता नहीं, तैसे वो तीन मात्रा का उपासक इस मनुष्यलोकसम्बन्धी शरीररूप पापों से मुक्त हुआ सूर्यलोक बिषे देवशरीर को पाय पुनः इस लोकसम्बन्धी शरीर को न ग्रहण करके देवरूपही रहता है । अरु इस लोकसम्बन्धी शरीररूप पापों से मुक्त हुआ सूर्यलोक बिषे देवशरीर को पाय वहां भी उपासना के प्रभावसे, तीसरी मात्रारूप सामवेद करके, सूर्यलोक से भी ऊंचे हिरण्यगर्भनामक ब्रह्मा के सत्यलोक नामक लोक को प्राप्त होताहै ॥ अरु "। सएतस्माज्जीवघनात्परात्परंपुरिशयंपुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः "। सो तीसरीमात्रा वा तीनों मात्रा का उपासक विद्वान् पुरुष सत्यलोक में स्थित हुआ इस सर्वोत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से । अर्थात् सर्व सूक्ष्म शरीरों की समष्टितारूप हिरण्यगर्भ हैं अतएव उसको जीवघन कहते हैं । पर कहिये , श्रेष्ठ, परमात्म नामवाले पुरुष को ' जो सर्व शरीररूप पुरियों में स्थित है वा सर्व शरीरगत पुरीतति नाड़ी बिषे स्थित है' देखता है । अर्थात् जो ॐकार का लक्ष्य अरु हिरण्यगर्भादि सर्व अध्यस्थों का अधिष्ठान जो एक सर्वात्मा परमपुरुष है तिसको साक्षात् सोहमस्मिभाव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से अनुभवकर्ता पुरुष पुनरावृत्ति से रहित हुआ ब्रह्मा के साथ । वा ब्रह्म से महावाक्यार्थ का ज्ञानोपदेश पायके । मोक्ष होता है ॥ ६ ॥

तिस्रोमात्रामृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ७ ॥

तहां इस अर्थ के प्रकाशक अग्रिम दो मन्त्र प्रमाण हैं "तिस्रोमात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासुबाह्याभ्यन्तर मध्यमासुसम्यक्प्रयुक्तासुनकम्पतेज्ञः" अर्थ तीन संख्या हैं जिनकी ऐसी जो ॐकारकी अकार, उकार, मकार यह तीन मात्रा हैं, सो मृत्यु की विषयही हैं अरु परस्पर सम्बन्धवाली हैं, अरु वो तीनों मात्रा विशेष करके एकएक विषय बिषेही योजना करी गई होवें ऐसा नहीं, किन्तु विशेष करके एकही ध्यानकाल बिषे त्याग कीहुई, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन स्थान, अरु तिनके अभिमानी, जे स्थूल, सूक्ष्म, कारण, के अभिमानी 'वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, अरु अव्याकृत, तिनसे अपृथक् विश्व, तैजस, प्राज्ञ, पुरुष तिनकी अकार, उकार, मकार, इन तीन मात्रा सें तादात्म्य करके । अर्थात् जाग्रदवस्था विश्वाभिमानी स्थूल भोग, इस व्यष्टि प्रथम पाद की, विराट् स्थान वैश्वानर अभिमानी स्थूल भोग, इस समष्टि पाद से एकता कर तिसका अकाररूप प्रथम मात्रा से तादात्म्य करके । अरु तैसेही स्वप्नावस्था तैजसाभिमानी विरलभोग, इस व्यष्टि द्वितीयपाद की सूक्ष्मस्थान हिरण्यगर्भाभिमानी विरलभोग, इस समष्टि द्वितीयपाद से एकता कर 'पुनः तिसका उकाररूप द्वितीय मात्रा से तादात्म्य करके, पुनः सुषुप्ति अवस्था प्राज्ञाभिमानी आनन्द भोग, इस व्यष्टि तृतीयपाद को कारणावस्था रुद्र वा ईश्वराभिमानी आनन्द वा अज्ञान भोग इस समष्टि तृतीय पाद बिषे एकता करके, पुनः उस पाद की मकार मात्रा से तादात्म्य करके । अर्थात् उक्त प्रकार जाग्रदादि तीनों पादों को अकारादि तीनों मात्रा से तादात्म्य (एकता) करके ध्यानरूप जो बाह्य भीतर अरु मध्य की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

योगक्रिया है तिसको सम्यक् ध्यानके काल बिषे योजना किये हुए जब वे तीनों मात्रा योजना किया होय, अर्थात् समष्टि उक्त पादों बिषे व्यष्टि उक्त पादों की योजना करके पुनः क्रमशः प्रथम अकार मात्रा को द्वितीय उकारमात्रा बिषे लय करे, अरु उस अकारयुक्त द्वितीय उकारमात्रा को मकाररूप तृतीय मात्रा बिषे लय करे, पुनः उस तृतीय मात्राको उस ॐकार के वाच्य अधिष्ठान बिषे नामनामी के अभेद से लय करे, वा अध्यस्तरूप तीनों मात्रा को उसके अधिष्ठान से अपृथक् जानके लय करे। ॥ इस प्रकार सम्यक् ध्यानके काल बिषे तीनों मात्रा उक्त प्रकार जब योजना करी होय, तब उस ॐकार का ज्ञाता योगी चलायमान होता नहीं। अर्थात् विक्षेप को पावता नहीं; किन्तु अचलही होताहै। अरु जिस करके उक्तप्रकार का प्रणवोपासक विद्वान् "ॐकारएवेदं सर्वम्" इत्यादि प्रमाण अनुभवसे सर्वात्मा ॐकाररूप हुआहै एतदर्थ उसका चलना (विक्षेप) किस कारण से होवेगा 'किसीसे भी नहीं, क्योंकि विक्षेप का कारण द्वैतभेदभाव है, सो उसको न होयके सर्वत्र ॐकार आत्मभावही है, ताते विक्षेप के कारण द्वैतभावके अभाव से एक ॐकारदर्शी विद्वान् चलायमान होता नहीं ॥ ७ ॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते। तमोंकारेणैवायतनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ८ ॥ इति ॥

हे सौम्य! "ऋग्भिरेतंयजुर्भिरन्तरिक्षंससामभिर्यत्तत्कवयोवेदयन्ते" अर्थ, ऋग्वेद से ॐकार को एक मात्रारूप जानके भजन उपासन करनेवाला पुरुष इस मनुष्यलोक को प्राप्त होता है, अरु यजुर्वेद से ॐकार को दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाला विद्वान् देहत्यागोत्तर पितृलोक (चन्द्रलोक) को प्राप्त होता है। अरु जिसको वेदवेत्ता विद्वान् पुरुष जानते हैं, ऐसा जो तृतीय सर्वोत्तम ब्रह्मलोकहै तिसको, सामवेद से ॐकार को त्रिमात्रारूप जानके उपासना करता है सो उत्तम उपासक इस लोक (शरीर) के त्यागानन्तर, प्राप्त होता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है । इस प्रकार ॐकार का वेत्ता विद्वान् तिस अपर ब्रह्मरूप त्रिमात्रिक ॐकार को उक्त प्रकार जानके तिसकी क्रमसाध्य उपासना करते हैं सो उक्त प्रकार के तीनोंलोक में से एकको 'अपनी उपासनाके अनुसार ॐकारकी उपासनारूप आलम्बन (आश्रय वा साधन) से प्राप्त होता है अरु जो त्रिमात्रिक प्रणव के लक्ष्य चैतन्य अक्षर सत्य परम पुरुष नामवाला सदा शान्त अरु मुक्त, अरु जाग्रदादि सर्वभेद प्रपञ्चसे रहित है अरु इसही हेतु से जरा मृत्यु आदिकों से भी रहित है । अरु जिस करके जरादि रहित है एतदर्थही अभय है । इस प्रकार का जो शान्त मुक्त अजर अमर अभय परम अक्षर ॐकार का लक्ष्य है, तिसको त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन से विद्वान् पावता है ॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार प्रश्नोपनिषद् करके प्रतिपाद्य अपररूप अरु पररूप ॐकार तिसकी मात्रादिकों के भेद से उपासना करनेवाले उपासकों को जो फल होताहै, अरु त्रिमात्रिक प्रणवोपासना के आलम्बन से ॐकारके लक्ष्य अमात्रिक परमात्माकी उपासना से परमात्मभावरूप फलकी प्राप्ति " तद्भावगतेनचेतसालक्ष्यं" होतीहै, सो सर्व जिस प्रकार श्रुतिने कहा है तैसे संक्षेपमात्र तुम्हारे प्रति कहा अब जिस प्रकार मुण्डक उपनिषद् बिषे प्रणवोपासना कहीहै तिसकोभी संक्षेपमात्र श्रवणकरो ॥ ८ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतॐकारोपासनासमाप्ता ॥

अथ मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासना प्रारभ्यते ॥

प्रणवोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् ॥

अथ मुण्डकोपनिषद्गतप्रणवोपासना प्रारभ्यते ॥

हे सौम्य ! ! मुण्डकउपनिषद् के द्वितीय मुण्डकगत द्वितीयखण्डके चतुर्थ मन्त्र बिषे कहा है " प्रणवोधनुःशरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत् " अर्थ । ॐकार रूप धनुष है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् बाण के लक्ष्य (निशाने) बिषे प्राप्त होने को धनुष कारण है, धनुष विना बाण लक्ष्य बिषे प्राप्त होता नहीं। तैसे ही आत्मा (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य) रूप बाण को अपने लक्ष्य अक्षर ब्रह्मबिषे प्राप्त होने को कारण ॐकारोपासन है, अतएव ॐकार को धनुषरूप करके कहाहै। अरु जैसे बाण चलावने का अभ्यास किये, अरु संस्कारयुक्त (शिलीमुख) हुआ बाण धनुष के आश्रय हुआ लक्ष्यबिषे स्थित होता है, तैसे ही ॐकार की उपासनाके विचाररूप से सूक्ष्म शिलीमुख अरु शमदमादि साधनों करके संस्कारयुक्त हुआ, प्रणवोपासनारूप धनुष के आश्रय उक्त आत्मारूप बाण सो अपने आभास (प्रतिबिम्ब) भावको (जोकि अवस्थात्रयात्मक बुद्धिरूपा उपाधिके सम्बन्ध से प्राप्त हुआहै) त्यागके अपने अक्षररूप बिम्ब बिषे जैसे प्रतिबिम्ब बिम्बमें तैसे ' अभेदतासे स्थित होताहै। एतदर्थ आत्मरूप बाणको अपने अक्षररूप लक्ष्य बिषे प्राप्तहोने को प्रणव जो है सो धनुषवत् धनुषहै। अरु उक्त आत्मारूप बाणहै (अर्थात् उपाधि करके लक्षित परमात्मा अक्षर काही जलादिकोंगत सूर्यादिकों के प्रतिबिम्बवत्, इस देहादिक संघात बिषे सर्व बुद्धियोंकी वृत्तियोंका साक्षी हुआ प्रवेशको पायाहै सो बाणवत् बाणहै। अरु आत्माके अर्थ जो विषयों की तृष्णा सोई प्रमाद है, तिस प्रमाद से रहित अप्रमत्त अरु सर्व से वैराग्यवान् जितेन्द्रिय समाहितचित्तता इत्यादि साधनरूप संस्कारसम्पन्नता तिस करके सहित से वेधन (प्रवेश) के योग्य जो ब्रह्म सो लक्ष्यहै। ताते प्रणवरूप धनुषके आश्रय आत्मरूप बाण का जब ब्रह्मरूप लक्ष्य बिषे प्रवेशरूप से उक्त लक्ष्यका वेधन होता है, तिसके पश्चात् आत्मा बाणवत् लक्ष्य बिषे तन्मयतारूप होताहै। अर्थात् जैसे बाणको लक्ष्य के साथ एकरूपतामय फल होता है, तैसे ही देहादि अनात्माकारवृत्तियों के तिरस्कार से अक्षर के साथ तन्मयतारूप फल को प्राप्त होना, यह सर्व बुद्धिमान् मुमुक्षुओं करके योग्य है॥ हे सौम्य! अब इसका और प्रकार से कल्पित विचार को श्रवण करो हे प्रियदर्शन! धनुष से जो बाण चलताहै सो अपने मार्गगत वस्तुओं को उल्लङ्घन करता अपने लक्ष्यको प्राप्त होकर तन्मय होत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है, तैसे ही यह चिदाभासरूप बाण त्रिमात्रिक प्रणवरूप धनुष से अपने बिम्ब ब्रह्मरूप लक्ष्य की ओर चलता है, तब अपने जाग्रदादिअवस्थारूप व्यष्टिपादों को, विराडादि समष्टिपादों के साथ, अरु तिनको अकारादि मात्राओं के साथ अभेद विचारके तिनको अध्यस्त होने से पीछे अविद्यात्मकताकी ओर डाल आप अपने अमात्रिक ब्रह्मरूप लक्ष्य बिषे प्राप्त होय पश्चात् विचाररूप वेग से रहित हुआ लक्ष्यमय होता है ॥ अरु यहां जो कहा है कि " शरवत्तन्मयो भवेत् " तिसका विचार इस प्रकार जानना कि, बाण जो है सो अपने लक्ष्य में प्रवेश को पाय अदृश्य होने से तन्मय हुएवत् भासता है, परन्तु लक्ष्यरूपता से अभेद तन्मय होता नहीं अर्थात् बाण लक्ष्य में प्रवेश पायाहुआ भी लक्ष्यके साथ अभेद एकता को पावता नहीं लक्ष्य से विजाति है ताते, एतदर्थ इसका अर्थ अग्रिम कल्पित कहे प्रकार भी जानने योग्य है । प्रणवरूप धनुष के आश्रय चिदाभासरूप बाण करके ब्रह्मरूप लक्ष्य को प्रमाद (आलस्य वा विषयासक्तता) से रहित होय वेधन करना योग्य है । यहां पर्यन्त बाण के दृष्टान्त प्रमाण यथार्थ है आगे जो तिसका फल " शरवत्तन्मयो भवेत् " तारूप होना कहा है । तिसको जल अरु हिम का दृष्टान्त विचार युक्त है, क्योंकि जलको भी , शर , कहते हैं, अरु जल हिम की अभेद एकता भी युक्त है । अर्थात् जैसे , गुलेल , वा धनुष, कि जिनका आकार एकरूप है, नामक यन्त्र के आश्रय हिम (बरफ़) का खण्डरूप गिल्ला व बाण जल की ओर चलाया हुआ अपने लक्ष्य जल को प्राप्त होय अभेद तन्मयता को प्राप्त होताहै, ताते शर शब्द का अर्थ जल अङ्गीकार करके उक्त दृष्टान्त प्रमाण विचारने से अभेद तन्मयता होने में शङ्का रहे नहीं, अरु अर्थ भी युक्त है । अर्थात् जैसे जल अपनी शीतलता स्वभाव करके हिमभाव को प्राप्त होता है, अरु जल की कोमलतादि धर्मसे विपरीत काठिन्यतादि धर्म वाला भासता है, परन्तु सो तिस हिमअवस्था में भी जल से इतर कहनेमात्रही है, अरु पुनः जलमें गया अपने काठिन्यतादि बाह्य धर्म को त्याग अभेदता से जल के साथ तन्मयता को पावता है " यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय, तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तःपरात्परंपुरुषमुपैतिदिव्यम्" तैसेही ब्रह्मकी इच्छा वा स्वभावरूपा माया करके ब्रह्मही अल्पज्ञतादि धर्मवाला जीवभावको प्राप्त हुआ सा भासता है, परन्तु वास्तव करके तत्त्वमस्यादि प्रमाणों करके ब्रह्मरूपही है, सो जीव (चिदाभास) प्रणवरूप धनुष को आश्रय कर आप बाणवत् हुआ ब्रह्मरूप जल लक्ष्य में प्रवेश कर तन्मयता को प्राप्त होता है। ताते इस चिदाभासरूप आत्मा जीव को ब्रह्मरूप लक्ष्य के साथ अभेद तन्मयता होने के अर्थ प्रणवोपासनारूप मुख्य आलम्बन है॥ "ओमित्येवंध्यायथ" "ॐ" इस उक्तप्रकार से ॐकाररूप आश्रय वाले हुए शास्त्रोक्त कल्पना से ॐकार का ध्यान करो, इस प्रकार ज्ञानवान् आचार्य ने मुमुक्षु को ब्रह्म आत्माकी अभेदतारूप मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ ॐकार की उपासनारूप सर्वोत्तम आलम्बन कहा, तिसही को आश्रय करना योग्य है॥

इति प्रणवोपासनविचारसम्पूर्णम्॥ ॐम्॥

अथ कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषद्गत प्रणवविचारः॥

ॐम्। ओमिति ब्रह्मा ओमितीदꣳ सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ओꣳशोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति। ओमित्यध्वर्युःप्रतिगरंप्रति गृणाति। ओमितिब्रह्मा प्रसौति। ओमितिअग्निहोत्रमनुजानाति। ओमितिब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह। ब्रह्मोपाप्नुवानिति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश इति॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब कृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषत्सम्बन्धि प्रणवविचार ॥

हे सौम्य ! अब तैत्तिरीयोपनिषद्विषे जिस प्रकार प्रणव की श्रेष्ठता वर्णन किया है तिसको भी श्रवण करो " ॐमितिब्रह्म । ॐमितीदꣳ सर्वम् । ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमिति सामानि गायन्ति । ॐ शोमिति शास्त्राणिशꣳसन्ति । ॐमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरंप्रतिगृणाति " अर्थ अब सर्व उपासना के अङ्गभूत ॐकारोपासना कहते हैं । ॐ, इस प्रकार का यह शब्दरूप ब्रह्म है, इस प्रकार मन करके ॐकारकी मात्रादिकों का स्मरण विचाररूप उपासना करे । अरु जिस करके ' ॐ ' इस प्रकार का शब्द यह सर्व है । अर्थात् शब्दरूप यह सर्व प्रपञ्च एक ॐकारसेही व्याप्तहै, अरु जो वाच्य (नामी) है सो वाचक (नाम) के अधीन है, एतदर्थ यह सर्व ॐ कारही है, इस प्रकार कहते हैं ॥ अब ॐकारको सर्व से ज्येष्ठ श्रेष्ठ होनेसे तिसकी स्तुति कहते हैं । ॐकार को उपास्य होनेसे, ॐकार का यह अनुकरण है । अर्थात् जाते अन्य करके " कहता हौं वा पावता हौं, ऐसे कहे वचन को श्रवण करके , ॐ , ऐसे अनुकरण करता है, एतदर्थ ॐकार अनुकरण है, यह ॐकार का अनुकरणपना असिद्ध है । अरु , ॐ , इस प्रकार श्रवण करावो, इस कथन को प्राप्तहुए पुरुष उस ॐकार के उच्चारणपूर्वक श्रवण करावताहै तैसेही जो सामवेद के गायनकरनेवाले पुरुष हैं सो ' ॐ ' इस प्रकार सामोंको गायन करते हैं । अर्थात् सामवेदके गान करके सर्वसामग ॐकारही को गायन करते हैं । अरु जो ऋचा के पाठक हैं सो ' ॐशो ' ऐसे शास्त्र कहिये गानरहित केवल ऋचा को कथन करते हैं । अरु तैसेही जो अध्वर्यु । अर्थात् यज्ञविषे यजुर्वेदीय ऋत्विज् विशेष । है सो ' ॐ ' इस प्रकार प्रतिगर (वेद के शब्द विशेष) को हवन करनेवाले के कथन कथन प्रति उच्चारण करता है । अर्थात् यज्ञ में ऋग्वेदीय ऋत्विज् हवन करनेवाला होता है सो जब मन्त्रों को उच्चार करता है तब अध्वर्यु उसके प्रतिमन्त्र के साथ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐकारपूर्वक प्रतिगर का उच्चार करता है। अरु जो ब्रह्मा (यज्ञकर्म का कर्ता। वा यज्ञ में दक्षिणादिशा में स्थित होय यज्ञ का रक्षण करने वाला। ऋत्विजूविशेष) है सो 'ॐ' इस प्रकार अनुमोदन करता है अरु 'ॐ' इस प्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करता है।। अर्थात् होता करके होम करता हौं, इस प्रकार के कथन कियेहुए को 'ॐ' ऐसे कहके अनुमोदन करता है। अरु जो ब्राह्मण है सो 'ॐ' इस प्रकार कहने को इच्छता हुआ, अध्ययन करता हुआ 'ॐ' ऐसे ही कहता है। अर्थात् अध्ययन करने को ॐकाररूप से ग्रहण करता है। अरु ब्रह्म 'कहिये वेद' को प्राप्त होऊंगा इस प्रकार इच्छा करता हुआ 'ॐकारद्वारा वेदकोही प्राप्त होता है' वा ब्रह्म 'कहिये परमात्मा' को प्राप्त होऊंगा इसप्रकार आत्माको प्राप्त होनेकी इच्छा को करता हुआ 'ॐ' ऐसेही कहता है। अर्थात् आत्मकामा पुरुष ॐकारकी उपासना द्वारा आत्मपद को प्राप्त होता है इन सर्वका अभिप्राय यह है कि ॐकार के उच्चारणपूर्वक करीहुई सर्व क्रिया को फलवान्पना है, एतदर्थ ॐकाररूप ब्रह्म की उपासना करनी योग्य है यह इस का तात्पर्य है॥

इति तैत्तिरीयउपनिषद्सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार॥

अथ सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासनविचारः॥

ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत॥ ॐमित्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥ एषां भूतानां पृथिवीरसः पृथिव्या आपोरसः अपामोषधयोरसः ओषधीनां पुरुषोरसः पुरुषस्य वाग्रसोवाच ऋग्रसऋचःसाम साम्नः उद्गीथोरसः॥ सएषरसानाछं रसतमः परमः पराद्धर्योऽष्टमोयदुद्गीथः॥ त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रथमस्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी। तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्तिब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति इति ॥

अब सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषत्सम्बन्धि प्रणवोपासनाविचार ॥

हे सौम्य ! अब सामवेदीय छान्दोग्यउपनिषद्सम्बन्धी प्रणवोपासनविचार॥ संक्षेपमात्र श्रवण करो । इस उपनिषद् में 'प्राण' आदित्य आदि, अनेक दृष्टि से प्रणवोपासना कही है सो सर्व यहां न कहके ॐकार की रसतमत्वादि श्रेष्ठता अरु ब्रह्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन अरु मोक्षसाधनता संक्षेपमात्र कहता हौं । अरु इसका सविस्तर विचार इस उपनिषद् की व्याख्या में होगा "ॐमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" । 'ॐ' यह जो एक वर्णात्मक अक्षर है सो परब्रह्म का प्रतीक, मुख्य नाम होने से इसकी अपरब्रह्मरूप से उपासना कर्तव्य है, क्योंकि यह परब्रह्म का प्रतीक अरु नाम होने करके इसकी उपासना से परब्रह्म प्रसन्न होता है, जैसे लोक बिषे जिसका प्रियनाम लेके बोलावने से वह नामी प्रसन्न होता है तैसे, । अरु यह परब्रह्मका प्रतीक (प्रतिमा) अरु नाम है ताते इसबिषे ब्रह्मबुद्धि कर इसकी मात्राओं के विचारपूर्वक इसके लक्ष्य की ध्यानादि रूप से उपासना कर्तव्य है । अर्थात् इस ॐकार अक्षर की ध्यानादिरूप से उपासना कर्तव्य है अर्थात् इस ॐकार अक्षरकी जपरूपसे वा ध्वनिरूप से अरु मात्राओंके भेद विचार रूपसे उपासनाकरे । अरु मात्राओं के क्रमशः लयचिन्तनपूर्वक मात्रादिकोंके अधिष्ठानअक्षर परब्रह्म से अपने को अभेद अनुभवकर तादात्म्य स्थिति (निर्विकल्पसमाधि) रूप से ध्यानरूप उपासना करे । । जैसे शालग्राम नामक शिलाबिषे विष्णुबुद्धि करके तिसका पूजनादिरूप उपासन, अरु तिस शालग्रामरूप आलम्बन करके तिस करके लक्षित लक्ष्य सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ वा श्यामसुन्दर चतुर्भुजादि नामरूप अव-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यत्ववान् वैकुण्ठाधीश विष्णु का ध्यान लोक बिषे प्रसिद्ध है तैसे ॥ अरु परमात्मा की मुख्य उपासना बिषे मुख्य आलम्बन अरु परमात्मा का प्रतीक (स्मारकप्रतिमा) होनेसे, इस ॐकार को सर्ववेदान्त उपनिषदों बिषे सर्वसे श्रेष्ठ करके कहाहै, अतएव यह श्रेष्ठ है, अरु ,जप, कर्म, स्वाध्यायादिकोंमें सर्वसे प्रथम ॐकारका स्मरण करतेहैं, अरु जिस जपादि कर्म में प्रथम इसके उच्चारण स्मरणपूर्वक जप कर्मादिकों को करते हैं सोई फलवान् होता है, एतदर्थ भी यह सर्व से श्रेष्ठ है। अतएव इस वर्णात्मक ॐकार अक्षर उद्गीथकी उपासना सर्वोत्तमहै। ताते श्रद्धा भक्ति जितेन्द्रिय समाहितचित्त होय इस ॐकारकी उपासना कर्तव्य योग्य है। अरु सामवेदीय उद्गाता (सामवेदका गायन करनेवाला) ऋत्विज् विशेष यज्ञादिकों में ॐकारका गायन करता है अतएव इसको उद्गीथ कहतेहैं। अर्थात् उद्गाता जो सामका गायन करता है सो 'ॐ' इस अक्षर के स्मरणपूर्वक करताहै। ताते ॐकार को उद्गीथ विशेषणसे कहतेहैं॥ अरु यह जो ॐकार की उपासना, श्रेष्ठता, विभूति, फलादिक है सो इस ॐकार का उपव्याख्यान है॥ अब इस ॐकार की सर्वोत्तमता को श्रवण करो, हे सौम्य! "एषां भूतानां पृथिवी रसः" इन सर्व चराचर भूतों का पृथिवीरस (गति,परायण, अवष्टम्भ)है। अर्थात् गति कहिये उत्पत्ति का कारण है, अरु परायण कहिये सर्व चराचर भूतों की स्थिति का हेतुहै, अरु अवष्टम्भ कहिये प्रलय में निदान है। यह , गति, परायण, अरु अवष्टम्भ, इन तीनों पदों का भेदहै॥ ऐसी जो सर्वचराचरभूतोंका ,रस, पृथिवी तिसका जल रस है " अप्सु ह्योताच प्रोताच " यह बृहदारण्यके पञ्चमाध्याय की श्रुति है। इस , रस, शब्दका अर्थ कारणता अरु सारभूतता बिषे जानना। तिस जल का ओषधि रस है। शङ्का, ओषधि को जल के कारणत्व का अभाव होनेसे उसको जलका रसत्व कैसे है। तहां समाधान कहते हैं, ओषधि जल का परिणाम सार है; एतदर्थ उसको जल का रस कहते हैं। अरु ओषधी का रस (सार) पुरुष ' कहिये शरीर, है क्योंकि यह शरीर अन्नरूप ओषधिका परिणाम (सार) है ताते। अर्थात् " एषां भूतानां " यहां से लेके "आपोरसः"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहां पर्यन्त रस शब्द का अर्थ कारण (आश्रय) परत्व जानना, अरु इससे आगे रसशब्द का अर्थ सारपरत्व है ऐसे जानना ।। अरु शरीर-रूप पुरुष का रस वाणी है, क्योंकि शरीर के अवयवों में वाणी श्रेष्ठ है ताते, अरु वाणीकोही लोक बिषे सरस रसना रसवती, इत्यादि विशेषणों से कहते हैं । अरु तिस वाणी का रस, कहिये सार, ऋचा है । अरु तिस ऋचाओं का सामरसतर है ' अर्थात् सार है । अरु तिस ऋचाओं के सारतर साम का उद्गीथ, ॐकार, सारतरहै । इस प्रकार यह उद्गीताख्य ॐकार चराचर भूतों का उत्तरोत्तर रसों का अतिशय करके रसतर है । अर्थात् जैसे इक्षुरस का सार गुड़ वा राब है, तिसका सार शक्कर है, तिसका सार खांड़ है, तिसका सार बूरा है, तिसका सारतर कन्द वा मिसरी है, तैसें ।। अरु परमात्मा का प्रतीक होने से इस ॐकार को परार्ध्य कहते हैं अर्थात् परमात्माकी उपासनाका स्थान होने से यह वर्णात्मक ॐकार अक्षर परमात्मावत् मुमुक्षुओं करके उपास्य है इत्यभिप्रायः ॥ अरु पृथिव्यादि रसों की संख्या से यह अष्टम है, अत एव इसको अष्टम कहा है, अर्थात् भूतों का रस पृथिवी १, पृथिवीका जल २, जल का ओषधि ३, ओषधिका शरीर ४, शरीर का वाणी ५, वाणीका ऋचा ६, ऋचाका साम७,सामका उद्गीथ ॐकार८, । इसप्रकार पृथिव्यादि उत्तरोत्तर रसों का अष्टम रस होनेसे ॐकार को " रसतमः" सर्वोत्कृष्ट रसतर कहा है ॥ हे सौम्य ! अब इस छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय प्रपाठक के षष्ठ खण्ड बिषे प्रणव को अमृतत्व (मोक्ष) प्राप्ति का साधन कहा है, तहां तिसकी विधि के अर्थ प्रथम " त्रयोधर्म स्कन्धाः " धर्म के तीनस्कन्ध (भेद) कहेहैं, तहां " यज्ञोऽध्ययनं दान मिति, प्रथम " अग्निहोत्रादि कर्म करना, अरु नियमसे ऋगादि वेदों का अध्ययन करना, अरु भिक्षुक याचक को दान देना, यह धर्म का प्रथम स्कन्ध है, सो मुख्य करके गृहस्थ का धर्म है । यहां जो प्रथमाश्रमी ब्रह्मचारी के धर्मको त्यागके गृहस्थ के धर्मको प्रथम कहा है सो वानप्रस्थ की अपेक्षा से आर्षछान्दस प्रयोगसे क्रमव्यत्ययसे वा गृहस्थ को अन्य तीनों का रक्षक पोषक होने से कहा जानना ।। अरु " तप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एव द्वितीयः " कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तप, धर्मका द्वितीय स्कन्ध है, सो वानप्रस्थका धर्म जानना। यहां जो वानप्रस्थ के धर्मको। जो तृतीयहै, द्वितीय करके कहा है सो गृहस्थ के प्रथमकी अपेक्षा से जानना। अरु " ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य कुलेऽवसादन् " आचार्यकुल में वास करनेका शील, कहिये स्वभाव, है जिसका, ऐसा आचार्यकुल वासी ब्रह्मचारी, अर्थात् केवल वेदाध्ययन करनेमात्रही को आचार्य कुल में वास न करके आजन्मपर्यन्त ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में वास करके वहांही देहत्याग करना, इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के लखावने के अर्थ " अत्यन्त " यह पद दिया है। अर्थात् विधिपूर्वक जो नैष्ठिक ब्रह्मचर्यहै सो धर्मका तृतीय स्कन्धहै। इस उक्त प्रकार के धर्मवान्, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यह तीनों अपने अपने धर्माचरण के प्रभाव से स्वर्गादि पुण्यलोक को प्राप्त होते हैं, अतएव इन तीनों को " पुण्यलोका " इस विशेषण से कहाहै॥ अरु इनतीनों की अपेक्षा से जो चतुर्थ संन्यासी है सो " ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " ब्रह्म जो ॐकार तिसकी उपासना में स्थित होने से तिस उपासना के प्रभावकरके अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त होताहै। अर्थात् यहां जो केवल संन्यासी को ही प्रणवोपासना कहा है तिसका हेतु यह जानना कि सामान्य रीति से तो चारोही आश्रम के पुरुष प्रणवोपासनाके अधिकारी हैं परन्तु संन्यासी को अन्य अग्निहोत्रादि कर्मों के त्यागपूर्वक शमदमादि करतसन्ते केवल प्रणवोपासनाका अधिकारहै, ताते उसको प्रणवोपासना का अधिकार विशेष होनेसे उसको " ब्रह्मसंस्थो " यह विशेषण दिया है। अरु पूर्वोक्त प्रकार ॐकार के लक्ष्य परमात्मा की ॐकाररूप आलम्बन से उपासना करनेवाला अमरणभाव (मोक्ष) को प्राप्त होताहै, अतएव कहाहै कि " ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " प्रणवोपासक मोक्षको प्राप्त होता है॥

इति सामवेदीयछान्दोग्यउपनिषत्सम्बन्धि
प्रणवोपासनविचारः समाप्तः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ यजुर्वेदीयबृहदारण्यकउपनिषद्सम्बन्धी प्रणवोपासनविचारः प्रारभ्यते ॥

ॐ ३ खं ब्रह्म ।

खं पुराणं वायुरं खमिति ह स्मा ह कौरव्यायणीपुत्रो वेदोऽयं ब्राह्मणा विदुर्वेदनेन यद्वेदितव्यम् ॥ इति ॥

अब यजुर्वेदीयबृहदारण्यकउपनिषत्सम्बन्धि प्रणवोपासना विचार ॥

हे सौम्य ! अब यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् के सप्तमाध्याय सम्बन्धी प्रणवोपासन विचार संक्षेपमात्र कहताहौं सो श्रवण करो यहां सो "ॐ ३ खं ब्रह्म" यह ब्राह्मणभागका मन्त्र है । तिसमें ॐकारका वाच्य जो ब्रह्म तिसका खं विशेषण है । अर्थात् निराकार सर्वव्यापी परिपूर्ण एकरस ब्रह्म है सो विशेष्य है, अरु तैसा होनेसे ,खं, उसका विशेषण है । अरु विशेष्य विशेषण का समानाधिकरण होनेसे इसका ,नीलकमलवत्, "खं ब्रह्म" ऐसा निर्देश (उपदेश) है अरु ब्रह्म शब्द विशेष करके बृहत् (बड़े) का बोधक है, अतएव उसको आकाश का विशेषण देके ,खं ब्रह्म, कहा है । जो सो खं विशेषणवाला ब्रह्म है सो ,ॐ, शब्द का वाच्य होनेसे 'ॐ' यह शब्दरूप है, अरु उक्तप्रकारके विशेष्य विशेषणकरके अरु वाच्य वाचकता करके उभयथा भी उसका सामानाधिकरण अविरुद्ध है, अतएव ब्रह्मोपासन साधने के अर्थ ,ॐ, यह शब्द युक्तही है । अरु श्रुत्यन्तरमेंभी कहाहै तथाच "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनम्परम्" । "परमोभित्यात्मानं युञ्जीत" । "ॐमित्येवं ध्यायथ आत्मानमित्यादि" अरु ॐकारका अन्यार्थ असंभवहै, जैसे अन्यत्र "ॐमिति शंसत्योमित्युद्गायतीति" कहाहै सो, स्वाध्यायके आरम्भ अपवर्ग के बिषे ॐकार का प्रयोग विनियोग होनेसे कहाहै नतु तहां अर्थान्तरके हेतु एतदर्थ ध्यान साधनत्व करके ॐकारका उपदेश है । अरु यद्यपि ब्रह्म, आत्मा, इत्यादिक जो शब्द है सो ब्रह्म वस्तु के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वाचकनाम है, तथापि श्रुतियों के प्रमाण से ब्रह्म का उपदेश ॐकार करके ही है, अतएव ब्रह्मप्राप्ति की इच्छावाले को ब्रह्मप्राप्ति के अर्थ ॐकार सर्वोत्तम साधन है। अरु यहां जो ॐकार ब्रह्म का ,खं, आकाश विशेषण है तिस करके भूताकाश को न ग्रहण करके ॐकार के लक्ष्य चिदाकाश (चैतन्याकाश) का ग्रहण है, सो कैसा है पुराण कहिये चिरन्तन है। अर्थात् उत्पत्त्यादि रहित अनादि है। अरु उसको "सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यम्" "सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति" इत्यादि प्रमाणकरके पृथिव्यादि भूतों से आकाश सूक्ष्म है अरु आकाश से सर्व शक्ति की समष्टतारूप अव्याकृतनाम आकाश, जो चिदाकाश रूप अक्षरबिषे ओतप्रोत है, सूक्ष्महै। अरु तिससे सूक्ष्म ॐकार का लक्ष्य चैतन्याकाश परम सूक्ष्म है, अतएव उसको सूक्ष्म से भी सूक्ष्म कहते हैं। ताते उस महासूक्ष्म अक्षर आत्मा ब्रह्मको आलम्बन विना जानने को कोई भी शक्य नहीं, अतएव जैसे लोक विष्णुआदिक देवता के आकार से अङ्कित पाषाणादिकों बिषे विष्णु आदिकों की भावना करते हैं, तैसेही श्रद्धाभक्ति भाव विशेष करके परब्रह्म का प्रतीक जो ॐकार अपरब्रह्म तिसबिषे परब्रह्म की भावनाकर उपासना करनी। अरु "वायुरं खमिति" ,वायुरं, कहिये जिस आकाशबिषे वायु विद्यमान होय तिस आकाश को ,वायुरं, कहते हैं। अर्थात् वायु कहिये सूत्रआत्मा समस्त जगत् को, जैसे सूत्र में माला के मणिके तैसे, अपने बिषे धारके जिस परमाकाश बिषे स्थित है तिस चैतन्याकाश प्रणव के लक्ष्य को ,वायुरं, कहते हैं, ,सो कौन जानता है, कौरव्यायणी का पुत्र जानता है, अतएव ,खं, इस शब्द का अर्थ यहां चैतन्याकाश ही युक्त है, ऐसा मानते हैं। तात्पर्य यह है कि ,खं, शब्द करके निरुपाधि ब्रह्म, अरु ,वायुरं, इस करके सोपाधि ब्रह्म, सो उभयप्रकार के ब्रह्म का बोधक ॐकार ही है, क्योंकि परब्रह्म का प्रतीक होने से, प्रतिमावत् साधनरूप से प्रतिपाद्य है। तथाच "एतद्वैसत्यकामपरञ्चापरञ्चब्रह्मयदोंकारइति" अरु यह ॐकार वेद है, जो जानने योग्य वस्तुहै सो जिस करके जानीजाय तिसका नाम वेद है, सो मुमुक्षुओं करके अज्ञाना-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वस्था में जाननेयोग्य ज्ञेयरूप जो परब्रह्म आत्मा सो दुर्विज्ञेय होने से ॐकाररूप आलम्बनद्वारा ही जानाजाता है, अरु ऋगादि वेदों का बीज (कारण) होने से ॐकार ही वेद है ' जैसे नाम करके नामी जानाजाता है तैसे, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ' यह ॐकार ही वेद है इस प्रकार जानते मानते हैं ॥

इति यजुर्वेदीयबृहदारण्यउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवो-
पासनाविचारसमाप्तम् ॥

हे सौम्य ! इन ईशादि सर्व उपनिषद् करके प्रतिपाद्य ॐकारोपासन कहने का अभिप्राय यह है कि मुमुक्षु को ब्रह्मभावरूप मोक्ष की प्राप्ति के अर्थ त्रिमात्रिक प्रणवोपासनारूप आलम्बन सर्वोत्तम है " नातःपर मस्ति " इससे उत्तम और आलम्बन कोई नहीं । अरु विष्णुआदिकों की प्रतिमावत् यह ॐकार परमात्माकी प्रतिमास्मारक (स्मृतिकरावने-वाला) है । अरु यही उस अनामी परमात्मा का मुख्य नाम है, अत एव इसको परमात्मप्राप्ति में मुख्य आलम्बन जान के मुमुक्षुओं करके इस ॐकार की उपासना अवश्य कर्तव्य है ॥

इति श्रीईशादिसर्वउपनिषद्सम्बन्धीप्रणवोपासन
विचारसंक्षेपतःसमाप्तम् ॥

अब हिरण्यगर्भादिसप्तसिद्धान्तसम्बधीप्रणवो पासन विचार ॥

हे सौम्य ! समस्त शास्त्रों के सात सिद्धान्त हैं, तहां प्रथम हिरण्य-गर्भ (ब्रह्माजी) का सिद्धान्त १ । द्वितीय सांख्यशास्त्र के कर्ता कपिल देवका सिद्धान्त २ । तृतीय कर्मवादी अपान्तरतम मुनिका सिद्धान्त ३ । चतुर्थ सनत्कुमारों का सिद्धान्त ४ । पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त ५ । षष्ठ पशुपति शिवजी का सिद्धान्त ६ । सप्तमपञ्चरात्र विष्णुजी का सि-द्धान्त ७ ॥ इस प्रकार सात सिद्धान्त हैं तहां सातों सिद्धान्तकारोंने तीन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्रा के तीनतीन भेदसे एक ॐकार के नवनव भेदसे उपासना किया अरु कहा है, अतएव सातों सिद्धान्त करके एक ॐकारकी मात्राके ६३ भेद हुए हैं। अब इन प्रत्येक सिद्धान्तकारों करके कहे जे ॐकार की मात्रा के भेद सोभी तुम्हारे प्रति कहताहौं तिसको भी श्रवणकरो॥

अथ प्रथमो हिरण्यगर्भसिद्धान्तः॥ १॥

हे सौम्य! हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के मतवादी पुरुष ऐसा कहते हैं कि जिस जिज्ञासु को परमात्मयोग (परमात्मा जीवात्मा का अभेद) पावने की इच्छा होय सो ॐकार की इस प्रकार उपासना करे कि जो परमात्मा का वाच्य ॐकार त्रिमात्रिकरूप है सो 'तीनमात्रा का रूप है, तीन ब्रह्मरूप है, तीन अक्षररूप है, ऐसा जानके जो ॐकार की उपासना करता है सो परमपद को प्राप्त होता है, अब इसका विस्तार श्रवण करो। 'अग्नि, वायु, सूर्य, यह तीन ॐकार की मात्रा हैं। अरु 'ऋग्, यजु, साम, यह तीन वेद ॐकार के ब्रह्म हैं। अरु 'अकार' उकार, मकार, यह तीन ॐकार के वर्णात्मक अक्षर हैं। इसप्रकार का है स्वरूप जिसका ऐसा जो ॐकार है सो परमपद है। (अर्थात् उक्त प्रकार का ॐकार परब्रह्म का प्रतीक होने से इसको परमपद कहते हैं क्योंकि इसकी उपासना से मुमुक्षुओं को परमपद (ब्रह्मपद) की प्राप्ति होती है, ताते इसको परमपद कहते हैं। अरु यही ॐकार परब्रह्म प्राप्ति का मुख्य आलम्बन होनेसे मुमुक्षु की परमगति है "गतिरत्रनास्ति" यहां इस मोक्षमार्ग बिषे इस ॐकारोपासन से इतर गति (आश्रय) अन्य कोई नहीं। इस प्रकार शास्त्रतः वा गुरुतः सम्यक्प्रकार जानके जो ॐकार की उपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होते हैं वो पुनः जन्म मरण को प्राप्त होते नहीं। प्रथम जो 'अग्नि, वायु, सूर्य, यह तीन मात्रा कहीं हैं तिनका व्यष्टि में इसप्रकार विचार है कि 'जीव, ईश्वर, आत्मा, यह तीन मात्रारूप जानने, तहां 'सर्व अन्न का भोक्ता वैश्वानररूप से सर्व देहों में स्थित है सो जीव है, 'भोक्ता होने से, अरु प्राणरूप सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ सर्व देह में व्याप्त ईश्वर है, सर्व

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संघात को धारणकर्ता सर्व में ज्येष्ठ श्रेष्ठ होने से । अरु , सूर्य, साक्षी आत्मा है, सर्वका प्रकाशक सर्व से असंग सर्वका द्रष्टा होने से । अरु , ऋग्, यजु, साम इन तीनों के कहने से शब्द ब्रह्म को जानना, क्योंकि सर्व शब्दों का बीजरूप ॐकार है । अरु , अकार, उकार, मकार, यह तीन वर्णात्मक अक्षर कहे हैं, तिन करके जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था रूप कार्य कारणात्मक प्रपञ्च जानना, क्योंकि माडूक्योपनिषद् बिषे जाग्रदादि अवस्थारूप पादों की अकारादि मात्रा के साथ एकता कही है । अतएव प्रथम कही जो मात्रा तिसको जाग्रत् स्थानादिरूप प्रथमपाद अकारमात्ररूप जानना , अरु शब्दब्रह्म को सूक्ष्म होने से सूक्ष्म स्वप्नावस्थादि स्थानरूप को उकार मात्रारूप जानना, अरु सर्व के साक्षी आत्मा को सर्वका कारण होने से उसको सर्वका कारण सुषुप्तिअवस्था प्राज्ञाभिमानीरूप मकार मात्रारूप जानना । इस प्रकार व्यष्टि समष्टि की एकताकर पुनः तिसकी मकारादि मात्रासाथ एकता विचारके इन सर्व को ॐकाररूप जानके जो मुमुक्षु परब्रह्म के प्रतीक त्रिमात्रिक ॐकार की उपासना करता है सो पुरुष ॐकार के लक्ष्यरूप परब्रह्मरूप परमपद को प्राप्त होता है पुनः वो संसार बिषे आवते नहीं । इस प्रकार हिरण्यगर्भ सिद्धान्त के मतवादी प्रणवोपासन मानते करते कहते हैं ॥

इति प्रथमो हिरण्यगर्भ सिद्धान्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयः कपिलदेवसिद्धान्तः ॥ २ ॥

हे सौम्य ! सांख्यशास्त्र के कर्ता कपिलदेवजी के सिद्धान्त बिषे इस प्रकार कहा है कि, जब मुमुक्षु पुरुष , तीन ज्ञान, तीन गुण, तीन कारण इन नौ भेदवाले एक ॐकार को जाने तब मोक्ष को प्राप्त होवे । अब इनका भेदार्थ श्रवण करो, तीन प्रकार का जो ज्ञान कहा है सो इस प्रकार है कि एक व्यक्त ज्ञान है दूसरा अव्यक्त ज्ञान है, तीसरा ज्ञेय ज्ञान है, । तहां , आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पञ्च महाभूत, अरु इनका कार्य घट पट देहादि प्रपञ्च है सो सर्व व्यक्तरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आगमापायि अनित्य है कधी इनका भाव होता है कधी अभाव होता है। ताते यह सत्य न होयके असत्यही है। इनका जो यथार्थज्ञान है सो प्रथम व्यक्तज्ञान है। अरु इनका जो कारण, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, यह पांच तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्त्व, अरु प्रकृति, यह आठों अव्यक्तरूप हैं, ताते जो इनका यथार्थ ज्ञान है सो अव्यक्तज्ञान है। अरु ज्ञेय, कहिये जाननेयोग्य। अर्थात् मुमुक्षु को अज्ञानपर्यन्त जानने योग्य अरु ज्ञानहुए अपना आप ज्ञानरूप। ऐसा जो चैतन्य आत्मा पुरुष तिसका जो यथार्थ ज्ञान सो ज्ञेय ज्ञानहै। इसप्रकार व्यक्त अव्यक्त अरु ज्ञेय, इन तीनों का जो जानना है सोई तीनप्रकार का ज्ञान है। हे सौम्य! अब इन सर्वको जिस प्रकार जानना है सो भी श्रवणकरो, जो मूलप्रकृति है सो अव्यक्तरूप है अरु सूक्ष्म स्थूल सर्व का कारण है, वो कार्य किसी का भी नहीं। अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पंचतन्मात्रा, यह सात कारणरूप भी हैं अरु कार्यरूप भी हैं, तहां कार्य तो प्रकृति के हैं अरु कारण, पञ्च महाभूत दश इन्द्रिय अरु एक मन इन, षोडश पदार्थोंके हैं, अतएव इनको प्रकृति विकृति भी कहते हैं, अरु उक्त षोडश पदार्थ केवल कार्यरूपही हैं वो कारण किसी के भी नहीं ताते उनको केवल विकृतिरूपही कहते हैं। अरु पुरुष जो चैतन्य है सो न तो किसीका कारणहै न किसीका कार्य है केवल स्वयंज्योति सर्व का साक्षी निराकार निर्विकार कूटस्थ है। अर्थात् व्यक्त जो स्थूल प्रपञ्च है सो केवल कार्यरूपहै, अरु महत्तत्त्व अहंकार अरु पञ्चतन्मात्रा यह सात उक्तप्रकार कारणरूप भी हैं अरु कार्यरूपभी हैं, अरु अव्यक्त प्रकृति जिसको प्रधान भी कहते हैं सो केवल कारणरूपही है, अरु पुरुष ज्ञानरूप है। इन सर्वको यथार्थ जानना तिसका नाम तीनप्रकार का ज्ञान है। अरु, सत्त्व, रज, तम, यह तीन गुण हैं, तहां सत्त्वगुण से ज्ञान अरु दैवी सम्पदा होते हैं, रजोगुण से काम रागादि होते हैं, तमोगुण से प्रमाद आलस्य निद्रा क्रोध हिंसादि आसुरी सम्पदा होते हैं। अरु पुनः सत्त्वगुण से देवतादिक होते हैं, रजोगुण से मनुष्यादि होते हैं, तमोगुण से पशु वृक्षादि होते हैं, पुनः सत्त्वगुण से स्वर्गादि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तमलोक होते हैं, रजोगुण से मनुष्य लोकादि मध्यम लोक होते हैं, अरु तमोगुण से नरकादि अधम लोक होते हैं, इसप्रकार त्रिगुणात्मक सर्व कार्य जानना । यह तीन ॐकार के गुण हैं ॥ अरु तीन कारण हैं तहां एक मन, द्वितीय बुद्धि, तृतीय अहंकार, इसही तीनकरके सर्व प्रवृत्ति होती है अतएव यह तीनों कारण हैं ॥ हे सौम्य ! यह सर्व कथन से यह जानना, जो ॐकार का लक्ष्य परब्रह्म है सोई अव्यक्तरूप है अरु सोई व्यक्तरूप है अरु सोई पुरुष ज्ञेयरूप है । ताते कारणरूप भी वोही है अरु कार्यरूप भी वोही है अरु साक्षीरूप भी वोही है, ताते सर्व ॐकाररूप ही है । अरु ॐकार बिषे जो दो मात्रा हैं अकार अरु उकार तिसको कार्य कारणात्मक प्रकृतिरूप जानना अरु यह व्यंजन जो मकार है जिसको अनुस्वार कहते हैं सो चैतन्य पुरुषरूप है । अरु ॐकार तीनमात्रा करके त्रिगुणरूप है एतदर्थ समस्त प्रपञ्च त्रिगुणात्मक ॐकारही है, अरु व्यञ्जनरूप निर्गुण परमपुरुष है ताते सर्व ॐकारही है । अरु इस ॐकार का वाच्य प्रकृत्यात्मक प्रपञ्चहै । अरु इसका लक्ष्य सर्व का साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान सच्चिदानन्द आत्मा है । ताते जो पुरुष उक्त प्रकार जानके परब्रह्म के वाचक प्रतीक ॐकार की उपासना करता है सो तिस उपासनरूप आलम्बन करके परमपद को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य ! पूर्व जो व्यक्तज्ञान, अव्यक्तज्ञान अरु ज्ञेयज्ञान यह तीन प्रकार का ज्ञान, अरु सत्त्व रज तम, यह तीनगुण, अरु मन बुद्धि अहंकार, यह तीन कारण कहे हैं । तहां स्थूलव्यक्त प्रपञ्चसहित व्यक्तज्ञान, अरु सत्त्वगुण अरु मन कारण, इस सर्व का समुच्चय जाग्रदवस्थारूप प्रथम पाद को अकाररूप प्रथम मात्रा साथ एक करे, पुनः अव्यक्त प्रपञ्चसहित अव्यक्तज्ञान अरु बुद्धिकारण अरु रजोगुण इन सर्वका समुच्चयरूप स्वप्नावस्था को, क्योंकि स्वप्न का प्रपञ्च सूक्ष्म होनेसे अव्यक्त है, अरु तिसका रजोगुण है बुद्धि तिसका कर्ता है, ताते अव्यक्त प्रपञ्चसहित अव्यक्तज्ञान रजोगुण अरु बुद्धि कारण, इन तीनों के संघातरूप स्वप्नावस्था द्वितीयपाद को दूसरी उकारमात्रा साथ एककरे, अर्थात् सूक्ष्मप्रपञ्च को उकार मात्रारूप जाने,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु ज्ञेयज्ञान, तमोगुण, अरु अहंकार कारण, इनतीनों का संघातरूप सुषुप्त्यवस्थारूपपाद को तीसरी मकारमात्रा साथ एककरे। इसकारण तीनों पादों को विभाग से विचारके मात्राओं के साथ एक करके एक परब्रह्म सर्वाधिष्ठान अक्षर परमात्मा का प्रतीक जो ॐकार तिसकी उपासना करे तब तिस उपासन विचाररूप आलम्बन के प्रभाव से उपासक मुमुक्षु ॐकार के लक्ष्य सर्व के अधिष्ठान आश्रय अक्षर परमात्मरूप परमपद को प्राप्त होता है॥

इति द्वितीयःकपिलदेवसिद्धान्तः॥ २॥

अथ तृतीयोऽपान्तरतममुनिसिद्धान्तः॥ ३॥

हे सौम्य! अपान्तरतम मुनि कहते हैं कि जो जिज्ञासु पुरुष ॐकार ब्रह्म को, त्रिमुख, तीन देवता, तीन प्रयोजन, इन नव नामरूप करके सुशोभित है, यथार्थ जानके, तिसकी सम्यक्प्रकार उपासना करता है सो परमपद को प्राप्त होता है॥ अब इसका अर्थ सुनो। तीन जो अग्नि हैं सोई तीन मुख हैं, तहां एक गार्ह्यपत्य नाम अग्नि है, दूसरा दक्षिणाग्नि है, अरु तीसरा आहवनीय नाम अग्नि है। तहां गृहस्थाश्रम का जो महानस (रसोई के स्थान) बिषे जो अग्नि है कि जिस करके पाक सिद्ध होता है, तिस अग्नि को गार्ह्यपत्य नाम से कहते हैं, अरु जिस अग्नि बिषे अग्निहोत्र होता है तिसको दक्षिणाऽग्नि कहते हैं। अब इसका भेद सुनो जिस दिन इन ब्राह्मणादि वर्णत्रयीके पुरुषों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है उस दिवस जो वेदोक्त मन्त्रों से अग्नि स्थापित होता है तिसका नाम दक्षिणाऽग्नि है, तिसबिषे प्रातःकाल अरु सायंकाल दोनों कालों बिषे वेदोक्त मन्त्रों से नित्य आहुति देना, इस प्रकार अग्निहोत्र होता है तिसको वा जिस बिषे वशीकरणादि प्रयोगार्थ हवन होता है तिसको दक्षिणाऽग्नि नाम से कहते हैं, अरु जिस अग्नि बिषे यज्ञादि होते हैं अरु जिसकी आराधना से सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं तिस अग्नि को आहवनीय नाम से कहते हैं। इस प्रकार जो उक्त तीन अग्निहैं तिसको त्रिमुख कहते हैं। अरु, ब्रह्मा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्णु, रुद्र, यह तीन देवता हैं । अरु धर्म अर्थ काम, यह तीन प्रयोजन हैं ॥ अब पुनः श्रवण करो तीन जो अग्नि कही हैं सो जगत् के उत्पत्ति पालनसंहार का हेतु (कारण) है, तहां " यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्यो " इत्यादि प्रमाणसे आहवनीय अग्निमें यज्ञाहुतिद्वारा मेघ होते हैं मेघों द्वारा वर्षा होती है वर्षाद्वारा अन्न होता है अन्नद्वारा प्रजा होती है, ताते आहवनीय नामवाला अग्नि जगदुत्पत्ति का कारण है । अरु गार्ह्यपत्याग्नि जो (पाकशाला) का अग्नि है सो अन्तरबाह्य का अन्न परिपक्व करताहै, ताते सो जगत् के पालन (स्थिति) का हेतु है । अरु जो अग्निहोत्र का अग्नि है तिस बिषे अग्निहोत्रकर्ता यजमान के शरीरपातोत्तर उसके शरीर का दाह होता है, ताते दक्षिणाऽग्नि जगत् के संहार का कारण है, अतएव उक्त प्रकार के तीनों अग्नि उक्त प्रकार जगत् के उत्पत्ति पालन संहार का कारण हैं । अरु यह सर्व जगत्के निर्वाहक ईश्वर हैं, एतदर्थ इनको त्रिमुख करके कहते हैं ॥ अरु ब्रह्मा विष्णु रुद्र, यह जो तीन देवता हैं सो भी जगत् की उत्पत्ति पालन संहार का हेतु हैं, तहां ब्रह्मा जगत् को उत्पन्न करता है, अरु विष्णु जगत् का पालन करता है, अरु रुद्र जगत् का संहार करता है, ताते उक्त तीनों देवता भी जगत् की उत्पत्ति स्थिति संहार का कारण होने से जगत् के निर्वाहक ईश्वर हैं । अरु धर्म, अर्थ, काम यह जो तीन प्रयोजन हैं सोभी जगत् के प्रवर्त्तक हेतु हैं, ताते सर्व जगत् ॐकारका वाच्य होने से ॐकाररूपहै अरु जगत् का वाचक ॐकारही नामनामी की एकता से जगत्रूप से सुशोभित है अरु ॐकारही जीव ईश्वर ब्रह्मरूप है, अर्थात् ॐकारका लक्ष्य प्रत्यगात्मा अकारमात्रा स्थूल प्रपञ्च जाग्रदवस्थारूप उपाधि का अभिमानी हुआ विश्व जीवरूप है, अरु उकारमात्रा सूक्ष्मप्रपञ्च स्वप्नावस्थारूप उपाधि साथ मिल तिसका अभिमानी हुआ तैजस स्वप्न का कल्पक ईश्वर है, अरु मकारमात्रा जाग्रत् स्वप्न स्थूल सूक्ष्म, का कारण सुषुप्त्यवस्था का अभिमानी मायाविशिष्ट सर्वका कारण होने से ब्रह्म है अतएव जीव ईश्वर ब्रह्म, यह तीनों रूप से सोपाधि हुआ ॐकार का लक्ष्य प्रत्यगात्माही सुशोभित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है। इस प्रकार यथार्थ जानके जो ॐकारोपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्त होतेहैं। इस प्रकार अपान्तर मुनि कहते हैं॥ हे सौम्य! अब इसका विचार श्रवण करो, यहां जो ,तीन अग्नि, तीनदेवता, तीन प्रयोजन, कहे हैं तहां जगदुत्पत्ति का कारण जे आहवनीय अग्नि अरु ब्रह्मादेवता अरु धर्म, इन तीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग विश्वाभिमानी, इसस्थूल प्रथमपाद साथ अभेदकर पश्चात् उस प्रथमपाद को अकार मात्रासाथ एक विचार उसको अकार मात्रारूप जाने। अरु दूसरा जो जगत् की स्थिति का हेतु जो ,गार्ह्यपत्य अग्नि, विष्णुदेवता, अरु अर्थ, इन तीनों को ,स्वप्नावस्था सूक्ष्मभोग तैजसाभिमानी, इस सूक्ष्म द्वितीयपाद साथ एक कर पश्चात् उस द्वितीयपाद को द्वितीय उकार मात्रा साथ अभेदकर उसको उकारमात्रारूप जाने अरु तृतीय जो ,दक्षिणाऽग्नि, रुद्रदेवता, अरु काम, इनतीनों को सुषुप्त्यवस्था आनन्द भोग अरु प्राज्ञाभिमानी, इसकारण तृतीयपाद साथ अभेद विचार पुनः तिस तृतीयपाद को तृतीय मकार मात्रासाथ एक कर तिसको मकार मात्रारूप जाने॥ इस प्रकार उक्त तीनों अग्निदेवता प्रयोजन को विभाग से अकारादि तीनों मात्रा साथ एक कर प्रपञ्चरूप नामी अरु ॐकार नाम इनको अभेद जानके जो ॐकारकी उपासना करता है अर्थात् ॐकार के जप अरु पादोंके भेद विचार उपासनरूप आलम्बन करके जो तिसके अधिष्ठान अक्षर चैतन्य आत्मा को सम्यक् प्रकार जानता है सो उपासक परमपद को प्राप्त होता है॥

इति तृतीयोऽपान्तरतममुनिसिद्धान्तः॥ ३॥

अथ चतुर्थस्सनत्कुमारसिद्धान्तः॥ ४॥

हे सौम्य! सनत्कुमार सिद्धान्तवाले पुरुष ॐकार की उपासना इस प्रकार करते कहते हैं कि जो जिज्ञासु पुरुष ,तीनकाल, तीनलिङ्ग, तीनसंज्ञा, यह नवनामरूपवाला जानके ॐकार की उपासना करता है, सो मोक्ष को प्राप्त होता है। अब इसका अर्थ भेद श्रवणकरो तीन काल उसको कहते हैं ,जो भूत, भविष्यत्, वर्तमानरूप काल है। तहां भूत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काल उसको कहते हैं जो पूर्व व्यतीतहुआ, अरु वर्तमानकाल उसको कहते हैं जो वर्तमान है, अरु भविष्यत्काल उसको कहते हैं जो आगे आवना है, अब इसको पुनः श्रवणकरो । हे सौम्य ! यह जो युग बर्तता है तिसके पूर्व जो युग व्यतीत हुआ सो भूतकाल कहिये है, अरु जो युग अब वर्तमान है सो वर्तमानकाल है अरु जो युग आगे आवना है सो भविष्यत्काल है। इसही प्रकार इस वर्तमान युगके आवान्तर जो वर्ष व्यतीत हुए सो भूतकाल है, अरु जो वर्ष बर्तताहै सो वर्तमान कालहै, अरु जो वर्ष अग्रिम आवना है सो भविष्यत्कालहै, तैसेही एक वर्ष के आवान्तर जो मास व्यतीत हुए तिनको भूतकाल कहतेहैं, अरु जो मास बर्तता है तिसको वर्तमानकाल कहते हैं, अरु जो मास अग्रिम आवने हैं तिनको भविष्यत्काल कहतेहैं ऐसेही एक मासके आवान्तर जो दिवस व्यतीतहुए तिनकी भूतकाल संज्ञा है, अरु जो दिवस बर्तता है तिसकी वर्तमान संज्ञा है, अरु जो दिवस अग्रिम आवने हैं तिनकी भविष्यत् काल संज्ञा है ।इसही प्रकार एक वर्तमान दिवस में जो प्रहर व्यतीत हुआ तिसकी भूतकालसंज्ञा है, अरु जो प्रहर बर्तताहै तिसकी वर्तमान संज्ञा है, अरु जो प्रहर आगे आवना है तिसकी भविष्यत्संज्ञा है । अरु तैसेही एक प्रहर के आवान्तर जो घड़ी व्यतीत हुई सो भूतकाल हुआ अरु जो घड़ी बर्तती है सो वर्तमान है अरु जो घड़ी आगे आगन्तुक (आवनेवाली) है तिसको भविष्यत् जानो। इस प्रकार परार्ध से लेके घड़ी, निमेष, कला, काष्ठा, परमाणु पर्यन्त यावत् कालावयव हैं सो सर्व पूर्व पूर्व के आवान्तर होतसन्ते भूत वर्तमान अरु भविष्यत् भाव करके युक्तही हैं । अरु सर्वनामरूपात्मक पदार्थोंको अपने स्वभाव से अन्यथा करना यह काल का लक्षण है , जैसे आम्र का फल प्रथम अतिलघु अरु कषैला होता है पश्चात् कुछ बड़ा अरु खट्टा होने लगताहै पुनः बड़ा होके पूर्णखट्टा होताहै पुनः शनैः शनैः मधुर होता है पुनः उत्तर सड़के नष्ट होजाता है सो यह सर्वकाल का किया होताहै, तातें यावत् नामरूपक्रियावान् वस्तु हैं तिनको एकरस न रहनेदेना यह काल का स्वरूप स्वभाव है, अरु जो विभाग रहित एकरस एककालहै सो किसी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपाधि की विशेषता सेही भूत वर्तमान अरु भविष्यत् संज्ञा को पाय परार्ध से परमाणु पर्यन्त अतिदीर्घ अरु अतिअल्पसंज्ञा को पावता है। हे सौम्य! इस कहने करके यह सिद्ध हुआ कि एकही काल की उपाधि के सम्बन्ध से तीन संज्ञा हुई हैं, तैसेही एकही ॐकार (परमात्मा) की मायारूप उपाधि करके अनेक नामरूप संज्ञा हुई हैं, परन्तु वास्तव करके निरुपाधि अक्षर ॐकार एकही है। इस प्रकार त्रिकाल को जानना। अरु, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, यह तीन ॐकार के लिङ्ग हैं, अर्थात् एक ॐकार अक्षर का विस्तार यावत् शब्द ब्रह्म है सो अरु शब्दों के अर्थ पदार्थ ये सर्व उक्त तीनों लिङ्गों विषेही बर्तते हैं। अरु तीन जो संधी कही हैं तहां एक, बहिस्सन्धी है, दूसरी सन्धसन्धी है, तीसरी क्रान्तसन्धी है, सो यह तीन सन्धी हैं, सो यह, विश्व, तैजस, प्राज्ञ, रूप हैं। हे सौम्य! इस कहने से यह जानना कि एक ॐकार ही उक्त प्रकार तीन कालरूप, तीन लिङ्गरूप, अरु तीन सन्धीरूप से सुशोभित है ताते सर्व ॐकाररूपही है, तिससे इतर रञ्चकमात्र भी नहीं। इस प्रकार ॐकार को जानके जो मुमुक्षुपुरुष तिसकी उपासना करता है सो मोक्ष को प्राप्त होता है॥ हे सौम्य! अब इसकी मात्राओं का क्षेपक विचार भी श्रवणकरो। भूतकाल, स्त्रीलिङ्ग, अरु बहिस्सन्धी, इन तीनों को जाग्रदवस्था स्थूलभोग, विश्वाभिमानी, इस प्रथमपाद साथ एक कर पुनः उस प्रथमपाद को प्रथम अकारमात्रा साथ एक विचारे। पश्चात् वर्तमानकाल पुरुषलिङ्ग, अरु सन्धसन्धी, इनतीनों को स्वप्नावस्था, बिरलभोग, तैजस अभिमानी, इस द्वितीयपाद साथ एककर पुनः उस द्वितीयपाद को द्वितीय उकारमात्रा साथ एकता विचारे। पुनः भविष्यत्काल नपुंसकलिङ्ग, क्रान्तसन्धी, इनतीनों को, सुषुप्त्यवस्था, आनन्द भोग, प्राज्ञाभिमानी, इस तृतीयपाद साथ एककर पुनः उस तृतीयपाद को मकार मात्रा साथ अभेद विचारे, अरु पुनः विचारे कि यह उक्तसर्व ॐकार ही है अरु इस ॐकार का आश्रय अधिष्ठान अक्षर परमात्मा है, अरु तिस अक्षर परमात्मा का प्रतीक अरु वाचक यह वर्णात्मक ॐकार है ताते इस परब्रह्मके प्रतीक ॐकार की उपासनारूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आलम्बन से उस सर्वाधिष्ठान परमात्मपद की प्राप्ति होती है, अरु यह प्रणवोपासना परमपद की प्राप्ति में सर्वोत्तम मुख्य आलम्बन है । इस प्रकार विचारके जो समाहितचित्त शमदमवान् हुआ इस ॐकार की उपासना करता है, सो मुमुक्षुपुरुष को प्राप्त होता है ॥

इति चतुर्थसनत्कुमारसिद्धान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो ब्रह्मनिष्ठसिद्धान्तः ॥ ५ ॥

हे सौम्य ! ब्रह्मनिष्ठ सिद्धान्तवाले कहते हैं कि हम ॐकार को तीन स्थानरूप, तीन पदरूप, तीन प्रज्ञारूप, जानके उपासना करतेहैं तहां हृदय, कण्ठ, मूर्द्धा, यह तीन स्थान हैं, क्योंकि ॐकार उच्चार करने से इन तीनों स्थानोंबिषे प्रकट होता है ताते यह तीन उसके स्थान हैं । अरु जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन इसके पादहैं । अर्थात् इस संघातविशिष्ट आत्मारूप ॐकार के उक्त तीनोंपाद उक्त तीनों स्थानों बिषे क्रमशः बर्तते हैं, तहां मस्तक (नेत्र) बिषे जाग्रदवस्था, अरु कण्ठरूप स्थानबिषे स्वप्नावस्था, अरु हृदयरूप स्थानबिषे सुषुप्त्यवस्था, इस प्रकार उक्त तीनों स्थानों बिषे क्रमशः तीनों पाद बर्तते हैं, अरु बहिःप्रज्ञा, अन्तःप्रज्ञा अरु घनप्रज्ञा, यह तीन इसकी प्रज्ञा हैं । अर्थात् नेत्रस्थान जाग्रदवस्था बिषे बाह्य के घटपटादि पदार्थों को विषय करनेवाली जो प्रज्ञा (बुद्धि) तिसको बाह्यप्रज्ञा कहते हैं । अरु कण्ठस्थान स्वप्नावस्था बिषे स्वप्न के पदार्थों को विषय करनेवाली जो प्रज्ञा तिसको अन्तःप्रज्ञा कहते हैं । अरु हृदयस्थान सुषुप्त्यवस्था बिषे सर्व विशेष प्रपञ्च के अभाव से कारण अविद्या बिषे लय हुई जो प्रज्ञा तिसको घनप्रज्ञा कहते हैं, अरु इन तीनों प्रकार की प्रज्ञा के सम्बन्ध से तद्विशिष्ट चिदाभासको बाह्यप्रज्ञ, अन्तःप्रज्ञ घनप्रज्ञ इसप्रकार तीनों प्रज्ञावाला कहते हैं । अरु "यदभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वं ॐकारएव" इत्यादि श्रुति प्रमाण से, जो कुछ होगया, अरु जो कुछ है, अरु जो कुछ होगा, सो सर्व ॐकारही है । अतएव तीनस्थानरूप भी अरु तीन पदरूप भी अरु तीन प्रज्ञारूप भी, एक ॐकारही है, अरु इसही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके इस ॐकार को सर्वव्यापी भी कहते हैं । अथवा बहिःप्रज्ञ जो विभु है सो विश्वरूप है, अरु अन्तःप्रज्ञ तैजसरूप है, अरु घनप्रज्ञ प्राज्ञरूप है, ताते विश्व तैजस प्राज्ञ, इन तीन प्रकार होयके सर्वदेहों बिषे एक ॐकार ही स्थित है। तहां बाह्य जो स्थूल वैश्वानर नाम प्रपञ्च है तिस बाह्य का भोक्ता विश्वहै। अरु अन्तर सूक्ष्म प्रकृति (स्वप्न के पदार्थ) का भोक्ता तैजस है। अरु कारण आनन्द का भोक्ता प्राज्ञ है । ताते जो इन तीन प्रकार के भोग्य भोक्ता को जो जानता है सो जाननेवाला सर्व का साक्षी मुक्तरूप है। अरु जब सात्त्विकी प्रकृति होती है तब यह जीव (चैतन्यपुरुष) ब्रह्मा होके स्थूल प्रपञ्च को रचता है अर्थात् जाग्रत् जगत् (जैसे के तैसे पदार्थ) दृष्ट आवते हैं। अरु जब रजोगुणात्मक प्रकृति होती है तब यह जीव तैजसभाव को प्राप्तहुआ अन्तर प्रवृत्ति स्वप्नरूप सूक्ष्म जगत् को रचता है। अरु जब तमोगुणात्मक प्रकृति होती है तब स्थूल सूक्ष्म अन्तरबाह्य सर्व का अभावकर सुषुप्ति स्थान बिषे प्राज्ञरूप हुआ आनन्द को भोक्ता है । अतएव जो उक्तप्रकार के भोग्य भोक्ता स्थान इनका जाननेवाला चतुर्थ सर्व का साक्षी आत्मा है सो सर्व से असंग हुआ शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है। अरु सो सर्वसंघात साथ मिलाहुआ भी तिसके अरु तिनके धर्म कर्म स्वभावादिकों से लिपायमान होता नहीं, ताते सदा शुद्ध है, ताते जो , तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इन नव ९ नाम रूप करके सुशोभित है सो एक अक्षर ॐकारही है। अरु सो अक्षर ॐकार, जैसे रज्जु सर्प का तैसे, सर्व जगत् का कारण सन्तजनों ने वर्णनकियाहै। अरु वेद बिषे भी कहा है कि ॐकार अक्षर ही स्वमाया करके सर्वको उत्पन्न करता है , जैसे मरुस्थल वा ऊषरभूमि अपने ऊषरत्वरूप स्वभाव करके लहरादि संयुक्त नदी को उत्पन्न करे है वा उत्पन्न होवे है तैसे, अरु सो अक्षर चैतन्य स्वभाव होने से सर्व का ज्ञाता है । अरु सोई ॐकार का लक्ष्य परमात्म पुरुष परमेश्वर परब्रह्म परम पुरुष परमात्मा आदि नामों से कहा जाता है। अरु सोई परमात्मा स्वमायाविशिष्ट ईश्वर हुआ सर्व को उत्पन्न करता है अरु सोई जीव (चिदा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भास) रूप से सर्व का भोक्ता है अरु सोई सर्व बिषे प्रवेश करके सर्वात्मा हुआ सर्व का साक्षी है । इस प्रकार जो एक ही अक्षर (अविनाशी) अजन्मा ॐकार कर्ता भोक्ता अरु साक्षीरूप से सुशोभित हैं, परन्तु सो महासूक्ष्म अविषय होने से अति दुर्विज्ञेय है, ताते जो जिज्ञासु पुरुष तिसपरम अक्षर परमात्मा की तिसके प्रतीक, वाचक त्रि-मात्रिक वर्णात्मक ॐकाररूप आलम्बन द्वारा यथोक्तरीत्या उपासना करता है सो मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ हे सौम्य ! अब इसका क्षेपक विचार भी श्रवणकरो । प्रथम कहा जो ,तीनस्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, तिनमें से प्रथम मूर्द्धास्थान, जाग्रदवस्थासाभिमानी पाद, अरु बहिः-प्रज्ञा इन तीनों को प्रथम अकारमात्रा साथ एक करे । पश्चात् कण्ठ स्थान, स्वप्नावस्था साभिमानीरूप पाद, अरु अन्तःप्रज्ञा, इन तीनों को द्वितीय उकारमात्रा साथ एककरे । तिसके पश्चात् हृदय स्थान, सुषुप्ति अवस्था साभिमानी रूपपाद, अरु घनप्रज्ञा, इन तीनों को तृतीय मकार मात्रा साथ एककरे । इस प्रकार तीन स्थान, तीनपद, तीनप्रज्ञा, इनको क्रमशः अकार उकार मकार, इनतीनों मात्रा साथ एक करके पश्चात् इन सर्व वाच्यको लक्षरूप परमात्मा बिषे अध्यस्त जान इनका असद्भाव से बाधकर एक सत्यरूप सर्वाधिष्ठान चैतन्य आत्मा की अहमग्रे उपा-सना करनेवाला मुमुक्षु मोक्षको प्राप्त होता है । परन्तु तिसको निर्विशेष महासूक्ष्म होने से विना आलम्बन के तिसकी उपासना करने को कोई समर्थ नहीं ताते तिस अक्षर परमात्मा के प्रतीकवाचक वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षर के जप अरु अर्थ की भावना विचाररूप उपा-सना के आलम्बन से तिसके लक्ष अक्षर परमात्मा की उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

इति पञ्चमो ब्रह्मनिष्ठसिद्धान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठःपशुपतिसिद्धान्तः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! पशुपति (शिवजी) के सिद्धान्त के मतावलम्बी पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो विभु ॐकार नवनाम रूप से स्थित है तिसकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम उपासना करते हैं। तहां ,तीन अवस्थारूप, तीन भोग्यरूप, तीन भोक्तारूप, इस प्रकार नवनामरूप करके एक ॐकारही सुशोभित है। तहां प्रथम तीन अवस्था को श्रवणकरो ,प्रथम शान्त, द्वितीय घोर, तृतीय मूढ़, यह तीन अवस्थाहैं। सो ,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कोभी ,शान्त, घोर, मूढ़, इन नामों से कहते हैं। अरु इन जाग्रदादि प्रत्येक अवस्था बिषे यह शान्त घोर अरु मूढ़, यह तीनों अवस्था बर्तती हैं। तहां जाग्रत् अवस्था जो सत्त्वगुणात्मक है तिस बिषे चित्त शान्तरूप होता है, अरु स्वप्नावस्था जो रजोगुणात्मक है तिसबिषे चित्त घोररूप होता है, अरु सुषुप्ति अवस्था जो तमोगुणात्मकहै तिसबिषे चित्त मूढ़रूप होता है। अब इस प्रत्येक अवस्था के अवान्तर भेदको भी श्रवणकरो। जाग्रत् बिषे जो कुछ पदार्थ है सो ज्यों का त्यों (जैसे का तैसा) भासता है तहां जो चित्त की अवस्थाहै सो शान्तावस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो विपर्यय भासता है ,जैसे है तो रज्जु अरु भाषता है सर्प, तहां जो चित्त की अवस्था है तिसको घोर अवस्था कहते हैं, अरु जाग्रत् बिषे सुषुप्तिवत् कुछ भी नहीं भासता तहां जो चित्त की अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था है ॥ तैसेही स्वप्नावस्था बिषे जो पदार्थ स्फुरण हुआ है सो जैसा हुआ है तैसाही भासता है तहां चित्तावस्था का नाम शान्त अवस्था है, अरु स्वप्न बिषे जो और का औरही भासता है, जैसे स्फुरण हुआ हाथी सो भासनेलगा पक्षी, ऐसी जो स्वप्न में चित्तावस्था है तिसका नाम घोर अवस्था है, अरु स्वप्नबिषे जो पदार्थ स्फुरण हुआ है सो भासता नहीं (जाग्रत् हुए स्मरण में आवता नहीं) तहां जो चित्तकी अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं॥ अरु सुषुप्ति अवस्था बिषे चित्त लीन हुआ है, तिससे जाग्रत् हुए कहता है कि मैं बड़े सुख से सोया था, वो जो सुषुप्ति में चित्त की सुखावस्था है सो शान्त अवस्था है। अरु जो सुषुप्ति से जाग्रत् हुए कहता है कि मुझको अस्थवस्त निद्रा आई सो सुषुप्ति में चित्त की घोर अवस्था है, अरु जो सुषुप्ति से जाग्रत् हुआ कहता है कि मैं ऐसा बेसुध सोया कि मुझको कुछ भी ज्ञात न रही, ऐसी सो सुषुप्ति में चित्तावस्था है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिसका नाम सुषुप्ति मूढ़ावस्था है ॥ हे सौम्य ! अब इन तीनों को और प्रकार भी श्रवणकरो । जाग्रत्बिषे जो चित्त को सुख विश्राम होता है तहां चित्तावस्था का नाम शान्तावस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो चित्त को दुःख से विश्राम होता है तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो मूर्च्छादि अवस्था है तिसका नाम मूढ़ अवस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो दैवीसम्पदा शास्त्रप्रमाण यज्ञ, दान, अध्ययन, जप, पाठ, पूजासे लेके जो सात्त्विक कर्म व्यवहार हैं तिन बिषे चित्तकी प्रवृत्ति जिस अवस्था बिषे होती है तिसका नाम शान्ता अवस्था है, अरु जाग्रत् बिषे जो व्यवहारादिक राजसी कर्म हैं तिस बिषे जब चित्तप्रवृत्त होताहै तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्थाहै, अरु जाग्रत् बिषे जो हिंसादि तमोगुणात्मक कर्म हैं-तिस बिषे प्रवृत्त होनेमें जो चित्तावस्थाहै तिसका नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे प्रिय-दर्शन ! तिसही प्रकार स्वप्न में जो सुखानुभव होता है चित्तको जिस अवस्थामें तिस अवस्था का नाम स्वप्न शान्त अवस्थाहै, अरु स्वप्नबिषे जो चित्त को दुःखानुभव होता है जिस अवस्था में तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न घोरावस्था है, अरु स्वप्न बिषे जो चित्तकी मूर्च्छादि अ-चेत अवस्था है तिसका नाम स्वप्न मूढ़ावस्थाहै ॥ इसही प्रकार सुषुप्ति अवस्था बिषे सोयाहुआ पुरुष उठके कहताहै कि मैं सुखसे सोया मुझ को शान्ति प्राप्तहुई ऐसी जो सुषुप्ति में चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति शान्तावस्था है, अरु सुषुप्ति से उठके कहताहै कि आज मुझको दुःख से निद्रा आई मुझको कुछ सुख भान न हुआ परन्तु निद्रा आगई ऐसे जे सुषुप्ति में दुःख के संस्कारयुक्त चित्तावस्था तिसका नाम सुषुप्ति घोर अवस्था है, अरु सुषुप्ति से उठके कहता है कि मैं ऐसा सोया जो मुझ को सुख दुःख का कुछ भी भान न रहा ऐसी जो सुषुप्ति में चित्तकी बेसुध अवस्था तिसका नाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्था कहते हैं ॥ हे सौम्य ! अब एकप्रकार और भी श्रवण करो, इस जाग्रदवस्थामें यथार्थ अनुभव से अपने आप चिदानन्द आत्माबिषे जो चित्त की स्थिति तिस चित्ता-वस्था की अरु तिसकी प्राप्तिके अर्थ जो श्रवणादि साधनोंबिषे चित्तके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवृत्त वा स्थित होनेकी जो चित्तावस्था तिसका नाम क्रमसे उत्तम मध्यम शान्त अवस्था है, अरु विषयोंबिषे जो चित्तकी स्थिति होनी जिस अवस्था करके तिस चित्तावस्था का नाम घोर अवस्था है, अरु देहादि अनात्म अभिमान करके रागद्वेषादि आसुरी सम्पदाबिषे जो चित्त की स्थिति तिस चित्तावस्था का नाम मूढ़ अवस्था कहते हैं, इसही प्रकार स्वप्नबिषे धर्मादिक सत्त्वगुणी सम्पदाबिषे जो चित्तकी प्रवृत्ति होनी जिस करके तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न शान्तावस्था है, अरु स्वप्न में जो विषयों बिषे चित्त की प्रवृत्ति होनी जिस करके तिस अवस्था का नाम स्वप्न घोर अवस्था है, अरु स्वप्न बिषे हिंसादिक आसुरी सम्पदा में चित्तका प्रवृत्त होना है जिस करके तिस चित्तावस्था का नाम स्वप्न घोर अवस्था है, ॥ अरु इसही प्रकार सुषुप्ति बिषे जो ब्रह्म विचार के संस्कार लेके चित्त लय होताहै तिस चित्तावस्था का नाम सुषुप्ति शान्तावस्था है, अरु सुषुप्ति बिषे जो विषयों के संस्कार स्मृति को लेके चित्त लय होता है तिस चित्तावस्था का नाम सुषुप्ति घोर अवस्था है, अरु सुषुप्ति बिषे जो देहादि अनात्माभिमान संस्कार को लेके चित्त लय होता है तिस चित्तावस्था का नाम सुषुप्ति मूढ़ अवस्था है ॥—॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार कहा जो अवस्थाओं का स्वरूप भेद सो यह तीनों सूक्ष्म अवस्था ॐकार की हैं॥ अब तीनप्रकारके जे भोग्य हैं तिन को भी श्रवणकरो, अन्न, जल, अरु सोम (चन्द्रमा) यह तीनों भोग्य हैं, भोग्य कहिये भोगने योग्य वस्तु है, अर्थात् जिसकरके तुष्टि, पुष्टि, अरु आनन्द होय तिसको भोग्य कहते हैं, तहां प्रत्यक्ष सर्व जीवों को अन्न अरु जल करके पुष्टि, तुष्टि, अरु आनन्द होताहै ॥ हे सौम्य! अद, धातुसे अन्न शब्द बनताहै अरु अद, धातु भक्षण बिषे बर्तताहै ताते जो भक्षण किया जाय तिसको अन्न कहतेहैं, अतएव जो जीव जिस को भक्षण करता है सो तिसका अन्न है अरु तिसही से उसकी तुष्टि पुष्टि अरु आनन्द होता है, अरु जल सर्व जीवों को समान है; अरु चन्द्रमा करके ओषधी वनस्पति तुष्ट पुष्ट अरु आनन्दित होती हैं, ताते अन्न, जल, अरु चन्द्रमा यह तीनों करके स्थावर जङ्गम सर्व तुष्ट,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुष्ट, अरु आनन्दित होते हैं, एतदर्थ, अन्न, जल, चन्द्रमा, यह तीनों भोग्य हैं ॥ अरु, अग्नि, वायु (प्राण) अरु सूर्य, यह तीन भोक्तारूप हैं । सो यह अनुभव सर्वको प्रत्यक्ष है, देखो क्षुधा पिपासा प्राण का धर्म है क्योंकि जहां प्राण होता है तहांहीं क्षुधा पिपासा अरु भोगने की शक्ति होती है, ताते देह भोक्ता न होय के प्राण भोक्ता है । अरु अग्नि देवता भी प्रत्यक्ष भोक्ता है, काष्ठादिकों के सम्बन्ध से बाह्य हुतभुक् है, अरु प्राणरूप समिधके सम्बन्ध से अन्तर हुतभुक्, अर्थात् भोजन किये अन्न का भोक्ता है, ताते अग्नि भी प्रत्यक्ष भोक्ता है । अरु सूर्य भगवान् भी अपनी किरणों द्वारा सर्व रसजाति को प्रत्यक्ष भोक्ताहै, ताते, प्राण, अग्नि, सूर्य, यह तीनोंहीं भोक्तारूप हैं ॥ अर्थात् अग्निबाह्य समष्टि वैश्वानररूपसे हविषादिकों को भोक्ताहै अरु अन्तर व्यष्टि वैश्वानररूप से भोजन किये अन्नादिकोंका भोक्ता है, अरु वायु बाह्य समष्टि सूत्र आत्मारूप से सर्वको अपने बिषे धारण करनेद्वारा भोक्ता है, अरु व्यष्टि प्राणरूप से देहादिकों का धारण करनेरूप से भोक्ता है, अरु सूर्य बाह्य सूर्य रूप से सर्वका प्रकाशक होने से समष्टि का भोक्ता है, अरु अन्तर चक्षुरूप से व्यष्टि का प्रकाशक भोक्ता है, इसप्रकार समष्टि व्यष्टि बिषे, अग्नि, वायु, सूर्य यह तीनों भोक्ता हैं ॥ इस प्रकार जो तीन, अवस्था, तीन भोग्य, अरु तीनभोक्ता, इन नव ९ नामरूप होके एक ॐकारही सुशोभित है, तिसको यथार्थ जान के जो मुमुक्षु पुरुष उपासना करताहै सो मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥—॥ हे सौम्य! अब उक्त तीनों की अकारादि तीनों मात्रा के साथ एकता का क्षेपक विचार भी श्रवण करो यहां जो, तीनअवस्था, तीनभोग्य, तीनभोक्ता, कहे हैं तहां शान्त अवस्था, अन्न भोग्य, अरु अग्नि भोक्ता, इन तीनों को प्रथम जाग्रत् अवस्था स्थूलभोग्य अरु वैश्वानरभोक्ता इस प्रथम पाद के साथ एकता विचारकरे । पश्चात् घोर अवस्था जल भोग्य, अरु प्राणभोक्ता, इन । तीनों को, स्वप्नावस्था, विरलभोग्य तैजस भोक्तारूप द्वितीयपाद के साथ एक विचारकरे तिसके पश्चात्, मूढ़ अवस्था चन्द्रमा भोग्य, अरु सूर्य भोक्ता, इन तीनों को, सुषुप्ति अवस्था, आनन्द

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोग्य प्राज्ञभोक्ता, इस तृतीयपाद साथ एक विचारकरे। तिसके पश्चात् उक्त तीनों पादों को क्रमशः अकारादि तीनों मात्रा ॐके साथ एक विचार सर्वको ॐकाररूप जान के एक ॐकार की उपासना करे तहां विचारे कि यह ॐकाररूप अपरब्रह्म का जो लक्ष्य अक्षर परब्रह्महै तिसका यह वर्णात्मक अक्षर ॐकार प्रतीक अरु वाचक (नाम) है ताते इस त्रिमात्रिक ॐकाररूप श्रेष्ठ आलम्बनद्वार इसके अधिष्ठान अक्षर परब्रह्म कि जिसबिषे यह तीनों मात्रारूप जगत् रज्जुमें सर्पवत् अध्यस्तहै तिस परमात्मा परब्रह्मकी हम उपासना करते हैं। इस प्रकार जान के जो मुमुक्षु ॐकारकी उपासना करताहै सो परमपदरूप मोक्षको प्राप्त होताहै॥

इति पशुपतिसिद्धान्तः॥ ६॥

अथ सप्तमो विष्णुपञ्चरात्रसिद्धान्तः॥ ७॥

हे सौम्य! अब सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्त को श्रवण करो, विष्णु पञ्चरात्रके सिद्धान्तवादी कहते हैं कि जो ॐकार ,तीन आत्मरूप है, तीन स्वभावरूप है, तीन व्यूहरूप है, इस प्रकार नव ९ नामरूप से सुशोभित हुआ है तिसकी हम उपासना करते हैं, अरु और भी जो इस ॐकार की उपासना करता है सो मुमुक्षु मोक्ष को प्राप्त होता है। अब इसका भेद श्रवण करो, तहां ,बल, वीर्य, तेज, यह तीन आत्माहैं, तहां जो देहबिषे सामर्थ्य है तिसका नाम बल है, अरु जो इन्द्रियों की शक्ति है तिसका नाम वीर्य कहते हैं, अरु मन बिषे जो उत्साह वा उदारतादि धर्म है तिसका नाम तेज कहते हैं, अर्थात् देह से जो चेष्टा होतीहै सो सर्वबलकी है, अरु चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियोंसे जो देखना सुनना सूंघना रसलेना मिलना आदिक क्रिया पञ्च विषयों का सेवन आदिक होता है सो सर्व वीर्यरूप है, अरु मन बिषे जो उत्साह उदारतादिक हैं सो तेज है। सो यह बल, वीर्य, तेज तीन आत्मा हैं॥ अरु ,ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, यह तीन स्वभाव हैं, तहां यह जो देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार महत्तत्त्व प्रकृति आदिक अनात्मरूप हैं सो सर्व असत्य भ्रान्तिमात्र हैं, अरु इनका जो साक्षी आत्मा प्रत्यक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चैतन्य कूटस्थ अन्तर्यामीहै सोई सत्य सर्वका प्रकाशक परमात्मा मैं हौं, मायासे आदिलेकै जो प्रपञ्च हैं सो मेरी सत्ताके बिषे उपजते हैं स्थित होते हैं अभाव होते हैं, जैसे समुद्र बिषे तरङ्ग उपजतेहैं बर्तते हैं लय होते हैं, तैसेही मेरे बिषे जगत् है, मैं चैतन्यरूप समुद्र हौं मेरा एक अद्वैत अखण्ड सच्चिदानन्दरूपहै, ऐसा जो निश्चय सो ज्ञानहै ॥ अरु अणिमासे आदिलेके जो अष्ट सिद्धि आदिक हैं सो ऐश्वर्यरूप हैं ॥ अरु जो अन्य किसी से न बनिआवे तिसको बनावना तिसका नाम शक्ति है । सो यह ज्ञान ऐश्वर्य शक्ति, तीन स्वभावहैं ॥ अरु संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह तीन व्यूहहैं ॥ अतएव, तीन आत्मा, तीनस्वभाव, तीन व्यूह, यह नवनाम रूप करके एक अव्यय पुरुष ईश्वर ॐकारही है । ॐकार से इतर कुछ भी वस्तु नहीं "ॐकारएवेदंसर्वम" अरु ॐकार जो नाम है सो प्रकृति का वाचक है ताते भी सर्व ॐकाररूपही है । अर्थात् जो कुछ स्थूल सूक्ष्म मूर्त्त अमूर्त्त कार्य कारणात्मक जगत् है, अरु उत्पत्ति स्थिति संहार है सो सर्व ॐकार का लक्ष्य एक वासुदेवही है । तथाच "वासुदेवः सर्वमिति" गीता अ० ७ के श्लोक प्रमाण से, ताते एक अद्वैत वासुदेव से इतर कुछ भी नहीं "सर्वमिदमहंच वासुदेवः" इस प्रकार ॐकार का लक्ष्य जो सर्वात्मा ब्रह्म है तिसकी जो मुमुक्षु उपासना करते हैं सो मोक्ष को प्राप्तहोते हैं ॥—॥ हे सौम्य ! अब इसका क्षेपक विचार श्रवण करो । प्रथम कहे जे, तीन आत्मा, तीन स्वभाव, तीन व्यूह, तहां तिनमें से, बल आत्मा, अरु ज्ञान स्वभाव, अरु संकर्षण व्यूह, इन तीनों को जाग्रत् स्थानादिरूप प्रथम पाद से एकताकरे, पश्चात्, वीर्य आत्मा, ऐश्वर्य स्वभाव, प्रद्युम्न व्यूह, इन तीनों की, स्वप्नस्थानादि रूप द्वितीयपाद से एकता करे, तिसके पश्चात्, तेज आत्मा, शक्ति स्वभाव, अरु अनिरुद्ध व्यूह, इन तीनों की सुषुप्ति स्थानादि रूप तृतीयपादसे एकताकरे । पुनः उन पादों की क्रमशः अकारादि तीनों मात्राओं के साथ अभेदना करके विचारे कि इन उक्त प्रकार की मात्रा जिस अधिष्ठान परमात्माबिषे कल्पितहैं अरु जो इनमात्रारूप प्रपञ्च का साक्षी प्रकाशक चैतन्यहै तिस भगवान् वासुदेव की हम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकाररूप तिसके प्रतीक वाचकके आलम्बन से उपासना करते हैं इस प्रकार जानके जो ॐकार की उपासना करता है सो वासुदेवपद को प्राप्त होता है ॥

इति विष्णुपञ्चरात्रसप्तमः सिद्धान्तः ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! यह जो सातो सिद्धान्तियोंके मतसे सर्व का उपास्य एक ॐकार अक्षर कहा है सो परब्रह्म का वाचक, नाम, होने से अरु नाम नामी की एकतासे ब्रह्मरूप है, अरु इस अक्षर ब्रह्म की उपासना करके विगत रागादि दोष हुए योगी यती जो आत्मज्ञानी हैं सो ॐकार प्रतीक के लक्ष्य सर्वाधिष्ठान चैतन्य बिषे समुद्र में नदीवत् अभेदता से प्रवेश करते हैं। हे प्रियदर्शन ! यह जो ॐकार अक्षर है तिसका स्मरण अरु अर्थ विचार करतसन्ते इसके लक्ष्य अखण्ड सच्चिदानन्द चैतन्य आत्मा है सो मैं हौं, क्योंकि इन जाग्रदादि अवस्थाओं का साक्षित्व मेरे बिषे पाया जाता है अरु यह जाग्रदादि अवस्था मेरे आश्रय बर्तती हैं ताते इसका अधिष्ठान भी मैं ही हौं, अरु यह अवस्था परस्पर अरु अपने प्रकाशक साक्षी से व्यभिचार को पावती है ताते असत्य हैं अरु इन तीनों अवस्था का साक्षित्व मेरे बिषे पायाजाता है ताते अव्यभिचारी मैं एक सत्यरूप हौं अरु चैतन्य आनन्दस्वरूप एक हौं ताते अवस्थादि सर्व उपाधि से रहित निरुपाधि सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्मा ब्रह्म मैं हौं। इस प्रकार परमात्मा के साथ आपको अभेद जानके एकहुए ज्ञानवान् परमात्म पदरूप परमगति प्राप्त होते हैं। तहां जो त्रिमात्रिक प्रणव का जापक उपासक अपने मरणसमय ॐकार का स्मरण करताहुआ देह को त्यागता है सो "ॐमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्" इत्यादि प्रमाणोंसे परमगतिको प्राप्त होता है। अरु जो ॐकार को एकमात्रारूप जानके उपासना करता है सो देह त्यागके इस मनुष्यलोक को प्राप्त होय धर्माचरणपूर्वक यहां के भोगों को भोगता है। अरु जो ॐकार को दो मात्रारूप जान के उपासना करता है सो पितृलोक को प्राप्तहोय वहां के भोगों को भोग पुनः इसलोक बिषे आवता है। अरु जो ॐकार को त्रिमात्रारूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जानके उपासना करता है सो पुरुष देहत्यागानन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है वहां ब्रह्माद्वारा ॐकार के लक्ष्य का उपदेश पाय ब्रह्मसाथ एक हुआ मोक्ष होता है। अरु जो वाचकरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासनाकर पुनः आचार्य के मुखसे तिसके लक्ष्य सच्चिदानन्द लक्षणवान् आत्मा को अपना आप आत्मत्व से साक्षात् अनुभव करता है सो देहादि अनात्म अहंकार से रहित हुआ ब्रह्मही होता है "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" हे सौम्य! यह जो सातों सिद्धान्तकारों के मत से ॐकारकी मात्रा के तिरसठ ६३ भेद कहे हैं सो सर्व वाचकरूप त्रिमात्रिक ॐकार के सगुण स्थूलरूप हैं। अरु जो इनसे रहित ॐकार का लक्ष्य चौसठवां रूप है सो केवल निर्गुणरूप है। "केवलो निर्गुणश्च" अरु शास्त्रकारों ने भी कहा है कि जो विष्णु अक्षर है सो निरञ्जन ,अर्थात् अविद्यारूपा श्यामता से रहित परमशुद्ध है परमशान्त आनन्दघन है। तथा च "निरञ्जनं शान्तमुपैति दिव्यम्" सो न स्थूलहै, न सूक्ष्महै, न ह्रस्वहै, न दीर्घ है, न सुत है, न रक्त है न पीत है न श्वेत है न श्याम है न हरित है। इत्यादि सर्ववर्णरूप से रहित है सो न इन्द्रियां हैं न प्राण है न मन है, न बुद्धि है न इनका विषय है, ताते सर्व विशेषता से रहित निर्विशेष है निरन्तर है अबाह्य है सर्वाधिष्ठान परमशान्त सत्तामात्र है, तिस बिषे एक दो संज्ञा कोई नहीं सर्वसंख्या से रहित निरक्षर है अरु सम विषमभाव से रहित सदा अच्युत है ज्यों का त्यों एकरस है ताते परम अक्षर है सो कैसा परम अक्षर है जो अधोक्षज है ,अर्थात् शब्द ध्वनि से रहित है, अरु जो अक्षर परा पश्यन्ती मध्यमा अरु वैखरी इन चारों वाचा के आश्रय होठ कण्ठ तालु नासिका, इत्यादि स्थानोंद्वारा प्रकट होते हैं सो क्षररूप हैं वो होतेही भूतसंज्ञा को प्राप्त होते हैं वा भविष्यत् में रहते हैं वर्तमान में उनका अभाव है ताते सो क्षररूप हैं, अरु जो होठ तालु कण्ठादि स्थानों से प्रकट होता नहीं अरु सर्वका प्रकाशक साक्षी अधिष्ठान है सो सदा वर्तमानरूप अक्षर है स्वयंभू है ,अर्थात् अपने आप करके आपही सिद्ध है, ऐसा जो परम ॐकार है सो अचिन्त्य सर्वप्रमाणों का अविषय होनेसे अप्रमेय नित्य है अचल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है पूर्ण है परम शिवरूप है सनातन पुरुष है अरु सोई विष्णु का परम पद, कहिये पावने योग्य, है तिसकी प्राप्ति से पुनः संसार भ्रम होता नहीं, ताते सोई परमधाम है, सोई क्षराक्षर से रहित उत्तम पुरुष परम अक्षर है, अर्थात् सर्व कार्य कारण से रहित निराकार सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वका अपना आप प्रत्यक् आत्मा है तिसही के सम्यक् ज्ञान से मोक्ष होता है तिससे इतर मोक्ष का मार्ग कोई भी विद्यमान नहीं तथा च "नान्यः पन्था विमुक्तये" "नान्यः पन्था विद्यते अयनाय" इत्यादि श्रुति प्रमाण से॥

इति सप्तसिद्धान्तकारोंकेमतानुसारओंकारोपासनाविचार समाप्तहुआ॥

अथ ओंकारस्य एकादिमात्रोपासनाविचारः प्रारभ्यते॥

हे सौम्य! अब ओंकारके अन्य विद्वान् उपासकों ने जिस २ प्रकार मात्राओं के भेद से उपासना किया है सो भी तुम्हारे प्रति संक्षेपमात्र कहताहौं तिसको भी श्रवणकरो हे प्रियदर्शन! वाष्कल्यऋषिके मतावलम्बी पुरुष ओंकार को एकमात्रारूप जानके भजते हैं। अरु साल अरु काइत्थ, इन आचार्यों के मतावलम्बी पुरुष ओंकार को दो मात्रारूप जानके भजते हैं। अरु नारदऋषिके मत बिषे ओंकारको ढाई २॥ मात्रारूप जानके भजते हैं, अरु मौण्डल किंवा माण्डूक्य ऋषि के मत बिषे ओंकार को तीन मात्रारूप जानके भजते हैं, अरु सप्त सिद्धान्ती आदि अन्य ऋषियोंने भी ओंकार को तीन मात्रारूप जानके ही भजन किया है। अरु पराशरादिक जे अध्यात्मचिन्तक मुनि हैं तिनके मत बिषे ओंकारको चारमात्रारूप जानके उपासना करते हैं। अरु भगवान् वशिष्ठ ऋषि के मत बिषे ओंकार को सादेचार ४॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं। अरु अन्य ऋषियों ने अन्य अन्य मात्रारूप से ओंकार का भजन किया है। अरु भगवान् याज्ञवल्क्यजी ने ओंकार अक्षर को अमात्रारूप भजन किया है॥ अतएव वेद शास्त्रद्वारा किंवा आचार्य वा अपने अनुभवद्वारा जैसा जिसने ओंकार का स्वरूपमात्रा जानाहै तैसेही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसने उपासना किया है । अरु सर्व काही भजना सफल है , क्योंकि ॐकार ब्रह्म की अनन्तमात्रा हैं ताते जिसने जैसा जानके भजन किया है तिसने एक ॐकारही का भजन किया है एतदर्थ सर्वका भजन सफल है सो यह विशेष वाच्यरूप ॐकार का भजन है, अरु जो लक्ष्यरूप निर्विशेष ॐकार ब्रह्महै सो वास्तव करके सर्व मात्रा से रहित अमात्रिक है उस बिषे मात्रारूप विशेषता नहीं । हे सौम्य ! इस ॐकारके , पर अरु अपर, वा समात्रिक अरु अमात्रिक, वा वाच्यरूप अरु लक्ष्यरूप, इत्यादि प्रकार दोरूप हैं सो पूर्व प्रश्नोपनिषद् सम्बन्धी ॐकार की व्याख्या में कहआये हैं । तहां एक सगुणरूप है दूसरा निर्गुणरूप है, तहां सगुण तो समात्रिक शब्दमय वाच्यरूप ॐकार अक्षर ब्रह्म है ' अरु दूसरा निर्गुण शब्द से रहित अमात्रिक लक्ष्यरूप परब्रह्म है । तहां अब सगुण ॐकार ब्रह्म की मात्राओंके भेद से ऋषियों ने जिस जिस प्रकार उपासना किया अरु कहा है तिसको भी संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥

हे सौम्य ! जो वाष्कल्यऋषि हैं कि जिनके मत बिषे ॐकार को एकमात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि जितना कुछ स्थूल सूक्ष्म विराट् वपु है सो सर्व ॐकार काही स्वरूपहै तिस से इतर कुछ भी नहीं । अर्थात् ॐकार जो ईश्वर है सो दो प्रकार का है, तहां एक सगुणरूप दूसरा निर्गुणरूप, तिनके भजन करनेवाले अपने २ अधिकारानुसार भजन करते हैं, तहां सगुण ॐकार के उपासक जानते हैं कि इस सगुणरूप का अधिष्ठान (आश्रय) निर्गुण है ताते यह अपने अधिष्ठान से अपृथक् होने से यही ॐकार ब्रह्म है इस से इतर निर्गुण नहीं, अरु निर्गुण ब्रह्म के उपासक जानते हैं कि ॐकार निर्गुण ब्रह्म है सो अपनी इच्छा शक्ति करके सगुणरूप हुआ है, ताते निर्गुण से इतर सगुण नहीं वोहीरूप हैं । इस प्रकार सगुण निर्गुण की एकता होने से एक ॐकार ब्रह्मही उभय प्रकार से सुशोभित है, ताते उभय प्रकार के उपासक कल्याण को प्राप्त होते हैं, अरु उस एकही ॐकार ब्रह्म का यह स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणात्मक विराडात्मा उसका वपु है ताते ॐकार एकमात्रारूपही है, अतएव हम इस एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मात्रारूप ॐकार की उपासना करते हैं। यह ॐकार को एकमात्रारूप से जानके भजन करनेवाले ऋषियों का मत है १॥

हे सौम्य! अब, साल अरु कइस्त आदिक जे ॐकार की दो मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि ॐकार दो मात्रारूप है, तहां एक स्थूलरूप कार्य मात्रा है, अरु दूसरी सूक्ष्मरूप अव्याकृत कारणमात्रा है, इस प्रकार कार्यकारण रूप स्थूल सूक्ष्म दो मात्रा हैं जिसकी तिस ॐकार ब्रह्म की हम उपासना करते हैं। अथवा जो ॐकार चैतन्य ब्रह्म है तिसकी दो मात्रा हैं, तहां एक यह स्थूलरूप जाग्रत् जगत् अरु दूसरी सूक्ष्मरूप स्वप्न जगत् इन दोनों मात्राओं का लक्ष्यरूप साक्षी चैतन्य है कि जिसके आश्रय उक्त दोनों मात्रा हैं अरु वो आप मात्राओं से रहित अमात्रिक है तिस की हम इस समात्रिक ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं। यह ॐकार की दो मात्रारूप से उपासना करनेवाले ऋषियों का मत है २॥

हे सौम्य! नारदऋषि आदिक जे ॐकार को ढाई २॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि जो अकार जाग्रत्रूप जगत् है, अरु उकार स्वप्नरूप जगत् है, अरु मकार सुषुप्तिरूप अर्धमात्रा है कि जिस बिषे जाग्रत् स्वप्न दोनों लीन होतेहैं तातेही इसका नाम सुषुप्ति अर्द्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २॥ मात्रारूप जगत् है वपु जिसका तिस ॐकार ब्रह्म की हम उपासना करते हैं। अथवा अकार स्थूलदेह जाग्रत् जगत् समेत प्रथममात्रा, अरु उकार सूक्ष्मदेह स्वप्नरूप जगत् समेत द्वितीय मात्रा अरु अर्धमात्रा चैतन्यतत्त्व है सो सर्वका ज्ञाता है तिसका ज्ञाता कोई नहीं, अतएव उसका नाम अर्धमात्रा है, इस प्रकार ढाई २॥ मात्रारूप वपु है जिसका तिस ॐकार परब्रह्म की हम इस ढाई मात्रावाले वाच्यरूप अपरब्रह्म ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं। यह ॐकार को ढाई २॥ मात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मत है २॥

हे सौम्य! मौण्डलऋषि आदिक जे ॐकार को तीन मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासक हैं सो इस प्रकार कहते हैं जो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, यह तीन अवस्था अरु अकार उकार मकार, यह तीन मात्रा, अरु ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यह तीन देवता, इनका संघातरूप है वपु जिसका, अरु जो है इस स्थूल सूक्ष्म कारणरूप सर्व जगत् का आश्रय अधिष्ठान, अरु जिस बिषे स्वरूप करके मात्रादि उपाधि अध्यस्त (कल्पित) होने से कोई नहीं, तिस सर्वाधिष्ठान निर्विशेष लक्ष्यरूप ॐकार की हम उपासना करते हैं । अरु ॐकार की तीन मात्रारूप से उपासना अनेक प्रकार से कही है, अरु सप्तसिद्धान्तकारों ने भी तीनमात्रारूप से कही है, यह ॐकार को तीन मात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मत है ३ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार को साढ़ेतीन ३॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले ऋषि इस प्रकार कहते हैं कि अकार, उकार, मकार, रूप जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीन मात्राहैं अरु अर्धमात्रारूप चैतन्य ब्रह्म है । अथवा केई एक ऐसा कहते हैं कि प्रथममात्रा अकार स्थूल जगत्, अरु दूसरी मात्रा उकार सूक्ष्म जगत् अरु तीसरी मात्रा जीव कला, अरु अर्धमात्रा सर्वाधिष्ठान चैतन्य परमपदरूप है कि जिस बिषे जीवकला संयुक्त स्थूल सूक्ष्म सर्वमात्रा लीन होती हैं, अरु जिस बिषे मात्रा कोई नहीं ऐसा जो लक्ष्यरूप ॐकार है तिसकी हम समात्रिक ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं । यह ॐकार को साढ़े तीन ३ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ३ ॥

हे सौम्य ! अब पराशरआदिक ऋषि जो ॐकार को चार मात्रारूप जानके उपासना करनेवाले हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि प्रथममात्रा अकाररूप स्थूल विराट् पुरुष, अरु द्वितीयमात्रा उकाररूप सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, अरु तृतीयमात्रा मकाररूप कारण अव्याकृत, अरु चतुर्थ बिन्दुरूप चैतन्य पुरुष, कि जिस अधिष्ठान के आश्रय अध्यस्तरूप से स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि समष्टि तीनों शरीररूप प्रपञ्च है, सो सर्वाधार चैतन्य परमपद है, अतएव अध्यस्त की पृथक्सत्ता के अभाव से सर्व चैत यही है, ताते हम ॐकार के लक्ष्य निर्विशेष सर्वाधिष्ठान अमात्रिक ॐकारकी इस चारमात्रारूप समात्रिक ॐकारके आलम्बन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से उपासना करते हैं । यह ॐकार को चारमात्रारूप से जानके उपासना करनेवालों का मत है ४ ॥

हे सौम्य ! वशिष्ठादिक ऋषि जो ॐकार को साढ़ेचार ४ ॥ मात्रारूप जानके उपासना करते हैं सो इस प्रकार कहते हैं कि , अकार प्रथम मात्रा यह स्थूल जगत् है, अरु उकार दूसरीमात्रा यह सूक्ष्म जगत् है, अरु मकार तृतीयमात्रा सुषुप्ति है, अरु चतुर्थमात्रा नादरूप परमशक्ति है, अरु अर्धमात्रा चैतन्यपुरुष है, कि जिसके आश्रय चारोमात्रा सिद्ध हैं अरु वो आप मात्रा से रहित अमात्रिक है, तिस लक्ष्यरूप ॐकार की हम इस साढ़ेचार मात्रात्मक वाच्यरूप ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं । यह ॐकारको साढ़े चारमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ४ ॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि इस ॐकार को पांचमात्रारूप विचारके भजन करते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि , अकार अन्नमयकोश अरु उकार प्राणमयकोश, अरु मकार मनोमयकोश, अरु अर्धमात्रा विज्ञानमय कोश, अरु बिन्दुरूप आनन्दमयकोश है । यह उक्त, पांचो मात्रा जिस चैतन्य अधिष्ठान के आश्रय अध्यस्त हैं, अरु जो इन मात्राओं से रहित पञ्चकोशातीत है, तिस लक्ष्यरूप ॐकार की उक्त समात्रिक ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं । यह ॐकार को पांचमात्रारूप जानके उपासना करनेवाले उपासकों का मत है ५ । ८ ॥

हे सौम्य ! कोई एक ऋषि ॐकार को षट्मात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि , जो अकाररूप जाग्रत् जगत् है उकाररूप स्वप्न जगत् है, अरु मकाररूप सुषुप्ति है , अरु अनहद शब्द से आदि लेके जो वाचा हैं सो शब्दरूपा चतुर्थमात्रा है, अरु बिन्दुरूप कारण प्रकृति पञ्चममात्रा है, अरु षष्ठरूप साक्षी चैतन्य आत्मा है । ऐसा है विशेष स्वरूप जिसका अरु आप अपने स्वरूप से निर्विशेष है तिस लक्ष्यरूप ॐकार की हम सविशेषरूप वाचक ॐकार के आलम्बन से उपासना करते हैं । यह ॐकार को षष्ठमात्रारूप जानके उपासना करनेवालों का मत है ६ । ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे सौम्य ! कोई एक आचार्य ॐकार को सप्तमात्रारूप जानके भजते हैं, सो ऐसा कहते हैं कि, पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश यह भूतों की, शब्दादिरूप पञ्चमात्रा पञ्चतत्त्व अरु अहंकार अरु महत्तत्त्व, यह सात मात्रा हैं अरु अष्टम आप चैतन्यपुरुष है । तिसकी हम सप्तमात्रात्मक ॐकार के आलम्बन (आश्रय) से उपासना करते हैं । यह ॐकार को सप्तमात्रारूप जानके भजन करनेवाले उपासकों का मत है ७ । १० ॥

हे सौम्य ! इस प्रकार, ३८, ४९, ५२, ६३, ६४, मात्रापर्यन्त ॐकार की उपासना करते हैं सो आचार्य ऐसा कहते हैं कि यावत् स्वर व्यञ्जनादिक वर्णअक्षर हैं सो सर्व ॐकार की मात्रा हैं क्योंकि सो सर्व कारण ॐकार से फुरीहै अरु स्फुरण होती है अतएव सर्वमात्रा ॐकार काही है, इसही से सर्व जगत् ॐकाररूप है जिस किसी पदार्थ का नाम है सो सर्व उक्त मात्राओं के अन्तर्गत है, अरु जितने कुछ वर्णाक्षर हैं सो सर्व ॐकार की मात्रा हैं, ताते वर्णात्मक जो ॐकार अक्षर है सो सर्व नामों के विषे ओतप्रोत है, एतदर्थ भी ॐकाररूपही सर्व जगत् है, ॐकार ही वाच्यरूप होयके इस प्रकार सर्व नामों के मध्य आदि अन्त मध्य ओतप्रोत है अरु लक्ष्यरूप जो चैतन्य आत्मा है सो अस्ति भाति प्रियरूप करके व्याप्त है ताते भी वाच्य वाचक सर्व ॐकारही है ॥

इति ॐकार की एक आदि मात्राओं का उपासनविचार ॥

अथ ॐकारस्य ॐकारादिदशनामार्थ विचारःप्रारभ्यते ॥

ॐकारं प्रणवं चैव सर्वव्यापिनमेवच । अनन्तश्च तथा तारं शुक्लं वैद्युतमेवच ॥ तूर्यं हंस परब्रह्म इति नामानि जानते ॥ (यह सार्द्धश्लोक है) ॥

हे सौम्य ! इस ॐकार ईश्वर के दश नाम मुख्य हैं सो सर्व सार्थ कहिये अर्थ सहित हैं, अरु जिज्ञासु करके जानने योग्य है, अतएव अब इसके नामों के अर्थ को भी संक्षेपमात्र श्रवण करो ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ प्रथमनाम ॐकारार्थविचारः ॥ १ ॥

हे सौम्य! प्रथम नाम ॐकार है तिसका यह अर्थ है कि जब शरीर ग्रीवा अरु शिर, इनको सम सीधेकर पद्मासन बैठ इन्द्रियों को विषयों से अरु मन को संकल्पों से रोक ह्रस्व दीर्घ प्लुत ध्वनिपूर्वक ॐकार का यथास्थान से उच्चारण करते हैं तब चरण से लेके मस्तक पर्यन्त सब शरीरगत नाड़ियों को ऊँचा करता है, अथवा प्राणायामकी रीति से इसका उच्चार करता है तब प्राण ब्रह्मरन्ध्र ऊंचे स्थान को प्राप्त होता है, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥ १ ॥ अथवा जो योगक्रिया की रीति से प्राणायाम द्वारा स्थानविशेष में ध्वनि को साधके ॐकार का आन्तर्य उच्चारण करता है तिसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र को प्राप्त होते हैं, अरु देहान्तसमय उसके प्राण "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" इत्यादि प्रमाण से सुषुम्णानाड़ी द्वारा ब्रह्मरन्ध्र से निकल ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है, अतएव इसका नाम ॐकार है ॥ २ ॥ अथवा ॐकार के दो अक्षर, कहिये मात्रा, हैं तिनका अर्थ योग क्षेम (पालन अरु रक्षा) है अर्थात् जो पुरुष इस ॐकार की उपासना करते हैं तिनकी रक्षा अरु पालन ॐकार करता है, अर्थ यह जो उपासक को वाञ्छित पदार्थ को प्राप्त करदेता है अरु प्राप्त की रक्षा करता है, इस प्रकार अपने उपासक का योग क्षेम ॐकार करता है। अर्थात् सकाम उपासक को संसार के भोग्यपदार्थ प्राप्त करके पालन, अरु रक्षा करता है, अरु जो उसके निष्काम जिज्ञासु उपासक हैं तिनको प्राप्त हुई जो ज्ञानभूमिका तिस का पालन (वृद्धि) अरु रक्षा करता है। अथवा अपने उपासक जिज्ञासु को जो कदापि ज्ञानभूमिका अप्राप्य है तो तिसकी प्राप्ति करदेता है अरु जो ज्ञानभूमिका प्राप्त है तो काम क्रोधादि आसुरीसम्पदासे तिस की रक्षा करता है, अतएव इसका नाम ॐकार है। अथवा ॐकार का अर्थ अंगीकार भी है, अर्थात् जो कोई ॐकार का सम्यक् प्रकार भजन करनेवाला उपासकहै तिसके कहेहुए वर शापादिक वाक्य देवता आदिक सर्वही अङ्गीकार करते हैं, एतदर्थ इसका नाम ॐकार है ॥ ४ ॥ अथवा ॐकार का अर्थ ब्रह्म भी है क्योंकि जो इसकी समाहित चित्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से सम्यक् प्रकार उपासना करते हैं तिनको अपने आप आत्मा ब्रह्मकी अभेदता प्राप्त करता है, अर्थात् उस उपासक को ब्रह्म आत्मा का अभेद ज्ञान होता है, एतदर्थ भी इसको ॐकार कहते हैं ॥ ५ ॥ यह सर्व ॐकार नाम के अर्थ हैं ॥ १ ॥

अथ द्वितीयनाम प्रणवार्थविचारः ॥ २ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के प्रणव नाम का अर्थ श्रवण करो। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, अरु ब्रह्मा आदिक सर्व देवता ऋषि मुनि मनुष्य दैत्य आदिक जो हैं सो सर्व, तीन अक्षररूप हैं जो ॐकार तिसको मन वाणी शरीर करके प्रणाम करते हैं, ताते ॐकार का नाम प्रणव है। "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" ॥ २ ॥

अथ तृतीयनाम सर्वव्याप्यर्थविचारः ॥ ३ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के तृतीय सर्वव्यापि नाम का अर्थ श्रवण करो। यह जो स्थूल सूक्ष्म स्थावर जङ्गम कार्य कारणात्मक शरीर हैं, यावत् वेद स्मृति पुराण इतिहास शास्त्रादिक विद्या हैं, तिन सर्व बिषे व्यापरहा है। अर्थात् उस सर्व बिषे नाना भेद भावकरके एक विष्णु ॐकार ही को वर्णन किया है, ताते इस ॐकार को सर्वव्यापि वर्णन किया है वा कहते हैं। अथवा एक ॐकारही अनेक मात्रा होयके वेदादि सर्व विद्या बिषे ओतप्रोत है, क्योंकि बावन आदि यावत् स्वर व्यञ्जनात्मक मात्रा हैं सो सर्वॐकार काही विस्तारहै, ताते ॐकार सर्वव्यापि है ॥ २ ॥ अथवा जो अक्षर आत्मा अस्ति भाति प्रियरूप होके स्थित है अरु सोई ॐकार का वाच्यलक्ष्य है ताते भी ॐकार को सर्वव्यापि कहते हैं ॥ ३ ॥ यह ॐकार के तृतीय सर्वव्यापि नाम का अर्थ है ॥ इति ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थनाम अनन्तार्थविचारः ॥ ४ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के चतुर्थ अनन्तनाम का अर्थ श्रवण करो जब जिज्ञासु इस ॐकार का सम्यक् प्रकार यथाविधि भजन करता है तब तिस अपने उपासक को अपने अनन्त ब्रह्मपद बिषे प्राप्त करता है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ताते ॐकार का नाम अनन्तहै ॥ १ ॥ अथवा इस ॐकार ब्रह्म का देश काल वस्तु करके अन्त पाया जाता नहीं, क्योंकि वायु अग्नि जल पृथिवी आदिकों की अपेक्षा आकाश का अन्त नहीं ताते सो अनन्त है उसहीके अन्तर्गत वायु आदि तत्त्वों का अन्त होता है, अतएव चारों तत्त्वों की अन्तता की अपेक्षा आकाश की अनन्तताहै, सो आकाश की अनन्तता ॐकार के लक्ष सर्वाधिष्ठान आत्मा के भरपूर अस्तित्वके ज्ञान हुए एक परमाणुमात्र भी न रहके अपने अन्त को प्राप्त होती है, ताते ॐकार का नाम अनन्त है ॥ २ ॥ अथवा ॐकार के वाच्यनाम रूपात्मक जगत् का अन्त विना सर्वाधिष्ठान चैतन्य आत्माके साक्षात् ज्ञान के अन्य किसी देवता दैत्य ऋषि मुनि आदिकों करके पायाजाता नहीं, एतदर्थ भी ॐकार का नाम अनन्त है ॥ ३ ॥ यह ॐकार के चतुर्थ अनन्त नाम का अर्थ है ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमनाम तारकार्थविचारः ॥ ५ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार का पञ्चमनाम जो तार है तिसका भी अर्थ श्रवण करो। सर्व जे 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, दुःख हैं, तहां काम क्रोध तृष्णा चिन्ता आदिकों के क्षोभसे जो अन्तःकरण बिषे दुःख होताहै तिसका नाम आध्यात्मिक दुःख है, अरु ज्वरादिक रोगजन्य, अथवा सर्प सिंहादिकोंके भयजन्य जे दुःख हैं तिनका नाम आधिभौतिक दुःख है। अरु ग्रहादि देवताओंके कोपजन्य जे दुःख हैं तिनका नाम आधिदैविक दुःख है। इत्यादि सर्व दुःखोंसे अपने उपासक को तार देता है एतदर्थ ॐकार का नाम तारहै ॥ १ ॥ अथवा यह जो नामरूपक्रियात्मक महादुःखमय अपार संसार सागर है तिस बिषे जन्म, जरा, मरण, काम, क्रोध, लोभ, मोहादिरूप बड़े बड़े ग्राह मकरादि, सर्वको ग्रास करनेवाले हैं, अरु तृष्णा कामना अभिलाषा इच्छा आदिक बड़ी २ शेषलोकसे ब्रह्मलोक पर्यन्त उछलती सर्वको अपने बिषे आकर्षणकर तृणवत् अधो ऊर्ध्व को प्राप्त करती तरङ्गें हैं, तिस बिषे ज्ञानरूपा तारूविद्यासे रहित जे अज्ञानी जीव हैं सो पड़े मग्न होते हैं अरु दुःख पावते हैं पुकारते रोवते हा डूबे हा डूबे शब्दकरते हैं, अरु इस संसार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सागर में मग्नहोते जीव सो देवता आदिक बड़े श्रेष्ठ पूजनीय भजनीयहैं तिनको अपना त्राण (रक्षक) समझके उनका आश्रय लेते हैं, परन्तु उनको भी उक्तसागर में मग्न होते सुनते अरु जानते हैं तब उनकी ओरसे भी निराश निराधारहुए जन्म जन्मान्तर पर्यन्त दुःखही पावते हैं। ऐसा जो परमदुःखमय असार अपार संसार महादुस्तर सागर, तिस सागरसे अपने उपासकको यह ॐकार तार देता है, अतएव ॐकारका नाम तारहै ॥ २ ॥ अर्थात् ऋगादि सर्व वेदों करके यह ॐकारही तारक प्रख्यात प्रतिपाद्य है, ताते जिन वर्णत्रयी के मनुष्यों को संस्कारपूर्वक वेदाध्ययन का अधिकार है तिनको संसारदुःख की सकारण निवृत्तिके अर्थ सर्वोत्तम तारक ॐकार की यथाशास्त्रविधि उपासनाकरना योग्य है। अरु जे वर्णत्रयी से इतर वेदाध्ययनादिक के अनधिकारी पुरुष हैं तिनको अपने कल्याणार्थ यथाविधि पुराणोक्त रामनामादि तारक की उपासना कर्तव्य योग्य है क्योंकि उनका कल्याण उसीसे है "स्वधर्म विगुणश्रेयो" यह ॐकारके पञ्चमतारनाम का अर्थ है ॥ ५ ॥

अथ षष्ठनाम शुक्लार्थविचारः ॥ ६ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकारके शुक्ल नाम का अर्थ श्रवण करो। वर्ण करके जो शुक्ल होय कहिये शुद्ध होय, सो कहिये शुक्ल। अर्थात् जो सर्व मलसे रहित निर्मल शुद्ध होवे तिसका नाम शुक्ल कहतेहैं तहां सर्वमलों का कारण अविद्याहै तिस अविद्यारूप महामलसे रहित सदा शुद्ध एक ॐकारही है एतदर्थ ॐकारका नाम शुक्लहै। "शुद्धमपापविद्धम्" "तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते" इत्यादि अनेक श्रुतियों के प्रमाणसे ॥ १ ॥ अथवा ॐकार अपने उपासक को शुद्ध अपने लक्ष्य आत्मपद बिषे प्राप्त करता है ताते ॐकार का नाम शुक्लहै ॥ २ ॥ अथवा तीन प्रकारके जे कायिक वाचिक मानसिक पाप हैं तिनको नाश करके अपने उपासक को शुद्ध करता है एतदर्थ ॐकार का नाम शुक्ल है ॥ ३ ॥ अथवा तीनप्रकारके जे कर्मरूप पाप हैं तिन पापोंसे अपने भक्तों को शुद्ध करता है ताते ॐकार का नाम शुक्ल है ॥ ४ ॥ हे सौम्य ! अब इन तीन प्रकारके कर्मरूप पापों को श्रवण करो। प्रथम एक क्रियमाण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्म है, दूसरा संचित कर्म है, तीसरा प्रारब्ध कर्म है। सो यह तीन प्रकारके कर्मरूप पाप, तर्कस में बाणवत्, अन्तःकरणरूप तर्कस बिषे रहते हैं। सो कैसा है अन्त करणरूप तर्कस जो साक्षी आत्माके आभास वा प्रतिबिम्ब करके युक्त है, अरु अविद्या का कार्य होने से अज्ञान अंश करके भी युक्त है, तिस अन्तःकरणरूप तर्कसबिषे तीनों प्रकार के कर्मरूप बाण रहते हैं, अरु स्वतः अन्तःकरण जड़ है ताते विना चैतन्याभास अरु अज्ञानके कर्म धारनेमें समर्थ नहीं, जब अन्तःकरण चैतन्याभास अरु अज्ञान करके युक्त होताहै तबहीं कर्मों को धारने बिषे समर्थ होताहै॥ हे सौम्य! अब अन्तःकरण का स्वरूप श्रवणकरो जो क्याहै। अरु अज्ञान क्या है, अरु चैतन्य क्या हैं, अरु सो कर्मोंको धारता कैसे है, सो सर्व श्रवणकरो, जैसे मृत्तिका, अरु जल, अरु आकाश, यह तीनों मिलते हैं तब घट उत्पन्न होय पदार्थों को धारता है तहां न तो केवल मृत्तिकाही पदार्थ को धारसक्तीहै न केवल जलही पदार्थ को धारसक्ता है, अरु न केवल आकाशही पदार्थ को धारसक्ताहै, जब मृत्तिका जल अरु आकाश तीनों मिलते हैं तब घटरूप होय पदार्थ को धारते हैं, तैसे ही सत्त्वगुणरूप मृत्तिका अरु अज्ञानरूप जल अरु चैतन्यरूप आकाश यह तीनों मिलते हैं तब अविद्या के सत्त्वगुण भाग का परिणाम अन्तःकरण होय तीनों प्रकार के कर्मों को धारता है सो भी प्राणरूप सूत्रके आश्रय धारता है। ऐसा जो अन्तःकरणरूप तर्कसहै तिस बिषे कर्मरूप बाण रहते हैं, अथवा अन्तःकरणरूप मान्दिर है तिस बिषे तीनों प्रकार के कर्मरूप अन्न के दाने भरेहुए हैं, तहां व्यतीत हुए जे अनेक जन्म तिनके कर्मोंके सूक्ष्म संस्कार जे अन्तःकरण बिषे संचितहैं तिनका नाम संचित कर्महै तिन कर्मोंमें से जो कर्मों को अपना फल सुख दुःखादि भोगावना है अरु जिन कर्मोंने यह शरीर रचाहै तिनका नाम प्रारब्ध कर्म है। अरु जो वर्तमान शरीर करके अहंकारपूर्वक कर्म कियेजाते हैं तिनका नाम क्रियमाण कर्म है। अरु सो क्रियमाण कर्महीं तीन संज्ञा को प्राप्तहुआ है। तहां कर्म करने के समय उसको क्रियमाण कहतेहैं, अरु करनेके पश्चात् उसही कर्मकी संचितसंज्ञा होतीहै। अरु जब उस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

के फल भोग का समय आवताहै तब उस कर्म की प्रारब्धसंज्ञा होती है। जैसे एकही काल भूत भविष्यत् अरु वर्तमान तीनसंज्ञा को प्राप्त हुआ है, तैसेही एक क्रियमाण कर्म क्रियमाण संचित अरु प्रारब्ध इन तीन संज्ञाको प्राप्त हुआहै। तिस बिषे जे प्रारब्ध कर्म हैं तिसका फल , जाति, आयुष्य, अरु भोग, इन तीन रूप से प्राप्तहोताहै। तहां जाति कहिये , देव दैत्य मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष आदिक तिनबिषेभी , उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ, अरु अधम, । सो सर्वजीवों को अपने २ प्रारब्ध का फलहै। अरु आयुष्य जोहै सो लव निमेषादिकों से लेके पराख्य ब्रह्मा के आयुपर्यन्त न्यूनाधिक्य सो सर्व प्रारब्ध कर्मके फल हैं। अरु भोग जो हैं नानाप्रकारके स्वर्ग नरकादिकों के उत्तम मध्यम निकृष्टरूप सुख दुःख सो सर्व प्रारब्धका फल हैं सो अवश्यमेव देहधारियों को भोक्तव्य हैं। हे सौम्य ! यह प्रारब्ध भोग , साधारण, अरु असाधारण, उभय प्रकारके भी चिन्तनीयहैं, तहां जैसे ज्वरादिक रोग हैं सो भी प्रारब्धकर्म का फल है परन्तु तिनकी ओषधी आदिक यत्न करनेसे निवृत्ति होती है सो साधारण है, अरु जिन रोगादिकों की प्रयत्न करनेसे भी निवृत्ति होती नहीं सो असाधारण कहिये असाध्य जानना । अरु यह तीनों प्रकार के प्रारब्ध कर्म के फल भोग भोगनेही से निवृत्त होते हैं अन्य किसी प्रकार से भी इनकी निवृत्ति होती नहीं। अरु ,संचित क्रियमाण, यह दोनों कर्म ज्ञानवान् के ज्ञानाग्नि करके नष्ट होजाते हैं। अरु प्रारब्धकर्म देह के आश्रय रहताहै सो अपना फल देके नष्ट होताहै मध्य में मिटता नहीं। जैसे किसी शस्त्रधारी के तर्कस बिषे जो बाण होताहै तिसको अरु जो बाण चलावने के लिये हाथ में धारण कियाहै तिसको नाश करनेको वो शस्त्रधारी समर्थ होताहै, अरु जो बाण उसके धनुष से चलचुका है तिसको नाश करने में वो समर्थ होता नहीं वो बाण जो धनुष से चलचुका है सो जब अपने वेग से रहित होता है तब गिरपड़ता है पुनः आगे चलता नहीं, तैसेही तर्कस के बाणोंवत् संचित कर्म हैं, अरु हाथ के बाणवत् क्रियमाण कर्म हैं, सो यह संचित अरु क्रियमाण दोनों कर्म आत्मज्ञान की प्राप्तिहुए नाश होजाते हैं । अरु

-CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो तीसरा प्रारब्धकर्म है सो धनुष से चलेहुए बाणवत् है, सो ज्ञान प्राप्तहुएभी रहता है वो जब अपने भोगदातव्यरूप वेग से रहित होता है तब अपने आश्रय शरीर सहित गिरपड़ताहै पुनः आगे को चलता नहीं। अर्थात् ज्ञानवान् का प्रारब्ध जब अपना भोग देचुकताहै तब सशरीर के नष्ट होजाता है तब उस विद्वान् को पुनः जन्म के आरम्भक कोई भी कर्म अवशेष रहते नहीं, क्योंकि जब वो आचार्य से 'तत्त्वमस्यादि' महावाक्यों को श्रवण करता है तब अपने आप जो जानता है कि मैं अविद्यात्मक स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों शरीरों से रहित अशरीरी आत्मा हौं ताते अजन्मा अक्रिय हौं, अतएव मेरे साथ शरीर अरु तदाश्रित कर्म कोई नहीं, मैं इतने काल से अपने अज्ञानरूप पिशाच के वश हुआ अपने को कर्ता भोक्ता सुखी दुःखी मानता रहा, परन्तु अब श्रुति अरु आचार्य की कृपा से मेरा उक्त पिशाच निवृत्त हुआ तब जाना जो मैं तो सर्व शरीरादि उपाधिसे रहित निर्विकार निराकार निष्क्रिय असंग आत्मा हौं मैं कर्ता भोक्ता नहीं, अतएव न मैं पूर्व कर्ता रहा न मुझको आगे को कुछ कर्तव्य है, मैंतो सर्वदा अकर्ता अभोक्ता एकरस चैतन्य आत्मा हौं। इस प्रकार विद्वान् को अपने आप आत्मस्वरूप का साक्षात् सम्यक्ज्ञान होने से तिसही ज्ञानरूप अग्नि द्वारा संचितकर्म जो तर्कस के बाणवत् हैं सर्व भस्म होते हैं। तथाच "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" "ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणि" इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाण से। अरु सम्यक् आत्मज्ञान होने के उत्तर कुछभी कर्तव्य अवशेष रहता नहीं, क्योंकि कर्म के हेतु कामना का उस बिषे अत्यन्ताभाव है। अरु अवशेष रहा जो प्रारब्धकर्म सो अपना भोग देके नष्ट होताहै, अरु तिस प्रारब्ध के भोगकाल में भी वो विद्वान् प्रारब्ध का भोक्ता नहीं क्योंकि आत्मा अभोक्ता है। तांते प्रारब्ध के सुख दुःखादि भोगों का भोक्ता साभास लिङ्गशरीर जीवात्मा है, अरु स्थूलशरीर भोगालय है, अरु इन दोनों का कारण अविद्या है। अरु मैंतो इन सर्व से पृथक् इन सर्व का प्रकाशक साक्षी हौं हे सौम्य! इस प्रकार अपने आप अकर्ता अभोक्ता सत्यस्वरूप आत्मा को यथार्थ अनुभव करके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानवान् संचितादि सर्वकर्मसे अरु तिनके फल सुख दुःखादिकोंसे रहित सर्वदा अकर्ता अभोक्ता ज्योंका त्यों है । अरु यावत् लोकदृष्ट्या ज्ञानी का देह भासता है तावत् प्रारब्ध भी भासता है वा यावत् प्रारब्ध भासता है तावत् तदाश्रित शरीर भी भासताहै, तथापि ज्ञानी के स्वरूपमें देह अरु प्रारब्ध अरु तदाश्रित सुख दुःखादि भोग इत्यादि कुछभी नहीं। अतएव ज्ञानवान् का प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त हुआ पुनः शरीरारम्भका कारण होता नहीं क्योंकि उसका संचितकर्म जो प्रारब्ध रूपसे फलकी प्रवृत्तिका हेतु है सो ज्ञानाग्निकरके नाशको प्राप्त होताहै ताते । अरु अज्ञानीका एक शरीरका आरम्भक अरु उस शरीर करके अपने फल सुख दुःखादिकों का भोगावनेवाला प्रारब्ध कर्म अपना फल देके समाप्त होनेपर आवता है तबहीं उसके संचित कर्मों में से जो कर्म अपना फल देनेको सम्मुख होते हैं तब वो प्रारब्धरूप से पुनः शरीर के आरम्भक अरु सुख दुःख के भोगावनेवाले अरु अपने अनुसार कर्मों के करावनेवाले होते हैं, ताते अज्ञानीको क्रियमाण अरु क्रियमाण से संचित अरु संचित से पुनः प्रारब्ध, प्रारब्धसे पुनः क्रियमाण, इस प्रकार घटी यन्त्रवत् कर्मचक्र भ्रमावताही रहता है उसके कर्म विना सम्यक्ज्ञान के हुए अन्य किसी प्रकार से भी अभाव होते नहीं ॥ हे प्रियदर्शन ! प्रारब्धभोग जो ज्ञानी अरु अज्ञानी के विषे तुल्य हैं सोभी तीन प्रकार के हैं, तहां एक इच्छितरूप है, दूसरा अनिच्छितरूप है, तीसरा पारेच्छितरूप है । सो यह तीन प्रकार के प्रारब्ध के अनुसार तिनके फल क्रियाभोग सर्वजीवों को प्राप्त होतेहैं । सो तीनों प्रकारकी प्रारब्ध क्रिया भोग श्रीकृष्ण परमात्माने गीताविषे निरूपण कियाहै सो ज्ञानी अज्ञानी दोनों को तुल्यहै, परन्तु अज्ञानी को साभिमानहै ताते बन्धन का कारण है, अरु ज्ञानवान् निरभिमान है ताते उसको बन्धन का कारण है नहीं । अब तीनों प्रकार की प्रारब्ध क्रिया भोग, देखावतेहैं । तथा च । भगवानुवाच ।"सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृते ज्ञानवानपि । प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति" अर्थ 'भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! अपने प्रारब्धकर्म के अनुसार सर्व प्राणी चेष्टा करते हैं, अर्थात् ज्ञान-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वान् भी अरु अज्ञानी भी सर्व अपने २ पूर्वकर्म संस्कारों के आश्रय चेष्टा करते हैं, अरु उसही स्वभाव (प्रकृति) को प्राप्त होते हैं तब पुनः निग्रह किसका करिये। अर्थात् पूर्व शरीरों से किये जे कर्म सो संस्काररूप से अन्तःकरण बिषे स्थित हैं, तिन संस्कारों का जो प्रबुद्ध होना (जागना) है तिसही के आश्रय ज्ञानी अरु अज्ञानी सर्व चेष्टा करते हैं तब उनका निग्रह क्यों करिये। यह तो इच्छापूर्वक क्रियाभोग हैं, क्योंकि पूर्वजन्मों के किये जे इच्छापूर्वक शुभाशुभ कर्म सो संस्काररूप से अन्तःकरण में स्थित होय इन शरीरों को अपने आश्रय बर्तावे हैं, एतदर्थ इस स्वाभाविक चेष्टा का नाम इच्छापूर्वक चेष्टा है, अर्थात् इच्छित प्रारब्ध क्रियाभोगहै॥ हे सौम्य! अब अनिच्छित को भी श्रवण करो पूर्व अर्जुन ने श्रीकृष्ण परमात्मा से प्रश्न किया है कि "अथ केन प्रयुक्तोयं पापं चरति पूरुषः। अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादपि नियोजितः" हे भगवन्! उत्तम पुण्यरूप क्रिया करने की इच्छा सर्व को होती है, सुखप्राप्ति वास्ते, पापकर्म की इच्छा कोई भी करता नहीं, दुःख की अप्राप्ति वास्ते, तथापि जिस पापकर्म की इसको इच्छा नहीं तिसही पापकर्मों में प्रवृत्त होते हैं सो किसकी प्रेरणा से होते हैं, जैसे राजाकी प्रेरणा से, विनाही अपनी इच्छा के भृत्य युद्धरूप कर्म करता है कि जिस क्रिया में मरण पर्यन्त का भय है, तैसेही यह पुरुष जो बिना अपनी इच्छा के पापरूप कर्म, कि जिसमें परिणाम नरकादिकों का भय है, करता है सो किसकी प्रेरणा से करताहै, यह आप कृपाकर मुझ से कहिये॥ हे सौम्य! इस प्रकार जब अर्जुन ने प्रश्नकिया तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर कहा कि "काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्" हे अर्जुन! यह जो काम अरु क्रोधहै सो रजोगुण से उपजे हैं अरु बड़े भोजन के करनेवाले पापात्मा हैं, अरु जिज्ञासु के नित्यही वैरी हैं। तिनकी प्रेरणा से यह जीव अनिच्छित भी पापकर्मों में प्रवृत्त होते हैं। अर्थात् यह जो कामना हैं सोई अपनी अपूर्णता से क्रोधरूप परिणाम को पावती है, क्योंकि जब कोई किसी पदार्थ की कामना से किसी क्रिया में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवर्त होता है, तिस क्रिया में जब कोई द्वेषी पुरुष विघ्न करता है तब वोही कामना जो पूर्व रजोगुणात्मक रही सो क्रोधरूप से तमोगुणात्मक परिणाम को प्राप्त होती है, सो विवेकशून्य पापात्मा है, अरु कामना भोगों करके तृप्त होती नहीं । आहुति से अग्निवत् , अतएव सो महाशनाहै अरु जिज्ञासुकी तो यह नित्यही वैरी है ॥ हे सौम्य ! इसी कारण से श्रीकृष्णपरमात्मा ने कहा है कि " जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् " हे अर्जुन ! इस कामरूप बलवान् शत्रु को जय करो तिस विना कल्याण नहीं ॥ अरु पूर्व जन्मोंके जे रजोगुणात्मक कर्मों के समूह सो सूक्ष्म संस्काररूप से अन्तःकरण बिषे स्थित हैं, सो जब अपना फल देने को सम्मुख होते हैं तब प्रारब्धरूप भाव को प्राप्तहोय कामनारूप से प्रबुद्ध होते (जागते) हैं, तब तिसके वश हुआ जीव अनिच्छित भी पापकर्मों में प्रवृत्त होताहै, सो क्रिया अरु तिसका फल भोग, सो सर्व अनिच्छित क्रिया भोगहै । ताते इसको अनिच्छित क्रिया भोग कहते हैं ॥ अब परइच्छित प्रारब्ध को श्रवण करो । हे सौम्य ! श्रीकृष्ण भगवान्ने कहाहै कि, हे अर्जुन ! अपने पूर्व कर्मोंके संस्कारजन्य प्रकृति 'कहिये स्वभाव' तिसके वश हुआ जो तू सो अपने अज्ञानभ्रम करके भ्रमा हुआ अपना धर्मरूप जे युद्ध कर्म सो नहीं भी करता तथापि परवश हुआ युद्ध कर्म करेहीगा इस बिषे संशय कुछ नहीं, ताते यह जो तेरी युद्धरूप क्रिया है अरु तिसका जो परिणाम फलभोग है सो दोनों पर इच्छितहै । अरु कामना अरु क्रिया यह परस्पर ओतप्रोत हैं, क्योंकि कामना विना क्रिया होवे नहीं, अरु क्रिया है सो कामना को लखावती है, अरु यह दोनों अविद्या के आश्रय हैं, अरु सो अविद्या अनादि होनेसे तदाश्रित काम क्रिया भी अनादि है, तथापि सर्वाधिष्ठान आत्म-सत्ताके साक्षात् ज्ञानसे अविद्या अरु तदाश्रित सर्व काम कर्मादिकों का अभाव होताहै, ताते अविद्या अरु तिसका कार्य समस्त नामरूप क्रियात्मक जगत् असत्य है । अरु अज्ञानावस्था पर्यन्त जे अनादिकाल से अनेक जन्मों के काम कर्मादिकों के संस्कार सो जब अपना फल भोग देनेके अर्थ सम्मुख होते हैं । तब वोही संचितसे प्रारब्धसंज्ञा को प्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होय इच्छित, अनिच्छित अरु परेच्छित इन तीन प्रकारसे प्रवृत्त होते हैं, ताते प्रारब्ध क्रियाभोग तीन प्रकार के हैं॥

हे सौम्य! तुम्हारी दृढ़ताके अर्थ पुनः कहते हैं तिसको भी श्रवण करो, तहां प्रथम इच्छारूप क्रियाभोग श्रवण करो 'जैसे कोई एकरोगी पुरुषहै तिसको औषधकर्ता वैद्यने आज्ञाकिया कि तू कुपथ्य भोजन मत करियो जो करेगा तो दुःख भोगेगा, सो यह आज्ञा वैद्य की श्रवण करके भी वो रोगी पुरुष कुपथ्य की इच्छाकर पुनः सोई भोजन करके दुःख भोगता है। सो कुपथ्य भोजनरूप क्रिया को वैद्यद्वारा क्लेशदायक जान के भी पुनः सोई कुपथ्य भोजन करना अरु दुःख भोगना, सो यह क्रिया अरु भोग दोनों स्वइच्छित प्रारब्ध है। तैसे चौर्यादि निषिद्ध कर्मों के ताड़नादि दुःखरूप फल को जानके भी तिस चौर्यादि कर्म में प्रवृत्त होना अरु तिसके फल ताड़नादि दुःखों को भोगना, सो यह सर्व क्रिया भोग स्वइच्छित प्रारब्धहै॥ अब अनिच्छित कोभी श्रवण करो, हे सौम्य! जैसे कोई एक पुरुष किसी ग्राम को जाता है सो उस ग्रामके मार्गपर चलते २ उसमार्ग को भूलके अन्यग्रामके मार्गपर चलने लगा तब उस मार्गबिषे उसको कण्टकादि चुभनेसे अति दुःख हुआ वा किसी उत्तम पदार्थ की प्राप्ति से उसको हर्ष हुआ 'सो उस पुरुष की उसमार्ग में' कि जिसपर भूलके चलता है, गमनकिया, अरु दुःख सुख का भोग सो उस पुरुष को अनिच्छित क्रिया भोगहै, क्योंकि उस पुरुष को उस मार्गपर चलने की वा तिस मार्गजन्य सुख दुःख भोगने की पूर्व से इच्छा नहीं॥ हे सौम्य! अब परेच्छित को भी श्रवण करो, हे प्रियदर्शन! कोई एक निर्धन पुरुष अपने किसी प्रयोजनार्थ कहीं को जाता रहा किंवा कहीं बैठारहा तिसको अकस्मात् किसी राजकीय बलवान् पुरुषने अपने बन्धन में कर अपना जो कुछ सामान (भार) था सो बलात्कार से उसके मस्तकपर धरके उसको ताड़नासहित अपने अनुकूल मार्गपर चलावनेलगा। सो उस निर्धन मनुष्य का उस राजकीय मनुष्य के वश होय उसके भारको उठावना उसके अनुकूल मार्गपर चलना, अरु उसकी की हुई ताड़नाके क्लेश को भोगना, सो सर्वक्रिया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भोग उसकी परेच्छित है ॥ हे सौम्य ! अब इस पर वृद्धों की साक्ष्य श्रवण करो जैसे अपनी सत्यवती माताके वश हुए व्यासदेवजीने 'राजा पाण्डु, धृतराष्ट्र, अरु विदुर इनकी माता के साथ उनके संतानार्थ विषयभोग किया सो व्यासदेवजीने अपनी इच्छापूर्वक नहीं किया किन्तु केवल अपनी माता की आज्ञाके वश होयके किया सो उनका परेच्छित प्रारब्ध क्रियाभोग है ॥ हे सौम्य ! एक प्रारब्धके तीन प्रकारके क्रिया भोग भेद तुमसे कहा, सो सर्वको समान भोक्तव्य हैं क्योंकि प्रारब्ध कर्म विना भोगे अन्य किसीप्रकार से भी अभाव होते नहीं । तिन तीनों में से आत्मज्ञानी को, इच्छित अरु अनिच्छित दो प्रकार की प्रारब्ध क्रियाभोग अभाव होजाते हैं । क्योंकि उस ज्ञानवान् को सर्वात्मभाव उदय हुआ है, तब वो इच्छा अनिच्छा कौनकी करे, क्योंकि " यत्र द्वैतमिव भवति तदितर इतरम्पश्यति " इत्यादि प्रमाण से इच्छा अनिच्छा द्वैतभाव प्रिय अप्रिय वस्तु बिषे होतीहै, अरु द्वैतभाव अविद्याके आश्रय होता है, सो द्वैतभाव का आश्रय अविद्या ज्ञानवान् की अभाव होती है ताते ज्ञानी बिषे इच्छा अनिच्छा का भी अभाव है । अरु एक लोकदृष्ट्या शरीरयात्रामात्र जो ज्ञानी बिषे भोजनादि क्रिया भासती है सो परेच्छित है, क्योंकि जो किसीने कुछ भोजन करायदिया तो करलिया वा किसीने वस्त्र ओढ़ाया तो ओढ़लिया, अरु जो कोई तर्ककरे कि उस ज्ञानी के मुख में ग्रास किसी अन्य ने देदिया परन्तु उसको चबायके कण्ठके नीचे उदरमें उतारना यह जो क्रिया है सो तो ज्ञानवान् बिषे स्वइच्छित होनेसे उसको बन्धन का हेतु होगी, सो कहना बने नहीं क्योंकि ज्ञानवान् के बिषे जो शरीर की स्थितिमात्र के अर्थ भोजन शौचादिक क्रिया हैं सो निरभिमानता से होने करके बन्धनका कारण होवे नहीं । तथाच " शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् " " लिप्यते न स पापेभ्यः पद्मपत्रमिवाम्भसि " " न लिप्यते कर्मणा पापके नेति " इत्यादि प्रमाणों से अरु वास्तव करके ज्ञानी के स्वरूप में सो परेच्छित भी नहीं क्योंकि उसकी दृष्टिमें सर्वात्मभाव होनेसे स्वपर का भेद नहीं, उसको तो सर्वभेद भावसे रहित एक अपना आप आत्माही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भासताहै "। सर्वं खल्विदं ब्रह्म "। "। ब्रह्मैवेदं सर्वं, "। "। आत्मैवेदं सर्वम् "। "। पुरुषएवेदं सर्वम् "। "। नेह नानास्ति किञ्चन "। इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाण से एक अद्वितीय आत्माही है, इतर रज्जुकमात्रभी नहीं। ताते ज्ञानीके बिषे, संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों प्रकार के कर्मों का अभाव है। अरु जो लोकदृष्ट्या ज्ञानी बिषे क्रिया भोग प्रत्यक्ष देखते हैं सो देहके आश्रय इच्छा अनिच्छासे रहित साधारण आभासमात्र है क्योंकि देह का होना प्रारब्ध कर्म संस्कार के आश्रय है ताते ज्ञानी का यावत् देह है तावत् प्रारब्ध है यावत् प्रारब्ध है तावत् देह है, इस प्रकार देह अरु प्रारब्ध का व्यापार अन्योन्याश्रयहै, एतदर्थ यावत् ज्ञानी का देहहै तावत् देह सम्बन्धसे ज्ञानी के बिषे प्रारब्ध, क्रिया भोग भासते हैं सो ज्ञानी के स्वरूप बिषे उपाधिकृत आभासमात्र मिथ्याहै ज्ञानी के स्वरूप में प्रारब्ध क्रिया भोग नहीं। ताते प्रणवोपासक ज्ञानवान् के, संचित, आगामी, प्रारब्ध तीनों कर्मों का अभाव होता है अर्थात् ॐकार के उपासक मुमुक्षुको तीनों प्रकारके कर्मरूप पापों से ॐकार शुद्ध करताहै ताते ॐकार का नाम शुक्र है॥ हे सौम्य! अब और श्रवण करो, यह संचितादि तीनप्रकारके जे कर्म हैं सो देहाभिमानी अज्ञानी को सत्य हैं, अरु ज्ञानवान्के तीनों कर्म अभाव होजातेहैं, तहां संचितकर्म तो ज्ञान होतेही ज्ञानाग्नि करके नष्ट होजाते हैं, ताते उसको आगे पुनर्जन्म का अभाव होताहै, जैसे कोई पुरुष अपने अन्न करके भरेहुए मन्दिर को भस्म करदे तब वो अग्नि करके दग्धहुए अन्नके दाने अपने अंकुर उपजावने को समर्थ होते नहीं। तैसेही ज्ञानवान् का अन्तःकरणरूप मन्दिर संचितकर्मरूप अन्नके दानेसहित ज्ञानाग्नि करके दग्ध होजाताहै सो पुनः शरीररूप अंकुर उपजावनेको समर्थ होता नहीं। सो अन्तःकरण का अभाव इस प्रकार होता है, जो ज्ञानवान् का चित्त सत्पद को प्राप्त होता है। हे सौम्य! जिस करके असम्यक्ज्ञान दर्शन होय, अर्थात् सत्यरूप आत्मा बिषे असत्य बुद्धि होय, अरु असत्य देहादिकों बिषे सत्यात्मबुद्धि होय तिसका नाम असम्यक्ज्ञानदर्शन मन है, अरु अज्ञान, जीव, है। अरु जब आचार्य के उपदेशद्वारा सत्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मानुभव विज्ञान होताहै तब अज्ञानरूप जीव, मन, भाव नष्ट हो-जाता है, तब केवल शुद्ध आत्मपद ज्यों का त्यों शेष रहता है, तिसको चित्सत् कहते हैं। इस प्रकार जब चित्सत्पद को प्राप्त होता है, तब अन्तःकरण जो है मनभाव सो संचित कर्मों सहित, अन्न के मन्दिरवत्, नष्ट होजाता है तब पुनः सो देह उपजावने को समर्थ होता नहीं॥ अरु जो क्रियमाण कर्म हैं सो ज्ञानी के बिषे उपजतेही नहीं, क्योंकि क्रियमाण कर्म जो उपजते हैं सो अज्ञान के आश्रय अन्तःकरण बिषे उपजते हैं, सो अन्तःकरण ज्ञानवान् का सहित अज्ञान के नष्ट होता है, ताते वा ज्ञानवान् सदा अक्रिय आत्मपद बिषे प्राप्त हुआ है ताते, उस बिषे क्रियमाण (आगामी कर्म उपजते नहीं) अरु ज्ञानीकी जीव-न्मुक्त अवस्था बिषे जो देह क्रिया दिखती है, सो देह के प्रारब्ध से है सो सर्वको समान होती है, परन्तु सोई क्रिया जब अनात्म अहंकार पूर्वक होती है तब क्रियमाणभाव को प्राप्त होय पुनः संचित संज्ञा को पाय अपना फल जे सुख दुःखादिक सो प्रारब्धरूप से भोगावे है, अरु नानाप्रकार के देव मनुष्य पशु तिर्यगादि उत्तम मध्यम निकृष्ट अधमादि देहों को उपजावे है । ताते देहाभिमानी अज्ञानी को उसकी साभि-मान क्रिया जन्मदायक होती है । अरु वोही क्रिया जो पूर्व संस्कार से प्रारब्धवशात् देह बिषे दीखती है सो जब अहंकारपूर्वक नहीं होती तब वो क्रियमाणसंज्ञाको न प्राप्त होने से संचित अरु प्रारब्ध इनभाव को भी प्राप्त होती नहीं क्योंकि क्रियाबन्धन का मूल अनात्म अभि-मानही है, सो जिसका अज्ञान कारण सहित अभाव हुआ है, तिसकी जो वर्तमान शरीरबिषे क्रिया है सो, क्रियमाण, संचित, अरु प्रारब्ध, इन संज्ञा को प्राप्त होय पुनः जन्म का कारण होती नहीं। अरु देह धरके जो क्रिया होती है सो पूर्वजन्म के केवल प्रारब्धसंस्कार से होती है "पूर्वसंस्कारवातेन चेष्टते शुष्कपर्णवत्" सो प्रारब्ध देह के साथ है सो देह के साथ ही नाशवान् होनहार है । क्योंकि प्रारब्ध के अ-भाव से देह का अभाव अरु देह के अभाव से प्रारब्ध का अभाव यह अन्योन्य अनुमान सिद्ध है अरु प्रारब्ध अरु शरीर अन्योन्याश्रय दोष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्त होने से दोनोंही असत्य हैं। अतएव हे सौम्य! ज्ञानवान् को क्रियमाण कर्म नहीं, क्यों जो ज्ञानवान् सर्व अनात्म अभिमान से रहित अक्रिय आत्मपद को प्राप्त हुआ है, एतदर्थ ज्ञानवान् के शरीर की क्रिया क्रियमाणभाव को नहीं प्राप्त होती है ॥ जैसे भोजनरूप जो क्रिया है सो मानो पूर्वसंस्कारजन्य प्रारब्धजन्य क्रिया है, सो क्रिया जब होती है तब वो नीरोगी पुरुष के देहबिषे पुष्टिरूप क्रियमाणसंज्ञा को प्राप्त होतीहै, अरु वोही प्रारब्धजन्य भोजन क्रिया सरोगी पुरुष के देहबिषे पुष्टिरूप क्रियमाणसंज्ञा को प्राप्त होती नहीं। तैसेही जिज्ञासुपुरुष जब साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोग करके युक्त होता है तब उसके शरीर बिषे प्रारब्धजन्य क्रिया भोग दृष्ट आवते हैं, तथापि वो क्रिया क्रियमाणतारूप पुष्टता को प्राप्त होती नहीं अरु जिस पुरुष को साक्षात् आत्मज्ञानरूप रोग नहीं ऐसा जो नीरोगी अज्ञानी है तिसको प्रारब्धरूप क्रिया से क्रियमाण क्रिया उपजती है नीरोगी के भोजनवत् ,यह वैधर्मीदृष्टान्त जानना,। अतएव हे सौम्य! उक्तप्रकार ज्ञानी पुरुष बिषे संचित अरु क्रियमाण ये दोनों क्रिया नहीं, अरु जो पूर्वक कर्मसंस्कारों से प्रारब्धजन्य क्रिया है सो क्रियमाणवत् भासती है परन्तु वास्तव करके ज्ञानवान् के स्वरूपबिषे सोभी नहीं देह के आश्रय प्रतीत होती है सो ज्ञानवान् अरु अज्ञानी दोनों को तुल्य है, परन्तु अज्ञानी तो तिसबिषे अहंकारपूर्वक राग द्वेष सहित अपने आपको अज्ञानवश हुआ कर्ता भोक्ता माने है, ताते उसकी क्रिया , क्रियमाण, संचित, अरु प्रारब्ध, इन तीनों संज्ञा को प्राप्त होय पुनः शरीरोत्पत्ति अरु सुख दुःखरूप भोग का कारण होती है। अरु ज्ञानवान् की शरीरक्रिया पूर्व के प्रारब्धवश होती है, परन्तु तिसबिषे ज्ञानवान् को अहंकार राग द्वेष कर्ता भोक्ता बुद्धि नहीं, ताते ज्ञानवान् की क्रिया पुनर्जन्म अरु सुखदुःखरूप भोगों का कारण होती नहीं। ताते हे प्रियदर्शन ! ॐकार के उपासक ज्ञानवान् के , संचित, क्रियमाण, अरु प्रारब्ध, तीनों कर्म नाश करके उसको उसका उपास्य ॐकार अपने लक्ष्य सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अक्रिय आत्मपद बिषे प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नाम शुक्ल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है ॥ अथवा स्थूल सूक्ष्म कारण, तीनों शरीरों का अभिमानरूप पाप है तिसको भी नाश करके अपने उपासक को शुद्ध करता है एतदर्थ भी ॐकार का नाम शुक्र है ॥ अथवा तीन जे त्रिपुटियां, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ध्याता-ध्यान-ध्येय, कर्ता-कर्म-क्रिया, इत्यादिक हैं, तिन अज्ञानजन्य त्रिपुटियों को नाश करके अपने उपासक को ॐकार शुद्ध करता है ताते ॐकार का नाम शुक्र है ॥ अथवा अज्ञान अनात्मा देहादिकों के आश्रय जे बन्धन का हेतु वर्णाश्रम का अभिमान अरु तिस के आश्रय कर्तृत्व भोक्तृत्व का अभिनिवेश, तिनरूप सर्वपापों से अपने उपासक को मुक्त शुद्ध करके ॐकार अपने लक्ष्य परब्रह्म परमात्मपद को प्राप्त करता है ताते ॐकार का नाम शुक्र है "यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः" इत्यादि ॥ हे सौम्य ! यह तुम्हारे प्रति ॐकार के षष्ठशुक्रनाम का अर्थ संक्षेपमात्र कहा तिसका विचारकर शुद्ध होवो ॥ ६ ॥

अथ सप्तमनामवैद्युतार्थविचारः ॥ ७ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के सप्तम वैद्युतनाम का अर्थ संक्षेपमात्र श्रवण करो । विद्युतनाम है प्रकाश का सो ॐकार अपने ज्ञानरूप प्रकाश करके अपने उपासक के अज्ञानरूप अन्धकार को, कि जिसके आश्रय बारम्बार जन्ममरण के महाभयका देनेवाला संसाररूप असत्य सर्प अपने आप शुद्ध अद्वैत जन्म मरण से रहित अज अविनाशी आत्मा बिषे, सत्य प्रतीत होता है, अभाव करके, अपना आप रज्जुस्थानीय आत्मरूप पदार्थ ज्यों का त्यों प्रत्यक्षकर देखावता है "ज्ञानदीपेन भास्वतः" इत्यादि प्रमाण से ताते ॐकार का नाम विद्युत है ॥ अथवा ॐकार अपने उपासकको विद्युतवत् विशेष प्रकट दर्शन दे पुनः अपने सामान्यरूप को प्राप्त होताहै "यदेतद्विद्युतोव्यद्युतदा" इत्यादि केनोपनिषद् के प्रमाण से । एतदर्थ भी ॐकार का नाम विद्युत है ॥ ७ ॥

अथ अष्टमनाम हंस ॥ ८ ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के अष्टम हंसनाम का अर्थ श्रवण करो ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हंसनाम सूर्य का है, जैसे सूर्य रात्रि को अरु तज्जन्य अन्धकारको अरु तज्जन्य आभास को नाश करता है। तैसेही ॐकाररूप सूर्य है तिसकी जो पुरुष, विचार ध्यान उच्चार जप आदि, क्रम से उपासना करताहै, तिस उपासक के अन्तःकरण में सूर्यवत् ज्ञानरूप से उदय होय, मूलाविद्यारूपा रात्रि, अरु तदाश्रित तमोगुणरूप अन्धकार, अरु तदाश्रित स्वरूप का अनाभास, तिनको अभाव करके अपने लक्ष्य शुद्ध तुरीयरूप आत्मा को प्रकाशता है। ताते ॐकार का नाम हंस है। तथाच "आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः" इत्यादि श्रुति के प्रमाण से ॥ अथवा हंस उस पक्षी विशेष को भी कहते हैं कि जो मिश्रित हुए दुग्ध अरु जलको पृथक् २ करता है, तैसेही ॐकाररूप हंस अपने उपासक के हृदय की चिज्जड़ग्रन्थि, जो दुग्ध अरु जलवत् मिश्रित, है तिस चिज्जड़ग्रन्थिको खोलके चैतन्यरूप दुग्ध अरु जड़रूप जलको पृथक्२ करके अपने उपासक को आत्मरूप दुग्ध की प्राप्ति कराय अजर अमर अभयपद को प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नाम हंस है। तथाच "हंस शुचिः" इत्यादि श्रुतिप्रमाण से। अर्थात् ॐकार अपने उपासक की अविद्यारूपा रात्रि अरु अनात्मजड़रूप जल को नाश करके स्वयंज्योतिः सर्व का परमसार नित्य निरञ्जन निर्विकार अपने आप आत्मपद बिषे प्राप्त करता है, अतएव ॐकार का नाम हंस है ॥ ८ ॥

अथ नवमनाम तुरीय ॥ ९ ॥

हे सौम्य! अब ॐकार के नवमनाम तुरीय का भी अर्थ श्रवण करो। हे प्रियदर्शन! तुरीय उसको कहते हैं, जो सूक्ष्म स्थूल कारण, यह तीन शरीर, अरु जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, यह तीन अवस्था, अरु विश्व तैजस प्राज्ञ, यह तीन अभिमानी, अरु स्थूल विराट अरु आनन्द, यह तीन भोग्य, इत्यादिकों का जो साक्षी प्रकाशक अधिष्ठान अरु उक्त सर्व से पृथक् है तिस निर्विशेष चैतन्य आत्मा का नाम तुरीय है। अरु सोई त्रिमात्रिक वाचक ॐकार का लक्ष्य है अरु त्रिमात्रिक ॐकार के आलम्बन से यही मुमुक्षुओं करके उपास्यदेव है, अरु यही एक अद्वि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीय सर्वका अपना आप प्रत्यगात्माहै इसही के साक्षात् सम्यक्ज्ञानसे मोक्ष होतीहै। तिस अपने लक्ष्यरूप तुरीय आत्मा की प्राप्ति अपने उपासक को कराय तीनों अवस्थारूप नामरूप क्रियात्मक असत्य संसार-सागरसे तार देताहै, ताते ॐकार का नाम तुरीय कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ दशमनाम परब्रह्म ॥ १० ॥

हे सौम्य ! अब ॐकार के दशम ब्रह्म नाम का अर्थ श्रवण करो। परा, पश्यन्ती, मध्यमा अरु वैखरी, इन चारों वाचा करके जो प्रकट होता है सो ॐकार का वाच्य शब्दमय ब्रह्महै। तहां परा उसको कहते हैं, पश्यन्ती मध्यमा अरु वैखरी, इन तीनों की समावस्था है वा सामान्य शब्दके उत्थानसे रहित केवल ध्वनिमात्रहै। वा जहांसे पश्यन्ती का उत्थान होताहै, सो परा वाचा है। अरु पश्यन्ती स्फुरणरूप तिस बिषे यह स्फुरण होताहै जो कुछ कहो, इस स्फुरण का नाम पश्यन्ती वाचाहै। अरु जब वो स्फुरण निश्चयात्मक होताहै कि अब यह कहों ही, तिसका नाम मध्यमा वाचा है। अरु उसही निश्चय से करके होठ जीभ हिलाय के प्रकट कहा तब तिसको वैखरीवाचा कहते हैं। तिस वैखरी बिषे चारोवेद षट् आदिशास्त्र अष्टादशादि स्मृति अष्टादशपुराण इतिहासादि जो विद्या हैं अरु नाना प्रकार की नाना देशकी भाषा हैं, अरु नानाप्रकार के पशु पक्षी आदिकोंकी नाना भाषा हैं सो सर्व स्थूलरूप वैखरी बिषे स्थित हैं। तथाच "सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्" "वाग्वैनामनो भूअसि" इत्यादि श्रुतिः। तहां से स्वर वर्णात्मक शब्दरूप से प्रकट होय है, सो सर्व ॐकार का वाच्य शब्दब्रह्महै तहां वेदरूप शब्दमय ब्रह्म ॐकार तिसकी उपासना। अध्ययन विचाररूप से, करने करके शब्दमय ब्रह्म करके प्रतिपाद्य जे ॐकार का लक्ष्य निर्विशेष परब्रह्म परमात्मा तिसकी अपने आप आत्मत्व से प्राप्ति होतीहै। तथाच "शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति" इति ॥ ताते इस ॐकार को परब्रह्म कहते हैं ॥ १० ॥

इति ॐकारस्यदशनामार्थविचारः समाप्तिमगादिति शम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ ॐकार के क्रमशः सप्त सिद्धान्तों के मात्राक्रम॥

प्रथम हिरण्यगर्भ सिद्धान्त क्रम १			
अग्नि	वायु	सूर्य	यह तीन मात्रा
ऋग्वेद	यजुर्वेद	सामवेद	यह तीन वेद
अकार	उकार	मकार	यह तीन अक्षर
द्वितीय कपिलदेव सिद्धान्त क्रम २			
सत्त्वगुण	रजोगुण	तमोगुण	यह तीन गुण
व्यक्तज्ञान	अव्यक्तज्ञान	ज्ञेयज्ञान	यह तीन ज्ञान
मन	बुद्धि	अहंकार	यह तीन कारण
तृतीय अपान्तर मुनि सिद्धान्त क्रम ३			
गार्हपत्याग्नि	आहवनीय	दक्षिणाग्नि	यह तीन मुख
ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
धर्म	अर्थ	काम	यह तीन प्रयोजन
चतुर्थ सनत्कुमार सिद्धान्त क्रम ४			
भूत	भविष्यत्	वर्त्तमान	यह तीन काल हैं
स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिङ्ग हैं
बहिस्संधी	संध्यसंधी	क्रान्तसंधी	यह तीन संधी हैं
पञ्चम ब्रह्मनिष्ठों का सिद्धान्त क्रम ५			
हृदय	कण्ठ	मूर्द्धा	यह तीन स्थान
बहिःप्रज्ञा	अन्तरप्रज्ञा	घनप्रज्ञा	यह तीन प्रज्ञा
जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन पद हैं
षष्ठ पशुपति शिव सिद्धान्त क्रम ६			
शान्त 'जाग्रत्'	घोर 'स्वप्न'	मूढ़ 'सुषुप्ति'	यह तीन अवस्था
अन्न	जल	सोम	यह तीन भोग्य
अग्नि	वायु	सूर्य	यह तीन भोक्ता
सप्तम विष्णुपञ्चरात्र सिद्धान्त क्रम ७			
बल	वीर्य	तेज	यह तीन आत्मा
ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह तीन स्वभाव
संकर्षण	प्रद्युम्न	अनिरुद्ध	यह तीन व्यूह हैं

☞ यह सप्त सिद्धान्त के मतसे एक ॐकार की मात्रा के ६३ भेद हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ अन्य प्रकार से ॐकार की मात्रादि विचार ॥

१	अकार	उकार	मकार	यह तीन मात्रा
२	अग्नि	वायु	सूर्य	यह तीन ऋषि
३	गायत्री	त्रिष्टुप्	बृहती	यह तीन छन्द
४	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	यह तीन देवता
५	श्वेत	रक्त	कृष्ण	यह तीन वर्ण
६	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	यह तीन अवस्था
७	भूः 'भूर्लोक'	भुवः 'पितृलोक'	स्वर् 'स्वर्गलोक'	यह तीन व्याहृति वा लोक
८	उदात्त	अनुदात्त	स्वरित	यह तीन स्वर
९	ऋग्	यजुः	साम	यह तीन वेद
१०	गार्हपत्य	दक्षिणाग्नि	आहवनीय	यह तीन अग्नि
११	प्रातः	मध्याह्न	सायं	यह तीन संधि हैं
१२	भूत	भविष्यत्	वर्तमान	यह तीन काल
१३	सत्त्व	रज	तम	यह तीन गुण
१४	उत्पत्ति	पालन	संहार	यह तीन क्रिया
१५	कर्म	उपासन	ज्ञान	यह तीन काण्ड
१६	विराट्	हिरण्यगर्भ	अव्याकृत	यह तीन शरीर
१७	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	यह तीन लिङ्ग
१८	होता	अध्वर्यु	उद्गाता	यह तीन ब्राह्मण
१९	ज्ञान	ऐश्वर्य	शक्ति	यह तीन स्वभाव
२०	बहिः	अन्तर	घन	यह तीन प्रज्ञा
२१	अन्न	जल	चन्द्रमा	यह तीन भोग
२२	अग्नि	वायु	सूर्य	यह तीन भोक्ता

☞ हे सौम्य ! यह जो ॐकार की मात्राओं का भेद स्वरूप कहा है सो अकार-उकार-मकार इन तीन मात्राओं का विस्तार है अरु समस्त जगत् इसके अवान्तरहै ताते ॐकार एवेदं सर्वम् इति ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ रामगीतानुसारमात्रिकालयचिन्तनम् ॥

पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोंकारमात्रं सचराचरं जगत्। तदेव वाच्यं प्रणवोहि वाचको विभाष्यतेऽज्ञान वशान्न बोधतः १। ४८॥

हे सौम्य! अब परब्रह्म की प्राप्ति में सर्वोत्तम जे प्रणवोपासन तिस की मात्राओं के क्रमशः लय चिन्तन द्वारा तिसके लक्ष्य परब्रह्म की आत्मत्वभाव से जिस प्रकार साक्षात् प्राप्ति होती है सो प्रकार तुम्हारे प्रति संक्षेप से कहता हौं तिसको सावधान होयके श्रवण करो॥ तहां प्रथम, श्लोक का अक्षरार्थ "(समाधि से पूर्व सम्पूर्ण जे चराचर जगत् [तिसको] ॐकारमात्रही चिन्तनकरे निश्चय करके प्रणव (ॐकार) नाम है [अरु] सो (जगत्) ही नामी है [सो नाम नामी का भेद] अज्ञानवशसे है ज्ञान से नहीं" हे प्रियदर्शन! जो विवेकी साधनसम्पन्न आत्मजिज्ञासु पुरुष है सो निर्विकल्प समाधि के प्राप्त होने के पूर्व सम्पूर्ण चराचर जगत् को एक ॐकारमात्रही चिन्तन करे। क्योंकि "ॐकार एवेदं सर्वम्" (यह सर्व ॐकारही है) ऐसी श्रुति की आज्ञा है, ताते निश्चय करके प्रणव जो ॐकार सो नाम है अरु जगत्ही उसका वाच्य कहिये नामी है। क्योंकि "तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वं ॐकारएव" इस माण्डूक्यउपनिषद् की श्रुति प्रमाण से। अर्थात् ॐकार नाम है अरु जगत् नामी है ताते निर्विकल्पसमाधि के पूर्व (सविकल्पसमाधि विषे) जगत् को ॐकाररूपही चिन्तन करे, सो नाम नामी भी मुमुक्षु के समझावने के अर्थ आचार्योंने कहलिया है वास्तव करके तो नाम नामी का भी भेद नहीं जो भेद भासताहै सो अज्ञानवश से भासता है, सम्यक्ज्ञान होने से नाम नामी का भेद नहीं। अर्थात् जब वाच्यरूप त्रिमात्रिक प्रणवोपासकको उस उपासना के प्रभाव से लक्ष्यरूप अमात्रिक निर्विशेष निरुपाधि आत्मतत्त्व का साक्षात्कारस्वरूप अपरोक्ष सम्यक्ज्ञान होता है तब वृत्ति के अभाव से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

,नाम, नामी, यह भी संज्ञा रहती नहीं, केवल एक अद्वैत परमशान्त शिव विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है "शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः" इत्यादि प्रमाण से १ । ४८ ॥

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् । प्राज्ञोमकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं नतु तत्त्वतो भवेत् २ । ४९ ॥

हे सौम्य! यह जो वर्णात्मक ॐकार है तिसके तीन अक्षर (मात्रा) हैं, तहां प्रथम अकार, द्वितीय उकार, तृतीय मकार, अरु इसका वाच्य जो जगत् है तिसके तीनपाद हैं ,प्रथम स्थूल विराट्, द्वितीय सूक्ष्म हिरण्यगर्भ, तृतीय कारण अव्याकृत, अरु क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र यह तीन अभिमानी देवता हैं । अरु ॐकार का लक्ष्य जो प्रत्यगात्मा है तिसकी तीनमात्रा हैं ,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, अरु इनके अभिमानी आत्मा को क्रम से ,विश्व, तैजस, प्राज्ञ, कहते हैं अतएव ,अक्षर, पद, मात्रा, इन तीनों का एकही पर्याय है ताते वाचक जे वर्णात्मक ॐकार तिसका जो वाच्य समष्टि व्यष्टि जगत् सो परस्पर अभेद है एतदर्थही जाग्रदभिमानी विश्व पुरुष अकारसंज्ञक है, तिसकी स्थूल विराडभिमानी ब्रह्मा देवता के साथ एकता है । अरु क्रमशः स्वप्नाभिमानी तैजस को उकार ऐसा कहते हैं, तिसकी सूक्ष्माभिमानी हिरण्यगर्भ विष्णुदेवता के साथ एकता है । अरु सम्पूर्ण ज्ञानवान् प्राज्ञ को मकार कहते हैं, अर्थात् सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञ की अरु अव्याकृताभिमानी रुद्र की मकारमात्रा के साथ एकता है । सो यह सर्व निर्विकल्प समाधि के पूर्व है । अर्थात् मुमुक्षु पुरुष को यावत् अमात्रिक सर्वाधिष्ठान निर्विशेष आत्मस्थिति को प्राप्त होनेरूप निर्विकल्पसमाधि न प्राप्त होय तावत् उक्त प्रकार चिन्तन कर्तव्य है, अरु जब तिस विचार से निर्विकल्प आत्मस्थिति को प्राप्त होवे तब नहीं, क्योंकि स्थूल सूक्ष्म कारण, ब्रह्मा विष्णु रुद्र, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति, विश्व तैजस प्राज्ञ, अकार उकार मकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यादि विशेषताका भेद भाव रज्जकमात्र भी रहताहै नहीं किन्तु सैन्धव-लवणवत् एक विज्ञानघन आत्मतत्त्वही प्रकाशता है २। ४९॥

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्। ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ३। ५०॥

हे सौम्य! इस श्लोक का उत्तर श्लोक से अन्वयहै ताते इन दोनों श्लोकों का मिश्रित अक्षरार्थ कहते हैं। बहुत प्रकार से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुष को तो उकार में लय करे तदनन्तर प्रणव का द्वितीयवर्ण तैजससंज्ञक (उकार को) पिछले अक्षर मकार बिषे लयकरे॥ तदनन्तर पुनः प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इसपर चैतन्यघन आत्मा बिषे विलीन करे [तदनन्तर] सो मैं सर्वकाल नित्य मुक्त विज्ञान दृष्टि उपाधि से रहित निर्मल परब्रह्म हौं [ऐसी निश्चय भावना करे]॥ हे प्रियदर्शन! जो बुद्धिमान् साधनसम्पन्न मुमुक्षु पुरुष है सो आत्मदेव की प्राप्ति के अर्थ यह विचारकरे कि अनेकप्रकार नानारूप से स्थित विश्वसंज्ञक अकार पुरुष को उकार बिषे लीन करे। तदनन्तर ॐकार का द्वितीय अक्षर जो सूक्ष्म तैजससंज्ञक उकार तिसको भी कि जिस बिषे प्रथम विश्व अकार पुरुष को लीन किया है। प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार बिषे लीन करे। पुनः तिसके अनन्तर प्राज्ञसंज्ञक कारण मकार को भी इस सर्व से पर चैतन्य घन आत्मा बिषे लीन करे इस प्रकार मात्राओं के लय चिन्तन के अनन्तर, सो सर्वाधिष्ठान कि जिस बिषे उक्त समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म सर्व प्रपञ्चमात्रा अध्यस्त (अविद्या करके कल्पित) है, सो मैं सर्वकाल नित्यमुक्त सर्वज्ञ विज्ञान दृष्टि सर्व उपाधि से रहित शुद्ध निर्मल प्रकृति से पर साक्षात् निर्विशेष ब्रह्म हौं॥ तथाच॥ "अयमात्मा ब्रह्म" "शुद्धमपापविद्धम्" "शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते सआत्मा सविज्ञेयः" "स आत्मा तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मीति" इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से अहंब्रह्म भावना बिषे प्रत्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृढ़ करके सर्व उपाधि के अभाव से निर्विकार निराकार अपने आप आत्मा को प्राप्त होवे ॥ हे सौम्य ! यह कही जो मात्राओं की लीनता तिसको व्यष्टि समष्टि की एकता से पुनः सविस्तर कहते हैं, हे प्रियदर्शन ! प्रथम कहा कि अकार जो प्रथम मात्रा है तिसको उकार-रूप द्वितीय मात्रा बिषे लय करे, तिसका अर्थ यहहै जो अकार जाग्रत्-रूप जगत् है अरु विश्व तिसका अभिमानी है, तिसको वैश्वानर भी कहते हैं, अरु ब्रह्मा इसका देवताहै, अरु सत्त्वगुणहै । ऐसी जो प्रथम अकार मात्राहै तिसको उकार सूक्ष्म तैजसरूप जानो । अर्थात् जाग्रत् जगत्को सूक्ष्म स्वप्नरूप जानो, क्योंकि स्वप्नही अपने तीव्र संवेगकरके जाग्रत्रूप हो भासता है , जैसे स्वप्न में सोया हुआ पुरुष स्वप्न को देखता तिसके तीव्रसंवेग सेही विना जाग्रत् के प्राप्तहुए उठके चल देता है, अरु भूतसंज्ञा को प्राप्तहुए जाग्रत् अरु स्वप्न की स्मृतिमात्र तुल्य है ताते जाग्रत् जगत्को स्वप्नरूप जानो । अरु स्थूल जाग्रदभिमानी को सूक्ष्म स्वप्नाभिमानी तैजस का स्वरूप जानो क्योंकि जैसे स्वप्न तीव्र संवेग करके जाग्रत्रूप हो भासता है तैसे तिस स्वप्न का अभिमानी जाग्रत् का अभिमानी हो भासता है ताते । अरु ब्रह्मा जो स्थूल जाग्रत् जगत् का देवता है तिसको सूक्ष्म स्वप्न जगत् का देवता जो विष्णु है तिसही का रूप जानो क्योंकि सूक्ष्म से स्थूल अरु विष्णु से ब्रह्मा फुरे हैं। अर्थात् यह जो स्थूल जाग्रत् जगत् है सो सूक्ष्मस्वप्नरूप है । अरु जाग्रदभिमानी विश्व को स्वप्नाभिमानी तैजसरूप जानो अरु ब्रह्माको विष्णुरूप जानो । इस प्रकार के चिन्तन से प्रथम अकार मात्राको द्वितीय उकार मात्रा बिषे लयकरो । अरु यह जो उकार सूक्ष्म मात्राहै कि जिस बिषे स्थूल अकार मात्रा लीन हुई है उस उकार मात्रा को मकार मात्रा बिषे लीन करो अर्थात् सूक्ष्म स्वप्न जगत् को सुषुप्तिरूप जानो, अरु स्वप्नाभिमानी तैजस को सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञरूप जानो, अरु विष्णु जो सूक्ष्म का देवताहै तिसको कारण का देवता रुद्ररूप जानो । अर्थात् स्वप्न सुषुप्तिरूपहीहै, अरु तैजस प्राज्ञरूपहै, अरु विष्णु रुद्ररूप है । इस प्रकार के चिन्तन से सूक्ष्म उकार को कारण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मकार बिषे लीन करे। अब कारण मकार जो तृतीय मात्रा है तिसको भी अमात्रिकरूप परमात्मा बिषे लय करो। अर्थात् सर्व परमात्मरूपही जानो। तथाच "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" "ओंकार एवेदं सर्वं" "ब्रह्मैवेदं सर्वं" "पुरुष एवेदं सर्वम्" "आत्मैवेदं सर्वम्" "अहमेवेदं सर्वम्" "वासुदेवः सर्वमिति" "मत्तः परतरन्नान्यत् किंचिदस्ति" इत्यादि श्रुतिस्मृतियों के प्रमाणसे यह सर्व अध्यस्तप्रपञ्च अपना अधिष्ठान परमात्मस्वरूपही है क्योंकि अध्यस्त की अधिष्ठान से पृथक्सत्ता का अभावहै। अर्थात् यह जाग्रत्रूप स्थूल जगत् संयुक्त स्थूल शरीर अरु विश्व इसका अभिमानी अरु ब्रह्मा देवता, इन सर्वको सूक्ष्म उकार बिषे लीन करो तहां इसप्रकार जानो जो उकाररूप सूक्ष्म स्वप्न सम्पूर्ण लिङ्गशरीरों का अभिमानी तैजस विष्णुदेव हिरण्यगर्भ है तिससे सम्पूर्ण स्थूलशरीर विराट् पुरुष ब्रह्मादेवता जाग्रदवस्था फुरीहै ताते यह सर्व वोहीरूप है। इस प्रकार के विचारसे अकारमात्रा स्थूलजगत् को सूक्ष्म उकाररूप जानो॥ अरु जो सूक्ष्म उकारमात्राहै, तिसको कारण मकार मात्रारूप जानो। अर्थात् सर्व कारण शरीर सुषुप्ति अवस्था अरु तिसका अभिमानी प्राज्ञ, अरु रुद्रदेवता सर्वका कारण अव्याकृत तिस से सूक्ष्म शरीर स्वप्नावस्था तिसका अभिमानी तैजस तिन सर्वकी समष्टिता का अभिमानी जो हिरण्यगर्भ सो फुराहै। तथाच। "अव्याकृत वा इदमग्रआसीत्" "हिरण्यगर्भो जायमानः" इन श्रुतिवाक्यों की ऐक्यतासे। ताते स्थूल सूक्ष्म सर्व कार्य, कारण अव्यक्तरूप है। तथाच "अव्यक्तादीनि भूतानि" गीतोक्तिप्रमाणसे। ऐसी जे सर्वका कारण मकारमात्रा। अर्थात् समस्तव्यष्टि कारण शरीरों की समष्टिता अव्याकृत, अरु समस्त सुषुप्ति अवस्था की समष्टिता अविद्या अरु सम्पूर्ण सुषुप्त्यभिमानी प्राज्ञ की समष्टिता रुद्रदेवता यह सर्व कारणरूप मकार मात्रा, सो अर्द्ध मात्रारूप, अर्थात् अमात्रिक परमात्मा चैतन्यघन निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मासेही फुरे हैं, ताते आदिकारण प्रकृति अरु तिसका कार्य स्थूल सूक्ष्म सम्पूर्ण जगत्रूप से एक परमात्माही प्रकाशित है अर्थात् अस्ति भाति प्रियरूप से एक परमात्माही सुशोभित है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिससे इतर द्वैत कुछभी नहीं। तथाच "। सद्धीदं सर्वम् ।" "। चिद्धीदं सर्वम् ।" "। पुरुषएवेदं सर्वम् ।" "। ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।" "। माया-मात्रामिदं द्वैतं ।" "। नेह नानास्ति किंचन।" इत्यादि श्रुतिके प्रमाणसे सर्व ब्रह्मरूपही है। हे प्रियदर्शन ! इसप्रकार के विचारसे, अकार, उकार, मकार, यह तीन मात्रारूप स्थूल सूक्ष्म कारणरूप प्रपञ्च है ॐकारका लक्ष्य परमात्मरूपही है, अरु सो परमात्मा अज है एतदर्थ वो कार्यरूप से जन्मभाव को प्राप्त होता नहीं किन्तु सर्वाधिष्ठान होनेसे सर्वरूप से सुशोभित है, जैसे शुक्ति रजतरूप कार्य भाव को प्राप्तहुए विनाही अपने स्वभाव करके रजतरूप से सुशोभित है सोभी शुक्तिके अज्ञान पर्यन्तही है ज्ञानहुए रजत कहनेमात्र को भी नहीं तैसेही एक परमात्माही कार्य भाव को न प्राप्त होयके जगत्रूपसे सुशोभितहै हुआ कुछ नहीं, एक अद्वैत चिन्मात्र सत्ताही है तिससे इतर एक परमाणुमात्र भी नहीं, जैसे जलसे इतर समुद्र अरु तद्गत लहर झाग बुद्बुदादि कुछभी नहीं, जैसे अग्नि से भिन्न दाहकता उष्णता प्रकाशकतादि कुछ नहीं, वा जैसे वायु से भिन्न स्पन्दता निस्पन्दता नहीं, जैसे आकाश से इतर शून्यता नीलिमादि कुछ नहीं, तैसेही ॐकार के लक्ष्य परमात्मा से इतर वाच्यरूप जगत् कुछ नहीं, अरु इतरवत् भासता है सोई भ्रान्ति वा उसकी स्वभावभूत माया है। हे प्रियदर्शन ! यहां जो परमात्मा के विषे स्वभाव वा माया कही है तिस करके सांख्यवत् पृथक् प्रकृति का ग्रहण नहीं क्योंकि "। अव्यक्तात्पुरुषः परः ।" अव्याकृत कहिये प्रकृति से पर कहिये श्रेष्ठ है कार्यभाव को न प्राप्त होनेसे। ताते सांख्यमत कल्पित प्रकृतिवत् स्वभाव को न ग्रहण करके परमात्मा का जो सर्वसे विलक्षण भाव है सोई उसका स्वभाव जानना, जैसे मरुस्थल वा ऊषर पृथ्वी का जो पृथ्वी के अन्यदेश भाव से विलक्षणपना है सोई उसका स्वभाव (अपने आप होना) है तिस अपने स्वभाव करके वो पृथ्वी तरङ्गादिकों सहित जलरूप हो भासती है परन्तु जलरूप होती नहीं, तैसेही चैतन्यतत्त्व परमात्माका जो सर्व से विलक्षण अपने आप चैतन्य भावरूप स्वभाव है सोई उसकी अभिन्न माया है, तिस अपना स्वभाव व माया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करके वो परमात्मा कार्य कारणात्मक स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत्रूप हो भासता है हुआ कुछ नहीं, अरु विनाही हुए जो नाना प्रपञ्च हुएवत् भासता है सोई उसकी अघट घटनापटीयसी, उक्त मायाहै, अत एव एक अद्वैत चिन्मात्र तत्त्व जो ॐकार का लक्ष्यहै तिससे इतर वाच्य नहीं, वाच्य अरु वाचक सर्व परमात्मतत्त्वही है। ताते हे प्रियदर्शन! सम्पूर्ण जगत् को उक्त प्रकारसे एक ॐकार का लक्ष्य परमात्मरूप जान के मुमुक्षुपुरुष अपने मोक्षार्थ निर्विकल्प समाधि (निर्विशेष आत्मस्वरूप स्थिति) के अर्थ उक्त प्रकार ॐकारोपासना को शमादि साधनपूर्वक शास्त्रप्रमाण से आलम्बन (आश्रय) करे॥ हे सौम्य! इस ॐकारोपासना से इतर यावत् उपासनाहै सो सर्व ॐकारकी अङ्गभूत उपासना है, अरु ॐकार की जो उपासना है सो अङ्गी उपासनाहै। अर्थात् ब्रह्म की उपासना में ॐकार से इतर जो उपासनाहै सो सर्व गौण उपासना है, अरु ॐकार की जो उपासना है सो मुख्य उपासना है, अरु परमात्मा के नामों में जो ॐकार नाम है सो मुख्य नाम है अरु और जे नाम हैं सो गौणनाम हैं, क्योंकि गुणों के सम्बन्ध से हैं। जैसे सूर्य के कर्ता ईश्वर आदिक जे नाम हैं सो गुणों के सम्बन्ध करके गौण हैं। अरु भानु जो नाम है सो मुख्य स्वाभाविकनाम है। अथवा देवदत्त बिषे, जे, पिता पुत्र भ्राता आदिक नाम हैं सो गौण हैं, अर्थात् गुण सम्बन्धसे कल्पित हैं, अरु पुरुष जो नामहै सो स्वाभाविक मुख्य नाम है। तैसेही परमात्मा का जो ॐकार नाम है सो मुख्य नाम है, ताते ॐकारकी जो उपासना है सो प्रतीकोपासना की रीति से त्रिमात्रिक वाच्य की अरु अहमग्रे उपासना की रीतिसे अमात्रिक लक्ष्य परमात्मा की मुख्योपासनाहै, अतएव सर्व उपासनाओंमें श्रेष्ठ एक प्रणवोपासना है अन्य नहीं। सो ॐकार ब्रह्मरूप है, तहां एक अपर त्रिमात्रिक शब्द ब्रह्म है एक परब्रह्म है। तहां जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों करके जानने बिषे आवता है, अर्थात् जो मन इन्द्रियादिकों का विषय है सो सर्व अर्थरूप होनेसे शब्द ब्रह्मके अन्तर्गत है क्योंकि किसी शब्द का अर्थरूपही है अरु सोई ॐकार का वाच्य है। अरु जो मन बुद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियादिकों का विषय न होत सन्ते सर्व का प्रकाशक साक्षी विज्ञान घन चैतन्य आत्मा है सोई ॐकार का लक्ष्य परब्रह्म है, तिस लक्ष्यरूप की जो उपासना है सो निरालम्बन होने से वाच्यरूप ॐकार के आलम्बन से होती है । जैसे मनकी वा जीवात्मा की जो सन्तुष्टता प्रसन्नता होती है सो शरीरके लालन पालनरूप आलम्बनद्वाराही होती है तैसे । अतएव जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुष अपने आप सत्यस्वरूप आत्मदेव की प्राप्ति के अर्थ ॐकार की उपासना करे, यही उपासना सर्ववेदोंने कही है। तथा च "सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यञ्चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योम्" । "ओमित्येतदक्षर मुद्गीथमुपासीत" इत्यादिक अनेक श्रुतियों ने मुमुक्षु के मोक्षार्थ एक प्रणवोपासनाही मुख्य करके कहा है, अतएव मोक्षार्थी को अपने मोक्षार्थ एक ॐकारोपासना को आलम्बन करना श्रेय है। तथाच "एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" इत्यादि श्रुतिप्रमाणसे । अरु मुमुक्षु के प्रयोजनार्थ यह प्रणवोपासनाही सबसे मुख्य है और नहीं, एतदर्थ हे प्रियदर्शन ! जो तुमको मोक्ष होने की इच्छा है तो उक्त प्रकार प्रणवोपासना करो, अरु यह जो रामगीता के ४८, ४९, ५०, ५१, इन चारश्लोक करके प्रणवोपासना तुम्हारे प्रति कहा है सो श्रीभगवान् रामचन्द्रजी ने अपने प्रियभ्राता जिज्ञासु लक्ष्मणजी से कहा है, अरु यह माण्डूक्योपनिषद् के अनुसारही कहा है, ताते श्रुति स्मृति पुराणादिकों के प्रमाण से मुमुक्षु को परम श्रेय (मोक्ष) प्राप्तिके अर्थ एक प्रणवोपासना को ही यथाशास्त्र आलम्बन करना योग्य है, आगे "यथेच्छसि तथा कुरु" ॥

शिष्य उवाच ॥ हे कृपासागर ! हे गुरो ! आपने जो मुमुक्षु को मोक्ष प्राप्ति के अर्थ सर्वोत्तम आलम्बनरूप प्रणवोपासना कही सो निर्विकल्प समाधि (आत्मरूपास्थिति) से पूर्व मुमुक्षु करके अवश्यही कर्तव्यहै अतएव अब आप कृपा करके इस प्रणवोपासनाका क्रम कृपा करके कहिये ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! ॐकार जो एक अक्षर है तिस का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जप करना अरु इसके अर्थ की भावना करनी। तथाच "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" यह पातञ्जल शास्त्र के प्रथम पाद का २८ वां सूत्र है तिस के प्रमाण से ,ॐ, इस अक्षर का जप अरु इसके अर्थ की भावना करनी तिसका नाम उपासना है। अब तिसका प्रकार सावधान होयके श्रवण करो। ॐकार नाम है परमेश्वर का तिसका जप करना तहां कोई पुरुष तो ,ओम्, ओम्, ओम्, इस प्रकार सहित स्वर के उच्चार करते हैं, अरु कोई एकपुरुष होठ अरु जिह्वा को न हिलायके इसका मनोमय जप करते हैं, अरु कोई एक पुरुष प्राणायाम द्वारा जप करते हैं, सो प्राणायाम इस प्रकार करते हैं कि प्रथम पूरक, अर्थात् मुख बन्द करके नासिका के वामछिद्र को दक्षिण हाथ की मध्यमा अरु अनामिका इन दोनों अंगुलियों सों दबाय नासिका के छिद्र के मार्ग बाह्य से अन्तर को खींचना इसका नाम पूरक है। पश्चात् उस दक्षिण छिद्र को भी अंगूठा सों दबाय बन्दकर प्राण को अन्तर रोकना तिसका नाम कुम्भक है, अरु जब प्राण न रुके तब नासिका का वामछिद्र खोल उस मार्ग से धीरे धीरे प्राण को बाहर छोड़ना ,इसका नाम रेचक है तहां प्राण का जो पूरक है तिस बिषे ॐकार का ३२ बार मनोमय उच्चार करना, अरु कुम्भकबिषे ॐकार का ६४ बार उच्चार करना, अरु रेचकबिषे १६ बार ॐकार का उच्चार करना। इस प्रकार एकबार पूरक कुम्भक रेचक करने से एक प्राणायाम होता है। सो इस प्रकार के प्राणायाम जितने होसकें तेतने करना इनके अभ्यास करने से प्राणवायु वश अरु पापों का नाश होता है एतदर्थ कोई एक पुरुष उक्त प्रकार के प्राणायामों द्वारा ॐकार का जप करते हैं। अरु कोई एक पुरुष इस प्रकार भी करते हैं कि ॐकार की जो ,अकार, उकार, मकार, यह तीनमात्रा हैं तिनको क्रमशः ,ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, रूप स्वरसहित ॐकार का उच्चार करते हैं, सो मूलाधार से मस्तक के ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त ध्वनि को प्राप्त होते हैं। इत्यादि अनेक प्रकार प्रणव के जप के हैं, तिनमें से जिस प्रकार अपने से श्रद्धासहित होता जाने तिस प्रकार करे। यह तो ॐकार के जप करने का क्रम संक्षेपमात्र तुम से कहा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अब इस ॐकार के अर्थ की भावना भी श्रवण करो । हे प्रियदर्शन ! ॐकार के अर्थ की जो भावना करनी है सो दो प्रकार की है तहां एक सगुण वाच्यरूप अरु द्वितीय निर्गुण लक्ष्यरूप, तहां जो सप्त सिद्धान्तकारों के मत से ६३ तिरसठि नामरूप भेद करके कही है सो अरु ॐकार के मात्रा ऋषि छन्द देवता आदि ६६ छियासठ भेद से कही है सो । अथवा जो एक मात्रा से लेके ३८, ४९, ५२, ६३, ६४, मात्रा पर्यन्त कही है सो, । इन तीनों प्रकार से जो ॐकारब्रह्म के अर्थ की भावना कही है सो ॐकार के वाच्य सगुणब्रह्म की भावना है । अरु ॐकार के लक्ष्य निर्गुणब्रह्म की भावना प्रणवोपासक इस प्रकार करते हैं कि जिस ॐकार ब्रह्म की हम उपासना करते हैं तिस त्रिमात्रिक अपरब्रह्मरूप प्रणव शब्द का वाच्य तिसका जो ज्ञाता प्रकाशक साक्षी सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूप लक्षणवान् परब्रह्म आत्मा है, सोई सर्वत्र, सर्व, अस्ति, भाति, प्रियरूप होके व्याप्त होरहा है, तहां अस्ति कहिये, यह है, यह है, यह है, इस प्रकार से है है है यह अस्ति सत्तारूप जो व्याप्त होरही है, अरु जोकि यह नहीं, यह नहीं, यह नहीं इस प्रकार सर्व निषेध के अन्त में निषेध के भाव का प्रकाशक कि जिस करके अस्ति नास्ति सिद्ध होते हैं, अरु अस्ति नास्ति शब्द के अर्थ के अनुभव का आश्रय कि जिस विषे अनुभव होता है । अरु जो अस्ति नास्ति भावनारूप कल्पना का आश्रय आदि अन्त अवशेष है अरु अस्ति नास्ति आदिक कल्पना का अधिष्ठान परम अस्तिरूप सत्ता है, सोई अपने पूर्वोक्त स्वभाव करके अस्ति नास्ति भावाभाव रूप का आश्रय हुआ सुशोभित है ताते वोही सर्वाधिष्ठान सत्ता सर्व रूप से सुशोभित है ॥ अरु भाति कहिये जो प्रकाशता है । अर्थात् जो पदार्थ भासता है सो भातिरूप है, क्योंकि एक दूसरे को प्रकाशता है, जैसे अन्धकार के अभाव को प्रकाश प्रकाशता है, अथवा रात्रि के अभावको दिवस प्रकाशता है जो इस समय रात्रि वा अन्धकार का अभाव है । अरु दिवस किंवा प्रकाश में रात्रि किंवा अन्धकार का अभाव है, सो दिवस किंवा प्रकाश में जो अपने अभावरूप से रात्रि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किंवा प्रकाश सो अपने अभावरूप से दिवस किंवा प्रकाश के भाव को प्रकाशे है, क्योंकि जो कदापि उस दिवस किंवा प्रकाश के भाव काल में रात्रि किंवा अन्धकार का अभावरूप अस्तित्व न होता तो इसकाल में दिवस किंवा प्रकाश है, इस प्रकार दिवस किंवा प्रकाश के अस्तित्व को प्रकाशता कौन। ताते अभावरूप हुए रात्रि किंवा प्रकाश, सो दिवस किंवा प्रकाश के भाव को प्रकाशते हैं॥ अथवा दीपक जो प्रकाशरूप है सो अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थों को प्रकाशता है, तैसेही अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ सो आप अप्रकाशरूप होतसन्ते भी प्रकाशरूप दीपक को वा दीपक की प्रकाशरूपता को सिद्धकरे हैं, क्योंकि जो कदापि अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ न होता तो दीपकप्रकाशरूप है इस प्रकार दीपक की प्रकाशरूपता कैसे सिद्ध होती वा किस आधार से सिद्ध होती अतएव अप्रकाशरूप घटपटादि पदार्थ दीपक की प्रकाशरूपता को प्रकाशे है॥ हे प्रियदर्शन! उक्त प्रकार भाव अभाव प्रकाश अप्रकाश आदिक यावत् भूत भौतिक कार्य कारणात्मक पदार्थ हैं सो सर्व भातिरूप हैं, अतएव अस्तिमात्र स्वयं प्रकाश निर्विशेष सर्वाधिष्ठान आत्मसत्ता है सोई उक्तप्रकार अस्ति भातिरूप से सुशोभित है। तथाच "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अरु प्रिय कहते हैं आनन्द को' क्योंकि सब को आनन्दही प्रिय है; सो आनन्दरूप ब्रह्म है सोई सर्वत्र सर्वरूप से व्याप्त है अतएव सर्वही आनन्दरूप है। ताते जो कछु कर्तव्य अकर्तव्य गुण, दोष, पाप, पुण्य, राग, द्वेष, ग्रहण, त्याग इत्यादि है सो सर्व आनन्दरूप ही है क्योंकि जिस में जिसको आनन्द भासता है सोई वो करता है, अरु जो कोई शुभाशुभ करता है सो सर्व आनन्द के अर्थ ही करता है। अरु जो कोई जो कुछ करता है उसको उसही में आनन्द होता है क्योंकि जो उसको उसमें आनन्द न होय तो कोई कुछ भी न करे। अरु जो जिस आनन्द के अर्थ ग्रहण त्याग शुभ अशुभ आदिक करते हैं सो आपही परमानन्दरूप है, अरु सोई सर्वानन्द हुआ है। तथाच। "आनन्दा ह्येवखल्विमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि भृगुवल्ली की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रुतिप्रमाण से । अतएव जहां है जो है सो सर्वआनन्दही है ॥ इस प्रकार केवल अद्वितीय निराकार निर्विकार सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्मही इस प्रकार अस्ति भाति प्रियरूप होकर सुशोभित होरहाहै । ताते "ॐकार एवेदं सर्वम् " " सर्वं खल्विदंब्रह्म " " नेहनानास्ति किंचन " सर्वं ॐकार ब्रह्मही है तिससे इतर रज्जुकमात्र भी नहीं । इस प्रकार ॐकार के लक्ष्य निर्गुण ब्रह्म की भावनारूप उपासना करते हैं, भावना कहिये सोहंभाव से निदिध्यासन करते हैं ॥ हे प्रियदर्शन ! उक्त प्रकार ॐकार का जप अरु तिसके अर्थ की भावना करनी, जो प्रत्यक् चैतन्य सर्व का अन्तर्यामी सर्व अवस्था का साक्षी अखण्ड अज अविनाश चैतन्य ब्रह्म सो मैंहौं, इस प्रकार जब अपना आप साक्षात् अनुभव अभ्यास करता है तब तिसके जे अन्तराय विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं । तथाच " ततः प्रत्यक् चैतन्याधिगमोप्यन्तरायाभावश्च " यह पातञ्जलशास्त्र के प्रथमपाद का २९ सूत्रप्रमाण है ॥

शिष्य उवाच ॥ वो निर्विकल्पसमाधि में विघ्न करनेवाले अन्तराय कौन कौन हैं सोभी आप कृपाकर कहिये ॥

श्रीगुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! अन्तराय विघ्नों के नाम अरु स्वरूप पातञ्जलशास्त्र के ३०, ३१, दो सूत्रों करके कहे हैं तिनको भी अब सावधान होय श्रवण कसे "व्याधिस्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । ३० । दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेप सह भुवः । ३१ । व्याधि, स्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व, अनवस्थितत्व । दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास, प्रश्वास, ॥ यह चतुर्दश १४ आवान्तरविघ्न समाधि में चित्त को विक्षेप करनेवाले हैं । अब इनके स्वरूप श्रवण करो । व्याधि उसको कहते हैं कि जो उदरस्थ अन्नरस धातु है सो । कफ, वात, पित्त, इनके क्षोभ से बिगड़ता है तब उस धातु के विषम होने से ज्वरादि व्याधि होती है तिस का नाम व्याधि है १ । अरु । स्यान, उसको कहते हैं जो चित्त को अकर्मण्यता है, अर्थात् शुभकर्म । प्राणायामादि बिषे चित्त का न प्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्तहोना तिसका नाम ,स्यान, है २ । अरु ,संशय, उसको कहते हैं जो ईश्वर है या नहीं अरु जो है तो ज्ञानयोग से साध्य है वा नहीं ,अर्थात् ज्ञानयोगाभ्यास से सो प्राप्त होना है वा नहीं, इस प्रकार की जो भावना तिसका नाम संशय है ३ अरु ,प्रमाद, उसको कहते हैं कि समाधि के यम नियमादि साधनोंबिषे चित्तको उदासीनता होनी, तिसका नाम ,प्रमाद, है ४ । अरु ,आलस्य, उसको कहते हैं कि जो देह अरु चित्त का गुरुत्वभाव होना, अर्थात् देह अरु चित्त का जो जड़वत् होरहना है सो ज्ञान में प्रवृत्ति के अभाव का कारण है अतएव तिसको आलस्य कहते हैं, ५ । अरु अविरति उसको कहते हैं जो विषयों के संयोग से भोग की इच्छा का होना, तिसका नाम ,अविरति है ६ । अरु ,भ्रान्तिदर्शन, उसको कहते हैं कि जो विपर्यय ज्ञानदर्शन है अर्थात् जैसे सीपी बिषे रूपे का भासना, तैसेही शुद्ध निष्क्रियादि लक्षणवान् आत्माबिषे कर्तृत्व भोक्तृत्वादि अनात्मधर्म का भासना, तिस का नाम भ्रान्तिदर्शन है ७ । अरु ,अलब्धभूमिकत्व, उसको कहते हैं कि जो ज्ञान की ,शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमांसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावनि, अरु तुरीया, यह सप्तभूमिका कही हैं तिनमें से कोई भी भूमिका, अरु योग की जो चित्त को निरोधतारूपी एकाग्रता सो किसी विक्षेप के निमित्त से न प्राप्त होनी तिसका नाम ,अलब्धभूमिकत्व है ८ । अरु ,अनवस्थितत्व, उसको कहते हैं जो ज्ञान की उक्त भूमिका में से कोई एक प्राप्तहुई भूमिका बिषेभी चित्त की स्थिरता न होनी तिसका नाम ,अनवस्थितत्व है, ९ । हे सौम्य ! इस कहे प्रकार नव अन्तराय विघ्न हैं अरु इनके होने से पांच और होते हैं तिन को भी श्रवण करो । ,दुःख, उसको कहते हैं कि जो ,आध्यात्मिक, आधिभौतिक , आधिदैविक, यह जो तीन प्रकार के दुःख हैं तिनका नाम दुःख है १० । अरु ,दौर्मनस्य, उसको कहते हैं कि जो अन्तर बाह्य के कोई भी कारणों करके चित्त की विक्षेपता ,अर्थात् चित्त की असमाधानता, तिसका नाम दौर्मनस्य है ११ । अरु अङ्ग में जयत्व, उसको कहते हैं कि जो रोगादिकों से शरीर का कांपना है १२ अरु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वास, उसको कहते हैं जो प्राण का शीघ्र २ चलना वा मुखनासिका के मार्ग बाह्य का जाना है, तिसका नाम श्वास है १३ । अरु प्रश्वास, उसको कहते हैं जो प्राण का बाह्य से अन्तर आवना है, तिसका नाम प्रश्वास है ॥

हे सौम्य ! यह जो १४ चतुर्दश विघ्न कहे हैं सो चित्त को विक्षेप करके आत्मलाभार्थ जे समाधि तिस बिषे विघ्न के कर्ता हैं "तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः" तिसकी निवृत्ति के अर्थ एकत्व का अभ्यास करे, अर्थात् उक्त विघ्नों के अभाव करने के अर्थ अरु आत्मदेव की साक्षात् प्राप्ति के अर्थ ॐकार ब्रह्म के अर्थ भावना अरु जप निर्जन एकान्त पवित्र देशबिषे स्थित होय यम नियमादे योगाङ्ग साधनपूर्वक करे । जे कोई ॐकार के वाच्य की उपासना करते हैं अर्थात् त्रिमात्रिक प्रणवोपासना करते हैं, तिन के जे निर्विकल्पसमाधि में विक्षेपकर्ता विघ्न हैं सो सर्व अभाव होजाते हैं, अरु वो उपासक समाधि विचारद्वारा सर्वबन्धनों से रहित हुआ अपने आप चैतन्यस्वरूप आत्मा ब्रह्म में अभेद स्थिति पाय मोक्ष होता है ॥

हे सौम्य ! यह जो त्रिमात्रिक ॐकार का लक्ष्य आत्मा है तिसको सर्व उपनिषद् चिन्मात्र ब्रह्म करके कहते हैं "अयमात्माब्रह्म" जो मन बुद्धि इन्द्रियादिकों का अविषय है तिसको नेति नेति, इत्यादि श्रुति के निषेधमुख वाक्यों करके सर्व विशेषता के अभाव से निर्विशेष सर्व का अपना आप लक्ष्य करावे हैं, अतएव यही चैतन्य आत्मा अक्षर ब्रह्म है । अरु इसही को बृहदारण्यक उपनिषद्बिषे भगवान् याज्ञवल्क्यजी ने गार्गी से निर्विशेष अक्षरब्रह्म कहा है । तथाच । सहोवाचैतदक्षरं गार्गिब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कममप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तदश्नाति किञ्चन न तदश्नातिकश्चन" अर्थ याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गार्गि ! जिसके बिषे तू प्रश्न करती है तिसको ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) अक्षर कहते हैं । प्रश्न । हे याज्ञवल्क्य ! उस वचनातीत को ब्राह्मण अक्षर कैसे कहते हैं ? वो तो वाणी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदिक किसी का भी विषय नहीं। उत्तर। हे गार्गि! उसको ब्राह्मण ऐसा कहते हैं कि वो स्थूल नहीं अस्थूल है, तो सूक्ष्म होगा, वो असूक्ष्म है, तो छोटा होगा, वा अह्रस्व है, तो दीर्घ होगा, वो अदीर्घ है इस प्रकार वो द्रव्यों के धर्म से रहित अद्रव्य है। 'तो वो लोहित गुणवान् होगा, वो अग्नि आदिकों के लोहितादि गुण रहित है ताते अलोहित है 'तो वो स्नेहादिक जल के धर्मवाला होगा, वो जल के स्नेहादि धर्म रहित अस्नेह है 'तो वो छाया होगा, वो अछाया है 'तो वो तम होगा वो अतम है 'तो वो वायु होगा, वो अवायु है 'तो वो आकाश होगा, वो अनाकाश है 'तो वो सर्व का संघात होगा, वो असंग है ' तो वो रस होगा, वो अरस है 'तो वो गन्ध होगा 'तो वो अगन्ध है 'तो वो चक्षुष्मान् होगा, वो अचक्षु है 'तो वो श्रोत्र होगा, वो अश्रोत्र है ' तो वो वाग् होगा, वो अवाग् है 'तो वो मन होगा, वो अमन है 'तो वो तेज होगा, वो अतेज है 'तो वो प्राण होगा, वो अप्राण है 'तो वो मुखादिद्वार होगा, वो द्वाररहित अमुख है ' तो वो मात्रा होगा, वो अमात्र है, तो वो अन्तर होगा, वो अनन्तर है 'तो वो बाह्य होगा, वो अबाह्य है, अर्थात् वो न भोग्यहै न भोक्ता है, सर्व विशेषणों से रहित निर्विशेष है। हे गार्गि! इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों ने उसको निषेध मुख करके कहाहै क्योंकि वो सर्व के निषेध की अवधि है ताते "। साकाष्ठासापरागतिः "। सो इन विशेष सत्ता पराकाष्ठा अरु मुमुक्षुओं की परागति है॥ हे सौम्य! ऐसा जो परम अक्षर है सोई वर्णात्मक ॐकाररूप अक्षर का लक्ष्य परब्रह्म है, अरु सोई अक्षर सर्वका अन्तरात्मा होयके सर्वका प्रेरक है, उसही की आज्ञा से सूर्य चन्द्र पृथिवी आदिक अपने २ व्यापार में नियमपूर्वक प्रवर्त्त होरहे हैं उस अक्षर की जैसी जिसको आज्ञा है सो तैसेही करता है, अरु सोई सर्व का नियामक स्वामी है अतएव उसके किये नियमसे बाह्य बर्तने को कोई भी समर्थ नहीं। तथाच "। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा पृथिव्यां विधृतेतिष्ठतः॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा मासा ऋतवः संवत्सराइति विधृतास्तिष्ठन्त्येतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्या नद्यः स्पन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां याञ्च दिशमन्वेति ॥ एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति यजमानं देवा दर्वीपितसेऽन्वायत्ताः ॥ इत्यादि ॥ हे सौम्य ! उक्त प्रकार जो सूर्यादि सर्वका नियामक प्रेरक स्वामी सर्वाधिष्ठान परम अक्षर ॐकारक लक्ष्य है तिसका त्रिमात्रिक ॐकार प्रतीक अरु वाचक है अतएव त्रिमात्रिक प्रणव के आलम्बन से जो उस लक्ष्यरूप परम अक्षरकी अभेद " अहमग्रे" उपासना करताहै सोई ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है अरु सोई मोक्ष को प्राप्त होता है ॥

शिष्य उवाच ॥ हे गुरो ! हे भगवन् ! जिस अक्षर का आप ऐसा प्रभाव अरु प्रताप कहते हौ । तिसको हम प्रत्यक्ष कैसे जानें सो आप कृपाकर आज्ञा करिये ॥

गुरुरुवाच ॥ हे प्रियदर्शन ! ऐसा प्रश्न क्यों करते हौ वो तो सर्वका अपना आप प्रत्यगात्मा है अरु यही सर्वका अनुभवकर्ता अनुभवरूप अक्षर है, अरु यही सर्वका द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा है इससे इतर न कोई द्रष्टा है न श्रोता है न मन्ता है न बोद्धा है, हे सौम्य ! ऐसा जो सर्वका ज्ञाता अनुभवी अक्षर आत्मा है सो " तत्त्वमसि " सो तू है तेरा क्षय कदापि नहीं ताते सर्वका ज्ञाता तूही है तेरा ज्ञाता अन्य कोई नहीं, तूही चक्षुरादि सर्वका द्रष्टा है तेरा द्रष्टा कोई नहीं, तूही सर्वका श्रोता है तेरा श्रोता अन्य कोई नहीं, तूही सर्वका मनन करता है तेरा मन्ता कोई नहीं, अरु तूही सबका विज्ञाता है तेरा विज्ञाता कोई नहीं, अत एव सर्व क्षराक्षर का ज्ञाता प्रकाशक अधिष्ठान परम अक्षर तूही है तू अपने आपको अनुभवकर ॥

हे सौम्य ! यह जो सर्व वेद शास्त्रोंद्वारा निर्णय करके निर्विशेष प्रत्यगात्मा अक्षर कहा है सोई वर्णात्मक त्रिमात्रिक ॐकार अक्षर का लक्ष्य निर्गुणब्रह्म परम अक्षर है, अरु सोई सर्व का अपना आप प्रत्यगात्मा है इसीके सम्यक्ज्ञान से मोक्ष होता है, ताते ॐकार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्य प्रत्यगात्मा के जानने के अर्थ त्रिमात्रिक ॐकार की जप अरु अर्थ की भावनारूप उपासना कर्तव्य योग्य है क्योंकि यह परब्रह्म की आत्मत्व से प्राप्ति में परमोत्तम आलम्बन है। अतएव इस त्रिमात्रिक ॐकार की यथाशास्त्र उपासनारूप आलम्बन से अपने आप सत्य स्वरूप आत्मा को यथार्थ अनुभवकर पराशान्तिको प्राप्त होवो, आगे जो तुम्हारी इच्छा ॥—॥ इति ॥—॥

इति श्रीमाण्डूक्योपनिषद्गौडपादीयकारिकाअरुक्षेपक
भाषाभाष्यकारकृतसंग्रहप्रकरणसंहिता समाप्ता ॥

ॐहरिः ॐतत्सद्ब्रह्मार्पणम् ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॐ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

भगवद्गीतापञ्चरत्नमूल	।=)	जप ग्रन्थव्याख्यान गुरु ग्रन्थ प्रदीप	॥)
तथा मोटेअक्षर सु०	॥।-)	गुरुग्रन्थप्रदीप	।=)
तथा नवलभाष्य	३॥)	श्रीजपुजीसाहेब	१)
तथा सटीक १ भाग	१=)	श्रीछप्पैरामगीता सटीक	-)
तथा २ भाग	१)	पारसभाग	२)
सत्यनारायण मूल	=)॥	सांख्यकारिका तत्त्वबोधिनी	।=)
कैवल्यकल्पद्रुम	)॥	प्रश्नोत्तरी	)॥
पंचदशीमयटीका सं०	॥।)	वैराग्यशतक	॥=)
योगवाशिष्ठ सुजल्लद कागज़ गुन्दा	६)	वैराग्यप्रकाश	=)
योगवाशिष्ठसार सटीक	)॥	सांख्यतत्त्वसुबोधिनी सटीक	।)
सिद्धिसाधन अर्थात् ब्रह्मस्तव सटीक	-)	रामगीता सटीक	॥।)
ग्रन्थगुरुनानकशाह	५)		
तथा सुजल्लद	५॥)		
अष्टावक्रगीता सटीक	१)		

मिलने का पता:—

रायबहादुर मुंशी प्रयागनारायण भार्गव,

मालिक नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri